राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक
डॉ. पद्मधर पाठक
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क-१६०

गोस्वामिशिवानन्दभट्टप्रणीत

# सिंहसिद्धान्तसिन्धु
## (तृतीय खण्ड)

सम्पादक
गोस्वामिलक्ष्मीनारायण दीक्षित

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
Rejasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

प्रथमावृत्ति 1000 मूल्य रु. 82.00

# राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक

**डॉ. पद्मधर पाठक**

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क-१६०

गोस्वामिशिवानन्दभट्टप्रणीत

# सिंहसिद्धान्तसिन्धु

## (तृतीय खण्ड)

सम्पादक

**गोस्वामिलक्ष्मीनारायण दीक्षित**

प्रकाशक

**राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर**

**Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur**

**1990**

प्रथमावृत्ति 1000

मूल्य रु. 82.00

# राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान-राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थान प्रदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी-राजस्थानी आदि भाषा-निबद्ध
विविध वाङ्मय-प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान-सम्पादक

**डॉ. पद्मधर पाठक**

**ग्रन्थाङ्क-१६०**

प्रकाशक
राजस्थान-राज्य-संस्थापित
**राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर**

विक्रमाब्द २०४७ | सन् १९९०

जैन प्रिण्टर्स, जोधपुर | मूल्य रु. 82 00

# प्रधान सम्पादकीय

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालान्तर्गत "सिंहसिद्धान्तसिन्धु" नामक महा-ग्रन्थ का यह तृतीय खण्ड सुधी जनों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे अपरिमित हर्ष की अनुभूति हो रही है। इससे पूर्व इस ग्रन्थ का द्वितीय खण्ड ग्रन्थांक १२३ के रूप में सन् १९७६ में प्रकाशित हो चुका है। सम्पूर्ण ग्रन्थ ९२ तरंगों में विभाजित है जिसे पांच खण्डों में पूरा करने की योजना है।

गोस्वामी शिवानन्द भट्ट प्रणीत प्रस्तुत ग्रन्थ आगमशास्त्र का एक प्रौढ़ निबन्ध संग्रह है जिसमें सैकड़ों तान्त्रिक ग्रन्थों का सार सप्रमाण मौजूद है। इतना ही नहीं, भारत में प्रचलित शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव एवं सौर आदि विभिन्न सम्प्रदायों की तान्त्रिक उपासना पद्धतियों का भी इसमें आगमसम्मत निरूपण किया गया है। निष्कर्षरूपेण इसे एक अनूठा सन्दर्भ ग्रन्थ कहा जा सकता है जिसकी उपादेयता निर्विवाद है।

जैसा कि सुधी पाठकों को विदित ही है कि प्रथम खण्ड की १४ तरंगों में दीक्षा विषयक विविध आगम ग्रन्थों के मतों का संकलन उपस्थापित किया गया है।

द्वितीय खण्ड १५वें तरंग से प्रारम्भ होकर ३६वें तरंग में समाप्त हो जाता है। इसमें मुख्य रूप से पुरश्चरणविधि, काम्यपूजाविधि, गणेशमन्त्र विधान, बटुकभैरव, मृत्युञ्जयमन्त्रविधान आदि विषयों का विस्तृत विवेचन है।

यह ग्रन्थ २० तरंगात्मक हैं जो ३७-५७ तरंगों में विभाजित है। "सिंह सिद्धान्त सिन्धु" ३७वीं तरंग से प्रारम्भ होकर ५६वीं तरंग में समाप्त हो जाता है। ग्रन्थकार द्वारा निबद्ध पद्यतालिकानुसार इसमें—त्रैयम्बकमनोर्विधानम् से दिनास्त्र–कृत्यास्त्र विधान पर्यन्त विविध विषयों का संकलन है जिसके अन्तर्गत श्रीमातृकाविधान, श्री निर्वाणमन्त्रविधान, चण्डीसप्तशती, काम्यपूजाविधि, श्री दुर्गा के विविध मन्त्र, अन्नपूर्णाविधान, दक्षिणकालिका मन्त्रविधान आदि विविध

चमत्कारिणीविद्यापरक मन्त्रों के संकलन के साथ ही यक्षिणीविधान, गायत्री-विधान आदि विषयों का समावेश किया गया है ।

वर्तमान परिपेक्ष्य में, जबकि भौतिक उन्नति अपने चरम उत्कर्ष पर दिखाई देती है, "सिंहसिद्धान्तसिन्धु" जैसे ग्रन्थराज के प्रकाशन का सिलसिला जारी रखना इसलिए भी आवश्यक हो गया है कि न केवल तन्त्रसाधक अपितु सर्व-सामान्य व्यक्ति भी, जो 'इह से पर' की ओर से थोड़ा भी दृष्टिपात करना चाहता है, यह ग्रन्थ उसकी सहायता करेगा । इस पवित्र कार्य में पण्डित लक्ष्मी-नारायण गोस्वामीजी को जितना साधुवाद दिया जाय, कम ही रहेगा—विशेषकर सेवानिवृत्ति के पश्चात् भी विभाग के प्रति उनका सेवाभाव निवृत्त न होकर अधिकाधिक प्रवृद्ध ही हुआ है । उनसे भविष्य में भी इसी प्रकार का सहयोग मिलेगा—यह हमारी आशा है ।

पुस्तक के यथाशीघ्र और शुद्ध मुद्रण में मै. जैन प्रिण्टर्स, जोधपुर ने जो सहयोग दिया है उसे चाहकर भी भुलाया नहीं जा सकेगा ।

निदेशक

## अथ सिंहसिद्धान्तसिन्धोस्तृतीयखण्डस्य तरङ्गान्तर्गतानां विषयाणामनुक्रमः

[सप्तत्रिंशस्तरङ्गः पृष्ठ–१-३६]


| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| त्रैयम्बकमनोर्विधानम् | |
| त्रैयम्बकमनोरुद्धारः | १ |
| मन्त्रनिरुक्तिः | १-२ |
| ऋष्यादिः | २ |
| षडङ्गन्यास-मन्त्रपदन्यास-शक्तिन्यासविधिः | ३-४ |
| ध्यानम्, पीठार्चनविधिः | ४-५ |
| तत्प्रयोगः | ५-६ |
| पुरश्चरणम् | ६-७ |
| काम्यकर्मनिर्देशः | ७-८ |
| शारदातिलकोक्तः काम्यन्यासविधिः | ८-१० |
| न्यासप्रयोगः | १० |
| काम्यकर्महोमविधिः | ११ |
| वसिष्ठकल्पोक्तस्त्रियम्बकमन्त्रस्य विनियोगः | ११-१४ |
| (काम्यहोमतर्पणजपप्रयोगविधिः) तत्र—कर्माणि— पूर्णायुःप्राप्तिः, आरोग्याप्तिः, ज्वर-प्रमेह-गुल्मशूल-वातरोगातीसाराक्षिरोगापस्मार-पक्षशूल-कापालरोग-राजयक्ष्म-गर्भरोग-मुखरोग-शिरोरोग-सर्वोदररोगान्तस्तापशान्तिश्च | |
| आत्मनः परस्य वा आयुरारोग्यादिसिद्धयर्थं जपहोमादीनां क्रियाकालावधिसूचनम् | १४-१५ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| अपमृत्युजयोपायौ | १५ |
| अपमृत्यु-व्याधि-शत्रुकृतभयनिवारकोऽभिषेकविधिः | १५-१६ |
| परार्थे धनलोभादिना कृतकर्मणा आत्मनाशः | १६ |
| मातृपित्रादि-जनानामेव रक्षानिर्देशः | १६ |
| अथ रक्षाविधिः | १७ |
| भस्मविधिः | १७ |
| ग्रहरोगोरगादिभयनिवृत्तये परिपुष्ट्यै च अङ्गुलीयकधारणविधानम् | १७-१८ |
| नारीणामतुलसौभाग्यमाङ्गल्याप्तये नवाभरणधारणविधिः | १८ |
| दुःस्वप्न-भूतप्रेतादिसर्वोपद्रवनाशनार्थे सर्वसम्पत्समृद्धये च प्रोषितागारशान्तिविधिः | १८-१९ |
| वृष्ट्याप्ति-वृष्टिनिवारणकरो होमाभिषेकविधिः | १९-२१ |
| वश्योच्चाटनविधिः | २१ |
| शत्रोर्मारणविधिः | २१ |
| पुत्तलिकाविधानम् | २२ |
| शत्रूणां निग्रहोपायः | २२-२४ |
| सर्वशत्रुविनाशकः शत्रुञ्जययोगविधिः | २४ |
| अथाभिचारशान्तिविधिः (कृत्याशान्तिविधिः) | २५ |
| गजाश्वरोगशान्तिविधिः | २६ |
| पराभिचारशान्तिविधिः | २८ |
| ब्रह्महत्यादिपापनिवृत्तिकरो जपहोमादिविधिः | २८ |
| महामृत्युञ्जयमनोर्भेदाः | २९ |
| आयुरारोग्यसौभाग्यधर्मार्थसुखमोक्षप्रद आनुष्टुभयन्त्रविधिः | २९-३० |
| 'मा त्वा रुद्रे' त्यृङ्मन्त्रः | ३० |
| शारदातिलकोक्तं शिवस्तोत्रम् | ३१ |
| सूर्यकृतं शिवस्तोत्रम् | ३१-३२ |
| स्कन्दपुराणोक्तं शिवकवचस्तोत्रम् | ३२-३६ |

विषयः पृष्ठ संख्या

[अष्टाविंशस्तरङ्गः—पृष्ठ—३६-८४]

अथ शक्तिमन्त्राणां विधानम्-तत्र—
भुवनेश्वरीबीजमन्त्रः ३६
बीजमाहात्म्यम् ३६
मन्त्रस्य त्र्यक्षरा नव भेदाः ३७
ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासविधिः ३७
शक्तिन्यासविधिः ३७
मन्त्रन्यासविधिः ३८
योनिन्यासविधिः ३८
ध्यानम् ३८
सारसङ्ग्रहोक्तं ध्यानान्तरम् ३९
मुद्राप्रदर्शनम् ३९
भुवनेशीगायत्रीमन्त्रः ४०
पूजायन्त्रम् ४०
पूजाविधिः ४०
पीठार्चनमन्त्रः ४०
अङ्गदेवताध्यानम् ४१-४२
अथ प्रयोगः ४२-४४
आवरणानां चत्वारः संक्षेपप्रकाराः ४४
पुरश्चरणम् ४४
अष्ट द्रव्याणि ४४
पुरश्चरणस्य प्रकारान्तरम् ४४
काम्यप्रयोगविधिः ४५-४६
अथ काम्ययन्त्राणि-तत्र—
सर्वसौभाग्यसम्पत्प्रदं त्रिगुणितयन्त्रम् ४६
तदर्चासाधनविधिः ४७
सर्वसिद्धिकरं षड्गुणित (षोडशशूलाङ्क) यन्त्रविधानम् ४७-४९
रक्षासिद्धिप्रदं सर्वसौभाग्यजननं सर्वशत्रु-निवारणञ्च द्वादशगुणितं यन्त्रम् ४९
तदर्चा-साधनविधिः ५०-५२

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| वधूनाम्पुत्रभूमिगृहादिप्रदयन्त्रविधिः | ५२ |
| नरवश्यकरं यन्त्रान्तरविधानम् | ५२ |
| अथाङ्कयन्त्राणां विधानम् | ५२ |
| शताङ्क(शतसंख्यावधिक)यन्त्रधारणफलकथनम् | ५३ |
| यन्त्राणां लेखाधाराः | ५३-५४ |
| अङ्कयन्त्राणां लेखनक्रमः | ५४ |
| कर्मभेदेन नक्षत्रादि-लेखनीनिरूपणम् | ५४-५५ |
| यन्त्ररचनाप्रकारः | ५५-५७ |
| यन्त्रसाधनविधिः | ५७ |
| विभिन्नाङ्कयन्त्राणां फलनिर्देशः | ५७-५९ |
| प्रकारान्तरेण लेखन-धारणविधिः | ५९ |
| अभिषेकविधानम् | ५९ |
| कलशस्थापनविधिः | ५९-६२ |
| भुवनेश्या बीजत्रयात्मको मन्त्रः | ६२ |
| ऋष्यादिः | ६२ |
| षडङ्गन्यासो ध्यानञ्च | ६२ |
| तत्प्रयोगः | ६३ |
| पुरश्चरणम् | ६३ |
| कवित्व-वश्य-राज्यश्रीप्रदप्रयोगविधिः | ६३ |
| मन्त्रान्तरम् | ६३ |
| ऋष्यादि-षडङ्गन्यासध्यानानि | ६४ |
| अथ प्रयोगः | ६४-६५ |
| पुरश्चरणम् | ६५ |
| काम्यकर्मप्रयोगविधिः | ६५ |
| पाशादित्र्यक्षरो मन्त्रः | ६६ |
| तदृष्यादिध्यानार्चाविधिः | ६६ |
| तत्प्रयोगः | ६७ |
| काम्यप्रयोगविधिः | ६७ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| घटार्गलयन्त्रम् | ६७-६८ |
| अष्टाक्षरो मन्त्रः | ६८ |
| षोडशाक्षरो मन्त्रः | ६८ |
| यन्त्रनिर्माणविधिः | ६९ |
| यन्त्ररचनाप्रकारः | ६९-७१ |
| वश्यादिकर्मसु यन्त्रधारणादिविधिः | ७१-७२ |
| वश्यविजयारोगदं यन्त्रम् | ७२ |
| त्वरितवाञ्छितार्थदं यन्त्रम् | ७२-७३ |
| श्रीभुवनेश्वरीस्तुतिः | ७३-७६ |
| अन्या भुवनेशीस्तुतिः | ७७-८१ |
| त्रैलोक्यमङ्गलन्नाम भुवनेश्वरीकवचम् | ८१-८४ |

[एकोनचत्वारिंशस्तरङ्गः—पृष्ठ-८४-१७२]

| | |
|---|---|
| श्रीमातृकाविधानम्-तत्र— | |
| मातृकामन्त्रस्तन्त्रान्तरोक्तं मन्त्रवर्णाना पृथक्पृथग्ध्यानञ्चम् | ८४-८७ |
| ऋषिन्यासादिविधिस्ततप्रकारश्च | ८७-८९ |
| नानातन्त्रोक्तो ध्यानभेदः | ८९-९० |
| यन्त्रप्रकारो यजनविधिस्ततप्रयोगश्च | ९०-९३ |
| कवित्वसिद्धये ब्राह्मीघृतविधिः | ९३-९४ |
| मुद्रिका (रुचक) धारणविधिः स्वर्णादिमानञ्च | ९४-९५ |
| तन्त्रराजोक्तो यन्त्रविधिर्यन्त्ररचनाप्रकारश्च | ९५-९७ |
| मातृकाविद्योपासकानामन्यविद्योपासकानाञ्च प्राणाग्निहोत्रविधिस्ततप्रयोगो होमप्रकारश्च | ९७-१०१ |
| भोजनकाले कर्त्तव्यप्राणाग्निहोत्रविधिस्ततफलञ्च | १०१-१०३ |
| भूतलिपेर्विधानम् | १०३-१०७ |
| भूतलिप्याः प्रयोगस्तत्र | |
| संहार-सृष्टि-स्थितिन्यासाः, पूजायन्त्रे यजनं, जपादिविधिश्च | १०७-११० |

विषयः | पृष्ठ संख्या

काम्यकर्माणि–तत्र–
राजवश्यं, लक्ष्मीसिद्धिः, वनितावश्यं, सर्वसिद्धिदो योगश्च ११०
क्ष्वेड-(विष)हरमाकाशयन्त्रम्, सर्वशान्ति-
करं यन्त्रं, उच्चाटन-मारणयन्त्रञ्च ११०-१११
रक्षायन्त्रं, रिपुनाशनयन्त्रं, वश्यदं वारुणयन्त्रं, स्तम्भकृ-
द्भूमियन्त्रञ्च ११२-११३
वागीश्वर्याः सरस्वत्याः विधिः–तत्र–
दशाक्षरीमन्त्रविधिः ११३-११५
दशाक्षरीमन्त्रप्रयोगस्तत्काम्यविधिश्च ११५-११६
वागैश्वर्यफलप्रदः षोडशाक्षरीमन्त्रस्तत्प्रयोगस्तत्काम्यविधिश्च ११७-११८
एकादशाक्षरो हंसवागीश्वरीमन्त्रस्तत्प्रयोगस्तत्काम्यविधिश्च ११८-१२०
शारदातिलकोक्तैकादशाक्षरमन्त्रविधिः १२०
सारसङ्ग्रहादियुक्तास्त्वन्ये मन्त्रास्तत्र—
पारिजातसरस्वत्या एकादशाक्षरो मन्त्रः १२१
सप्तकोटीश्वर्या वागैश्वर्यप्रदः सप्तार्णो मन्त्रः १२१
वाग्वादिन्याः वाक्सिद्धिप्रद एकत्रिंशाक्षरो मन्त्रः १२१-१२१
सारस्वतस्त्र्यक्षरात्मको मन्त्रस्तद्विधिस्तत्काम्यविधिश्च १२२-१२३
ब्रह्मपुराणोक्तं सरस्वतीस्तोत्रम् १२३-१२१
प्रपञ्चसारोक्तं सरस्वतीस्तोत्रम् १२५-१२६
सरस्वत्युपासकानां वर्ज्यकर्माणि १२६-१२७

[चत्वारिंशस्तरङ्गः–पृष्ठ–१२८-१७५]

श्रीलक्ष्मीमन्त्रविधानम्–तत्र–
एकाक्षरमन्त्रविधिः १२८-१३०
तत्प्रयोगः काम्यविधिश्च १३०-१३२
काम्ययन्त्रविधानम्-तत्र ऋक्पञ्चकयन्त्रम्, ऋग्वेदोक्त
ऋक्पञ्चकञ्च १३२-१३४
श्रीयन्त्रसारोक्तमन्यत्स्थापनयन्त्रम् १३४-१३५
चतुरक्षरमन्त्रविधिः १३५-१३६
दशाक्षरमन्त्रविधिस्तत्प्रयोगः काम्यविधिश्च १३६-१३८

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| अष्टाविंशाक्षरलक्ष्मीहृदयमन्त्रविधिः | १३८-१४० |
| तत्प्रयोगः काम्यविधिश्च | १४०-१४२ |
| सर्वसाम्राज्यदायिनीलक्ष्मीमन्त्रविधिर्बलिदानविधिश्च | १४२-१४५ |
| तत्प्रयोगः | १४५-१४६ |
| त्रिशक्तिमन्त्रस्तद्यजनविधिस्तत्प्रयोगश्च | १४६-१४८ |
| महालक्ष्म्या द्वादशाक्षरमन्त्रविधानम् | १४८-१५४ |
| तत्प्रयोगः काम्यकर्म्म विधिश्च | १५४-१५९ |
| महालक्ष्म्याः काम्ययन्त्रविधिस्त्वरिताविद्यामन्त्रश्च | १५९ |
| महालक्ष्म्याश्चतुर्दशाक्षरमन्त्रद्वयम् | १६० |
| महालक्ष्म्याः सप्तार्णो मन्त्रः | १६० |
| महालक्ष्म्या एकादशाक्षरो मन्त्रस्तत्प्रयोगश्च | १६०-१६१ |
| ऋक्पञ्चदशकात्मकस्य श्रीसूक्तस्य विधानम् | १६१-१६२ |
| श्रीसूक्तस्य प्रयोगः | १६२-१६७ |
| श्रीसूक्तस्य धारण-स्थापनयन्त्रविधिस्तत्प्रयोगश्च | १६७-१६८ |
| विष्णुपुराणोक्तं लक्ष्मीस्तोत्रम् | १६८-१७१ |
| स्कन्दपुराणोक्तं लक्ष्मीस्तोत्रम् | १७१-१७३ |
| श्रीमन्त्रजापिनां केचिन्नियमाः | १७३-१७५ |

[एकचत्वारिंशस्तरङ्गः—१७६-२३२]

| | |
|---|---|
| अथ मातङ्गीमन्त्राः—तत्र— | |
| राजमातङ्गिन्या अष्टाशीत्यक्षरमन्त्रविधिः | १७६-१८४ |
| तत्प्रयोगः काम्यकर्मविधिश्च | १८४-१८८ |
| राजमातङ्ग्याः पञ्चनवत्यक्षरो मन्त्रः | १८८ |
| राजमातङ्ग्याश्चतुःपञ्चाशदक्षरैकाधिकषष्टयक्षरौ मन्त्रौ | १८९-१९० |
| वश्यमातङ्ग्याः सप्तचत्वारिंशार्णो मन्त्रः | १९० |
| मातङ्गीरत्नदेवतामन्त्र-यन्त्रविधिः | १९०-१९३ |
| मातङ्गीरत्नदेवतामन्त्रप्रयोगस्तत्काम्यकर्मविधिश्च | १९३-१९६ |
| मातङ्गेश्वर्य्या अष्टनवत्यक्षरमन्त्रविधिः | १९६-२०० |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| तत्प्रयोगस्तत्काम्यकर्म्मविधौ पुत्तलिकादिविविधकर्म्माणि | २००-२०५ |
| तन्त्रराजोक्ता नक्षत्रवृक्षाः | २०५-२०६ |
| मत्स्येन्द्रसंहितोक्तं पुत्तलीमानम् | २०६-२०७ |
| मातङ्गीप्रीतये चतुःषष्टियोगिनीयजनविधिः | २०७-२०९ |
| मातङ्ग्या धारणयन्त्रविधानम् | २०९-२१० |
| चण्डमातङ्गिन्याश्चतुर्दशाक्षर मोन्त्रः | २११ |
| शुभाशुभवादिनीमातङ्गीमन्त्रः | २११ |
| श्रीमातङ्गेश्वर्याः सद्यःशतगुणफलदायको मन्त्रः | २११ |
| प्रपञ्चसारोक्तः सर्वसम्मोहिन्या मन्त्रविधिः | २१२ |
| उच्छिष्टचाण्डालिमातङ्ग्या एकोनविंशत्यक्षरमन्त्रयन्त्रविधिः–स्तत्प्रयोगश्च | २१२-२१४ |
| अस्यैव मन्त्रस्य मन्त्रभेदेन विधिप्रयोगौ | २१४-२१८ |
| काम्यकृत्यविधानम् | २१८-२२० |
| मातङ्गीस्तोत्रम् | २२०-२२१ |
| श्रीशङ्कराचार्यविरचितम्मातङ्गीस्तोत्रम् | २२१-२२३ |
| श्रीरुद्रयामलोक्तम्मातङ्गीकवचम् | २२३-२२५ |
| तत्रैवोक्तमन्यन्मातङ्गीकवचम् | २२५-२२६ |
| सुमुखीविधानम्–तत्र–अनुक्तसंख्यकजपहोमयोः अष्टसहस्रजपहोमौ, काम्यहोमविधिश्च | २२६-२३२ |


**[ द्विचत्वारिंशस्तरङ्गः–पृष्ठ-२३३-२५३ ]**


श्रीदुर्गामन्त्राः–तत्र–

| | |
|---|---|
| श्रीदुर्गाया अष्टाक्षरमन्त्रविधिः | २३३-२३४ |
| श्रीदुर्गाया अष्टाक्षरमन्त्रप्रयोग स्तद्यन्त्रविधिः काम्यकर्म्मविधिश्च | २३४-२३६ |
| महिषमर्द्दिन्या अष्टाक्षरमन्त्रविधिः | २३६-२३८ |
| तत्प्रयोगस्तत्काम्यकर्म्मविधिश्च | २३८-२३९ |
| जयदुर्गाया दशाक्षरीविद्यामन्त्रविधिः | २३९-२४० |
| जयदुर्गाया द्वादशार्णमन्त्रविधिः | २४० |

विषयः | पृष्ठ संख्या


शूलिनीदुर्गायाः पञ्चदशाक्षरमन्त्रविधिः २४१-२४२
पञ्चदशाक्षरमन्त्रप्रयोगः काम्यकृत्यविधिश्च २४२-२४५
ज्वालामालिन्या द्वाविंशार्णो मन्त्रः २४५
वनदुर्गायाः सप्तत्रिंशदर्णात्मकमन्त्रविधिः २४५-२४७
अस्याः प्रयोगः २४७-२४८
काम्यकर्मविधानं यन्त्रसाधनञ्च २४८-२५३

[ त्रिचत्वारिंशस्तरङ्गः—पृष्ठ-२५४-२८० ]

श्रीनवार्णमन्त्रविधानम्—तत्र—
त्रैलोक्यडामराख्यनवाक्षरमन्त्रस्य प्रत्यक्षरध्यानम् २५४
नवबीजनिबद्धमन्त्रस्य जपफलकथनम् २५५
मन्त्राणां पम्पल्लवादिराहित्ये दोषफलकथनम् २५५-२५६
कामनाभेदेन लक्षणपुरस्सरम्पल्लवभेदाः २५६
स्नानादिविधिः २५६
नित्यपूजाविधौ भूतशुद्ध्यादि-मातृकान्यासा-
द्येकादशन्यासान्तो विधिः २५७-२६३
अर्घ्यपात्रादिस्थापनम्पीठपूजाविधिश्च २६३-२६७
शूद्राणाम्पक्वान्ननैवेद्यदाननिषेधोक्तिः २६७
चण्डीसप्तशतीजाप्ये सरहस्यचरितत्रयस्य
नवार्णमन्त्रस्य च जपहोमविधिस्तत्फलञ्च २६७-२६८
चण्डीसप्तशतीस्तोत्रस्य चरितत्रयाणां नवार्णमन्त्रस्य
न्यासविधानम् २६८-२६९
नवार्णमन्त्रस्य प्रयोगः २६९-२७९
नित्यपूजाफलम् २८०

[ चतुश्चत्वारिंशस्तरङ्गः—पृष्ठ—२८१-३०९ ]

चण्डीसप्तशत्याः काम्यपूजाविधिः—तत्र—
पूजापीठभेदेन फलभेदः २८१
ध्यानभेदेन फलभेदः २८१-२८२
नित्यचण्डीविधानन्तत्प्रयोगश्च २८२-२८३

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| नवदुर्गाविधिस्तत्प्रयोगश्च | २८३-२८४ |
| नवचण्डीमहोत्सवविधौ बलिदानविधिस्तत्प्रयोगश्च | २८५-२८७ |
| शतचण्डीविधानम्–तत्र— | |
| अनावृष्ट्यादिशान्तिकार्येषु शतचण्डीजपनिर्देशः | २८७ |
| मण्डपकुण्डयोर्निर्देशः | २८८ |
| मधुपर्कविधानेन ब्राह्मणादीनां वरणम्पूजनविधिश्च | २८९ |
| सपरिमाणपूजासामग्री | २९० |
| ब्राह्मणकुमारीभोजनम् | २९० |
| द्वितीयदिवसादिपञ्चमदिवसपर्य्यन्तस्तर्पणहोमा— | |
| दिक्कृत्यविधिः | २९१ |
| द्विजानां सपरिमाणं गोदानदक्षिणादानादिभिः परितोषणम् | २९२-२९३ |
| चण्डिकाया ब्रह्मोक्तनामानि | २९३ |
| चण्डिकाजपसिद्धये नवाक्षरमन्त्रसम्पुटोक्तिः | २९३ |
| अथ शतचण्डीप्रयोगः–तत्र— | |
| मण्डप-कुण्डादिनिर्माणपूर्वकमाचार्यादिद्विज-वरणादिविधानम् | २९४ |
| दिग्देवतादिपूजापूर्वकम्प्रधानकुम्भस्थापनम् | २९४ |
| कस्तूरीकुङ्कुमादिपूजासामग्र्याः परिमाणोक्तिः | २९४-२९५ |
| सप्तशतीपाठपूर्वकम्प्रथमदिवसकृत्यादिचतुर्थदिव-सान्तकृत्यविधानम् | २९५ |
| पञ्चमदिवसकृत्यम् | २९६ |
| सौवर्णनिष्कादिनिर्णयः | २९६ |
| यजमानस्य ब्राह्मणाशीर्वचनैःसह गृहप्रवेशः | २९७ |
| चण्डीपाठमाहात्म्यम्पाठप्रकारश्च | २९७-२९८ |
| जयशब्दार्थः | २९८ |
| मात्स्योक्तः पाठप्रकारः | २९९ |
| अथाऽग्निस्थापनविधिः | २९९-३०२ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| अग्निस्थापनप्रयोगः | ३०२-३०४ |
| अथ कुमारीपूजाविधिः | ३०४-३०६ |
| कुमारीपूजाप्रयोगः | ३०६ |
| अथ पूज्याऽपूज्यकुमारीलक्षणानि | ३०६-३०७ |
| फलविशेषे कुमारीभेदोक्तिः | ३०७ |
| पृथ्वीधरकृतं दुर्गास्तोत्रम् | ३०७-३०९ |

[पञ्चचत्वारिंशस्तरङ्गः–पृष्ठ–३०२-३४०]

| | |
|---|---|
| अथ भैरवीमन्त्राणां विधानम्–तत्र– | |
| त्रिपुराशब्दव्युत्पत्तिः | ३१० |
| पञ्चकूटात्मिकात्रिपुरभैरवीविद्यामन्त्रोद्धारस्तज्जपविधिश्च | ३१०-३१६ |
| त्रिपुरभैरवीविद्यापूजाविधिः | ३१६-३१८ |
| त्रिपुरभैरवीविद्यामन्त्रप्रयोगः | ३१८ |
| विनियोगपुरस्सरमृष्यादिकर-षडङ्गन्यास देहन्यासादयः | ३१९-३२० |
| पूजाप्रयोगः | ३२०-३२१ |
| पुरश्चर्याविधिः काम्यहोमविधिश्च | ३२१-३२३ |
| वश्यतिलकविधिः | ३२३ |
| सारसंग्रहोक्तः काम्यविधिः | ३२४ |
| त्रैपुरगायत्रीयन्त्रविधिः | ३२४ |
| अन्यत्त्रैपुरयन्त्रम् | ३२४-३२५ |
| पञ्चकामाख्यं यन्त्रम् | ३२५ |
| त्रैपुरगायत्रीमन्त्रः | ३२५ |
| वाग्भवादिबीजत्रयस्य साधनम् | ३२५-३२६ |
| तन्त्रान्तरोक्तं वाग्भवादिबीजत्रयसाधनम् | ३२६ |
| त्रैपुरकन्देत्यपरनामा चैतन्यमन्त्रः | ३२६-२७ |
| देवीहृदयविद्याख्य आह्लादिनीमन्त्रः | ३२७ |
| सिद्धेश्वरीतन्त्रोक्तो दीपिनीमन्त्रः | ३२७ |
| चैतन्यभैरवीमन्त्रस्तद्यन्त्रपूजाविधिश्च | ३२८-३२९ |
| एकादशाक्षरकामेश्वरीमन्त्रस्तत्पूजाविधिश्च | ३२९ |

विषयः पृष्ठ संख्या


सम्पत्प्रदाभैरवीमन्त्रस्तद्यजनविधिस्त्रयस्त्रिंशार्णः सिंहासनमन्त्रश्च ३२९-३३१
षट्कूटाभैरवीमन्त्रस्तद्यन्त्रयजनविधिश्च ३३१-३३२
नित्याभैरवीमन्त्रविधिः ३३२
भुवनेश्वरभैरवीमन्त्रस्तद्यजनविधिश्च ३३२-३३३
भुवनेश्वरभैरवीमन्त्रान्तरम् ३३३
कोलेशभैरवीमन्त्रस्तद्यजनविधिश्च ३३३
डामरभैरवीमन्त्रस्तद्यजनविधिश्च ३३३-३३४
कालिकाभैरवीमन्त्रस्तद्यजनविधिश्च ३३४
भयविध्वंसिनीभैरवीमन्त्रस्तद्यजनविधिश्च ३३४
अघोरभैरवीमन्त्रस्तद्यजनविधिश्च ३३४-३३५
अथ भैरवीस्तोत्रम् ३३५-३३७
भैरव्यास्त्रैलोक्यविजयन्नाम कवचम् ३३७-३४०

[ अथ षट्चत्वारिंशस्तरङ्गः—पृष्ठ-३४१-३६५ ]

अथ अन्नपूर्णाविधानम्-तत्र—
अन्नपूर्णाया विंशाक्षरीमन्त्रोद्धारः ३४१
ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासविधिः ३४१
वर्णन्यासविधिः ३४१
पदन्यासनवद्वारन्यासविधिः ३४१-३४२
ध्यानम् ३४२
यन्त्रन्तद्यजनविधिश्च ३४२
शिवसप्ताक्षरीमहाविद्यामन्त्रः शिवध्यानञ्च ३४३
वराहविद्यामन्त्रः ३४३
नारायणमन्त्रः ३४३
भूश्रीमन्त्रौ ३४४
परविद्या-भुवनेश्वरी-कमला-सुभगादीनाम्पूजामन्त्राः ३४४
अथाऽन्नपूर्णाप्रयोगः ३४४-३४५
अन्नपूर्णापुरश्चरणम् ३४६

विषयः | पृष्ठ संख्या


| | |
|---|---|
| अन्नपूर्णायाः षोडशार्ण-सप्तदशार्णाष्टादशार्णमन्त्राः | ३४६ |
| अन्नपूर्णायाः त्रिश्लोकीस्तुतिः | ३४६-३४७ |
| अन्नपूर्णास्तोत्रम् | ३४७-३४८ |
| अन्नपूर्णाकवचम् | ३४८-३५० |
| अन्नप्रदाख्यमन्त्रस्तज्जपादिविधिः— स्तत्प्रयोगश्च | ३५०-३५१ |
| कामेशीमन्त्रविधिः—तत्र— | |
| कामेश्या एकाक्षरो मन्त्रस्तदृष्यादिर्ध्यानं, यजनविधिः, पुरश्चरणञ्च | ३५१-३५२ |
| तत्प्रयोगः | ३५२-३५३ |
| पञ्चाक्षरीबाणविद्यामनोर्जपादिविधिः | ३५३-३५४ |
| पञ्चकामेश्वरीमन्त्रस्य जपयजनविधिः | ३५४ |
| यन्त्रसारोक्तो यन्त्रविधिः | ३५४-३५५ |
| कामेश्वरीत्र्यक्षरीमन्त्रस्य जप-यजनविधिः | ३५५-३५६ |
| श्रीबगलामुखीविधानम् | |
| श्रीबगलामुखीषट्त्रिंशदक्षरीविद्यामन्त्रोद्धारः | ३५६-५७ |
| ऋष्यादिः, मन्त्रवर्णन्यासविधिश्च | ३५७ |
| ध्यानम्, यन्त्रोद्धारो यजनविधिश्च | ३५८-३६० |
| बगलामुखीप्रयोगः | ३६० |
| मन्त्रसाधनविधिः | ३६०-३६१ |
| शीघ्रप्रत्ययकारको वश्यादिषट्कर्मसाधनविधिः | ३६१ |
| पादुकासिद्धिरदृश्यकृद्विलेपनं विषदारिद्र्यमोचनञ्च | ३६१-३६२ |
| कामनायन्त्रम् | ३६२ |
| काम्यकर्माणि तद्विधानञ्च | ३६४-३६५ |


**[ सप्तचत्वारिंशस्तरङ्गः—३६६—३८३ ]**


| | |
|---|---|
| अथ त्रिपुटाविधानम् | |
| त्रिपुटायास्त्र्यक्षरो मन्त्रस्तदृष्यादिर्ध्यानञ्च | ३६६ |
| त्रिपुटाया यन्त्रन्तत्संक्षेपयजनविधिस्तत्प्रयोगश्च | ३६७-३६८ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| पुरश्चरणविधिस्तत्फलञ्च | ३६८ |
| अष्टाक्षरीमन्त्रविधिस्तत्प्रयोगः पुरश्चर्याविधिश्च | ३६८-३६९ |
| अश्वारूढाया दशाक्षरमन्त्रविधिस्तदृष्यादयस्तत्प्रयोगश्च | ३६९-३७० |
| पुरश्चर्याविधिः काम्यसाधनञ्च | ३७०-३७१ |
| दशार्णस्यैव मनोरेकादशार्णत्वं द्वादशार्णत्वं त्रयोदशार्णात्मकत्वञ्च तद्विधिश्च | ३७१ |
| अश्वारूढायाः सर्वकामदं यन्त्रन्तत्साधनञ्च | ३७१ |
| एकविंशार्णो मन्त्रः | ३७२ |
| अश्वारूढास्तोत्रम् | ३७२ |
| गौरीषोडशार्णमन्त्रस्तदृष्यादयो यजनविधिश्च | ३७३ |
| प्रपञ्चसारोक्तः पीठपूजाविधिः पीठमन्त्रस्तद्गायत्री च | ३७३ |
| गौरीप्रयोगः | ३७४ |
| पुरश्चर्याविधिः काम्यविधिश्च | ३७४-७५ |
| एकोनविंशाक्षरः स्त्रीवश्यकरो मन्त्रः | ३७५ |
| सर्ववश्यप्रदः सप्तवर्णात्मकः पद्मावतीमन्त्रः | ३७५ |
| ऋष्यादिध्यानार्चाविधिः | ३७५ |
| पुरश्चरणं, वश्यदयन्त्रञ्च | ३७६ |
| ज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्तदृष्यादिः, पदपञ्चकन्यासश्च | ३७६ |
| ध्यानादि-यजनान्तविधिः ज्येष्ठालक्ष्मीगायत्रीमनुश्च | ३७६-७७ |
| पुरश्चर्या तत्फलञ्च | ३७७-७८ |
| ग्रहभीतिहरस्त्र्यक्षरःस्त्रिकण्टकीमन्त्रस्तदृष्यादिःध्यानं, यजनविधिश्च | ३७८ |
| त्र्यक्षरो वश्यत्रिकण्टकीमन्त्रः | ३७८ |
| सर्वसिद्धिप्रदोऽष्टवर्णात्मको वैष्णवीमन्त्रः | ३७९ |
| ऋष्यादिन्यासविधिर्ध्यानं यजनविधि- | ३७९ |
| गायत्रीमन्त्रश्च | ३८०-३८१ |
| वैष्णवीमन्त्रप्रयोगः पुरश्चर्या च | ३८१ |
| वैष्णव्याः षडक्षरात्मको वसुवर्णात्मकश्च मन्त्रः | ३८१ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| महामायोपासकानां वाक्यानि, विपन्नदशायां नित्यनैमित्तिक कर्मत्यागविचारश्च | ३८२-३८३ |

[ अष्टचत्वारिंशस्तरङ्गः—पृष्ठ—३८४-४०३ ]

| | |
|---|---|
| परिमलमन्त्रविधानम्—तत्र— | ३८४ |
| परिमलमन्त्रः | ३८४ |
| ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासविधिः | ३८४ |
| वश्यादिकृत्येषु ध्यानार्चनाजपविधिः | ३८५ |
| परिमलमन्त्रप्रयोगः | ३८५-३८६ |
| महाकृत्याविनियोगस्तत्र— | ३८६ |
| शत्रोः प्रतिमा (पुत्तली) निर्मितिः | ३८६-३८७ |
| तत्प्राणप्रतिष्ठा-होमादिविधिः | ३८७ |
| मारणोच्चाटनशान्तिवश्यकर्माणि | ३८७ |
| विशेषतो महाशान्तिविधिः | ३८७ |
| योगिनीतन्त्रोक्तो वज्रवैरोचनीयायास्त्रयोदशार्णः षोडशार्णश्च मन्त्र | ३८९-३९० |
| मन्त्रवर्णस्था देवाश्छन्दांसि ऋषयश्च | ३९०-३९१ |
| मन्त्रस्य सकलध्यानम् | ३९१-३९२ |
| निष्कलध्यानम् | ३९३ |
| अतिकलध्यानम् | ३९३ |
| मण्डलार्चनविधिः (यन्त्रार्चाविधिः) | ३९३-३९५ |
| पूजाप्रयोगः | ३९५-३९६ |
| पुरश्चरणम् | ३९६ |
| पूजा-ध्यान-होमतर्पणाद्युपायै-र्वश्य-मुष्टिस्तम्भन-विषरोगादिनाशन-नौकागजादिस्तम्भनोच्चाटनादिकर्मविधिः | ३९६-३९९ |
| अथ धूमावतीमन्त्रविधानम्—तत्र— | ३९९ |
| मन्त्रोद्धारः | ३९९ |

विषयः — पृष्ठ संख्या

ऋष्यादि-करडङ्गन्यासविधिः, ३९९
ध्यानम्पुरश्चर्या च ३९९-४००
मारणोच्चाटनविद्वेषकर्माणि तच्छान्तिश्च ४००-४०२
प्रतिमा (पुत्तली) विधानम् ४०२-४०३

[ एकोनपञ्चाशत्तरङ्गः—पृष्ठ-४०४-४५२ ]

दक्षिणकालिकामन्त्रविधानम्—
द्वाविंशाक्षरमन्त्रोद्धारः— ४०४
मन्त्रप्रशस्तिः ४०४-४०५
ऋष्यादि-कर-षडङ्गन्यासविधिः ४०५
कालीतन्त्रोक्तमृष्यादिन्यासविधानम् ४०६
वीरतन्त्रोक्तः षडङ्गन्यासः ४०६
कालीतन्त्रोक्तः षडङ्गन्यासः ४०६
फेत्कारिणीतन्त्रोक्तःसमस्ताङ्गन्यासविधिः ४०६
कुमारीकल्पोक्तः सर्वाङ्गन्यासः ४०६
ध्यानम् ४०६-४०७
यन्त्रन्तद्यजनविधिश्च ४०८-४०९
दक्षिणकालिकाप्रयोगः ४०९-४१०
दक्षिणकालिकागायत्रीमन्त्रस्तत्प्रशस्तिश्च ४१०
पूजने विशेषो विधिः ४११
शिखाबन्धनमन्त्रः, आसनशोधनमन्त्रः, ४११
पापापनोदनमन्त्रः, पादप्रक्षालनमन्त्रः, सर्वविघ्नोत्सारणमन्त्रश्च ४१२
भूमिशोधनमन्त्रो भूम्यभिमन्त्रणमन्त्रश्च ४१२
मृद्वचूडककोमलासनानि, मृतासनं विना ४१२
कालिकाजपे नरकावाप्तिः ४१२
मण्डलमन्त्रः, पुष्पाधिष्ठानमनुः, पुष्पजलाहरणमन्त्रश्च ४१३
कायवाक्चितशोधनमन्त्र आत्मरक्षणमन्त्रश्च ४१३
अन्तःपूजाविधिः (देहमयपीठपूजाविधिः) पीठन्यासमन्त्रश्च ४१३-४१८

विषयः | पृष्ठ संख्या


भावचूडामणिप्रोक्तो गुरुक्रमः ४१८
कालिकाया गुरुक्रमे दिव्यौघाः, सिद्धौघाः,
मानवौघाश्च गुरवः ४१८-४१९
दिव्यौघादिगुरूणामावासस्थानम् ४१९
मानवौघगुरूणान्नामान्ते आनन्दनाथेति शब्दयोजनं,
गुरुरूपाणां स्त्रीणां नामान्ते अम्बेतिशब्दयोजनञ्च ४१९
बलिपूजादिकर्मसु निशाकाल एवाक्षयफलदः ४१९
रात्रौ कौलिकस्य कृते पर्य्यटन-शक्तिपूजनयोरनिवार्यत्वम् ४२०

अथ काम्यबलिः—तत्र—
कालिकापुराणोक्तश्छागादिबलिनिवेदनविधिः ४२०
बलिमन्त्रद्वयम् ४२०-४२१
वाराहीसंहितोक्तो बलिदानविधिः ४२१-४२७
बलिपश्वादीनां लक्षणानि ४२१-४२२
पशुप्रोक्षणमन्त्रः खड्गपूजनन्तन्मन्त्राश्च ४२२-४२५
खड्गलक्षणम्, भेदने (बलिच्छेदने) क्षुरिका-कुठार-
परशुखण्डानान्निषेधोक्तिः ४२५
छेदने अधिकारितोक्तिः ४२५
बलिशीर्ष (मस्तक) पतनविचारः ४२५-४२६
शीर्षोपरि ज्वलद्दीपविचारः ४२६
ग्राह-कच्छप-गोधा-मत्स्यानाम्पक्षीणाञ्च शीर्षोपरि—
दीपदाननिषेधोक्तिः, दीपे घृतादिद्रव्यदानविचारो-
जपसंख्योक्तिश्च ४२६-४२७
जपस्थानविचारः, एकलिङ्गस्थानलक्षणञ्च ४२७
जपमालाविचारो ध्यानञ्च ४२७-४२८
वश्याकर्षणकर्मणि द्वाविंशाक्षरमंत्रे कामबाणबीजपञ्चक-
संयोजनविधिः ४२८
वश्यादिकाम्यकर्मविधिः ४२८-४३४

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| अथ शिवाबलिप्रकारः | ४३४-४३५ |
| दीपदानविधिः | ४३५-४३६ |
| कालीस्तोत्रम् (कर्पूरस्तवराजः) | ४३६-४३९ |
| जगन्मङ्गलन्नाम कवचम् | ४३९-४४२ |
| अथ श्रीदक्षिणकालिकाया मन्त्रभेदाः– | ४४३ |
| एकाक्षरो महामन्त्रः | ४४३ |
| एकविंशत्यक्षर-त्रयोविंशाक्षर-द्वाविंशाक्षर-विंशाक्षरमन्त्राः | ४४३ |
| सिद्धकालीमहाविद्यामन्त्रविधिः | ४४३-४४४ |
| महाकालीमहाविद्यात्र्यक्षरमन्त्रः | ४४५ |
| ब्रह्मोक्तः पञ्चाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४५ |
| त्रैलोक्यमोहिनीविद्यायाः षडक्षरो मन्त्रः | ४४५ |
| चतुर्व्वर्गफलप्रदोऽष्टाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४५ |
| ब्रह्मोक्त एकादशाक्षरीविद्यामन्त्रविधिः | ४४५-४४६ |
| दशाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४६ |
| विंशाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४७ |
| प्रकारान्तरेण विंशाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४७ |
| त्रिभुवनेश्वरीत्र्यक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४७ |
| अष्टाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४७ |
| पञ्चाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४७ |
| सर्वसम्पत्प्रदो नवाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४७ |
| सर्वशत्रुभयङ्करो नवाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४७-४८ |
| मोक्षदायिन्यष्टाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४८ |
| चतुर्व्वर्गफलप्रदश्चतुर्दशाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४८ |
| कल्पद्रुमोपमः षोडशाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४८ |
| मायातन्त्रोक्त एकादशाक्षरीमहाविद्यामन्त्रः | ४४८ |
| अथ विद्यामाहात्म्यम् | ४४८-४५० |
| अथ श्मशानकालिकाया एकादशार्णमन्त्रजपपूजाविधिः | ४५०-४५२ |
| श्मशानकालिकायाः सप्ताक्षरात्मा मन्त्रः | ४५२ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| गुह्यकालीमन्त्रः | ४५२ |
| [पञ्चाशत्तमस्तरङ्गः–पृष्ठ-४५३-५०५] | |
| भद्रकालीमन्त्रस्तद्विधिश्च | ४५३ |
| महाकालीचतुर्दशाक्षरमन्त्रस्तद्विधिश्च | ४५३-४५५ |
| भद्रकाल्या अष्टचत्त्वारिंशाक्षरो मन्त्रस्तद्विधिः, रुद्रदण्डप्रयोगविधिश्च | ४५५-४५८ |
| अथ ताराप्रकरणम्— | |
| तारापञ्चाक्षरीमन्त्रभेदाः | ४५८-४६१ |
| नीलसरस्वती-तारा-उग्रतारा-एकजटा-महानील-सरस्वती-कुल्लुकामन्त्राः | ४६१-४६२ |
| वसिष्ठशप्तोन्मुक्ता ताराविद्या | ४६२ |
| एकवीराकल्पोक्तस्तारापञ्चाक्षरो मन्त्रो वधूबीजलक्षणञ्च | ४६२ |
| ताराद्यपञ्चाक्षरीविद्योपासनायां द्विजानामेवाधिकारः | ४६२ |
| नीलसरस्वत्यभिधायास्ताराया:- | |
| मन्त्रध्यानम् | ४६३ |
| आचमनमन्त्रः | ४६३ |
| शिखाबन्धनमन्त्रः | ४६३ |
| अर्घ्यमन्त्रः | ४६३ |
| गायत्रीमन्त्रः | ४६३ |
| पादविशुद्धिमन्त्रः | ४६४ |
| विघ्नोत्सारणमन्त्रः | ४६४ |
| भूमिशोधनमन्त्रः | ४६४ |
| भूम्यभिमन्त्रणमन्त्रः | ४६४ |
| मण्डलारचनमन्त्रः | ४६४ |
| अपरो मण्डलारचनमन्त्रः | ४६४ |
| वाक्चित्तशोधनमन्त्रः | ४६४ |
| जलाभिमन्त्रणमन्त्रः | ४६४ |
| पुष्पाधिष्ठानमन्त्रः | ४६४ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| पुष्पोद्धरण-शोधनमन्त्रस्तत्परिग्रहमन्त्रश्च | ४६४-४६५ |
| एकजटात्मकयन्त्रोद्धारः | ४६५ |
| भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठाविधिः | ४६५ |
| मातृकान्यासविधिः | ४६६ |
| ताराषोढान्यासविधिः | ४६६ |
| षोढान्तर (गुह्यषोढा) न्यासविधिः | ४६६ |
| तारामहाषोढान्यासविधिस्तत्र— | |
| रुद्र-ग्रह-लोकपाल-शिवशक्तितारादि-पीठन्यासविधिः | ४६७-४६९ |
| वाग्रूपिणीन्यासविधिः | ४६९-४७० |
| ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासविधिः | ४७० |
| कामभेदेन ध्यानविधिः | ४७०-४७२ |
| पूजापीठार्चनविधिस्तत्र— | ४७२-४७६ |
| अर्घ्यगन्धपुष्पोपचारादिमन्त्राः | |
| तारागुरुक्रमः | |
| नैवेद्य-बलिमन्त्रश्च | |
| अथ तारापूजाप्रयोगः | ४७६-४८६ |
| अथ तारामन्त्रसाधनविधिः (पञ्चाङ्गपुरश्चर्याविधिः) तत्र— | ४८६-४८९ |
| जपमालाविचारः | ४८९ |
| हवनादिकार्येषु ग्राह्यद्रव्याणि | ४८९-४९० |
| कुल्लुकामन्त्रोद्धारः, | ४९०-४९३ |
| कवित्व-वश्यादिकाम्यविधिश्च | |
| शरणागतन्नाम तारास्तोत्रम् | ४९४ |
| ताराकवचम् | ४९५-४९७ |
| अथ ताराविद्याया मन्त्रभेदास्तत्र— | ४९७-४९९ |
| अष्टसिद्धिप्रदः पञ्चविंशत्यर्णो मन्त्रः | |
| नवाक्षरात्मको मन्त्रस्तद्विधिश्च | |
| वेदमातुरष्टाक्षरात्मको मन्त्रः | |
| द्रुतकवित्वप्रदः सप्तदशाक्षरात्मको मन्त्रः | |

विषयः पृष्ठ संख्या

नवाक्षरो हंसताराविद्यामन्त्रः ४९८
अथाऽस्याः पुरश्चरणभेदाः ४९९-५००
नवाक्षरीमहाविद्यामन्त्रजपादिविधिः ५००-५०५

[ एकपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः—पृष्ठ-५०६-५५२ ]

अथ चमत्कारिण्यो विद्यास्तत्र—
अमृतेश्वरीविद्याया वाक्प्रदः पञ्चाक्षरो मन्त्रस्तद्विधिश्च ५०६-५०७
दीर्घायुष्यप्रदाया मृत्युञ्जयाविद्याया मन्त्रस्तद्विधिश्च ५०७
त्रिपुटाविद्यामन्त्रस्तद्विधिश्च ५०८
गारुडीविद्यायास्त्रयोविंशार्णमन्त्रविधिः ५०८-५०९
अश्वारूढाविद्याया वश्यादिसिद्धिप्रदो दशाक्षरमन्त्रस्तद्विधिश्च ५०९-५१०
अन्नपूर्णामन्त्रविधिः ५१०-५११
नवात्मा मन्त्रः ५११
नवात्मिकामन्त्रः ५११
देवीहृदयविद्यायाःस्त्रीणां सद्यःफलप्रदश्चतुरक्षरमन्त्रविधिः ५११
गौरीविद्याया वश्यादीप्सितसिद्धिप्रदोद्वादशार्णमन्त्रविधिः ५१२
लक्षस्वर्णप्रदाविद्यायाः पञ्चदशाक्षरमन्त्रविधिः ५१२
निष्कत्रयप्रदाविद्याया द्वादशार्णमन्त्रविधिः ५१३
अभीष्टवादिनीविद्याया मन्त्रविधिः ५१३
मातङ्गिनीविद्यायाः सर्वाभीष्टप्रदो द्वादशार्णमन्त्रविधिः ५१३-५१४
राज्यलक्ष्मीविद्यायाः षोडशार्णमन्त्रविधिः ५१४
महालक्ष्मीविद्यायाः सप्तविंशार्णमन्त्रविधिः ५१४-५१५
सिद्धलक्ष्मीविद्यायाः समस्ताभीष्टदः सप्तदशार्णमन्त्रविधिर्यन्त्रप्रकारश्च ५१५-५१६
अथ परञ्ज्योतिर्विद्याविधानन्तत्र— ५१७

विषयः पृष्ठ संख्या


परञ्ज्योतिर्विद्यामन्त्रः ५१७
ऋष्यादि-षडङ्गन्यासविधिः ५१७-५१८
अथ परदेवतानिष्कलविधानन्तत्र— ५१८
ध्यानम्, ऋष्यादिः, षडङ्गन्यासश्च ५१८
यन्त्रन्तद्यजनविधिश्च ५१८-५१९
तत्प्रयोगः ५१९
अथ सञ्जीवनीविद्याविधानन्तत्र— ५१९
श्रीसञ्जीवनीविद्याया विंशत्यक्षरो मन्त्रः ५२०
तदृष्यादिः, षडङ्गन्यासः ५२०
भूर्जयन्त्रार्चाविधिः ५२०-५२१
अथ प्रयोगः— ५२१-५२२
पुरश्चरणविधिः ५२२
भैरवीसञ्जीवनी (मृत्युविनाशिनी) मन्त्रः ५२२-५२३
तदृष्यादिषडङ्गन्यासविधिः ५२३
यन्त्रन्तद्यजनविधिश्च ५२३-५२४
अथ प्रयोगः ५२४-५२५
पुरश्चरणम्


[ द्विपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः-पृष्ठ—५२६-५४६ ]


अथ वाराहीविधिस्तत्र— ५२६
स्तम्भनाद्यखिलेष्टदादशोत्तरशताक्षरीविद्यामन्त्रोद्धारः ५२६-५२८
ऋष्यादि-षडङ्गन्यासविधिः ५२९
यन्त्रन्तदर्चनविधिश्च ५२९
अथ प्रयोगः ५२९-५३०
पुरश्चरणम् ५३०
वश्यादिकाम्यप्रयोगविधिस्तत्र— ५३०
ध्यानजपेन वश्यादिविधिः ५३१-५३२
प्रसूनादिद्रव्योपचारैः काम्यपूजाविधिः ५३२-५३३

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| काम्यहोमविधिः | ५३३-५३४ |
| विषनाड्यादिकालविशेषोक्तिः | ५३४-५३५ |
| स्तम्भनादिकराष्टयन्त्रविधिर्विद्यावैभवञ्च | ५३५-५३८ |
| (१) शत्रुसेनास्तम्भनकृद्यन्त्रलेखनक्रमः | ५३९-५४० |
| (२) अरातिगत्यादिस्तम्भनकृद्यन्त्रलेखनक्रमः | ५४०-५४१ |
| (३) स्तम्भनकरयन्त्रान्तरलेखनक्रमः | ५४१-५४२ |
| (४) सर्वरोगशान्तिकरयन्त्रलेखनक्रमः | ५४२-५४३ |
| (५) स्तम्भनकरकोष्ठयन्त्रलेखनक्रमः | ५४३-५४४ |
| (६) समस्ताभीष्टफलप्रदमहावज्रयन्त्ररचनाक्रमः | ५४४ |
| (७) (१) वज्रवज्राभिधयन्त्रविलेखनक्रमः | ५४४-५४५ |
| (२) प्रोक्तसप्तयन्त्रेषु विद्याप्राप्त्यभिषेके यन्त्रत्रयलेखनक्रमः | ५४५ |
| (८) अखिलविनियोगसिद्धिप्रदयन्त्रविलेखनक्रमः | ५४६ |
| **[ अथ त्रिपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः–पृष्ठ–५४७-५६१ ]** | |
| अथ कुरुकुल्लाविधानन्तत्र– | ५४७ |
| रत्नपोतचारिण्याः कुरुकुल्लायाः सप्ताक्षरी-त्रयोदशाक्षरी-पञ्चविंशाक्षरीविद्यामनुत्रयोपदेशः | ५४७-५४८ |
| कुरुकुल्लायाः समर्चनविधिस्तत्र— | ५४८-५४९ |
| तत्तन्मन्त्रोपदेशो नित्यपूजाबल्युक्तिश्च | ५४९-५५० |
| ताराशक्तेर्दशाक्षरीविद्यामन्त्रेण बलिदानोपदेशः | ५५० |
| ध्यानम् | ५५० |
| अथ तत्प्रयोगः– | ५५०-५५२ |
| पुरश्चरणम् | ५५२ |
| काम्यप्रयोगविधिस्तत्र– | ५५२ |
| वश्याद्यभीष्टसिद्धये सर्षपादिद्रव्यैर्होमविधिः | ५५२-५५३ |
| उत्पलादिपुष्पगन्धादिभिः पूजाविधिः | ५५३-५५४ |
| पूजा-धारण-स्थापनादियन्त्रविधिस्तत्र— | ५५४ |
| नवयोनियन्त्ररचनाविधिस्तत्क्रमश्च | ५५४-५५५ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| कोष्ठवज्रयन्त्रविरचनविधिस्तत्क्रमश्च | ५५५-५५६ |
| त्रिविधविषनाशनयन्त्ररचनाविधिस्तत्क्रमश्च | ५५६-५५७ |
| यन्त्राष्टकयन्त्ररचनाविधिस्तत्क्रमश्च | ५५८-५६० |
| एकविंशत्यधिकशतकोष्ठरूपवज्रयन्त्रविधि-स्तद्रचनाक्रमश्च | ५६०-५६२ |
| [अथ चतुःपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः—पृष्ठ—५६३-५७५] | |
| अथ यक्षिणीविधानन्तत्र— | ५६३ |
| धनदायक्षिण्या नवार्णमन्त्रविधिस्तत्प्रयोगश्च | ५६३-५६४ |
| पुरश्चरणम्, दारिद्र्यशमनप्रयोगविधिश्च | ५६५ |
| वसन्ततिलकायक्षिण्या एकादशाक्षरो मन्त्रः | ६६५ |
| ऋष्यादिर्ध्यानञ्च | ५६६ |
| पूजास्थानोक्तिर्यन्त्रञ्च | ५६६ |
| अर्चनविधिर्जपकालावधिनिर्देशश्च | ५६६ |
| सिद्धिलक्षणोक्तिः (प्रत्यक्षदर्शनसङ्केतः) | ५६६-५६७ |
| सुरसुन्दरीयक्षिण्याः प्रातःकृत्यम्, षडङ्गन्यासश्च | ५६७ |
| यन्त्रन्तदर्चाविधिश्च | ५६७-५६८ |
| सुरसुन्दरीयक्षिण्याः पञ्चदशाक्षरो मन्त्रः | ५६८ |
| तज्जपविधिस्तत्फलनिर्देशः, अन्यस्त्रीगमननिषेधश्च | ५६९-५७० |
| मनोहरायक्षिण्या एकादशाक्षरमन्त्रविधानम् | ५६९-५७० |
| कनकवतीयक्षिणीमहाविद्यामन्त्रविधानम् | ५७०-५७१ |
| कामेश्वरीयक्षिणीमन्त्रविधिः | ५७१-५७२ |
| पद्मिनीयक्षिणीमन्त्रविधिः | ५७२-५७३ |
| विश्वामित्रसाधितानटिनीमहाविद्यायक्षिणीमन्त्रविधानम् | ५७३-५७४ |
| मधुमतीमहाविद्यायक्षिणीमन्त्रविधिः | ५७४-५७५ |
| साधन-कालाधिकारिनिर्णयः | ५७५ |
| [अथ पञ्चपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः—पृष्ठ-५७६-५९४] | |
| अथ गायत्रीविधानन्तत्र— | ५७६ |
| गायत्रीमन्त्रः, ऋष्यादिः, व्याहृतिभिः षडङ्गन्यासश्च | ५७६ |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| व्याहृतीनां ध्यानम् | ५७६-५७७ |
| गायत्र्या ऋष्यादिस्तनुन्यासश्च (अक्षरन्यासश्च) | ५७७ |
| गायत्रीपदन्यासः | ५७७ |
| गायत्रीषडङ्गन्यासो ध्यानम्प्राणायामश्च | ५७७ |
| गायत्रीयन्त्रन्तदर्चाविधिश्च | ५७८ |
| अथ प्रयोगः पुरश्चरणञ्च | ५७८-५८० |
| काम्यप्रयोगविधिः | ५८०-५८१ |
| चतुर्व्वर्गफलसिद्धिदं यन्त्रम् | ५८१ |
| त्रिष्टुब्मन्त्रविधिः (आग्नेयास्त्रविधिः) तत्र— | ५८१ |
| त्रिष्टुब्मन्त्रः, ऋष्यादिश्च | ५८१ |
| षडङ्गन्यासविधिः | ५८२ |
| वर्णन्यासः पदन्यासो ध्यानञ्च | ५८२ |
| यन्त्रम् (मण्डलम्) तदर्चाविधिश्च | ५८२-५८३ |
| अथ प्रयोगः | ५८३-५८५ |
| पुरश्चर्याविधिः | ५८५ |
| आग्नेयास्त्रमन्त्रः | ५८५ |
| ऋष्यादिः षडङ्गन्यासादिविधिश्च | ५८५ |
| पादाष्टकजपविधिः | ५८६ |
| पादविभागविधिः | ५८६ |
| पादाक्षरदेवताध्यानम् | ५८६ |
| मन्त्रप्रयोगसंहारविधिः | ५८६ |
| नक्षत्राणान्देवताऽसुरमानुषभेदाः | ५८६-५८७ |
| काम्यहोमतर्पणविधिः | ५८७-५९० |
| अतिदुर्गामन्त्रः | ५९० |
| गाणिदुर्गामन्त्रः | ५९० |
| विश्वदुर्गामन्त्रः | ५९० |
| सिन्धुदुर्गामन्त्रः | ५९० |
| अग्निदुर्गामन्त्रः | ५९० |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| होमविधिः | ५९१ |
| सिकताप्रयोगविधिः | ५९१-५९२ |
| प्रयोगः | ५९२-५९४ |
| एकोनपञ्चाशत्कोष्ठयन्त्रलेखनविधिः | ५९४ |
| नवकोष्ठयन्त्रलेखनविधिः | ५९४ |

[ अथ षट्पञ्चाशत्तमस्तरङ्गः–पृष्ठ सं० ५९५-६२४ ]

| | |
|---|---|
| अथ दिनास्त्र-कृत्यास्त्रविधानम्— | ५९५ |
| अतिदुर्गामन्वाख्यो दिनास्त्रमन्त्रः | ५९५ |
| कृत्यास्त्रमन्त्रः | ५९५ |
| दिनास्त्रमन्त्रप्रयोगविधिः | ५९५-५९७ |
| रात्रिकृत्यविधिः | ५९७-५९८ |
| पुत्तलीप्रयोगविधिः | ५९८-५९९ |
| कृत्यास्त्रमन्त्रप्रयोगविधिः | ५९९ |
| पुत्तलीप्रयोगविधिः | ५९९-६०२ |
| त्र्यम्बकशताक्षरमन्त्रविधिः | ६०२-६०३ |
| तत्प्रयोगः | ६०३-६०४ |
| तत्पुरश्चरणम् | ६०४ |
| दीर्घायुष्करादिनानाप्रयोगविधिः | ६०५ |
| धारण-स्थापनयन्त्रविधिः | ६०५-६०६ |
| वारुणीऋग्विधानम् | ६०६ |
| ध्रुवास्वाद्येत्यृङ्मन्त्रः | ६०६ |
| तदृष्यादिन्यासविधिः | ६०७ |
| ध्यानन्तदर्चनविधिश्च | ६०७ |
| तत्प्रयोगः | ६०७-६०८ |
| पुरश्चरणम् | |
| ऋणमोचनश्र्याप्त्यादिकाम्यप्रयोगविधिः | ६०८-६०९ |
| अयःपाशादि(निगडादि)स्फोटनविधिः | ६०९ |

| विषय; | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| काम्यधारणयन्त्रविधिः | ६०९ |
| परऋगोत्यृङ्मन्त्रः | ६१० |
| अथ लवणमन्त्रविधानम् | ६१० |
| ऋग्रञ्चकात्मको लवणमन्त्रः | ६१० |
| ऋष्यादिः | ६१०-६११ |
| षडङ्गन्यासादिः | ६११ |
| चिटिमन्त्रः | ६११ |
| अग्निध्यानम् | ६११ |
| यामवतीध्यानम् | ६११ |
| दुर्गाध्यानम् | ६११ |
| भद्रकालीध्यानम् | ६११-६१२ |
| पुरश्चरणम् | ६१२ |
| वश्यादिकाम्यप्रयोगविधिः | ६१२-६१३ |
| पञ्चपुत्तलोप्रयोगविधिः | ६१३ |
| यामवतीमन्त्रः | ६१४ |
| दुर्गामन्त्रः | ६१४-६१५ |
| भद्रकालीमन्त्रः | ६१५-६१६ |
| ज्वरोन्मादग्रहपीडादिनाशनयन्त्रविधानम् | ६१६-६१७ |
| पिशङ्गभृष्टयाद्यृङ्मन्त्रः | |
| रक्षोहणं वाजिनमित्यृङ्मन्त्रः | |
| अया त अग्र इत्यृङ्मन्त्रः | |
| ऋक्त्रयाणामृष्यादिः | |
| कृत्याभिभवनिर्मोचनयन्त्रविधानम् | ६१७ |
| नृसिंहबीजमन्त्रः | ६१७ |
| प्रत्यङ्गिरामन्त्रस्तदृष्यादिश्च | ६१८ |
| ग्रहोन्मादज्वरकृत्याद्युपद्रवनाशनयन्त्रविधिः | ६१८ |
| कृणुष्वपाजेति पञ्चदशर्चसूक्तमन्त्रः | ६१९ |
| विज्योतिषेत्यृङ्मन्त्रस्तदृष्यादिश्च | ६२० |

| विषयः | पृष्ठ संख्या |
| --- | --- |
| र्वसमृद्धिदं 'इन्द्रश्रेष्ठानि' मन्त्रयन्त्रविधानम् | ६२०-६२१ |
| इन्द्रश्रेष्ठानीत्यृङ्मन्त्रस्तदृष्यादिश्च | ६२१ |
| सर्वसमृद्धिप्रद-बलनिषूदनयन्त्रविधानम् | ६२१ |
| विशिष्टरत्नगोधरादिसर्वसम्पत्प्रदयन्त्रविधानम् | ६२२ |
| वयन्तः एभिरित्यृङ्मन्त्रस्तदृष्यादिश्च | ६२२ |
| यन्त्रसाधनविधिस्तत्प्रयोगश्च | ६२२-६२४ |
| यन्त्रगायत्रीमन्त्रः | ६२४ |

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टप्रणीतः

# सिंहसिद्धान्तसिन्धुः

## ( तृतीय : खण्डः )

### [सप्तत्रिंशस्तरङ्गः]

**शारदातिलके—**

अथ त्रैयम्बकम्मन्त्रमभिधास्याम्यनुष्टुभम् ।
यम्भजन्तन्नरं कालः स्वयं वीक्षितुमक्षमः ।।१।।

**सारसङ्ग्रहे—**

भुजङ्गेशसमारूढा[1] पूतना वसुधेन्दुयुक् ।
वकं यजामहेत्युक्त्वा सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ।।२।।

उर्वारुकमिव प्रोक्त्वा बन्धनान्मृपदं वदेत् ।
त्योर्मुक्षीयपदम्ब्रूयान्मामृतादित्युदीरयेत् ।।३।।

त्रैयम्बकमनुः प्रोक्तो भजताम्मृत्युनाशनः ।

भुजङ्गेशो रेफः, तदारूढा पूतना-तकारः, इन्दुरनुस्वारः, एतैः त्र्यं इति । अन्यानि पदानि स्वरूपाणि ।

**मन्त्रनिरुक्तिमाह वसिष्ठः—**

अतः परम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रस्याऽर्थं समासतः ।
तिस्रो देव्योऽयुतं चैतं सृजते लोकमातरः ।।४।।

द्यौरापः पृथिवी चेति तस्मात् त्र्यम्बक उच्यते ।
यद्वाऽम्बकानि चक्षूंषि त्रीण्यस्येति त्रयम्बकः ।।५।।

---

1. क० भुजङ्गेस० ।

त्रिलोचनं त्रिलोकेशन्तं वयम्पूजयामहे ।
यो लोके दृश्यते गन्धः शोभनः सर्ववस्तुषु ॥६॥

स सर्वोऽस्य देवस्य सुगन्धिः कथ्यते ततः ।
अथवा शोभनैर्गन्धैः पुष्पैश्चापि मनोहरैः ॥७॥

धूपदीपादिभिश्चैवम्पूजनीयो महेश्वरः ।
सर्वेषामेव देवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥८॥

उपासकानां सर्वेषाम्पुष्टिहेतुरुमापतिः ।
उर्वारुकमथापक्वं[1] स्वयम्मुच्येत बन्धनात् ॥९॥

अहमेवम्प्रसादेन[2] देवदेवस्य शूलिनः ।
अनायासेन मुच्येयम्मृत्योर्लोकभयङ्करात्[3] ॥१०॥

ततः प्रार्णामृतन्देवन्तमेव परमेश्वरम् ।
मा भवन्तद्वियुक्तोऽहमिति मन्त्रार्थयोजना ॥११॥

एवं विदित्वा मन्त्रार्थमृषिच्छन्दोऽधिदैवतम् ।
जपहोमादि कर्त्तव्यं साक्षान्मृत्युञ्जयार्थिना ॥१२॥

यस्मादनेन मन्त्रेण मृत्युञ्जयति मानवः ।
मृत्युञ्जयस्ततः प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१३॥

अनेनैव तु मन्त्रेण पूर्वे ब्रह्मादयोऽमलाः ।
मृत्युं विजित्य सम्प्राप्ता ऐश्वर्यमणिमादिकमिति ॥१४॥

**शारदातिलके—**

वसिष्ठोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवताऽस्य समुद्दिष्टस्त्र्यम्बकः पार्वतीपतिः ॥१५॥

---

१. ख. उर्वारुकं यथा पक्वं । २. ख. अहमेव प्रसादेन । ३. मृत्युर्लोकभयङ्करात् ।

**वसिष्ठः—**

अग्नये हृदयायेति नमोऽन्तो हृदये स्थितः ।
त्रियम्बकाय शिरसे स्वाहान्तं शिरसि न्यसेत् ।।१६।।

त्रिनेत्राय शिखायै वषडन्तश्च शिखां स्पृशेत् ।
वसिष्ठायेति कवचं "हुमन्तं कवचे न्यसेत्"[1] ।।१७।।

नेत्रत्रयेऽग्निदीर्घाय वौषडन्तमुदाहृतम् ।
रुद्रदैवतङ्ऽस्त्राय फडित्यस्त्रमुदाहृतम् ।।१८।।

प्रागाद्यासु चतुर्दिक्षु दिगस्त्रं कारयेत् क्रमात् ।
दुर्गां विनायकं चैव नन्दिनं[2] क्षेत्रपालकम् ।।१९।।

एते दिग्बन्धमन्त्राः स्युर्मन्त्रतोऽयमुदाहृतः[3] ।
अथवैतस्य मन्त्रस्य वर्णतोऽङ्गानि कल्पयेत् ।।२०।।

**शारदातिलके—**

विभक्तैर्मन्त्रवर्णैः स्यात् षडङ्गानाम्प्रकल्पना ।
हृदयं त्रिभिराख्यातञ्चतुर्भिश्शिर ईरितम् ।।२१।।

शिखाऽष्टभिः समुद्दिष्टा नवभिः कवचम्मतम् ।
पञ्चभिर्नेत्रमाख्यातमस्त्रं त्रिभिरुदाहृतम् ।।२२।।

पूर्वपश्चिमयाम्येन्दुवक्त्रेषु तदनन्तरम् ।
उरोगलास्येषु पुनर्नाभिहृत्पृष्ठकुक्षिषु ।।२३।।

लिङ्गपायूरुमूलान्तजानुयुग्मेषु तत्परम् ।
तद्वृत्तयुग्मे[4] स्तनयोः पार्श्वयोः पादयोः पुनः ।।२४।।

पाण्योर्नासिकयोः शीर्षे मन्त्रवर्णान्न्यसेत् क्रमात् ।
पदान्येकादश न्यस्येच्छिरोभ्रूयुगलाक्षिषु ।।२५।।

---

1. "—" चिह्नान्तर्गतोंशः क. पुस्तके नास्ति । 2. ख. नन्दीशं । 3. क० मुदाहृताः ।
4. ख. तद्वृत्तमुग्मे ।

वक्त्रे गण्डयुगे भूयो हृदये जठरे पुनः ।
गुह्योरुजानुपादेषु न्यासमेवं समाचरेत् ।।२६

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यान्तौ दधतम्मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तम्परम् ।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटङ्कैलाशकान्तं शिवं,
स्वच्छाम्भोजगतन्नवेन्दुमुकुटं देवन्त्रिनेत्रम्भजे ।।२७।।

पञ्चाक्षरोदिते पीठे पूजयेद् वृषभध्वजम् ।
मूर्त्तिम्मूलेन सङ्कल्प्य वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।।२८।।

पूर्वमङ्गानि सम्पूज्य पश्चान्मूर्त्तीः प्रपूजयेत् ।
अर्क्केन्दुवसुधातोयवह्नीरवियदात्मनः ।।२९।।

आत्मा यजमानः ।

द्वितीयावरणे पूज्या मूर्त्तयोऽष्टाविमाः क्रमात् ।
रमा राका प्रभा ज्योत्स्ना पूर्णोषा पूरणी सुधा ।।३०।।

अष्टाविमाः क्रमात्पूज्यास्तृतीयावरणे ततः ।
विश्वा विद्या सिता प्रह्वा सारा सन्ध्या शिवा निशा ।।३१।।

चतुर्थावरणे पूज्याः शक्तयोऽष्टौ क्रमादिमाः ।
आर्या प्रज्ञा प्रभा मेधा शान्तिः कान्तिर्धृतिर्मतिः ।।३२।।

पञ्चमावरणे पूज्याः क्रमादेतास्ततः परम् ।
धरोमा[1] पार्वती पद्मा शान्ता मेधा जया मता ।।३३।।

षष्ठावरणगाः[2] पूज्या लोकपालास्ततः परम् ।
सप्तमावरणे पूज्यास्तदस्त्रैरष्टमावृतिः ।।३४।।

अर्क्केन्दुवसुधातोयवह्नीरवियदात्मन इति ।

---

1. ख. परोमा । 2. ख. त्रिमूर्त्तिवशगाः ।

अर्क्कमूर्त्तिरीशानः, इन्दुमूर्त्तिर्महादेवः, वसुधामूर्त्तिर्भवः, तोयमूर्त्तिः शर्वः, वह्निमूर्त्ती रुद्रः, ईश्वरमूर्त्तिरुग्रः, वियन्मूर्त्तिर्भीमः, यजमानमूर्त्तिः पशुपतिः । अत्र प्रमाणन्तु जगत्प्रसिद्धः पौराणिकः पूजाक्रमः । अत्र केचित्—शर्वः क्षितिमूर्त्तिर्भवो जलमूर्त्तिरित्याहुः । तन्न । यथा क्षितितोयादीनां[1] भूतानाङ् क्रमस्तथा भवादिमूर्त्तीनामपि क्रमो वेदागमेषु प्रसिद्धः । तथा च—

**श्रुतिः**— 'भवाय देवाय नमः शर्वाय देवाय नम' इत्यादि । आगमेऽपि **श्रीकुलार्णवे** महाषोढान्यासे मूर्त्तिन्यासप्रकरणे—

'भवञ्च करभद्राञ्च शर्वं खगवलामपि'

इत्यादिक्रमश्चोक्तः । अत एव तदसङ्गतमिति ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि- "वसिष्ठाय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि—श्रीमृत्युञ्जयाय देवतायै नम" इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा—

"ओम् अग्नये हृदयाय नमः, ॐ त्र्यम्बकाय शिरसे स्वाहा, त्रिनेत्राय शिखायै वषट्, वसिष्ठाय कवचाय हुम्, अग्निवीर्याय नेत्राय वौषट्, रुद्रदैवतायाऽस्त्राय फडि" ति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं कृत्वा, "दुँ दुर्गायै नमः, गँ गणपतये नमः, नँ नन्दिने नमः, क्षँ क्षेत्रपालाय नमः" इति पूर्वादिचतुर्दिक्षु दिग्बन्धक्रमेण न्यसेत् ।

अथवा "त्र्यम्बकं हृदयाय नमः, यजामहे शिरसे स्वाहा, सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनं शिखायै वषट्, उर्व्वारुकमिव बन्धनात् कवचाय हुँ, मृत्योर्मुक्षीय नेत्राय वौषट्, मामृतात् फडि" ति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं कृत्वा—

"मुखे पूर्ववक्त्रे—त्र्यं नमः, चूडाधः पश्चिमवक्त्रस्थाने—बं नमः, दक्षिणवक्त्रे कर्णस्थाने—कं नमः, वामकर्णे उत्तरवक्त्रस्थाने—यं नमः, उरसि—जाँ नमः, गले—मं नमः, मुखे—हें नमः, नाभौ—सुं नमः, हृदि—गं नमः, पृष्ठे—धिं नमः, कुक्षौ—पुं नमः, लिङ्गे—ष्टिं नमः, पायौ—वं नमः, दक्षोरुमूले—र्धं नमः, वामोरुमूले—नं नमः, दक्षोरौ—ॐ नमः, वामोरौ—र्वां नमः,

1. क. क्षितियादीयां ।

दक्षजानुनि—रुँ नमः, वामे—कँ नमः, दक्षजानुवृत्ते—मिं नमः, वामे—वँ नमः, दक्षस्तने—बं नमः, वामे—धं नमः, दक्षपार्श्वे—नां नमः, वामे—न्मृं नमः, दक्षपादे—त्यों नमः, वामे—र्मुं नमः, दक्षिणपाणितले—क्षीं नमः, वामे यं नमः, दक्षनासायां, मां नमः—वामायां—मृं नमः, शिरसि—तात् नमः" इति वर्णान् विन्यस्य, शिरसि—त्र्यम्बकं नमः, भ्रूयुगे—यजामहे नमः, नेत्रयोः—सुगन्धि नमः, मुखे—पुष्टिवर्द्धनं नमः,गण्डद्वये—उर्वारुकं, हृदि—इव नमः, जठरे—बन्धनात् नमः, गुह्ये—मृत्योः नमः, ऊरुद्वये—मुक्षीय नमः, जानुनोः—मा नमः, पदयोः—अमृतात् नमः," इति मन्त्रपदानि विन्यस्य,

ध्यानाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तं शैवम्पीठं सम्पूज्य, तत्र देवमावाह्य, पुष्पान्तानुपचारान् कृत्वा, प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्याष्टदलेषु देवाग्रदलमारभ्य[1] प्रादक्षिण्येन "ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः, महादेवाय सोममूर्त्तये नमः, भवाय क्षितिमूर्त्तये०, शर्वाय जलमूर्त्तये०, रुद्रायाग्निमूर्त्तये०, उग्राय वायुमूर्त्तये०, भीमायाऽऽकाशमूर्त्तये०, पशुपतये यजमानमूर्त्तये नम" इति सम्पूज्य, दलाग्रेषु । —"रसायै नमः, राकायै०, प्रभायै०, ज्योत्स्नायै०, पूर्णायै०, उषायै०, पूरण्यै०, सुगन्धायै नमः" ।

ततो द्वितीयाष्टदलमूलेषु स्वाग्रादारभ्य—'विश्वायै नमः, विद्यायै०, सितायै०,प्रह्वायै०, सारायै०, सन्ध्यायै०, शिवायै०, निशायै नम" इति सम्पूज्य,

दलेषु[2]—"आर्यायै नमः, प्रज्ञायै०, प्रभायै० मेधायै०, शान्त्यै०, कान्त्यै०, धृत्यै०, मत्यै नमः" इति सम्पूज्य,

तद्दलाग्रेषु "धरायै[3] नमः, उमायै०, पावन्यै०,[4] पद्मायै०, शान्तायै०, अमोघायै०,[5] जयायै० अमलायै[6] नमः' इति सम्पूज्य,

प्राग्वच्चतुरस्रवीथीद्वये लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपदीपादि सर्वम्प्राग्वत्कृत्वा समापयेदिति । तथा—

जपेन्मन्त्रमिमं लक्षमेवं ध्यायन् जितेन्द्रियः ।
जुहुयाद्दशभिर्द्रव्यैरयुतं घृतसम्प्लुतैः ।।३५ ।।

---

1. क. देवाग्रमारभ्य । 2. ख. तद्दलेषु । 3. 4. 5. ६. एषां स्थाने सूत्रे क्रमशः धरायै, पार्वत्यै, मेधायै, मतायै इति पाठो दृश्यते ।

बिल्वं पलाशं खदिरं वटञ्च तिलसर्षपौ ।
दौग्धं दुग्धं दधि पुनर्दूर्वान्तानि विदुर्बुधाः ।।३६।।

सहस्रमेकैकद्रव्येण । दौग्धम्पायसम् ।

तर्प्पयित्वाऽभिषिच्याऽथ ब्राह्मणांस्तोषयेद्गुरुम् ।
एवङ्कृते प्रयोगार्हो जायतेऽयम्महामनुः ।।३७।।

**वसिष्ठकल्पे—**

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
आत्मार्थञ्जपहोमादि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।।३८।।

परार्थमपि कुर्वीत ब्राह्मणो[1] मन्त्रवित्तमः ।
दातव्या दक्षिणा तत्र यथा तुष्येद् द्विजोत्तमः ।।३९।।

आत्मार्थं वा परार्थं वा न कुर्यादितरो जनः ।
यदि कुर्याज्जपादीनि लोभादज्ञानतोऽपि वा ।।४०।।

त्रयीसारेण मन्त्रेण स्वयमेव विनश्यति ।
आमपात्रे यथा न्यस्तम्पयो दधि घृतम्मधु[2] ।।४१।।

तस्य पात्रस्य दौर्बल्यात् सह पात्रेण नश्यति ।
एवम्मन्त्रं त्रयीसारं यद्यन्यो धारयेन्नरः ।।४२।।

क्षिप्रं विनाशमायाति स मन्त्रो निष्फलो भवेत् ।
तस्मादाचार्यतो लब्ध्वा चीर्णदेवव्रतो द्विजः ।।४३।।

मृतसञ्जीवनीं विद्यां गोपयेत्ताम्प्रयत्नतः ।
अनया विद्यया विप्र सर्वकार्याणि साधयेत् ।।४४।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यमपमृत्युजयन्तथा । इति ।
पराभिचारणञ्चैवाऽकालमृत्युनिवर्त्तनम् ।।४५।।

वश्याकर्षणविद्वेषमारणोच्चाटनन्तथा[3] ।
पुत्रलाभञ्च तद्वृद्धिं वृष्टचवृष्टिनिवारणम् ।।४६।।

---

१. ख. ब्राणो । २. ख. कृतम्मधु । ३. क० णोच्चटन० ।

गजवाजिखरोष्ट्राणां शान्तिकर्माणि सर्वशः ।
प्रतीकारञ्च सर्वेषान्नाशनं व्याधिरक्षसाम् ।।४७।।

अन्यान्यपि च कार्याणि सर्वाण्येतानि साधयेत् ।
यस्य मन्त्रस्य यः प्रोक्तो विनियोगो महर्षिभिः ।।४८।।

सर्वमन्त्रेषु तत्सर्वमनेनैव तु कारयेत् ।
किमत्र बहुनोक्तेन मनसा यद्यदिच्छति ।।४९।।

तत्फलं समवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।
नक्षत्राणि प्रवक्ष्यामि[1] आरम्भे सर्वकर्मणाम् ।।५०।।

आर्द्रायां सर्वकर्माणि आयुष्यं वैष्णवे तथा ।
शान्तिम्पराभिचरण[2]-मपमृत्युजयन्तथा ।।५१।।

त्रिषूत्तरासु पूर्वासु जन्मर्क्षेष्वपि च त्रिषु ।
सम्पत्सिद्धिञ्च मन्त्रेषु सर्वेष्वपि च कारयेत् ।।५२।।

विद्वेषोच्चाटनादीनि क्रूरकर्माणि कारयेत् ।
नक्षत्रेषु च क्रूरेषु कृत्वा सिद्धिं गमिष्यति ।।५३।।

### ।। अथ काम्यन्यासः ।।

**वसिष्ठकल्पे—**

अथ न्यासविधिं वक्ष्ये मन्त्रस्याऽस्य महामुने ।
तानि देवास्त्रयस्त्रिंशदिति शास्त्रेषु निश्चयः ।।५४।।

आदावष्टौ वसून् विद्याद्रुद्रानेकादशोत्तरान् ।
ततः[4] स्युर्द्वादशादित्याः प्रजापतिरनन्तरम् ।।५५।।

---

1. क० प्रवक्ष्यामि ।     2. ख० पराभिचाराणा० ।     3. क० ख० ततो ।

वषट्कारोऽन्तिमः प्रोक्तः सर्वाक्षरमयशिवः ।
ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोऽनलः ।।५६।।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।
वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरीशश्चाऽज एकपात् ।।५७।।

अहिर्बुध्न्यःपिनाकी च भुवनाधीश्वरस्ततः ।
कपाली दिक्पतिः स्थाणुर्भगो रुद्राः प्रकीर्त्तिताः ।।५८।।

धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशुर्भगस्तथा ।
विवस्वानिन्द्रपूषाख्यौ पर्ज्जन्यस्तदनन्तरम् ।।५९।।

त्वष्टा विष्णुरिति प्रोक्ता आदित्या द्वादश क्रमात् ।
एवमेतानि रूपाणि देवानाङ्कल्पितानि वै ।।६०।।

अक्षराणि न्यसेन्मन्त्री सर्वाङ्गेषु समाहितः ।
मूर्द्धादिपञ्चदक्त्रेषु प्रथमम्पञ्चकन्न्यसेत् ।।६१।।

दक्षिणस्य करस्यापि पञ्चस्थानेषु पञ्च वै ।
तत्तस्य देवतां ध्यात्वा न्यसेतपञ्चाक्षराण्यतः ।।६२।।

ततः पराणि पञ्चैव वामहस्ते न्यसेत्क्रमात् ।
ततस्तु दक्षिणे पादे सन्धिस्थानेषु पञ्चसु ।।६३।।

पराणि पञ्च विन्यस्य वामपादे तथा न्यसेत् ।
ततश्च दक्षिणे पार्श्वे वामपार्श्वे न्यसेत् क्रमात् ।।६४।।

पृष्ठे नाभौ च गुह्ये च मुक्षीयेति त्रयन्न्यसेत् ।
भ्रुवोर्मध्ये परगले हृदये मामृतान्न्यसेत् ।।६५।।

एवं विन्यस्य सर्वाङ्गे ततोऽन्ते प्रणवन्न्यसेत् ।
यस्याङ्गेषु न्यसेदेवम्मन्त्री मन्त्रसमाहित ः ।।६६।।

तस्य मृत्युभयन्नास्ति न च व्याधिकृतम्भयम् ।
एवमेतेन रौद्रेण कवचेनाऽभिरक्षितम् ।।६७।।

वेतालाश्च पिशाचाश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
पराभिचारकृत्याश्च ये चान्ये च ग्रहादयः ।।६८।।

एनन्द्रष्टुन्न शक्तास्ते साक्षान्मन्त्रशरीरिणम् ।
एतद्रहस्यम्परमं साक्षाद्देवान्मया श्रुतम् ।।६९।।

### ।। अथर्तन्न्यासप्रयोगः ।।

तत्र"शिरसि—त्रिं ध्रुवाय नमः, मुखे—यं धराय०, दक्षकर्णे—वं सोमाय०, वामे—कं आपाय०, चूडाधः—यं अनिलाय०, दक्षबाहुमूले—जां अनलाय०, तन्मध्ये—मं प्रत्यूषाय०, तन्मणिबन्धे—हें प्रभासाय०, तदङ्गुलीमूले—सुं[1] वीरभद्राय०, तदग्रे—गं शम्भवे०, वामबाहुमूले—धिं गिरीशाय०, तन्मध्ये—पुं अज एकपदे०, तन्मणिबन्धे—ष्टिं अहिर्बुध्न्याय०, तदङ्गुलिमूले—वं पिना-किने०, तदग्रे—र्धं भुवनाधीश्वराय०, दक्षोरुमूले—नं कपालिने०, तज्जानुनि—उँ विशाम्पतये०, तद्गुल्फे—र्वां स्थाणवे[2]०, तदङ्गुलिमूले—रुं भीमाय०, तदग्रे—कं धात्रे०, वामोरुमूले—मिं अर्यम्णे०, तज्जानुनि—वं मित्राय०, तद्गुल्फे—बं वरुणाय०, तदङ्गुलिमूले—धँ अंशवे०, तदग्रे—नात् भगाय०, दक्षपार्श्वे—मृं विवस्वते[3]०, वामे—त्यों इन्द्राय०, पृष्ठे—र्मुं पूष्णे०, नाभौ—क्षीं पर्ज्जन्याय०, गुह्ये—यं त्वष्ट्रे०, भ्रूमध्ये—मां विष्णवे०, अपरगले—मृं प्रजापतये०, हृदये—तात्[4] वषट्काराय नम" इति विन्यस्य सर्वाङ्गे व्यापकन्न्यसेत् ।

**शारदातिलके—**

अयुतञ्जुहुयाद्बिल्वसमिद्भिः सम्पदे सुधीः ।
जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षस्य समिद्भिर्ब्रह्मतेजसे ।।७०।।

खादिरैरयुतं हुत्वा कान्तिम्पुष्टिमवाप्नुयात् ।
वटवृक्षस्य समिधो जुहुयादयुतावधि ।।७१।।

धनधान्यसमृद्धः[5] स्यादचिरेणैव साधकः ।
तिलैस्तत्संख्यया हुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।७२।।

---

1. ख० सं । 2. क० स्थानवे । 3. ख० विवश्वते । 4. क० तारु । 5. क० ०समृद्धिः ।

सिद्धार्थैरयुतं हुत्वा शत्रून् विजयते नृपः ।
अनेनैव विधानेन नश्येन्मृत्युरकालतः ।।७३।।

पायसेन कृतो होमो रक्षाश्रीकीर्त्तिकान्तिदः ।
गोदुग्धेन सिद्धान्नं हुत्वा कृत्यां विनाशयेत् ।।७४।।

अयमेव मतो होमः शान्तिश्रीसम्पदावहः ।
दधिहोमेन संवादं कुर्याद्विद्वेषिणोर्मिथः ।।७५।।

प्रत्यहञ्जुहुयान्मन्त्री दूर्वामिष्टोत्तरं शतम् ।
आमयानखिलाञ्जित्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात्[1] ।।७६।।

जुहुयाज्जन्मदिवसे पायसान्नैर्घृतान्वितैः ।
इच्छन्ननिन्दितां लक्ष्मीमारोग्यमतुलं यशः ।।७७।।

गव्यदुग्धघृताक्ताभिर्दूर्वाभिर्जुहुयाद्वशी ।
स विंशतिशतं सम्यक् स्वजन्मदिवसे सुधीः ।।७८।।

आमयैः सकलैर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतम्भुवि ।
काश्मरीसमिधः सर्प्पिः पयोऽन्नं त्रिशतम्पृथक् ।।७९।।

जुहुयाद्ब्राह्मणानन्ते भोजयेन्मधुरान्वितम् ।
प्रीणयेद्धनधान्याद्यैरात्मनो गुरुमादरात् ।।८०।।

अनामयमवाप्नोति दीर्घमायुः श्रिया सह ।
सघृतेन पयोऽन्नेन हुत्वा पर्व्वणि पर्व्वणि ।।८१।।

राज्यश्रियमवाप्नोति षण्मासान्नात्र संशयः ।
लाजैर्विशुद्धैर्जुहुयात् कन्याप्त्यै सा वराप्तये ।।८२।।

क्षीरद्रुमसमिद्धोमाद् ब्राह्मणादीन्वशन्नयेत् ।

**वसिष्ठकल्पे**—

त्रियम्बकस्य मन्त्रस्य विनियोगमतः परम् ।
प्रवक्ष्यामि द्विजश्रेष्ठ तदिहैकमनाः शृणु ।।८३।।

---

१. ख. ०रमाप्नुयात् ।

मनोरमे शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्य च ।
पूर्वोक्तलक्षणङ् कुण्डं कलपयित्वा विधानतः ।।८४।।

आदौ विनायकम्पूज्य पुण्याहं वाचयेत्ततः ।
औपास्यमग्निमानीय तस्मिन् कुण्डे विनिक्षिपेत् ।।८५।।

अथवा श्रोत्रियागारान्मथितं वा समानयेत् ।
औपासनाग्नौ कुर्वीत विद्वेषोच्चाटनादिकम् ।।८६।।

आत्माभिमुखमासीनं ध्यात्वा सम्यक् प्रपूजयेत् ।
अर्च्चयेल्लोकपालांश्च प्रागारभ्य प्रदक्षिणम् ।।८७।।

तेषामनुचरांश्चै वङ् कुण्डमध्ये हुताशनम् ।
तत्र कृत्वाऽऽज्यभागान्तं सर्वमुल्लेखनादिकम् ।।८८।।

स्वगृह्योक्तविधानेन ततो होमं समाचरेत् ।
आयुष्कामो घृतेनाग्नौ जुहुयाल्लक्षसंख्यया ।।८९।।

अयुतं वा सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं शतम् ।
दूर्वात्रिकैर्वा जुहुयान्मधुत्रितयसंयुतैः ।।९०।।

गुडूचीखण्डकैर्वाऽपि जुहुयाद्गोघृतप्लुतैः ।
प्रक्षालितैस्तिलैर्वापि जुहुयाद्गोघृतप्लुतैः ।।९१।।

पालाशसमिधो हुत्वा पूर्णमायुरवाप्नुयात् ।
अथवा गोघृताक्तेन पायसेन च होमयेत् ।।९२।।

अथवा तर्प्पयेद्देवमुदकेन समाहितः ।
आसीनः प्राङ् मुखो भूत्वा जपेद्वा पूर्वसंख्यया ।
ब्राह्मणान् भोजयेन्नित्यं वेदवेदाङ्गपारगान् ।।९३।।

आरोग्यकामो जुहुयादर्ककाष्ठैर्घृतप्लुतैः ।
पयसा वाऽपि जुहुयाद्गव्येनाऽऽज्येन वा पुनः ।।९४।।

पालाशसमिधो वाऽपि सर्वरोगप्रशान्तये ।
एवं रोगप्रशान्तिः स्याद्रोगाणाञ्चाऽप्यनुद्भवः ।।९५।।

अच्छिन्नै राम्रपर्णैस्तु पयोक्तैर्जुहुयाज्ज्वरे ।
गुडूचीगुटिकाभिर्वा खादिरैर्घृतप्लुतैः ।।९६।।

प्रमेहे मधुना होमः पयसा वा घृतेन वा ।
उदुम्बरसमिद्भिस्तु होममामलकेन वा ।।९७।।

गुल्मे शाल्मलिहोमः स्यात्तिलैः कृष्णैर्घृतेन वा ।
वर्द्धमानसमिद्धोमः सद्यश्शूलहरो भवेत् ।।९८।।

करञ्जसमिधो वाऽपि निर्गुण्डीसमिधोऽपि वा ।
तैलेनाऽभ्यज्य जुहुयाद्वातरोगप्रशान्तये ।।९९।।

शमीसमिद्भिर्जुहुयादतीसारप्रशान्तये ।
शान्त्यर्थमक्षिरोगाणाम्पालाशसमिधः स्मृताः ।।१००।।

उन्मत्तसमिधो हुत्वा ह्यपस्मारात्प्रमुच्यते ।
कुबेराक्षेन्द्रवल्लीभ्यां पक्षशूलेषु होमयेत् ।।१०१।।

तैलेनाऽभ्यज्य[1] जुहुयाद्वत्रिखण्डैस्तथैव च ।
मातुलुङ्गगुडूचीनां होमः कापालनाशनः ।।१०२।।

मधुत्रितयहोमेन शान्तिः स्याद्राजयक्ष्मणः ।
हवनात् फलमूलानां गर्भरोगः प्रशाम्यति ।।१०३।।

इत्थम्मसूरिकापाकम्मधुत्रितयसंयुतैः ।
छिन्नाफलैस्तु जुहुयात् पललैर्वा घृतप्लुतैः ।।१०४।।

अथवा तैलसंयुक्तैर्जुहुयाद्गौरसर्षपैः ।
ये चाऽन्ये मुखजा रोगाः शिरोरोगास्तथैव च ।।१०५।।

ते सर्वे प्रलयं यान्ति तिलैर्होमाद् घृतप्लुतैः ।
औदराणान्तु रोगाणां सर्वेषां शान्तिमिच्छता ।।१०६।।

बिल्ववृक्षसमिद्धोमः कर्त्तव्यो द्विजसत्तमैः ।
अन्तस्तापे तु जुहुयात्पद्मपत्रैर्घृतप्लुतैः ।।१०७।।

---

1. क० तैलेनाऽभ्य ।

दूर्वाभिर्वा पयोक्ताभिर्जुहुयाच्चन्दनेन वा ।
शिंशिपाश्वत्थसमिधो रक्तस्रावेषु होमयेत् ।।१०८।।

अथवा गोघृतेनैव रक्तातीसारशान्तये ।
आस्यरोगेषु सर्वेषु कण्ठरोगे महोदरे ।।१०९।।

त्रिभिः फलैस्तु जुहुयान्मधुक्षीरघृतप्लुतैः ।
मधुत्रितयहोमस्तु सर्वरोगप्रशान्तिदः ।।११०।।

आयुर्वेदेषु यत्प्रोक्तं यस्य रोगस्य भेषजम् ।
तस्य रोगस्य शान्त्यर्थन्तेन तेनैव होमयेत् ।।१११।।

अथवाऽनेन मन्त्रेण पावमानीभिरेव वा ।
तीर्थतोयेन देवेशि चाऽभिषिञ्चेत्समाहितः ।।११२।।

भूतज्वरग्रहादीनां सर्वेषामपि शान्तये ।
अथवा तर्प्पणङ् कुर्यान्मन्त्री पूर्वोक्तसंख्यया ।।११३।।

नद्यां समुद्रगामिन्यान्तडागेषु सरस्सु वा ।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखोऽपि[1] सर्वरोगप्रशान्तये ।।११४।।

अथवा नियताहारो जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
शान्तये सर्वरोगाणान्तथैवानुद्भवाय च ।।११५।।

एवं होमं द्विजः कुर्यात्तर्प्पणञ्जपमेव वा ।
आयुरारोग्यसिद्धयर्थमात्मनो वाऽपरस्य ।।११६।।

एकाहं वा त्र्यहं वाऽपि दशाहन्द्वादशाहकम् ।
पक्षम्मासन्द्विमासं वा मासत्रयमथाऽपि वा ।।११७।।

अथवा चतुरो मासान् षण्मासन्त्वेकहायनम् ।
भये महति सञ्जाते दीर्घकालं समाहितः ।।११८।।

---

1. ख० प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि ।

अल्पेऽल्पकालङ् कुर्वीत जपहोमादिकाः क्रियाः ।
रोगकालोपयुक्तं यद्द्रव्यं शय्यासनादिकम् ।।११९।।

रोगमुक्तस्तु तत्सर्वन्नोपयुञ्ज्यात्[1] कथञ्चन ।
मृतसञ्जीवनीनिष्ठब्राह्मणानान्तु[2] योजयेत्[3] ।।१२०।।

अपमृत्युंजयोपायमहं वक्षाम्यतः परम् ।
सर्वोक्तदेशकाले[4] तु शुचिर्भूत्वा समाहितः ।।१२१।।

मधुत्रितययुक्ताभिर्दूर्वाभिर्जुहुयाद् बुधः ।
सहस्रमयुतं वाऽपि शतमष्टोत्तरं तथा ।।१२२।।

श्वेतार्ककुसुमैर्वाऽपि जुहुयाद्गोघृताप्लुतैः ।
अपामार्गसमिद्भिर्वा तिलैः कृष्णैर्यवैरपि ।।१२३।।

अथवा गोघृतेनैव पयसा वाऽपि होमयेत् ।
कपिलागोघृतं क्षीरम्प्रशंसन्ति मनीषिणः ।।१२४।।

शनैश्चरदिनेऽश्वत्थं[5] स्पृशन्मन्त्रमिमञ्जपेत् ।
साक्षान्मृत्योस्तु मुक्तः स्यात् किम्पुनस्त्वल्पमृत्युभिः ।।१२५।।

अथवा पयसा देवमभिषिञ्चेद् घृतेन वा ।
पालाशखदिराश्वत्थसमिद्भिर्ज्जुहुयात् सुधीः ।।१२६।।

बिल्ववृक्षोद्भवैर्वाऽपि सोऽपमृत्योर्विमुच्यते ।
अथवा श्रपयित्वा तु चरुं रौद्रं द्विजोत्तमः ।।१२७।।

मन्त्रेणाऽनेन जुहुयाद् ध्यात्वा देवन्त्रियम्बकम् ।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा मृत्युञ्जयति मानवः ।।१२८।।

अथोपायान्तरं वक्ष्ये साक्षान्मृत्युनिवारणम् ।
प्रागुदक्प्रवणे रम्ये शुचौ देशे समेऽपि वा ।।१२९।।

---

1. ख० ०युज्यात् । 2. ख० मृतसञ्जीवनीनष्ठा० । 3 ख० योजपेत् । 4 ख० पूर्वोक्त-देश० । 5. क० ऽस्वत्थं ।

तण्डुलैर्व्रीहिभिर्वाऽपि चतुरश्रं समन्ततः ।
हस्तमात्रप्रमाणेन वेदीं कुर्याद्विचक्षणः ।।१३०।।

तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं सितसूत्रेण वेष्टयेत् ।
वासोयुग्मेन संवेष्टय तीर्थतोयेन पूरितम् ।।१३१।।

पल्लवान् क्षीरवृक्षाणामथवा सूतपल्लवान्[1] ।
प्रक्षिप्य तत्राऽलङ्कृत्य[2] गन्धमाल्याक्षतादिभिः ।।१३२।।

तत्राऽऽवाह्य महादेवन्देवदेवन्त्रियम्बकम् ।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैस्त्र्यम्बकेत्यनया[3] ऋचा ।।१३३।।

ततोऽभिमन्त्रयेत्कुम्भं मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।
अष्टोत्तरसहस्रेण नियतात्मा समाहितः ।।१३४।।

अभिषिञ्चेत्तु तोयेन यदीच्छेद्रक्षितुं नरम् ।
प्रोक्षयेदथ कूर्चेन शमनन्तु[4] विशेषतः ।।१३५।।

नाऽपमृत्युभयन्तस्य न च व्याधिकृतम्भयम् ।
तथा शत्रुकृतञ्चैव दीर्घमायुश्च विन्दति ।।१३६।।

परार्थे धनलोभेन मोहादज्ञानतोऽपि वा ।
मृत्योर्निवर्त्तनं कुर्वन् स्वयम्मृत्युमवाप्नुयात् ।।१३७।।

मातरम्पितरम्पुत्रङ्गोसहस्रप्रदायिनम् ।
आचार्य्यञ्च सदा रक्षेन्मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।।१३८।।

राजा हि सर्वलोकस्य पिता भवति धार्म्मिकः ।
तस्मात्तदर्थं यत्नेन कर्म्म कुर्वीत शान्तये ।।१३९।।

मृत्योर्भीतस्तु सिद्धोऽपि सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वापत्सु च सर्वत्र मृत्युसञ्जीवनीञ्जपेत्[5] ।।१४०।।

---

1. ख० नूतपल्लवान् । 2. ख० तत्रलङ्कृत्य । 3. ख० ०त्र्म्बके० । 4. क० समनन्तु ।
5. क० जयेत् ।

अथ रक्षाविधिं वक्ष्ये सर्वभूतभयापहम् ।
भूपतीनां विशेषेण सर्वशान्तिकरम्परम् ।।१४१।।

औपासनाग्निहोत्रे च गृहीत्वा भसितं सितम् ।
ततोऽभिमन्त्र्य तद्भस्म मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।।१४२।।

तेनैव भस्मना नित्यं सर्वाण्यङ्गानि[1] संस्पृशेत् ।
ललाटे हृदये कण्ठे बाह्वोश्चैव विशेषतः ।।१४३।।

अनेनैव विधानेन यस्य रक्षा कृता भवेत् ।
नाऽपमृत्युभयन्तस्य न च व्याधिकृतम्भयम् ।।१४४।।

भयेभ्योऽव्याहतैश्वर्य्यो दीर्घमायुश्च विन्दति ।
अतः परम्प्रवक्ष्यामि रोगमृत्युभयापहम् ।।१४५।।

ग्रहरोगोरगादिभ्यो भयं येन न जायते ।
यथेच्छेन सुवर्णेन कारयेदङ्गुलीयकम् ।।१४६।।

पञ्चलोहेन वै कुर्यात् त्रिलोहेनैव वा पुनः ।
विनायकं समभ्यर्च्य पुण्याहं वाचयेत्ततः ।।१४७।।

ततः सम्पूज्य देवेशं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
त्र्यम्बकेनैव मन्त्रेण मनसैव समाहितः ।।१४८।।

कुण्डे या स्थण्डिले वाऽपि विधिवन्मन्त्रकोविदः ।
गोघृतेनैव जुहुयाद ध्यात्वा देवन्निरन्तरम् ।।१४९।।

शतं सहस्रमयुतन्नियुतं वाऽपि तत्वतः ।
होतुश्च दक्षिणे पार्श्वे हैमे वा राजतेऽपि बा ।।१५०।।

कांस्ये वा मृण्मये वाऽपि पात्रे न्यस्याऽङ्गुलीयकम् ।
सर्वाहुतिषु सम्पातन्तस्मिन्नपि नयेद्बुधः ।।१५१।।

ततः स्विष्टिकृतं हुत्वा होमशेषं समाप्य च ।
अङ्गुलीयं स्पृशन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं जपेत् ।।१५२।।

---

1 क० ख० सर्वान्यङ्गानि ।

एवमाहुतिसम्पातैः संस्कृतञ्चाऽपि मन्त्रितम् ।
अङ्गुलीयकमादाय मुहूर्त्ते शोभने तथा ॥१५३॥

वाचयित्वा शुचिर्विद्वान् ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
अङ्गुष्ठेऽनामिकायां वा प्रदेशिन्यामथाऽपि वा ॥१५४॥

सर्वदा सर्वरक्षार्थन्धारयेदङ्गुलीयकम् ।
अथवाऽनेन मन्त्रेण परिपुष्टञ्च च धारयेत् ॥१५५॥

अनेनैव विधानेन सर्वाण्याभरणानि च ।
नवानि धारयेन्नित्यञ्जीवेद् वर्षशतं सुखी ॥१५६॥

याः स्त्रियो धारयन्त्येवन्नवान्याभरणानि वै ।
माङ्गल्यम्परमं शान्तिं सौभाग्यमतुलन्तथा ॥१५७॥

बहून् गुणवतः पुत्रांल्लभन्ते नाऽत्र संशयः ।
अथ शान्तिम्प्रवक्ष्यामि सर्वोपद्रवनाशिनीम् ॥१५८॥

अमङ्गलेषु दृष्टेषु[1] दुःस्वप्नेषु द्विजोत्तम[2] ।
दिव्यन्तरिक्षभूतानामद्भुतानाञ्च दर्शनम् ॥१५९॥

प्रत्यक्षप्रतिभावेषु नानारूपेषु सर्वशः ।
भूतप्रेतपिशाचानामावेशे शङ्किते तथा ॥१६०॥

गृहप्रवेशकालेऽपि[3] सर्वसम्पत्समृद्धये ।
गृहमध्येऽग्निमाधाय श्रपयेत् पायसञ्चरुम् ॥१६१॥

तेनैव जुहुयादग्नौ मन्त्रेणाऽनेन संयतः ।
तिलोदनञ्च जुहुयाच्छुद्धोदनमथाऽपि वा ॥१६२॥

अष्टोत्तरशतम्मन्त्री जुहुयाद् गोघृतेन वा ।
पालाशखदिराश्वत्थबिल्वन्यग्रोधसम्भवैः ॥१६३॥

आगामिनाम्फलानान्तु विज्ञानार्थं हि देवताः ।
निमित्तं ज्ञापयन्त्यग्रे भूतानां हितकाम्यया ॥१६४॥

---

1 क० दृष्टेसु । 2 ख० द्विजोत्तमः । 3 ख० काले च ।

तस्मात् फलानि जानीयात् स्वप्नोत्पातादिभिर्भुवि ।
एवं शान्तिम्प्रकुर्वीत त्रयीसारेण यत्नतः ।।१६५।।

अथवाऽनेन मन्त्रेण कोटिहोमन्तु कारयेत् ।
गव्येन सर्पिषा विद्वान् यवव्रीहितिलैस्तथा ।।१६६।।

ऋत्विजस्तत्र सङ्ग्राह्या ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
तेभ्यश्च दक्षिणा देया वस्त्राभरणानि च ।।१६७।।

मध्याह्ने मध्यरात्रे वा गृहमध्ये विधानतः ।
अग्निमाधाय जुहुयात् समिच्चरुघृतादिभिः ।।१६८।।

प्रोषितागारशान्तेयं विधिना तेन कारयेत् ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च ये चाऽप्यन्ये ग्रहादयः ।।१६९।।

विंशति प्रोषितागारञ्जपहोमादिवर्जितम् ।
ते सर्वे होमधूपेन धर्मसंस्पर्शनेन च ।।१७०।।

मन्त्रस्याऽस्य प्रभावेन निर्गच्छन्ति यथागतम् ।
अथवाऽनेन मन्त्रेण पूर्णकुम्भं समाहितः ।।१७१।।

अभिमन्त्र्य गृहं सर्वम्प्रोक्षयेत्तेन वारिणा ।
आत्मानम्परं वाऽपि स दोषान्मुच्यते स्फुटम् ।।१७२।।

श्रीकामो बिल्ववृक्षस्य समिद्भिरथवा फलैः ।
पत्रैर्वाऽप्यस्य जुहुयान्महतीं श्रियमाप्नुयात् ।।१७३।।

गोकामः पयसा होमाल्लभते गाः पयस्विनीः ।
विद्यार्थी जुहुयाद्यस्तु रुद्राक्षैर्गोघृतप्लुतैः ।।१७४।।

विद्याञ्चायुश्च वित्तञ्च लभते नाऽत्र संशयः ।
अन्नाद्यकामो जुहुयादन्नमेव घृतप्लुतम् ।।१७५।।

पालाशसमिधो हुत्वा ब्रह्मवर्चसमाप्नुयात् ।।१७६।।

वृष्टिकामस्तु सम्पूज्य देवदेवन्त्रियम्बकम् ।
अर्घ्यपाद्यादिभिर्देवम्प्रसन्नैरभिषेचयेत् ।।१७७।।

आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णादिभिस्तथा ।
पवमानानुवाकेन त्र्यम्बकेत्यनया ऋचा ।।१७८।।

गन्धम्पुष्पन्तथाधूपं हविश्च विनिवेदयेत् ।
एवं सम्पूज्य देवेशम्प्रणिपत्य प्रसाद्य च ।।१७९।।

वेतसानां समिद्भिस्तु पयसा च घृतप्लुतैः ।
अयुतं वा सहस्रं वा जुहुयात्पयसाऽपि वा ।।१८०।।

पुण्याहं वाचयेन्नित्यम्ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
दशाहाभ्यन्तरे वृष्टिर्भविष्यति न संशयः ।।१८१।।

आर्द्रवासाः पयोवृक्षक्षीरवृक्षसमुद्भवैः ।
समिद्भिर्जुहुयान्मन्त्री सद्यो वृष्टिमवाप्नुयात् ।।१८२।।

नाभिदघ्ने जले स्थित्वा ध्यायन्वै वृष्टिवर्द्धनम् ।
जपंस्त्रियम्बकम्मन्त्रम्महतीं वृष्टिमाप्नुयात् ।।१८३।।

अहोरात्रात् समादाय सितम्भसितमुत्तमम् ।
अनयैव ऋचा हुत्वा जलवृष्टिन्निवारयेत् ।।१८४।।

पुत्रकामस्तु जुहुयात् पायसं घृतसम्प्लुतम् ।
चरुशेषं स्वयम्भुक्त्वा पुत्रम्प्राप्नोति मानवः ।।१८५।।

पौर्णमास्यान्तिलान्हुत्वा घृताक्तान्विन्दते सुतम् ।
गोचर्ममात्रमालिप्य गोमयेनाऽथ भूतले ।।१८६।।

धान्यराशिं विनिक्षिप्य तन्मध्ये स्थापयेद्बुधः ।
विंशतिः कलशांस्तत्र सितसूत्रेण वेष्टयेत् ।।१८७।।

तीर्थतोयेन सम्पूर्णान् भूषितान् पल्लवादिना ।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण ततस्तानभिमन्त्रयेत् ।।१८८।।

अथ वन्ध्यास्त्रियस्तैस्तु कलशैरभिषेचयेत् ।
अचिराल्लभते पुत्रमायुष्मन्तं यशस्विनम् ।।१८९।।

वस्त्रकामस्तु जुहुयात् कुसुमैः कालसम्भवैः ।
यद्वर्णञ्जुहुयात्पुष्पन्तद्वर्णं वस्त्रमाप्नुयात् ॥१९०॥

धान्यहोमेन धान्यानि लाजैः कन्यामवाप्नुयात् ।
देवतावशकामस्तु कृशरङ् गुडसंयुतम् ॥१९१॥

अष्टोत्तरसहस्रन्तु जुहुयात् पायसेन तु ।
हविश्शेषं स्वयम्भुक्त्वा ततो मन्त्रमिमञ्जपेत् ॥१९२॥

यान्देवतां समुद्दिश्य करोत्येवमतन्द्रितः ।
प्रत्यक्षभूता सा देवी परान्निष्ठाम्प्रयच्छति ॥१९३॥

इत्थं लोकं वशीकर्त्तुन्नक्षत्रे रुद्रदैवते ।
करवीरसमिद्भिस्तु तैलेनाक्तैर्घृतेन वा ॥१९४॥

अष्टोत्तरसहस्रन्तु होमादुच्चाटयेद्रिपून् ।
निर्गुण्डिकासमिद्भिर्वा श्वेतार्क्कक्षीरसंयुतैः ॥१९५॥

काकपञ्जरहोमेन काकवद्भ्रमते रिपुः ।
उन्मत्तसमिधो होमात्परस्योच्चाटनन्तथा ॥१९६॥

अन्यदाऽपि च यत्क्रूरङ्कल्पोक्तम्मारणादिकम् ।
तत्सर्वन्नैव कर्त्तव्यम्ब्राह्मणे नृपतौ तथा ॥१९७॥

अतः परम्प्रवक्ष्यामि शत्रोर्मारणमुत्तमम् ।
राज्ञां शत्रुविनाशार्थं राष्ट्रस्य च हितावहम् ॥१९८॥

न जातु ब्राह्मणं हन्याद्राजानञ्चैव धार्म्मिकम् ।
इतरेष्वपि वर्णेषु ये भवन्त्याततायिनः ॥१९९॥

तेषु परेषु कर्त्तव्यमेतद्रक्षार्थमात्मनः ।
पूर्वोक्तदेशकालेषु कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ॥२००॥

विषतोयेन संसिक्तैः सिद्धार्थैस्सर्षपैस्तथा ।
ऋचाऽनया तु जुहुयाद् ध्यायन्वै शत्रुमात्मनः ॥२०१॥

स विनश्यति मासान्ते ज्वरदाहग्रहादिभिः ।
मासद्वयप्रयोगेन भार्यापुत्रादयस्तथा ॥२०२॥

मासद्वयप्रयोगेन गजवाजिरथादयः ।
सर्षपाणान्तु कल्केन नारी नरमथाऽपि वा ॥२०३॥

शत्रोः प्रतिकृतिङ्कृत्वा तस्य देहानुरूपतः ।
तस्मिन् प्राणप्रतिष्ठाञ्च कृत्वाऽमुष्य[1] तु मन्त्रतः ॥२०४॥

अग्नेर्जिह्वाञ्च विज्ञाय क्रूरकर्मसु चोदितम् ।
देवन्त्रियम्बकं ध्यायन् क्रूरकर्म भयानकम् ॥२०५॥

छित्त्वा च तस्याः प्रकृतेरङ्गानि जुहुयात् क्रमात् ।
प्रथमं दक्षिणम्पादं हुत्वा हस्तन्तु दक्षिणम् ॥२०६॥

शिरश्छित्वा तु जुहुयात् सव्यहस्तमतः परम् ।
सव्यञ्च पादन्तस्यैव पूर्वकायम्परन्ततः ॥२०७॥

साध्यनाम द्वितीयान्तं मन्त्रान्ते तु प्रयोजयेत् ।
अथ नाशय-शब्दञ्च स्वाहाकारमतः परम् ॥२०८॥

एवम्मासम्प्रयुञ्जीत मासान्ते म्रियते रिपुः ।
आवृत्तिश्चैव कर्त्तव्या द्वौ त्रीन्मासानथाऽपि वा ॥२०९॥

कार्यासङ्गं तथा कुर्याद्यावत्संवत्सरम्भवेत् ।
वत्सराभ्यन्तरे शत्रुः प्रयाति यमशासनम्[2] ॥२१०

अवश्यन्न भवेन्मोघं क्रूरकर्म स्वभावतः ।
शत्रूणान्निग्रहोपायं रहस्यम्परमं शृणु ॥२११॥

विभीतकस्य वृक्षस्य कृत्वा प्रतिकृतिं रिपोः ।
सर्वावयवसम्पूर्णाम्प्राणस्य स्थापनन्ततः ॥२१२॥

ततस्तां लेपयेन्मन्त्री मरीचैर्हिङ्गुना तथा ।
कुण्डस्योपरि बध्नीयादूर्ध्वपादामधोमुखीम् ॥२१३॥

1. ख० ऽमुष्यं । 2. ख० मयशासनम् ।

हूयमाने तु हविषि ज्वरैर्ग्रस्तो भवेद्रिपुः ।
ततो भल्लातकफलैर्मरिचैर्वाऽपि होमयेत् ।।२१४।।

[1]सर्षपैर्निम्बपत्रैर्वा काकपत्रैरथाऽपि वा ।
यावत्सा दग्धतां याति तावद्धोमं समाचरेत् ।।२१५।।

शतरात्रान्तरे नाशमेति शत्रुर्न संशयः ।
अथोपायान्तरं वक्ष्ये राजशत्रुविनाशनम् ।।११६।।

तस्य वृक्षस्य खण्डेन कुर्यात् प्रतिकृतिन्नरः ।
प्राणस्य स्थापनं कृत्वा तन्मन्त्रेणैव मन्त्रवित् ।।२१७।।

वचया लेपयेत्तावद्भल्लातकरसेन वा ।
ततस्तामाकृतिं गृह्य श्मशानाग्नौ विनिक्षिपेत् ।।२१८।।

सप्ताहमेवङ्कुर्वीत ततो मासद्वयम्बुधः ।
पूर्वोक्तेन विधानेन कृत्वा प्रतिकृतिं रिपोः ।।२१९।।

कुण्डस्योपरि बद्ध्वा च मरीचैर्होमयेत्ततः ।
ज्वालाभिरतितीव्राभिर्दह्यमाने च कम्पते ।।२२०।।

त्रिशिखं शूलमादाय हृदये तस्य ताडयेत् ।
असौ विनाशमायाति देवैरपि सुरक्षितः ।।२२१।।

अथवा काकपत्राणि श्मशानाग्नौ तु होमयेत् ।
ततस्तद्भसितं गृह्य त्र्यम्बकेत्यनया ऋचा ।।२२२।।

परिजप्य सहस्रान्ते निखनेच्छत्रुवेश्मनि ।
युद्धकाले तु सम्प्राप्ते हुत्वाऽग्नौ विधिवद्गृहे ।।२२३।।

शरेषु कृत्वा सम्पातं शरांस्तानभिमन्त्र्य च ।
प्रेषययेच्छत्रुमुद्दिश्य दशाऽष्टौ पञ्च वा शतान् ।।२२४।।

असौ विनाशमायाति सह वाजिपदातिभिः ।
यस्य मारणमन्विच्छेत् सपुत्रपशुबान्धवम् ।।२२५।।

---

1. ख० सर्षपै निम्ब० ।

तस्य वृक्षस्य समिधो जुहुयान्मन्त्रपूर्वकम् ।
अथवा तालपत्रेषु रिपुनामाक्षराणि वै ।।२२६।।

विलिख्य जुहुयादग्नौ सहस्रमयुतन्तु वा ।
प्रयुतं वाऽपि जुहुयाद्यावत्फलमवाप्यते ।।२२७।।

यद्वा सर्षपतैलेन सिक्ता मरिचसर्षपाः ।
भल्लातकस्य समिधः करञ्जसमिधोऽपि वा ।।२२८।।

नरतैलेन सिक्तांस्तान् काकपक्षानथाऽपि वा ।
हुत्वा तद्भसितं गृह्य पूर्ववच्चाभिमन्त्रितम् ।।२२९।।

विकीर्यात् परराष्ट्रेषु राजधान्याञ्च मन्त्रवित् ।
तस्मिन्देशे विनश्यन्ति मानवाः पशवस्तथा ।।२३०।।

गजवाजिखरोष्ट्राश्वधनधान्यादि सर्वशः ।
अनावृष्टिर्भवेत्तत्र दीर्घकालम्भयङ्करम् ।।२३१।।

अतः परम्प्रवक्ष्यामि योगानामुत्तमम्महत् ।
शत्रुञ्जयमिति ख्यातं सर्वशत्रुविनाशनम् ।।२३२।।

शत्रोर्निर्म्माल्यमादाय मलं वा देहसम्भवम् ।
स्नानार्द्रमृत्तिकां वाऽपि पादपांशुमथाऽपि वा ।।२३३।।

त्रियम्बकेन मन्त्रेण परिजप्य शतावधि ।
सप्तरात्रे श्मशाने तु निखनेन्म्रियते रिपुः ।।२३४।।

अग्निदाहाद्भयग्रस्तो म्रियते मासमात्रतः ।
निखनेद्राजमार्गे तु शत्रोरुच्चाटनम्भवेत् ।।२३५।।

अथवा देवमीशानं समाश्रित्य त्रियम्बकम् ।
ध्यायन्वै मनसा शत्रुम्मन्त्रन्त्रैयम्बकञ्जपेत् ।।२३६।।

सहस्रमयुतं वाऽपि नियुतम्प्रयुतन्तथा ।
तेनोच्चाटयते शीघ्रं सपुत्रं सहबान्धवम् ।।२३७।।

अथाऽभिचारशान्त्यर्थमभिवृद्ध्यर्थमात्मनः ।
क्षीरसिक्तैस्तिलैर्वाऽपि घृताक्तैर्वाऽथ तण्डुलैः ॥२३८॥

रक्तचन्दनहोमेन पालाशसमिधोऽपि वा ।
खदिरोदुम्बराश्वत्थबिल्वानां समिधोऽथवा ॥२३९॥

चन्दनैरभिषेकस्तु साध्यस्य शिरसोपरि ।
ततस्तु पक्वमादाय रक्तोदनबलिन्तथा ॥२४०॥

चतुष्पथे विनिक्षिप्य तत्र भूयो बलिं क्षिपेत् ।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य प्रविश्य स्वगृहम्पुनः ॥२४१॥

साध्यं स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रं शतमेव वा ।
त्रिरात्रमेवङ्कुर्वीत नित्यञ्च विप्रभोजनम् ॥२४२॥

कृत्यापस्माररोगाद्या विनश्यन्ति परैः कृताः ।
सद्यो दोषविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥२४३॥

शान्तौ चन्दनमिश्रेण वारिणा तर्प्पणञ्चरेत् ।
जपन्नित्यम्प्रकुर्वीत ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ॥२४४॥

अथ शान्तिम्प्रवक्ष्यामि गजानां हितकाम्यया ।
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण कुर्यात् कौतुकबन्धनम् ॥२४५॥

ऊर्णासूत्रं समादाय हेमसूत्रेण संयुतम् ।
हेमपात्रे विनिक्षिप्य शालायाञ्च निधापयेत्[1] ॥२४६॥

तत्सूत्रं संस्पृशन्मन्त्रं त्र्यम्बकम्प्रजपेद् बुधः ।
पुनर्नवां वा जुहुयाद् गव्येन पयसा प्लुताम् ॥२४७॥

छिन्नोद्भवाञ्च जुहुयाद्दधिक्षीरघृतप्लुताम् ।
सिद्धार्थैर्वा जुहुयाद्यवशाल्योदनेन वा ॥२४८॥

श्वेतपुष्पैस्तु जुहुयाद् गव्येनाऽऽज्येन संयुतैः ।
एवम्पराभिचाराणां शान्तिः स्यान्नाऽत्र[2] संशयः ॥२४९॥

---

1, ख. निधारयेत् । 2. ख. स्यान्नत्र ।

कृत्याश्चैनन्न हिंसन्ति ताः प्रयान्ति यथाऽऽगताः ।
अथवा नियताहारो जपेन्मन्त्रमनुत्तमम् ॥२५०॥

यद्वाऽग्निहोत्रजम्भस्म मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।
अभिमन्त्र्य शतं वाऽपि सहस्रमयुतन्तु वा ॥२५१॥

ललाटे धारयेन्नित्यं सर्वदोषप्रशान्तये ।
वश्याकर्षणविद्वेषशान्तये जुहुयाद् बुधः ॥२५२॥

कदम्बवेतसैर्वाऽपि पयसाऽऽज्येन सम्प्लुतैः ।
अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि कृत्याशान्तिकरम्परम् ॥२५३॥

नोक्तपूर्वम्मया ह्येतद् गोपनीयम्प्रयत्नतः ।
रजन्यामग्निमादाय कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ॥२५४॥

सितासितैश्च कुसुमैः परिकीर्य परैरपि ।
जुहुयात् साङ्कुरा दूर्वा घृताक्ता दोषवर्जिताः ॥२५५॥

अष्टोत्तरसहस्रन्तु न्यग्रोधसमिधोऽपि वा ।
ततः सिद्धोदनं गृह्य दशदिक्षु वलिं क्षिपेत् ॥२५६॥

प्रत्येकम्भ्रामयित्वा तु दशकृत्वस्त्रिरेव वा ।
ततस्तत्सूत्रमादाय मन्त्रेणाऽनेन संस्पृशेत् ॥२५७॥

ततः पुण्याहघोषेण गीतवादित्रनिस्स्वनैः ।
प्रदोषसमयेऽतीते मुहूर्त्ते सुमनोहरे ॥२५८॥

ध्यायेद्देवम्महादेवन्त्र्यम्बकेत्यनया ऋचा ।
कौतुकं सूत्रमादाय बध्नीयाद् दक्षिणे करे ॥२५९॥

ततो भसितमादाय मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।
कौतुकम्प्रथमं क्षिप्त्वा सर्वाण्यङ्गानि संस्पृशेत् ॥२६०॥

एवमेव तुरङ्गाणां शान्तिकामस्तु कारयेत् ।
अथाऽपरेद्युः कुर्वीत शान्तिकर्म्माणि[1] मन्त्रवित् ॥२६१॥

1. ख. शान्तिकर्मणि ।

पुण्याहं वाचयित्वा तु ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
मध्ये गजनिवासस्य कुण्डम्प्राग्दक्षिणे तथा ।।२६२।।

कृत्वा तत्रैव जुहुयाद् गव्येनाऽऽज्येन मन्त्रवित् ।
अथवा पायसेनैव जुहुयान्मधुनाऽपि वा ।।२६३।।

अश्वत्थसमिधो वाऽपि जुहुयादयुतन्द्विजः ।
शमीपल्लवसम्मिश्रैर्जुहुयादयुतन्द्विजः ।।२६४।।

तैलेनाऽभ्यज्य होतव्या न्यग्रोधसमिधोऽपि वा ।
खदिरार्क्कसमिद्भिर्वा वेणुभिर्वाऽपि होमयेत् ।।२६५।।

अथवा भसितं गृह्य मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।
अभिमन्त्र्य ललाटे तु गजानां धारयेद्बुधः ।।२६६।।

सर्वरोगविनाशश्च भविष्यति न संशयः ।
अश्वानां शान्तिकामस्तु मध्ये प्रागुत्तरे तथा ।।२६७।।

कुण्डं कृत्वा तु तत्रैव जुहुयात् स्थण्डिलेऽपि वा ।
मधुत्रयेण जुहुयादायुष्कामस्तु वाजिनाम् ।।२६८।।

अपामार्गसमिद्धोमाद्रोगशान्तिर्भविष्यति ।
अश्वानाम्रोगशान्त्यर्थञ्जुहुयादायुषेऽपि वा ।।२६९।।

चरुणा जुहुयाद्वाऽपि केवलेन घृतेन वा ।
केवलन्तृणमुष्टिं वा पानीयं वाऽथ भोजनम् ।।२७०।।

अभिमन्त्र्य तथा दद्याद् गजानां वाजिनान्तथा ।
दीर्घायुषो गजाः सर्वे सर्वरोगविवर्ज्जिताः ।।२७१।।

तुरङ्गाश्च भविष्यन्ति मन्त्रेणाऽनेन रक्षिताः ।
उदुम्बरसमिद्धोमो वाजिनाम्रोगशान्तिदः ।।२७२।।

अथवा सर्वशान्त्यर्थम्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः[1] ।
पुण्याहं वाचयित्वा तु दद्यात्तेभ्यश्च दक्षिणाम् ।।२७३।।

1. ख. ०ब्रह्मणै० ।

पुण्याहोदकमादाय त्र्यम्बकेत्यनया ऋचा ।
अभिमन्त्र्य गजानश्वान् प्रोक्षयेत्तेन वारिणा ।।२७४।।

पराभिचारशान्तिः स्याद् गजानां वाजिनान्तथा ।
ग्रहरोगादिपीडा च न कदाचिद्भविष्यति ।।२७५।।

निष्कामस्य च वक्ष्यामि जपहोमादिकं विधिम् ।
जपेदहरहर्मन्त्रं ध्यायन्देवन्त्रियम्बकम् ।।२७६।।

अष्टोत्तरसहस्रन्तु मासमेकं समाहितः ।
त्रिमासं वाऽथ षण्मासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२७७।।

ब्रह्महत्या सुरापानं गुरुदाराभिमर्षणम् ।
सुवर्णहरणादीनि पापान्यन्यानि यानि च ।।२७८।।

सँव्वत्सरजपेनैव विनश्यन्ति न संशयः ।
तिलहोमस्तु मासेन सर्वपापप्रणाशनः[1] ।।२७९।।

चरुणा वाऽथ जुहुयाद् गव्येनाऽऽज्येन वा पुनः ।
अथवाऽन्तर्जले मग्नो जपेन्मन्त्रं समाहितः ।।२८०।।

त्रिःकृत्वः[2] सप्तकृत्वो वा दशकृत्वोऽथवा द्विजः ।
जपेद् द्वादशकृत्वो वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२८१।।

नद्यां समुद्रगामिन्यां कृत्वा त्रिषवणं द्विजः ।
जपेद् द्वादशलक्षन्तु शाकमूलफलाशनः ।।२८२।।

अणिमादिकमैश्वर्यं लभते नाऽत्र संशयः ।
शाकमूलफलाहारः पर्वताग्रे समाहितः ।।२८३।।

शतं शतसहस्राणां जप्त्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ।
अथवा देवमीशानं त्र्यम्बकेत्यनया ऋचा ।।२८४।।

अर्च्चयेत् स्थण्डिले नित्यञ्जले वा प्रतिमासु वा ।
मन्त्रेणाऽनेन कुर्वीत सम्यगावाहनादिकम् ।।२८५।।

---

1 ख. ०प्रणाशनम् । 2 क. त्रिःकृत्वा ।

रागद्वेषविहीनस्तु मनसैवाऽर्च्चयेच्छिवम्[1] ।
सर्वपापविनिर्म्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ॥२८६॥

आद्यन्तु तारकन्तस्य तारकादन्तिमादधः[2] ।
व्याहृतित्रयसंयुक्तः पाठान्तरमिहोच्यते ॥२८७॥

तारकादन्तिमादूर्ध्वं वह्निजायासमन्वितः ।
वेदेषु दृष्टं विद्वद्भिश्छन्दोगादिषु पुत्रक ॥२८८॥

प्रणवादि तदन्ते च व्याहृतित्रयसंयुतम् ।
व्याहृतिप्रणवान्तं वा[3] स्वाहान्तेन समन्वितम् ॥२८९॥

एवंविधं मनुश्रेष्ठं सर्वमृत्युभयापहम् ।
मृतसञ्जीवनी विद्या प्रणवव्याहृतीयुता ॥२९०॥

ततस्त्र्यम्बकमन्त्रस्य पुरा ते च तथोच्यते ।
मृत्युञ्जयोऽयमेवाऽत्र कथितो मन्त्रवित्तमैः ॥२९१॥

सबीजो यस्य मन्त्रेऽस्ति महामृत्युञ्जयः स्मृतः ।
प्रणवो व्याहृतिश्चैव त्रिबीजाद्या पठेत्पुरा ॥२९२॥

ततो जपेत् त्र्यम्बकेन चान्ते व्याहृतयश्च ताः ।
त्रिबीजम्प्रणवान्तञ्च वह्निजायां समुच्चरेत् ॥२९३॥

प्रणवोऽथ प्रसादश्च मृतिहा तारकस्तथा ।
भूरादिका व्याहृतयस्त्र्यम्बकेति ऋचा ततः ॥२९४॥

विपर्य्ययेण त्रिबीजन्तद्वच्च व्याहृतित्रयम् ।
स्वाहा च मनुरेषस्तु शुक्रेणाराधितः पुरा ॥२९५॥

महामृत्युञ्जय इति विश्रुतो भुवनत्रये ।

**श्रीयन्त्रसारे—**

आलिख्याऽष्टदलम्पद्मन्तारन्तत्कर्णिकान्तरे ।
तस्योदरे लिखेत् साध्यं साधकाभीष्टकर्मयुक् ॥२९७॥

1. ख. ०मानसैर्वाचियेच्छिवम् । 2. क. ०माधवः । 3. ख. तु ।

द्वौ द्वौ स्वरौ केसरेषु दलेषु त्र्यम्बकाक्षरान् ।
चतुरश्चतुरो बाह्ये वेष्टितं व्यञ्जनाक्षरैः ॥२९८॥

मा त्वा रुद्रेत्यृचा साध्यवर्णदर्भितयावृतम्[1] ।
भूपुराश्रिषु 'ठं' बीजं दिक्षु 'वं' बीजमेव च ॥२९९॥

लिखेदानुष्टुभं यन्त्रं गोपनीयम्प्रयत्नतः ।
आयुरारोग्यसौभाग्यधर्मार्थसुखमोक्षदम् ॥३००॥

किमत्र बहुनोक्तेन कांक्षितार्था नराधिपाः ।

**अस्यार्थः**—

अष्टदलकमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः सबिन्दून् स्वरान् विलिख्य, तद्दलेषु त्र्यम्बकमन्त्रस्य चतुरश्चतुरो वर्णान् प्रतिदलं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तत्रयान्तर्गतवीथीद्वयेऽभ्यन्तरवीथ्यां ककारादिक्षकारान्तैर्वर्णैः संवेष्टच, बाह्यवीथ्यां 'मा त्वा रुद्र चुक्रुधे' त्यृचा साध्यनामाक्षरविदर्भितया संवेष्टच, तद्बहिश्चतुरश्रकोणेषु 'ठँ,' तस्य चतुर्दिक्षु 'वँ' इति च लिखेदेतदुक्तफलदम्भवति ।

"मा त्वा रुद्र चुक्रुधा मानसेभिर्मा दुष्टुती वृषममी महती[2] उन्नो वीरां अर्पय भेषजेति भिषक्त[3] मत्वा भिषजां शृणोमि ॥" ऋषिदैवतछन्दांसि त्वस्या ऋचः—गृत्समदो रुद्रस्त्रिष्टुप् इति ।

धरापोऽग्निमरुद्व्योममखेशेन्द्वर्कमूर्त्तये ।
सर्वभूतान्तरस्थाय शङ्कराय नमो नमः ॥३०१॥

श्रुत्यन्तकृतवासाय श्रुतये श्रुतिजन्मने ।
अतीन्द्रियाय महसे[4] शाश्वतायोन्नमः [नमः] ॥३०२॥

स्थूलसूक्ष्मविभागाय अनिर्देश्याय शम्भवे[5] ।
भवाय भयसम्भूतदुःखहन्त्रे[6] नमोऽस्तु ते ॥३०३॥

---

1. क. ०तयावृतम् । 2. ख. वृषममाहूती । 3. ख. मिषिक्त । 4. ख. महसो । 5. क. ख. सम्भवे । 6. क. दुःखहन्ते ।

तर्क्कमार्गातिदूराय तपसाम्फलदायिने ।
चतुर्व्वर्गवदान्याय सर्वज्ञाय नमो नमः ।।३०४।।

आदिमध्यान्तशून्याय निरस्ताशेषभीतये ।
योगिध्येयाय महते निर्गुणाय नमो नमः ।।३०५।।

विश्वात्मने विचिन्त्याय विलसच्चन्द्रमौलये ।
कन्दर्प्पदर्प्पकालाय कालहन्त्रे नमो नमः ।।३०६।।

विषाशनाय विहरद्वृषस्कन्धमुपेयुषे ।
सरिद्दामसमाबद्धकपर्द्दाय नमो नमः ।।३०७।।

शुद्धाय शुद्धभावाय शुद्धानामन्तरात्मने ।
पुरान्तकाय पूर्णाय पुण्यनाम्ने नमो नमः ।।३०८ ।

भक्ताय निजभक्तानाम्भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ।
निर्वासिसे निवासाय विश्वेषान्ते नमो नमः ।।३०९।।

त्रिमूर्त्तिमूलभूताय त्रिनेत्राय नमो नमः ।
त्रिधाम्नां वासरूपाय जन्मघ्नाय नमो नमः ।।३१०

देवासुरशिरोरत्नकिरणारुणिताङ्घ्रये[1] ।
कान्ताय निजकान्तायै[2] दत्तार्द्धाय नमो नमः ।।३११।।

स्तोत्रेणाऽनेन पूजायाम्प्रीणयेज्जगताम्पतिम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदम्भक्त्या सर्वज्ञम्परमेश्वरम् ।।३१२।।

।। इति शारदातिलके शिवस्तोत्रम् ।।

[अथ सूर्यकृतं शिवस्तोत्रम्]

देवदेवजगताम्पते विभो भर्ग भीम भव चन्द्रभूषण ।
भूतनाथ भवभीतिहारक त्वान्नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ।।३१३।।

चन्द्रचूड मृड धूर्जटे हर त्र्यक्ष दक्षशततन्तुशातन ।
शान्त शाश्वत शिवाय ते शिव त्वान्नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ।।३१४।।

1. ख. ताङ्घ्रिये । 2. ख. कान्तयै ।

नीललोहित समीहितार्थद द्व्येकलोचन विरूपलोचन ।
व्योमकेश पशुपाशनाशन त्वान्नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ।।३१५।।

वामदेव शितिकण्ठ शूलभृच्चन्द्रशेखर फणीन्द्रभूषण ।
कामहृत्पशुपते महेश्वर त्वान्नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ।।३१६।।

त्र्यम्बक त्रिपुरसूदनेश्वर त्राणकृत्त्रिनयन त्रयीमय[1] ।
कालकूटदलनान्तकान्तक त्वान्नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ।।३१७।।

शर्वरीरहित शर्व सर्वग स्वर्गमार्गसुखदाऽपवर्गद ।
अन्धकासुररिपो कपर्द्दभृत्त्वान्नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ।।३१८।।

शङ्करोग्र गिरिजापते पते विश्वनाथ विधिविष्णुसंस्तुत ।
[2]वेदवेद्य विदिताखिलेङ्गित त्वान्नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।३१९।।

विश्वरूप पररूपवर्जित ब्रह्मजिह्मरहिताऽमृतप्रद ।
वाङ्मनोविषयदूरदूरग त्वान्नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ।।३२०।।

इत्थम्परीक्ष्य मार्त्तण्डो मृडन्देवीम्मृडानिकाम् ।
अथाऽऽनुनाव प्रीतात्मा शिववामार्द्धहारिणीम्[3] ।।३२१।।

**।। इति श्रीसूर्यकृतं शिवस्तोत्रम् ।।**

## [ अथ शिवकवचस्तोत्रम् ]

**ऋषिरुवाच**—

नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् ।
वक्ष्ये शिवमयं वर्म सर्वरक्षाकरन्नृणाम् ।।३२२।।

शुचौ देशे समासीनो यथावत्कल्पितासनः ।
जितेन्द्रियो जितप्राणश्चिन्तयेच्छिवमव्ययम् ।।३२३।।

हृत्पुण्डरीकान्तरसन्निविष्टं स्वतेजसा व्याप्तनभोऽवकाशम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत्परानन्दमयम्महेशम् ।।३२४।।

1. क. त्रयीभय । 2. क. देववेद्य० । 3. क. शिववामार्द्ध० ।

ध्यानावधूताखिलकर्म्मबन्धश्चिरञ्चिरानन्दनिमग्नचेताः ।
षडक्षरन्यासससमाहितात्मा शैवेन कुर्यात्कवचेन रक्षाम् ।।३२५।।

माम्पातु देवोऽखिलदेवतात्मा संसारकूपे पतितङ्गभीरे ।
तन्नाम दिव्याम्बरसूत्रमूलं धुनोतु मे सर्वमलं हृदिस्थम् ।।३२६।।

सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्तिज्योर्तिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ।
अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ।।३२७।।

यो भूस्वरूपेण विभर्त्ति विश्वम्पायात्स भूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्त्तिः ।
योऽपां स्वरूपेण नृणाङ्करोति सञ्जीवनं सोऽवतु माञ्जलेभ्यः ।।३२८।।

कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा सर्वाणि यो नृत्यति भूरिलीलः ।
स कालरुद्रोऽवतु मान्दवाग्नेर्व्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ।।३२९।।

प्रदीप्तविद्युत्कनकावभासो विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ।
चतुर्म्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्या दिशो रक्षतु मामजस्रम् ।।३३०।।

कुठारवेदाङ्कुशपाशशूलकपालढक्काक्षगुणान्दधानः ।
चतुर्म्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ।।३३१।।

कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकावदातो वेदाक्षमालावरदाभयाङ्कः ।
त्र्यक्षश्चतुर्व्वक्त्र उरुप्रभावः सद्योऽधिजातोऽवतु माम्प्रतीच्याम् ।।३३२।।

वराक्षमालाभयटङ्कहस्तः सरोजकिञ्जल्कसमानवर्णः ।
त्रिलोचनश्चारुचतुर्म्मुखो माम्पायादुदीच्यां दिशि वामदेवः ।।३३३।।

वेदाभयेष्टाङ्कुशटङ्कपाशकपालढक्काक्षकशूलपाणिः ।
सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान्मामीशान ऊर्द्ध्वम्परमप्रकाशः ।।३३४।।

मूर्द्धानमव्यान्मम चन्द्रमौलिर्भालम्ममाऽव्यादथ भालनेत्रः ।
नेत्रे ममाऽव्याद्भगनेत्रहारी नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ।।३३५।।

पायाच्छ्रुती मे श्रुतिगीतकीर्त्तिः कपोलमव्यात्सततङ्कपाली ।
वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ।।३३६।।

कण्ठङ्गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः पाणिद्वयम्पातु पिनाकपाणिः ।
दोर्मूलमव्यान्मम धर्मबाहुर्वक्षःस्थलन्दक्षमखान्तकोऽव्यात् ।।३३७।।

ममोदरम्पातु गिरीन्द्रधन्वा मध्यम्ममाऽव्यान्मदनान्तकारी ।
हेरम्बतातो मम पातु नाभिम्पायात्कटिन्धूर्जटिरीश्वरोऽव्यात् ।।३३८।।

[ऊरुद्वयम्पातु कुवेरमित्रो जानुद्वयम्मे जगदीश्वरोऽव्यात् ।][1]
जङ्घायुगम्पुङ्गवकेतुरव्यात्पादौ ममाऽव्यात्सुरवन्द्यपादः ।।३३९।।

महेश्वरः पातु दिनादियामे माम्मध्ययामेऽवतु वामदेवः ।
त्रियम्बकः पातु तृतीययामे वृषध्वजः पातु दिनान्तयामे ।।३४०।।

पायान्निशादौ शशिशेखरो माङ्गङ्गाधरो रक्षतु मान्निशीथे ।
गौरीपतिः पातु निशावसाने मृत्युञ्जयो रक्षतु सर्वकालम् ।।३४१।।

अन्तःस्थितं रक्षतु शङ्करो मां स्थाणुः सदा पातु बहिःस्थितम्माम् ।
तदन्तरे पातु पतिः पशूनां सदाशिवो रक्षतु मां समन्तात् ।।३४२।।

तिष्ठन्तमव्याद् भुवनैकनाथः पायाद् व्रजन्तम्प्रमथाधिनाथः ।
वेदान्तवेद्योऽवतु मान्निषण्णम्मामव्ययः पातु शिवश्शयानम् ।।३४३।।

मार्गेषु मां रक्षतु नीलरुद्रः शैलादिदुर्गेषु पुरत्रयारिः[2] ।
अरण्यवासादिमहाप्रवासे पायान्मृगव्याध उदारशक्तिः ।।३४४।।

कल्पान्तकाटोप[3]-पटुप्रकोपस्फुटाट्टहासोच्चलिताण्डकोशः ।
घोरादिसेनार्णवदुर्न्निवारो महाभयाद्रक्षतु वीरभद्रः ।।३४५।।

पत्त्यश्वमातङ्गघटावरूथसहस्रलक्षायुतकोटिभीषणम् ।
अक्षोहिणीनां शतमाततायिनाम्भिन्द्यान्मृडो घोरकुठारधारया ।।३४६।।

निहन्तु दस्यून्प्रलयानलार्च्चिज्ज्वलत्त्रिशूलन्त्रिपुरान्तकस्य ।
शार्दूलसिंहर्क्षवृकादिहिंस्रान्सन्त्रासयत्वीशधनुः पिनाकी ।।३४७।।

दुःस्वप्नदुःशकुनदुर्गतिदौर्मनस्यदुर्भिक्ष्यदुर्व्यसनदुस्सहदुर्यशांसि ।
उत्पाततापविषभीतिमसद्ग्रहार्त्तिव्याधींश्च नाशयतु मे जगतामधीशः ।।३४८।।

---

1. पादद्वयं क० पुस्तके नाऽस्ति । 2. क. पुरत्रपारिः । 3. क. कल्पान्तकाप्ये- ।

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्वात्मकाय सकलतत्त्वविदूराय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकलनिगमगुह्याय[1] सकलवरप्रदाय सकलदुरितार्त्तिभञ्जनाय सकलजगदभयङ्कराय सकललोकैकशङ्कराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजावासाय निर्गुणाय निरूपाय निराभासाय निरामयाय निष्प्रपञ्चाय निष्कलङ्काय निर्द्वन्द्वाय निस्सङ्गाय निर्म्मलाय निर्गमाय निरुपमविभवाय निराधाराय नित्यशुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तप्रकाशतेजोरूपाय, जय जय[2] महारुद्र महारौद्र भद्रावतार कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्गखड्गचर्मपाशाङ्कुशडमरुशूलचापबाणगदाशक्तिभिण्डिपालतोमरमुद्गरमुसल[3]–प्राशपट्टिशपरशुपरिघभुशुण्डीशतघ्नीचक्रायुधभीषणकरसहस्र मुखदंष्ट्राकरालविकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहारवलय नागेन्द्रचर्म्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विरूपाक्ष विश्वेश्वर विश्वरूप वृषभवाहन विषभूषण विश्वतोमुख सर्वतो रक्ष रक्ष मां ज्वल ज्वल महामृत्युभयं नाशय नाशय सर्वरोगभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पविषं शमय शमय[4] चोरान्मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय शूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेशय निष्पेशय बाणैः सन्ताडय रक्षांसि भीषय भीषय भूतान् विद्रावय विद्रावय कूष्माण्डवेतालमारीगणब्रह्मराक्षसान् सन्त्रासय सन्त्रासय मामभयङ्कुरु कुरु वित्रस्तमाश्वासयाश्वासय[5] नरकभयान्मामुद्धरोद्धर सञ्जीवय सञ्जीवय क्षुत्तृड्भ्यामाप्याययाप्यायय दुःखातुरमानन्दयानन्दय[4] शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादय त्र्यम्बक नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।।

इत्येतत्कवचं शैवं वरदं व्याहृतम्मया ।
सर्वबाधाप्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम् ।।३४९।।

यः सदा धारयेन्मर्त्यः शैवङ्कवचमुत्तमम् ।
न तस्य जायते क्वाऽपि भयं शम्भोरनुग्रहात् ।।३५०।।

क्षीणायुः पापमृत्युर्वा[6] महारोगहतोऽपि वा ।
सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ।।३५१।।

---

1. ख. ०मुह्याय । 2. क. द्विरुक्तिर्नास्ति । 3. क. ख. मुशल । 4. ख. द्विरुक्तिर्नास्ति ।
5. क. द्विरुक्तिर्नास्ति । 6. ख. प्राप्तमृत्युर्वा ।

सर्वदारिद्रयशमनं सौमङ्गल्यविवर्द्धनम् ।
यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि[1] पूज्यते ।।३५२।।

महापातकसङ्घातैर्मुच्यते सर्वपातकैः ।
देहान्ते मुक्तिमाप्नोति शिववर्मानुभावतः ।।३५३।।

त्वमपि श्रद्धया वत्स कवचं शैवमुत्तमम् ।
धारयस्व मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।।३५४।।

**।। इति श्रीस्कन्दपुराणे शिवकवचं समाप्तम् ।।**

**इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-**
**गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**।। सप्तत्रिंशस्तरङ्गः ।।३७।।**

---

## ।। अष्टत्रिंशस्तरङ्गः ।।

**अथ शक्तिमन्त्राणां विधानमुपदिश्यते ।**

**तत्र श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—**

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि भुवनानन्दमन्दिरम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण पलायन्ते महापदः ।।१।।

शिवं वह्निसमारूढं वामाक्षिपरिभूषितम् ।
बिन्दुनादकलाक्रान्तं विज्ञेया भुवनेश्वरी ।।२।।

शिवः हकारः, वह्नी रेफः, वामाक्षिः ईकारः, विन्दुरनुस्वारः, नादकला अर्द्धचन्द्रः । अस्य बीजस्य माहात्म्यमुक्तम्-

**भुवनेश्वरीपारिजाते—**

मत्समः पुरुषो नाऽस्ति त्वत्समा नाऽस्ति चाऽङ्गना ।
मायाबीजसमो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति ।।३।।

अस्य मन्त्रस्य त्र्यक्षरा नव भेदाः **पदार्थादर्शे** निरूपिताः । यथा वाक्पुटितत्वम्, वाक्श्रीपुटितत्वम्, वाक्कामपुटितत्वम् । श्रीपुटितत्वम्, श्रीकामपुटितत्वम्, श्रीवाक्पुटितत्वम् । कामपुटितत्वम्, कामश्रीपुटितत्वम्, कामवाक्पुटितत्वम् । तदुक्तम्—

कामाद्यन्ता प्रभवति यदा सर्वकामेश्वरी सा,
साद्यन्तश्रीः सुतधनफला वाक्प्रदा वाग्भवेन ।
एवम्व्यस्तैर्विरचितपुटा कामधुक् सा हि शक्तिः ।।इति।।

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्**—

ऋषिः शक्तिर्वसिष्ठस्य[1] सुतश्छन्दोऽथ कथ्यते ।
गायत्रन्देवता बोधवाचि संवित्कला परा ।।३।।

शिवतुर्य्ये[2] बीजशक्ती कीलकं रेफ उच्यते ।
ददाति भुवनेशानी पुरुषार्थचतुष्टयम् ।।४।।

**शारदातिलके**—

षड्दीर्घयुक्तबीजेन कुर्य्यादङ्गानि षट् क्रमात् ।
संहारसृष्टिमार्गेण मातृकान्यस्तविग्रहः ।।५।।

मन्त्रन्यासन्ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये ।
हृल्लेखां मूर्ध्नि वदने गगनां हृदयाम्बुजे ।।६।।

रक्तां करालिकां गुह्ये महोच्छुष्माम्पदद्वये ।
ऊर्द्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु च ।।७।।

सद्यादिह्रस्वबीजाद्या न्यस्तव्या भूतसप्रभाः ।

सद्य ओकारः, तदादयः पञ्च ह्रस्वाः ओ ए उ इ अ इत्याद्याः हृल्लेखाद्याः शक्तयो न्यस्तव्या इत्युक्तम् ।

**दशपटल्यान्तु**—

सद्योष्ठशुचिनेत्राद्यैर्विद्यां सम्भेदमन्त्रवित्[3] ।
हृल्लेखाद्याः प्रविन्यस्येद्यथास्थानं विचक्षणः ।।८।।

---

1. क. वशिष्ठस्य । 2. ख. शिवचतुर्थे । 3. ख. सम्भेद्य० ।

इत्युक्तेः 'ह्लों ह्लें ह्लुं ह्लिं ह्लं' इति पञ्चबीजादिकास्तत्तच्छक्तयो न्यस्तव्या इति । अत्र यथोपदेशं न्यस्तव्यः । तथा—

अङ्गानि विन्यसेत्पश्चाज्जातियुक्तेन षट् क्रमात् ।

**सारसङ्ग्रहे—**

कण्ठे न्यसेच्च गायत्रीं सावित्रीं वामगे कुचे ।
सरस्वतीं दक्षकुचे ब्रह्माणं वामगेंऽसके ॥९॥

हृदि विष्णुं महेशञ्च दक्षिणेंऽसे प्रविन्यसेत् ।

**शारदातिलके—**

ब्रह्माणं विन्यसेद्भाले गायत्र्या सह संयुतम् ।
सावित्र्या संयुतं विष्णुं कपोले दक्षिणे न्यसेत् ॥१०॥

वागीश्वर्य्या समायुक्तं वामगण्डे महेश्वरम् ।
श्रिया धनपतिम्पश्चाद्वामकर्णाग्रके पुनः ॥११॥

रत्या स्मरं मुखे न्यस्येत्पुष्टया[1] गणपतिन्न्यसेत् ।
सव्यकर्णोपरि निधी कर्णगण्डान्तरालयोः ॥१२॥

न्यस्तव्यौ वदने मूलम्भूयश्चैतास्तनौ न्यसेत् ।
कण्ठमूले स्तनद्वन्द्वे वामांसे हृदयाम्बुजे ॥१३॥

सव्यांसे पार्श्वयुगले नाभिदेशे च देशिकः ।
भालांशपार्श्वजठरे पार्श्वांशापरके हृदि ॥१४॥

ब्रह्माण्याद्यास्तनौ न्यस्या विधिना प्रोक्तलक्षणाः ।
मूलेन व्यापकन्देहे न्यस्य देवीं विचिन्तयेत् ॥१५॥

उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां,
　　तुङ्गकुचान्नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशा-
　　ऽभीतिकराम्प्रभजे भुवनेशीम् ॥१६॥

1. ख. ०तुष्टया ।

वरदादिस्थितिक्रमस्तु **पदार्थादर्शे**—वामाधोहस्ते वरम्, दक्षिणोर्द्ध्वेऽङ्कुशम्, वामोर्द्ध्वे पाशम्, दक्षाधोऽभयमिति सम्प्रदायविदः । तदुक्तम्—

**महासम्मोहने**—

दक्षिणेनाऽङ्कुशन्दद्याद्वामे पाशम्प्रदापयेत् ।
वरदं वामतो दद्यादभयन्दक्षिणे करे ।।१७।। इति ।।

**दशपटल्यामप्येवमुक्तं यथा**—

दक्षेंऽकुशाभये प्रोक्ते वामे पाशमथेष्टदमिति ।

**सारसङ्ग्रहे तु**—

उद्यदादित्यरुचिरां शीतांशुकृतशेखराम् ।
पद्मासनां त्रिनेत्राञ्च पाशाङ्कुशवराभयैः ।।१८।।

अलङ्कृतचतुर्बाहुंम्मन्दस्मितलसन्मुखीम् ।
कुचभारविनम्राङ्गलतान्देवीं हृदि स्मरेत् ।।१९।।

अत्र पाशादिस्थितिक्रमस्तु वामोर्ध्वकरादि वामाधःकरान्तमिति बोध्यम् । अत्र यथोपदेशं यथेष्टं वा ध्यानं विधेयम् । पद्मासनामित्यत्र रक्तपद्मं ध्येयम् । तदुक्तम्—

**प्रयोगसारे**—

रक्ताम्भोजं समाधाय रक्तसिंहासनोपरि ।
तत्राऽऽवाह्य हृदा देवीमिति ।

ध्यानान्तरं मुद्राप्रदर्शनं विधेयम् । यदाहुः —

एवं शक्तिम्परां ध्यात्वा सम्यङ्मुद्राः प्रदर्शयेत् ।
पाशाङ्कुशभयाभीष्टपुस्तकज्ञानयोनय इति ।।२०।।

आसाँ लक्षणानि तु प्रयोगे वोक्तानि ।

**दशपटल्याम्**—

सर्वान्ते मोहिनी ङेन्ता विद्महे तदनन्तरम् ।
विश्वशब्दजनन्यै च धीमहीति ततो वदेत् ।।२१।।

तन्नः क्लिन्ना प्रशब्दान्ते चोदयादिति चोच्चरेत् ।
गायत्र्येषा समाख्याता भुवनेश्या इति ।।२२।

**सारसङ्ग्रहे**—

आदौ कृत्वा तु षट्कोणं तद्बाह्ये ऽष्टदलाम्बुजम् ।
तद्बाह्ये षोडशदलं चतुरश्रत्रयम्बहिः ।।२३।।

चतुर्द्वारसमोपेतम्मण्डलम्प्रोक्तमुत्तमम् ।

**शारदातिलके**—

ततः सम्पूजयेत्पीठन्नवशक्तिसमन्वितम् ।।२४।।

जयाख्या विजया पश्चादजिताह्वाऽपराजिता ।।
नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मङ्गला नव ।।२५।।

बीजाद्यमासनन्दत्वा मूर्तिन्तेनैव कल्पयेत् ।

**पदार्थादर्शे**—

सर्वशक्तिपदम्प्रोक्त्वा[1] ङेन्तं च कमलासनम् ।
नम इत्यासनम्पूज्यमेतद्बीजादिकं शिवे ।।२६।।

तथा— तस्यां सम्पूजयेद्देवीमावाह्याऽऽवरणैः क्रमात् ।
मध्यप्राग्याम्यसौम्येषु पश्चिमेषु यथाक्रमात् ।।२७।।

हृल्लेखाद्याः समभ्यर्च्याः पञ्चभूतसमप्रभाः ।
वरपाशाङ्कुशाभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः ।।२८।।

स्थानेषु पूर्वमुक्तेषु पूजयेदङ्गदेवताः ।
षट्कोणेषु यजेन्मन्त्री पश्चान्मिथुनदेवताः ।।२९।।

इन्द्रकोणे लसद्दण्डकुण्डिकाक्षगुणाभयाम् ।
गायत्रीम्पूजयेन्मन्त्री ब्रह्माणमपि तादृशम् ।।३०।।

रक्षःकोणे चक्रशङ्खगदापङ्कजधारिणीम् ।
सावित्रीम्पीतवसनां यजेद्विष्णुं च तादृशम् ।।३१।।

---

1. ख. ०प्रोक्ता ।

वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्वितम् ।
यजेत्सरस्वतीमच्छां रुद्रन्तादृशलक्षणम् ।।३२।।

वह्निकोणे यजेद्रत्नकुम्भम्मणिकरण्डकम् ।
कराभ्याम्बिभ्रतम्पीतन्तुन्दिलन्धननामकम् ।।३३।।

आलिङ्ग्य सव्यहस्तेन वामेनाऽम्बुजधारिणीम् ।
धनदाङ्कसमारूढाम्महालक्ष्मीम्प्रपूजयेत् ।।३४।।

वारुणे मदनम्बाणपाशांकुशशरासनान् ।
धारयन्तञ्जपारक्तं पूजयेद्रत्नभूषणम् ।।३५।।

सव्येन[1] पतिमाश्लिष्य वामेनोत्पलधारिणीम् ।
पाणिना रमणाङ्कस्थां रतिं सम्यक् समर्चयेत् ।।३६।।

ऐशान्ये पूजयेत्सम्यग्विघ्नराजम्प्रियान्वितम् ।
शृणिपाशधरङ्कान्तावराङ्गस्पृक्कराङ्गुलिम् ।।३७।।

माध्वीपूर्णकपालाढ्यं विघ्नराजन्दिगम्बरम् ।
पुष्करे विगलद्रत्नस्फुरच्चषकधारिणम् ।।३८।।

सिन्दूरसदृशाकारामुद्दाममदविभ्रमाम् ।
धृतरक्तोत्पलामन्यपाणिना तद्ध्वजस्पृशाम् ।।३९।।

आश्लिष्टकान्तामरुणाम्पुष्टिमर्च्चेद्दिगम्बराम् ।
कर्णिकायां निधी पूज्यौ षट्कोणोभयपार्श्वयोः ।।४०।।

अङ्गानि केसरेष्वेताः पश्चात्पत्रेषु पूजयेत् ।
अनङ्गकुसुमा पश्चादनङ्गकुसुमातुरा ।
अनङ्गमदना तद्वदनङ्गमदनातुरा ।।४१।।

भुवनपाला गगनवेगा चैव ततः परम् ।
शशिरेखाऽथ गगनरेखा चेत्यष्टशक्तयः ।।४२।।

पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्योऽरुणविग्रहाः ।
ततः षोडशपत्रेषु कराली विकराल्युमा ।।४३।।

---

१. क. सव्येण ।

सरस्वती श्रीर्दुर्गोषा लक्ष्मीश्रुत्यौ स्मृतिर्धृतिः ।
श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडशशक्तयः ।
खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याश्च मातरः ।।४४।।

पद्माद्बहिः समभ्यर्च्याः शक्तयः परिवारिकाः ।
प्रथमानङ्गरूपा स्यादनङ्गमदना ततः ।।४५।।

मदनातुरा भुवनवेगा तथा भुवनपालिका ।
स्यात्सर्वशिशिराऽनङ्गमदनाऽनङ्गमेखला ।।४६।।

चषकन्तालवृन्तञ्च ताम्बूलं छत्रमुज्ज्वलम् ।
चामरे चांऽशुकम्पुष्पं बिभ्राणां करपङ्कजैः ।।४७।।

सर्वाभरणसन्दीप्ताँल्लोकपालान्बहिर्यजेत् ।
वज्रादीनपि तद्बाह्ये[1] देवीमित्थम्प्रपूजयेत् ।।४८।।

पूज्यते सकलैर्लोकैः किम्पुनर्मनुजोत्तमैः ।

**।। अथप्रयोगः ।।**

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—शक्तिऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि—भुवनेश्वरीदेवतायै नमः, गुह्ये हं बीजाय नमः, पादयोः— ईं शक्तये नमः, नाभौ—रं कीलकाय नमः" इति विन्यस्य मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रां ह्रीमित्यादिकरषडङ्गन्यासं विधाय हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् । "मूर्ध्नि—ॐ हृल्लेखायै नमः, वक्त्रे—एँ गगनायै नमः, हृदि—उँ रक्तायै नमः, गुदे—इँ करालिकायै नमः, पादयोः—अँ महोच्छुष्मायै नमः" इति विन्यस्य, पुनरेता एव शक्तीरूर्द्ध्वप्राग्दक्षिणोदक्प्रत्यग्वक्त्रेष्वपि विन्यस्य,

"कण्ठे—गायत्र्यै नमः, वामकुचे—सावित्र्यै नमः, दक्षे—सरस्वत्यै नमः, वामांसे—ब्रह्मणे नमः, हृदि—विष्णवे नमः, दक्षांसे—महेशाय नमः, भाले—गायत्र्यै ब्रह्मणे नमः, दक्षकपोले—सावित्र्यै विष्णवे नमः, वामे—माहेश्वर्य्यै रुद्राय नमः,

१. ख. वज्रादीनि तद्बाह्ये ।

वामश्रोत्रे[1] —श्रियै धनपतये नमः, मुखे—रत्यै कामाय नमः, दक्षकर्णे —पुष्ट्यै गणपतये नमः, दक्षकर्णकपोलयोर्मध्ये—वसुधारायै शङ्खनिधये नमः, वामे—वसुमत्यै पद्मनिधये नमः, मुखे—ह्रों नमः" इति विन्यस्य, गलमूले, वामदक्षकुच योर्वामांसहृदयदक्षांसेषु, दक्षवामपार्श्वयोश्च प्रोक्तमिथुनाष्टकम्पुनर्विन्यस्य,

"ललाटे—आँ ब्राह्म्यै नमः, वामांसे—ईं माहेश्वर्य्यै नमः, वामपार्श्वे—ॐ कौमार्य्यै नमः, उदरे—ॠँ वैष्णव्यै नमः, दक्षपार्श्वे-ॡँ वाराह्यै नमः, दक्षांसे—ऐं इन्द्राण्यै नमः, ककुदि—औं चामुण्डायै नमः, हृदि—अः महालक्ष्म्यै नमः" इति विन्यस्य, मूलमन्त्रेण व्यापकं कृत्वा, ध्यानमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिनाऽष्टदलकमलङ्कृत्वा, तत्कर्णिकायां षट्कोणं विधाय, पद्माद्बहिः षोडशदलपद्मं विरच्य, तद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तं चतुरश्रत्रयङ्कुर्यात् ।

इति पूजाचक्रं निर्म्माय, पुरतः संस्थाप्याऽभ्यर्च्याऽर्घाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिज्ञानात्मान्तम्पीठमभ्यर्च्य, केसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन—"ॐ जयायै नमः, एवं विजयायै०, अजितायै०, अपराजितायै०, नित्यायै०, विलासिन्यै०, दोग्ध्र्यै०, अघोरायै०, मङ्गलायै नमः" इति मध्यान्तं सम्पूज्य, "ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः" इति समस्तपीठं सम्पूज्य, मूर्त्तिकल्पनादिपुष्पोपचारान्ते लयाङ्गमभ्यर्च्य, षट्कोणाभ्यन्तरे, मध्ये, देव्यग्रे, देव्या दक्षिणोत्तरपृष्ठेषु च हृल्लेखाद्याः पञ्चशक्तीः सम्पूज्य, प्राग्वत् षडङ्गानभ्यर्च्य, षट्कोणस्य देव्यग्रकोणे-

"गायत्रीयुक्ताय ब्रह्मणे नमः, निर्ऋतिकोणे—सावित्रीयुताय विष्णवे नमः, वायव्ये—सरस्वतीयुताय[2] रुद्राय नमः, वह्निकोणे[3]—लक्ष्मीयुताय धनदाय नमः, पश्चिमे—रतियुताय कन्दर्प्पाय नमः, ऐशान्ये- पुष्टियुताय गणपतये नमः" इति मिथुनषट्कं सम्पूज्य, षट्कोणस्य दक्षवामपार्श्वयोः—"शँ शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः, पँ पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः" इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन—

"अनङ्गकुसुमायै नमः, अनङ्गकुसुमातुरायै०, अनङ्गमदनायै०, अनङ्गमदनातुरायै०, भुवनपालिन्यै०, गगनवेगायै०, शशिरेखायै०, गगनरेखायै नमः" इति

1. क. वामश्रो । 2. ख. सर सरस्वतीयुताय :
3. क. ख. वह्नीकोणे ।

सम्पूज्य, षोडशदलेषु—"करालयै नमः, विकरालयै०, उमायै०, सरस्वत्यै०, श्रियै०, दुर्गायै०, उषायै, लक्ष्म्यै०, श्रुत्यै, स्मृत्यै०, धृत्यै०, श्रद्धायै०, मेधायै०, मत्यै०, कान्त्यै०, आर्यायै नमः" इति प्रादक्षिण्येनाऽभ्यर्च्य, तद्बहिर्दलसन्धिषष्टदिक्षु ब्राह्मयाद्यष्टकं सम्पूज्य, षोडशदलचतुरश्रान्तरालेऽष्टदिक्षु देव्यग्रमारभ्य—

"अनङ्गरूपायै नमः, अनङ्गमदनायै०, अनङ्गमदनातुरायै०, भुवनवेगायै०, भुवनपालिकायै०, सर्वशिशिरायै०, अनङ्गवेदनायै०, अनङ्गमेखलायै नमः" इति सम्पूज्य तद्बहिः प्राग्वल्लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति । अत्रैवं विस्तरपूजाशक्तौ संक्षेपमाह—

**महामोहनतन्त्रे[1]**—

चतुर्भिर्वा त्रिभिर्वाऽपि द्वयेनकेन वा पुनः ।
सर्वैरावरणैरेव भोगार्थी विस्तरं यजेत् ।।४९।।

चतुर्भिः हृल्लेखादिषडङ्गलोकपालतदायुधैः, त्रिभिः अङ्गलोकेशतदस्त्रैः, द्वयेन अङ्गलोकपालाभ्याम्, एकेन अङ्गषट्केनैव । इति संक्षेपप्रकाराश्चत्वारः ।

तथा—

द्वात्रिंशल्लक्षमानेन जपेन्मत्रं समाहितः ।
तद्दशांशं हुनेदष्टद्रव्यैस्त्रिस्वादुसंयुतैः ।।५०।।

तर्प्पणादि ततः कुर्य्यान्मन्त्री शास्त्रोक्तवर्त्मना ।

**अष्टद्रव्याणि तु**—

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधसमिधस्तथा ।।५१।।

तिल सर्षपदुग्धाज्यं द्रव्याव्यष्टौ मतानि च ।
प्रतिद्रव्येण पृथक्पृथक् अयुतचतुष्टयं होतव्यम् ।
अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।।५२।।

एकलिङ्गे शिवागारे दक्षिणामूर्तिमाश्रितः ।
बद्धपद्मासनो भस्मस्नायी[2] च कुशविष्टरः ।।५३।।

---

1. ख. महासम्मोहनतन्त्रे । 2. ख. भस्मस्नापी ।

कृष्णाष्टमीं[1] समारभ्य यावत्स्यात्तच्चतुर्दशी ।
नित्यमिष्ट्वा शिवं शक्तिं जपेन्मन्त्रं सहस्रकम् ।।५४।।

दधिक्षौद्रघृताभ्यक्ता व्याघातसमिधो हुनेत् ।

व्याघात आरग्वधः ।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री सर्वान्कामान्प्रसाधयेत् ।।५५।।

नित्यं सौभाग्यदस्पञ्चविंशज्जप्ताभिषेचनम् ।
मेधावी च भवेद् वाग्मी तद्वज्जप्ताम्बुपानतः ।।५६।।

जिह्वाग्रे न्यस्य जप्तञ्च[2] वाक्सिद्धिकविताकरम् ।
तज्जप्तमञ्जनं वश्यं कर्पूरागुरुमिश्रितम् ।।५७।।

सासृग्भस्मारुणालेपैर्वश्याय तिलकक्रिया ।
जानुमात्रे जले स्थित्वा निश्चलोन्मीलितेक्षणः ।।५८।।

जपेत्सहस्रं तद्राध्याविष्टामाकर्षयेत्स्त्रियम् ।
लाजैः कन्यामवाप्नोति तिलैरारोग्यमश्नुते ।।५९।।

पुष्टिमान् दधिहोमेन तण्डुलैश्च तथा भवेत् ।
ब्राह्मीरसयुतान् लाजान् वचया च समन्वितान् ।।६०।।

त्रिसहस्रेणाऽभिमन्त्र्य मासमेकम्प्रभक्षयेत् ।
बृहस्पतिसमो मन्त्री सर्वविद्याधिपो भवेत् ।।६१।।

अश्वत्थसमिधः स्वादुयुक्ता हुत्वा द्विजानसौ ।
वशयेत्पद्महोमेन राज्ञस्तन्मन्त्रिणस्तथा ।।६२।।

कुमुदै राजपत्नीश्च ब्रह्मवृक्षप्रसूनकैः ।
तण्डुलानाम्पिष्टकृतां प्रतिमां स्वादुसंयुताम् ।।६३।।

कृतप्राणप्रतिष्ठान्तां सञ्जप्ताम्मनुनाऽमुना ।
भक्षयेत्तामर्कवारे ततः कुर्याद्विशन्नरम् ।।६४।।

---

1. ख. कृष्णाष्टमी । 2. ख. सञ्जप्तं ।

राजानम्प्रमदां वाऽपि यं यं वाञ्छत्यनुत्तमम् ।
फलके भूतिना शक्ति ससाध्यां[1] विलिखेत्सुधीः ।।६५।।

गर्भिण्यै दर्शयेदाशु सा सुखप्रसवा भवेत् ।

**।। अथ यन्त्राणि ।।**

शक्त्यन्तस्थितसाध्यकर्मभवने वह्न्यावृतं शक्तिभि—
बह्यि कोणगतेयुतं हरिहरैर्वर्णैः कपोलार्पितैः ।
पश्चात्तैः पुनरीयुतैर्लिपिभिरप्यावीतमिष्टार्थदम्,
यन्त्रं भूपुरमध्यगं[2] त्रिगुणितं सौभाग्यसम्पत्प्रदम् ।।६६।।

दीर्घायुष्यप्रदंवश्यकरं सर्वार्थसिद्धिदम् ।

कोणगतेयुतमिति कोणगतेन ईकारेण युतमित्यर्थः । सबिन्दुनेति सम्प्रदायः ।

**अस्यार्थः**—

इन्द्ररक्षोवायुदिग्गतकोणत्रय[3]- त्र्यस्रमग्निमण्डलं विधाय, तन्मध्ये भुवनेश्वरीबीजं विलिख्य, तस्य रेफस्थाने साध्यनाम, ईकारस्थाने साधकनाम, तयोर्मध्ये कर्म च विलख्य, तद्भुवनेश्वरीबीजैरावेष्टय, त्रिकोणस्य कोणत्रयाभ्यन्तरे सबिन्दुकमीकारं विलिख्य, त्रिकोणाग्रेषु भुवनेश्वरीबीजं प्रतिकोणं विलिख्य, तेषां त्रयाणामेकैकबीजस्य रेफेण तत्तद्वीजं प्रदक्षिणीकृत्याऽन्योन्यस्येकाराग्रं परस्परं बध्नीयात् । ततः कोणत्रयपार्श्वयोः 'हरिहर' इति वर्णचतुष्टयं विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा, तन्मध्यगतवीथीद्वये प्रथमवीथ्यां स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन[4] 'हरि ई हर ई' इति वर्णैः पुनः पुनर्लिखितैरावेष्टय, द्वितीयवीथ्यां अकारादिक्षकारान्तैः सबिन्दुकैर्मातृकाक्षरैः स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन वेष्टयित्वा, सर्वबाह्ये चतुरश्रं कुर्यादेतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवति । तथा—

अत्राऽपि सम्पदे देवीं यथाविधि समाहितः ।
हृल्लेखाद्याः समभ्यर्च्य पूर्ववत्साधकः स्वयम् ।।६७।।

---

1 ख. ससाध्यं । 2. क. भूपुरमध्यग ।
3. ख. ०कोणत्रये । 4. क. ख. प्रादक्षिणेन ।

अङ्गानि पूजयेत्पश्चाद् गायत्र्याद्याः प्रपूजयेत् ।
प्रागग्रबीजे गायत्रीं सावित्रीं दक्षिणाश्रगे ।।६८।।

सरस्वतीं मारुतस्थे ब्रह्माणं वह्निगे तथा ।
वारुणे विष्णुमीशञ्च यजेदीशे ततो बहिः ।।६९।।

ब्रह्माण्याद्या लोकपालास्तद्बाह्ये कुलिशादयः ।
एवन्त्रिगुणिते देवीस्पूजयेत्साधकोत्तमः ।।७०।।

तथा—बीजान्तस्थितसाध्यनामशरशोमायारमामन्मथै-
र्वीतं वह्निपुरद्वये रसपुटेष्वालिख्य बीजत्रयम् ।

सात्मानात्मकभीशिखं हरिहरैराबद्धगण्डम्बहिः,
षड्बीजैरनुबद्धसन्धिलिपिभिर्वीतं गृहास्याम्भुवः ।।७१।।

चिन्तामणिनृसिंहाभ्यां लसत्कोणमिदंल्लिखेत् ।
बहिः षोडशशूलाङ्कमतीव च मनोरमम् ।।७२।।

एतत् षड्गुणितं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरम्परम् ।

**अस्यार्थः**—

तत्र स्वेष्टमानभ्रमेण वृत्तं कृत्वा, प्राक्प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रमास्फाल्य, तदग्रयोः सन्धिमवष्टभ्य, वृत्तार्द्धपरिमाणेन सूत्रेण वृत्तसन्दष्टं मत्स्यद्वयं मत्स्यद्वयं दक्षिणोत्तरयोः कुर्यात् । एवङ्कृते मत्स्यचतुष्कं सम्पन्नम्भवति । ततः पूर्वमत्स्यद्वये पश्चिममत्स्यद्वये च दक्षिणोत्तरं तिर्यक्सूत्रद्वयमास्फाल्य, ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रे निधाय, पश्चिममत्स्यद्वयोदरयोः[1] स्तिर्यक्क्रमसूत्रद्वयमास्फाल्य, पुनर्ब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रे निधाय, पूर्वदिङ्मत्स्योदरयोः सूत्रद्वयमास्फालयेत् । एवं कृते वह्निमण्डलद्वयं जायते । ततो वृत्तं प्राचीसूत्रञ्च मार्जयेत् । इत्येवं षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये शक्तिबीजमालिख्य, तस्य रेफभागे साध्यनामाऽऽलिख्य, तस्यैकारस्वरभागे साधकनामाऽऽलिख्य[2], रेफैकारयोरन्तराले साधकांशे कर्म लिखेदित्येवं स्वाभिमतं विलिख्य, मध्यस्थबीजम्परितो वेष्टनप्रकारेण पञ्चधा शक्तिबीजं विलिख्य,

1. क. पश्चिममत्स्यद्वयोः । 2. ख. नामालिख

तद्बहिः पञ्चधा श्रीबीजं, पुनस्तद्बहिः पञ्चधा कामबीजं विलिख्य, षट्कोणस्योर्ध्व गतकोणत्रये उत्तरमध्यदक्षिणक्रमेण शक्तिश्रीकामबीजानि प्रतित्रिकोणमेकैकं बीजं साधकनामयुतं विलिख्याऽधोगतत्रिकोणत्रये तान्येव बीजानि विसर्गयुक्तानि ससाध्यनामानि दक्षिणमध्योत्तरक्रमेण विलिख्य, षट्स्वपि त्रिकोणोदरेषु सबिन्दु चतुर्थस्वरमालिख्य, षट्कोणस्य प्रतिकोणपार्श्वयोः 'हरिहर' इति द्वादशधा विलिख्य, षट्सु त्रिकोणाग्रेषु प्रतिकोणाग्रमेकमेकं शक्तिबीजं विलिख्य पूर्ववदेकैकान्तरितम्बध्नीयात् । उक्तञ्चाचार्यचरणैः—

एकैकान्तरितास्तास्तु सम्बध्युरितरेतरमिति ॥७३॥

ततो बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा, वीथीद्वयं निष्पाद्य[1], तत्राभ्यन्तरवीथ्यां स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन सबिन्दूनकारादिक्षकारान्तान्मातृकावर्णान् विलिख्य, बहिर्वीथ्यान्तानेव क्षकाराद्यकारान्तक्रमेण प्रादक्षिण्येन विलिखेत् । उक्तञ्चाऽऽचार्यचरणैः—

बाह्ये रेखामन्तराः स्युर्वर्णाः क्रमगताः शुभाः ।
तद्बहिः प्रतिलोमाश्च ते स्युर्लेखकपाटवादिति ॥७४॥

ततो बहिरष्टकोणं विधाय, तस्य दिग्गतक्रमेण चतुष्के वक्ष्यमाणं नृसिंह-बीजं विलिख्य, विदिग्गते कोणचतुष्के वक्ष्यमाणं[2] चिन्तामणिबीजं विलिख्याऽष्ट-कोणस्थरेखाष्टकप्रांतषोडशके[3] षोडश त्रिशूलानि कुर्यात् । उक्तञ्चाऽऽचार्य-चरणैः—

बहिः षोडशशूलाङ्कं शोभनं व्यक्तवर्णवदिति ।

एतत्षड्गुणितं यन्त्रमुक्तफलदं भवति । तथा—

अत्र देवीं यजेन्मन्त्री यद्यस्योपरि शोभनम् ॥७५॥

पद्मं द्वादशपत्रञ्च षड्विंशत्केसरान्वितम् ।
बहिश्च राश्यादिकेन युक्तं कुर्यान्मनोहरम् ॥७६॥

नवशक्तियुतम्पीठं सम्पूज्याऽऽवाह्य देवताम् ।
सम्पूजयेच्चन्दनाद्यैरुपचारैश्च पूर्ववत् ॥७७॥

---

1. ख. निरव्याद्य । 2. ख. पर्वोक्तं । 3. ख. ०प्रान्ते ।

प्रोक्तवच्च षडङ्गानि मिथुनानि च संयजेत् ।
बहिर्द्वादश शक्तीश्च रक्ताद्याः संयजेत्क्रमात् ॥७८॥

रक्ता चाऽनङ्गकुसुमा नित्या च कुसुमातुरा ।
अनङ्गमदना तद्वद्भूवेच्च मदनातुरा ॥७९॥

गौरी च गगना तद्वद्रेखान्तं गगनम्पदम् ।
[पद्माऽभया प्रमथिनी द्वादशी शशिशेखरा ॥८०॥

बाह्ये मातृश्च लोकेशान् कुलिशादीनि तद्बहिः ।

तद्वद्भूवेच्च मदनातुरेत्यनङ्गमदनातुरेत्यर्थः । रेखान्तं गगनम्पदं][1] गगनरेखेत्यर्थः ।

अनेन विधिना मन्त्री योऽर्चयेद् भुवनेश्वरीम् ॥८१॥

स लक्ष्मीनिलयो भूयात् त्रिदशैश्चाऽभिवन्दितः ।
देहान्ते शिवसायुज्यं स प्राप्नोति सुनिश्चितम् ॥८२॥

तथा— बीजं व्याहृतिभिर्वृतं गृहयुगद्वन्द्वे वसोः कोणग-
न्दौर्गम्बीजमनन्तरं लिपियुतैराबद्धगण्डं लिखेत् ।

गायत्र्या रविशक्तिबद्धविवरं त्रिष्टुब्युतं तत्ततो
बीजं[2] मातृकया धरापुरयुगे सत्सिंहचिन्तामणिः ॥८३॥

यन्त्रं दिनेशगुणितम्प्रोक्तं रक्षाप्रसिद्धिदम् ।
सर्वसौभाग्यजननं सर्वशत्रुनिवारणम् ॥८४॥

**अस्यार्थः**— तत्र प्राग्वत् षट्कोणमालिख्य तस्य सन्धिषट्के त्रिकोणषट्कं यथा व्यक्तम्भवति तथा गुरूक्तयुक्त्या षट्कोणान्तरं विलिख्य, तन्मध्ये प्राग्वत् साध्यसाधककर्मयुक्तं शक्तिबीजमालिख्य, तत्प्रतिलोमेन व्याहृतिभिर्व्वेष्टयेत् ।

**तदुक्तमाचार्य्यैः**— 'शक्तिम्प्रवेष्टयेच्च प्रतिलोमव्याहृतिभिरन्तस्थाम्' । इति ।

---

1. [—] कोष्ठगतोऽशः क. पुस्तके नाऽस्ति । 2. ख. वीतं ।

ततो द्वादश त्रिकोणोदरेषु 'दुं' इति दुर्गाबीजं विलिख्य, तेष्वेव सानुस्वारं चतुर्थस्वरं लिखेत्। तदुक्तमा**चार्यचरणैः**—

'रविकोणेषु दुरन्तां मायां लिखेदथाऽत्र[1] बिन्दुमतीम्'। इति।

ततो द्वादशत्रिकोणपार्श्वद्वये प्रतिपार्श्वमेकमिति क्रमेण वैदिकगायत्र्याश्चतुर्विंशतिवर्णान् सबिन्दून् प्रादक्षिण्येन प्रतिलोमगतान्। उक्तञ्चाऽऽ**चार्यचरणैः**—

'गायत्रीम्प्रतिलोमतः प्रविलिखेदग्नेः कपोलमिति।'

ततः पूर्ववद्द्वादशत्रिकोणाग्रेषु शक्तिबीजानि विलिख्य, तानि परस्परं पूर्ववदेकान्तरितं बध्नीयात्। तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तयोरन्तरालगतवीथ्याम्—

'जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।

स नः पर्षदतिदुर्गाणि[2] विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः'।

इति त्रिष्टुभ्मन्त्रस्य सबिन्दुभिर्व्वर्णैः प्रतिलोमेन वेष्टयेत्। उक्तञ्चाऽऽ**चार्यचरणैः**—'बहिश्च रचयेद्भूयस्तथा त्रिष्टुभमिति'। तत्र **श्रीपद्मपादाचार्यव्याख्या**—तथा त्रिष्टुभमिति प्रतिलोमेनेत्यर्थः।

ततः प्राग्वदनुलोममातृकया च विलोममातृकया संवेष्टच, तद्बहिरष्टकोणं कृत्वा, प्राग्वत्तत्कोणेषु नृसिंहबीजं चिन्तामणिबीजञ्च विलिख्य, तथैव षोडशशूलयुक्तं कुर्यादित्येतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवति। तथा—

भुनेशीमत्र[3] यजेद्यदि साधकसत्तमः।
तदाऽस्य विलिखेद्बाह्ये पद्मं षोडशपत्रकम्॥८५॥

बहिश्च राशिवीथ्यादियुतं नेत्रमनोहरम्।
तत्र मध्ये यजेद्देवीमङ्गानि तदनन्तरम्॥८६॥

हृल्लेखाद्याश्चतस्रोऽपि ब्राह्म्याद्याश्च ततो यजेत्।
कराल्याद्याश्च षोडश पूजयेच्च ततो बहिः॥८७॥

द्वात्रिंशच्चैव विद्याद्याश्चतुष्षष्टिस्ततो बहिः।
पिङ्गलाद्यादिका बाह्ये लोकपालांस्तदायुधैः॥८८॥

1. क. लिखेदद्यात्र। 2. ख. पर्षदतिदुर्गाणि। 3. ख. भुवनेशीमंत्र।

एवं यः पूजयेद्भक्त्या पूर्वोक्तं द्विगुणम्फलम् ।
लभते साधकः शीघ्रं देवानामपि दुर्ल्लभम् ।।८९।।

विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूस्तथा ।
रुद्रवीर्या प्रभा नन्दा पोषिणी सिद्धिदा शुभा ।।९०।।

कालरात्रिर्भद्रकाली महारात्रिः कपालिनी ।
विकृतिर्दण्डमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी ।।९१।।

निशुम्भशुम्भमथिनी महिषासुरमर्दिनी ।
इन्द्राणी चैव रुद्राणी शङ्करार्द्धशरीरिणी ।।९२।।

नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी ।
अम्बिका ह्लादिनी चैव द्वात्रिंशच्छक्तयो मताः ।।९३।।

पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च ।
श्रद्धा स्वाहा स्वधाख्या च मायाभिख्या वसुन्धरा ।।९४।।

त्रिलोकधात्री गायत्री सावित्री त्रिदशेश्वरी ।
सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताऽच्युतप्रिया ।।९५।।

विमला सामला[1] चैव अरुणी आरुणी तथा ।
प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च ।।९६।।

सन्ध्या माता सती हंसी मर्द्दिका वज्रिका परा ।
देवमाता भगवती[2] देवकी कमलासना ।।९७।।

त्रिमुखीसप्तमुख्यौ च सुरासुरविमर्द्दिनी ।
सलम्बोष्ठ्यूर्द्धकेश्यौ च बहुशिश्ना वृकोदरी ।।९८।।

रथरेखाह्वया चैव शशिरेखा तथाऽपरा ।
पुनर्गगनवेगाख्या वेगा च पवनादिका ।।९९।।

भूयो भुवनपालाख्या[3] तथा च मदनातुरा ।
अनङ्गाऽनङ्गमदना भूयश्चाऽनङ्गमेखला ।।१००।।

---

1. क. नास्ति । 2. ख. भगती । 3. ख. भवनपालाख्या ।

अनङ्गकुसुमा विश्वरूपाऽसुरभयङ्करी ।
अक्षोभ्यासत्यवादिन्यौ वज्ररूपा शुचिव्रता ।।१०१।।
वरदा चैव वागीशी चतुष्षष्टिः प्रकीर्त्तिताः।।

तथा—

लिखेत्सरोजं रसपत्रयुक्तं मध्ये दलेष्वप्यभिलिख्य मायाम् ।
स्वरावृतं यन्त्रमिदं वधूनाम्पुत्रप्रदम्भूमिगृहान्तरस्थम् ।।१०२।।

**अस्यार्थः**—भूर्जादौ षड्दलकमलं विधाय, तन्मध्ये ससाध्यं शक्तिबीजमालिख्य, षट्सु दलेष्वपि शक्तिबीजमेवाऽऽलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय, तयोरन्तराले सबिन्दुभिः षोडशस्वरैरावेष्टच, तद्बहिश्चतुरश्रं कुर्यात् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।
तथा—

षट्कोणमध्ये प्रविलिख्य शक्तिं,
कोणेषु तामेव विलिख्य भूयः ।
ससाध्यगर्भं वसुधापुरस्थं,
यन्त्रम्भवेद्वश्यकरन्नराणाम् ।।१०३।।

**अस्यार्थः**—प्राग्वत् षट्कोणं विधाय, तन्मध्ये तत्कोणेषु च ससाध्यं शक्तिबीजमालिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कुर्यात् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।

अथाऽङ्कयन्त्राण्युच्यन्ते भुवनेश्या महामनोः ।
नानातन्त्रेषु प्रोक्तानि शङ्करेण महात्मना ।।१०४।।
यानि ज्ञात्वा गुरोर्वक्त्रात् सम्प्रदायेन साधकः ।
अभीप्सितार्थानखिलान् साधयन्ति ह्ययत्नतः ।।१०५।।
नारी शताङ्कयन्त्रस्य धारणाज्जीवसूर्भवेत् ।
चतुष्षष्टचङ्कतो लोकं[1] वश्ये द्वाषष्टितो जयः[2] ।।१०६।।

1. क. लोके । 2. क. यमः ।

वादेषु सुस्थिरं चास्य चतुर्विंशतिभिर्भवेत् ।
अष्टाविंशतिभिश्चेति नाशः स्याच्चतुरुत्तरैः ॥१०७॥

पञ्चाशद्भिः सुप्रसूः स्याग्दौर्नारी वडवाऽपि वा ।
रजस्वला गतभया षट्त्रिंशेनाऽथ यन्त्रिणः ॥१०८॥

द्वात्रिंशेनाङ्कयन्त्रेण चोरव्याघ्राकुले पथि ।
प्रयान्ति निर्भयं यन्त्रधारिणः स्वं स्वमालयम् ॥१०९॥

शतेनेत्यनेन शतसंख्यावधिकमेकं यन्त्रमुच्यते । समन्ततश्चतुःकोष्ठपङ्क्त्यङ्कगणनायां शतसंख्यापर्य्यन्त इत्यर्थः । अनेन च काले प्रसूतानां दीर्घमायुः, अकालप्रसवनिवृत्तिर्भूताद्युपद्रवशमश्च । एतत्कामनया नारीभिः शताङ्कयन्त्रं धार्यम् । चतुष्षष्टयादियन्त्राणि वश्यादिकामैः स्त्रीपुंसैर्धार्याणि । तत्र चतुष्षष्टितः सर्वजगद्वश्यं भवति, द्वाषष्टौ वादे युद्धे च जयः स्यात् । चतुर्विंशत्यङ्कयन्त्रादन्नानि सदा स्थिराणि शुभानि भोक्तृहितानि च भवन्ति । अष्टाविंशत्यङ्कयन्त्रादीतिनाशो धारणाद्भवति । सस्यक्षेत्रे निक्षेपे चेति[1] केचित् । अभिचारोऽपि लभ्यते हिंसाकारित्वात् । ईतयस्त्वतिवृष्टयादयः । चतुः पञ्चाशदङ्कयन्त्रात् स्त्रीवड वादीनामक्लेशेन प्रसवो भवति । अथ चाऽपत्यमुत्कृष्टं स्यात् । षट्त्रिंशदङ्कयन्त्रान्नारीणां सततरजःक्षरणनिवृत्तिः, रजसो गर्भजनकप्रतिबन्धनिवृत्तिः । उपलक्षणात् प्रदरादिरोगनिवृत्तिश्च । द्वात्रिंशदङ्कयन्त्रधारिणां व्याघ्रचोरादिभ्यः पथि भयं न स्यात् ।

अथैतेषान्तु यन्त्राणां लेखाधाराः शिवोदिताः ।
शतं सुवर्णपत्रे तु भूर्जे षष्टिचतुष्टयम् ॥११०॥

द्वाषष्टिस्ताम्रपत्रे[2] च चतुर्विंशतिरेव च ।
पञ्चाशच्च चतुस्ताले षट्त्रिंशद्राजते तथा ॥१११॥

द्वात्रिंशदङ्गवस्त्रे च लेखनीयम्प्रयत्नतः ।
शतं[3] वस्त्रे चिताङ्गारैरष्टाविंशाङ्कं लिखेत् ॥११२॥

1. ख. नेति । 2. क. ० पात्रे । 3. ख. शव ।

इति बाधाविनाशाय शत्रूणां नाशनाय च ।
अन्यानि गोरोचनया यन्त्राणि विविधान्यपि ।।११३।।

अथ वक्ष्येऽङ्कयन्त्राणां लेखनक्रममुत्तमम् ।
कृत्वा षोडश कोष्ठानि सुसमानि विचक्षणः ।।११४।।

तेषूर्द्ध्वादिक्रमात् पङ्क्तिचतुष्कम्परिकल्प्य च ।
तासु पङ्क्तिषु चोर्द्ध्वादिक्रमादङ्कान् समालिखेत् ।।११५।।

तल्लेखनक्रमं वक्ष्ये सङ्केतेन शिवोदितम् ।
ज्ञानं शिवपदे ज्ञानं ज्ञानं गोप्तः[1] सुराननम् ।।११६।।

इष्टार्द्धमूनितं तेषु गुप्तसारशिवापदैः ।
अर्द्धक्रमं स एवार्द्ध एकाद्यूनत्वतः क्रमाम् ।।११७।।

स्वरान् काद्यान् विना ङञणैः क्षाद्यान् व्युत्क्रमतो लिखेत् ।
मायाबीजान्तरे लेख्याः सर्वेऽप्यङ्काः प्रयत्नतः ।।११८।।

आग्नेयमक्षरं दिक्षु रक्षायै यन्त्रबाह्यतः ।
कर्मभेदाद्भूतभेदसम्भूतान्यपि विन्यसेत् ।।११९।।

हृदयाख्यान् दिगीशार्णान् तत्र दिश्यष्ट बाह्यतः ।
यन्त्रजीवाख्यमालिख्य कर्णिकायामनन्तरम् ।।१२०।।

यन्त्रजीवाख्यबीजन्तु मातृकापीठमध्यगम् ।
जीवात्ममन्त्रोपरितो दिक्चतुष्केऽर्णशो लिखेद् ।।१२१।।

साध्यसाधककार्याणि मध्ये नाम लिखेद्बुधः ।
बीजान्तः साधकं साध्यं पृष्ठेऽधः कर्मवाचकम् ।।१२२।।

बीजान्तर्वा समस्तस्य प्रयोगस्य च लेखनम् ।
सुदिने शुभनक्षत्रे सुदेशे शल्यवर्जिते ।।१२३।।

सशिष्यस्तत्र चाऽऽचार्यः शिष्यो वा गुरुभावतः ।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा उपविश्य प्रणम्य च ।।१२४।।

1. ख. गोप्तुः ।

गुरुं विघ्नेश्वरं देवं ततो यन्त्रं समालिखेत् ।
वश्याऽऽकृष्टौ लिखेत्पुष्ये सार्पभे द्वेषणे स्मृतम् ॥१२५॥

आर्द्रायां मारणे प्रोक्तं मघा उच्चाटने भवेत् ।
साध्यस्याष्टमलग्ने तु वश्यमारणयोर्लिखेत् ॥१२६॥

लेखन्या तु लिखेद्यन्त्रं वश्ये दूर्वाङ्कुरोत्थया ।
आकृष्टौ तु करञ्जोत्था मारणे तु नरास्थिजा ॥१२७॥

स्तम्भकर्मणि विज्ञेया राजवृक्षोद्भवा तथा ।
शान्तिके पौष्टिके चैव आयुष्कामविधौ तथा ॥१२८॥

सर्वोपद्रवनाशाय कर्त्तव्या जातिसम्भवा ।
हेमजा रूप्यजा वाऽपि ताम्रजा त्रपुजा तथा ॥१२९॥

अपामार्गोद्भवा वाऽपि शुभकर्मणि सिद्धिदा ।
अशुभेषु च सर्वेषु शस्यते तीक्ष्णलोहजा ॥१३०॥

विष्टयङ्गारदिने घोरे यदि चोत्पादिता तु सा ।
कालदण्डसमा ज्ञेया सर्वशत्रुनिकृन्तिनी ॥१३१॥

**॥ अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः ॥**

तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च पञ्च पञ्च रेखाः कृत्वा, समान्तरालानि षोडश कोष्ठानि विधाय, तेषु प्रतिकोष्ठं विपुलोदरं मायाबीजं विलिख्य, प्रथमपङ्क्तेस्तृतीयकोष्ठस्थमायाबीजोदरे ५, चतुर्थकोष्ठस्थे ४, द्वितीयपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठस्थे १, द्वितीयकोष्ठस्थे ८, तृतीयपङ्क्तेस्तृतीयकोष्ठस्थे ३, [तृतीयपङ्क्तिस्थचतुर्थकोष्ठे ६ चतुर्थस्थे][1] चतुर्थपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठस्थे ७, द्वितीयस्थे २, इत्यङ्कान् विलिख्य, प्रथमपङ्क्तेः प्रथमद्वितीयकोष्ठयोर्द्वितीयपङ्क्तेस्तृतीयचतुर्थकोष्ठयोस्तृतीयपङ्क्तेः प्रथमद्वितीयकोष्ठयोश्चतुर्थपङ्क्तेस्तृतीयचतुर्थकोष्ठयोश्चोद्दिष्टशताद्यङ्कमध्ये लेख्यसंख्याया यदर्द्धं तत् 'गु ३, प्त ६, सा ७, र २, शि ५, बा ४, प १, दं: ८' इत्यङ्कैः पृथक्पृथगूनं कृत्वा, शेषं शेषं लिखेत् ।

1. ख. कोष्ठगतस्यांशस्य स्थाने 'चतुर्थस्थे ६' इति केवलोंऽशो लभ्यते ।

ततः प्रथमपङ्क्तेस्तृतीयचतुर्थयोर्द्वितीयपङ्क्तेः प्रथमद्वितीययोस्तृतीयपङ्क्तेस्तृतीयचतुर्थयोश्चतुर्थपङ्क्तेः प्रथमद्वितीययोश्च 'अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ' इत्यष्टौ स्वरान् एकैकशो विलिख्य, 'ऌ ॡ' इत्याद्यष्टस्वरांस्तु अलिखितस्वरकोष्ठाष्टके यस्मिन् कोष्ठेऽधिकसंख्याकोऽङ्कस्तदारभ्यैकैकोनतया स्थिताङ्केषु कोष्ठेषु क्रमेण लिखेत् । एवं 'कँ खँ गँ घँ चँ छँ जँ झँ' इत्यष्टौ वर्णानकाराद्यष्टस्वरस्थकोष्ठेष्वेकैकशो विलिख्य, 'टँ ठँ डँ ढँ तँ थँ दँ धँ' इत्यष्टौ वर्णान् ऌकाराद्यष्टस्वरस्थकोष्ठेषु क्रमेण लिखेत् ।

ततः क्षादिनान्तान् व्युत्क्रम्य, तेषु क्षादिलान्तान् ककारादिवर्णाष्टकस्थिताष्टसु कोष्ठेषु रेफादि नकारान्तान् टकारादिधकारान्तस्थितकोष्ठेषु च लिखेत् ।

एवं लिखिते 'क क्ष र ट' इति वर्णानि एकावल्यामूर्ध्वाधःकोष्ठयोः पतेयुः । ततो यन्त्रब्बाह्येऽष्टसु दिक्षु 'रँ' इति विलिख्य, यन्त्रबाह्य एवाऽष्टसु दिक्षु कार्यभेदेनाऽऽकाशादिभूतवर्णानपि लिखेत् ।

यथा—विषनाशाय रोगशान्त्यै वा 'ऌ ॡ अ ङ ञ ण न म श ह' इति दशवर्णान् प्रतिदिशं लिखेत् ।

उच्चाटनद्वेषणयोर्वायुवर्णान् 'अ आ ए क च ट त प य छ (श?)' इति ।

रक्षायां मारणे चाऽऽग्नेयान् 'इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष' इति ।

वश्यरोगादिशान्तौ चाऽऽप्यान् 'ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व स' इति ।

स्तम्भनावेशयोः पार्थिवान् 'उ ऊ ओ ग ज ड द ब लं ळ इति' इति ।

ततो 'लँ रँ टँ क्षँ वँ यँ सँ हँ' इति दिक्पालबीजानि यन्त्रहृदयाख्यानि यन्त्राद्बहिः प्राच्यादिदिगष्टके लिखेत् ।

ततो 'ह्सौः' इति यन्त्रजीवाख्यं बीजं मध्ये विलिख्य, तत्परितश्चतुर्दिक्षु 'हं सः सो हँ' इत्यक्षरचतुष्टयमेकैकशो विलिख्य, बीजमध्ये 'देवदत्ताय', तत्पृष्ठे 'पुत्रं', तदधो 'जीवय जीवय' इति, यद्वा बीजमध्य एव सर्वं लिखेत् । 'देवदत्तं रक्ष रक्षे'त्यादिप्रयोगे तु साधकातिरिक्तसाध्याभावात् साधकस्थले 'देवदत्तम्' इति लिखेत् । पृष्ठे न किञ्चित् । 'शिव प्रसीद मम' इत्यादिप्रयोगेऽपि साध्यस्थले

'शिवपदं' लिखेत् । अभिचारे तु 'अमुकं नाशय नाशय'[1] इति प्रयोगसाध्यं पदं बीजपृष्ठ एव लिखेदिति विशेषः ।

शुचिर्मन्त्री विलिख्यैवं वेष्टितम्पट्टसूत्रकैः ।
स्वर्णादिपुटके क्षिप्त्वा वह्नितापं विना बुधः ।।१३२।।

हृल्लेखापीठमभ्यर्च्य विधिवत्साधकोत्तमः ।
तत्राऽऽवाह्याथ हृल्लेखायन्त्रं बाह्ये गुरूत्तमः ।।१३३।।

साध्यसाधकयोश्चाऽपि पृथगावाहनञ्चरेत् ।
हृल्लेखायन्त्रसाध्यानां साधकस्य पृथक्पृथक् ।।१३४।।

प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तत्तन्नाम विनिर्दिशेत् ।
गन्धादिभिश्च सम्पूज्य हृल्लेखायन्त्रमेव च ।।१३५।।

हृल्लेखाबीजमुच्चार्य्य सम्बोध्य भुवनेश्वरीम् ।
शताङ्कयन्त्रेणानेन चाऽस्य पुत्रं चिरम्पदम् ।।१३६।।

जीवितं कुरु कुर्वेवमष्टधा चाऽभिमन्त्रयेत् ।
ततोऽग्निस्थापनं कृत्वा घृतेन जुहुयाद्वशी ।।१३७।।

यन्त्रे सम्पातयन्मन्त्री हुतशेषं स्रुवस्थितम् ।
शतं सहस्रमयुतं ज्ञात्वा लाघवगौरवम् ।।१३८।।

कार्यस्य धारयेत्पश्चादभिषेकपुरस्सरम् ।
शुभेऽहनि शुचिर्भूत्वा गुरुणा दत्तमादरात् ।।१३९।।

गुरुं सन्तोष्य यत्नेन धनधान्याम्बरादिभिः ।
सर्वेषामपि यन्त्राणां विधिः साधारणस्त्वयम् ।।१४०।।

अथाऽन्यान्यप्यङ्कयन्त्राण्युच्यन्ते गोपितान्यपि ।
पञ्चाशता राजभयन्न स्याद्विंशतिभिर्विषात् ।।१४१।।

---

1. ख. नाशनाशय ।

षष्टचा पुत्रिणी वन्ध्या भवेद् द्वात्रिंशताऽभयम् ।
व्याघ्रादिभ्यो वने न स्याच्चतुस्त्रिंशाङ्कयन्त्रतः ।।१४२।।

गर्भिण्या गर्भरक्षा च सुखप्रसव एव च ।
सुतप्राप्तिश्च वन्ध्याया दृष्टिदोषनिवारणम् ।।१४३।।

बालकानां जयो राज्ञां युद्धे द्यूते च तद्विदाम् ।
शरावे नूतने यन्त्रं समालिख्य च दर्शये ।।१४४।।

सुखप्रसवसिद्धचर्थं गर्भिण्यै शीघ्रसूर्भवेत् ।
बालकस्य च शय्यायां शरीरे वा धृतं हि तत् ।।१४५।।

तस्य रक्षाकरं सूतिकागृहे रक्षयेच्च तम् ।
अलक्ष्मीनाशनं दृष्टिदोषस्य च निवारणम् ।।१४६।।

तोरणे छदिरे[1] कुडचे स्थापितं नाऽत्र संशयः ।
द्वाषष्टचा नाशयेच्छत्रून् बलं वन्ध्या सुतं लभेत् ।।१४७।।

पञ्चशत्याऽथ षट्शत्या ज्वरादिगदनाशनम् ।
शतेन राजतो भीतिर्न स्यात्तस्मात् फलं लभेत् ।।१४८।।

जयश्च युद्धे दम्पत्योरन्योन्यं वश्यता भवेत् ।
सप्तशत्या चाऽष्टशत्याऽरण्यादौ न भयम्भवेत् ।।१४९।।

षट्सप्तत्युत्तरशतसंख्याङ्कैर्यन्त्रमालिखेत् ।
स्वर्णादिपात्रे निक्षिप्य जलन्तत्र निजं मुखम् ।।१५०।।

तेन संक्षालयेत्प्रातः प्रत्यहन्तद्वशे जगत् ।
एकादशशताख्येन राजवश्यमनुत्तमम् ।।१५१।।

द्विशताढचसहस्त्रेण बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
द्विपञ्चाशद्युतेनैकशतेन शिशुरक्षणम् ।।१५२।।

1. ख. छदिरै ।

धारणात् कण्ठदेशे तु दृष्टिदोषनिवारणम् ।
चतुश्शतेन चाऽन्नानि वृक्षा भूरिफलान्विताः ।। १५३ ।।

अव्वक्षेमो ऋणान्मुक्तिर्भवेन्नवशताद्ध्रुवम् ।
वृद्धिर्वृद्धिश्च सौभाग्यं षट्सप्तत्यधिकेन च ।। १५४ ।।

शताष्टकेन द्विशताद्धनमक्षय्यमाप्नुयात् ।
प्रीतिः स्यात् त्रिशताख्येन सर्वसिद्धिः सहस्रतः ।। १५५ ।।

एतेषामपि यन्त्राणां लेखने धारणेऽपि च[1] ।
विधिः पूर्वोदितो ज्ञेयः प्रकारान्तरमुच्यते ।। १५६ ।।

अङ्कानां लेखने प्रोक्तयन्त्रे षोडशकोष्ठके ।
द्वादशे च तृतीये च षष्ठे चाऽथ त्रयोदशे ।। १५७ ।।

चतुर्द्दशे पञ्चमे च चतुर्थैकादशे तथा ।
[2]एकाद्यष्टावधीनङ्कान् कोष्ठेष्वष्टसु चाऽऽलिखेत् ।। १५८ ।।

ततो लेख्याङ्कसंख्याया अर्द्धमेकैकमूनितम् ।
द्वितीये नवमे चैव षोडशे सप्तमेऽष्टमे ।। १५९ ।।

ततः पञ्चदशाशाद्ये शेषं शेषं समालिखेत् ।
अन्यत्समस्तं पूर्वोक्तं ज्ञेयमत्राऽपि गोपयेत् ।। १६० ।।

यन्त्राण्येतानि मन्त्रज्ञस्तेन स्युः सर्वसिद्धयः ।
अभिषेकविधानन्तु वक्ष्यते वाञ्छितार्थदम् ।। १६१ ।।

मण्डपे मण्डलङ् कुर्याद्देवीपीठान्वितं शुभम् ।
यथावत्पीठमभ्यर्च्य कलशान् विन्यसेत्सुधीः ।। १६२ ।।

कर्णिकायान्दलाग्रेषु स्वर्णरौप्यसुताम्रजान् ।
मार्त्तिकान्वा नव न्यस्येत् पञ्चैकं बाऽपि मन्त्रवित् ।। १६३ ।।

1. ख. वा । 2. ख. एकादष्टावधी० ।

महता वाद्यघोषेण मधुना पूरयेद्घटम् ।
कला आवाह्य परितो वेष्टयीत घटञ्च तम् ।। १६४ ।।

सर्पिषा पूर्वदिक्संस्थं दध्ना दक्षिणदिग्गतम् ।
क्षीरेण पश्चिमाशास्यं तिलजेनोत्तरस्थितम् ।।१६५।।

पुष्पक्षीरमहीरुक्त्वग्दशमूलोद्भवैः शुभैः ।

दशमूलानि वैद्यकशास्त्रोक्तानि ।

क्वाथैर्विदिक्स्थितान्कुम्भान् पूरयेन्मन्त्रवित्तमः ।।१६६।।

यदि पञ्चाऽथ कलशास्तदा तान् पूरयेत् क्रमात् ।
गोमूत्रेणैव पूर्वस्थं गोमयेनाऽपि याम्यगम् ।।१६७।।

गोमयेन गोमयोदकेन । गोमूत्रगोमयोदकयोर्दधीत्याचार्यचरणोक्तेः ।

दुग्धेन वाऽरुणं कुम्भं दध्ना चोत्तरदिक्स्थितम् ।
आज्येन कलशम्मध्यम्पूरयेत्क्रमशः सुधीः ।।१६७।।

ऋग्भिश्च प्रणवोत्थाभिः पञ्चगव्यानि योजयेत् ।

प्रणवस्य पञ्चऋचः प्रागेव दीक्षाप्रकरणे प्रोक्ताः ।

आत्माष्टाक्षरमन्त्रैर्वा पञ्चभिस्तानि योजयेत् ।।१६८।।

एकार्द्ध सप्तत्रितयभूमितानि समानि वा ।

एकार्द्धेत्यादि पञ्चगव्य-कथनन्तूत्तरत्रैककलशपक्षे पञ्चगव्यपूरणे ज्ञेयम् ।

पञ्चाशदौषधिक्वाथैर्यद्येकः कलशस्तथा ।।१६९।।

अथवा पञ्चगव्यैश्च मन्त्रवित्तम्प्रपूरयेत् ।
अत्रोत्तरस्यामाशायां स्थापयेत् पङ्कजे घटम् ।।१७०।।

सम्पूरणीयो ब्रह्मद्रुक्क्वाथाम्भोभिरनुत्तमः

अत्रोत्तरस्यामिति श्लोकेन यो घट उक्तः स तु मण्डलाद्बहिरष्टदलकमले स्थाप्यः ।

सुवर्णवस्त्रादियुतः शुद्धः स कलशो मतः ।।१७१।।

द्वारेषु मण्डपस्याऽथ[1] कुम्भौ द्वौ जलपूर्णकौ ।
संस्थाप्योत्तमवस्त्राद्यैर्वेष्टयित्वाऽभिपूजयेत् ।।१७२।।

पूर्ववद्देवतां तत्र समावाह्य प्रपूरयेत् ।
पूर्वोक्तैरुपचारैस्तु निजेष्टाप्त्यै प्तयै च मन्त्रवित् ।।१७३।।

पूर्ववद्देवतामित्यनेन मण्डलमध्यस्थापितकुम्भे देवतावाहनादिकमुक्तं ज्ञेयम् ।

घटेष्वन्येपु सम्पूज्या मातरो दिक्क्रमाद्बुधैः ।
यदि स्युः पञ्च कलशा मध्यादिषु यजेत्क्रमात् ।।१७४।।

हृल्लेखाद्याः पञ्च सुधीरभिषिञ्चेत्ततो नरम् ।
प्रथमं घृतकुम्भेन कषायेण ततः परम् ।।१७५।।

दध्ना चेति चकारात्कषायेणाभिषिञ्च्य पश्चात्पायसेनेति ।

तैलेन कषायेन मधुना च ततः परम् ।
द्विजवृक्षत्वचः क्वाथैरभिषिञ्च्य ततः सुधीः ।।१७६।।

द्वारकुम्भजलैः पश्चादन्तरासेकमाचरेत् ।
वक्त्रहस्तपदक्षालाचमान्यपि च मन्त्रवित् ।।१७७।।

वक्त्रहस्तेत्यादि अभिषेकसमये एकैककलशाभिषेकानन्तरं द्वारकुम्भजलैर्मुखकरचरणक्षालनमाचमनञ्च कार्यमित्युक्तम् ।

कारयेत्तेन नीरेण त्वेवं सिक्तो नरोत्तमः ।
ब्राह्मणान् भोजयेन्नानाविधैर्भक्ष्यैश्च तोषयेत् ।।१७८।।

आप्नोति महतीं लक्ष्मीं सर्वदा विजयी भवेत् ।।
वैप्रब्रह्मद्रुविल्वानां पलं ग्राह्यम्पलार्द्धकम् ।।१७९।।

वैप्रद्रुरश्वत्थः । ब्रह्मद्रुः पलाशः ।

अग्निमन्थप्लक्षसेव्यनाम्नां कर्षविदुत्तमः ।
[2]प्रक्षारिणीकाश्मरिकारोहिणानान्तदर्द्धकम् ।।१८०।।

1, ख, मण्डपस्थाप्य । 2. ख. प्रसारिणी ।

अग्निमन्थः अगेथुरिति[1] मध्यदेशभाषया प्रसिद्धः । प्रसारिणी गन्धप्रसारिणीती प्रसिद्धा । रोहिणो वृक्षविशेषः विन्ध्यपार्श्वे प्रसिद्धः । काश्मरी खम्भारीति प्रसिद्धा । उदुम्बरापाटला दुण्डुकभागाः[2] समीरिताः । दुण्डुको[3] वृक्षविशेषः ।

एतत्क्वाथोदकेनाऽसौ पूरयेत्कलशन्ततः ।
अमुना प्रतिवर्षञ्च सेकाद्दीर्घायुरुत्तमः ।। १८१ ।।

इन्दिरावानामयैश्च[4] रहितस्तेजसा रविः ।
कमला किङ्करी तस्य तन्दृष्ट्वा विविधामयम् ।। १८२ ।।

नश्यन्ति वर्त्तते यत्र घनधान्याकुलं स्थलम् ।
भवेद्देवा नमस्तस्मै कुर्व्वन्ति फणिनश्च तम् ।। १८३ ।।

न दशन्ति च तत्पुत्राः सम्पन्नाः पौत्रसंयुताः ।
देहान्ते परमाम्मुक्तिम्मन्त्री याति न संशयः ।। १८४ ।।

**शारदातिलके—**

वाग्भवं शम्भुवनिता रमा बीजत्रयात्मकम् ।
मन्त्रं समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम् ।। १८५ ।।

वाग्भवं ऐँ, शम्भुवनिता ह्रीँ, रमाबीजं श्रीँ ।
षड्दीर्घभाजा मध्येन वाग्भवाद्येन कल्पयेत् ।।
षगङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित् ।।१८६।।

**पदार्थादर्शे—**

ऋषिच्छन्दसी पूर्वोक्ते । आद्यबीजं मध्यं शक्तिः । तथा-
कुर्यात् पूर्वोदितान्न्यासांस्तथैवाऽत्राऽपि साधकः ।। १८७ ।।

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनाम्माणिक्यमौलिस्फुर-
त्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्याम्मणिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलम्बिभ्रतीम्,
सौम्यां रत्नघटस्थसव्यचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम् ।। १८८ ।।

---

1. ख. अगेप्पु० । 2. ख. दुण्टुकभागाः । 3. ख. टुण्टुको ।
4. क. इन्द्रिरावा० ।

पीठे प्राचीरिते यजेत् ।

देवीम्प्रागुक्तमार्गेण गन्धाद्यैरुपचारकैः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वत्प्राणायामादियोगपीठन्यासान्ते एकाक्षरोक्तं ऋष्यादिकं विधाय, 'ऐँ ह्राँ हृदयाय नमः, ऐँ ह्रीँ शिरसे स्वाहे' त्यादिकरषडङ्गन्यासान् कृत्वाऽन्यानपि एकाक्षरोक्तान्न्यासान्विधाय, प्रमाणोक्तध्यानादिमानसपूजान्ते एकाक्षरोक्तवत् सर्वङ् कुर्य्यादिति ।

**सारसङ्ग्रहे**—

जपेद् द्वादशलक्षन्तु जुहुयात्तद्दशांशतः ।
त्रिःस्वादुयुक्तहविषा तर्प्पणादि ततश्चरेत् ॥१८९॥

**शारदातिलकेऽपि**—

रविलक्षं जपेन्मन्त्रम्पायसैर्मधुराप्लुतैः ।
दशांशं जुहुयान्मन्त्रीति………॥१९०॥

हुत्वा पलाशकुसुमैर्वाक्श्रियम्महतीं व्रजेत् ।
ब्राह्मीघृतम्पिबेज्जप्तं कवित्वं वत्सराद् भवेत् ॥१९१॥

सिद्धार्थान् लवणोपेतान् हुत्वा मन्त्री वशन्नयेत् ।
नरनारीनरपतीन्नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१९२॥

चतुरङ्गुलजैः पुष्पैश्चन्दनाम्भःसमुक्षितैः ।
हुत्वा वशङ्करोत्याशु त्रैलोक्यमपि साधकः ॥१९३॥

जुहुयादरुणाम्भोजैरयुतम्मधुराप्लुतैः ।
राज्यश्रियमाप्नोति सतिलैस्तन्दुलैस्तथा ॥१९४॥

प्रागुक्तान्यपि कर्माणि मन्त्रेणाऽनेन साधकः ।

मन्त्रान्तरमाह तत्रैव—

वाग्बीजपुटिता माया विद्येयं त्र्यक्षरी मता ।
मध्येन दीर्घयुक्तेन वाक्पुटेन प्रकल्पयेत् ॥१९५॥

अङ्गानि जातियुक्तानि क्रमेण मनुवित्तमः ।
यथा पुरा समुद्दिष्टान् न्यासान् कुर्वीत मन्त्रवित् ।।१९६।।

श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरैर्दानञ्च रक्तोत्पलम्,
रत्नाढयञ्चषकम्परम्भयहरं सम्बिभ्रतीं शाश्वतीम्[1] ।
मुक्ताहारलसत्पयोधरनतान्नेत्रत्रयोल्लासिनीम्,
वन्देऽहं सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दस्थिताम् ।।१९७

हृल्लेखाविहिते पीठे पूजयेत्परमेश्वरीम् ।
मध्यादि पूजयेन्मन्त्री हृल्लेखाद्याः पुरोदिताः ।।१९८।।

मिथुनानि यजेन्मन्त्री षट्कोणेषु यथा पुरा ।
अङ्गपूजा केसरेषु पूज्याः पत्रेषु मातरः ।।१९९।।

भैरवाङ्कसमारूढाः स्मेरवक्त्रा मदालसाः ।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधश्चोन्मत्तसंज्ञकः ।।२००।।

कपालिभीषणौ पश्चात्संहारश्चाऽष्टभैरवाः ।
शूलङ्कपालम्प्रेतञ्च बिभ्राणाः क्षुद्रदुन्दुभिम्[2] ।।२०१।।

गजत्वगम्बरा भीमाः कुटिलालकशोभिनः ।
दीर्घाद्या मातरः प्रोक्ता ह्रस्वाद्या भैरवाः स्मृताः ।।२०२।।

पूज्याः षोडशपत्रेषु करालयाद्याः[3] पुरोदिताः ।
तद्बाह्ये ऽनङ्गरूपाद्या लोकेशास्त्राणि तद्बहिः ।।२०३।।

एवमाराधयेद्देवीं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
वशन्नयति राजानं वनिताश्च महालसाः ।।२०४।।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन[1] मन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वैकाक्षरोक्तऋष्यादीन् विन्यस्य—

1. ख. साश्वतीम् । 2. ख. क्षुद्रदुन्दुभिः । 3. ख. करालपाद्या । 4. ख. मूल ।

"ऐँ ह्राँ ऐँ हृदयाय नमः, ऐँ ह्रीँ ऐँ शिरसे स्वाहा. ऐँ ह्रूँ ऐँ शिखायै वषट्, ऐँ ह्रैँ ऐँ कवचाय हुम्, ऐँ ह्रौँ ऐँ नेत्राय वौषट्, ऐँ ह्रः अस्त्राय फट् ।"

इति करषडङ्गन्यासान् विन्यस्यैकाक्षरोक्तन्यासानन्यांश्च न्यासान् कृत्वा, अत्रोक्तरूपाम्भगवतीं ध्यात्वा, मानसपूजादिपुष्पोपचारान्ते एकाक्षरोक्तवद् हृल्लेखाद्या मिथुनानि सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु—

"आँ ब्राह्म्यै० अँ असिताङ्ग भैरवाय० । ईँ[1] माहेश्वर्यै नमः, इं रुरुभैरवाय नमः । ऊँ कौमार्यै न०, उँ चण्डभैरवाय० । ॠँ वैष्णव्यै०, ऋँ क्रोधभैरवाय० । ॡँ वाराह्यै०, ऌँ उन्मत्त भैरवाय० । ऐँ इन्द्राण्यै०, एँ कपालीभैरवाय० । औँ चामुण्डायै नमः, ओँ भीषणभैरवाय नमः । अःमहालक्ष्म्यै नमः, अँ संहार भैरवाय नमः ।"

इति भैरवाङ्कस्था ब्राह्म्याद्याः[2] प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, तद्बहिः षोडशपत्रेषु प्रागुक्ताः करालयाद्याः सम्पूज्य, तद्बहिः प्राग्वदनङ्गरूपाद्यास्तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य शेषम्प्राग्वत्समापयेत् । इति । तथा—

मनुञ्जपेत्तत्त्वलक्षम्ब्रह्मवृक्षप्रसूनकैः ।
त्रिमध्वक्तै राजवृक्षपुष्पैर्वा तद्दशांशतः ॥२०५॥
जुहुयात्तर्प्पणादीनि कुर्यान्मन्त्रस्य सिद्धये ।

**शारदातिलके—**

अन्नमाज्येन जुहुयाल्लभते वसु वाञ्छितम् ।
सुगन्धैः कुसुमैर्हुत्वा श्रियमाप्नोति वाञ्छिताम् ॥२०६॥

मन्त्रेणाऽनेन सञ्जप्तमश्नीयादन्नमन्वहम् ।
भवेदरोगो नियतन्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥२०७॥

**सारसङ्ग्रहे—**

एकाक्षरोदितान्सर्वान्प्रयोगानत्र चाऽऽचरेत् ।
तेन सिद्ध्यन्ति कर्माणि तत्रोक्तान्यखिलान्यपि ॥२०८॥

---

1. ख. ऐँ । 2. ख ब्राह्म्या ।

शारदातिलके—

अनन्तो बिन्दुसँय्युक्तो मायाब्रह्माग्नितारवान् ।
पाशादित्र्यक्षरो मन्त्रः सर्ववश्यफलप्रदः ।।२०९।।

अनन्त आकारः, बिन्दुसंयुक्तस्तेन आँ । माया भुवनेशी । ब्रह्मा ककारः, अग्नी रेफः, तारः प्रणवस्ताभ्यां युक्तः, तेन क्रौं । अत्र प्रथमबीजस्य पाश इति संज्ञा, अन्त्यस्याङ्कुश इति संज्ञा[1] ।

यदाहुराचार्याः—'विन्द्वन्तिका प्रतिष्ठा सन्दिष्टा पाशबीजमिति मुनिभिः ।
निजभूर्दहनाप्यायिनि शशधरखण्डाङ्कुशो भवतीति' ।
अत एव पाशादिरित्युक्तम्[2] । 'प्रतिष्ठा आकारः । निजभूः ब्रह्मा तेन ककार इति ज्ञेयम् । आप्यायिनि ओकारः।'

तथा—

ऋष्याद्याः पूर्वमुक्ताः स्युर्ब्बीजेनाङ्गक्रिया मता ।
वराङ्कुशौ पाशमभीतिमुद्रा-
ङ्करैर्व्वहन्तीङ्कमलासनस्थाम् ।
बालार्क्ककोटिप्रतिमान्त्रिनेत्रा-
म्भजेऽहमाद्याम्भुवनेश्वरीन्ताम् ।।२१०।।

हृल्लेखाविहिते पीठे नवशक्तिसमन्विते ।
अर्च्चयेत्परमेशानीं वन्यमानक्रमेण ताम् ।।२११।।

हृल्लेखाद्या यजेदादौ कर्णिकायां यथाविधि ।
अङ्गानि केसरेषु स्युः पत्रस्था मातरः क्रमात् ।।२१२।।

इन्द्रादयः पुनः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्बहिः ।
एवं सम्पूजयेद्देवीं साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ।।२१३।।

रज्यते सकलैर्लोकैस्तेजसा भास्करोपमः[3] ।
अनेनाऽधिष्ठितङ्गेहं निशि दीपशिखाकुलम् ।।२१४।।
दृश्यते प्राणिभिः सर्वैर्मन्त्रस्याऽस्य प्रभावतः ।

---

1. ख. अन्तस्याङ्कुश० । 2. ख. पाशादिरितित्युक्तम् । 3. क. भास्करोपमाः ।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते एकाक्षरोक्तमृष्यादिकं विन्यस्य, षड्दीर्घयुक्तमायाबीजेन षडङ्गानि विन्यस्य ध्यानादिपुष्पोपचारान्तेऽष्टदलकर्णिकायाम्प्राग्वत् हृल्लेखाद्यास्तत्केसरेषु, षडङ्गानि तद्दलेषु, ब्राह्म्याद्यास्तद्बहिश्चतुरश्रे लोकपालांस्तदायुधानि च सम्पूज्य शेषम्प्राग्वत्समापयेदिति । तथा—

मनुञ्जपेत्तत्त्वलक्षं जुहुयात्तत्सहस्रकम्[1] ।
त्रिस्वादुयुग्दुग्धवृक्षसमिद्भिः प्रोक्तसंख्यया ।।२१५।।
शुद्धैस्तिलैः पयोयुक्तैस्तर्प्पणादि ततश्चरेत् ।

तत्त्वलक्षञ्चतुर्विंशतिलक्षं, तत्सहस्रं चतुर्व्विंशतिसहस्रम् । दुग्धवृक्षा अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटा एकैकेन षट्सहस्रकम्प्रोक्तसंख्यया इत्यस्य तिलैरित्यत्र सम्बन्धः । तेन तावत्तिलैरपि जुहुयादित्यर्थः । 'तिलैश्च तावज्जुहुयात्पयोक्तै' रिति ।

प्रपञ्चसारे—

लवणोन्मिश्रसिद्धार्थैं रजन्यां सुघृतप्लुतैः ।
जुहुयाच्चैव राजानं राजपत्नीं वशन्नयेत् ।।२१६।।

अन्नहोमेन मन्त्रज्ञः समृद्धान्नगृहो भवेत् ।
विकचत्पद्महोमेन लक्ष्मीरेनन्न सन्त्यजेत् ।।२१७।।

चतुरङ्गुलपुष्पैश्च होमः स्यात्कविताप्रदः ।
तिलहोमेनाऽऽमयानान्नाशो मन्त्रिण एव हि ।।२१८।।
आयुःकामो घृतेनैव जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ।
पूर्वोदितान्प्रयोगांश्च कुर्य्यादत्राऽपि मन्त्रवित् ।।२१९।।

शारदातिलके—

आलिख्याऽष्टदिगर्गलान्युदरगम्पाशादिकन्त्र्यक्षर-
ङ्कोष्ठेष्वङ्गमनून्परेषु विलिखेदष्टार्णमन्त्रद्वयम् ।
अच्पूर्वापरषट्कयुग्लयवरान् व्योमासनानर्गले-
ष्वालिख्येन्द्रजलाधिपादि गुणशः पङ्क्तिद्वयन्तत्परम् ।।२२०।।

---

1. क. तजुहुयात्सहस्रकम् ।

कोष्ठेष्वष्टयुगार्णमात्मसहितां युग्मस्वरान्तर्गता-
म्मायाङ्कं सरगान्दलेषु विलिखेन्मूलन्त्रिपङ्क्तिक्रमात् ।
त्रिःपाशाङ्कुशवेष्टितं लिपिभिरावीतं क्रमाद्व्युत्क्रमात्,
पद्मस्थेन घटेन पङ्कजमुखेनाऽऽवेष्टितन्तद्बहिः ।।२२१।।

घटार्गलमिदं यन्त्रम्मन्त्रिणाम्प्राभृतम्मतम् ।
पाशश्रीशक्तिकन्दर्पकामशक्तीन्दिराङ्कुशाः ।।२२२।।

प्रथमोऽष्टाक्षरो मन्त्रस्ततः कामिनि रञ्जिनि[1] ।
स्वाहान्तोऽष्टाक्षरः सद्भिरपरः कीर्त्तितो मनुः ।।२२३।।

ह्रीँ गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि सवर्म फट् ।
द्विठान्तः[2] षोडशार्णोऽयम्मन्त्रः सद्भिरुदीरितः ।।२२४।।

अत्र विषमपदव्याख्या—अच्पूर्वेति । अचां स्वराणां नपुंसकव्यतिरिक्तानाम् । पूर्वषट्कम्-अ आ इ ई उ ऊ । अपरषट्कम्-ए ऐ ओ औ अं अः । एतद्युक्तान् ल य व रान् । व्योमासनान् व्योम हकारस्तत्राऽऽसना स्थितिस्तादृशान् । इन्द्रजलाधिपादि पूर्वपश्चिमादि । गुणशः अक्षरत्रितयक्रमेण । अष्टयुगार्णं षोडशार्णम् । आत्मसहितां युग्मस्वरान्तर्गतां मायामिति—आत्मा हंसः, मायाशब्देनाऽत्र चतुर्थस्वरो ज्ञेयः ।

तथा च **निघण्टमातृकायाम्**—
'ईस्त्रिमूर्त्तिर्वामनेत्रं शेखरः कौटिलस्तथा ।
वाग्मी शुद्धश्च जिह्वाख्यो माया विष्णुः प्रकाशित ।।२२५।।

इत्युक्तेः । आत्मसहितयुग्मस्वरान्तर्गतमायालेखनक्रमस्तु—

**दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्**—
हंसःपदं वामनेत्रं विन्द्विन्दुपरिभूषितम् ।
पुनर्हंसःपदं चैतत्पञ्चार्णं मनुमालिखेत् ।।२२६।।
स्वरद्वन्द्वोदरगतं सप्तार्णञ्चाऽष्टधा भवेत् । इति ।

---

1. ख, रञ्जनि । 2. ख, द्विठातः ।

तेन अँ हंसः, ईं हंसः आँ इत्यादिक्रमेण केसरेषु सप्त सप्त वर्णा लेख्याः । प्रपञ्चसारेऽप्येतद्यन्त्रनिर्माणमुक्तम् । यथा—

अष्टाशान्तर्गताविर्हलयवरयुताच्चूर्वंपाश्चात्यषट्क-
ङ्कोणोद्यत्स्वाङ्गसाष्टाक्षरयुगयुगलाष्टाक्षराख्यम्बहिश्च ।
मायोपेतात्सयुग्मस्वरमिलितलसत्केसरं साष्टपत्र-
म्पद्मन्तन्मध्यपङ्क्तित्रितयपरिलसत्पाशशक्त्यङ्कुशार्णम् ॥२२७॥

पाशाङ्कुशावृतमनुप्रतिलोमगैश्च,
वर्णैः सरोजपुटितेन घटेन चाऽपि ।
आवीतमिष्टफलभद्रघटन्तदेत—
द्यन्त्रोत्तमन्त्विति घटार्गलनामधेयम् ॥२२८॥

प्राक्प्रत्यगर्गले हलमथ पुनराग्नेयमारुते च हयम् ।
दक्षोत्तरे हवार्णं नैर्ऋतशैवे द्विपङ्क्तिशो विलिखेत् ॥ २२९॥

विलिखेच्च कर्णिकायां पाशाङ्कुशसाध्यसंयुतां शक्तिम् ।
अभ्यन्तरष्टकोष्ठेष्वङ्गान्यवशेषितेषु चाष्टार्णे[1] ॥२३०॥

कोष्ठेषु षोडशस्वथ षोडशवर्णस्मनुन्तथा मन्त्री ।
पद्मस्य केसरेषु च युगस्वरात्मान्वितान्तथा मायाम् ॥२३१॥

एकैकेषु दलेषु त्रिशस्त्रिशः कर्णिकागतान्मन्त्रान् ।
पाशाङ्कुशबीजाभ्याम्प्रवेष्टयेद्बाह्यतश्च नलिनस्य ॥२३२॥

अनुलोमविलोमगतैः प्रवेष्टयेदक्षरैश्च तद्बाह्ये ।
तदनु घटेन सरोजस्थितेन तद्वक्त्रकेऽम्बुजं[2] विलिखेत् ॥२३३॥

सारसङ्ग्रहे -

घटार्गलाभिधं यन्त्रं सर्वसम्पत्करम्परम् ।

**अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः**—तत्र समचतुरश्रद्वयसम्पुटितमष्टकोणं विधाय, तस्य कोणाष्टगतरेखाग्रकानि ऋज्वाकाराणि स्वाभिमतमानेन प्रसार्य्य, तद्रेखाग्र-

1. ख. चाष्टार्णं । 2. ख. तद्वाक्त्रके० ।

षोडशकसन्दष्टं[1] वृत्तं कृत्वा, तद्बहिरप्येकाङ्गुलान्तराले तद्बहिस्त्र्यङ्गुलान्तराले चेति वृत्तद्वयं विधायाऽभ्यन्तरवीथ्यां समान्तरालाभिः षोडशरेखाभिः केसराणि परिकल्प्य, बहिर्वीथ्यामपि समान्यष्टदलानि कृत्वा, पश्चाद्बहिर्वृत्तत्रयं विधाय, तद्बाह्ये घटमालिख्य, घटस्य पृष्ठे ऊर्ध्वमुखं घटस्य मुखेऽधोमुखं चेति पद्मद्वयं विरच्य चतुरश्रद्वयगतरेखा[2] ऽष्टकसन्धिस्थानभेदिनं बाह्याभ्यन्तररूपेण वृत्तद्वयं कुर्यादिति यन्त्रशरीरं निष्पाद्य, ततस्तन्मध्ये पाशादित्र्यक्षरं मन्त्रं विलिख्य, तन्मध्यगत [शक्तिबीजमध्ये प्राग्वत्साध्यसाधककर्माण्यालिख्याऽष्टकोणस्य प्रथमसन्धिभेदिवृत्तस्याभ्यन्तरगकोष्ठाष्टके अग्नीशासुरवायव्यस्वाग्रगत ][3] कोष्ठपञ्चके हृदयादिनेत्रान्तान् पञ्च पञ्च मन्त्रानालिख्य, स्वाग्रादिचतुर्दिग्गतकोष्ठचतुष्केऽस्त्रमन्त्रं प्रतिकोष्ठमालिखेदिति षडङ्गमन्त्रानालिख्य, प्रथमवृत्तबाह्यगतचतुरश्रद्वयस्याऽष्टसु कोणेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'आँ श्रीँ ह्रीँ क्लीँ क्लौँ ह्रीँ श्रीँ क्रोँ' इत्यष्टाक्षराणि प्रतिकोणमेकमेकं विलिख्य, कोणाष्टकान्तरालगतकोष्ठाष्टके स्ववामाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'कामिनि रञ्जनि स्वाहे'ति च वर्णाष्टकं प्रतिकोष्ठ[4]मेकमेकं विलिख्य, तद्बहिर्गतषोडशकोष्ठेषु 'ह्रीँ गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुँ फट् स्वाहा' इति षोडशाक्षरमन्त्रस्यैकैकमक्षरं विलिख्य, अर्गलासु प्रसारितरेखाद्वय–पार्श्वयोः पूर्वार्गलाया बहिर्वृत्तमारभ्योत्तररेखापार्श्वे 'ह्लँ ह्लाँ ह्लिँ' इति विलिख्याऽन्यरेखापाश्वाभ्यन्तरवृत्तमारभ्य 'ह्लीँ ह्लुँ ह्लूँ' इति विलिख्य, पश्चिमार्गलायां तथैव बहिर्वृत्तमारभ्य रेखापार्श्वयोः 'ह्लेँ ह्लैँ ह्लोँ' इत्येकपार्श्वे द्वितीये 'ह्लौँ ह्लँ ह्लः' इति बहिर्वृत्तपर्यन्तं प्रवेशनिर्गमरीत्या विलिख्याऽऽग्नेयार्गलायां तथैव 'ह्यँ ह्याँ ह्यिँ ह्यीँ ह्युँ ह्यूँ' इति प्रादक्षिण्येन प्रवेशनिर्गमरीत्या[5] विलिख्य, मारुतार्गलायां 'ह्येँ ह्यैँ ह्योँ ह्यौँ ह्यँ ह्यः' षट्कं विलिख्य, दक्षिणोत्तरार्गलयोः प्रागुक्तयुक्त्या ह्वँ ह्वाँ ह्विँ ह्वीँ ह्वुँ ह्वूँ ह्वेँ ह्वैँ ह्वोँ ह्वौँ ह्वँ ह्वः इति विलिख्य, ईशाननैर्ऋतार्गलयोः 'ह्रँ ह्राँ ह्रिँ ह्रीँ ह्रुँ ह्रूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रोँ ह्रौँ ह्रँ ह्रः' इति पूर्वोक्तयुक्त्या विलिख्य, तद्बहिरष्टदलमूलस्थकेसरेषु प्रथमे—'अँ हंसः ईँ हँसः आँ, द्वितीये—'इँ हंसः ईँ हंसः ईँ'[6], तृतीये—'उँ हंसः ईँ हंसः ऊँ,' चतुर्थे—'ऋँ हँसः ईँ हँसः ॠँ', पञ्चमे—'ऌँ हँसः ईँ हंसः ॡँ', षष्ठे–'एँ हंसः ईँ हंसः ऐँ', सप्तमे—'ओँ हँसः ईँ हँसः औँ',

1. क. सन्दृष्टं । 2. क. द्वयगते रेखा । 3. कोष्ठगतोंऽशः क. पुस्तके नाऽस्ति ।
4. ख. प्रतिकोण० । 5. निर्गमगत्या । 6. ख. इँ ।

अष्टमे—'ग्रँ हँसः ईँ हँसः अः' इति लिखेत् । ततोऽष्टदलोदरेषु तिर्य्यक्पङ्क्त्याकारेण बाह्याभ्यन्तरक्रमेण पाशादित्र्यक्षरं त्रिशस्त्रिशः प्रतिदलं विलिख्य, पञ्चबाह्यगतवीथीत्रये अभ्यन्तरवीथ्यां स्वाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण 'आँ क्रोँ इति पाशाङ्कुशबीजाभ्यां पुनः पुनर्निरन्तरलिखिताभ्यां वेष्टयित्वा, तद्बहिर्वीथ्यां अकारादिक्षकारान्तैः सबिन्दुभिर्मातृकाक्षरैः प्रदक्षिणं संवेष्टच, तद्बहिर्वीथ्यां क्षकाराद्यकारान्तैः सबिन्दुभिर्वेष्टयेत् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।

सारसङ्ग्रहे—

इदं यन्त्रम्भूर्जदले लिखितं रोचनादिभिः ।
दक्षे भुजेतरे कण्ठे स्वशीर्षे वाऽपि धारयेत् ।।२३४।।

तस्य भूपतयः सर्वे वशगा मनुजा अपि ।
रोचनेष्टमदः प्रोक्तः काश्मीरं मृगसन्मदः ।।२३५।।

अलक्तकरसाक्तैश्च लिखेद्यन्त्राणि मन्त्रवित् ।
हरित्पटे विधानेन यन्त्रमालिख्य तत्पुनः ।।२३६।।

गुलिकीकृत्य साध्यस्य प्रतिमां सिक्थसम्भवाम् ।
कृत्वा वक्षसि विन्यस्य पात्रे संस्थापयेत्सुधीः ।।२३७।।

त्रिस्वादु परिपूर्णे च पूजयेच्च विधानवित् ।
गन्धपुष्पादिकैः सम्यग् बलिं रात्रौ निवेदयेत् ।। २३८।।

तत्स्पृष्ट्वा प्रत्यहं मन्त्री शतमष्टाधिकञ्जपेत् ।
ततो मन्त्री सप्तदिनादिष्टां योषां सुकर्षयेत् ।।२३९।।

पुनरेतल्लिखेद्भूर्जे गुलिकीकृतमुक्तवत् ।
जतुना शुद्धताम्रेण रजतेनाऽपि मन्त्रवित् ।।२४०।।

वेष्टयेत्तत्सुवर्णेन कलशे तं प्रविन्यसेत् ।
भुवनेशीं तत्र यजेच्चन्दनादिभिरुक्तवत् ।।२४१।।

सहस्रद्वादशमितं तं जप्त्वा जपेन्मनुम् ।
तेनोदकेन शिष्यं वा प्रियं साध्यमथो सुतम् ।।२४२।।

राजानञ्वाभिषिञ्चेत तद्धस्ते यन्त्रमुत्तमम् ।
आबध्नीयात्स्वयं मन्त्री वेदाशीर्वचनैः सह । २४३॥

गतामयत्वमारोग्यं धनकान्तियशांसि च ।
पुष्टिञ्च लभते सद्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२४४॥

यन्त्रङ्कुड्ये समालिख्य ह्यर्च्चयेच्च पुरोक्तवत् ।
तन्द्रष्टुन्नैव शक्ताः स्युर्भूतप्रेतपिशाचकाः ॥२४५॥

समालिख्य च तद्यन्त्रं सम्यक्पूजादिसाधितम् ।
धृतम्भटेन मुकुटे कुरुते रिपुसङ्कटे ॥२४६॥

रिपून्महाभटान्हत्वा जयलक्ष्मीयुतो भवेत् ।

तथा- शिखिगेहयुग्ममथ वज्रचिह्नितं,
सह साध्यकेन लिख मूलमत्र च ।
मन्त्रन्तदेव विलिखेत्तदश्रिषु,
प्रवेष्टय तेनैव बहिश्च वृत्तके ॥२४७॥

भूर्जादिपृक्तघुसृणेन्दुरोचना-
लिखितं सवश्यविजयाद्यरोगदम् ।

**अस्यार्थः**—षट्कोणं विलिख्य, तत्कोणेषु वज्राणि कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं मूलमन्त्रं विलिख्य, षट्सु कोणेष्वपि तदेव विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा, तदन्तर्गतवीथीद्वये मूलमन्त्रेणैव वेष्टयेत् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।

स्वरकेसरे वसुदले दलवर्गा—
ऽष्टकशोभिते धरणिगेहगते ।
गुणशश्च पाशलसदङ्कुशबद्धां,
विलिखेच्छक्तिमथ साध्यसुयुक्ताम् ॥२४८॥

अखिलोत्तमत्वरितवाञ्छितसिद्धिदं,
स्याद्रणसङ्कटे विजयदन्तत् ।

सकलामयान् सपदि नाशयतीदं,
सुभगत्वदं[1] ह्यविरतं[2] खलु नृणाम् ॥२४९॥

अस्यार्थः—अष्टदलम्पद्मं विरच्य, तन्मध्ये पाशाङ्कुशाभ्यां त्रिशो बद्धां शक्तिं विलिख्य, तत्केसरेषु स्वरान् विलिख्य, तत्पत्रेष्वष्टवर्णानालिख्य बहिश्चतुरश्रं कुर्यादेतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।

प्रपञ्चसारे—

एभिर्विधानैर्भुवनेश्वरीन्ताम्,
समर्च्चयित्वाऽथ जपेच्च मन्त्री ।
स्तुत्याऽनयाऽभिष्टुवतां समग्र-
प्राप्त्यै समस्तार्त्तिविभञ्जिकायाः ॥२५०॥

ॐ प्रसीद प्रपञ्चस्वरूपे प्रधाने
प्रकृत्यात्मिके[3] प्राणिनाम्प्राणसंज्ञे ।
प्रणन्तुम्प्रभो प्रारभे प्राञ्जलिन्त्वा-
म्प्रकृत्या प्रतर्क्के प्रकामप्रवृत्ते ॥२५१॥

स्तुतिर्वाक्यबद्धा पदात्मैव वाक्य-
म्पदन्त्वक्षरात्माऽक्षरन्तम्महेशि ।
ध्रुवन्तन्त्वमेवाक्षरैस्त्वन्मयैस्तो-
ष्यसस्त्वन्मयी वाक्यवृत्तिर्यतः स्यात् ॥२५२॥

अजाऽधोक्षजत्रीक्षणाश्चाऽपि[4] रूप-
म्परन्नाऽभिजानन्ति मायामये ते ।
स्तुवन्तीं[5] शिवान्त्वामतिस्थूलरूपा-
न्तदेतावदम्बेह युक्तम्ममाऽपि ॥२५३॥

नमस्ते समस्तेशि विन्दुस्वरूपे,
नमस्ते रवत्वेन[6] तत्त्वाभिधाने ।

---

1. क. सुभगदत्वं । 2. क. ह्यविरतरं 3. प्रकृत्यात्मके ।
4. क. ०ऽधोक्षजस्त्रीक्षणा० । 5. क. स्तुवन्ती । 6. ख. ऽपरत्वेन ।

नमस्ते महत्त्वम्प्रपन्नेन धाम्ने,
　　नमस्तेऽस्त्वहङ्कारतत्त्वस्वरूपे ॥२५४॥

नमः शब्दरूपे नमो व्योमरूपे,
　　नमः स्पर्शरूपे नमो वायुरूपे ।
नमो रूपतेजोरसान्तःस्वरूपे,[1]
　　नमस्तेऽस्तु गन्धात्मिके भूस्वरूपे ॥२५५॥

नमः श्रोत्रचर्म्माक्षिजिह्वाख्यनासा-
　　सवाक्पाणिपत्पायुसोपस्थरूपे ।
मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तस्वरूपे,
　　विरूपे नमस्ते विभो विश्वरूपे ॥२५६॥

रवित्वेन भूत्वाऽन्तरात्मा दधासि,[2]
　　प्रजाश्चेन्दुमत्त्वेन युक्ताऽसि भूयः ।
दहस्यग्निमूर्त्तिर्दधात्याहुतिं वा,
　　महादेवि तेजस्त्रयं त्वत्त एव ॥२५७॥

चतुर्व्वक्त्रयुक्ता लसद्धंसवाहा,
　　रजःसन्धिता ब्रह्मसंज्ञान्दधाना ।
जगत्सृष्टिकार्य्ज्जगन्मातृभूते,
　　परन्तत्पदन्ध्यायसीह त्वमेव ॥२५८॥

विराजत्किरीटा लसच्चक्रशङ्खा,
　　वहन्ती च नारायणाख्यां जगत्सु ।
गुणं सत्वमास्थाय विश्वस्थितिं यः,
　　करोतीह सोंऽशोऽपि देवि त्वमेव ॥२५९॥

जटाबद्धचन्द्रा हि गङ्गा त्रिनेत्रा,
　　जगत्संहरन्ती च कल्पावसाने ।

---

1. ख. रसाम्मःस्वरूपे ।　2. ख. दधासि ।

तमःसंस्थिता रुद्रसञ्ज्ञां दधाना,
दधन्ती परश्वक्षमाले[1] विभासि ॥२६०॥

सचित्राक्षमाला सुधाकुम्भलेखा-
धरा त्रीक्षणाऽर्द्धेन्दुराजत्कपर्द्दा ।
सुशुक्लांशुका कल्पदेहा सरस्व—
त्यपि त्वन्मयैवेशि वाचामधीशा ॥२६१॥

लसच्चक्रशङ्खा चलत्खड्गभीमा,
नदत्सिंहवाहा ज्वलत्तुङ्गमौलिः ।
द्रवद्दैत्यसङ्घा स्तुवत्सिद्धवर्गा,
त्वमेवेशि दुर्गा विसर्गादिहीने ॥२६२॥

पुरारातिदेहार्द्धभागा भवानी,
गिरीन्द्रात्मजात्वेन योषा विभासि ।
महायोगिवन्द्या महेशासुनाथा,
महेश्यम्बिका तत्त्वतस्त्वन्मयैव ॥२६३॥

लसत्कौस्तुभोद्भासिते व्योमनीले,
वसन्ती च वक्षःस्थले कैटभारेः ।
जगद्वल्लभां सर्वलोकैकनाथां,
श्रियन्ताम्महादेव्यहन्त्वामवैमि ॥२६४॥

अजाद्रीद्गुहाब्जाक्षपोतेन्द्रकाणां,
महाभैरवस्याऽपि चिह्नं वहन्त्यः ।
विभो मातरः सप्त तद्रूपरूपाः,
स्फुरन्त्यस्त्वदंशा महादेवि ताश्च ॥२६५॥

समुद्यद्दिवाकृत्सहस्रप्रभासा,
सदा सन्तताऽशेषविश्वावकाशे ।

---

1. क. परश्वाक्षमाले ।

लसन्मौलिबद्धेन्दुरेखे सपाशा-
ङ्कुशाभीत्यभीष्टात्तहस्ते नमस्ते ।।२६६।।

प्रभाकीर्त्तिकान्तीन्दिरारात्रिसन्ध्या-
क्रियाशान्तिमिश्राक्षुधाबुद्धिमेधाः ।
द्युतिर्वाङ्मतिः[1] सन्ततिः श्रीश्च भक्ति-
स्त्वमेवेशि येऽन्ये च शक्तिप्रभेदाः ।।२६७।।

हरे[2] बिन्दुनादैः सशक्त्याख्यशान्तै -
र्नमस्तेऽस्तु भेदैः प्रभिन्नैरभिन्नैः ।
सदा सप्तपातालकोकाचलाब्धि-
ग्रहद्वीपधातुस्वरादिस्वरूपे ।।२६८।।

नमस्ते समस्ते समस्तस्वरूपे,
समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूतशक्ते ।
अतिस्थूलसूक्ष्मस्वरूपे महेशि,
स्मृते बोधरूपेऽप्यबोध्यस्वरूपे[3] ।।२६९।।

मनोवृत्तिरस्तु स्मृतिस्ते समस्ता,
तथा वाक्प्रवृत्तिः स्तुतिः स्यान्महेशि ।
शरीरप्रवृत्तिः प्रणामक्रिया स्यात्,
प्रसीद क्षमस्व प्रभो सन्ततम्मे ।।२७०।।

हृल्लेखाजपविधिमर्च्चनाविशेषा-
नेतांस्तां[4] स्तुतिमपि नित्यमादरेण ।
यो न्यस्येत्स खलु पराङ्घ्रिश्रयञ्च[5] गत्वा,
शुद्धन्तं व्रजति पदम्परस्य धाम्नः ।।२७१।।

।। इति श्रीभुवनेश्वरीस्तुतिः ।।

---

1. क. द्युतिर्वा मतिः ।　2. ख. हरो ।　3. ख. ०प्यबोधस्वरूपे ।
4. ख. नेतास्तां० ।　5. ख. परङ्घ्रि० ।

।। अथाऽन्या स्तुतिः ।।

तन्त्रसारे—

अथाऽऽनन्दमयीं साक्षाच्छब्दब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
ईडे सकलसम्पत्त्यै जगत्कारणमम्बिकाम् ।।२७२।।

आद्यामशेषजननीमरविन्दयोने-
र्विष्णोः शिवस्य च वपुः प्रतिपादयित्रीम् ।
सृष्टिस्थितिक्षयकरीं जगतीत्रयाणाम्,
स्तुत्वा गिरां विमलयाम्यहमम्बिके त्वाम् ।।२७३।।

पृथ्व्या[1] जलेन शिखिना मरुतां वरेण,
होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्त्तिभाजः ।
देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्ता-
हेतुस्त्वमेव खलु पर्व्वतराजपुत्री ।। २७४:।

त्रिःश्रोतसः[2] सकलदेवसमर्च्चिताया
वैशिष्टकारणमवेमि तदेव मातः ।
त्वत्पादपङ्कजपरागपवित्रितासु,
शम्भोर्ज्जटासु सततम्परिवर्त्तनं यत् ।। २७५।।

आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिपः कलानां,
नाऽन्यामितः कमलिनीमथ नेतरां वा ।
एकस्य मोदनविधौ परमेकदंष्ट्रे,
त्वन्तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्वदृष्टया ।।२७६।।

आद्याऽप्यशेषजगतान्नवयौवनाऽसि,
शैलाधिराजतनयाऽप्यतिकोमलाऽसि ।
त्रय्याः प्रसूरपि तया न समीक्षिताऽसि,
ध्येयाऽसि गौरि मनसां पथि न स्थिताऽसि ।।२७७।।

1. क. पृथ्वा । ख. पृथ्वी । 2. क. ख. त्रिश्रोत्रसः ।

आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुराप[1]-
न्तत्राऽपि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् ।
नाऽभ्यर्च्चयन्ति जगताञ्जनयित्रि ये त्वां,
निःश्रेणिकाग्रमधिगम्य[2] पुनः पतन्ति ।।२७८।।

कर्प्पूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन,
ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुगन्धिगन्धैः ।
आराधयन्ति हि भवानि समुत्सुकास्त्वां,
ते खल्वशेषभुवनानि भुवः प्रथन्ते ।।२७९।।

आविश्य मध्यपदवीम्प्रथमे सरोजे,
सुप्ताहिराजसदृशी विरचय्य विश्वम् ।
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती,
पद्मानि पञ्च विदलय्य खमश्नुवाना ।।२८०।।

तन्निर्ग्गतामृतरसैः परिषिक्तगात्री,
मार्ग्गेण तेन विलयम्पुनरप्यवाप्ता[3] ।
येषां हृदि स्फुरसि जातु न ते भवेयु-
र्मातर्महेश्वरकुटुम्बिनि गर्भभाजः ।।२८१।।

आलम्बिकुन्तलभरामभिरामवक्त्रा-
मापीवरस्तनतटान्तनुवृत्तमध्याम् ।
चिन्ताक्षसूत्रकलशालिखिताढ्यहस्ता[4]-
मावर्त्तयामि मनसा तव गौरि मूर्त्तिम् ।।२८२।।

आस्थाय योगमवजित्य च वैरिषट्क-
माबद्धय चेन्द्रियगणम्मनसि प्रसन्ने ।
पाशाङ्कुशाभयवराढ्यकरां सुवक्त्रा-
मालोकयन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम् ।।२८३।।

---

1. क, चिरादुरापं । 2. ख. निःश्रेणिका० । 3. ख. ०रप्यवासा । 4. ख. ०लिखिताद्यहस्ता ।

उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भि-
रावर्ज्जिताऽमृतघटैरभिषिच्यमाना ।
हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्ती,
पद्माऽपि साऽभयकरा भवति त्वमेव ॥२८४॥

अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभि-
र्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम् ।
दूर्वादलद्युतिरमर्त्यविपक्षपक्षा-
न्न्यक्कुर्वती[1] त्वमसि देवि भवानि दुर्गा ॥२८५॥

आविर्निदाघजलशीकरशोभिवक्त्रा-
ङ्गुञ्जागणेन परिकल्पितहारयष्टिम् ।
पीतांशुकामसितकान्तिमनङ्गतन्त्र-[2]
मायाम्पुलिन्दतरुणीमसकृत्स्मरामि ॥२८६॥

हंसैर्गतिं कलितनूपुरदूरदृष्टे-
र्मूर्त्तैरिवार्थवचनैरनुगम्यमानौ ।
पद्माविवोर्द्ध्वमुखरूढसुतान्तनाभौ,
श्रीकण्ठपत्नि शिरसैव दधे तवाङ्घ्री ॥२८७॥

द्वाभ्यां समीक्षितमतृप्तिमतेरदृष्टया -
मुत्पाद्य भालनयनं वृषकेतनेन ।
सान्द्रानुरागतरलेन निरीक्षमाणे,
जङ्घे शुभे अपि भवानि तवाऽऽनतोऽस्मि ॥२८८॥

ऊरू स्मरामि जितहस्तिकरावलेपौ,
स्थौल्येन मार्द्दवतया परिभूतरम्भौ ।
श्रोणीभरस्य सह तौ परिकल्प्य दन्तौ,
स्तम्भाविवाऽम्ब वयसा तव[3] मध्यमेन ॥२८९॥

1. ख० न्यकुर्वती । 2. ख.० तन्त्रां । 3. क. लब ।

श्रोण्योस्तनौ च युगपत्प्रथयिष्यतोच्चै-
र्बाल्यात्परेण वयसा परिहृष्टसारः ।
रोमावलीविलसितेन विभाव्य मूर्ति-
र्मध्यस्तव स्फुरतु मे हृदयस्य मध्ये ॥२९०॥

सख्युः स्मरस्य हरनेत्रहुताशशान्त्यै,
लावण्यवारिभरितन्नवयौवनेन ।
आपाद्य[2] दत्तमिव पल्वलमप्रधृष्य-
नाभिं कदाऽपि तव देवि न विस्मरेयम् ॥२९१॥

ईशोपगूहशिशुनम्भसितन्दधाने,
काश्मीरकर्द्दममनु स्तनपङ्कजे ते ।
स्नातोत्थितस्य[3] करिणः क्षणलक्षफेणौ,
सिन्दूरितौ स्मरयतः समदस्य कुम्भौ ॥२९२॥

कण्ठातिरिक्तगलदुज्ज्वलकान्तिधारा-
शोभौ भुजौ निजरिपोर्मकरध्वजेन ।
कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीर्घपाशौ,
मातर्म्मम स्मृतिपथन्न विलङ्घयेथाः ॥२९३॥

नाभ्यायतं रुचिरकम्बुविलासचौर्य-
भूषाभरेण विविधेन विराजमानम् ।
कण्ठम्मनोहरगुणं गिरिराजकन्ये,
सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदाऽपि नाऽहम् ॥२९४॥

अत्यायताक्षमभिजाललाटपट्ट-
म्मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोलरेखम् ।
बिम्बाधरं वदनमुन्नतदीर्घनासं,
यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब स एव जातः ॥२९५॥

---

1. क. आपद्य । 2. क. स्नातोस्थितस्य ।

आविस्तुषारकरलेखमनल्पपुष्प-
गन्धोपरि भ्रमदलिव्रजनिर्विशेषम् ।
यश्चेतसा कलयते तव केशपाश-
न्तस्य स्वयं गलति[1] देवि पुराणपाशः ॥२९६॥

श्रुतिसमधिकपालं श्रीमतां स्तोत्रमेत-
त्पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा ।
स भवति पदमुच्चैः सम्पदाम्पादनम्र-
क्षितिपमुकुटलक्ष्मीलक्षणानाञ्चिराय[2] ॥२९७॥

[॥ इति भुवनेशीस्तुतिः ॥]

॥अथाऽस्याः कवचम्॥

श्रीदेव्युवाच—
भुवनेश्वर्याश्च देवेश या या विद्याः प्रकाशिताः ।
श्रुताश्चाऽधिगताः सर्वाः श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥२९८॥
त्रैलोक्यमङ्गलन्नाम कवचं यत्पुरोदितम् ।

ईश्वर उवाच—
पार्व्वति शृणु वक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ॥२९९॥
त्रैलोक्यमङ्गलन्नाम कवचम्मन्त्रविग्रहम् ।
सिद्धविद्यामयन्देवि सर्वैश्वर्य्यसमन्वितम् ॥३००॥

पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ।
त्रैलोक्यमङ्गलस्याऽपि कवचस्य ऋषिः शिवः ॥३०१॥

छन्दो विराड् जगद्धात्री देवता भुवनेश्वरी ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥३०२॥

ह्रीँ बीजम्मे शिरः पातु भुवनेशी ललाटकम् ।
ऐँ पातु दक्षनेत्रम्मे ह्रीँ पायाद्वामलोचनम् । ॥३०३॥

1. क. गलित । 2. ख. लक्षणानाचिराय ।

श्रीँ पातु दक्षकर्णम्मे त्रिवर्णात्मा महेश्वरी ।
वामकर्णं सदा पातु ऐँ घ्राणम्पातु मे सदा ॥३०४॥

ह्रीँ पातु वदनं देवी ऐँ पातु रसनाम्मम ।
वाक् त्रिपुटा त्रिवर्णात्मा कण्ठम्पातु परात्मिका[1] ॥३०५॥

श्रीँ स्कन्धौ पातु नियतं ह्रीँ भुजौ पातु सर्वदा ।
क्लीँ करौ त्रिपुटा पातु त्रिपुरैश्वर्यदायिनी ॥३०६॥

आँ पातु हृदयं ह्रीँ मे मध्यदेशं[2] सदाऽवतु ।
क्रोँ पातु नाभिदेशम्मे त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी ॥३०७॥

सर्वबीजप्रदा पृष्ठम्पातु सर्ववशङ्करी ।
ह्रीँ पातु गुह्यदेशम्मे नमो भगवति कटिन्तथा ॥३०८॥

माहेश्वरि सदा पातु शंखिनी जानुयुग्मकम् ।
अन्नपूर्णे सदा पातु स्वाहा पातु पदद्वयम् ॥३०९॥

सप्तदशाक्षरी पायादन्नपूर्णाऽखिलं वपुः ।
तारं माया रमा कामः षोडशार्णा ततः परम् ॥३१०॥

शिवस्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका परा ।
तारं दुर्गे युगं रक्षिणि स्वाहेति दशाक्षरी ॥३११॥

जयदुर्गा घनश्यामा पातु मां सर्वतो मुदा ।
मायाबीजादिका चैषा दशार्णा च ततः परा ॥३१२॥

उत्तप्तकाञ्चनाभा सा जयदुर्गा वनेऽवतु ।
तारं ह्रीँ दुर्गायै नमोऽष्टात्मिका परा ॥३१३॥

शंखचक्रधनुर्बाणधरा मान्दक्षिणेऽवतु ।
महिषमर्द्दिनी स्वाहा वसुवर्णात्मिका परा ॥३१४॥

---

1. क. पारात्मिका । 2. ख. मध्येदेशं ।

नैर्ऋत्यां सर्वदा पातु महिषासुरनाशिनी ।
माया पद्मावती स्वाहा सप्तार्णा परिकीर्तिता ।।३१५।।

पद्मावती पद्मसंस्था पश्चिमे मां सदाऽवतु ।
पाशाङ्कुशपुटा माया हि परमेश्वरि स्वाहा ।।३१६।।

त्रयोदशार्णा ताराद्या अश्वारूढाऽनिलेऽवतु ।
सरस्वती पञ्चस्वरो नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ।।३१७।।

स्वाहा वस्वक्षरी विद्या चोत्तरे मां सदाऽवतु ।
तारं माया च कवचं इयंछे कवचं वधूः ।।३१८।।

हूँ क्षे ह्रीँ फट् महाविद्या द्वादशार्णाऽखिलप्रदा ।
त्वरिताऽष्टादिभिः पायाच्छिवकोणे सदा च माम् ।।३१९।।

ऐँ क्लीँ सौः सततं बाला मूर्द्धदेशे ततोऽवतु ।
विन्द्वन्ता भैरवी बाला हसौ च मां सदाऽवतु ।।३२०।।

इति ते कथितम्पुण्यं त्रैलोक्यमङ्गलम्परम् ।
सारात्सारतरम्पुण्यम्महाविद्यौघविग्रहम् ।।३२१।।

अस्याऽपि पठनात्सद्यः कुबेरोऽपि धनेश्वरः ।
इन्द्राद्याः सकला देवा धारणात्पठनाद्यतः ।।३२२।।

सर्वसिद्धीश्वराः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दद्यान्मूलेनैव पृथक् पृथक् ।।३२३।।

सँव्वत्सरंकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
प्रीतिमन्योन्यतः कृत्वा कमला निश्चला गृहे ।।३२४।।

वाणी च निवसेद्वक्त्रे सत्यं सत्यं न संशयः ।
यो धारयति पुण्यात्मा त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ।।३२५।।

कवचम्परमम्पुण्यं सोऽपि पुण्यवतां वरः ।
सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।।३२६।।

पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा ।
बहुपुत्रवती भूत्वा वन्ध्यापि लभते सुतम् ।।३२७।।

ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तज्जनम् ।
एतत्कवचमज्ञात्वा यो जपेत्परमेश्वरीम् ।

दारिद्रयम्परमम्प्राप्य सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ।।३२८।।

**।। इति श्रीरुद्रयामले देवीश्वरसंवादे त्रैलोक्यमङ्गलन्नाम भुवनेश्वरीकवचं समाप्तम् ।।**

**इति श्रीमद्गोस्वामिजगन्निवासात्मज—**
**गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**अष्टात्रिंशस्तरंगः ।।३८।।**

**।। अथश्रीमातृकाविधानमुपदिश्यते ।।**

तत्र **श्रीदक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—**

अथ वक्ष्ये महेशानि मातृकां लोकमातरम् ।
अकारादिक्षकारान्तवर्णावयवदेवताम् ।।१।।

तेनैकपञ्चाशद्वर्णसमुदायो मातृकामन्त्र इति बोध्यम् । वर्णाश्चाऽत्रकेवला बोध्याः । **तत्रान्तरे** वर्णानां पृथक् पृथक् ध्यानमुक्तम्—

चामीकरनिभः शूलगदाराजद्भुजाष्टकः ।
चतुरास्योऽतिकायः स्याद**कारः** कूर्मवाहनः ।।२।।

पाशाङ्कुशकरा श्वेता पद्मसंस्थेभवाहना ।
षष्टचूर्ध्वयोजनमिता स्यादा मौक्तिकभूषणा ।।३।।

पीतं करान्तकुलिशं परशुं वैरिनाशनम् ।
द्व्यैकयोजनमानं स्या**दिकार** कच्छपस्थितम् ।।४।।

दशयोजनदीर्घाहिनाहाऽसौ हंसवाहना ।
ईः स्यात्पुष्टिप्रदा श्वेता मौक्तिकाढ्या सितानना ।।५।।

गदाङ्कुशकरं काकवाहनं कृष्णभूषणम् ।
योजनद्विसहस्राणां मानमुद्वयमक्षरम् ।।६।।

पाशशक्तिभुजं रक्तवह्निबिम्बस्थितोष्ट्रगम् ।
उक्तप्रमाणं कोलघ्नमृऋवर्णद्वयं भवेत् ।।७।।

चतुरश्राक्षहंसस्थं पुष्परागसमप्रभम् ।
पाशवज्रकरं रौद्रं लृयुगं स्यान्निरोधनम् ।।८।।

गदापलारिपद्माढ्यकरं हारविभूषणम् ।
चक्रवाकस्थितं श्याममेकारन्तु महद्भवेत् ।।९।।

नवकुन्दनिभा शूलवज्रबाहा द्विपस्थिता ।
कोटियोजनमाना स्यादैर्मूर्तिः कविताकरी ।।१०।।

चिन्मयं सर्वगं शान्तं द्विसहस्रकरोज्ज्वलम् ।
पीतं गोवृषसंस्थं स्यादोरूपं स्त्रीनरात्मकम् ।।११।।

तप्तहेमनिभा पाशवज्रबाहुविभूतिदा ।
योजनानां सहस्रेण स्यादौवर्णा मितौजसा ।।१२।।

नवकुंकुमसच्छायपद्मस्थो रक्तभूषणः ।
चतुर्भुजः स्यादंवर्णः श्रीकरो रिपुनाशनः ।।१३।।

वज्रशूलकरं क्षुद्रं फलदं खरवाहनम् ।
सहस्रयोजनं पीतं स्वरान्तं द्विभुजं स्मरेत् ।।१४।।

भूबिम्बगजसंस्थः स्यान्नवकुंकुमसन्निभः ।
शूलवज्रकरः कार्णः सहस्रद्वययोजनः ।।१५।।

पाशतोमरहस्तः खो मेषसंस्थो निरोधकः ।
योजनानां सहस्रेण मितः कृष्णो बिभीषणः ।।१६।।

पाशांकुशकरः पद्मे फणिसंस्थोऽरुणप्रभः ।
गकारः सर्पभूषः स्याच्छतयोजनसंस्थितः ।।१७।।

उष्ट्रोलूखलसंस्थः स्याद् गदावज्रकरो मिथः ।
योजनानां सहस्रेण द्विमुखो धः सितेतरः ॥१८॥

कोटियोजनदीर्घार्द्धं नाहं कृष्णं ज्वलत्प्रभम् ।
द्विभुजं काकवाहं स्यान्ङार्णंक्षुद्रफलप्रदम् ॥१९॥

युगाग्रपद्मसंस्थः स्याच्चतुर्बाहुः सितप्रभः ।
कपर्द्दीशः सुगन्धाढ्यः कोटियोजनसंस्थितः ॥२०॥

सितस्तावन्मितः पद्मे चतुर्बाहुः छवर्णकः ।
जभौ कोटिमानौस्तश्चतुर्बाहू सितप्रभौ ॥२१॥

योजनानां सहस्रैः स्यात् संमितं काकवाहनम् ।
विद्वेषकरणं ञार्णं कृष्णवर्णं भुजद्वयम् ॥२२॥

क्रौंचस्थो द्विभुजष्टः स्यात् नागनद्धो महाध्वनिः ।
धरापद्मगजेन्द्रस्थष्ठवर्णो द्विकरोज्ज्वलः ॥२३॥

लक्षयोजनमानः स्याद् गरनाशकरो विभुः ।
डवर्णोऽप्यष्टबाहुः स्याच्चतुर्वक्त्रः स्वलंङ्कृतः ॥२४॥

योजनानां सहस्रेण मितः कुवलये स्थितः ।
अग्निबिम्बाब्जगो ढार्णो दशबाहुर्ज्वलत्प्रभः ॥२५॥

सहस्रमानं व्याघ्रस्थं योजनानां हि णं भवेत् ।
षष्टिहायनसंस्थः स्याच्चतुर्बाहुः स्वलङ्कृतः ॥२६॥

सहस्रमानो गन्धाढ्यः कुंकुमाभश्च ताक्षरः ।
कोटियोजनमानः स्यादष्टबाहुश्चतुर्मुखः ॥२७॥

सितवर्णो वृषारूढः थवर्णोऽपि भयङ्करः ।
द्विमुखं षड्भुजं कोटिमानं दं महिषस्थितम् ॥२८॥

सिंहवाहश्चतुर्बाहुर्धश्चतुर्लक्षसंमितः ।
द्विभुजं काकवाहं नं तत्सहस्रैर्मितं भवेत् ॥२९॥

विंशद्भुजो दशास्यः **पः** कोटिमानो वकस्थितः ।
दशकोटिमितः **फार्णो** योजनानां भुजद्वयम् ।।३०।।

कण्ठीरवसिताम्भोजे निषण्णश्चञ्चलः सितः ।
षडास्यो द्विभुजो **बः** स्याद्दशकोटिमितोऽरुणः ।।३१।।

नीलोत्पललसद्धंसवाहनः पुष्टिदायकः ।
त्रिहस्तं त्रिमुखं व्याघ्रवाहनं भीषणाकृति ।।३२।।

दशलक्षमितं **भार्णं** धूम्राभं स्यान्महाबलम् ।
चतुर्भुजो **मकारः** स्यात्सविषोरगसन्निभः ।।३३।।

मण्डितो मुण्डमालाभिः शशिखण्डविराजितः ।
व्याप्तश्चतुर्भुजो धूम्रो **यार्णः** स्यान्मङ्गलस्थितः ।।३४।।

त्रिकोणाम्बुजमेषस्थो **रार्णो** बाहुचतुष्टयः ।
चतुरश्राब्जदन्तीन्द्रपृष्ठेनोपरि राजिता ।।३५।।

चतुर्भुजकला **लस्य** मूर्तिः स्याद्धुसृणप्रभा ।
अब्धिस्थपद्मनक्रस्थो द्विभुजो **वः** सितः स्मृतः ।।३६।।

करद्वयाब्जगा हेमवर्णा **शार्णाकृ**तिस्तथा ।
सहस्रमानः कृष्णाभो द्विभुजः कार्मणोऽथ **षः** ।।३७।।

कोटिमानमितः **सः** स्याद्धंसगो द्विभुजान्वितः ।
**हार्णः** श्वेतस्त्रिबाहुः स्याद् व्याप्तः शीतांशुशेखरः ।।३८।।

पाशाभयकरा **लार्ण**मूर्तिः श्वेता गजस्थिता ।
भूबिम्बशैलसंस्थः **क्षो** दशबाहुर्मणिप्रभः ।।३९।।

मूर्तिभेदा यथार्णानां मयाऽत्र प्रतिपादिताः । इति ।

**श्रीदक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—**

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य देवेशि गायत्रं छन्द उच्यते ।
मातृका देवता देवि हलो बीजानि शक्तयः ।।४०।।
स्वरास्तु परमेशानि याता व्यक्तस्तु कीलकम् ।

सिद्धसारस्वततंत्रे—

दक्षहस्ततले पृष्ठे करभेङ्गुष्ठकादिषु ।
कनिष्ठान्तासु वामे च कनिष्ठादितलावधि ।।४१।।

स्वरान्षोडश देवेशि केवलान्विन्येसत् प्रिये ।
बिन्दुयुक्तान्विलोमेन वामहस्ततलात्प्रिये ।।४२।।

दक्षहस्ततलान्तन्तु न्यसेत्संहार ईरितः ।
दक्षहस्ततलाद्देवि वामहस्ततलावधि ।।४३।।

न्यसेद्विसर्गसंयुक्तान् सृष्टिरेषा प्रकीर्तिता ।
वामहस्तकनिष्ठादि तत्तलावधि विन्यसेत् ।।४४।।

बिन्दुसर्गयुतानष्टौ लृकारादीन्स्वरान् पुनः ।
दक्षहस्ततलाद्देवि तत्कनिष्ठावधि प्रिये ।।४५।।

अकारादिऋकारान्तान् स्थितिन्यास उदाहृतः ।
वामहस्तकनिष्ठादि पंचस्वङ्गुलिषु क्रमात् ।।४६।।

तकारादि शकारान्तान् पर्वस्वेकैकशो न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तास्वङ्गुलीषु तथा न्यसेत् ।।४७।।

दक्षहस्ते च देवेशि कादिणान्तान् स्थितिक्रमात् ।
षकारादीन्पञ्चवर्णान् युगपत्करयोर्न्यसेत् ।।४८।।

अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु व्यापकत्वेन सुन्दरि ।
करशुद्धिं विधायेत्थं मातृकार्णैर्महेश्वरि ।।४९।।
षडङ्गानि न्यसेत्पश्चाद्वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।

शारदातिलके—

अक्लीबह्रस्वदीर्घान्तर्गतैः षड्वर्गकैः क्रमात् ।
षडङ्गानि विधेयानि जातियुक्तानि देशिकैः ।।५०।।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

आदावभ्यन्तरे न्यस्य षडाधारेषु मन्त्रवित् ।
अकारादिक्षकारान्तान्ततो देहे बहिर्न्यसेत् ।।५१।।

तत्प्रकारमाह—**श्रीदक्षिणामूर्तिसंहितायाम्**—

कलाप त्राम्बुजं कण्ठे स्वरान्सम्यक् प्रविन्यसेत् ।
हृद्यर्क्कपत्रे तद्वर्णान्नाभौ दशदले न्यसेत् ॥५२॥

दशवर्णान् लिङ्गमूले षड्दले षट् तथेश्वरि ।
चतुर्द्दले तथाऽऽधारे चतुर्व्वर्णांस्ततो न्यसेत् ॥५३॥

भ्रूमध्ये द्विदले हक्षावित्यन्तर्मातृकान्न्यसेत् । इति ।

तद्वर्णान् द्वादशवर्णान् । न्यासप्रकारस्तु प्रागेव नित्यपूजाप्रयोगे दर्शितः ।

**शारदातिलके**—

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः ।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गास्ये दोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च ॥४५॥

पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेंऽसके ।
ककुदंसे च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे ततः ॥५५॥
जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान्यथाक्रमात् ।

**दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्**—

अनेन न्यासयोगेन मन्त्री वर्णात्मरूपवान् ।
ध्यायेद्वर्णस्वरूपाढ्यां स्वरवक्त्रक्रमेण तु ॥५६॥

कचवर्गकरां रम्यां टतवर्गपदाम्बुजाम् ।
पवर्गचारुपार्श्वाङ्गलसच्छातोदरीम्पराम् ॥५७॥

यशवर्गाङ्गसुभगाम्पीनोन्नतघनस्तनीम् ।
नितम्बिनीञ्च गहनां शुक्लाक्षीं क्षाममध्यकाम् ॥५८॥

मुक्तामालाङ्गरागाढ्यामक्षस्रक्कुम्भशोभिताम् ।
चिन्तालिखितसत्पाणिं समग्रवरदायिनीम् ॥५९॥
एवं ध्यात्वा ततो देवीं यजनञ्च सुधीश्चरेत् ।

**ज्ञानार्णवेऽपि**—

मुक्तावज्रस्फुरद्भूषाञ्जपमालाङ्कमण्डलुम् ।
पुस्तकं वरदानञ्च..................॥६०॥

प्रयोगसारे तु—

'चिन्तामक्षवटीं सुधाढचकलशामिति' ।

चिन्ता ज्ञानमुद्रा । अत्र वराभावो बोध्यः ।

शारदातिलकेऽपि—

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलाम्,
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनाम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढचकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।।६१।।

अत्र यथागुरूपदेशं ध्येया ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

आदौ वृत्तं कर्णिकाढचं हसानुग्रहसर्गवत् ।
बाह्येऽष्टदलमालिख्य केसरेषु स्वरांल्लिखेत् ।।६२।।

युग्मयुग्मप्रभेदेन ततो वसुदलेषु च ।
कादिवर्गाष्टकं योज्यं लक्षान्तम्परमेश्वरि ।।६३।।

चतुरस्रन्ततः कुर्यात्सिद्धिदं दिक्षु सँल्लिखेत् ।
ठकाराणां चतुष्कञ्च रेखान्तद्बाह्यतस्तथा ।।६४।।

वारुणञ्च समालिख्य देवीमावाहयेत्सुधीः ।

अनुग्रह औकारः, सर्गो विसर्गः, वारुणं वकारः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

व्योमान्तसौ रसनया युतकर्णिकन्तत्,
किञ्जल्कगं स्वरयुगंम्प्रविलिख्य यन्त्रे ।
वर्गाष्टकन्तदनु भूमिपुरेण वीत-
माशासु[1] वाक्षरयुताश्रिषु टान्तयुक्तम् ।।६५।।
अस्मिन्पीठे यजेद्देवीं नवशक्तिसमान्विते ।

1. क. मासासु ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

आदौ पीठार्चनं कृत्वा नवशक्तिपुरस्कृतम् ।
मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीर्धृतिस्मृतिबुद्धयः ॥६६॥

विद्येश्वरीञ्च पूर्वादिदिक्षु मध्ये प्रपूजयेत् ।
कृताञ्जलिद्वयकरास्तत्तदूर्ध्वकरद्वये ॥६७॥
दधत्यः पुस्तकं कुम्भं श्वेताः सुन्दरमूर्तयः ।

सिद्धसारस्वते—

बीजञ्च सर्वशक्त्यन्ते कमलासनमुच्चरेत् ।
ङेऽन्तं नमःपदं ब्रूयादयम्पीठमनुर्मतः ॥६७॥

बीजं यन्त्रमध्यस्थं— ................................ ।

शारदातिलके—

वर्णाब्जेनासनन्दद्यान्मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ।
आवाह्य पूजयेत्तस्यान्देवीमावरणैः सह ॥६९॥

अङ्गैरावरणम्पूर्वं द्वितीयं युग्मशः स्वरैः ।
अष्टवर्गैस्तृतीयं स्यात् तच्छक्तिभिरनन्तरम् ॥७०॥

पञ्चमम्मातृभिः प्रोक्तं षष्ठं लोकेश्वरैः स्मृतम् ।
लोकपालायुधैः प्रोक्तं वज्राद्यैः सप्तमन्ततः ॥७१॥

विधिनाऽनेन वर्णेशीमुपचारैः प्रपूजयेत् ।
व्यापिनी पालिनी पश्चात्पावनी क्लेदिनी तथा ॥७२॥

धारिणी मालिनी भूयो हंसिनी शीतिनी स्मृता ।
शुभ्राः पत्रेषु सम्पूज्य धृताक्षगुणपुस्तकाः ॥७३॥

ब्राह्मी माहेश्वरी भूयः कौमारी वैष्णवी स्मृता ।
बाराह्यनन्तरेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमी मता ॥७४॥

अष्टमी स्यान्महालक्ष्मीः प्रोक्ताः स्युर्विश्वमातरः ।
दण्डं कमण्डलुं पश्चादक्षसूत्रमथाऽभयम् ॥७५॥

बिभ्रती कनकच्छाया ब्राह्मी कृष्णाऽजिनोज्ज्वला ।
शूलं परश्वधं क्षुद्रदुन्दुभिन्नृकरोटिकाम् ।।७६।।

वहन्तीहिमसङ्काशा ध्येया माहेश्वरी शुभा ।
अङ्कुशं दण्डखट्वाङ्गौ पाशञ्च दधती करैः ।।७७।।

ध्येया बन्धूकसङ्काशा कौमारी कामदायिनी ।
चक्रं घण्टाङ्कपालञ्च शङ्खञ्च दधती करैः ।।७८।।

तमालश्यामला ध्येया वैष्णवी विभ्रमोज्ज्वला ।
मुसलङ्करवालञ्च खेटकन्दधती हलम् ।।७९।।

करैश्चतुर्भिर्वाराही ध्येया कालघनच्छविः ।
अङ्कुशन्तोमरं विद्युत्कुलिशौ बिभ्रती करैः ।।८०।।

इन्द्रनीलनिभेन्द्राणी ध्येया सर्वसमृद्धिदा ।
शूलङ्कपालन्नृशिरश्शकलन्दधती करैः ।।८१।।

वहन्ती हेमसङ्काशा महालक्ष्मीः समीरिता ।
प्रभजेन्मातृकामित्थं नित्यं साधकसत्तमः ।।८२।।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्राग्वदुत्थानादिमातृकान्यासान्ते योगपीठन्यासाद्यात्मपूजान्तं कृत्वा, कुङ्कुमादिभिः सकेसरदलदलाग्रपरिवेषयुक्तचतुर्द्वारयुक्तचतुरश्रत्रयवेष्टितमष्टदलकमलं कृत्वा, तत्तत्कर्णिकामध्ये सकारविसर्गयुक्तं हकारं विलिख्य, तत्केसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन द्विद्विक्रमेण सबिन्दून् षोडशस्वरान्मध्यबीजाभिमुखान् विलिख्य, दलेषु कचटतपयशलाख्यानष्टवर्गांस्तथैव विलिख्य, चतुरश्राभ्यन्तरे चतुर्दिक्षु सविन्दु वकारं तत्कोणेषु सविन्दु ठकारं च लिखेत् ।

इति पूजाचक्रं निर्माय, श्रीपर्ण्यादिपीठे संस्थाप्य, तत्र मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिन्दत्वाऽर्घ्योदकेन प्रोक्ष्य, तत्र प्राग्वन्मण्डूकादिपरतत्वान्तिम्पीठपूजां विधायाऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "ॐ मेधायै नमः, ॐ प्रज्ञायै नमः, प्रभायै०, विद्यायै,० धियै०, धृत्यै०, स्मृत्यै०, बुद्धयै०, विद्येश्वर्यै०" इति मध्यान्तं सम्पूज्य, यन्त्रमध्ये बीजमुच्चार्य "सर्वशक्तिकमलासनाय नमः" इति समस्तम्पीठं

सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेष्वाग्नेयकोणे—"ॐ अँ कँ खँ गँ घँ ङँ आँ हृदयाय नमः, ईशाने- इं चं छं जं झं ञं ईँ शिरसे नमः, नैऋर्त्ये—उँ टँ ठँ डँ ढँ णँ ऊँ शिखायै नमः, वायव्ये—एँ तँ ५ ऐँ कवचाय नमः, देव्यग्रे—ओँ पँ ५ औँ नेत्राय नमः, देव्यग्रादि चतुर्दिक्षु—अँ यँ १० अः अस्त्राय नमः" इति षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेष्वेव देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन—"ॐ अँ आँ नमः, ॐ इँ ईँ नमः" इत्यादि प्राग्वल्लिखित-स्वरद्वन्द्वाष्टकं सम्पूज्याऽष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य—"ॐ कँ खँ गँ घँ ङँ नमः" इत्यादि पूर्वलिखितवर्गाष्टकं सम्पूज्य, तेषु वर्गाष्टकेषु "ॐ व्यापिन्यै नमः, ॐ पालिन्यै नमः, ॐ पावन्यै०, क्लेदिन्यै०, धारिण्यै०, मालिन्यै०, हंसिन्यै०, शोतिन्यै[1] नम" इति देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्याऽष्टदलाग्रेषु—"ॐ आँ ब्राह्म्यै नमः" एवम् "ईँ माहेश्वर्यै०, ऊँ कौमार्यै०, ऋँ वैष्णव्यै०, लृँ वाराह्यै० ऐँ इन्द्राण्यै०, औँ चामुण्डायै०, अः महालक्ष्म्यै नमः" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, चतुरश्रान्तराल-वीथीद्वये प्रथमवीथ्यां"—ॐ लं इन्द्राय०, एवम्—रँ अग्नये०, टँ यमाय०, क्षँ निर्ऋतये०, वँ वरुणाय०, यँ—वायवे०, सँ सोमाय०, हँ ईशानाय०," इन्द्रेशानयो-र्मध्ये—आँ ब्रह्मणे नमः" निर्ऋतवरुणयोर्मध्ये—"ह्रीँ अनन्ताय नमः" इति सम्पूज्य, द्वितोयवीथ्याम् "ॐ वज्राय०, ॐ शक्त्यै०", एवम्—"दण्डाय० खड्गाय०, पाशाय०, अङ्कुशाय०, गदायै०, , त्रिशूलाय०, पद्माय०, चक्राय०" इति सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य, "साङ्गायै श्रीमातृकासरस्वत्यै नमः" इति त्रिः पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य धूपदोपादि प्राग्वत्सर्वं समापयेदिति । तथा—

एवङ्कुर्यान्न्यासलक्षञ्जपेल्लक्षञ्च मन्त्रवित् ।
तद्दशांशेन जुहुयान्मधुरत्रयलोलितैः ॥८३॥
तिलैः शुद्धैस्तर्पणादि ततः कुर्यात्समाहितः ।

तेन न्यासजपरूपलक्षद्वयात्मकम्पुरश्चरणन्तद्दशांशहोमादिकञ्च सिद्धम् । एतत्कृतयुगपरम् । कलावेतच्चतुर्गुणं कार्यमिति ।

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्निजवाञ्छितान् ॥८४॥
साधयेत्सर्वसिद्धयर्थं गुर्वनुज्ञापुरःसरम् ।

**सारसंग्रहे**—

तोयम्पिबेद्दिनादौ यस्त्रिवारं जप्तमेतया ।
वत्सराज्जायते सम्यक् स मूकोऽपि कवित्वभाक् ॥८५॥

---

1. क. ख. पुस्तकद्वये 'शान्तिन्यै' इति पाठः, सोऽप्ययुक्तः सूत्रविरुद्धत्वात् । (सम्पा०)

**अस्यार्थः**—प्रातः सन्ध्यानन्तरं चुलुकेन जलमादाय, तन्मध्ये वक्ष्यमाणं मातृकायन्त्रं विभाव्याऽकारादिक्षकारान्तं मातृकां त्रिः सञ्जप्य , तज्जलममृतम्भावयन्, मूलाधाराज्जिह्वाग्रान्तं सारस्वतीन्नाडीन्दीपशिखाकारान्ध्यायंस्तस्यां होमधिया पिबेत्। एवम्प्रतिदिनङ् कुर्वतश्चतुर्विधम्पाण्डित्यं स्वात्मज्ञानं च भवति इति रहस्यार्थः।

तथा— ब्राह्मीरसेन वचया पयसा पाचयेद् घृतम् ।
अयुतञ्जप्तमनया भक्षितङ्कविताप्रदम् ।।८६।।

**तन्त्रान्तरे** तु विशेषः—

पलं श्वेतवचाचूर्णं कर्षन्तुरगगन्धि च ।
कृष्णा हरिद्रा सिन्धूत्थं धात्रीरुग्विश्वभेषजम् ।।८७।।

प्रतिनिष्कन्तु सञ्चूर्ण्य घृतम्प्रस्थे विनिक्षिपेत् ।
ब्राह्मीरसे चतुःप्रस्थे पचेन्मृद्वाग्निपाकवित् ।।८८।।

ब्राह्मीघृतमिदम्प्रोक्तमनयायुतमन्त्रितम् ।
पिबेत्सूर्योपरागे तु सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् ।।८९।।

दिनादौ वा लिहेन्नित्यम्पञ्चाशदभिमन्त्रितम्
वाग्विलासमसौ विन्देत्कविवृन्दे समन्ततः ।। इति ।।९०।।

**सारसङ्ग्रहे**—

स्वर्णं रूप्यन्तथा ताम्रं वर्गषोडशदिङ्मितम् ।
एतैस्तु रचितं सम्यग् रुचकं सर्वकामदम् ।।९१।।

वर्गः पञ्चविंशतिः, दिग्दश, रुचकमङ्गुलीयकम् ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु जपित्वा जुहुयात्तथा ।
घृतेन तत्समादाय सिक्तं सम्पातसर्पिषा ।।९२।।

अभिषेकप्रकारेण घृते विन्यस्य मुद्रिकाम् ।
मातृकाम्पूजयेत्तत्र साङ्गावरणाम्बुधः ।।९३।।

अभिषिक्ताय शिष्याय मुद्रान्तां वितरेद् गुरुः ।
मुद्राधारी ग्रहक्षुद्रदुष्टामयसरीसृपैः ।।९४।।
विमुक्तः सुचिरञ्जीवेत्प्रधने विजयी भवेत् ।

अस्याऽर्थः—पञ्चविंशतिभागैः सुवर्णैः, षोडशभागै रूप्यैर्दशभागैस्ताम्रैश्च पृथक्पृथगङ्गुलीयकत्रयं कारयित्वा, तत्त्रयं पुनरेकत्र संयोज्यैकीकृत्य, क्वचित्पात्रे निधाय, तां स्पृशन्नष्टोत्तरसहस्रं मातृकाविद्याञ्जपित्वा, पूर्वोक्तविधिना कुण्डादावग्निं संस्थाप्य, मातृकाविद्यया घृतैरष्टोत्तरसहस्रं मुद्रिकायाम्प्रत्याहुतिहुतिशेषं सम्पातयन्,[1] हुत्वा प्रागुक्तविधिना कुम्भं संस्थाप्य, तस्मिन् कुम्भे सम्पातसिक्तान्तां मुद्रां निक्षिप्य, पीठपूजापुरःसरन्तत्र मातृकासरस्वतीमावाह्य, साङ्गां सावरणां सम्पूज्य, तेन जलेनाभिषिक्ताय ताम्मुद्रान्धारयेत् । उक्तफलभाग्भवतीति । प्रधने संग्रामे । अत्र यद्यपि धातुत्रयेण मुद्रां कारयेदित्येवोक्तन्तथाऽपि धातुत्रयस्य पृथङ्मुद्राकरणन्तदेकीकरणादिकञ्च तन्त्रान्तरादवगन्तव्यम् । उक्तञ्च—

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

सोमसूर्याग्निरूपाः स्युर्वर्णा लोहत्रये तथा ।
रूप्यमिन्दुः स्मृतो हेम सूर्यस्ताम्रं हुताशनः ॥९५॥

लोहभागाः समुद्दिष्टाः स्वराद्यक्षरसंख्यया ।
तैर्लोहैः कारयेन्मुद्रामसङ्कलितसङ्गताम् ॥९६॥

साग्रं सहस्रं सञ्जप्य स्पृष्ट्वा ताञ्जुहुयात्ततः ।
तस्यां सम्पातयेन्मन्त्री सर्पिषा पूर्वसंख्ययेत्यादि ॥९७॥

तथा— अक्षरौषधिसम्पक्वपयसा पूरयेद्घटम् । पयसा जलेन ।
सहस्रजप्तेन ततः साध्यं सिञ्चेत्सुमन्त्रवित् ॥९८॥

स स्यान्मेधेन्दिराकीर्तिदीर्घायुःकवितायुतः ।
वन्ध्या च लभते पुत्रन्नानागुणगणालयम् ॥९९॥

अक्षरौषधयस्तु प्रागेवोक्ताः ।

तन्त्रराजे—

वृत्तद्वयावृतञ्चाऽष्टपत्रमब्जम्महीपुरम् ।
विधाय विलिखेन्मध्ये हंसहृद्वनशक्तिकम् ॥१००॥

1. क. ख. द्वये 'सन्तापयन्' इत्ययुक्तः पाठः । (सम्पा०)

कूटस्वरान्केसरेषु वर्णान्पत्रेषु चाऽऽलिखेत् ।
पञ्च पञ्चाक्षरोपतान् दावाम्बू दिग्विदिक्षु च ।।१०१।।

स्वरेष्वपुनरुक्तानि पञ्चाऽन्यानि तु पञ्च वै ।
सव्यञ्जनाव्यञ्जनत्वभेदतोभूद् द्विरन्वयः ।।१०२।।
सवाताग्निधरा स्वेन शक्तिस्तत्पञ्चकम्भवेदिति ।

हंसो हकारः, हृत्सकारः, वनमौकारः, शक्तिर्विसर्गः, दावः ठकारः, अम्बु-वकारः, वात अकारः, वह्निरिकारः, धरा नकारः । स्वः अनुस्वारः, शक्तिर्विसर्गः ।।

**।। अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः ।।**

तत्र प्रागुक्तपूजाचक्रं निर्माय, तत्र प्राग्वदेव मध्यस्थकूटादिसकलवर्णान्वि-लिख्य, षष्ठसप्तमदलेषु षष्ठे—"यरलवशः, "सप्तमे-षसहलक्ष" इति वर्गद्वयं विलिख्याऽष्टमे—"अ इ उ अं अः" इति पञ्चाक्षराणि विलिख्य, चतुरश्रेऽपि प्राग्वदे-व "वकारठकारौ" लिखेत् । अत्र वकारठकारलेखनन्त्वष्टदिक्ष्वपि सबिन्दुक-वर्णद्वयं लेखनीयमिति ।

**मनोरमाकारमतम्** । तथा—

एतद्यन्त्रस्य मध्यस्थन्नाम कृत्वा प्रयोजयेत् ।
प्रातर्मूर्ध्नि शिरोविन्दुविम्बस्थं सर्वसम्पदे ।।१०३।।

अभिषेकाच्च धारणात्पूजनाल्लोहकल्पिते ।
स्थापनाद् गृहदेशादौ यन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम् ।।१०४।।

एतद्यन्त्रस्य मध्यस्था देवताः सकलामपि ।
सन्निधिं फलदानञ्च साधकानां वितन्वत इति ।।१०५।।

**अत्र पूर्वश्लोकस्यायमर्थः**—उषःकाले ब्रह्मरन्ध्रस्य सहस्रदलकमलमध्यगत-चन्द्रमण्डलमध्ये प्रोक्तं यन्त्रं स्वाभीष्टसाध्यगर्भम्भावयेत् । तेन तत्तत्फलप्राप्ति-र्भवति । अथवा भूमावेत द्यन्त्रं सिन्दूरादिनोत्कीर्य, तत्र प्रागुक्तविधिना कुम्भं संस्थाप्य, वर्णौषधिक्वाथजलेनाऽऽपूर्य, तत्र देवीं सम्पूज्याऽभिषेकतः स्वाभिमत-फलप्राप्तिर्भवति । यद्वा—भूर्जादावालिख्य, यथाविधिधारणात्स्वर्णादिकल्पिते यन्त्रे प्रागुक्तविधिना देव्याः पूजनात्ताम्रादौ कल्पितस्य गृहादौ यथाविधि

भूम्यन्तःस्थापनाच्च स्वाभिमतफलसिद्धिर्भवति इति । द्वितीयश्लोकस्याऽयमप्यर्थः । तत्र सकलदेवताचक्रप्रतिष्ठा सुवर्णरजतताम्रान्यतमेन कृते पट्टे यन्त्रमुत्कीर्य, मध्ये सम्बुद्धचन्ततत्तद्देवतानामपूर्वकं सन्निधेहीति विलिख्य, प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा, तत्र देवीं यथोक्तविधिना समभ्यर्च्य मातृकया लक्षमात्रन्तद्यन्त्रं स्पृशञ्जपित्वा, तत्ववित्पूर्णात्मा सुपूजितस्तच्चक्रम्प्रथमम्भूम्यन्तः संस्थाप्य, तदुपरि निजवाञ्छितदेवतामूर्तिं यथाविधि स्थापयेत् । एवङ्कृते तस्याम्मूर्तौ तस्या देवतायाः सान्निध्यं सविशेषं भवति । स्थापयितुश्च सकलमभीष्टफलम्भवतीति ।

**अथैवम्मातृकाविद्योपासकानामन्यविद्योपसकानाञ्च प्राणाग्निहोत्रविधिर्लिख्यते—**

तत्र श्रीसारसङ्ग्रहे—

प्राणाग्निहोत्रं वक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
हितार्थं सर्वलोकानां मन्त्रिणाञ्च विशेषतः ।।१०६।।

कृतपद्मासनः पूर्वं सरलाङ्गः शुभासने ।
उपविष्टः प्रसन्नात्मा प्राङ्मुखः स्थिरमानसः ।।१०७।।

भुवनेशी हकारेण सत्वरूपेण लाञ्छितम् ।
मध्यं यस्य तदीयेन वामाक्षिरजसावृतम् ।।१०८।।

रेफेण तमसा चैव वेष्टितञ्च त्रिकोणकम् ।
पूर्वराक्षसवाय्वश्रिमूलाधारं विचिन्तयेत् ।।१०९।।

मध्ये प्राच्याम्प्रतीच्याञ्च कौबेर्यान्दक्षिणे तथा ।
तस्मिन्नेव समे पञ्च स्मरेत्कुण्डानि मन्त्रवित् ।।११०।।

सर्वदा ज्वलदग्नीनि स्वीयकार्यप्रसिद्धये ।
आवसथ्यञ्च सभ्यञ्च तथा चाऽऽहवनीयकम् ।।१११।।

अन्वाहार्यम्पुनः प्रोक्तं गार्हपत्यम्भवत्यपि ।
मध्यादिक्रमतस्त्वेवन्नामतोऽमूनि चैव हि ।।११२।।

प्रभाजालनिदानाद्धि ज्ञानरूपान्निरञ्जनात् ।
मूलप्रकृतिरूपाच्च कल्पादित्यान्निरन्तरात् ।।११३।।

द्वादशान्तस्थितात्सर्वं वर्णं हेतोः परात्मनः ।
निर्गताम्मातृकाम्मन्त्री सुधानिष्ष्यन्दरूपिणीम् ।।११४।।

प्रतिलोमक्रमाद्भिन्नादेकैकाक्षरतो धिया ।
होमयेत्तेषु कुण्डेषु ज्वलदग्निषु देशिकः ।।११५।।

स्तु मारकतप्रख्याः क्षादयः पञ्चवर्णकाः ।
पञ्च यान्ता भवन्तीह गोमेदाभाश्च शादिकाः ।।११६।।

नीलवर्णाश्च माद्याः स्युर्न्नाद्या विद्रुमसन्निभाः ।
णादयो वज्रसङ्काशास्तावन्तः परिकीर्तिताः ।।११७।।

पुष्परागत्विषश्चान्ताः कान्ता वैदूर्यवर्णकाः ।
अष्टस्वरास्तु मुक्ताभा माणिक्याभास्ततः परे ।।११८।।

नवरत्नमया ह्येते नव वर्गाः प्रकीर्तिताः ।
केतुर्विधुन्तुदो मन्दो वाक्पतिर्बुध एव च ।।११९।।

भार्गवो भौमचन्द्रौ च भास्करो नव कीर्तिताः ।
नववर्गधिया ह्येते रत्नानामधिदेवताः ।।१२०।।

होममेवं विधानेन कुर्युर्येऽनुदिनम्बुधाः ।
पञ्चाशत्संख्यया ते स्युः सभ्यता भुवनत्रये ।।१२१।।

स्वर्णवस्त्रादिकैराढ्या भाग्यवन्तः शुभोदयाः ।
ये वर्णा यत्र हूयन्ते तानहं वच्मि साम्प्रतम् ।।१२२।।

सँव्वर्त्तकञ्च तत्षष्ठम्पञ्चवर्गान्तिकास्तथा ।
षोडशस्वरझिण्टीशावर्धीशश्च ततः परम् ।।१२३।।

दशैतान् विधिवत्कुण्ड आवसथ्याह्वये हुनेत् ।
धरां वालि तुरीयञ्च वर्गाणाञ्च तुरीयकान् ।।१२४।।

मस्तकञ्च हराख्यञ्चाऽप्यमरेशन्दशाऽप्यमून् ।
सभ्याख्ये जुहुयात्कुण्डे मन्त्रवित्तदनन्तरम् । १२५।।

नकुलीशञ्च तत्षष्ठं वर्गाणाञ्च तृतीयकान् ।
सद्यान्तं स्थाणुकञ्चापि वामनेत्रं वशी क्रमात् ।।१२६।।

सञ्जुहोतु यथान्यायङ् कुण्डे आहवनीयके ।
य-सप्तमद्वितीयौ च वर्गाणाञ्च द्वितीयकान् ।।१२७।।

भौतिकान्तातिथीशाख्यौ सूक्ष्मसंज्ञमनन्तरम् ।
अन्वाहार्याभिधे कुण्डे वर्णानेतान्हुनेत्क्रमात् ।।१२८।।

वायुषष्ठञ्च वायुञ्च वर्गाद्यान्पञ्च यादिकान् ।
अधरञ्च क्रियाञ्चाऽपि नारायणमिमान्दश ।।१२९।।

गार्हपत्याभिधे कुण्डे हुनेन्मन्त्री समाहितः ।
वर्णहोमङ् क्रमेणैवं यथावत्परिकीर्तिताः ।।१३०।।

आकाशेन समं सर्वं शब्दजातन्तु मन्त्रवित् ।
आवसथ्याभिधे कुण्डे जुहुयात्तदनन्तरम् ।।१३१।।

वायुना तद्गुणम्पूर्वं वह्निना पश्चिमे ततः ।
रूपङ् कुण्डे हुनेन्मन्त्री पयसारसमंचयम् ।।१३२।।

उत्तराख्ये हुनेत्कुण्डे दक्षिणे तदनन्तरम् ।
धरया सर्वगन्धञ्च मन्त्रविद् जुहुयाद्वशी ।।१३३।।

प्रलयानलसङ्काशज्वलदग्निरहर्निशम् ।
होमङ् कुर्व्वीत कुण्डेषु मातृकावर्णसंयुतम् ।।१३४।।

नित्यशुद्धपरानन्दचिद्रूपात्मा विजायते ।
ध्रुवमायादिकं होममजपान्तन्तु पूर्ववत् ।।१३५।।

पञ्चाशत्संख्यया कृत्वा न्यस्य तावद्यथाविधि ।
जीवन्मुक्तो भवेन्मन्त्री चिरजीवी च जायते ।।१३६।।
तेजसा सूर्यकल्पोऽसौ हर्त्ता कर्त्ता च शम्भुवत् ।

**।। अथाऽस्य प्रयोगः ।।**

तत्र बद्धपद्मासनः प्राङ् मुखो मृद्वासने समुपविश्य, प्रागुक्तलक्षणे स्वमूला-

धारे भुवनेश्वरीबीजमन्त्रस्य सत्वगुणात्मकेन हकारेणाऽऽक्रान्तमध्यदेशं तस्य रजोगुणात्मकेन वामाक्षि ईकारेणावृतं तमोगुणात्मकेन तदीयरेफेण वेष्टितं त्रिकोणमग्निमण्डलं पूर्वनिर्ऋतिवायुगतान्यश्राणि कोणानि यस्य तादृशं मूलाधारं विचिन्त्य, तस्मिन्मूलाधारे मध्यपूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणेषु आवसथ्यसभ्याहवनीयान्वाहार्यगार्हपत्यानि पञ्च कुण्डानि ज्वलदग्निशिखासमाकुलानि वाञ्छितार्थप्रदानि सञ्चिन्त्य, सर्वतेजःप्रकाशप्रतिविम्बहेतुभूतानवच्छिन्नचैतन्यात्मकान् सकलवर्णकारणशब्दब्रह्मात्मकमूलप्रकृत्यात्मनो द्वादशान्तस्थितात्कल्पान्ताग्निशिखास्फुरत्केसरेषु कुण्डेषु वक्ष्यमाणक्रमेण वर्णान्मनसा जुहुयात् । तत्र वर्णानां रत्नवर्णतामाह स्युरिति । रत्नानामधिदेवतात्वेन ग्रहानुपदिशति केतुरित्यादि । अमृतमयत्वेन ध्यातानां रत्नसवर्णवर्णानाँ होममाह हौममिति । पञ्चकुण्डेषु पञ्चाशद्वर्णानामेकैकस्मिङ्कुण्डे होतव्यान्वर्णान्दर्शयति—संवर्त्तकमित्यादिभिः । संवर्त्तकः क्षकारः, तस्य षष्ठः प्रतिलोमेन शकारः । पञ्चवर्गान्तिकाः विलोमेन मनणञङाः । षोडशस्वरः अः, झिण्टीश एकारः, अर्घीश ऊकारः एतान् दशवर्णान् आवसथ्याख्ये कुण्डे जुहुयात् ।

धरा लकारः, वालितुरीयो वकारः । वर्गतुरीयकाः विलोमेन भ ध ढ झ घाः, मस्तकं अँ, हरः लृस्वरः । अमरेश उकारः । एतान्दशवर्णान् सभ्ये जुहुयात् ।

नकुलीशो हकारस्तत्षष्ठो लकारः । वर्गाणां तृतीयकाः– ब द ड ज गाः, सद्यान्त औकारः । स्थाणु लृकारस्वरः । वामनेत्रमीकारः । एतान्दशवर्णान् आहवनीये जुहुयात् ।

यसप्तमः सकारः द्वितीयो रेफः वर्गाणां द्वितीयकाः—फ थ ठ छ खाः, भौतिकान्तः ओकारः, अतिथीशः ऋकारः । सूक्ष्म इकारः । एतान्दश वर्णानन्वाहार्ये जुहुयात् ।

वायुपृष्ठः षकारः । वायुर्यकारः । वर्गाद्याः पतटचकाः । अधर एकारः । क्रिया ॠकारः । नारायण आकारः । एतान्दशवर्णान् गार्हपत्ये जुहुयात् ।

। **इति होमप्रक्रिया** ।

**होमप्रकारस्तु**—'ॐ ह्रीं हँ क्षं सः सोहं स्वाहा" इत्यादिक्रमेण एकस्मिन्कुण्डे त्वेकमेकमक्षरम्पुनः पुनः जुहुयात् । तत्प्रकारस्तु-आवसथ्ये क्षकारं, सभ्ये लकारं, आहवनीये हकारं, अन्वाहार्ये सकारं, गार्हपत्ये षकारं,

पुनरेवं क्रमेण अकाराद्याकारांतान्वर्णान् पञ्च पञ्च जुहुयात् । इति ।। तत्र अः इति ब्रह्मश्रुतेः । परिशिष्ट अकारः सर्वाधारो ब्रह्मरूपेण ध्यातव्यः । अथैवङ् कुर्वतां साधकानां **भोजनकाले कर्तव्यप्राणाग्निहोत्रविधिमाह**—

**सारसङ् ग्रहे** –

प्रत्यहं विधिनाऽनेन भोजनङ् कुरुते यदि ।
गार्हपत्यादिकुण्डानि तदा प्राणादिवायवः ।।१३७।।

उद्धरेत्कुण्डनामानि सप्तमीसहितानि तु ।
प्राणादीनाञ्च नामानि सप्तम्यन्तं समुद्धरेत् ।।१३८।।

हिरण्यानन्तरं वर्णं गगनानन्तरन्तथा ।
रक्तान्ते कृष्णशब्दान्ते सुप्रभान्ते तथैव च ।।१३९।।

शुचयः पदमाभाष्य पावका इति चोच्चरेत् ।
अग्निं विहृत्यशब्दान्ते आत्मानञ्च ततो वदेत् ।।१४०।।

उपचर्यपदम्पश्चादूर्ध्वाधस्तिर्यगुद्धरेत् ।
पुनरूर्ध्वपदं चाऽधस्तिर्यगूर्ध्वं समं वदेत् ।।१४१।।

गच्छन्तु वह्निजायान्तान्पञ्चमन्त्रान्समुद्धरेत् ।
अहं वैश्वापदम्पश्चान्नरो भूत्वापदं वदेत् ।।१४२।।

जुहोम्यन्तम्पदम्पश्चाच्चतुर्विधपदं वदेत् ।
पचाम्येवम्पदम्ब्रूयाद्विधानेन पदं वदेत् ।।१४३।।

स्वाहान्तं सर्वमुक्त्वा तु तृप्तिपर्यन्तमादरात् ।
तूष्णीं होमं विधायाऽथ संस्कृतान्नेन मन्त्रवित् ।।१४४।।

अमृतेत्यादिमन्त्रेण पीत्वा तु चुलुकोदकम् ।
आचम्य विधिना पश्चाच्छुद्धाचमनमाचरेत् ।।१४५।।

मूलाधारं समारभ्य द्वादशान्तावधिं स्मरेत् ।
जीवात्मानञ्जगद्व्याप्तन्नित्यमेकमनन्यगम् ।।१४६।।

प्रकृतिस्थं शुभं शान्त्यमाद्यन्तरहितम्परम् ।
हवनीयेन शुद्धेन हुतेनाऽपि सुतर्पितम् ।।१४७।।

एवङ्गलत्सुधारूपपञ्चशद्वर्णसञ्चितम् ।
भुक्त्वा हविर्हुतं मन्त्री सज्ज्वलत्पञ्चवन्हिकः ।।१४८।।

प्रातः सायञ्च कुर्वाणो मन्त्री प्राणाग्निहोत्रकम् ।
गर्भस्थितिभवं क्लेशन्न विन्दति कदाचनेति ।।१४९।।

अथाऽस्यार्थः—तत्रादौ प्राणादिपञ्चमन्त्रा उद्ध्रियन्ते गार्हपत्येत्यादिभिः । अयमर्थः ।

गार्हपत्ये प्राणे "हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्योर्द्ध्वं गच्छन्तु स्वाहा" ।

अन्वाहार्येऽपाने- "गगनवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्याऽधो गच्छन्तु स्वाहा" ।

आहवनीये व्याने "रक्तवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य तिर्यग्गच्छन्तु स्वाहा" ।

सभ्ये उदाने—"कृष्णवर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्योर्द्ध्वाधस्तिर्यग्गच्छन्तु स्वाहा" ।

आवसथ्ये समाने—"सुप्रभावर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्य तिर्यगूर्द्ध्वाधस्तिर्यक्समङ्गच्छन्तु स्वाहा" ।

इत्येतैर्मन्त्रैः पञ्चाहुतीः पञ्च कुण्डेषु हुत्वा, गार्हपत्यान्वाहार्याहवनीयसभ्यावसथ्येषु प्राणापानव्यानोदानसमानेषु—"हिरण्यगगनरक्तकृष्णसुप्रभवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्याऽहं वैश्वानरो भूत्वा जुहोम्यन्नं चतुर्विधं पचाम्येवं विधानेनोर्द्ध्वाधस्तिर्यक्समं गच्छन्तु स्वाहे" ति गार्हपत्यान्वाहार्याहवनीयसभ्यावसथ्यानां यमशशिवरुणेन्द्रमध्यमानि स्थितानि सञ्चिन्त्य पूर्ववदानेभ्योऽधिकपरिमाणेनावदानेन हुत्वा, पश्चात्तृप्तिपर्यन्तं तूष्णीं होमधिया भुक्त्वा "अमृतापिधानमसि" मंत्रेण चुलुकोदकं प्राश्य शुद्धाचमनं कुर्यात् । एवङ् कुर्वतः फलमाह—प्रातःसायमित्यादि ।

प्राञ्चबिन्दुविनिर्गतामृतधारया समासिक्तमकारविनिर्गत चन्द्रमण्डलद्वयरूपेण विसर्गं ध्यात्वा, ताभ्याम्प्रथमतराग्नीन्दुतेजोविलसिताभ्यामभृतपूर्णसकार-

विनिर्गतविन्दुभ्यां नाडीमार्गेणाऽऽत्मनः सकलशरीरमापूर्यावस्थिताभ्यां रोगाः सर्वे बाधिता भवन्ति । उक्तमातृकोपासनविधिमुपसंहरति ।

विश्वस्मिन्विततां विशिष्टफलदन्यासैर्जपैर्मातृका-
न्ध्यानैः पूजनहोमकाम्यविधिभिः सम्यग्भजन्तो जनाः ।
लक्ष्मीकान्तियशःप्रसन्नकवितानैरुज्यसर्वज्ञताः,
सम्प्राप्याऽनुदिनं समस्तविभवान्मुक्तिम्परांम्प्राप्नुयात् ।।१५०।। इति

**शारदातिलके—**

अथ भूतलिपिं वक्ष्ये सुगोप्यामतिदुर्ल्लभाम् ।
याम्प्राप्य शम्भोर्मुनयः सर्वान्कामान्प्रपेदिरे ।।१५१।।

पञ्च ह्रस्वाः सन्धिवर्णा व्योमेराग्निजलन्धरा ।
अन्त्यमाद्यं द्वितीयञ्च चतुर्थम्मध्यमं क्रमात् ।।१५२।।

पञ्चवर्गाक्षराणि स्युर्वीतश्वेतेन्दुभिः सह ।
एषा भूतलिपिः प्रोक्ता द्विचत्वारिंशदक्षरैः १५३।।

पंचह्रस्वाः—"अ इ उ ऋ लृ" प्रथमो वर्गः । सन्धिवर्णाः ए ऐ ओ औ" द्वितीयो वर्गः । व्योम "हकारः, इरो यकारः, अग्नी रेफः, जलं वकारः, धरा लकारः," अयं तृतीयो वर्गः

पञ्चवर्गाक्षराणां क्रममाह—अन्त्यमिति । अंत्यं ङकारः, आद्यं ककारः, द्वितीयं खकारः, चतुर्थं घकारः, मध्यमं गकारः", अयं क्रमः अग्रेऽपि चतुर्षु वर्गेषु । तेन—"ङ क ख घ ग, ञ च छ झ ज, ण ट ठ ढ ड, न थ त थ ध द, म प फ भ ब" इति पञ्च वर्गाः । वान्तः शकारः, श्वेतः षकारः, इन्दुः सकारः", अयन्नवमो वर्गः । नववर्गाद्यक्षराण्याह—

**सिद्धसारस्वते—**

वर्गाणामादिमा वर्णाः श्रीकण्ठोर्द्ध्वोष्ठखान्विताः ।
वर्गान्त्या वान्तसंयुक्ताः क्रमेण कथिता अमी ।।१५४।।

श्रीकण्ठः अकारः, ऊर्द्ध्व एकारः, खं हकारः, वर्गान्त्याः ङ ञणनमाः, वान्तः शकारः ।

नवानामपि वर्गाणान्देवताः कथिताः क्रमात् ।
विरिञ्चिविष्णुरुद्राह्वा आश्विनेयौ प्रजापतिः ॥१५५॥

लोकपालाः सक्रियादिशक्तयः परिकीर्तिताः ।

**शारदातिलके—**

ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिर्गायत्रं छन्द ईरितम् ।
देवता कथिता सद्भिः साक्षाद्वर्णेश्वरी परा ॥१५६॥

**सिद्धसारस्वते तु—**

'गायत्रीछन्द ईरितमि' त्युक्तम् । तथा —
हादिषड्वर्गकैः कुर्यात्षडङ्गानि सजातिभिः ॥१५७॥

**सिद्धसारस्वते—**

आद्यवर्गद्वयस्याऽथ नवार्णा नवसु न्यसेत् ।
आधाराधिष्ठाननाभिहृद्गलेषु सविन्दुके ॥१५८॥

नादे शक्त्यां शिवे सम्यक् स्वरान् क्रमवशात्सुधीः ।
तृतीयवर्गहाद्यर्णान्न्यसेन्मूर्द्धादिपञ्चसु ॥१५९॥

मुखेषु पञ्चवर्गार्णान्स्थानेष्वेषु प्रविन्यसेत् ।
दोः पदग्रेषु मूलेषु चोपमूलाग्रकेषु च ॥१३०॥

मध्यदेशेषु जठरे पार्श्वे द्वन्द्वसनाभिषु ।
पृष्ठे च शिष्टवर्गार्णान् गुह्यहृदभ्रूषु विन्यसेत् ॥१६१॥

सृष्टिन्यासे विसर्गान्तां विन्दुसर्गान्तिमां स्थितौ ।
आदिद्वितीयकोपान्त्यप्रान्तमध्यक्रमान्न्यसेत् ॥१६२॥

सृष्टिषु क्रमगान्न्यस्येत् संहृतौ बिन्दुसंयुताम् ।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि देवेशि मुनिपूजितम् ॥१६३॥

शाश्वतं यम्भूतमयम्प्रवदन्ति लिपिद्रुमम् ।
चिद्बीजं विन्दुनादाह्वशिखं विश्वम्भराक्षरैः ॥१६४॥

शाखासमूहैः सकलदिशासु सुविजृम्भितम् ।
जलवर्णदलव्रातेनाच्छादितजगत्त्रयम् ॥१६५॥

कृशानुवर्णाङ्कुरैश्च सन्दीप्तं सुरभूरुहम् ।
रत्नाङ्कुरैरिव शुभम्पवनाक्षरशोभितैः ॥१६६॥

कुसुमैर्दीपयन्तञ्च स्वकीयतनुसच्छ्रियम् ।
वियदक्षरसद्रूपफलैरानतमम्बिके ॥१६७॥

सर्वभूताश्रयन्नित्यम्परामृतमधुद्रवैः ।
सिञ्चन्तम्परमेशानीं देवीं वागीश्वरीं सदा ॥१६८॥

निगमागमसंक्लृप्तसमुन्नतिसुशोभितम् ।
शिवशक्त्यात्मकच्छायासमाश्रितजगत्त्रयम् ॥१६९॥

यमाश्रित्य मुनीन्द्रौघा वाञ्छितार्थान्प्रपेदिरे ।
एवम्भूतार्णवृक्षस्य मूले त्वक्षरपङ्कजे ॥१७०॥

वागीश्वरीं स्मरेद्देवि सकलेष्टफलप्रदाम् ।

कुन्दाभासाङ्गरुकुचघटां शोभिचन्द्रार्द्धमौलिम्,
हस्ताम्भोजे वरजपवटीपुस्तकम्पुङ्कपालम् ।
विभ्राणान्ताम्मधुमदलसद्विह्वलां युग्मनेत्रा-
न्देवीन्ध्यायेल्लिपिमयतनुं यौवनप्राप्तशोभाम् ॥१७१॥

दक्षाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् ।
इति ध्यात्वा महेशानि हृदि देवीमनल्पधीः ।
मातृकोक्ते यजेत्पीठे प्रत्यहं साधकः शिवे ॥१७२॥

शारदातिलके—

वर्णाब्जेनाऽऽसनन्दद्यान्मूर्तिम्मूलेन कल्पयेत् ।
देवीं सम्पूजयेत्तस्यामङ्गाद्यावरणैः सह ॥१७३॥

आदावङ्गावृतिः पश्चादम्बिकाद्याभिरीरिता ।
द्वितीया मातृभिः प्रोक्ता तृतीया द्व्यष्टशक्तिभिः ॥१७४॥

चतुर्थी पञ्चमी प्रोक्ता द्वात्रिंशच्छक्तिभिः पुनः ।
चतुष्षष्टया स्मृता षष्ठी शक्तिभिर्लोकपालकैः ॥१७५॥

सप्तमी पुनरेतेषामस्त्रैः स्यादष्टमावृतिः ।
एवम्पूज्या जगद्धात्री श्रीभूतलिपिदेवता ॥१७६॥

स्थानेषूक्तेषु विधिवदभ्यर्च्याऽङ्गानि पूर्ववत् ।
अम्बिका वाग्भवा दुर्गा श्रीशक्तिश्चोक्तलक्षणा ॥१७७॥

ब्राह्मयाद्याः पूर्ववत्पूज्याः कराली विकराल्युमा ।
सरस्वती श्रीर्दुर्गोषा लक्ष्मीश्रुत्यौ स्मृतिर्धृतिः ॥१७८॥

श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडश शक्तयः ।
खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याः स्वलङ्कृताः ॥१७९॥

विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूः पुनः ।
रुद्रवीर्याप्रभानन्दापोषिणीऋद्धिदाः शुभाः ॥१८०॥

कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी ।
विकृतिर्दण्डिमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी ॥१८१॥

निशुम्भशुम्भमथिनी महिषासुरमर्दिनी ।
इन्द्राणी चैव रुद्राणी शङ्करार्द्धशरीरिणी ॥१८२॥

नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी ।
अम्बिकाऽऽह्लादिनी चैव द्वात्रिंशच्छक्तयः सिताः ॥१८३॥

चक्रहस्ताः पिशाचास्याः सम्पूज्याः चारुभूषणाः ।
पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च ॥१८४॥

श्रद्धा स्वाहा स्वधाभिख्या माया संज्ञा वसुन्धरा ।
त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी ॥१८५॥

सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताऽच्युतप्रिया ।
विमला चाऽमला पश्चादरुणी पुनरारुणी ॥१८६॥

प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च ।
सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका परदेवता ।।१८७।।

देवमाता भगवती देवकी कमलासना ।
त्रिमुखी सप्तमुख्यन्या सुरासुरविमर्दिनी ।।१८८।।

लम्बोष्ठी चोर्द्ध्वकेशी च बहुशीर्षा वृकोदरी ।
रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथा परा ।।१८९।।

गगनवेगा पवनवेगा च तदनन्तरम् ।
ततो भुवनपालाख्या ततः स्यान्मदनातुरा ।।१९०।।

अनङ्गाऽनङ्गमदना तथैवाऽनङ्गमेखला ।
अनङ्गकुसुमा विश्वरूपाऽसुरभयङ्करी ।।१९१।।

अक्षोभ्यासत्यवादिन्यौ वज्ररूपा शुचिव्रता ।
वरदाख्याऽथ वागीशी चतुःषष्टिः समीरिताः ।।१९२।।

चापबाणधराः सर्वा ज्वालाजिह्वामहाप्रभाः ।
दंष्ट्रिण्यश्चोर्ध्वकेश्यस्ता युद्धोपक्रान्तमानसाः ।।१९३।।

सर्वाभरणसन्दीप्ताः पूजनीयाः प्रयत्नतः ।
लोकेशाः पूर्ववत्पूज्यास्तद्वद्वज्रादिकान्यपि ।।१९४।।

इत्थं यः पूजयेन्मन्त्री श्रीभूतलिपिदेवताम् ।
श्रीवाण्योः स भवेद्भूमिदैवैरप्यभिवन्द्यते ।।१९५।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्तं कृत्वा, शिरसि—'ॐ दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि–लिपिसरस्वतीदेवतायै नमः" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः । इति कृताञ्जलिरुक्त्वा—

"ॐ हँ यँ रँ वँ लँ हृदयाय नमः, ॐ ङँ कँ खँ घँ गँ शिरसे स्वाहा, ॐ ञँ चँ छँ भँ जँ शिखायै वषट्, ॐ नँ तँ थँ धँ दँ नेत्राय वौषट्, ॐ मँ पँ फँ भँ बँ अस्त्राय फडि" तिमन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय, गले—"ॐ ॡँ नमः, हृदि—ॐ

ॠँ नमः, एवन्नाभौ—उँ, स्वाधिष्ठाने-इँ, मूलाधारे-अँ. द्वादशान्ते—औं, शक्त्यां—ओँ, नादे-ऐँ, बिन्दौ-एँ, चोरकूपे—लं, वामकर्णे-वँ, दक्षकर्णे—रं, मुखे—यँ, मूर्ध्नि—हँ, दक्षमणिवन्धे—गँ, अंगुलिमूले—घँ, कूर्प्परे खँ, बाहुमूले—कँ, अङ्गुल्यग्रे—ङँ, वाममणिबन्धे—जँ, अङ्गुलिमूले—झँ, कूर्प्परे—छँ, बाहुमूले—चँ, अङ्गुल्यग्रे—ञँ, दक्षगुल्फे—डँ, अङ्गुलिमूले—ढँ, जानुनि—ठँ, ऊरुमूले—टँ, अंगुल्यग्रे—णँ, वामगुल्फे—दँ, अंगुलिमूले—धँ, जानुनि—पँ, ऊरुमूले—तँ, पादाग्रे—नँ, पृष्ठे—बँ, नाभौ—भँ वामपार्श्वे—फँ, दक्षे—यँ, उदरे—मँ, भ्रूमध्ये—सँ, हृदये—षं, गुह्ये—शँ, नमः।" **इति संहारन्यासः।**

**।। अथ सृष्टिन्यासः ।।**

तत्र मूलाधारे-"ॐ अः नमः, एवं स्वाधिष्ठाने-इः, नाभौ-उः, हृदि-ऋः, गले-लृः, बिन्दौ-एः, नादे- ऐः, शक्त्यां-ओः, द्वादशान्ते-औः, मूर्ध्नि-हः, मुखे-यः, दक्षकर्णे-रः, वामे-वः, चूडाधः-लः, दक्षकरांगुल्यग्रे-ङः, बाहुमूले-कः, मध्ये-खः, अंगुलिमूले-घः, मणिबन्धे-गः, वामकरांगुल्यग्रे-ञः, बाहुमूले-चः, कूर्प्परे-छः, अंगुलिमूले-झः,-मणिबन्धे-जः, दक्षपादाग्रे-णः, ऊरुमूले-टः, जानुनि-ठः, अंगुलिमूले-ढः, गुल्फे-डः, वामपादाग्रे-नः, ऊरुमूले-तः, जानुनि-थः, अंगुलिमूले-धः, गुल्फे-दः, उदरे-मः, दक्षपार्श्वे-पः, वामे-फः, नाभौ-भः, पृष्ठे-बः, गुह्ये-शः, हृदि-षः, भ्रूमध्ये-सः। [इति सृष्टिन्यासः]

**।। अथ स्थितिन्यासः ।।**

मूलाधारे "ॐ अं नमः, एवं स्वाधिष्ठाने-इँः, हृदि-ऋँः, गले-लृँः, नाभौ-उँः, बिन्दौ-एँः, नादे-ऐंः, द्वादशान्ते-औंः, शक्त्यां—ऊँः,ब्रह्मरन्ध्रे-हँः, मुखे-यंः,-चोरकूपे-लंः, वामकर्णे-वँः, दक्षकर्णे-रँः, दक्षबाह्वङ्गुल्यग्रे-ङँः, बाहुमूले-कँः, अंगुलिमूले-घँः, मणिबन्धे गँः, कूर्प्परे-खँः, वामबाह्वङ्गुल्यग्रे-ञँः, बाहुमूले-चँः, अंङ्गुलिमूले-झँः, मणिबन्धे- जँः, कूर्प्परे-छँः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे-णँ-, अरुमूले-टँः, अङ्गुलिमूले-ढँः, गुल्फे-डँः, जानुनि-ठँः, वामपादाङ्गुल्यग्रे-नँः, उरुमूले-तँः, अङ्गुलिमूले-धँः, गुल्फे-दँः, जानुनि थँः, उदरे-मँः, दक्षपार्श्वे-पँः, नाभौ-भँः, पृष्ठे-बँः, वामपार्श्वे-फँः, गुह्येः-शँः, भ्रूमध्ये-सँः, हृदि-षँः", **इति स्थितिन्यासः।**

इति विन्यस्य, ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्दलकमलं विरच्य, तद्बहिरष्टदलन्तद्बहिः षोडशदलन्तद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलन्तद्बहिश्चतुःषष्टिदलन्तद्बहिश्चतुर्द्वारयुतञ्चतुरश्रत्रयमिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याऽर्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तम्मातृकापीठमभ्यर्च्य, तत्र मूलेन मूर्तिम्परिकल्प्याऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्ते चतुर्दलपद्मे केसरेषु प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, चतुर्दलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन-ॐ-अम्बिकायै नमः, ॐ वाग्भवायै नमः, ॐ दुर्गायै नमः, ॐ श्रियै नमः", इति सम्पूज्याष्टदलेषु प्राग्वद्ब्राह्म्यादिकाः सम्पूज्य,

तद्बहिः षोडशदलेषु—"ॐ करालयै नमः, एवं विकरालयै नमः, उमायै०, सरस्वत्यै०, श्रियै०, दुर्गायै०, उषायै०, लक्ष्म्यै०, श्रुत्यै०, स्मृत्यै०, धृत्यै०, श्रद्धायै०, मेधायै०, मत्यै०, कान्त्यै०, आर्यायै०," इति सम्पूज्य,

द्वात्रिंशद्दलेषु-"ॐ विद्यायै नमः, एवं ह्रियै०, पुष्टयै०, प्रज्ञायै०, सिनीवाल्यै०, कुहुवे०, रुद्रवीर्यायै०, प्रभायै०, नन्दायै०, पोषिण्यै०, ऋद्धयै०, कालरात्र्यै०, महारात्र्यै०, भद्रकाल्यै०, कपर्दिन्यै०, विकृत्यै०, दण्डिन्यै०, मुण्डिन्यै०, सेन्दुखण्डायै०, [शिखण्डिन्यै०][1], निशुम्भमथिन्यै०, शुम्भमथिन्यै०, महिषासुरमर्द्दिन्यै०, इन्द्राण्यै, रुद्राण्यै०, शङ्करार्द्धशरीरिण्यै०, नार्यै०, नारायण्यै०, त्रिशूलिन्यै०, [पालिन्यै०],[2] अम्बिकायै०, ह्लादिन्यै०, इति सम्पूज्य,

बहिश्चतुःषष्टिदलेषु—"पिङ्गलाक्ष्यै०, विशालाक्ष्यै०, समृद्धयै०, वृद्धयै०, श्रद्धायै०, स्वाहायै०, स्वधायै०, भिक्षायै०, मायायै०, [संज्ञायै०].[3] वसुन्धरायै०, त्रिलोकधात्र्यै०, सावित्र्यै०, गायत्र्यै०, त्रिदशेश्वर्यै०, सुरूपायै०, बहुरूपायै०, स्कन्दमात्रे०, अच्युतप्रियायै०, विमलायै०, विपुलायै०, अरुण्यै०, आरुण्यै०, प्रकृत्यै०, विकृत्यै, सृष्टयै०, स्थित्यै०, संहृत्यै०, सन्ध्यायै०, मात्रे०, सत्यै०, हंस्यै०, मर्दिकायै०, परदेवतायै०, देवमात्रे०, भगवत्यै नमः, देवक्यै०, कमलासनायै०, त्रिमुख्यै०,[सप्तमुख्यै०][4] सुरविमर्द्दिन्यै०, असुरविमर्दिन्यै०, लम्बोष्ठयै०, ऊर्ध्वकेश्यै०, बहुशीर्षायै०, वृकोदर्यै०, रथरेखायै०, शशिरेखायै०, गगनवेगायै०, पवनवेगायै०, भुवनपालायै०, मदनातुरायै०, अनङ्गायै०, अनङ्ग-

1. 2. 3. पुस्तके त्वेतानि पदानि नैव दृश्यन्ते, किन्तु मूलसूत्रे त्वेषां निदर्शनादत्र सन्निहितानि । 4. पुस्तके 'सुमुख्यै' इति पाठः, किन्तु सूत्रे तूपरिनिर्दिष्ट एव पाठो लभ्यते ।
(सम्पादकः)

मदनायै०, अनङ्गमेखलायै०, अनङ्गकुसुमायै०, विश्वरूपायै०, असुरभयङ्कर्यै०, अक्षोभ्यायै०, सत्यवादिन्यै०, वज्ररूपायै०, शुचिव्रतायै०, वरदायै०, वागीशायै नमः" इति सम्पूज्य प्राग्वल्लोकपालार्चादि सर्वं समापयेदिति ।

सारसङ्ग्रहे—

साधकः कृतदीक्षः सन् न्यसेल्लक्षञ्जपेत्तथा ।
तद्दशांशं तिलैः शुद्धैस्त्रिमध्वक्तैर्जपेत्ततः ॥१९६॥

तर्पणादिद्विजार्चान्तम्प्राग्वत्कृत्वा तु मन्त्रवित्
काम्यकर्म ततः कुर्याद् स्वगुरूक्तविधानतः ॥१९७॥

शारदातिलके—

कमलैरयुतं हुत्वा राजानं वशमानयेत् ।
उत्पलैर्जुहुयात्तद्वन्महालक्ष्मीः प्रजायते ॥१९८॥

पलाशकुसुमैर्हुत्वा वत्सरेण कविर्भवेत् ।
राजीलवणहोमेन वनितां वशमानयेत् ॥१९९॥

मातृकोक्तानि कर्माणि कुर्यादत्राऽपि साधकः ।
भूतलिप्या पुटीकृत्य यो मन्त्रं भजते नरः ॥२००॥

क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तस्य सिद्धो भवेन्मनुः ।
प्रसुप्तभुजगाकारां कुण्डलीम्मध्यवर्त्मना ॥२०१॥

सङ्गम्य परमं स्थानम्प्राणवित्ताम्परामृतैः
प्लावयेन्मूर्ध्नि मूलान्तं योगोऽयं सर्वसिद्धिदः ॥२०२॥

अनया न्यस्तदेहस्तु तेजसा भास्करो भवेत् ।
यन्त्रे क्रियाविशेषांश्च ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥२०३॥

सारसङ्ग्रहे—

विन्द्वाढंच व्योम भूयस्तदपि च शिवयुक् ज्ञानिने स्याद्धृदन्तो
मन्त्रोऽयं कर्णिकायाम्प्रणिगदितरुतो व्योमवर्णान्दलेषु ।

साध्याख्यान् बन्धुवर्णान्विलिखतु पुटितात्र् शिष्टमन्तेऽथ पत्रे,
वृत्तावीतं खयन्त्रं मलयजजतुभिर्निर्मितं क्ष्वेडहन्तृ ॥२०४॥

व्योम हकारः, तदेव हकार एव शिव एकारस्तद्युक्तः, हतः हकारेण पुटिता-न्व्योमवर्णान् अब्दहङञणनमशहान् ।

सर्वशान्तिकरं राहो रोहिण्याः समुदये सति ।
साधकस्य करे बद्धम्पूर्वोक्तफलदायि तत् ॥२०५॥

**अयमर्थः**—अष्टदलम्पद्मं विरच्य, तत्कर्णिकायां-"हुँ हे ज्ञानिने नमः" इति मन्त्रं ससाध्यं विलिख्य, पूर्वाद्यष्टदलेषु खाग्रादप्रादक्षिण्येन प्रथमदले—"हँ लृँ हँ," द्वितीये-हँ लृँ हँ, तृतीये-हँ अँ हँ, चतुर्थे-हँ ङँ हँ, पञ्चमे-हँ ञँ हँ, षष्ठे-हँ णँ हँ, सप्तमे-हँ नँ हँ, अष्टमे-हँ मँ हँ, अष्टम एव-हँ शँ हँ, हँ हँ हँ" इति विलिखेत् ।

साध्याख्यान्बन्धुवर्णानिति । तान्यक्षराणि तु यमुद्दिश्य यन्त्रं लिख्यते तस्य नामाद्यक्षरं सिद्धादिकोष्ठमध्ये यस्मिन् कोष्ठे तिष्ठति तत्कोष्ठगताक्षराणि तैः सह लिखेदिति, वर्णान्विलिख्य तद्बहिर्वृत्तेन वेष्टयेदिति खयन्त्रमाकाशयन्त्रं, जतु लाक्षा, रोहिण्यां रोहिणीनक्षत्रे, राहोरुदये राहुस्थितनक्षत्रोदये । तथा—

वायू नेत्रेयुतौ स्तो विरतिनतियुतो-ङेऽन्तकोपेशशब्दो
मध्ये वायव्यवर्णान् पवनसुपुटितान् पत्रमध्येऽन्तमन्ते ।
स्वात्याम्मन्दोदये तत्पवनगृहगतन्तालपत्रस्थयन्त्रं,
शम्भोरुच्चाटकृत्स्याद्रिपुमृतिफलदं द्वारि तस्यैव खातम् ॥२०६॥

वायू यकारौ, नेत्रेयुतौ क्रमादिकारेण एकारेण च युक्तौ, चतुर्थ्यन्तः कोपेशशब्दो विरताववसाने नमःपदयुतः ।

**अस्यार्थः**—प्राग्वदष्टदलपद्मं विरच्य, तन्मध्ये "यिँ येँ कोपेशाय नमः" इति मन्त्रं साध्यं विलिख्य, पूर्वाद्यष्टदलेषु—"यँ अँ यँ, यँ आँ यँ, यँ एँ यँ, यँ कँ यँ, यँ चँ यँ, यँ टँ यँ, यँ तँ यँ, यँ पँ यँ, यँ यँ यँ, यँ षँ यँ" इति प्राग्वद्विलिख्य, वायु-मण्डलेन वेष्टयेत् । वायुमण्डलन्तु अन्तर्बहिर्विभागेन षड्बिन्दुलाञ्छितवृत्तवेष्टित-षट्कोणरूपम् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति । स्वात्यामित्यादि प्राग्वत् । तथा—

वन्ही क्रमाच्छ्रुतिरदेन्दुयुतौ सकांतौ,
रोरोः सफण्णतिरयं मनुरब्जमध्ये ।।

पत्रेषु वह्निपुटितान्यनलाक्षराणि,
प्रान्तेऽन्तिमञ्च सह साध्यसुपोषकार्णैः ।।२०७।।

अस्रस्थितम्भुजदले शुकवासरर्क्षे,
लाक्षासुकुङ्कुमकृतम्प्रकरोति रक्षाम् ।।

वह्नी रेफद्वयं, श्रुतिः उकारः, रदः ओकारः, इन्दुः अनुस्वारः, कान्तः खः, अन्यत्स्वरूपम् । तथा—

अर्यर्णयुक् शवपटे खलु कृत्तिकाया-
म्भौमोदये विलिखितं रिपुनाशकारि ।।२०८।।

**अस्यार्थः**—प्राग्वदष्टदलपद्मं विरच्य, तत्कर्णिकायां-"रुं रों खरोरौ फट् नमः" इति विलिख्य, तत्पत्रेषु प्राग्वत् पूर्वादितः प्रादक्षिण्येन—रँ इँ रँ, रँ ईँ रँ, रँ ऐँ रँ, रँ खँ रँ, रँ छँ रँ, रँ ठँ रँ, रँ थँ रँ, रँ फँ रँ, रँ रँ रँ, रँ क्षँ रँ" । इति प्राग्वदन्त्यमष्टदले इति क्रमेण विलिख्य, स्वस्तिकेन त्रिकोणेन वेष्टयेदिति । प्रोक्तार्णास्तु प्राग्वत्साध्यस्य सुसिद्धकोष्ठगतार्णाः । एतदेव यन्त्रं साध्यनामभेदतो घातकाक्षरयोगेन च शावपटे श्मशानाङ्गारेण लिखितम्प्रोक्तफलदम्भवति । कृत्तिकायामित्यादि प्राग्वत् । घातकाक्षराणि तु साध्यस्याऽरिकोष्ठगतानि ज्ञेयानि तथा—

नासामनुस्वरसबिन्दुयुताम्बुयुग्मं,
ङेऽन्तो विधुर्विधुभुवे नतिरेष मध्ये ।।

अम्बवर्णकान् सुपुटितान् शिशुबन्धुवर्णैः,
पत्रेषु चाप्यपुरयुग्वरुणाह्वयन्त्रम् ।।२०९।।

नासा ऋस्वरः, मनुस्वर औकारः, अम्बुयुग्मं वकारद्वयं, सुगममन्यत् ।

पूर्वाषाढाह्वनक्षत्रे लिखेच्छुक्रोदये सति ।
कुचन्दनोदकेनैतद् भूर्ज्जे मंक्ष्वेव वश्यदम् ।।२१०।।

अस्यार्थः— प्राग्वदष्टदलकमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायाँ "वृँ वौँ विधवे विधुभुवे नमः" इति मन्त्रं ससाध्यं विलिख्याऽष्टदलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन "वँ ऋँ वँ, वँ ॠँ वँ, वँ औँ वँ, दं घँ वँ, वँ झँ वँ, वँ ढँ व्रँ, वँ धँ वँ, वँ भँ वँ, वँ वँ वँ, वँ सँ वँ" इति पूर्ववत् साध्यबिन्द्वक्षरैः सह विलिख्य, जलमण्डलेनाऽर्द्धचन्द्राकारेण कोटिद्वये पद्मयुक्तेन वेष्टयेदित्येतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवति । पूर्वाषाढेत्यादि प्राग्वत् । तथा—

गण्डानन्ते सविन्दून् विलिखतु च जगौ गण्डयोर्मध्यसंस्थौ,
त्वन्ते केहृत्समध्ये तदनु कुपुटितान्भूमिवर्णान्धरान्तान् ।
पत्रान्तःसेवकार्णैर्धरणिगृहवृतं चन्द्रसौम्योदयेन ,
भूर्जस्थे भूमियन्त्रं सुमृदि विरचितं गैरिकैः स्तम्भकृत्स्यात् ।।२११।।

गण्डःलृस्वरः, अनन्ता भूमिः, भूर्भूमिरबलानन्तेति कोशः । लान्तान् लकारान्तान् ।

अस्यार्थः–प्राग्वदष्टदलपद्मं विरच्य, तत्कर्णिकायां "लृं लँ जगौ लु के नमः" इति मन्त्रं ससाध्यं विलिख्याऽष्टदलेषु प्राग्वत्प्रादक्षिण्येन 'लँ उँ लँ, लँ ऊँ लँ, लँ आँ लँ, लँ गँ लँ, लँ जँ लँ, लँ डँ लँ, लँ दँ लँ, लँ बँ लँ, लँ लँ लँ, लँ लँ लँ" इति वर्णान् साध्यस्य सेवकाक्षरैः सह विलिख्याऽष्टवज्रयुतचतुरश्रात्मकभूमिपुरेण वेष्टयेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवति ! सेवकाक्षराणि तु प्राग्वत्साध्यस्य साध्यकोष्ठगताक्षराणि, ऐन्द्रं ज्येष्ठानक्षत्रं, सौम्यो बुधः ।

**शारदातिलके**—

अत्रिर्वरुणसंरुद्धो दवाग्वादिनि ठद्वयम् ।
वागीश्वर्या दशार्णोऽयम्मन्त्रो वाग्विभवप्रदः ।।२१२।।

अत्रिर्दकारः, वरुणेन वकारेण संरुद्धः संपुटितः, तेन वदव इति ज्ञेयम्, दवाग्वादिनीति स्वरूपम्, ठद्वयं स्वाहा ।

**पदार्थादर्शे, सारस्वतमते**—

तारमायासम्पुटोऽयम्महासारस्वतप्रद इति" ।

वाग्बीजमायाद्य **आचार्यस्तुतावुद्धृतः**—

"वाग्बीजम्भुवनेश्वरी वदवदेत्युच्चार्य वाग्वादिनि,
स्वाहा वर्णविशीर्णपातकभरान्ध्यायामि नित्यं गिरमिति ।"

वाग्बीजमायापुटित इति केचित् । मायाद्य इत्यन्ये । तन्त्रान्तरे-केवलं वाग्भवाद्योऽयमुद्धृतः । अत्रैव शिवशक्तियोग इति केचित् । अपरे वैपरीत्यमपीच्छन्ति । **प्रयोगसारे**—बालादिरप्युद्धृतः । तथा—

"ऋषिः कण्वो विराट्छन्दो देवता वाक् समीरिता ।"

**सारसङ्ग्रहेऽपि**—

ऋषिः कण्वोऽत्र गदितो विराट् छन्दश्च देवता ।
सरस्वतीति गदिता सम्पद्वाग्विभवप्रदा ।।२१३।।

**ईशानशिवस्तु**—"ऋषिस्तु धिषणो मत" इत्याचख्यौ । वागिति बीजं, स्वाहेति शक्तिः ।

**पदार्थादर्शे, सारसङ्ग्रहे**—

"मातृकोक्तविधानेन मन्त्री कुर्यात्षडङ्गकम्" ।

**सारस्वतमते तु**—

यमनेत्रधरावह्नियुगलार्णैर्मनोः क्रमात् ।
ह्रामाद्यैश्चैव वेदाद्यै रङ्गैरङ्गानि कल्पयेदिति ।।२१४।।

**पद्मपादाचार्यास्तु**—उक्तवर्गान्ते 'वद हृदयाय नम' इत्याद्यूचुः ।

**शारदातिलके**—

शिरःश्रवणदृङ्नासावदनान्धुगुदेष्विमान् ।
अस्यार्णान्प्राग्वदङ्गानि मातृकोक्तानि कल्पयेत् ।।२१५।।

तरुणशकलमिन्दोर्बिभ्रती शुभ्रकान्तिः,
कुचभरनमिताङ्गी सण्णिषण्णासिताब्जे ।
निजकरकमलोद्यल्लेखिनीपुस्तकश्रीः,
सकलविभवसिद्धौ पातु वाग्देवता वः ।।२१६।।

दक्षे लेखनी, वामे पुस्तकम् । तथा—

मातृकोदीरिते[1] पीठे वागीशीमर्चयेत्सुधीः ।
वर्णाब्जेनाऽऽसनन्दद्यान्मूर्तिम्मूलेन कल्पयेत् ।।२१७।।

---

1. पुस्तके—'कातृकीदीरिते' इति पाठः ।

वर्णाब्जेन वर्णाब्जमध्यस्थबीजादिना आसनमन्त्रेणेत्यर्थः । तेन "ह्सौः सर्वशक्तिकमलासनाय नमः" इति पीठमन्त्रः ।

**पद्मपादाचार्यैस्तु** – "ओँ ह्रीँ वर्णाब्जाय सरस्वत्यासनाय नमः इति पीठमन्त्र उक्तः ।

**शारदातिलके**—

आदावङ्गानि सम्पूज्य पश्चाच्छक्तीरिमा यजेत् ।
योगा सत्या च विमला ज्ञाना बुद्धिः स्मृतिः पुनः ।।२१८।।

मेधा प्रज्ञा च मन्त्रेषु मुद्रापुस्तकधारिणीः ।
दलाग्रेषु समभ्यर्च्य ब्रह्माण्याद्या यथाविधि ।।२१९।।

लोकपाला बहिः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्बहिः ।
एवं सम्पूजयेन्मन्त्री जपहोमादितत्परः ।।२२०।।

योगादीनां ध्यानमुक्तमीशानशिवेन—

"सपुस्तकजपस्रजो विमलहारमण्युज्ज्वलाः ।
शशाङ्कसदृशप्रभाः प्रतिदलस्थिताः शक्तयः ।।"

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्राग्वत् प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि -"कण्वाय ऋषये नमः, मुखे – विराट्छन्दसे नमः, हृदि—सरस्वत्यै देवतायै नमः" इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा प्राग्वन्मातृकोक्तषडङ्गं यद्वा "ह्राँ वद ऋग्वेदहृदयाय नमः, ह्रीँ यजुर्वेदशिरसे स्वाहा, ह्रूँ वाक्सामवेदशिखायै वषट्, ह्रैँ वादिनि अथर्ववेदकवचाय हुँ, ह्रौँ स्वाहा नेत्राय वौषट्, समस्तमन्त्रमुक्त्वा पुराणन्याय-मीमांसाधर्मशास्त्रेतिहासकल्पगाथानराशंसी अस्त्रम्" इति करषडङ्गन्यासं विधाय,

"शिरसि—वँ नमः, दक्षश्रोत्रे- दँ नमः, वामे - वँ नमः दक्षनेत्रे—दँ नमः, वामे—वाँ[1] नमः, दक्षनासिकायां—ग्वाँ नमः, वामायां-दिँ नमः मुखे – निं नमः लिङ्गे-स्वां नमः, गुदे – हाँ नमः" इति विन्यस्य,

1. पुस्तके 'मां' इत्यसत्पाठः ।

ध्यानमानसपूजान्ते प्राग्वन्मातृकाचक्रमुद्धृत्यार्घ्यात्मपूजान्ते प्राग्वन्मातृकापीठमभ्यर्च्य, तत्र मूर्ति मूलेन परिकल्प्याऽऽवाहनादिषडङ्गपूजान्ते अष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन—"ॐ योगायै नमः, एवं सत्यायै०, विमलायै०, ज्ञानायै०, बुद्धयै०, स्मृत्यै०, मेधायै०, प्रज्ञायै नमः" इति सम्पूज्याऽष्टमातृपूजादि सर्वम्प्राग्वत्समापयेदिति ।

**शारदातिलके—**

दशलक्षञ्जपेन्मन्त्रन्दशांशञ्जुहुयात्ततः ।
पुण्डरीकैः पयोभ्यक्तैस्तिलैर्वा मधुराप्लुतैः ॥२२१॥

**सारसङ्ग्रहे—**

तर्पणम्मार्जनङ्कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।

**शारदातिलके—**

ब्रह्मचर्यरतः शुद्धः शुद्धदत्तनखादिकः ।
संस्मरन् सर्ववनिताः सन्ततन्देवताधिया ॥२२२॥

कवित्वँल्लभते धीमान् मासैर्द्वादशभिर्ध्रुवम् ।
पीत्वा तन्मन्त्रितन्तोयं सहस्रम्प्रत्यहञ्जपेत् ॥२२३॥

महाकविर्भवेन्मन्त्री वत्सरेण न संशयः ।
उरोमात्रोदके स्थित्वा ध्यायन्मार्तण्डमण्डले ॥२२४॥

स्थितान्देवीम्प्रतिदिनं त्रिसहस्रञ्जपेन्मनुम् ।
लभते मण्डलात्सिद्धिं वाचामप्रतिमाम्भुवि ॥२२५॥

पालाशबिल्वकुसुमैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः ।
समिद्भिर्वा तदुत्थाभिर्यशः प्राप्नोति वाक्पतेः ॥२२६॥

होमोऽयं सर्वसौभाग्यलक्ष्मीवश्यप्रदो भवेत् ।
राजवृक्षसमुद्भूतैः प्रसूनैर्मधुराप्लुतैः ॥२२७॥

तत्समिद्भिश्च जुहुयात् कवित्वमतुलम्भवेत् ।
इत्थं दशाक्षरी प्रोक्ता सिद्धये वाचमिच्छताम् ॥२२८॥

शारदातिलके—

हृदयान्ते भगवति वदशब्दयुगम्पुनः ।
वाग्देवि वह्निजायान्तं वाग्भवाद्यं समुद्धरेत् ॥२२९॥
मनुः षोडशवर्णाढ्यो वागैश्वर्यफलप्रदः ।

हृदयान्ते नमोऽन्ते, भगवतीति स्वरूपं, अत्र नमःशब्दः विसर्गस्य रोरुत्वे गुणे च ओकार इति ज्ञेयम् । वदशब्दयुगं वद वदेति, वाग्देवी स्वरूपं, वह्निजाया स्वाहा, वाग्भवं वाग्बीजं एतदाद्यं यस्य ।

पदार्थादर्शे- वाग्भवे हसयोगोपीति केचित् । वैपरीत्यमित्यन्ये ।

सारसङ्ग्रहे –

पूर्वमन्त्रोदिताश्चाऽस्य मुन्याद्याः सम्प्रकीर्तिताः ।
पदैर्मन्त्रस्य षड्भिः स्यादङ्गषट्कञ्च जातिमत् ॥२३०॥
कुन्देन्द्वाभा ससितवसना शुक्लमाल्यानुलेपा,
व्याख्यां विद्याममृतकलशं वर्णमालां वहन्तीम् ।
हस्ताम्भोजैः सितकमलगा द्योतिचन्द्रार्द्धमौलि—
र्भूत्यै नोऽस्तु त्रिनयनयुता पीनवक्षोजनम्रा ॥२३१॥

दक्षोर्ध्वकरमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । व्याख्या व्याख्यानमुद्रा ।

मातृकोक्ते यजेत्पीठे देवीङ्गन्धादिभिः शुभैः ।
दशाक्षरोदितेनैव वर्त्मना साधकोत्तमः ॥२३२॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—कण्वाय ऋषये नमः, मुखे—विराट्छन्दसे नमः, हृदि—सरस्वत्यै देवतायै नमः" इति ऋष्यादिकं विन्यस्य, "ऐं हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, भगवति शिखायै वषट्, वद वद कवचाय हुँ, वाग्देवि नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहाऽस्त्राय फडि"ति करषडङ्गन्यासं विधाय, प्रमाणोक्तरूपं ध्यात्वा दशाक्षरोक्तविधिना समापयेदिति ।

शारदातिलके –

हविष्याशी जपेत्सम्यग्वसुलक्षमनल्पधीः ।
दशांशञ्जुहुयादन्ते तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥२३३॥

पिबेन्मन्त्रितन्तोयम्प्रातःकाले दिने दिने ।
विद्वान्वत्सरतो मन्त्री भवेन्नाऽस्ति विचारणा ।।२३४।।

अभिषिञ्चेज्जलैर्जप्तैरात्मानं स्नानकर्मणि ।
तर्प्पयेत्तज्जलैः शुद्धै रतिमेधामवाप्नुयात् ।।२३५।।

पुष्पगन्धादिकं सर्वं तज्जप्तन्धारयेत्सुधीः ।
सभायाम्पूज्यते सद्भिर्वादे च विजयी भवेत् ।।२३६।।

**शारदातिलके—**

तारो मायाऽधरो बिन्दुः शक्तिस्तारः सरस्वती ।
ङेन्ता नत्यन्तिको मन्त्रः प्रोक्त एकादशाक्षरः ।।२३७।।

तारः प्रणवः, माया ह्रीँ, अधर ऐकारः बिन्दुना सहितः, शक्तिः ह्रीँ, तारः प्रणवः, सरस्वती ङेन्ता सरस्वत्यै इति, नत्यन्तकः नमोऽन्तः ।

ऋषिः शक्तिश्च देव्यादिर्गायत्री छन्द ईरितम् ।
हंसवागीश्वरी देवी देवता समुदीरिता ।।२३८।।

**पदार्थादर्शे**—वाग्भवं बीजं, माया शक्तिः । अन्ये प्रणवं बीजमाहुः ।

**सारसङ्ग्रहे—**

"विद्यातृतीयबीजेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ।"

**शारदातिलके—**

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये नवरन्ध्रेषु च क्रमात् ।
मन्त्रवर्णान्न्यसेन्मन्त्री वाग्भवेनाऽङ्गकल्पना ।।२३९।।

नवरन्ध्रेषु कर्णनेत्रनासाद्वयमुखलिङ्गगुदेषु ।

**सारसङ्ग्रहे—**

ध्यायेद्वाग्देवतान्ताममलकमलगां रम्यहंसाधिरूढाम्,
कर्पूरक्षोदकुन्दव्रजहरहसितप्रोल्लसद्देहकान्तिम् ।
पीयूषांश्वर्द्धमौलिं सकलशशिमुखीम्मन्दहास्यामलास्यां,
विद्यावीणासुधोद्यत्कलशजपवटीर्हस्तपद्मैर्वहन्तीम् ।।२४०।।

वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधःस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम् ।

मातृकोक्ते यजेत्पीठे वक्ष्यमाणक्रमेण ताम् ।
वर्णाब्जेनाऽऽसनङ्कुर्यात् भूतिम्मूलेन कल्पयेत् ।।२४१।।

देव्या दक्षिणतः पूज्या संस्कृता वाङ्मयी तनुः ।
प्राकृता वामतः पूज्या वाङ्मयी सर्वसिद्धिदा ।।२४२।।

इष्ट्वा पूर्ववदङ्गानि प्रज्ञाद्याः प्रयजेत्पुनः ।
प्रज्ञा मेधा श्रुतिः शक्तिः स्मृतिर्वागीश्वरी मतिः ।।२४३।।

स्वस्तिश्चेति समाख्याता ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम् ।
लोकेशानर्चयेद्भूयस्तदस्त्राणि च तद्बहिः ।।२४४।।
इति सम्पूजयेद्देवीं साक्षाद्वाग्वल्लभो भवेद् ।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—शक्तिऋषये नमः, मुखे—देवीगायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—हंसवागीश्वर्यै देवतायै नमः" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, "ऐं शिरसे स्वाहा" इत्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय,

"ब्रह्मरन्ध्रे—ॐ नमः, एवं भ्रूमध्ये—ह्रीँ, दक्षनेत्रे-ऐँ वामे—ह्रीँ, दक्षकर्णे—ॐ, वामे—सँ, दक्षनासायां—रँ, बामायां—स्वँ, मुखे—त्यैँ, लिङ्गे नँ, पायौ—मः" इति विन्यस्य,

ध्यानमानसपूजान्ते प्राग्वन्मातृकापीठमुद्धृत्यार्घादिस्थापनादिपुष्पोचारान्ते कर्णिकायां देव्या दक्षिणवामपार्श्वयोः—"ॐ संस्कृतवाण्यै नमः, ॐ प्राकृतवाण्यै नमः" इति सम्पूज्य, प्राग्वत्षडङ्गमभ्यर्च्याऽष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन—"ॐ प्रज्ञायै नमः, एवं मेधायै०, श्रुत्यै०, शक्त्यै०, स्मृत्यै०, वागीश्यै०, सुमत्यै०, स्वस्त्यै नमः" इति सम्पूज्य प्राग्वद्ब्राह्म्यादि लोकपालार्चनादि सर्वं समापयेदिति ।

सारसङ्ग्रहे—

वर्णैकाधिकलक्षन्तु जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
तत्सहस्रम्प्रजुहुयात् सिताब्जैर्नागचम्पकैः ।।२४५।।
तर्पणादि ततः कुर्यात् साधको नियतव्रतः ।

वर्णैकाधिकलक्षं द्वादशलक्षं मन्त्रस्यैकादशवर्णत्वात् । तत्सहस्रं द्वादशसहस्रं, तेन दशांशहोमः । तथा—

इमम्मनुं यो भजते दुरितैर्मुच्यतेऽचिरात् ॥२४६॥

लक्ष्मीयशःकान्तियुतः कवित्वस्याऽऽलयो भवेत् ।
कुर्यात्पूर्वाणुगदितान्प्रयोगानत्र मन्त्रवित् ॥२४७॥

**शारदातिलकेऽपि—**

दशाक्षरीसमुक्तानि कर्माण्यत्राऽपि साधयेत् ।
वाचस्पतेऽमृते भूयः प्लवः प्लुरिति कीर्त्तयेत् ॥२४८॥

वागाद्यो मुनिभिः प्रोक्तो रुद्रसंख्याक्षरो मनुः ।

वाचस्पते स्वरूपं, अमृते स्वरूपं, अत्र सन्धिर्न ज्ञेय एकादशाक्षरोक्तेः, प्लवः प्लुरिति स्वरूपम्, वागाद्यः वाग्भवाद्यः ।

**सारसङ्ग्रहे—**

पदैरणोः पञ्चभिः स्युः पञ्चाङ्गानि मनोरथ ।

पद्मस्थां कमलयुगाक्षपुस्तकोद्य—
 द्धस्ताब्जां शशिमुकुटाञ्च भालनेत्राम् ।
मुक्ताभाङ्कुचविनतां मुनीन्द्रसेव्यां,
 वाग्देवीम्भजत बुधाः कवित्वदात्रीम् ॥२४९॥

वामोर्द्ध्वादिवामाधःकरान्तमायुधध्यानम् ।
 पुरोदिते यजेत्पीठे देवीम्पूर्वोक्तवर्त्मना ।

पीठे मातृकापीठे, पूर्वोक्तवर्त्मना एकादशाक्षरोक्तवर्त्मना । तेन ऋष्यादिकमपि तत्रोक्तमेव ज्ञेयम् । पञ्चाङ्गानि—"ॐ ऐं हृदयाय नमः, वाचस्पते शिरः, अमृते शिखा, प्लवः कवचं, प्लुः अस्त्रम्" । अत्र मूलेन करयोर्व्यापकङ्कृत्वाऽङ्गुल्यादिकनिष्ठान्तम्पञ्चाङ्गुलिषु हृदयाद्यस्त्रान्तानि विन्यस्य नेत्रवर्ज्यं हृदयादि पञ्चाङ्गेष्वपि विन्यस्य, प्रमाणोक्तवद् ध्यात्वा मानसपूजादि दशाक्षरोक्तवत्सर्वङ्कुर्यादिति ।

**सारसङ्ग्रहे—**

पारिजातसरस्वत्या मन्त्रः सम्प्रोच्यतेधुना ॥२५०॥

तारो माया च भैरव्या वाग्भवं शक्तितारतः ।

ङेऽन्ता सरस्वती हृच्च मन्त्र एकादशाक्षरः ॥२५१॥

तारः प्रणवः, माया भुवनेशी, भैरव्या वाग्भवं ह्सैमिति, शक्तिर्भुवनेश्वरी, ङेऽन्ता सरस्वती सरस्वत्यै नमः । ऋषिध्यानन्यासजपपूजाद्यम्पूर्ववत् । हंसवागीश्वरीवत् ।

**सारसङ्ग्रहे—**

वर्गादिः सविसर्गः[1] सः सम्बुद्धचन्ता च चण्डिका ।

आद्यद्वयं व्युत्क्रमेण सप्तार्णो मनुरीरितः ॥२५२॥

वर्गादिः ककारः सविसर्गः विसर्गसहितः, सः स्वरूपं, सम्बुद्धचन्ता चण्डिका चण्डिके इति । आद्यद्वयं सविसर्गौ ककारसकारौ, व्युत्क्रमेण सः इति । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः प्रोक्ता च देवता ।

सप्तकोटीश्वरी देवी वागैश्वर्यफलप्रदा ॥२५३॥

षड्दीर्घयुक्तृतीयेन षडङ्गं सम्प्रकीर्त्तितम् ।

तृतीयेन चकारेण, तेन चाँ चीमित्यादिना करषडङ्गन्यास उक्तः ।

अस्य पूजादिकं सर्वं त्रिपुरावत्प्रकल्पयेत् ॥२५४॥

त्रिपुरावत्, बालावत् । तत्पूजाविधानन्त्वग्रे वक्ष्यते ।

**सारसङ्ग्रहे—**

प्रणवं वदयुग्मान्ते वाग्वादिनिपदं वदेत् ॥२५४॥

माया मारं ह्रस्वमारन्दीर्घायुग्मं शिवान्वितम् ।

क्लेदिन्यन्ते महाक्षोभं कुरु बालान्तिमन्ततः ॥२५५॥

मोक्षं कुरुष्व प्रणवमेकोनत्रिंशदक्षरः ।

वाग्वादिन्या मनुः प्रोक्तो वाक्सिद्धिफलदायकः ॥२५६॥

---

1. पुस्तके—सर्वसर्गः ।

मारं क्लीमिति, ह्रस्वमारं क्लि, दीर्घायुग्मं नकारद्वयं, शिव एकारः, तद्युक्तस्तेन न्ने०, बालान्तिमं सौः, सुगममन्यत् । पूर्वोक्तवाग्वादिनीवत् सर्वमस्यामपि कल्पयेत् । प्रणवादिवाग्वादिन्यन्त एको नवाक्षरः मायादिकुर्वन्तस्त्रयोदशाक्षरोऽन्यः । बालान्तिमादिप्रणवान्तः सप्ताक्षरोऽपरः । एवम्मन्त्रत्रयात्मकोऽयम्मन्त्रः । अस्य पृथक्त्वे प्रयोजनन्त्वग्रे वक्ष्यते । तथा—

वरुणः कान्तिबिन्द्वाद्यः पावको वामकर्णयुक् ।
सबिन्दुर्भृगुसद्योम्बु बिन्दुमच्च तृतीयकम् ।।२५७।।
एष सारस्वतो मन्त्रस्त्र्यक्षरात्मा समीरितः ।

वरुणो वकारः, कान्तिराकारः, बिन्दुरनुस्वारः, तेन वां इति । पावको रेफः वामकर्ण ऊ सबिन्दुः सानुस्वारस्तेन रूं इति । भृगुः सकारः, सद्य ओकारः, अम्बु वकारः, बिन्दुरनुस्वारस्तेन स्वों इति ।

**नारायणीये** तु—

खड्गीशो यः प्रांशुकः कर्णवेधाः,
कर्णान्तस्थो यः सदण्डी भुजङ्गः ।
सान्तादन्तो बिन्दुमान् यो भृगुः स्यु—
र्वागीश्वर्यास्त्रीणि बीजान्यमूनि ।। इति ।।२५८

खड्गीशो वः, प्रांशुराकारः, सान्तवेधाः वाकारस्यान्ते केवलककारः, तेन वागिति प्रथमबीजमुद्धृतम् । उक्तञ्च—

**मन्त्रतन्त्रप्रकाशे** —

'तोयस्थं शयनं विष्णोः सकेवलचतुर्मुखमिति'' ।

तोयस्थं वकारस्थं, विष्णोः शयनमनन्तस्तेन आकारः, सकेवलचतुर्मुखं विस्वरककारयुक्तमित्युक्तम् । अन्यद्बीजद्वयं समानमेव । केचित्तु वागितिपदलक्षितं वाग्बीजं वदन्ति । अन्ये तु च तृतीयस्याऽपि चतुर्मुखशब्दवाचकत्वात् केवलशब्देन विस्वरत्वात्, सकेवलचतुर्मुखमित्यनेन योगस्योक्तत्वादादौ योगो भवेदिति आगमसिद्धान्तात्तस्य पूर्वाक्षरत्वाच्च । चतुर्मुखं च अं चेति बिन्दुरपि ज्ञेय इति ज्वामित्युद्धरन्ति । अत्र यथोपदेशं ज्ञेयमिति । तथा—

सारसङ्ग्रहे —

ऋष्यादिकं दशार्णोक्तं षडङ्गविधिरुच्यते ।
द्विरुच्चरितमूलेन षडङ्गञ्जातिसंयुतम् ॥२५९॥

कराङ्गयोर्विधायाऽथध्यायेद्देवीं सरस्वतीम् ।

आद्यवर्णेन हृत्, द्वितीयेन शिखा, पुनराद्येन कवचं, द्वितीयेन नेत्रं, तृतीयेनाऽस्त्रमिति, जातियुतं नमः स्वाहायुतम् ।

मुक्ताहारलसत्तनुः शशिकलासंशोभिसच्छेखरा,
व्याख्यामच्छगुणञ्च रत्नकलशं विद्यां वहन्ती करैः ।
पीनोत्तुङ्गकुचद्वयप्रविनमन्मध्या सिताब्जस्थिता,
त्रैलोक्यप्रणता सदा भवतु नो वाचामधीशा श्रिये ॥२६०॥

दक्षोर्द्ध्वाधःकरयोराद्ये, वामोर्ध्वाधः अन्ये इत्यायुधध्यानम् । तथा—

पुराप्रोक्ते मातृकायाः पीठे देवीं समर्चयेत् ।
यथापूर्वं प्रत्यहं यः स भवेद्वाक्पतिर्ध्रुवम् ॥२६१॥

यथापूर्वं दशाक्षरोक्तवत् । प्रयोगः सुगमः । तथा—वर्णलक्षं त्रिलक्षम् ।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्कर्तुमर्हति ।
चतुरङ्गुलसम्भूतैः सुमनोभिर्हुनेन्नरः ॥२६२॥

वाचश्चाऽप्रतिमां सिद्धिमचिराल्लभते ध्रुवम् ।
कुचन्दनोदकाक्तैश्च जातीपुष्पैः सिताम्बुजैः ॥२६३॥

नन्द्यावर्त्तोद्भवैः कुन्दसञ्जातैः कुसुमैर्हुनेत् ।
अचिरादतुलां वाचः सिद्धिम्प्राप्नोत्यसंशयः ॥२६४॥

एनम्मन्त्रञ्जपन्मन्त्री सभायां जयमाप्नुयात् ।
वचां श्वेतान्तथा ब्राह्मीम्प्रजप्ताम्मनुनाऽमुना ॥२६५॥

अह्नो मुखे च यः खादेत् स मेधां वाञ्छितां लभेत् ।

॥ **अथ सरस्वतीस्तोत्रम्** ॥

ह्रीँ ह्रीँ हृद्यैकबीजे शशिरुचिकमलाकल्पविस्पष्टशोभे,
भव्ये भव्यानुकूले कुमतिवनदवे विश्ववन्द्यांघ्रिपद्मे ।

पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजनमनोमोदसम्पादयित्रि,
प्रोत्पुष्टाज्ञानकूटे हरिनिजदयिते देवि संसारसारे ॥२६६॥

ऐँ ऐँ ऐँ मिष्टमन्त्रे कमलमुखभवाम्भोजरूपे स्वरूपे,
रूपारूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे ।
न स्थूले नाऽतिसूक्ष्मेऽप्यविदितविषये नाऽपि विज्ञानतत्वे,
विश्वे विश्वान्तराले सुरवरनमिते निष्कले नित्यशुद्धे ॥२६७॥

ह्रीँ ह्रीँ ह्रीँ जापतुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते,
मातर्मातर्नमस्ते दह दह जडतान्देहि बुद्धिम्प्रशस्ताम् ।
विद्ये वेदान्तगीते श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे,
मार्गातीतप्रभावे भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे ॥२६८॥

धीर्धीर्धीर्धारणाख्ये धृतिमतिनुतिभिर्नामभिः कीर्तनीये,
नित्ये नित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नूतने वै पुराणे ।
पुण्ये पुण्यप्रभावे हरिहरनमिते वर्णशुद्धे सुवर्णे,
मात्रे मात्रोर्ध्वतत्वे मम मतिमतिदे माधवप्रीतिनादे ॥२६९॥

ह्रौँ क्षीँ ऋँ ह्रीँ स्वरूपे दह दह दुरितम्पुस्तकव्यग्रहस्ते,
सन्तुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जम्भनि स्तम्भविद्ये ।
मोहे मुग्धप्रबोधे मम कुरु सुमतिन्ध्वान्तविध्वंसनित्ये,
गीर्वाग्गौर्भारती[1] त्वङ्कविवृषरसनासिद्धिदा सिद्धिसाध्या ॥२७०॥

स्तौमि त्वान्त्वाञ्च वन्दे भज मम रसनाम्मा कदाचित्त्यजेथाः,
मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु च मनो देवि मे जातु पापम् ।
मा मे दुःखङ्कदाचिद् विपदि च समयेऽप्यस्तु मे नाऽऽकुलत्वम्,
शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्माऽस्तु कुण्ठा कदाचित् ॥२७१॥

इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो
वाणीवाचस्पतेरप्यति मतिविभवो वाक्पटुर्नष्टपङ्कः ।

---

1. ख. ०गौ भारती ।

स स्यादिष्टार्थलाभी सुतमिव सततम्पालितं सा च देवी,
सौभाग्यन्तस्य लोके प्रसरति कविता विघ्नमस्तम्प्रयाति ॥२७२॥

ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यान्निरामिषः ।
सारस्वतो नरः पाठात्स स्यादिष्टार्थलाभवान् ॥२७३॥

पक्षद्वयेऽपि यो भक्त्या त्रयोदश्यैकविंशति[1] ।
अविच्छिन्नम्पठेद्धीमान् ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम् ॥२७४॥

शुक्लाम्बरधरान्देवीं शुक्लालङ्कारभूषिताम् ।
वाञ्छितं फलमाप्नोति स लोके नाऽत्र संशयः ॥२७५॥

इति ब्रह्मा स्वयम्प्राह सरस्वत्याः स्तवं शुभम् ।
प्रयत्नेन पठेन्नित्यं सोऽमृतत्वम्प्रयच्छति ॥२७६॥

**॥ इति ब्रह्मपुराणे सरस्वतीस्तोत्रम् ॥**

प्रपञ्चसारे -

अमलकमलाधिवासिनि मनसो वैकल्यदायिनि मनोज्ञे ।
सुन्दरगात्रि सुशीले तव चरणाम्भोरुहन्नमामि सदा ॥२७७॥

अचलात्मजाऽपि दुर्गा कमला त्रिपुरेति भेदिता जगति ।
या सा त्वमेव वाचामीश्वरि सर्वात्मना प्रसीद मम । २७८॥

त्वच्चरणाम्भोरुहयोः प्रणामहीनः पुनर्द्विजातिरपि ।
भूयादनेडमूकस्त्वद्भक्तो भवति देवि सर्वज्ञः ॥२७९॥

मूलाधारमुखोद्गतविसतन्तुनिभप्रभा प्रभावतया[2] ।
विसृतलिपिव्रताहितमुखकरचरणादिके प्रसीद मम ॥२८०॥

वर्णतनोऽमृतवर्णे नियतमनिर्वर्णिते प्रयोगीन्द्रैः[3] ।
निर्गीतिकरणदूरे वर्णयितुन्देवि देहि सामर्थ्यम् ॥२८१॥

ससुरासुरमौलिलसन्मणिप्रभादीपिताङ्घ्रियुगनलिने ।
सकलागमाध्वरूपे सर्वेश्वरि सन्निधिं विधेहि मयि ॥२८२॥

---

1. ख. ०विंशतिम् । 2. क. ०निभप्रभावतया । 3. ख. पि योगीन्द्रैः ।

पुस्तकजपवटहस्ते वरदाभयचिह्नचारुबाहुलते ।
कर्पूरामलदेहे वागीश्वरि शोधयाशु मम चेतः[1] ।।२८३।।

क्षौमाम्बरपरिधाने मुक्तामाणिक्यभूषणमुदावासे ।
स्मितचन्द्रिकाविकसितमुखेन्दुबिम्बेऽम्बिके प्रसीद मम ।।२८४।।

विद्यारूपेऽविद्यानाशिनि विद्योतितेऽन्तरात्मविदाम् ।
गद्यैः सपद्यजातैराद्यैर्मुनिभिः स्तुते प्रसीद मम ।।२८५।।

त्रिमुखि त्रयीस्वरूपे त्रिपुरे त्रिदशाभिवन्दितांघ्रियुगे ।
त्रीक्षणविकासिवक्त्रे त्रिमूर्तिमूलात्मिके प्रसीद मम ।।२८६।।

चिदात्मिके निरुक्तज्योतिर्व्याकरणकल्पशिक्षाभिः ।
सच्छन्दोभिस्संततक्लृप्तषडङ्गेन्द्रिये प्रसीद मम ।।२८७।।

त्वच्चरणसरसिजन्मस्थितमहितधियो न लिप्यते दोषः ।
भगवति भक्तिमतस्त्वयि परमे परमेश्वरि प्रसीद मम ।।२८८।।

बौधात्मिके बुधानां हृदयाम्बुजचारुरङ्गनटनपरे ।
भगवति भवभङ्गकरीम्भक्तिम्भद्रार्थदे प्रसीद मम ।।२८९।।

वागीशीस्तवमिति यो जपार्चनाहवनवृत्तिषु प्रजपेत् ।
स तु विमलचित्तवृत्तिर्देहापदि नित्यशुद्धमेति पदम् ।।२९०।।

**।। इति श्रीप्रपञ्चसारोक्तं सरस्वतीस्तोत्रम् ।।**

**।। अथ सरस्वत्युपासकानां वर्ज्यानि ।।**

आम्रातङ्गृञ्जनं विल्वं कलञ्जं लसुनन्तथा ।
तैलम्पलाण्डुपिण्याकं शाङ्गेष्टमपि भोजने ।।२९१।।

सर्वम्पर्युषितन्त्याज्यं सदा सारस्वतार्थिना ।
न चरेन्निशि ताम्बूलं स्त्रियङ्गच्छेद्दिवा न च ।।२९२।।

1. ख. शोधयाशुभमचेतः ।

सन्ध्ययोर्न स्वपेज्जातु[1] नाऽशुचिः किञ्चिदुच्चरेत् ।
प्रदोषेषु भवेन्मौनी दिग्वस्त्रान्नं विलोकयेत् ।।२६३।।

न पुष्पितां स्त्रियङ्गच्छेन्न निन्देद्वामलोचनाः ।
न मृषा वचनम्ब्रूयात् नाऽऽक्रमेत्पुस्तकं सुधीः ।।२६४।।

अक्षराढ्यानि पत्राणि नोपेक्षेत न लङ्घयेत् ।
चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्ग्रहणेषु च ।।२६५।।

संक्रमेषु च सर्वेषु विद्वान्नैव पठेद्बुधः ।
व्याख्याने सन्त्यजेन्निद्रामालस्यञ्जृम्भणम्बुधः ।।२६६।।

क्रोधन्निष्ठीवनन्तद्वन्नीचाङ्गस्पर्शनन्तथा ।
मनुष्यसर्पमार्जारमण्डूकनकुलादयः ।।२६७।।

अन्तरा यदि गच्छेयुस्तदा व्याख्याम्परित्यजेत् ।
निशासु दीपनाशे च पाठं सद्यः परित्यजेत् ।।२६८।।

ज्ञात्वा दोषानिमान् सम्यग् भक्त्या यो भारतीम्भजेत् ।
वाचां सिद्धिमवाप्नोति वाचस्पतिरिवापरः ।।२६९।।

**इति श्रीमद्गोस्वामिजगन्निवासात्मज—**
**गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**एकोनचत्वारिंशस्तरङ्गः ।।३९।।**

—०—

1. ख. स्वपेज्जातु ।

[ अथ चत्वारिंशस्तरङ्गः ]

॥ अथ लक्ष्मीमन्त्राः ॥

तत्र **श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्**—

वारुणान्तं वह्निसंस्थन्दीर्घनेत्रविभूषितम् ।
बिन्दुनादयुतम्बीजं लक्ष्मीमन्त्र उदाहृतः ॥१॥

वारुणान्तं शकारः, वह्नी रेफः, दीर्घनेत्र ईकारः, तेन श्रीमिति बीजं सिद्धम् ।

ऋषिर्भृगुर्निचृच्छन्दस्तथा श्रीर्देवता प्रिये ।
शतुर्ये बीजशक्ती च कीलकं रेफ उच्यते ॥२॥

**शारदातिलके**—

षड्दीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात् ।
तेन "श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः" इति षडङ्गमन्त्रा उक्ताः ।

लक्ष्मीगायत्री तु **तन्त्रसारे**—"महालक्ष्म्यै विद्महे महाश्रियै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात्" । इति ।

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्**—

ध्यायेत्ततः श्रियं रम्यां सर्वदेवनमस्कृताम् ।
तप्तकार्त्तस्वराभासान्दिव्यरत्नविभूषिताम् ॥३॥

आसिच्यमानाममृतैर्मुक्तारत्नद्रवैरपि ।
शुभ्राभ्राभेभयुग्मेन मुहुर्मुहुरपि प्रिये ॥४॥

रत्नौघबद्धमुकुटां शुद्धक्षौमाङ्गरागिणीम् ।
पद्माक्षीम्पद्मनाभेन हृदि चिन्त्यां स्मरेद्बुधः ॥५॥

एवन्ध्यात्वा जपेद्देवीम्पद्मयुग्मधरां सदा ।
वरदाभयशोभाढ्याञ्चतुर्ब्बाहुं सुलोचनाम् । ६॥

**नारायणीयेऽपि**—

चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्द्ध्वकरद्वयाम् ।
दक्षिणाभयहस्तान्तां वामहस्तवरप्रदाम् ॥७॥

सारसङ्ग्रहे—

अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तचतुरश्रत्रयावृतम् ।।८।।

धर्मादिकल्पिते पीठे नवशक्तिसमन्विते ।
रमामावाह्य गन्धाद्यैर्यजेत्साधकसत्तमः ।।९।।

शारदातिलके—

विभूतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्त्तिश्च सन्नतिः ।
व्युष्टिरुत्कृष्टि ऋद्धिश्च सम्प्रोक्ता नवशक्तयः ।।१०।।

अत्राऽवाह्य यजेद्देवीम्परिवारैः समन्विताम् ।
वीजाद्यमासनन्दत्वा मूर्त्तिम्मूलेन कल्पयेत् ।।११।।

तेन "श्रीँ सर्वशक्तिकमलासनाय नम" इति पीठमन्त्रो ज्ञेयः । उक्तञ्च—

सर्वशक्तिपदम्प्रोक्त्वा ङेन्तञ्च कमलासनम् ।
नम इत्यासनम्पूज्यन्तत्तद्वीजादिकं शिवे । १२।।

पद्मपादाचार्यास्तु—"श्रीँ श्रीदेव्यासनाय नमः, श्रीँ श्रीदेवीमूर्त्तये नम" इत्यूचुः । अत्र पद्मं श्वेतं ध्येयम् ।

तदुक्तम्प्रयोगसारे—

सङ्कल्प्याऽम्भोरुहं शुभ्रं कर्णिकायां यजेच्छ्रियमिति ।

शारदातिलके—

यजेत्पुरोवदङ्गानि दिग्दलेष्वर्च्चयेत् ततः ।
वासुदेवं सङ्कर्षणम्प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ।।१३।।

हिमपीततमालेन्द्रनीलाभान्पीतवाससः ।
चक्रशङ्खगदापद्मधारिणस्तांश्चतुर्भुजान् ।।१४।।

विदिग्गतेषु पत्रेषु दमकादीन्यजेद् गजान् ।
दमकं सलिलम्भूयो गुग्गुलञ्च कुरण्टकम् ।।१५।।

यजेच्छंखनिधिन्देव्या दक्षिणे दयितान्वितम् ।
मुक्तामाणिक्यसङ्काशौ किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजौ ।।१६।।

अन्योन्यालिङ्गनपरौ शङ्खपङ्कजधारिणौ ।
विगलद्रत्नवर्षाभ्यां शङ्खाभ्याम्मूर्ध्नि लाञ्छितौ ॥१७॥

तुन्दिलङ्कम्बुकनिधिं वसुधां घनस्तनीम् ।
वामतः पङ्कजनिधिम्प्रियया सहितं यजेत् ॥१८॥

सिन्दूराभौ भुजाश्लिष्टौ रक्तपद्मोत्पलान्वितौ ।
निस्सरद्रत्नधाराभ्यां पद्माभ्याम्मूर्ध्नि राजितौ ॥१९॥

तुन्दिलम्पङ्कजनिधिन्तन्वीं वसुमतीमपि ।
दलाग्रेषु यजेदेता बलाक्याद्याः समन्ततः ॥२०॥

बलाकी विमला चैव कमला वनमालिका ।
विभीषिका मालिका च शाङ्करी वसुमालिका ॥२१॥

पङ्कजद्वयधारिण्यो मुक्ताहारसमप्रभाः ।
लोकेशान्पूजयेदन्ते वज्राद्यस्त्राणि तद्बहिः ॥२२॥

इत्थं यो भजते देवीं विधिना साधकोत्तमः ।
धनधान्यसमृद्धः स्याच्छ्रियमाप्नोत्यनिन्दिताम् ॥२३॥

**॥ अथ प्रयोगः ॥**

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—"भृगुऋषये नमः, मुखे निचृच्छन्दसे नमः, हृदये—श्रियै देवतायै नमः, गुह्ये शँ बीजाय नमः, पादयोः—ईँ शक्तये नमः, नाभौ—रँ कीलकाय नम" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा—

"श्राँ हृदयाय नमः, श्रीँ शिरसे स्वाहा, श्रूँ शिखायै वषट्, श्रैँ कवचाय हूँ, श्रौँ नेत्राय वौषट्, श्रः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिष्वपि विन्यस्य,

ध्यानमानसपूजान्ते चतुर्द्वारियुक्तचतुरश्रत्रयावृतमष्टदलद्वयमर्चापीठं निर्माय, प्राग्वत् पुरतो निधायाऽर्घस्थापनादिपरतत्वार्चान्ते "ॐ विभूत्यै नमः, उन्नत्यै०, सृष्ट्यै०, कीर्त्यै०, सन्नत्यै०, व्युष्ट्यै०, उत्कृष्ट्यै, पद्ममध्ये-ऋद्ध्यै०" इति स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन पीठशक्तीः सम्पूज्य, "श्रीँ सर्वशक्तिकमलासनाय नम" इति

समस्तम्पीठं सम्पूज्याऽवाहनाद्यङ्गपूजान्तेऽन्तरष्टदले देव्यग्रादि चतुर्दलेषु—"ॐ वासुदेवाय०, संकर्षणाय०, प्रद्युम्नाय०, अनिरुद्धाय०" इति सम्पूज्याऽऽग्नेयादिविदिक्षु—दमकाय०[1], सलिलाय०, गुग्गुलवे०, कुरुण्टकाय०" इति सम्पूज्य, देवीदक्षिणदलाग्रे—"ॐ शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः," वामे—"पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः," इति सम्पूज्य, द्वितीयाष्टदले "ॐ बलाक्यै नमः, विमलायै०, कमलायै०, वनमालिकायै०, विभीषिकायै०, शाङ्कर्यै०, वसुमालिकायै०" इति सम्पूज्य लोकपालार्चादि सर्वं समापयेदिति ।

**शारदातिलके**—

भानुलक्षञ्जपेन्मन्त्री दीक्षितो विजितेन्द्रियः ।
श्रियमभ्यर्चयन्नित्यं [2]सुगन्धिकुसुमादिभिः ।।२४।।

तत्सहस्रम्प्रजुहुयात्कमलैर्मधुरोक्षितैः ।
जपान्ते जुहुयान्मन्त्री तिलैर्वा मधुराप्लुतैः ।।। २५.।
वैल्वैः फलैर्वा जुहुयात्त्रिभिर्वा साधकोत्तमः ।

**प्रपञ्चसारे**—

सन्दीक्षितोऽथ गुरुणा मनुवर्य्यमेनं,
सम्यग्जपेन्निशितधीर्दिननाथलक्षम् ।
अभ्यर्चयन्नहरहः श्रियमादरेण,
मन्त्री सुशुद्धचरितो हरितो[3] वधूभिः ।।२६।।

जपावसाने दिनकृत्सहस्र-
संख्यैः सरोजैर्मधुरत्रयाक्तैः ।
हुनेत्तिलैर्वा विधिनाऽथ वैल्वैः,
समिद्वरैर्मन्त्रिवरस्त्रिभिर्वा ।।२७।।

अत्र द्रव्यत्रयहोमपक्षे एकैकेन सहस्रचतुष्टयं न तु मिलितैः । मिश्रितहोमस्य निषिद्धत्वात् । तदुक्तम्भट्टचरणैः—"नैवं [4]व्रीहिभिरिष्टं स्याद्यवैर्नैव यथा श्रुतैः । मिश्रैरिज्येत चेदिति ।"

---

1. क. मदकाय० । ख. दमनकाय० । 2. ख. सुगन्ध० । 3. क. नाऽस्तीदम्पदम् ।
4. ख. व्रीभिरिष्टं ।

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायान्तु –**

अर्कलक्षं जपेन्मन्त्रं सर्वसाम्राज्यदं हुनेत् ।
पद्मैस्त्रिमधुमिश्रैस्तु पुरश्चारी ततो भवेत् ॥२८॥

**शारदातिलके –**

वक्षःप्रमाणे सलिले स्थित्वा मन्त्रमिमञ्जपेत् ।
त्रिलक्षं संयतो मन्त्री देवीन्ध्यात्वाऽर्क्कमण्डले ॥२९॥

स भवेदल्पकालेन रमाया वसतिः स्थिरम् ।
विष्णुगेहस्थविल्वस्य मूलमास्थाय मन्त्रवित् ॥३०॥

त्रिलक्षम्प्रजपेन्मन्त्रं वाञ्छितं लभते धनम् ।
अशोकवह्नौ जुहुयात्तण्डुलैराज्यलोलितैः ॥३१॥

वशयत्यचिरादेव त्रैलोक्यमपि मन्त्रवित् ।
जुहुयात्तण्डुलैः शुद्धैरर्क्काग्नौ नियतं वशी ॥३२॥

राज्यश्रियमवाप्नोति[1] राजपुत्रो महीयसीम् ।
जुहुयात् खादिरे वह्नौ तण्डुलैर्मधुरोक्षितैः ॥३३॥
राजा वश्यो भवेच्छीघ्रं महालक्ष्मीश्च वर्द्धते ।
विल्वच्छायामधिवसन् विल्वमिश्रहविष्यभुक् ॥३४॥

संवत्सरद्वयं हुत्वा तत्फलैरथवाऽम्बुजैः ।
साधकेन्द्रो महालक्ष्मीञ्चक्षुषा पश्यति ध्रुवम् ॥३५॥

हविषा घृतसिक्तेन पायसेन सर्सापिषा ।
हुत्वा श्रियमवाप्नोति नियतम्मन्त्रवित्तमः ॥३६॥

मधुराक्तारुणाम्भोजैर्जुहुयाल्लक्षमादरात्
न मुञ्चति रमा तस्य वशगाऽऽभूतसम्प्लवम्[2] ॥३७॥

**श्रीयन्त्रसारे—**

कर्णिकायां साध्यनामगर्भन्तारं विलिख्य च ।
एवापित्रेत्यृचः पादचतुष्कञ्चापि तद्दले ॥३८॥

---

1. क. ०माप्नोति । 2. क. वशमाभूत० ।

अष्टपत्रे यूयमिति[1] दिक्ष्वेन्द्रादि चाश्रिषु ।
पादा लेख्यास्ततो बाह्ये दलषोडशके क्रमात् ॥३९॥

आलिखेत्षोडशदले त्वं[2] सोमाद्यस्य चेत्यृचः[3] ।
त्रीण्यक्षराणि प्रथमे द्वितीये सप्त सप्त च ॥४०॥

तृतीयोऽपि चतुर्वर्णास्तुरीये पञ्च पञ्चमे ।
षष्ठे षट् चतुरो वर्णान् सप्तमे षड्दलेऽष्टमे ॥४१॥

प्रजापतेत्यृचो वर्णाश्चतुरो नवमे दले ।
दशमे च दले वर्णान्पञ्च चैकादशेऽपि षट् ॥४२॥

द्वादशे चतुरो वर्णान् दले चाऽपि त्रयोदशे ।
चतुर्दशे दले सप्त चतुःपञ्चदशे दले ॥४३॥

षोडशे चाऽपि षड्वर्णान् विलिख्य च दले बहिः ।
आवेष्टय लिप्या श्रीबीजं विलिखेद्भूपुराश्रिषु ॥४४॥

यन्त्रं ऋक्पञ्चकस्येदं धनधान्यधरासुतैः ।
गोगजाश्वादिमहिषसस्यभूषादिसङ्कुलम् ॥४५॥

लक्ष्मीं समावहेद्रम्याम्पुत्रपौत्रादिगामिनीम् ।

**अस्यार्थः**-तत्र चतुर्दलकमलकर्णिकामध्ये ससाध्यम्प्रणवं विलिख्य, तद्दलेषु—"एवापित्रे" त्यृचः पादचतुष्टयं, स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन प्रतिदलमेकमेकम्पादं विलिख्य, तद्बहिरष्टदलकमलं कृत्वा, तस्य दिग्दलेषु—"यूयमित्यादिऋचः पादचतुष्टयं, कोणदलेषु—"एवेन्द्राग्नी" इत्याद्यृचः पादचतुष्टयं विलिख्य, तद्बहिः षोडशदलकमलं कृत्वा, तद्दलेषु—"त्वं सोमादि' ऋग्द्वयस्य प्रथमदले—त्रीण्यक्षराणि, द्वितीये—सप्त, तृतीये—सप्त, चतुर्थे—चत्वारि, पञ्चमे—पञ्च, षष्ठे—षट्, सप्तमे—चत्वारि, अष्टमे—षट् "प्रजापते नत्वदि" त्यृचः, नवमे चत्वारि, दशमे—पञ्च, एकादशे—षट्, द्वादशे—चत्वारि, त्रयोदशेपि—चत्वारि, चतुर्दशे—सप्त, पञ्चदशे—चत्वारि, षोडशे—षडक्षराणि चेति विभज्य,

1. ख. भूयमिति । 2. ख. त्व । 3. ख. च दचः ।

विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय, तयोरन्तरालवीथ्यां अकारादिक्षकारान्तान्मातृकावर्णान् वेष्टनरूपेणाऽऽलिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तत्कोणेषु—"श्रीबीजं" लिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।

**ऋक्पञ्चकन्तु ऋग्वेदे यथा—**

एवा पित्रे विश्वदेवाय पृष्णे यज्ञैर्विधे मनसा हविर्भिः । बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।

यूयमस्मान्नयत वस्यो[1] अच्छानिरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः । जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।

एवेन्द्राग्नी आर्ष्टंयः इन्द्राग्नी त्रिष्टुप् । एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं संजयतं धनानि ।।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहं तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।
त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् ।।

तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त[2] धीराः ।
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिताबभूव ।।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् । इति । प्रजापते इति हिरण्यगर्भ ऋषिः, को देवता, त्रिष्टुप्छन्दः ।

**श्रीयन्त्रसारे—**

मध्ये तारं साध्ययुक्तं श्रियं कोणेषु षट्स्वपि ।।४६।।

अष्टपत्रे केसरोद्यत्स्वरद्वन्द्वं क्रमेण च ।
या लक्ष्मीरित्यृचो वर्णांश्चतुरो चतुरो बहिः ।।४७।।

अश्वदायै च हलिभश्च संवेष्टच कुगृहादिषु ।
श्रियं समालिखेद्यन्त्रं स्थापितं यत्र मन्दिरे ।।४८।।

धनैर्धान्यैश्च विभवैरन्यैश्चाऽश्वगजादिभिः ।
आपूरयन्ती सततं तत्रैव वसते रमा ।।४९।।

1. ख. वश्यो । 2. रत्नमभजं ।

**अस्यार्थः**—अष्टदलपद्मोदरे षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्य षट्कोणेषु श्रीबीजं विलिख्याऽष्टदलकेसरेषु द्वन्द्वशः स्वरानालिख्याऽष्टदलेषु "या लक्ष्मीरि" त्यृचो वर्णांश्चतुरो विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयान्तरालद्वयेऽन्तर्गतान्तराले "श्रीसूक्त" मग्रे वक्ष्यमाणा "अन्नदायै गोदायै" इत्यृचां संवेष्टय, तद्बाहिर्गतान्तरालेऽकारादिक्षान्तवर्णैरावेष्टय[1] तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तत्कोणेषु—"श्रीबीजं" लिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवति ।

> या लक्ष्मीः सिन्धुसम्भवा भूतिर्धेनुः[2] पुरूवसुः ।
> पद्मा विश्वावसुर्देवी सदा नो जुषताङ्गृहम् ॥५०॥

इति ऋक् ।

**शारदातिलके**—

> वाग्भवं वनिता विष्णोर्माया मकरकेतनः ।
> चतुर्बीजादिको मन्त्रश्चतुर्वर्गफलावहः ॥५१॥

वाग्भवं ऐँ, विष्णोर्वनिता श्रीबीजम्, माया भुवनेश्वरी, मकरकेतनः कामबीजम् ।

**सारसङ्ग्रहे तु**—

> सद्याद्यं बिन्दुसहितं द्वितीयम्भुवनेश्वरी ।
> तृतीयञ्च रमाबीजञ्चतुर्थङ्कामराजकम् ॥५२॥

> समुद्रवर्णो धर्मार्थकाममोक्षफलो मतः ।
> सद्याद्यं ऐँ बिन्दुयुतं तेन ऐँ, अन्यत्सुबोधम् ।

> ऋषिर्भृगुर्नृचत्पूर्वमनुष्टुप्छन्द[3] ईरितम् ॥५३॥
> देवता कमला प्रोक्ता सर्वसम्पत्करी शुभा ।

**पदार्थादर्शे**—द्वितीयम्बीजं, तृतीयं शक्तिः ।

**शारदातिलके**—

> अङ्गानि कुर्याद्दीर्घाढ्यरमाबीजेन मन्त्रवित् ॥५४॥

---

1. क. ऽकादिक्षान्त० । 2. ख. धनुः । 3. ख. ०नृचत्पूर्व० ।

माणिक्यप्रतिमप्रभां हिमनिभैस्तुङ्गैश्चतुर्भिर्गजै—
हस्ताग्राहितरत्नकुम्भसलिलैरासिच्यमानां सदा ।
हस्ताब्जैर्वरदानमम्बुजयुगाभीती दधानां[1] हरेः,
कान्ताङ्काङ्क्षितपारिजातलतिकां वन्दे सरोजासनाम् । ५५॥

आयुधध्यानम् प्राग्वत् । तथा—

रमायाः कल्पिते पीठे तद्विधानेन पूजयेत् ।
भानुलक्षं हविष्याशी जपेदन्ते सरोरुहैः ॥५६॥

जुहुयादरुणैः प्रफुल्लैस्तत्सहस्रञ्जितेन्द्रियः ।
कुर्यात्प्रयोगांस्तत्रस्थान्मनुनाऽनेन साधकः ॥५७॥

निधिभिः सेव्यते नित्यम्मूर्तिमद्भिरुपस्थितैः ।
तथा—दीर्घा यादिर्विसर्गान्तो ब्रह्मा भानुर्वसुन्धरा ॥५८॥
वान्ते सिन्यै प्रिया वह्नेर्मनुः प्रोक्तो दशाक्षरः ॥

दीर्घा मकारः, यादिर्मकारः विसर्गान्तिः तेन मः, ब्रह्मा ककारः, भानुर्मकारः, वसुन्धरा लकारः, वा स्वरूपं, सिन्यै स्वरूपम्, वह्नेः प्रिया स्वाहा ।

ऋषिर्दक्षो विराट्छन्दो देवता श्रीः समीरिता । ५९॥
देव्यै हृदयमाख्यातं पद्मिन्यै शिर ईरितम् ।

विष्णुपत्न्यै शिखा प्रोक्ता वरदायै तनुच्छदम् ॥६०॥
अस्त्रं कमलरूपायै नमोऽन्ताः प्रणवादिकाः ।
अङ्गमन्त्राः समुद्दिष्टा ध्यायेद्देवीमनन्यधीः ॥६१॥

**सारसङ्ग्रहे तु**—
देवी च पद्मिनी विष्णुपत्नी च वरदा मता ।
रूपान्ता कमला चाऽभिर्ङे नमोऽन्ताभिरुक्तवत् ॥६२॥

पञ्चाङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत्[2] ।

**पदार्थादर्शे**—श्रीँ बीजं, स्वाहा शक्तिः ।

---

1. ख. ०भीतीर्दधानां । 2. क. कल्पियेत् ।

**शारदातिलके—**

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजैर्बिभ्रतीं,
दानम्पद्मयुगाभये च वपुषा सौदामिनीसन्निभा।
मुक्तादामविराजमानपृथुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनी,
पायाद्वः कमला कटाक्षविभवैरानन्दयन्ती हरिम् ।।६३।।

श्रीपीठे प्रयजेद्देवीमङ्गानि प्रथमं यजेत् ।
बलाक्याद्यास्तथा पूज्या लोकेशास्त्रावृती अपि ।।६४।।

इति सम्पूजयेद्देवीं सम्पदामालयो भवेत् ।

।। **अथ प्रयोगः** ।।

प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—"दक्षाय ऋषये नमः, मुखे–विराट्छन्दसे नमः, हृदये–श्रीकमलायै देवतायै नम" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा—"ॐ देव्यै हृदयाय नमः, ॐ पद्मिन्यै शिरसे नम" इत्यादि पञ्चाङ्गमन्त्रान् यथास्थानं विन्यस्य, अथवा—"देव्यै नमः हृदयाय नमः, पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा, विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट्, वरदायै नमः कवचाय हुँ, कमलरूपायै नमः अस्त्राय फट्" इति पञ्चाङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं करयोर्विन्यस्य, नेत्रवर्जं हृदयादिपञ्चाङ्गेष्वपि विन्यस्य, ध्यानाद्यङ्गपूजान्ते प्राग्वदष्टदले बलाक्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्येन्द्रादिपूजनादि सर्वम्प्राग्वत् समापयेत् ।

**शारदातिलके—**

दशलक्षञ्जपेदेनम्मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ।
दशांशञ्जुहुयान्मन्त्री मधुराक्तैः सरोरुहैः ।।६५।।

समुद्रगायां सरिति कण्ठमात्रे जले स्थितः ।
त्रिलक्षम्प्रजपेन्मन्त्रं साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ।।६६।।

आराध्योत्तरनक्षत्रे देवीं स्रक्चन्दनादिभिः ।
नन्द्यावर्त्तभवैः पुष्पैः सहस्रञ्जुहुयात्ततः ।।६७।।

पौर्णमास्याम्फलैर्वैल्वैर्जुहुयान्मधुराप्लुतैः ।
पञ्चम्यां विशदाम्भोजैः शुक्रवारे सुगन्धिभिः ।।६८।।

अन्यैश्च विशदैः पुष्पैः प्रतिमासं विशालधीः ।
स भवेदब्दमात्रेण सर्वदा सम्पदान्निधिः ।।६९।।

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्**[1]—

अथ वक्ष्ये महेशानि लक्ष्मीहृदयमुत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण पलायन्ते महापदः ।।७०।।

प्रणवम्पूर्वमुच्चार्य हरे मात्मकमुच्चरेत् ।
[2][श्रीपुटञ्चाऽथ कमले कमलाये प्रसीद च ।।७१।।

लायेमध्यगताम्भूमिं रुद्रस्थाने तु योजयेत् ।
प्रसीदपूर्वबीजानि सम्पुटत्वेन योजयेत् ।।७२।।
महालक्ष्म्यै हृदन्तोऽयमष्टाविंशतिवर्णवान् ।][2]

हरेमात्मकं ह्रीमिति बीजम्, श्रीपुटं श्रीं ह्रीं श्रीमिति, कमले स्वरूपम्, कमलाये स्वरूपम्, प्रसीदेति स्वरूपम्, ला–ये मध्यगतां भूमिं लाकार–येकार-योर्मध्ये भूमिं लकारम् रुद्रस्थाने एकादशाक्षरस्थाने, तेन कमलालये इति, पुनः प्रसीदेति स्वरूपम्, पूर्वबीजानि तान्येव पुनः प्रणवादीनि चत्वारि, महालक्ष्म्यै स्वरूपम्, हृदन्त नमोऽन्तः ।

**सारसङ्ग्रहे तु** - द्वितीयप्रणवं विना सप्तविंशतिवर्ण एवोद्धृतः । यथा—

तारः श्रीशक्तिलक्ष्मीकसूर्याः शिवयुता धरा ।
चतुराननसूर्य्यौ च दीर्घयुक्तः पुरन्दरः ।।७३।।

उपान्तशिवयुग्वायुर्लोहितोग्नियुतो भृगुः ।
चतुर्थस्वरयुक्थान्तः पुनरेतत्त्रयं वदेत् ।।७४।।

बीजत्रयं महालक्ष्म्यै हृदन्तो गदितो मनुः ।
सर्वदोऽयम्महालक्ष्म्या मन्त्रराजः प्रकीर्त्तितः ।।७५।।

तारः प्रणवः, श्री श्रीबीजं, शक्तिर्भुवनेशी, लक्ष्मी श्रीबीजं, क स्वरूपं, सूर्यो मकारः, धरा लः, शिव ए, तेन ले, चतुरानन कः, सूर्यो मः, दीर्घयुक्तः

1. अयमंशः क. पुस्तके नाऽस्ति । 2. [—] कोष्ठान्तर्गतोऽयमंशो नैव दृश्यते ख. पुस्तके ।

पुरन्दरः तेन ला, उपान्त्यो लः, शिव एः, वायुः यः, तेन ये, लोहितः पः, अग्नियुतः रेफयुतः, तेन प्र, भृगुः सः, चतुर्थस्वर ई, तेन सी, थान्तः दः, पुनरेतत्त्रयं प्रसीदेति, बीजत्रयं श्रीशक्तिरमाबीजानि, महालक्ष्म्यै स्वरूपं, हृदन्तो नमोऽन्तः ।

**शारदातिलके** तु—

"महालक्ष्मी नमोऽन्तः स्यात्प्रणवादिरयं मनु" रित्युक्तम् ।

**पदार्थादर्शे** - "महालक्ष्मीति स्वरूप" मिति व्याख्यातम् ।

**प्रपञ्चसारेऽपि**—स "महालक्ष्मी हृदि" न्दिरामन्त्र इत्युक्तम् तेन महालक्ष्मी-पदं सम्बुध्यन्तं केचन वदन्ति । वस्तुतस्तु चतुर्थ्यन्तमेव मुख्यम् । **श्रीदक्षिणा-मूर्त्तिसंहितायां सारसङ्ग्रहे** च "महालक्ष्म्यै" इति चतुर्थ्यन्तस्यैवोद्धृतेः, शब्द-शास्त्रे नमःपदयोगे चतुर्थ्याः प्राशस्त्येनाऽभिधानाच्च ।

दक्षप्रजापतिश्चाऽस्य ऋषिश्छन्दस्तथैव च ।
गायत्री देवता लक्ष्मीर्हृदयम्परिकीर्त्तितम्[1] ।।७६।।

द्वितीयञ्च तृतीयञ्च बीजशक्ती[2] क्रमेण च ।
प्रणवः कीलकन्देवि ततोऽङ्गानि प्रविन्यसेत् ।।७७।।

अङ्गानि पूर्ववद्देवि न्यसेन्मन्त्री समाहितः ।

तेन श्राँ श्रीमित्यादि षडङ्गन्यासो ज्ञेयः ।

**सारसङ्ग्रहे** तु—

त्रिबीजपुटितैर्मन्त्रवर्णैः पञ्चाङ्गमीरितम् ।
त्रीष्वग्निवह्निवेदैश्च ततो देवीं विचिन्तयेत् ।।७८।।

इषु पञ्च, अग्नि ३, वेद ४ ।

**शारदातिलके** –

सिन्दूरारुणकान्तिमब्जवसतिं सौन्दर्य्यवारान्निधि-
ङ्कोटीराङ्गदहारकुण्डलकटीसूत्रादिभिर्भूषिताम् ।

---

1. ख. पीरकीर्त्तितः । 2. क. बीजशक्ति ।

हस्ताब्जे वसुपात्रमब्जयुगलादर्शौ वहन्तीम्परा-
वावीताम्परिवारिकाभिरनिशन्ध्यायेत्प्रियां शार्ङ्गिणः ।।७९।।

वामाधः–करमारभ्य दक्षिणाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । दक्षाधस्तदारभ्य वा ।

श्रीबीजोक्ते यजेत्पीठे वक्ष्यमाणक्रमेण ताम् ।
अङ्गावृतेर्बहिः पूज्या मूर्त्तयः श्रीधरादयः ।।८०।।

श्रीधराख्यं हृषीकेशं वैकुण्ठं विश्वरूपकम् ।
वासुदेवं सङ्कर्षणम्प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ।।८१।।

दलमूलेषु सम्पूज्य पत्रमध्येषु संयजेत् ।
भारतीम्पार्वतीञ्चान्द्रीं शचीञ्च दमकादिकान् ।।८२।।

दलाग्रेष्वर्च्चयेद्बाणान्महालक्ष्म्याः क्रमादमून् ।
अनुरागञ्च संवादं विजयं बल्लभम्मदम् ।।८३।।

हर्षम्बलञ्च तेजश्च लोकनाथाननन्तरम् ।
तदायुधानि तद्बाह्ये पूजयेत्साधकोत्तमः ।।८४।।

अनेन विधिना देवीम्महालक्ष्मीमुपासते ।
ये तेषु निवसेल्लक्ष्मीरस्मरन्ती निजालयम् ।।८५।।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—"दक्षप्रजापतिऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीमहालक्ष्म्यै देवतायै नमः, गुह्ये—श्रीँ बीजाय नमः, पादयोः—ह्रीँ शक्तये नमः, नाभौ - ॐ कीलकाय नमः," विनियोगमुत्कीर्त्य 'श्राँ श्रीमि" त्यादिषडङ्गन्यासं कृत्वाऽथवा "श्रीँ ह्रीँ श्रीँ कमले श्रीं ह्रीं श्रीँ हृदयाय नमः, श्रीँ ह्रीँ श्रीँ कमलालये ३[1] शिरसे स्वाहा, ३ प्रसीद ३ शिखायै वषट्, ३ प्रसीद ३ कवचाय हुँ, ३ महालक्ष्म्यै ३ अस्त्राय फट्" इति पञ्चाङ्गमन्त्राभिमृष्टयोः करयोरङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तास्वङ्गुलीषु विन्यस्य, नेत्रवर्ज्जं हृदयादिषु च विन्यसेत् ।

1. '3' इत्यङ्कस्याऽयमाशयः—"श्रीँ ह्रीँ "श्रीँ" इति ज्ञेयोऽत्र । (सम्पादकः)

ततो ध्यानमानसपूजान्तेऽष्टदलकमलत्रयं चतुर्द्वारयुतचतुरस्रत्रयावृतं पूजाचक्रं उद्धृत्यार्घस्थापनाद्यङ्गपूजान्तेऽन्तरष्टदले – "ॐ श्रीधराय नमः, हृषीकेशाय नमः, वैकुण्ठाय०, विश्वरूपाय०, वासुदेवाय०, सङ्कर्षणाय०, प्रद्युम्नाय०, अनिरुद्धाय०" इत्यग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य,

द्वितीयेऽष्टदले दिक्पत्रेषु –"भारत्यै०, पार्वत्यै०, ब्राह्म्यै०, शच्यै०", आग्नेयादिपत्रेषु—"दमकाय०, सलिलाय०, गुग्गुलवे०, कुरण्टकाय०" इति सम्पूज्य,

तृतीयेऽष्टदले –"अनुरागाय०, विसंवादाय०, विजयाय०, वल्लभाय०, मदाय०, हर्षाय०, बलाय०, तेजसे०" इति सम्पूज्य प्राग्वद्दिगीशार्चादि शेषं समापयेत् ।

**दक्षिणामूर्त्तिसंहितायान्तु –**

अङ्गैः प्रथमावरणं, भारत्यादिचतसृभिः श्रीधरादिभिश्चतुर्भिश्च द्वितीयं, अनुरागादिभिस्तृतीयं, ततो लोकपालास्तद्धेतय इति पञ्चावरणमुक्तम् ।

**शारदातिलके –**

[1]लक्षञ्जपेन्मन्त्र[मिम]न्नियमेन तु साधकः ।
तद्दशांशेन पद्मैस्तु जुहुयात्सम्पत्तिहेतवे ।।८६।।

महागजास्तुरङ्गाश्च जायन्ते तस्य मन्दिरे ।
सुवर्णरत्नभूषादिमण्डितः साधको भवेत् ।।८७।।

**शारदातिलके –**

उत्पलैर्जुहुयाल्लक्षञ्चन्दनाम्भसि लोलितैः ।
शत्रूणाँल्लभते राष्ट्रं विना युद्धेन पार्थिवः ।।८८।।

जपन्राजसभाङ्गच्छेत्सम्भाव्येत तया नरः ।
दूर्वा देवी महालक्ष्मीर्विष्णुकान्ता मधुव्रता ।।८९।।

---

1. इतः पूर्वं ख. पुस्तकेऽयं विशेषः पाठः—
लक्षञ्जपेत्फलैर्बिल्वैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः ।
दशांशं संस्कृते वह्नौ प्राक्प्रोक्तेनैव वर्त्मना ।।
एष जपः कृतयुगपरः । दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

मुशली शक्रवल्ली च सदा भद्राञ्जलिप्रिया ।
हरिचन्दनकर्पूरचन्दनं[1] कोलरोचनाः ॥९०॥

मालूरङ्क्षे शरङ्कुष्ठं सर्वम्पिष्ट्वा निशारसैः ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु जपित्वा तिलकक्रियाम् ॥९१॥

कुर्वतो मन्त्रिणः सर्वे वशे तिष्ठन्त्यहर्निशम् ।

लक्ष्मी लक्ष्मणा रक्तबिन्दुयुक्तनागवल्लीदलसदृशदला श्वेतपुष्पा, देवी सहा सहदेवी, मधुव्रता भृङ्गराजः, सदाभद्रा भद्रमुस्ता, अञ्जलिप्रिया अञ्जलिनी हथाजोरीति भाषया, हरिचन्दनं पीतचन्दनम्, मालूरं विल्वम् ।

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—**

अथ वक्ष्ये महादेवि सर्वसाम्राज्यदेवताम् ।
यस्या आराधनाद्विष्णुरभूल्लक्ष्मीपतिः स्वयम् ।।९२॥

चन्द्रेण मादनं क्ष्मेशो वह्निर्दीर्घाक्षिमण्डितः ।
बिन्द्वक्रूरेश्वरीयुक्तो विद्येयं वैष्णवी प्रिये ॥९३॥

श्रीबीजसम्पुटङ्कुर्यात्सर्वसाम्राज्यदायिनी ।

चन्द्रः सकारः, मादनं ककारः, क्ष्मा लकारः, ईशो हकारः, वह्नी रेफः, दीर्घाक्षि ईकारः, बिन्दुः नादः, अक्रूरेश्वरी बिन्दुः, एतेन मायोद्धृता । तथा—

ऋषिर्हरिस्तथा छन्दो गायत्री चाऽस्य सम्मता ।
देवता मोहिनी लक्ष्मीः सर्वसाम्राज्यदायिनी ॥९४॥

बीजङ्कूटं समाख्यातं शक्तिः श्रीबीजमुच्यते ।
षड्भिः कूटं स्वरैर्भित्त्वा षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ॥९५॥

अतसीपुष्पसङ्काशां सर्वाभरणभूषिताम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधराङ्करैः ॥९६॥

---

1. ख. चदनां ।

षड्भिः कराभ्यां देवेशि वरदाभयशोभिताम् ।[1]

ध्यायेदिति शेषः । वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये, तदाद्यधस्थयोरपरे, तदाद्यधस्थयोरितरे इत्यायुधध्यानम् । यन्त्रोद्धारं शृणु प्रिये ।

त्रिकोणञ्चाऽष्टपत्रञ्च भूबिम्बञ्च ततो लिखेत् ॥९७॥
चतुर्द्वारविशोभाढ्यं यन्त्रमेतत्समालिखेत् ।
अस्मिन्समावाह्य देवीम्पूजयेदुपचारकैः ॥९८॥

पूर्ववत्परमेशानि षडङ्गावरणं यजेत् ।
[गायत्री चैव सावित्री सरस्वत्यग्रभागतः ॥९९॥

क्रमेण पूजयेन्मन्त्री ब्राह्म्याद्याश्च स्वरैः पृथक् ।
अष्टपत्रेषु भूबिम्बे चैकोच्चारेण पूजयेत् ॥ ][2]१००॥

अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमो लिखेत् ।
अनेन मनुना पश्चादिन्द्रादीन्पूजयेत्ततः ॥१०१॥

पुनर्देवीं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
बटुकक्षेत्रपालेभ्यो योगिनीभ्यो बलिं हरेत् ॥१०२॥

अत्र बटुकक्षेत्रपालेभ्य इति बहुवचनं गणेशस्याऽपि ग्रहणार्थन्तेन बटुकक्षेत्रपालगणेशेभ्य इत्यर्थः ।

**दक्षिणामूर्त्ति—**

नित्यहोमविधिङ्कृत्वा बलिदानविधिञ्चरेत् ।
ईशाने च तथाग्नेये नैर्ऋत्ये च तथा प्रिये ॥१०३॥

वायव्ये क्रमतो देवि मण्डलानाञ्चतुष्टयम् ।
श्रीचक्रमभितो देवि त्रिकोणं व्योम चाऽऽलिखेत् ॥१०४ ।

---

1. इतः परं विशेषो दृश्यते पाठः—श्रीं सकलह्रीं श्रीं ।
एवमष्टभुजां ध्यानं रविलक्षञ्जपेत्सुधीः ।
तद्दशांशेन पद्मैस्तु हुनेत्साम्राज्यसिद्धये ॥१॥
जितेन्द्रियः सन्विधिवत् ।

2. [—] कोष्ठान्तर्गतोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

[पूर्वमन्त्रैः समभ्यर्च्य बटुकादिभिरद्रिजे ।
एह्येहि देवीपुत्रान्ते वटुकान्तेऽथ नाथ च ][1] ॥१०५॥

कपिलान्ते जटाभारभासुरान्ते[2] त्रिनेत्र च ।
ज्वालामुखञ्च सर्वान्ते विघ्नान्नाशय नाशय ॥१०६॥

सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण द्विधा पदम् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो वटुकस्य उदाहृतः ॥१०७॥
अनेन मनुना देवि वटुकस्य बलिम्प्रिये ।
ऊर्द्ध्वे ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा,
पाताले वानले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा,
क्षेत्रे[3] पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन,
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥१०८।

एतदन्ते महेशानि याँ बीजं योगिनी ततः ।
भ्यः स्वाहा सर्ववर्णान्ते योगिनीपदमालिखेत् ॥१०९॥

कवचञ्चाऽस्त्रमालिख्य वह्निजायाम्पुनर्लिखेत् ।
अनेन मनुना देवि योगिनीनाम्बलिर्भवेत् ॥११०॥

षड्दीर्घस्वरसन्निभं क्षकारं विलिखेत्प्रिये ।
स्थानक्षेत्रपदम्पालधूपदीपादि चाऽऽलिखेत् ॥१११॥

सहितं बलिमालिख्य गृह्ण गृह्ण ततो वदेत् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रः क्षेत्रपालस्य सुन्दरि ॥११२॥

अनेन मनुना देवि क्षेत्रपालबलिः स्मृतः ।
गाँ गीँ गूँ त्रयमालिख्य ङेऽन्तं गणपतिं वदेत् ॥११३॥

वरेति वरदान्ते च सर्वान्ते जनमालिखेत् ।
मे वशं चानय प्रोक्त्वा बलिं गृह्ण द्विधा पदम् ॥११४॥

---

1. [—] नैवांशोऽयङ्कोष्ठगः ख पुस्तके । 2. ख. भासुरान्त । 3. ख. क्षेत्रो ।

वह्निजायान्वितो मन्त्रो गणेशस्य बलिं हरेत् ।
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां वटुकस्य बलिर्भवेत् । ११५॥

अङ्गुष्ठमध्यमानामा योन्याकारेण योजयेत् ।
अनया मुद्रया देवि योगिनीनाम्बलिर्भवेत् ॥११६॥

वाममुष्टिं विधायादौ तर्ज्जनीं सरलाङ्कुरु ।
अनया मुद्रया देवि क्षेत्रपालबलिर्भवेत् ॥११७॥

तथा मुष्टेस्तु मध्यस्थामङ्गुलीन्दण्डवत्कुरु ।
गजतुण्डमहामुद्रा गणेशस्य बलिर्भवेत् ॥११८॥

**॥ अथ प्रयोगः ॥**

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि— "हरये ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीसाम्राज्यलक्ष्म्यै नमः, गुह्ये—सकलह्रीँ बीजाय नमः, पादयोः—श्रीँ शक्तये नमः" इति विन्यस्य, ममेत्यादि प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा—

सकलह्राँ हृदयाय नमः, सकलह्रीँ शिरसे स्वाहा, सकलह्रूँ शिखायै वषट्०, सकलह्रैँ कवचाय हुं, सकलह्रौँ नेत्राय वौषट्, सकल ह्रः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रैःकरषडङ्गन्यासं कृत्वा,

ध्यानाद्यात्ममूलान्ते प्रागुक्तलक्ष्मीपीठमभ्यर्च्याऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणाग्रादिप्रादक्षिण्येन "ॐ गायत्र्यै नमः, ॐ सावित्र्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै०" इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु प्राग्वद्ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य, चतुरश्रे— "अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नम" इति देवीम्परितः । सम्पूज्य, लोकेशार्चादि कृत्वा, नित्यहोमान्ते बलिदानङ्कुर्याद्यथा—

पूजाचक्रस्येशानादिकोणचतुष्टये त्रिकोणवृत्तचतुरश्रमण्डलं कृत्वा, तेष्वीशानमण्डले—"वाँ वटुकभैरवाय नमः" इति वटुकं गन्धादिभिः सम्पूज्य, तत्राऽन्नव्यञ्जनतोयपुष्पादिभरितं साधारं ताम्रादिपात्रं संस्थाप्य, "वटुकबलिद्रव्याय नमः" इति बलिद्रव्यं सम्पूज्य, "ॐ एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान्नाशय २ सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण २ स्वाहा"

"ति पूर्वस्थापिताऽर्घपात्रात् पात्रान्तरेणोद्धृतजलेन वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां बलिमुत्सृजेत् । एवमाग्नेयमण्डले "यां योगिनीभ्यो नमः" इति योगिनीः सम्पूज्य,—

ऊर्द्ध्वे ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा,
पाताले वाऽनले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा ।

क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन,
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ।।११९।।

"याँ योगिनीभ्यः स्वाहा सर्ववर्णयोगिनीभ्यो हुँ फट् स्वाहा" इति मन्त्रेण वामाङ्गुष्ठानामामध्याभिरर्घजलधारया बलिमुत्सृज्य, निर्ऋतिकोणगतमण्डले— "क्षां क्षेत्रपालाय नम" इति क्षेत्रपालं सम्पूज्य, प्राग्वद्बलिपात्रं निधाय —"क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षैँ क्षौँ क्षः स्थानक्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहे"ति वामाङ्गुष्ठतर्ज्जनीभ्यां तर्ज्जन्यैकया वा प्राग्वद्बलिपात्रेऽर्घजलधारां दद्यात् । ततो वायव्यमण्डले—"गां गणपतये नम" इति गणपतिं सम्पूज्य, प्राग्वद्बलिपात्रं निधायाऽभ्यर्च्य —"गाँ गीँ गूँ गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहे"ति वामाङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां प्राग्वद्बलिमुत्सृजेदिति बलिदानं विधायोत्तरापोशनादिनीराजनान्ते जपादिकं शेषम्प्राग्वत्समापयेदिति ।

**दक्षिणामूर्त्तिसंहितायान्तु—**

एवमष्टभुजां ध्यात्वा त्रिलक्षम्प्रजपेत्सुधीः ।
तद्दशांशेन पद्मैस्तु हुनेत्साम्राज्यसिद्धये ।।१२०।।
जितेन्द्रियः सन्विधिवदिति ।

अयङ्कृतयुगजपः । विधिवदित्यनेन तर्प्पणादिब्राह्मणभोजनान्तङ्कर्त्तव्यमित्युक्तम् । तथा—

त्रिशक्तियजनं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदन्नृणाम् ।
श्रीबीजञ्च पराबीजं कामबीजं समालिखेत् ।।१२१।।

इयं त्रिशक्तिर्देवेशि त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।
पराबीजं भुवनेश्वरीबीजम् ।
ऋषिर्ब्रह्माऽस्य गायत्री छन्दोऽपि कथितम्प्रिये ।।१२२।।

त्रिशक्तिर्देवताऽङ्गानि द्विरावृत्या यजेत्प्रिये ।
अथ यन्त्रम्प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ।। १२३।।

षट्कोणम्पूर्वमालिख्य मध्ये विद्यां लिखेत्सुधीः
वीप्सया तान्तु षट्कोणकोणेषु क्रमतो यजेत् ।।१२४।।

बाह्ये वसुदलङ्कुर्याद्दीर्घस्वरविभूषितम् ।
चतुरश्रं चतुर्द्वारभूषितम्मण्डलं लिखेत् ।।१२५।।

मध्ये देवीं समावाह्य ध्यायेत्सर्वसमृद्धिदाम् ।
नवहेमस्फुरद्भूमौ रत्नकुट्टिममण्डपे ।।१२६।।

महाकल्पवनान्तस्थे रत्नसिंहासने वरे ।
कमलासनशोभाढ्यां रत्नमञ्जीररञ्जिताम् ।।१२७।।

स्फुरद्रत्नलसन्मौलिं रत्नकुण्डलमण्डिताम् ।
अनन्तरत्नघटितनानाभूषणभूषिताम् ।।१२८।।

दधतीम्पद्मयुगलम्पाशाङ्कुशधनुःशरान् ।
षड्भुजामिन्दुवदनान्दूतीभिः परिवारिताम् ।।१२९।।

चारुचामरहस्ताभीरत्नादर्शसुपाणिभिः ।
ताम्बूलस्वर्णपात्रीभिर्भूषापेटीसुपाणिभिः ।।१३०।।

तप्तकार्त्तस्वराभासाम्पूर्वोक्ते मण्डले यजेत् ।
उपचारैः समाराध्य तत आवरणं यजेत् ।।१३१।।

पूर्ववत्परमेशानि परिवारांस्ततो यजेत् ।
लक्ष्मीं हरिञ्च गिरिजां शिवं रत्यङ्गजौ क्रमात् ।।१३२।।

अग्रकोणादि सम्पूज्य ततः षट्कोणपार्श्वयोः
शङ्खपद्मनिधी पूज्यौ वसुपत्रेषु मातरः ।।१३३।।

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
बाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा सप्तमी भवेत् ।।१३४।।

महालक्ष्मीर्महादेवि पुर आदि प्रपूजयेत् ।
इन्द्रादयस्तु सम्पूज्याः कामिनीरूपधारिणः ।।१३५।।
[1]उत्तुङ्गयौवनोन्मत्ता देव्याराधनगर्विताः ।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—"ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—गायत्री छन्दसे नमः, हृदये—श्रीत्रिशक्तिलक्ष्मीदेवतायै नमः" इति विन्यस्य, "श्रीँ हृदयाय नमः, ह्रीँ शिरसे स्वाहा, क्लीँ शिखायै वषट्, श्रीँ कवचाय हुँ, ह्रीँ नेत्राय वौषट्, क्लीँ अस्त्राय फट्" इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य, षट्कोणे देव्यग्रकोणमारभ्य "लक्ष्म्यै०, हरये०, गिरिजायै०, शिवाय०, रत्यै०, अनङ्गाय०" इति सम्पूज्य, षट्कोणपार्श्वयोर्देवीदक्षिणे—"शङ्खनिधये नमः, वामे-पद्मनिधये०" इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य, दिगीशार्चादि सर्वम्प्राग्वत्समापयेदिति । तथा—

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं नियमेन जितेन्द्रियः ।।१३६।।
तद्दशांशेन देवेशि किंशुकैर्होमयेत्सुधीः ।
अनेन विधिना मन्त्री पुरश्चारी भवेत्प्रिये ।।१३७।।

सारसङ्ग्रहे तु—

वाक्शक्तिः श्रीकामतः खं साग्निसद्यान्तसर्गयुक् ।
च तृतीयं चवर्गादि तृतीयं केवलश्च सः ।।१३८।।

[2]लोहितोग्नियुतो वामश्रुतियुक् भृगुरीरितः ।
तुर्यवर्गादिपवनसद्याद्या हृदयावधि ।।१३९।।

[3]द्वादशार्णो महालक्ष्मीमन्त्रः प्रोक्तस्तु सूरिभिः ।
प्रणवाद्योऽयमेव स्यात्सर्वसिद्धिकरो मनुः ।।१४०।।

वाक् वाग्बीजं, शक्तिर्भुवनेश्वरीबीजं, श्री लक्ष्मीबीजं, कामस्तद्बीजं, खं हः, स स्वरूपं, अग्नी रेफः, सद्यान्त औ०, सर्गो विसर्गः, एभिः पिण्डितं ह्स्रौः; चतृतीयं ज, वर्गादितृतीयं ग, केवलश्च तः तकारः स्वररहितः; लोहितः पः,

1. क. उत्तङ्ग । 2. ख. लोहिताग्नि० । 3. क. द्वादशा ।

अग्नियुतः रेफयुतस्तेन प्र, वामश्रुतियुक् भृगुस्तेन सू, तुर्यवर्गादिः त, पवनः य, सद्याद्यः ऐ, एभिः त्यै, हृदयं नमः । प्रणवाद्यस्तु त्रयोदशाक्षरः ।

शारदातिलके —

वाग्भवं शम्भुवनिता रमा[1] मकरकेतनः ।
तार्त्तीयं च जगत्पार्ग्रो[2] वह्निबीजसमुज्ज्वलः ।।१४१।।

अर्धीशाढ्यो भृगुस्त्यै हृन्मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ।
महालक्ष्म्याः समुद्दिष्टस्ताराद्यः सर्वसिद्धिदः ।।१४२।।

पदार्थादर्शे — तार्त्तीयम्बालाया भैरव्या वा तथा ।

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टश्छन्दो गायत्रमीरितम् ।
देवता जगतामादिर्म्महालक्ष्मीः समीरिता ।।१४३।।

पदार्थादर्शे प्रणवो बीजं, तार्त्तीयं शक्तिः ।

हस्तौ संशोध्य[3] मन्त्रेण तारादिहृदयान्तिकम् ।
बीजानाम्पञ्चकं न्यस्येदङ्गुलीषु यथाक्रमम् ।।१४४।।

मन्त्रशेषं न्यसेन्मन्त्री तलयोरुभयोरपि ।
मूर्द्धादिचरणं यावन्मन्त्रेण व्यापाकन्न्यसेत् ।।१४५।।

मूर्द्धाक्षि वक्त्रो गुह्याङ्घ्रयोः पञ्चबीजानि विन्यसेत् ।
शेषान्न्यसेत्सप्तवर्णान् हृदये सप्तधातुषु ।।१४६।।

अङ्गानि पञ्चभिर्बीजैरस्त्रं शिष्टाक्षरैर्भवेत्
ज्ञानैश्वर्यादिभिर्युक्तैश्चतुर्थ्यन्तैः सजातिभिः ।।१४७।।

ज्ञानमैश्वर्यशक्ती च बलवीर्ये सतेजसी ।
ज्ञानैश्वर्यादयः प्रोक्ताः षट् क्रमादङ्गयोजिताः । १४८।।

पदार्थादर्शे—"ऐं ज्ञानाय हृदयाय नमः" इत्यादिप्रयोगः । केचन सम्प्रदाया आत्मने शब्दमध्याहुः । तन्मते "ऐं ज्ञानात्मने हृदयाय नमः" इत्यादिप्रयोगः ।

---

1. क० रामा 2. ख० जगत्पार्श्वे 3. ख० संसोध्य

**सारसङ्ग्रहे—**

एवं न्यस्ततनुर्मन्त्री चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।
आदौ स्मरेत्समुद्यानं सर्वर्त्तुप्रतिशोभितम् ।।१४६।।

वञ्जुलैर्नागरङ्गैश्च रसालैः श्रीद्रुमैरपि[1] ।
तालैस्तमालैर्हिन्तालैः शालैश्च वकुलैरपि ।।१५०।।

कर्कन्धुबन्धुजीवैश्च चम्पकैरुपशोभितम् ।
मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीदलमण्डितम् ।।१५१।।

अशोकपाटलानाग[2]-कोविदारमनोरमम् ।
मल्लिका-यूथिकाकुन्दमन्दयन्तीसुगन्धिकाः ।।१५२।।

द्राक्षावल्लीनागवल्लीमाधवीदेवदारुभिः ।
नमेरुभिर्लवङ्गैश्च वकुलैस्तिलकैस्तथा ।।१५३।।

शोभितं कर्णिकारैश्च चन्दनै रक्तचन्दनैः ।
वञ्जुलैर्मातुलुङ्गैश्च दाडिमीलकुचैस्तथा ।।१५४।।

नारिकेरैश्च[3] खर्जूरैः पूगैः कुरवकैर्वृतम् ।
मालतीकेतकीजातीपारन्तीतुलसीवृतम् ।।१५५।।

नन्द्यावर्त्तैर्दमनकैः सर्वत्र[4] कुसुमोज्ज्वलम् ।
अमन्दैः पिचुमन्दैश्च मन्दारैरुपशोभितम् ।।१५६।।

विशिष्टैः पनसैरुच्चैः शाकोटैः[5] कुटजाङ्गणैः[6] ।
अवेगपवनस्पृष्टसुमनोगन्धमञ्जुलम् ।।१५७।।

महासरस्तस्य मध्ये स्मरेन्मन्त्री मनोरमम् ।
भ्रमद्भ्रमरमालाभिरलङ्कृतचतुर्दिशम् ।।१५८।।

केकिकेकारवाकीर्णं लक्ष्मणासारसावृतम् ।
वरटाहंससङ्घाढ्यचञ्चक्रकारण्डवोज्ज्वलम् ।।१५९।।

---

1. ख. श्रीमद्रुमैरपि । 2. ख. पाटनाग । 3. ख. नालिकेरैश्च । 4. ख. सर्वत्र तु । 5. ख. शाखोटैः । 6. ख. कुटजैर्गणैः ।

फुल्लैः सरसिजै रम्यैः कल्हारैः कैरवैरपि ।
नीलेन्दीवरसङ्घैश्च सुगन्धिकुसुमैर्वृतम् ॥१६०॥

सर्वर्त्तुशोभिकल्पद्रुवनमण्डितमुज्ज्वलम् ।
पुलिनन्तत्र तन्मध्ये मण्डपं रत्नकुट्टिमम् ॥१६१॥

समुद्यदर्कसन्दोहकिरणद्युतिभास्वरम् ।
हिमरश्मिकरव्रातसिक्तामृतसुशीतलम् ॥१६२॥

प्रोल्लसद्गालितस्वर्णप्राकारसुमनोहरम् ।
नानारत्नौघरचितञ्चतुर्द्वारसमायुतम् ॥१६३॥

नवरत्नमयम्प्रोद्यदरराट्टकशोभितम् ।

अररः कपाटः

नूतनोद्यन्महारत्नै रचितोत्तुङ्गगोपुरम् ॥१६४॥

तप्तगालितहेमोद्यद्दण्डध्वजसमूहकम् ।
[1]वैदूर्यादिमहारत्नरचितस्तम्भराजितम् ॥१६५॥

सन्तप्तस्वर्णरचितगवाक्षशतसङ्कुलम् ।
हेमदण्डस्फुरद्दीपसहस्रसुमनोहरम् ॥१६६॥

नानाविधक्षौमवस्त्ररचिताभिश्च काञ्चनैः
सक्षुद्रघण्टिकायुक्तपताकाभिरथाऽऽवृतम् ॥१६७॥

शरद्राकासुधारश्मिदुकूलरचितैः शुभैः ।
विचित्रवसनोद्भूतैरपि चन्द्रातपैरपि ॥१६८॥

काञ्चनोर्वीमणिव्रातकुट्टिमालङ्कृतं शुभम् ।
घनसारागुरुस्वम्बुकस्तूरीकुङ्कुमैरपि ॥१६९॥

तमालैर्द्रव्यजातैश्च सुगन्धिभिरथेतरैः ।
आमोदितंचतुर्द्वारम्मण्डपम्प्रविचिन्तयेत् ॥१७०॥

---

1. ख. वैडूर्यादि० ।

तदन्तःपारिजातस्य मूले सिंहासनन्नवम् ।
नानारत्नगणाकीर्णन्तत्र देवीं विचिन्तयेत् ॥१७१॥

बालभास्करसत्कान्तिं शशिशेखरमण्डिताम् ।
मुक्ताहारोज्ज्वलां रम्यां रत्नाकल्पविभूषिताम् ॥१७२॥

हस्ताम्भोजैश्च बिभ्राणान्नूतनां शालिमञ्जरीम् ।
पद्मद्वयं कौस्तुभञ्च सुस्मितास्यसरोरुहाम् ॥१७३॥

विकचोत्पलसंशोभिलोचनत्रयसंयुताम् ।
क्वणन्नूपुरसम्फुल्लरक्तोत्पलपदद्वयाम् ॥१७४॥

नितम्बबिम्बविलसद्वसनादाममञ्जुलाम् ।
वलित्रयलसद्वेदिमध्यदेशसुशोभिताम् ॥१७५॥

गम्भीरावर्त्तहृन्नाभिह्लदमण्डलमण्डिताम् ।
यक्षकर्द्दमसँल्लिप्तपीनोन्नतघनस्तनीम् ॥१७६॥

कुम्भिकुम्भोद्भवप्रोद्यन्मुक्तादामविराजिताम् ।
क्षौमोत्तरासंगवतीम्पुष्पदामसुभूषिताम् ॥१७७॥

गालितस्वर्णखचितवैदूर्याढ्याङ्गदोज्ज्वलाम् ।
काञ्चनोद्यत्पद्मरागमणिसम्बद्धकङ्कणाम् ॥१७८॥

नानाविधलसद्रत्नमुद्रिकालङ्कृताङ्गुलिम् ।
कम्बुकण्ठकलारावां स्वर्णग्रैवेयराजिताम् ॥१७९॥

विचित्रनानालङ्कारालङ्कृताङ्गीं शुचिस्मिताम् ।
उद्यदर्कप्रभाभास्वद्रत्नताटङ्कशोभिताम् ॥१८०॥

कर्णपूरीकृतस्वर्णबद्धरत्नाङ्कुरां शुभाम् ।
प्रवालविलसत्कान्तिरुचिराधरपल्लवाम् ॥१८१॥

शिखरप्रोल्लसद्रम्यदशनावलिशोभिताम् ।
निर्लाञ्छनशरद्राकाताराधिपशुभाननाम् ॥१८२॥

पञ्चसायककोदण्डविलासाधिकविल्लकाम्[1] ।
विभ्राणान्नासिकाम्प्रोद्यत्तिलपुष्पोज्ज्वलोद्यताम् ।। १८३ ।।

शीतांशुशकलाकाररुचिरालिकराजिताम् ।
घनसौगन्ध्यसम्पन्नमृगनाभिविशेषकाम् ।। १८४ ।।

मनाक्कुञ्चितसुस्निग्धनीलमञ्जुलमूर्धजाम् ।
पारिजातद्रुकुसुमगन्धवाहिसुमूर्द्धजाम्[2] ।। १८५ ।।

तप्तहाटकसम्बद्धनानारत्नौघशेखराम् ।
सौन्दर्यभूमेरवधिन्तेजसो जन्मभूमिकाम् ।। १८६ ।।

विलासलक्ष्म्या भवनम्महालक्ष्मीं विचिन्तयेत् ।
वामाधः करमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

**शारदातिलके—**

श्रीबीजस्योदिते पीठे महालक्ष्मीम्प्रपूजयेत् ।
श्रीबीजेनाऽऽसनन्ध्यानम्मूर्त्तिम्मूलेन कल्पयेत् ।।१८७।।

पूजयेद्दक्षिणे पार्श्वे देव्याः शङ्करनन्दनम् ।
अन्यतः पुष्पधन्वानम्पुष्पाञ्जलिकरं यजेत् ।।१८८।।

अङ्गानि पूर्वमुक्तेषु स्थानेषु विधिवद्यजेत् ।
उमाद्याः पत्रमध्यस्थाः शक्तीरष्टौ यजेत्क्रमात् ।।१८९।।

अथोमा[3] श्रीसरस्वत्यौ दुर्गा धरणिसंज्ञिता ।
गायत्री देव्युषा चेति पद्महस्ताः सुभूषणाः ।।१९०।।

जह्नुसूर्यसुते पूज्ये पादप्रक्षालनोद्यते ।
शङ्खपद्मनिधी पूज्यौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ ।।१९१।।

धृतातपत्रं वरुणम्पूजयेत्पश्चिमे ततः ।
सम्पूज्य राशीन्परितो यजेदथ नवग्रहान् ।।१९२।।

---

1. ख० कोण्डविलासभ्रूलतायुताम् । 2. ख० सुमूर्द्धजा । 3. ख० अथोघ्ना ।

अर्चयेद्दिग्गजान्दिक्षु चतुर्दन्तविभूषितान् ।
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।।१९३।।

पुष्पदन्तः[1] सार्वभौमः सुप्रतीकश्च ते क्रमात् ।
अभ्यर्च्चयेदथेन्द्रादींस्तदस्त्राण्यपि तद्बहिः ।।१९४।।

आगमोक्तेन विधिना सुगन्धैः सुमनोहरैः ।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्देवीमन्वहमादरात् ।।१९५।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—"ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि—श्रीमहालक्ष्म्यै देवतायै नमः" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा—

"ऐँ ज्ञानाय हृदयाय नमः, ह्रीँ ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा, श्रीँ शक्तये शिखायै वषट्, क्लीँ बलाय कवचाय हुँ, ह्सौः वीर्याय नेत्राय वौषट्, जगत्प्रसूत्यै नमस्तेजसे अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषु षडङ्गेष्वपि न्यसेत् ।

ततः सकेसरमष्टदलकमलं, तद्बहिर्द्वादशदलकमलं, तद्बहिर्नवदलकमलं, तद्बहिश्चतुर्द्वारयुतं चतुरश्रत्रयमिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत्पुरतः संस्थाप्य, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकायां देव्या दक्षिणे—"ॐ गणपतये नमः, वामे—कामदेवाय०" इति सम्पूज्य, प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदले "उमायै०, श्रियै०, सरस्वत्यै०, दुर्गायै०, धरण्यै०, गायत्र्यै०, देव्यै०, उषायै०" इति स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य,

देव्या दक्षिणचरणसमीपे—गङ्गायै०, वामसमीपे—यमुनायै०, देवी-दक्षिणे-शङ्खनिधये०, वामे—पद्मनिधये०, पश्चिमे वं वरुणाय नमः" इति सम्पूज्य,

द्वादशदले—"मेषाय०, वृषाय०, मिथुनाय०, कर्कटाय०, सिंहाय०, कन्यायै०, तुलायै०, वृश्चिकाय०, धनुषे०, मकराय०, कुम्भाय०, मीनाय०"

1. ख० पुष्पदन्त ।

तद्बहिर्नवदले—"रवये०, सोमाय०, मङ्गलाय०, बुधाय०, बृहस्पतये०, शुक्राय०, शनैश्चराय०, राहवे० केतवे०,"

तद्बहिश्चतुरश्रकमलयोरन्तराले देव्यग्रादिष्वष्टसु दिक्षु—"ऐरावताय०, पुण्डरीकाय०, वामनाय०, कुमुदाय०, अञ्जनाय०, पुष्पदन्ताय०, सार्वभौमाय०, सुप्रतीकाय०", इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, प्राग्वद्वीथीद्वये दिगीशान् तत्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपदीपादि शेषम्प्राग्वत्समापयेत् । इति ।

**सारसङ्ग्रहे**—

जपेद्भास्करलक्षञ्च नियताशी जितेन्द्रियः ।
तद्दशांशम्प्रजुहुयाद्घृतैस्त्रिस्वादुसंयुतैः ।।१९६।।

पद्मै रमाद्रुमफलैः प्रत्येकमयुतं हुनेत् ।
वासितैः शुचिभिस्तोयैस्तर्प्पयेदयुतद्वयम् ।।१९७।।

अत्र घृतैर्द्दशांशहोमं विधाय, तद्दशांशं तर्प्पणादि निर्वर्त्त्य, पश्चादयुतद्वयं होममयुतद्वयं तर्प्पणञ्च विदध्यादित्यन्यमन्त्रेभ्यो विशेषतः[1] । तथा—

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री गुरुभक्तो दृढव्रतः ।
कुर्यात्काम्यानि कर्माणि स्वाभीष्टानि च मन्त्रवित् ।।१९८।।

**शारदातिलके**—

दूर्वाभिराज्यसिक्ताभिर्जुहुयादायुषे नरः ।
दशरात्रं समिद्धेऽग्नावष्टोत्तरसहस्रकम् ।।१९९।।

गुडूचीराज्यसंसिक्ता जुहुयात्सप्तवासरम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं यः स जीवेच्छरदां[2] शतम् ।।२००।।

हुत्वा तिलान् घृताभ्यक्तान् दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
आरभ्यार्क्कदिनम्मन्त्री दशरात्रन्दिने दिने ।।२०१।।

आज्याक्तार्कसमिद्धोमादारोग्यँल्लभते ध्रुवम् ।
कण्ठमात्रोदके स्थित्वा ध्यात्वा देवीं दिवाकरे ।।२०२।।

---

1. ख. विशेषः । 2. ख. शरदः ।

ऊर्द्ध्वबाहुर्द्दशशतमष्टोत्तरमिमञ्जपेत् ।
आरोग्यं लभते सद्यो वाञ्छितान्यपि मन्त्रवित् ॥२०३॥

शालिभिर्जुह्वतो नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अचिरादेव महती लक्ष्मीः सञ्जायते ध्रुवम् ॥२०४॥

प्रसूनैर्जुहुयान्मन्त्री लक्ष्मीवल्लिसमुद्भवैः ।
नन्द्यावर्त्तसमुत्थैर्वा सिद्धार्थैश्च घृतप्लुतैः ॥२०५॥

महतीं श्रियमाप्नोति मान्यते सर्वजन्तुभिः ।
मरीचजीरकोन्मिश्रैर्नारिकेलरजोयुतैः ॥२०६॥

सगुडैराज्यसम्पक्वैरपूपैराज्यलोलितैः ।
जुहुयात्पायसाहारो मंत्रविद्विजितेन्द्रियः ॥२०७॥

अष्टोत्तरशतन्नित्यम्मण्डलाद्धनवान् भवेत् ।
हविषा गुडमिश्रेण जुहुयादन्नवान् भवेत् ॥२०८॥
जपापुष्पाणि जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ।
गृहीत्वा प्रजपेद्भस्म नागवल्लीरसान्वितम् ॥२०९॥

तिलकन्तनुपातेन सर्ववश्यकरम्भवेत् ।
ब्रह्मवृक्षसमित्पुष्पैर्ब्राह्मणान् वशयेद्वशी ॥२१०॥

जातीपुष्पैश्च राजानं वैश्यान्रक्तोत्पलैः सुधीः ।
शूद्रान्नीलोत्पलैर्हुत्वा वशयेन्मन्त्रवित्तमः ॥२११॥

[1]पुष्पैर्मधूकजैर्हुत्वा वशमानयति स्त्रियः ।
कृत्वा नवपदात्मानम्मण्डलं यन्त्रभूषितम् ॥२१२॥

अभिषेकम्प्रकुर्वीत विधिना सर्वसिद्धये ।
कलशान्स्थापयेत्तेषु पदेषु शुभलक्षणान् ॥२१३॥

चन्दनालिप्तसर्वाङ्गान् दूर्वाक्षतसमन्वितान्[2] ।
दुकूलवेष्टितानेतान्पूरयेत्तीर्थवारिभिः ॥२१४॥

1. ख. पुष्पैर्मधुकजै । 2. ख. समन्विन् ।

नवरत्नसमाबद्धं कर्षकाञ्चनकल्पितम् ।
मध्यकुम्भे क्षिपेत्पद्मं यन्त्राढचन्देशिकोत्तमः ।।२१५।।

चन्दनोशीरकर्पूरजातीकक्कोलकुङ्कुमम् ।
कुष्ठागुरुतमालैलायुतं सम्पिष्य भागतः ।।२१६।।

विलोडच सर्वकुम्भेषु रत्नान्यपि विनिक्षिपेत् ।
लक्ष्मी दूर्वा सदाभद्रा सहदेवी मधुव्रता ।।२१७।।

मुसली शक्रवल्ली च क्रान्ताऽपामार्गपत्रकम् ।
प्रियङ्गुमुद्गगोधूमव्रीहींश्च सतिलान् यवान् ।।२१८।।

शालितण्डुलमाषांश्च प्रक्षाल्यैतेषु निक्षिपेत् ।
धात्रीलकुचविल्वानाङ्कदलीनालिकेरयोः ।।२१९।।

फलान्यपि विनिक्षिप्य पुष्पाण्येतानि विन्यसेत् ।
पद्मं सौगन्धिकं जातिं[1] मल्लिकां वकुलन्तथा ।।२२०।।

चम्पकाशोकपुन्नागतुलशीकेतकोद्भवम् ।
पल्लवानि वटाश्वत्थप्लक्षोदुम्बरशाखिनाम् ।।२२१।।

ब्रह्मकूर्चं विनिक्षिप्य चषकैः सफलाक्षतैः ।
पिधाय कुम्भवक्त्राणि क्षौमैराच्छादयेत्ततः ।।२२२।।

आवाह्य मध्यकलशे महालक्ष्मीम्प्रपूजयेत् ।
यजेदुमाद्याः शिष्टेषु कलशेष्वष्टसु क्रमात् ।।२२३।।

गन्धैर्मनोहरैः पुष्पैर्धूपदीपसमन्वितैः ।
निवेद्य भक्ष्यभोज्यानि तान्स्पृष्ट्वा प्रजपेन्मनुम् ।।२२४।।

त्रिसहस्रजपस्याऽन्ते साध्यमानीय संयतम्[2] ।
संस्थाप्य स्थण्डिले पीठं तस्मिंस्तं विनिवेशयेत् ।।२२५।।

रम्यैराभरणैर्वस्त्रैरलङ्कृत्य तमादरात् ।
सुमङ्गलाभिर्नारीभिः क्षिप्तपुष्पाक्षतार्चितम् ।।२२६।।

1. ख० जाति । 2. क. संयुतम् ।

अर्चितानान्द्विजातीनामाशीर्वादपुरःसरम् ।
नदत्सु पञ्चवाद्येषु मुहूर्त्ते शोभने सुधीः ॥२२७॥

मध्यस्थङ्कुम्भ[1 मुद्धृत्य महालक्ष्मीमनुं स्मरन् ।
अभिषिञ्चेत्क्रमादन्यैः कलशैरपि देशिकः ॥२२८॥

करेणाऽस्यं शिरः स्पृष्ट्वा प्रयुञ्जीताऽऽशिषङ्गुरुः ।
भद्रमस्तु शिवं चास्तु]1 महालक्ष्मीः प्रसीदतु ॥२२९॥

रक्षन्तु त्वां सदा देवाः सम्पदः सन्तु सर्वदा ।
अथोत्थायाऽभिषिक्तः स वाससी परिधाय च ॥२३०॥

यथाविधि समाचम्य प्रणमेद्दण्डवद्गुरुम् ।
वस्त्रैराभरणैर्द्धान्यैर्धनैर्गोमहिषादिभिः ॥२३१॥

दासीदासैश्च विधिवत्तोषयेद्देवताधिया ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्दीनान्धकृपणैः सह ॥२३२॥

महान्तमुत्सवङ्कुर्याद्भुवने बन्धुभिः सह ।
तदा कृतार्थमात्मानम्मन्ये तु मनुजोत्तमः ॥२३३॥

अभिषिक्तो नरपतिः परान् विजयतेऽचरात् ।
पट्टे च्छ...ः पट्टमाप्नोति राजपुत्रो न संशयः ॥२३४॥

अभिषिक्ता सती वन्ध्या सूते पुत्रं महामतिम् ।
महारोगेषु जातेषु कृत्याद्रोहेषु देशिकः ॥२३५॥

भूतेषु दुर्निमित्तादौ विदध्यादभिषेचनम् ।
सर्वसम्पत्करम्पुंसां सर्वसौभाग्यसिद्धिदम् ॥२३६॥

सर्वरोगप्रशमनं सर्वापद्विनिवारणम् ।
गर्भरक्षाकरं स्त्रीणां दीर्घायुर्जननं परम् ॥२३७॥

प्रसूतानामपि स्त्रीणां सूतिकागाररक्षणम् ।
प्रणष्टपुष्पगर्भाणां पुष्पगर्भाभिरक्षणम् ॥२३८॥

---

1. [—] कोष्ठगोऽयमंशो नाऽवलोक्यते ख. पुस्तके ।

आसन्नशत्रुभीतानां नाशनञ्च महीभृताम् ।
अभिषेकमिदम्प्राहुरागमार्थविशारदाः ॥२३९॥

सारसङ्ग्रहे—

[1]श्रीमायाकामयुक्तप्रणवगतमथो साध्यमालिख्य मध्ये,
किञ्जल्केषूक्तबीजत्रितयमपि लिखेद्युग्मशश्चाऽर्कपत्रे ।
मन्त्रार्णान् षोडशारं स्वरलसितदलं कादियुक्पत्रमूलं,
हक्षोद्यत्कोणभूमीगृहयुगलवषट्प्रान्ततूर्णावृतं[2] स्यात् ॥२४०॥

यन्त्रमेतन्महालक्ष्म्याः प्रोक्तं सम्पत्करम्परम् ।
सर्वसौभाग्यदञ्चापि सर्वदुःखविमोचनम् ॥२४१॥

आपन्निवारणम्प्रोक्तङ्किम्बहूक्तेन सर्वदम् ।

**अस्यार्थः**—द्वादशदलपद्मं विरच्य, कर्णिकायां प्रणवं विलिख्य, तस्योदरे श्रीमायाकामबीजानि साध्यनाम च विलिख्य, तत्केसरेषु प्रोक्तश्रीमायाकामबीजानि प्रतिकेसरमेकैकमिति बीजत्रयस्याऽष्टावृत्त्या चतुर्विंशतिकेसरेष्वपि विलिख्य, द्वादशपत्रेषु मूलमन्त्रस्य वर्णान् एकैकशो विलिख्य, तद्बहिः षोडशदलपद्मं कृत्वा, तत्केसरेषु ककारादिसकारान्तान् वर्णान् द्वात्रिंशत् द्वंद्वशो विलिख्य, तद्दलेषु षोडशस्वरानालिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रद्वयेनाऽष्टकोणं कृत्वा, सत्कोणेषु प्रतिकोणं 'हक्षौं' विलिख्य, वषडन्तया[3] त्वरिताविद्यया वेष्टयेत् । अत्र त्वरिताविद्यावेष्टने तु अष्टकोणाद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, तयोरन्तरालवीथ्यां यथोक्तया त्वरिताविद्यया वेष्टयेदिति **सम्प्रदायः** । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् । त्वरिताविद्या तु—"ॐ ह्रीँ हुँ खे च छे दः[4] स्त्री हुँ क्षे ह्रीँ फट्" । तथा—

प्रणवं शुद्धवासान्ते सेहृदन्ते महापदम् ॥२४२॥
ङेऽन्ता श्रीर्हृन्मनुः प्रोक्तश्चतुर्दशभिरक्षरैः ।

शुद्धवास-स्वरूपम्, से स्वरूपं, हृन्नमः, महा स्वरूपम्, ङेऽन्ता श्रीः श्रियै, हृन्नमः ।

1. ख. श्रीमाथा० । 2. क. युगलषट्प्रात० । 3. ख. षडन्तया । 4. ख. क्षः ।

मनोः पदैश्च पञ्चाङ्गम्पूर्ववद्ध्यानपूजनम् ।।२४३।।

पूर्ववन्महालक्ष्मीवत् तेन ऋष्यादिकमपि तत्रोक्तमेव ज्ञेयम् ।

जपस्त्रिलक्षमेतस्य पद्मैर्होमो दशांशतः ।

एष जपः कलियुगपरः । तथा—

पद्मप्रभे पदं पद्मसुन्दरीति पदं वदेत् ।।२४४।।
पद्मर्षेऽग्निवधूर्मन्त्रश्चतुर्दशभिरक्षरैः ।

मन्त्रोद्धारः सुबोधः ।

पदैश्चतुर्भिः सर्वेण पञ्चाङ्गङ्गदितम्मनोः ।।२४५।।
जपपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ।

पूर्ववदेकाक्षरोक्तवत् । एतेन पुरश्चरणमपि तत्रोक्तमेव । तथा—

हृदयं ब्रह्मतनया सम्बुद्ध्यन्ता रमामनुः ।।२४६।।
सप्तार्णो गदितश्चाऽस्य षडङ्गान्यमुनैव हि ।

"नमः हृत्, ब्रह्मतनये शिरः, नमः शिखा, ब्रह्मतनये कवचम्, नमो नेत्रम्, ब्रह्मतनये अस्त्रम् ।"

ध्यानपूजाहुतार्चादि पूर्ववच्चाऽस्य कीर्त्तितम् ।।२४७।।

पूर्ववदेकाक्षरोक्तवत् । तथा—

पौतौमौतभये प्रोक्त्वा श्रिये श्रीर्नम इत्यथ ।

पौतौंमौतभये स्वरूपं, श्रिये श्रीर्नमः इत्यपि स्वरूपम् ।

एकादशार्णो मन्त्रोऽयं जामदग्निर्मुनिर्मतः[1] ।।२४८।।

त्रिष्टुपछन्दो रमादेवी देवता परिकीर्त्तिता ।
आद्यषण्मन्त्रवर्णैश्च हृदन्तैर्द्विठान्तकैः ।।२४९।।

शिरः शिखा वषट् भूयो हुँ प्रान्तैः कवचम्मतम् ।
श्रिये नेत्रं श्रीर्नमोऽस्त्रं विदध्याद्ध्यानमुक्तवत् ।।२५०।।

ध्यानमुपलक्षण[2]म्पूजादिकमपि तथा ज्ञेयम् ।

1. ख. यमदग्नि० । 2. ख. ध्यानमित्युपलक्षणम् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि-यमदग्नये ऋषये नमः, मुखे-त्रृष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये—श्रीमहालक्ष्म्यै देवतायै नमः" इति विनियोगमुक्त्वा—

पौंतौमौतभये नमः हृदयाय नमः, पौंतौमौतभये स्वाहा शिरसे स्वाहा, पौंतौमौतभये वषट् शिखायै वषट्, पौंतौमौतभये हुं कवचाय हुँ, श्रिये नेत्राय वौषट्, श्रीर्नमः अस्त्राय[1] फट्" इति षडङ्गमन्त्रान् प्राग्वत्करयोर्हृदयादिषु च विन्यस्य, शेषं महालक्ष्मीवत्सर्वङ्कुर्यात्[2] ! तथा—

नित्यन्द्वादशसाहस्रं सप्तरात्रम्मनुञ्जपेत् ।
तेन सिद्धो भवेन्मन्त्रः साधकस्य न संशयः ॥२५१॥

अत्र होमो नोक्तस्तथाऽपि पूर्वोक्तमन्त्रहोमद्रव्यैर्जपदशांशतो होमः कार्य इति **साम्प्रदायिकाः**[3] । तथा—

लक्ष्मीं सुवर्णाक्षकरां[4] ध्यात्वा मन्त्रमिमञ्जपेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रञ्च स लभेद्वाञ्छितां श्रियम् ॥२५२॥

जपन्नष्टशतं विश्वन्तिलकाद्वशयेद्ध्रुवम् ।
मासत्रयन्तथा जप्त्वा ग्रामम्मन्त्री समाप्नुयात् ॥२५३॥

तथा—रमामन्त्रेषु[5] यो भक्तः श्रीसूक्तं स जपेद्बुधः ।
विधानं वक्ष्यते सम्यगृक्पञ्चदशकस्य हि ॥२५४॥

हिरण्यवर्णा इत्यस्या ऋषिर्लक्ष्मीर्मुनिर्मतः ।
छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातमन्यासाम्मुनयः क्रमात् ॥२५५॥

आनन्दकर्दमचिक्लीतश्रीपुत्रा[6] अमी मताः ।
ताम्म आवह जाताश्च पूर्वामित्यनयोर्मतम् ॥२५६॥

छन्दोऽनुष्टुप् च कांसोस्मितामस्या बृहती मतम् ।
चन्द्राम्प्रभादित्यवर्णे अनयोस्त्रिष्टुबीरितम् ॥२५७॥

1. ख. अश्राय । 2. ख. सर्वंकु । 3. क. साम्प्रदायकाः । 4. क. सुवर्णाक्षकारां ।
5. क. राममन्त्रेषु । 6. क. आनन्दः कर्दमः श्चिक्लीत० । ख. आनन्दकर्दमःशिचक्लीत० ।

उपैतु मां क्षुत्पिपासा गन्धद्वारां दुरेति च ।
मनसः कर्दमेनापः सृजन्त्यार्द्रां च सप्तमी ।।२५८।।

आर्द्राम्पुष्करिणीमासामष्टर्चां च प्रकीर्त्तितम् ।
छन्दोऽनुष्टुप् तथा ताम्म आवहाऽस्याः प्रकीर्त्तितम् ।।२५९।।

प्रस्तारपङ्क्तिः सर्वासां देवता श्रीविभावसू ।
मूर्द्धादिकर्णनासास्यगलदोर्हृत्सनाभिषु ।।२६०।।

गुह्यपायूरुयुग्जानुजङ्घापत्सु न्यसेद्दचः[1] ।
हिरण्मयी च चन्द्रा च तृतीया रजतस्रजाः ।।२६१।।

हिरण्याद्या स्रजा त्वन्या हिरण्या च तथाऽपरा ।
हिरण्यवर्णा चैताभिः कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ।।२६२।।

एताभिश्चतुर्थीनमोऽन्ताभिः ।

एताभिर्ङेनमोन्ताभिरङ्गकल्पनमीरितमिति । **मन्त्रतन्त्रप्रकाशवचनात्** ।

संरक्तोद्यत्सरसिजरजःपुञ्जवर्णा कराब्जै—
रिष्टाभीती कमलयुगलन्धारयन्ती मनोज्ञा ।।
सम्यक्शोणप्रवरनलिने संस्थिता चारुभूषा ।
भूयाद्भूत्यै भुवनजननी श्रीरियं रत्नमौलिः ।।२६३।।

एकाक्षरोक्तवदायुधध्यानम् ।

यजेद्देवीम्पुरा प्रोक्ते पीठे आवाह्य मन्त्रवित् ।
यजेदङ्गानि पद्माद्या लोकपालाः सहेतयः ।।२६४।।

आवाहनञ्चासनं स्यादर्घ्यपाद्याचमानि च ।
मधुपर्काभिषेकौ च वस्त्रालङ्कारचन्दनम् ।।२६५।।

पुष्पन्धूपन्दीपभोज्ये प्रोद्वासनमथाऽपि च ।
एतानि मन्त्रवित्कुर्यादृक्पञ्चदशकेन हि ।।२६६।।

पद्माद्या पद्मवर्णाऽन्या पद्मस्थाऽऽर्द्रा तुरीयका ।
तर्पयन्ती सतृप्ताऽन्या ज्वलन्ती सप्तमी मता ।।२६७।।

स्वर्णप्राकारसंज्ञेयमष्टमी समुदाहृता ।

1. ख. न्यसेद्दचः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते प्रणवेन श्रीबीजेन वा प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—"श्रीआनन्दकर्द्दमचिक्लीतश्रीपुत्रेभ्य ऋषिभ्यो नमः, मुखे—अनुष्टुप्-वृहतीत्रिष्टुप्प्रस्तारपङ्क्तिभ्य[1]: छन्दोभ्यो नमः, हृदये—श्रीविभावसुभ्यां देवताभ्यान्नमः" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा—

"हिरण्मय्यै नमो हृदयाय नमः, चन्द्रायै नमः शिरसे, स्वाहा, रजतस्रजायै नमः शिखायै वषट्, [हिरण्यस्रजायै नमः कवचाय हुँ, हिरण्यायै नमो नेत्राय वौषट्, हिरण्यवर्णायै नमः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदादिष्वपि विन्यस्य,

शिरसि][2]—"हिरण्यवर्णामित्यादि नमः, नेत्रयोः—ताम्म आवह इति, कर्णयोः—अश्वपूर्वामिति, नासायां—कांसोस्मितामिति, मुखे—चन्द्रामिति, गले—आदित्यवर्ण इति, बाह्वोः— उपैतु मामिति, हृदि—क्षुत्पिपासेति, नाभौ—गन्धद्वारामिति, गुह्ये—मनस इति, गुदे—कर्द्दमेनेति, ऊर्वोः—आप इति, जान्वोः—आर्द्रामिति, जङ्घयोः—आर्द्रामिति, पादयोः—ताम्म इत्यादि" एवमेता ऋचः प्रणवादिनमोन्ता विन्यस्य, ध्यानमानसपूजान्ते चतुर्द्वारयुतचतुरश्रत्रयावृतमष्टदलकमलम्पूजाचक्रं निर्माय प्राग्वत्पुरतो निधायाऽर्घस्थापनादि-पीठार्चनान्ते—

"हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्राँ हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मम आवह" ॥१॥

इत्यृचा प्राग्वदावाहनमुद्रयाऽऽवाह्य, परमीकरणान्तन्तत्तन्मुद्रया विधाय,

"ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।"

श्रीरेतत्ते आसनं नमः ।

"ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी[2] जुषताम्" ।
श्रीरेष तेऽर्घः स्वाहा ॥३॥

---

1. ख. प्रस्तारशक्तिभ्यः । 2. [–] कोष्ठान्तर्गतांशस्याभावः क. पुस्तके ।

"कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्" ॥

श्रीरेतत्ते पाद्यं नमः ।

"ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मनेमिं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि" ॥

श्रीरेतत्ते आचमनीयं सुधा ।

"ॐ आदित्यवर्णे तपसोधिजातो[1] वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ विल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु माया अन्तरायाश्च बाह्या[2] अलक्ष्मीः" ॥

श्रीरेष ते मधुपर्कः सुधा । ततः पूर्ववदाचमनीयम् ।

"ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्त्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेस्मिन्कीर्त्तिं वृद्धिं ददातु मे" ॥

श्रीरेतत्ते स्नानं नमः । ततः पूर्ववदाचमनीयम् ।

"ॐ क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा अलक्ष्मीर्नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वं निर्णुदमे गृहात्" ॥

श्रीरेतत्ते वाससी नमः । ततः पूर्ववदाचमनीयम् ।

"गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्" ॥

श्रीरेतत्ते भूषणानि नमः ।

"ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः" ॥

श्री रेष ते गन्धो नमः ।

"ॐ कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे गृहे मातरं पद्ममालिनीम्" ।

श्रीरेतत्ते पुष्पं वौषट् ।

1. क. ०धिजातौ । 2. ख. वाह्य ।

इति पुष्पान्तानुपचारानुपचर्य्य, पूर्ववदङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदले स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन—"ॐ पद्मासनायै नमः, ॐ पद्मवर्णायै०, पद्मस्थायै०, आर्द्रायै०, तर्प्पयन्त्यै०, तृप्तायै०, ज्वलन्त्यै०, स्वर्णप्राकारायै०" इति सम्पूज्य, प्राग्वत् लोकपालांस्तदायुधानि च सम्पूज्य,

"ॐ आपः सृजन्ति स्निग्धानि चिक्लीड वस मे गृहे ।
तानि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले" ।।

श्रीरेष ते धूपो नमः ।

"ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मम आवह" ।

श्रीरेतत्ते नैवेद्यं नमः । ततः पुनराचमनादिकं दत्वा, ताम्बूलादि सर्वं प्राक्पूजाप्रकरणोक्तप्रकारेण कृत्वा,

"ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ।"

श्रीः क्षमस्वेति विसृज्य, शेषं प्राग्वत्कृत्वा समापयेदिति । तथा—

आरभ्याद्याम्प्रतिपदं यावदेकादशी भवेत् ।
तावद्द्वादशसाहस्रञ्जपेन्निश्चलमानसः ।।२६८।।

ब्रह्मचर्यरतः शुद्धवस्त्रदन्तादिकः सुधीः।
पद्मैस्त्रिमधुरोपेतैर्घृताक्तेन पयोन्धसा ।।२६९।।

श्रीसमिद्भिः सर्पिषा च प्रत्येकं त्रिशतं हुनेत् ।
द्वादश्यां द्वादशैवाऽथ विप्रांश्चैव तु भोजयेत् ।।२७०।।

तेन सिद्धो भवेन्मन्त्रो नाऽत्र कार्या विचारणा ।

अत्र द्वादशसहस्रं ऋचान्न तु सूक्तस्येति साम्प्रदायिकाः । एकादशभिर्दिनैः सूक्तस्य द्वादशसहस्रावृत्तेरसम्भवादशक्यत्वाच्च । तदा त्वेकादशभिर्दिनैरष्टशतावृत्तिः सूक्तस्य कार्या । अनन्तरदिनत्रये द्वासप्तत्यावृत्तिः प्रत्यहं कार्या । तेन द्वादशसहस्रं ऋचामावृत्तिर्भवतीति । श्रीसमिद्भिर्विल्वसमिद्भिः । तथा—

कुन्दमन्दारकुमुदमालतीपद्मकेतकैः ।
नन्द्यावर्त्ताह्वयं जातिः कह्लारञ्चम्पकन्तथा ।।२७१।।

रक्तोत्पलादिपुष्पाणि लक्ष्म्याश्चाऽतिप्रियाणि हि ।
स्नानकाले च तैः सूक्तैरभिषिञ्चेत्त्रिशः सुधीः ॥२७२॥

यावज्जपेद्रविमुखस्तर्प्पयेत्तावदेव हि ।
पूर्वोक्तविधिना सम्यक् पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥२७३॥

त्रिवारमन्वहम्मन्त्री जुहुयाच्च यथाविधि ।
षण्मासं यः करोत्येवं स स्याल्लक्ष्मीपतिः स्वयम् ॥२७४॥

विकचन्मात्र एवाऽब्जे नवनीतम्प्रविन्यसेत् ।
मध्ये सकेसरे पत्रे सम्यक् पत्रान्तरालके ॥२७५॥

सुसमिद्धेऽनले तच्च समुद्धृत्य हुनेत्सुधीः ।
अभ्यर्च्याऽष्टोत्तरशतञ्जपश्च भृगुवासरे ॥२७६॥

चत्वारिंशद्भिरस्य स्यान्महालक्ष्मीरचञ्चला ।
तुरीयचर्चा च जुहुयाद्घृतेनैकादशाहुतीः ॥२७७॥

एवं कुर्वत एवाऽस्य षण्मासात्स्यान्महेन्दिरा[1] ।
प्रधानतर्प्पणान्ते च सन्तर्प्याः शक्तयस्त्विमाः ॥२७८॥

प्रणवाद्या हृदन्ताश्च श्रीर्लक्ष्मीर्वरदाऽपरा ।
विष्णुपत्नी च वसुदारूपा स्याच्च हिरण्यतः ॥२७९॥

स्वर्णमालिन्यपि परा चेतना रजतस्रजा ।
सुवर्णाद्यगृहा स्वर्णप्राकारा पद्मवासिनी ॥२८०॥

पद्महस्तप्रिये मुक्तालङ्कारा सूर्यकाऽपरा ।
चन्द्रा विश्वप्रियेश्वर्य्यौ मुक्तिश्चापि प्रभुक्तियुक् ॥२८१॥

विभुवृद्धी समृद्धिश्च तुष्टिः पुष्टिर्द्ध नौघदा ।
भुवनेशी सशुद्धास्या योगिनी भोगदा मता ॥२८२॥

धात्री विधात्री द्वात्रिंशच्छक्तयः समुदीरिताः ।
द्वात्रिंशद्भिश्च पूजान्ते मन्त्री मन्त्रैर्बलिं हरेत् ॥२८३॥

---

1. ख. महेंद्दिरा ।

मन्त्रैर्नाममन्त्रैः, 'श्रीरेष ते बलिर्नमः' इत्यादिभिः ।

श्रीयन्त्रसारे—

श्रीबीजं साध्यसंयुक्तङ् कर्णिकायां विलिख्य च ।
वस्वादित्यद्वयष्टसंख्यपत्रेष्वपि यथाक्रमम् ।।२८४।।

श्रीसूक्तस्याऽप्यर्द्धमर्द्धमृचामालिख्य, तद्बहिः—

यः शुचिः प्रयतो भूत्वे' त्यृचा मातृकयाऽपि च ।
संवेष्टय च धराबिम्बकोणेषु श्रियमालिखेत् ।।२८५।।

श्रीसूक्तयन्त्रमेतत्तु धारयेद्यो यथाविधि ।
पुत्रारोग्यधराधान्यधनगोसस्यशालिनीम् ।।२८६।।

लब्ध्वाऽतिबहुलां[1] लक्ष्मीं जीवेच्च शरदां शतम् ।

इदमेव ताम्रपट्टे विलिख्य जप्त्वा च सिक्तसम्पातम् ।
संस्थाप्याऽङ्गणभूमौ लक्ष्मीमावाह्य साधु सम्पूज्य ।।२८७।।

भूयः परिवारयुताम्बलिं हरेद्भूतलं समीकृत्य ।
यस्मिन्नेवङ्क्रियते वर्द्धन्ते तत्र सम्पदो नित्यम् ।।२८८।।

पुत्रैर्दारैरिष्टैर्विभवैर्भृत्यैश्च धान्यैश्च ।
नागै रथैस्तुरङ्गैर्वृषभैर्गोभिश्च संख्यया हीनैः ।।२८९।।
रमयन्ती गेहेऽस्मिन्विहरत्याभूतसम्प्लवँल्लक्ष्मीः ।।

**अस्यार्थः**— अष्टदलकमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां श्रीबीजं साध्यसहितं विलिख्याऽष्टदलेषु "हिरण्यवर्णामित्यारभ्य तामिहोपह्वये श्रियमित्यन्तमृचा" मर्द्धमर्द्धमालिख्य, तद्बहिर्द्वादशदलकमलं कृत्वा, तद्दलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "चन्द्रां प्रभासा "मित्यारभ्य "मयि श्रीः श्रयतां यश" इत्यन्तमृचामर्द्धमर्द्धमालिख्य, तद्बहिः षोडशदलकमलं कृत्वा, तद्दलेषु "कर्दमेने" त्यारभ्य "दिवि देवि मनीषिणा' मित्यन्तमर्द्धमर्द्धमालिख्य तद्बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वाऽभ्यन्तरवीथ्यां— "यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् । श्रियः पञ्चदशर्चञ्च श्रीकामः

1. क. बहलां ।

सततं जपेत्"। इत्यृचा संवेष्टच, बहिर्वीथ्यां मातृकया संवेष्ट्य, तद्बहिश्चतुरश्रं विलिख्य, तत्कोणेषु श्रीबीजमालिखेत् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवति ।

॥ अथ लक्ष्म्याः स्तोत्रम् ॥

**इन्द्र उवाच—**

नमस्ये सर्वलोकानाञ्जननीमब्जसम्भवाम् ।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णो[1]र्वक्षस्थलस्थिताम् ॥२६०॥

त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनि ।
संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ॥२६१॥

यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने ।
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तफलदायिनी ॥२६२॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च ।
सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम् ॥२६३॥[2]

का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वं यज्ञमयं वपुः ।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यङ्गदाभृतः ॥२६४॥

त्वया देवि परित्यक्तं सकलम्भुवनत्रयम् ।
विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम् ॥२६५॥

दाराः पुत्रास्तथाऽऽगारं सुहृद्धान्यधनादिकम् ।
भवत्वेतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ॥२६६॥

शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम् ।
देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानाम्पुरुषाणान्न दुर्लभम् ॥२६७॥

त्वं माता सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता ।
त्वयैतद्विष्णुना चाऽम्ब जगद्व्याप्तञ्चराचरम् ॥२६८॥

मा नः कोषं[3] तथा कोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् ।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ॥२६९॥

---

1. ख. विष्णो० । 2. पद्यमेतन्नाऽस्ति ख. पुस्तके । 3. क. केशं ।

मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गान्मा पशून्मा विभूषणम् ।
त्यजेथा देवदेवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलाश्रये ।। ३०० ।।

सत्येन शौचसत्वाभ्यान्तथा शीलादिभिर्गुणैः ।
त्यज्यन्ते[1] ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता[2] ये त्वयाऽमले ।। ६०१ ।।

त्वयाऽवलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः ।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ।। ३०२ ।।

स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् ।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ।। ३०३ ।।

सर्वे वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ।। ३०४ ।।

न ते वर्णयितुं शक्ता गुणान् जिह्वाऽपि वेधसः ।
प्रसीद देवि पद्माक्षि माऽस्मांस्त्याक्षीः कदाचन ।। ३०५ ।।

**पराशर उवाच—**

एवं श्रीः संस्तुता सम्यक् प्राह हृष्ट्वा शतक्रतुम् ।
शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतस्थिता द्विज ।। ३०६ ।।

**श्रीरुवाच—**

परितुष्टाऽस्मि देवेश स्तोत्रेणाऽनेन ते हरे ।
वरं वृणीष्व यस्त्विष्टो वरदाऽहन्तवागता ।। ३०७ ।।

**इन्द्र उवाच—**

वरदा यदि मे देवि वरार्हो यदि वाऽप्यहम् ।
त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष मेऽस्तु वरः परः ।। ३०८ ।।
स्तोत्रेण यस्त्वथैतेन त्वां स्तोष्यत्यब्धिसम्भवे ।
स त्वया न परित्याज्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम ।। ३०९ ।।

**श्रीरुवाच—**

त्रैलोक्यं त्रिदशश्रेष्ठ न सन्त्यक्ष्यामि वासव ।
दत्तो वरो मया यत्ते स्तोत्राराधनतुष्टया ।। ३१० ।।

---

१. क. त्यजन्ते । २. क. सन्त्यक्त्वा ।

यश्च सायन्ततः प्रातः स्तोत्रेणाऽनेन मानव ।
मां स्तोष्यति न तस्याऽहं भविष्यामि पराङ्मुखी ।। ३११ ।।

पराशर उवाच—

एवं वरं ददौ देवी देवराजाय वै पुरा ।
मैत्रेय श्रीमहाभाग[1] स्तोत्राराधनतोषिता ।। ३१२ ।।

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना श्रीः पूर्वमुदधेः पुनः ।
देवदानवयत्नेन प्रसूताऽमृतमन्थने ।। ३१३ ।।

एवं यथा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्द्दनः ।
अवतारङ्करोत्येषा तथा श्रीस्तत्सहायिनी ।। ३१४ ।।

पुनश्च देवादुद्भूता यदाऽऽदित्यो भवेद्धरिः ।
यदा तु भार्गवो रामस्तदाऽभूद्धरणी त्वियम् ।। ३१५ ।।

राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषा सहायिनी ।। ३१६ ।।

देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी ।
विष्णोर्देहानुरूपा वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम् ।। ३१७ ।।

यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म लक्ष्म्या यश्च पठेन्नरः ।
श्रियो न विच्युतिस्तस्य गृहे यावत्कुलत्रयम् ।। ३१८ ।।

पठ्यते येषु चैवैष गृहेषु श्रीस्तवो मुने ।
अलक्ष्मीः कलहाधारा न तेष्वस्ति कदाचन ।। ३१९ ।।

एतत्ते कथितं ब्रह्मन् यन्मान्त्वम्परिपृच्छसि ।
क्षीराब्धौ श्रीर्यथा जाता पूर्वं भृगुसुता सती ।। ३२० ।।

इति सकलविभूत्यवाप्तिहेतुः,
स्तुतिरियमिन्द्रमुखोद्गता हि लक्ष्म्याः ।

---

१. ख. श्रीर्महाभाग ।

अनुदिनमनुकीर्त्यते नृभिर्यै-
वसति न तेषु कदाचिदप्यलक्ष्मीः ॥ ३२१ ॥

॥ इति श्रीविष्णुपुराणे लक्ष्मीस्तोत्रम् ॥

स्कन्दपुराणे—

सम्प्राप्याऽथ महालक्ष्मीं मुनिवर्यः प्रणम्य च ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरिष्टदां हृष्टमानसः ॥ ३२२ ॥

अगस्त्य उवाच—

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि,
श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः ।
क्षीरोदजे कमलकोमलगर्भगौरि,
लक्ष्मि प्रसीद सततन्नमतां शरण्ये ॥ ३२३ ॥

त्वं श्रीरुपेन्द्रसदने मदनैकमात—
ज्योत्स्नाऽसि चन्द्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये ।
सूर्ये प्रभाऽसि च जगत्त्रितये प्रभासि,
लक्ष्मि प्रसीद सततन्नमतां शरण्ये ॥ ३२४ ॥

त्वञ्जातवेदसि सदा दहनात्मशक्ति—
र्वेधास्त्वया जगदिदं सकलं विदध्यात् ।
विश्वम्भरोऽपि बिभृयादखिलम्भवत्या
लक्ष्मि प्रसीद सततन्नमतां शरण्ये ॥ ३२५ ॥

त्वत्त्यक्तमेतदखिलं हरते हरोऽपि,
त्वम्पासि हंसि विदधासि परात्पराऽसि ।
ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या
लक्ष्मि प्रसीद सततन्नमतां शरण्ये ॥ ३२६ ॥

शूरः स एव स बुधः स गुणी स धन्यो[1]
मान्यः स एव कुलरूपकलाकलापैः ।

---

१. ख. धन्वो

एकः शुचिः स हि पुमान्सकलेऽपि लोके,
यत्राऽऽपतेत्तव शुभे करुणाकटाक्षः ॥ ३२७ ॥

यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे,
स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽब्जे[1] ।
रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरण्याम्,
सश्रीकमेव कमले तदिहाऽस्ति नाऽन्यत् ॥ ३२८ ॥

त्वत्स्पृष्टमेव[2] सकलं शुचितां लभेत,
त्वत्त्यक्तमेव सकलन्त्वशुचीह लक्ष्मि ।
त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र,
श्रीविष्णुपत्नि कमले कमलालयेति (लायताक्षि) ॥६२९॥

लक्ष्मीं श्रियं च कमलां कमलालयाञ्च,
पद्मां रमां नलिनयुग्मकराञ्च माञ्च ।
क्षीरोदजाममृतकुम्भकरेन्दिराश्च,
विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम् ॥ ३३० ॥

इति स्तुत्वा भगवतीं महालक्ष्मीं हरिप्रियाम् ।
प्रणनाम सपत्नीकः साष्टाङ्गन्दण्डवन्मुनिः ॥ ३३१ ॥

श्रीरुवाच—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते मित्रावरुणसम्भव ।
पतिव्रते त्वमुत्तिष्ठ लोपामुद्रे शुभव्रते ॥ ३३२ ॥

स्तुत्याऽनया प्रसन्नाऽहं व्रियतां यद्धृदीप्सितम् ।
इति श्रुत्वाऽथ स मुनिः प्रत्युवाच श्रियन्ततः ॥ ३३३ ॥

प्रणिपत्य महाभागो भक्तिगर्भमिदं वचः ।
यदि देयो वरो मह्यं वरयोग्योऽस्म्यहं यदि ॥ ३३४ ॥

तदा वाराणसीप्राप्तिः पुनरस्त्येष[3] मे वरः ।
ये पठिष्यन्ति च स्तोत्रन्त्वद्भक्ता मत्कृतं सदा ॥ ३३५ ॥

---

१. क. गृहेन्नो । २. ख. त्वत्स्पृष्टुमेव । ३. ख. पुनरस्त्वेष ।

तेषां कदाचित्सन्तापो माऽस्तु माऽस्तु दरिद्रता ।
माऽस्तु चेष्टवियोगञ्च माऽस्तु सम्पत्तिसंक्षयः ॥ ३३६ ॥

सर्वत्र विजयश्चाऽस्तु विच्छेदो माऽस्तु सन्ततेः ।

श्रीरुवाच—

एवमस्तु मुने सर्वं यत्त्वया परिभाषितम् ॥ ३३७ ॥
एतत्स्तोत्रस्य पठनम्मम सान्निध्यकारकम् ।
अलक्ष्मीः कालकर्णी च तद्गेहे न विशेत् क्वचित् ॥३३८॥
गजाश्वपशुशान्त्यर्थमेतत्स्तोत्रं सदा जपेत् ।
बालग्रहाभिभूतानाम्बालानां शान्तिकारकम् ॥ ३३९ ॥

भूर्ज्जपत्रे लिखित्वा तु बध्नीयात्कण्ठदेशतः ।
इदम्बीजं रहस्यम्मे रक्षणीयम्प्रयत्नतः ॥ ॥ ३४० ॥

श्रद्धाहीने न दातव्यन्न देयञ्चाऽशुचौ क्वचित् ।
अन्यच्च शृणु विप्रेन्द्र भविष्ये द्वापरे भवान् ॥ ३४१ ॥

एकोनत्रिंशते ब्रह्मन् सत्यं व्यासो भविष्यसि ।

तदा वाराणसीम्प्राप्य सिद्धिम्प्राप्स्यस्यनुत्तमाम् ॥ ३४२ ॥

**॥ इति स्कन्दपुराणोक्तमगस्त्यमुनिरचितं लक्ष्मीस्तोत्रम् ॥**

**सारसङ्ग्रहे—**

श्रीमन्त्रजापिनाङ्केचिदुच्यन्ते नियमा इह ।
तैलाभ्यक्तश्च नाऽश्नीयान्नग्नस्तोये न संविशेत् ॥ ३४३ ॥

अशुचिर्न स्वपेत्क्वाऽपि द्वाभ्यां स्यादशुचिर्भवेत् ।
लवणन्तिलसम्भूतन्नाऽश्नीयात्केवलं सुधीः ॥ ३४४ ॥

लिपेद्धरिद्रां[1] वक्त्रे नो नाऽनृतम्प्रवदेत् क्वचित् ।
कदाचिन्मलिनो न स्याद्भुवं नैव लिखेद्वृथा ॥ ३४५ ॥

---

१. ख. लिम्पेद्ध० ।

श्रीफलाम्बुजसद्द्रोणान् न मूर्द्धनि च धारयेत् ।
तथा च निर्मलाचारः शुक्लः शुद्धमना भवेत् ॥ ३४६ ॥

शुद्धमाल्यानुलेपश्च शुद्धाभरणभूषितः ।
श्वेतवस्त्रपरीधानः शुद्धदेहः स्वलङ्कृतः ॥ ३४७ ॥

उत्कृष्टगन्धानुलेपः शुद्धदन्तश्च सन्नखः ।
विष्णुभक्तश्च विमलरम्यशय्यो भवेत् सुधीः ॥ ३४८ ॥

निन्दितान्वयसम्भूतां दुष्टाञ्च कलहप्रियाम् ।
दुष्टयोनिमनिष्टाञ्च रोगग्रहनिषेविताम् ॥ ३४९ ॥

अत्यासक्तामशक्ताञ्च कृशाङ्गीं सुबृहत्तनुम् ।
अतिह्रस्वां सुदीर्घाञ्च विरम्याम्भोगलोलुपाम् ॥ ३५० ॥

अन्यपुरुषलोलाञ्च काकाक्षीं राजयोषितम् ।
रजस्वलामेकचारां योषितं न स्पृशेदपि ॥ ३५१ ॥

शान्तः शुचिस्मितो वाङ्मी मधुरालापवान् भवेत् ।
दयार्द्रचित्त आचार्यदेवातिथ्यर्चनारतः ॥ ३५२ ॥

गुर्वग्निपूजानिरतः पुण्यशीलो दृढव्रतः ।
नित्यस्नायी पश्चिमाशामुखाशी शीलवान् भवेत् ॥ ३५३ ॥

वर्णाश्रमरतः स्वीयदारतुष्टोऽप्यभीषणः[1] ।
एतादृशैश्च नियमैर्युक्तो लक्ष्मीं लभेत सः ॥ ३५४ ॥

**नारायणीये—**

न जिघ्रेन्नाऽऽक्रमेच्चाऽब्जन्तद्बीजन्न च भक्षयेत् ।
न स्यान्मलिष्ठो न छिन्द्याद्बिल्वम्भूमौ शयीत न ॥ ३५५ ॥

लवणामलकं वर्ज्यन्नागादित्यतिथौ क्रमात् ।
नागादित्यतिथी पञ्चमीसप्तम्यौ ।
पञ्चम्यामुत्तरे च स्त्री वर्ज्या प्रत्यङ् मुखोऽशने ॥ ३५६ ॥

विल्वैर्न मार्ज्जयेद्दन्तान् त्रिसन्ध्यम्प्रणमेञ्च तान् ।
प्रातर्भक्ष्यास्तिलास्ते च धार्या लक्ष्मीञ्च भक्षयेत् ॥ ३५७ ॥

---

१. क. प्यभीषणम् ।

धारयेन्मूर्द्ध्नि तत्पुष्पमुत्तरे मधुरान्नभुक् ।
पायसं विल्वबीजञ्च भक्षयेच्छुक्लपर्वणि ॥ ३५८ ॥

शुक्लपर्वणि पूर्णिमायाम् ।

**शारदातिलके** —

शयीत शुद्धशय्यायान्तरुण्या सह नाऽन्यया ।
मलिनो न भवेज्जातु कुत्सितान्नन्न भक्षयेत् ॥ ३५९ ॥

द्रोणपङ्कजविल्वानि पद्भ्याञ्जातु न लङ्घयेत् ।
सहदेवीमिन्द्रवल्लीं श्रीदेवीं विष्णुवल्लभाम् ॥ ३६० ॥

कन्याञ्जम्बूम्प्रवालञ्च धारयेन्मूर्ध्नि सर्वदा ।
श्रीदेवीं श्रीलताविष्णुवल्लभामपराजिताम् ॥ ३६१ ॥

कन्या कुमारी ।

**प्रयोगसारे**—

धान्यगोगुरुहुताशनराणां
न स्वपेदुपरि नाऽप्यनुवंशम् ।
नोत्तरापरशिरा न च नग्नो
नार्द्रपाणिचरणः श्रियमिच्छन् ॥ ३६२ ॥

**इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज-**
**गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**चत्वारिंशस्तरङ्गः ॥ ४० ॥**

—०—

[ ।।अथैकचत्वारिंशस्तरङ्गः ।। ]

।। अथ मातङ्गीमन्त्राः ।।

तत्र **सारसङ्ग्रहे**—

राजमातङ्गिनीमन्त्रम्प्रवदामि यथाविधि ।
यत्पादद्वन्द्वसरसीरुहसंस्मृतितो नरः ।। १ ।।

लभते मुक्तिममलान्दुष्प्रापां सिद्धसञ्चयैः ।
येन चाऽऽकर्षणं साध्यं वशीकारो यतो भवेत् ।। २ ।।

येन वाञ्छितमाप्नोति यशस्वी नियतम्भवेत् ।
दुरितौघप्रविध्वंसः सौभाग्याप्तिश्च निश्चितम् ।। ३ ।।

सेवितं सन्ततिकरं यस्यान्निगडमोचनम् ।
समस्तेषु च शास्त्रेषु पाण्डित्यमधिकम्भवेत् ।। ४ ।।

विशिष्टस्पष्टगम्भीरपदविन्यासकोमले ।
ललिते च कवित्वेऽसौ प्रगल्भः सुतराम्भवेत् ।। ५ ।।

सङ्गीते सर्वविद्यासु चाऽत्यन्तनिपुणो भवेत् ।
मन्दिरे तस्य कमला साध्वनश्वरविभ्रभा[1] ।। ६ ।।

निरन्तरञ्च वसति नाऽत्र कार्या विचारणा ।
किमत्र बहुनोक्तेन वचसाम्पतिरेव सः ।। ७ ।।

कान्त्या रतिपतिर्लक्ष्म्या कमलापतिरप्यसौ ।

**शारदातिलके**—

वाङ्मायाकमलास्तारन्नमोऽन्ते भगवत्यथ ।
श्रीमातङ्गेश्वरि वदेत् सर्वजनमनोहरि ।। ८ ।।

सर्वादिमुखराज्यन्ते सर्वादिमुखरञ्जनि ।
सर्वराजवशम्पश्चात्करि सर्वपदं वदेत् ।। ९ ।।

स्त्रीपुरुषवशम्ब्रह्मा नेत्रमग्न्यासनन्ततः ।
सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वभृगुस्त्वथ ।। १० ।।

---

१. ख. साध्वरविभ्रमा ।

शङ्करि स्यात्सर्वलोकममुकं शिवयुग्रविः ।
वशमानय जायाऽग्नेरष्टाशीत्यक्षरो मनुः ॥ ११ ॥

सारसङ्ग्रहे—

रक्षार्थं सर्वलोकानामायुरारोग्यवर्द्धनः ।
शान्तिके पौष्टिके चैव वृद्धिसिद्धिकरः परः ॥ १२ ॥

अपमृत्युजयश्रीदो ह्यपस्मारक्षयङ्करः ।
सर्वज्वरांश्च शूलानि शक्तो नाशयितुं क्षणात् ॥ १३ ॥

राजद्वारि विशेषेण सद्ग्रामे रिपुसङ्कटे ।
अग्निचोरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारणे ॥ १४ ॥

राक्षसेषु पिशाचेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
नदीप्रतरणे दुर्गे सम्प्राप्ते प्राणसंक्षये ॥ १५ ॥

असौ मन्त्रः प्रयुक्तः स्यादेतत्सर्वनिवारणः ।
स्त्रीणां सौभाग्यहीनानामपुत्राणां विशेषतः ॥ १६ ॥

अपुष्पा याऽनपत्या या सदा पुष्पवती च या ।
पतिद्वेष्या च या नारी दुष्टा श्वस्रूजनम्प्रति ॥ १७ ॥

या वन्ध्या मृतपुत्रा च निद्रालस्यमहामयैः ।
इत्येवमादिदोषैश्च दुष्टानां योषितामयम् ॥ १८ ॥

शक्तस्तद्दोषहरणे स्मरणादेव निश्चितम् ।
स्त्रीवश्यनरवश्यादिसर्ववश्यजयप्रदः ॥ १९ ॥

स्त्रीणां सम्मोहने शक्तो नराणाञ्च विशेषतः ।
मतङ्गमुनिना पूर्वङ्गीतस्तेनाऽप्यनुष्ठितः ॥ २० ॥

वासुदेवेन गीतोऽयन्तुम्बुरुप्रमुखादिभिः ।
जप्तः सदा महामन्त्रो वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः ॥ २१ ॥

वाग्वाग्भवम्, माया भुवनेशीबीजं, कमला लक्ष्मीबीजं, तारं प्रणवः, नमःस्वरूपम्, भगवति-स्वरूपम्, श्रीमातङ्गेश्वरि-स्वरूपम्, सर्वजनमनोहरि-स्वरूपम्,

सर्व-स्वरूपम्, मुखराजि-स्वरूपम्, सर्व[1]स्वरूपम्, मुखरञ्जनि-स्वरूपम्, सर्वराजवशं-स्वरूपम्, करि-स्वरूपम्, सर्व-स्वरूपम्, [स्त्रीपुरुषवशं-स्वरूपम्, ब्रह्मा-ककारः, नेत्रं-इ, अग्न्यासनं-रेफासनं, तेन रि, सर्वदुष्टमृगवशंकरि-स्वरूपम्, सर्व-स्वरूपम्, भृगुः सकारः, त्वव-स्वरूपम्][2],शङ्करि-स्वरूपम्,सर्वलोकं-स्वरूपम्, अमुकं-स्वरूपम्, रविर्मकारः शिवयुक् एकारयुतस्तेन मे, वशमानय-स्वरूपम्, अग्नेर्जाया-स्वाहा ।

**सारसङ्ग्रहे—**

दक्षिणामूर्त्तिरस्य[3] स्यादृषिश्छन्द उदाहृतम् ।
गायत्रन्देवता प्रोक्ता मातङ्गी सर्वसिद्धिदा ॥ २२ ॥

**शारदातिलके—**

षडङ्गानि मनोरस्य ततः कुर्वीत साधकः ।
वर्णैश्चतुर्विंशत्या स्याद्धृत् त्रयोदशभिः शिरः ॥ २३ ॥

शिखाऽष्टादशभिः प्रोक्ता वर्म तावद्भिरक्षरैः ।
स्यात्त्रयोदशभिर्नेत्रन्द्वाभ्यामस्त्रं समीरितम् ॥ २४ ॥

न्यासान्मन्त्री तनौ कुर्याद्वक्ष्यमाणान्यथाक्रमम् ।
शिरोललाटभ्रूमध्ये तालुकण्ठगलोरसि ॥ २५ ॥

अनाहते भुजद्वन्द्वे जठरे नाभिमण्डले ।
स्वाधिष्ठाने गुदे देशे पादयोर्द्दक्षिणान्ययोः ॥ २६ ॥

मूलाधारे गुदे न्यस्येत्पदान्यष्टादश क्रमात् ।
गुणैकद्विचतुःषड्भिर्वसुषट्पर्वताऽष्टभिः ॥ २७ ॥

दशपङ्क्त्यष्टवेदाग्निचन्द्रयुग्मगुणाक्षिभिः ।
पदक्लृप्तिरियम्प्रोक्ता मन्त्रवर्णैर्यथाक्रमम् ॥ २८ ॥

रत्याद्या मूलहृदयभ्रूमध्येषु विचक्षणः ।
वाक्शक्तिलक्ष्मीबीजाद्या मातङ्ग्यन्ताः प्रविन्यसेत् ॥ २९ ॥

१. क. स्वर्ग० । २. [—] कोष्ठान्तर्गतोंऽशो नाऽवलोक्यते ख. पुस्तके ।
३. क. दक्षिणामूर्तिरसा ।

शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु विधिना न्यसेत् ।
हृल्लेखां गगनां रक्ताम्भूयो मन्त्री करालिकाम् ।। ३० ।।

महोच्छुष्मां स्वनामादिवर्णबीजपुरःसराः ।
मातङ्गचन्ता इति ।

[1]विभक्तैर्मूलमन्त्रार्णैर्बाणन्यासमथाऽऽचरेत् ।। ३१ ।।

मूर्द्धपादास्यगुह्येषु हृदम्भोजे प्रविन्यसेत् ।
द्राविणीं शोषिणीम्भूयो बन्धनीम्मोहिनीम्पुनः ।। ३२ ।।

आकर्षिणीं स्वनामादिबीजाद्याः शुभलक्षणाः ।
मातङ्गचन्तास्ततो न्यस्येन्मन्मथान्वदनांसयोः ।। ३३ ।।

पार्श्वकटचोर्नाभिदेशे कटिपार्श्वांसके पुनः ।
बीजत्रयादिकान्मन्त्री मन्मथम्मकरध्वजम् ।। ३४ ।।

मदनम्पुष्पधन्वानम्पञ्चमङ्कुसुमायुधम् ।
षष्ठङ्कन्दर्पनामानं मनोभवरतिप्रियौ ।। ३५ ।।

मातङ्गचन्तास्ततो न्यस्येत्स्थानेष्वेतेषु मन्त्रवित् ।
प्रथमाऽनङ्गकुसुमा भूयोऽन्याऽनङ्गमेखला ।। ३६ ।।

अनङ्गमदना तद्वदनङ्गमदनातुरा ।
अनङ्गमदनावेगा भूयश्चाऽनङ्गमेखला ।। ३७ ।।

सप्तम्यङ्गभुवनपालिनी स्यादथाऽष्टमी ।
अनङ्गशशिरेखाख्या मातङ्ग्यन्ताः समीरिताः ।। ३८ ।।

विन्यस्तव्यास्ततो[2] मूलेऽधिष्ठाने मणिपूरके ।
हृत्कण्ठास्ये भ्रुवोर्मध्यं मस्तके मन्त्रिणा ततः ।। ३९ ।।

आद्ये लक्ष्मीसरस्वत्यौ रतिः प्रीतिश्च कृत्तिका ।
शान्तिः पुष्टिः पुनस्तुष्टिर्मातङ्गीपदशेखराः ।। ४० ।।

मूलमन्त्रम्प्रविन्यस्येन्निजमूर्द्धनि मन्त्रवित् ।
आधारदेशेऽधिष्ठाने नाभौ पश्चादनाहते ।। ४१ ।।

१. विभवै० । २. ख. विन्यस्तव्याततो ।

कण्ठे वक्त्रे भ्रुवोर्मध्ये मस्तके विन्यसेत्क्रमात् ।
ब्राह्म्याद्याः पूर्वमुद्दिष्टा मातङ्गीपदपश्चिमाः ॥ ४२ ॥

एषु स्थानेषु विन्यस्येदसिताङ्गादिभैरवान् ।
मातङ्ग्यन्तान् न्यसेन्मत्री मूलमन्त्रं स्वमूर्द्धनि ॥ ४३ ॥

आधारदेशेऽधिष्ठाने नाभौ पश्चादनाहते ।
कण्ठदेशे भ्रुवोर्मध्ये विन्दौ भूयः कलापदे ॥ ४४ ॥

निरोधिकायामर्द्धेन्दौ नादनादान्तयोः पुनः
उन्मन्यां विषुवक्त्रे च ध्रुवमण्डलके शिवे ॥ ४५ ॥

मातङ्ग्यन्ताः प्रविन्यस्येद्वामां ज्येष्ठामनन्तरम् ।
रौद्रीम्प्रशान्तिं श्रद्धाख्याम्पुनर्माहेश्वरीमथ ॥ ४६ ॥

क्रियाशक्ति सुलक्ष्मीञ्च सृष्टिसंज्ञाञ्च मोहिनीम् ।
प्रथमाम्भाविनीं विद्युल्लतां चिच्छक्तिमप्यथ ॥ ४७ ॥

ततश्च सुन्दरीं नन्दां नन्दबुद्धिमिमाः क्रमात् ।
शिरोभालहृदाधारेष्वेता बीजत्रयादिकाः ॥ ४८ ॥

मातङ्ग्याद्याः प्रविन्यस्येद्यथावद्देशिकोत्तमः ।
मातङ्गीं महदाद्यन्तां महालक्ष्मीपदादिकाम् ॥ ४९ ॥

सिद्धलक्ष्मीपदाद्यन्ताम्मूलमाधारमण्डले ।
न्यस्येत्तेनैव कुर्वीत व्यापकन्देशिकोत्तमः ॥ १५० ॥
एवन्न्यस्तशरीरोऽसौ चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।

ध्यायेयं रक्तपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं,
न्यस्तैकाङ्घ्रि सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कल्हाराबद्धमालान्नियमितविलसच्चूलिकां रक्तवस्त्रा-
म्मातङ्गीं शङ्खपत्राम्मधुमदविवशाञ्चित्रकोद्भासिभालाम् ॥५१॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

अमृतोदधिमध्यस्थे रत्नद्वीपे मनोरमे ।
स्वर्णप्राकारसंवीते मण्डपे रत्ननिर्मिते ॥ ५२ ॥

कदम्बविल्वकद्वारे कल्पवृक्षोपशोभिते ।
वेदिमध्ये सुखास्तीर्णे रत्नसिंहासने शुभे ॥ ५३ ॥

अष्टपत्रम्महापद्मङ्केसराढ्यं सकर्णिकम् ।
तन्मध्ये त्रिकोणं स्यादष्टपत्रन्ततो बहिः ॥ ५४ ॥

पुनः षोडशपत्रं स्यात्तद्बाह्ये स्याच्चतुर्द्दलम् ।
वेदास्त्रं सचतुर्द्वारमण्डलम्प्रोक्तमुत्तमम् ॥ ५५ ॥

तस्य मध्ये सुखासीनां श्यामवर्णां शुचिस्मिताम्
कदम्बमालाभरणाम्पूजिताञ्च सुरासुरैः ॥ ५६ ॥

प्रलम्बालकसंयुक्ताञ्चन्द्ररेखावतंसिकाम् ।
ललाटे तिलकोपेतामीषत्प्रहसिताननाम् ॥ ५७ ॥

किञ्चित्स्वेदाम्बुमधुरललाटफलकोज्ज्वलाम् ।
वलीतरङ्गमध्यान्तां रोमराजीविराजिताम् ॥ ५८ ॥

सर्वाभरणसंयुक्ताम्मुक्ताहारविभूषिताम् ।
नानामणिगणोन्नद्धकटिसूत्रैरलङ्कृताम् ॥ ५९ ॥

वलयै रत्नखचितैः कैयूरैर्मणिभूषितैः ।
भूषितान्द्विभुजाम्बालाम्मदाघूर्णितलोचनाम् ॥ ६० ॥

आपीनमण्डलाभोगसमुन्नतपयोधराम् ।
प्रलम्बकर्णाभरणाङ्कर्णोत्तंसविराजिताम् ॥ ६१ ॥

तमालनीलान्तरुणीम्मधुमत्ताम्मतङ्गिनीम् ।
चतुःषष्टिकलारूपपार्श्वस्थशुकसारिकाम् ॥ ६२ ॥

कोटिबालार्कसंङ्काशाञ्जपाकुसुमसन्निभाम् ।
एवं वा पीतवर्णां वा ध्यायेन्मातङ्गिनीम्पराम् ॥ ६३ ॥

एवन्ध्यात्वा समाराध्य मानसैरुपचारकैः ।
अर्घ्यादिपात्राण्यासाद्य पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥ ६४ ॥

शारदातिलके—

त्रिकोणकर्णिकम्पद्ममष्टपत्रम्प्रकल्पयेत् ।
अष्टपत्रावृत्तम्बाह्ये वृत्तं षोडशभिर्द्दलैः ॥ ६५ ॥

चतुरश्रसमायुक्तं कान्त्या दृष्टिमनोहरम् ।
एतस्मिन्पूजयेत् पीठे नवशक्तीः क्रमादिमाः ॥ ६६ ॥

विभूतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्त्तिश्च सन्नतिः ।
व्युष्टिरुत्कृष्टि ऋद्धिश्च मातङ्गिपदपश्चिमाः ॥ ६७ ॥

सर्वान्ते शक्तिकमलासनाय नम इत्यथ ।
वाक्शक्तिलक्ष्मीबीजाद्यो मनुरासनसंज्ञकः ॥ ६८ ॥

मूलेन मूर्त्ति सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य देवताम् ।
अर्च्चयेद्विधिनाऽनेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रवित् ॥ ६९ ॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

धर्मादिक्लृप्ते पूर्वोक्ते पीठे शक्तीर्नवाऽर्च्चयेत् ।
मातङ्ग्यन्ता विभूत्यन्ते उन्नतिः कान्तिरेव च ॥ ७० ॥

सृष्टिः कीर्त्तिः सन्नतिश्च व्युष्टिरुत्कृष्टिरेव च ।
ऋद्धिश्च नवमी प्रोक्ता मातङ्ग्याः पीठशक्तयः ॥ ७१ ॥

वाङ्मायाकमलाः सर्वशक्तये कमलापदम् ।
सनाय नम इत्युक्त्वा मातङ्ग्याः पीठमर्चयेत् ॥ ७२ ॥

देव्या मूर्त्तिञ्च मूलेन कल्पयित्वा यथाविधि ।
तस्यामावाहयेद्देवीमर्चयेच्च विधानवित् ॥ ७३ ॥

रत्याद्याः पूजयेन्मन्त्री त्रिषु कोणेषु च क्रमात् ।
पुरतो दक्षिणे वामे रतिप्रीती च साञ्जली ॥ ७४ ॥

पाशाङ्कुशकरे श्वेतासिते चाऽन्या च साञ्जलिः ।
अरुणा सेक्षुकोदण्डपञ्चबाणलसत्कराः ॥ ७५ ॥

मध्ये दिक्षु च सम्पूज्या हृल्लेखाद्या यथाक्रमात् ।
गुणसृण्यभयेष्टानि वहन्त्यो भूतसप्रभाः ॥ ७६ ॥

अग्नीशरक्षःपवनकोणेष्वग्रे दिशासु च ।
यजेदङ्गानि मन्त्रज्ञः पञ्चबाणांस्ततो यजेत् ॥ ७७ ॥

दिक्ष्वग्रे क्रमतो मुक्तास्वर्णविद्रुमहीरकान् ।
कमलारुणभायुक्तान् धनुर्बाणधरांस्तथा ॥ ७८ ॥

दलेषु पूजयेदग्रादनङ्गकुसुमादिकाः ।
गुणसृण्यभयेष्टानि धारयन्त्योऽरुणप्रभाः ॥ ७९ ॥

अग्रे दलानां सम्पूज्या लक्ष्म्याद्याश्चारुभूषणाः ।
लक्ष्मीर्हेमप्रभा पद्मकराऽन्या शङ्खसन्निभा ॥ ८० ॥

चिन्मुद्रापुस्तककरा धनुर्बाणकरे परे ।
श्वेतासिते कुन्दसमा चिन्मुद्राब्जकरा परा ॥ ८१ ॥

चिन्मुद्राभययुक्शान्तिररुणाऽन्येऽभयेष्टदे ।
द्वितीयेऽष्टदले पूज्या मन्मथाद्या मदोद्धताः ॥ ८२ ॥

पुर आकृष्टचापज्याः पृष्ठतः सन्निषङ्गकाः ।
पत्रसंस्था मातरः स्युस्तदग्रे चाऽष्टभैरवाः ॥ ८३ ॥

कपालशूलडमरुवेतालासक्तपाणयः ।
दीर्घस्वराद्या ब्राह्म्याद्या ह्रस्वाद्या भैरवा अपि ॥ ८४ ॥

ततः षोडशपत्रस्था वामाद्याः श्यामविग्रहाः ।
आदर्शं रत्नदीपञ्च व्यजनञ्च ततः परम् ॥ ८५ ॥

नागवल्लीदलञ्चैव चामरं ज्ञानकोशकम् ।
वासोमाल्यातपत्राण्याभरणं शुकसारिके ॥ ८६ ॥

चामरं रत्नचषकन्तालवृत्तम्प्रदीपकम् ।
बिभ्राणा वामहस्तैश्च देव्याशागान्यपाणयः ॥ ८७ ॥

रक्तवर्णाश्च विमला भावयन्नर्च्चयेदिमाः ।
वादयन्त्यः सदा वीणाञ्चतुःपत्रे ततोऽर्च्चयेत् ॥ ८८ ॥

मातङ्गयाद्यास्तासु चाद्या पाशाङ्कुशवराभयैः ।
अलङ्कृतभुजा रक्ता द्वितीया चेन्दुसप्रभा ॥ ८९ ॥

असिखेटकशूलाह्वमुण्डहस्ता तथाऽपरा ।
पाशाङ्कुशसरोजानि शालिपुञ्चञ्च बिभ्रती ॥ ९० ॥

अरुणा चाऽन्तिमा हेमरत्नपात्रे वराभये ।
दधाना श्यामवर्णा च ध्यातव्या मंत्रिसत्तमैः ॥ ९१ ॥

अग्निनैर्ऋतवायव्यरुद्रकोणेषु संयजेत् ।
गणेशदुर्गावटुकक्षेत्रपांस्तद्वहिर्यजेत् ॥ ९२ ॥

चतुरश्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च तद्वहिरिति ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—"ॐ दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि-मातङ्गेश्वरीदेवतायै नमः" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा—

"ऐँ ह्रीँ श्रीँ ॐ नमो भगवति श्रीमातङ्गेश्वरि सर्वजनमनोहरि हृदयाय नमः, सर्वमुखराजिसर्वमुखरंजनि शिरसे स्वाहा, सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुष-वशङ्करि शिखायै वषट्, सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्ववशङ्करि कवचाय हुम्, सर्वलोकममुकं मे वशमानय नेत्राय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्" इति षोढा विभक्तैर्मन्त्रवर्णैः करषडङ्गन्यासान्विधाय,

शिरसि—ऐँ ह्रीँ श्रीँ नमः, ललाटे—ॐ नमः, भ्रूमध्ये—नमो नमः, एवं तालुनि—भगवति०, कण्ठे—श्रीमातङ्गेश्वरि०, गले—सर्वजनमनोहरि०, उरसि—सर्वमुखराजि०, अनाहते—सर्वमुखरञ्जनि०, दक्षभुजे—सर्वराजवशङ्करि०, वामे-सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि०, जठरे—सर्वदुष्टमृगवशंकरि०, [नाभौ—सर्वसत्ववशंकरि०,][1] स्वाधिष्ठाने—सर्वलोकम्, लिङ्गे—अमुकं, दक्षपादे—मे०, वामे—वशं०, मूलाधारे—आनय०—गुदे स्वाहा नमः ।

१. [—] कोष्ठगस्यांशस्याभावः ख. पुस्तके ।

मूलाधारे—ऐं ह्रीं श्रीं रत्यै मातङ्ग्यै नमः, हृदि ३ प्रीत्यै मातङ्ग्यै नमः, भ्रूमध्ये -मनोभवायै मातङ्ग्यै०, शिरसि—हृल्लेखायै मा०. वदने—गगनायै मा०, हृदि-रं रक्तायै मा०, गुह्ये-कं करालिकायै मा०, पादयोः-३ मं महोच्छुष्मायै मा०, शिरसि—३ द्रां द्राविण्यै मा०, पादयोः—शां शोषिण्यै मातंग्यै नमः, मुखे-बं बंधिन्यै मा०,गुह्ये—मो मोहिन्यै मा०, हृदये—आँ आकर्षिण्यै मा०,ततो मुखे—ऐँ ह्रीँ श्रीँ मन्मथाय०, वामांसे—मकरध्वजाय०, वामपार्श्वे—३ मदनाय०, वामकट्यां-३ पुष्पधन्वने०, नाभौ—३ कुसुमायुधाय०,दक्षकट्यां—३ कन्दर्पाय०, दक्षपार्श्वे-३ मनोभवाय०, दक्षांसे—३ रतिप्रियाय०, मुखे—अनंगकुसुमायै मातङ्ग्यै नमः, वामांसे-३ अनंगमेखलायै मा०, वामपार्श्वे—३ अनङ्गमदनायै मा०, वामकट्याम्—३ अनङ्गमदनातुरायै मा०, नाभौ ३ अनंगमदनोद्वेगायै मा०, दक्षकट्यां—अनंगसम्भावायै मा०, दक्षपार्श्वे - अनंगभुवनपालिन्यै मा०, दक्षांसे-अनंगशशिरेखायै मा०,

मूलाधारे—लक्ष्म्यै मा०, लिंगमूले—सरस्वत्यै मा० मणिपूरे—रत्यै मा०, हृदि—प्रीत्यै मातंग्यै०, कण्ठे—कीर्त्यै मा०, मुखे - शान्त्यै मा०, भ्रूमध्ये—पुष्ट्यै मा०, शिरसि-तुष्ट्यै मा०, मूर्ध्नि—मूलमन्त्रं न्यसेत् ।

मूले—ब्राह्म्यै स्वाधिष्ठाने-माहेश्वर्यै मा०, नाभौ—कौमार्य्यै मा०, हृदि-वैष्णव्यै मा०, कण्ठे—वाराह्यै मा०, मुखे—इन्द्राण्यै मा०, भ्रूमध्ये—चामुण्डायै मा०, शिरसि—महालक्ष्म्यै मा०,

मूले—असितांगाय०, स्वाधिष्ठाने—रुरवे०, नाभौ—चण्डाय०, हृदि—क्रोधाय०, कण्ठे—उन्मत्ताय०, मुखे—कपालिने०, भ्रूमध्ये—भीषणाय०, शिरसि—संहाराय०, आधारे—वामायै०, लिंगमूले—ज्येष्ठायै०, नाभौ—रौद्र्यै मा०, हृदि—शांत्यै मा०, कण्ठे—श्रद्धायै मा०, भ्रूमध्ये—वागीश्वर्यै मा०, बिन्दौ—क्रियाशक्त्यै मा०, कलापदे—लक्ष्म्यै मा०, निरोधिकायां—सृष्ट्यै मा०, अर्द्धेन्दौ—मोहिन्यै मा०, नादे—प्रमथायै मा०, नादान्ते—भाविन्यै मा०, उन्मन्यां—विद्युल्लतायै मा०, विषुचक्रे—चिच्छक्त्यै मा०, ध्रुवमण्डले—सुन्दरानन्दायै मा०, शिवे—नागबुद्ध्यै, मा०, शिरसि—मातंग्यै मा०, ललाटे—महामातंग्यै मा०, हृदि—महालक्ष्म्यै मा०, मूले—सिद्धलक्ष्म्यै—मा०, मूलाधारे—मूलमंत्रं,तेनैव व्यापकं कुर्यात् ।

ततो ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना सकेसरमष्टदल-

कमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां स्वाभिमुखाग्रं त्रिकोणं कृत्वाऽष्टदलाद्बहिः पुनरष्टदल-कमलं, तद्बहिः षोडशदलं, तद्बहिश्चतुर्द्दलं, तद्बहिश्चतुर्द्वारोपेतञ्चतुरश्रत्रयञ्च कुर्यात् ।

इति पूजाचक्रन्निर्माय, स्वपुरतः पीठादौ संस्थाप्य, मूलेनाऽभ्यर्च्याऽर्घ्य-स्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिज्ञानात्मार्च्चान्तेष्टदलकेसरेषु "विभूत्यै मातङ्ग्यै नमः, एवं उन्नत्यै०, [कान्त्यै०[1]], सृष्ट्यै०, कीर्त्यै०, सन्नत्यै०, पुष्ट्यै०. उत्कृष्ट्यै०, मध्ये—ऋद्ध्यै," इति सम्पूज्य—

"ऐँ ह्रीँ श्रीँ सर्वशक्तिकमलासनाय नम" इति समस्तम्पीठं सम्पूज्य मूल-मुच्चार्य, "श्रीमातङ्गेश्वरीमूर्तिं कल्पयामीति" मूर्त्तिम्परिकल्प्य, पुनर्मूलमुच्चार्य, "परस्यै श्रीमातङ्गेश्वरीमूर्त्तये नमः" इति मूर्त्तिमभ्यर्च्य तस्यान्देवीमावाह्याऽऽवाह-नादिप्राणप्रतिष्ठान्ते पाशाङ्कुशवराभयखड्गचर्मधनुःशरमौसलीदौर्गीवीणायोनी-रिति द्वादशमुद्राः प्रदर्श्याऽऽसनादि–पुष्पोपचारान्ते प्राग्वल्लयाङ्गत्वेन देवीमूर्त्तौ षडङ्गानि सम्पूज्य,

त्रिकोणाग्रादि—३ "रत्यै मा०, प्रीत्यै मा०, मनोभवायै मा०" इति प्राद-क्षिण्येन सम्पूज्य, त्रिकोणाष्टदलयोरन्तराले मध्ये चतुर्दिक्षु"—३[2]हूँ हृल्लेखायै मातङ्ग्यै नमः, गँ गगनायै मा०, रँ रक्तायै मा०, कँ करालिकायै मा०, मँ महो-च्छुष्मायै मा०" इति सम्पूज्याग्नीशासुरवायव्यमध्यचतुर्दिक्षु क्रमेण षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणाष्टदलयोरन्तराले–एवं "द्राँ द्राविण्यै मा०, शों शोषिण्यै मा०, बं बंधिन्यै मा०, मों मोहिन्यै मा०, आँ आकर्षिण्यै मा०" इति देव्यग्रादिचतुर्दिक्षु पुनर्देव्यग्रे च प्रादक्षिण्येनाभ्यर्च्याऽष्टदलेषु—

देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन–"३ अनङ्गकुसुमायै मा०, अनङ्गमेखलायै मा०, अनङ्गमदनायै मा०, अनङ्गमदनातुरायै मा०, अनङ्गमदनोद्वेगायै मा०, अनङ्गसम्भवायै मा०, अनङ्गभुवनपालिन्यै मा०, अनङ्गशशिरेखायै मा०" इति सम्पूज्य,

तदग्रेषु–"लक्ष्म्यै मा०, सरस्वत्यै मा०, रत्यै मा०, प्रीत्यै मा०, कीर्त्यै मा०, शान्त्यै मा०, तुष्ट्यै मा०, पुष्ट्यै मा०," ।

---

१. [—] कोष्ठस्थोंऽशो नाऽस्ति क. पुस्तके । २. ख. ॐ ।

ततो द्वितीयाष्टदलमूलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन—"३ मन्मथाय नमः, एवं मकरध्वजाय, ३ मदनाय०, ३ पुष्पधन्वने०, ३ कुसुमायुधाय०, ३ कन्दर्प्पाय०, ३ मनोभवाय०, ३ रतिप्रियाय नमः", पत्रमध्येषु—"आँ ब्र ह्मचै मा०, ईं माहेश्वर्य्यै मा०" इत्यादि, दलाग्रेषु—"अँ असिताङ्गाय नम" इत्यादि भैरवाष्टकं सम्पूज्य—

षोडशदलेषु—"वामायै मा०, ज्येष्ठायै मा०, रौद्रैच मा०, शान्त्यै मा०, श्रद्धायै मा०, वागीश्वर्य्यै मा०, क्रियाशक्त्यै मा०, लक्ष्म्यै मा०, सृष्ट्यै मा०, मोहिन्यै मा०, प्रमथायै मा०, भाविन्यै मा०, विद्युल्लतायै मा०, चिच्छक्त्यै मा०, सुन्दरानन्दायै मा०, नागबुद्ध्यै मा०"।

ततश्चतुर्द्दलेषु—"३ मातङ्ग्यै मातङ्ग्यै[1] नमः, ३ महामातंग्यै मा०, ३ महालक्ष्म्यै मा०, ३ सिद्धलक्ष्म्यै मा०" इति सम्पूज्य, चतुरश्रस्याऽभ्यन्तरे आग्नेयादिचतुःकोणेषु—प्रादक्षिण्येन—"ॐ गणेशाय नमः, ॐ दुर्गायै०, ॐ बटुकाय०, ॐ क्षत्रपालाय नमः" इत्यभ्यर्च्य, तद्बहिः प्राग्वल्लोकपालार्चादि सर्वं समापयेदिति।

**शारदातिलके—**

अयुतम्प्रजपेन्मन्त्रन्तद्दशांशम्मधूकजैः।
पुष्पैस्त्रिमधुरोपेतैर्ज्जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ॥ ९३ ॥

मन्त्रेऽस्मिन्साधिते मन्त्री[2] साधयेदिष्टमात्मनः।
मल्लिकाजातिपुन्नागैर्होमाद्भूग्यालयो भवेत् ॥ ९४ ॥

फलैर्विल्वसमुद्भूतैस्तत्पत्रैर्वा हुताद्भवेत्।
राजपुत्रस्य राज्याप्तिः पङ्कजैः श्रियमाप्नुयात् ॥ ९५ ॥

उत्पलैर्वशयेद्विश्वं लक्ष्मीपुष्पैस्तथा पुनः।
बन्धूकपुष्पैर्वकुलैर्जपोत्थैः किंशुकोद्भवैः ॥ ९६ ॥

वश्याय जुहुयान्मन्त्री मधुना सर्वसिद्धये।
लवणैर्मधुरोपेतैर्हुत्वाऽऽकर्षति सुन्दरीम् ॥ ९७ ॥

वञ्जुलस्य समिद्धोमो वृष्टिं वितनुतेऽचिरात्।
क्षीराक्तैरमृताखण्डैर्होमो नाशयति ज्वरम् ॥ ९८ ॥

---

१. ख. पुस्तकेऽस्याऽभावः। २. क. साधितेन्मन्त्री।

दूर्वाभिरायुराप्नोति कदम्बैर्वश्यमाप्नुयात् ।
अन्नवानन्नहोमेन तण्डुलैर्द्धनवान् भवेत् ॥ ९९ ॥

सर्वं त्रिमधुरोपेतं होमद्रव्यमुदाहृतम् ।
नन्द्यावर्त्तभवैः पुष्पैर्होमो वाक्सिद्धिदायकः ॥ १०० ॥

विप्रप्रसूनैर्जुहुयादीप्सितां श्रियमाप्नुयात् ।
पलाशकुसुमैर्होमात्तेजस्वी जायते नरः ॥ १०१ ॥

[चन्दनागुरुकर्पूररोचनाकुङ्कुमादिभिः ।
वश्याय जुहुयान्मन्त्री वशयेदखिलञ्जगत् ॥ १०२ ॥

एतानि जप्त्वा तिलकङ्कुर्य्याल्लोकप्रियो भवेत् ।
निर्गुण्डीमूलहोमेन निगडान्मुच्यते नरः ॥ १०३ ॥][1]

निम्बतैलान्वितैर्लोणैर्होमः शत्रुविनाशनः ।
हरिद्राचूर्णसंमिश्रैर्ल्लवणैः स्तम्भयेत्परान् ॥ १०४ ॥

रसवद्भिः फलैः पक्वैः पुष्पैः परिमलान्वितैः ।
हुत्वा सम्यगवाप्नोति साधकः सर्वमीप्सितम् ॥ १०५ ॥

**अथ मातङ्गमनुकोशे—**

प्राक्सर्वलोकपदतस्तार्त्तीयं राज्यलक्ष्मी च ।
प्रदे इति पदे दत्ते पञ्चनवत्यक्षरो मन्त्रः ॥ १०६ ॥

**अयमर्थः**—प्रागुद्धृताष्टाशीत्यक्षरे मन्त्रे सर्वसत्ववशंकरीति पदानन्तरं 'सौः राज्यलक्ष्मीप्रदे' इति सप्ताक्षराणि संयोज्याऽनन्तरं सर्वलोकममुकमित्यादि वदन्ति । एवम्पञ्चनवत्यक्षरो मन्त्रो भवति । तथा—

ऋष्यादि पूर्वमुक्तं षड्दीर्घस्वरेणाङ्गविधिः ।
विन्यस्याङ्गानि ततो विचिन्तयेन्मनुदेवतामेवम् ॥ १०७ ॥

दीर्घयुजा अ-स्वरेण तेन 'आँ हृदयाय नमः, ईँ शिरसे स्वाहे'त्यादयः षडङ्गमन्त्राः, एवम्पूर्वोक्तप्रकारेण, तेन राजमातङ्गिनीवद्धचानपूजादिकं सर्वं ज्ञेयम् ।

१. क. पुस्तके [—] कोष्ठस्थांशस्याऽभावः ।

तथा—माया हृदोरंते ब्रह्मश्री राजिते प्रोक्त्वा ।
पदमथ राजपूजिते इति तत्परतो जये विजये ।। १०८ ।।

गौर्य्यथ गान्धारि ततो देयं त्रिभुवनवशंकरीति पदम् ।
सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सु सु दु दु घे घे इति द्वेधा ।। १०९ ।।

माया-स्वाहान्तः प्रणवादिरयं मन्त्रः । माया ह्रीँ, हृत् नमः । अन्यत्सर्वं स्वरूपं, तेन चतुःपंचाशदक्षरोऽयं मन्त्रः ।

**प्रपञ्चसारे तु**—त्रिभुवनवशङ्कर्य्यन्ते सर्वलोकवशङ्करीति पदम्प्रोक्तम् । प्रणवो नोद्धृतः, तेनैकाधिकषष्टयक्षरो मन्त्रः, तत्र गौरी देवता निचृच्छन्दः, अत्र चतुःपञ्चाशदक्षरे तु

ऋषिरस्याऽजश्छन्दो[1] निचृद्गायत्रमीरितम्प्राज्ञैः ।।११०।।

वाञ्छितफलदा देवी प्रोक्ता श्रीराजमातंगी ।
अंगानि मायया स्याद्ध्यानम्पूर्वोक्तमेव विज्ञेयम् ।। १११ ।।

ध्यानमित्युपलक्षणम् । पूजाजपादिकमपि तथैव ज्ञेयम् । गौरीदेवतापक्षे तु—
**प्रपञ्चसारे तु**—

स चतुर्द्दशभिस्तथाऽष्टभिश्चाष्टभिस्तथा दशभिः ।
एकादशभिर्मन्त्राक्षरैः क्रमादुच्यते षडङ्गविधिः ।। ११२ ।।

ह्राँ नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते हृदयाय नमः, जये विजये गौरि गान्धारि शिरसे स्वाहा, त्रिभुवनवशंकरि कवचाय हुँ, सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि नेत्राय वौषट्. सु सु दु दु घे घे वाचा ह्रीँ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

असकलशशिराजन्मौलिराबद्धपाशा,-
ङ्कुशरुचिरकराब्जा बन्धुजोवारुणाङ्गी ।
अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणलेपां-
शुककुसुमयुता स्यात्सम्पदे पार्वती नः ।। ११३ ।।

---

१. ख. ऽजप्छन्दो ।

आराधयेत्तदङ्गैर्मातृभिराशाधिपैस्तदस्त्रैश्च ।
मातृभिर्ब्राह्म्यादिभिः,अत्र गौरीदेवतापक्षे तु भुवनेश्वरीपीठे पूजनं ज्ञेयम् ।
अयुतम्प्रजपेज्जुहुयात्पायसैर्घृतप्लुतैर्द्दशांशेन ॥११४॥

तद्वच्च तर्प्पणादि कुर्य्यादिष्टार्थसिद्धये मन्त्री इति ।

**मातङ्गमनुकोशे—**

राजमुखि पदाद्राजाभिमुखि वश्यपूर्वमुखि च पदम् ॥११५॥

भुवनेशीश्रीकामान्[1] वदेत्ततो देवदेविपदम् ।
तदन्ते महादेवि पदं पदमथ देवाधिदेवीति ॥ ११६ ॥

सर्व्वजनस्य मुखम्मम वशं कुरु द्विस्ततः स्वाहा ।
प्रणवादिरयम्मन्त्रः प्रोक्तः श्रीवश्यमातङ्ग्याः ॥ ११७ ॥

जपपूजाद्यं सर्वं विज्ञेयं राजमातङ्गीवत् ।

**प्रपञ्चसारे—**

दशभिः सप्तभिश्चैव चतुर्भिः करणाक्षरैः ।
पञ्चभिः सप्तदशभिर्वर्णैरङ्गक्रिया मनोः ॥ ११८ ॥

करणानि चत्वारि, तेन ' ॐ राजमुखि राजाभिमुखि हृदयाय नमः, वश्यमुखि ह्रीँ श्रीँ क्लीँ शिरसे स्वाहा, देवदेवि शिखायै वषट्, महादेवि कवचाय हुँ, देवाधिदेवि नेत्राय वौषट्, सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् ।"

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—**

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मातङ्गींरत्नदेवताम् ।
वाग्भवङ्कामबीजञ्च सर्गवान्भृगुरुत्तमः ॥ ११९ ॥

अनुग्रहेण संयुक्तः पुनराद्यम्परां लिखेत् ।
श्रीबीजन्तारकञ्चैव नमो भगवतीति च ॥ १२० ॥

---

१. क. ०कामानु । ख. ०कामन् ।

मातङ्गेश्वरि सर्वान्ते मनोहरि जनादिकम् ।
सर्वराजवशंकरि चाऽन्ते सर्वमुखान्तके ॥ १२१ ॥

रञ्जनीति ततः सर्वस्त्रीशब्दञ्च ततो लिखेत् ।
पुरुषान्ते वशं चोक्त्वा कर्यन्ते सर्वदुष्टतः[1] ॥ १२२ ॥

मृगान्ते वशमालिख्य सर्वलोकवशं[2] लिखेत् ।
कर्यादि वशमालिख्य करिशब्दन्ततो वदेत् ॥ १२३ ॥

परां श्रियं कामवीजं वाग्भवञ्च समालिखेत् ।
सप्ततिश्च त्रयो वर्णा मातङ्गीविग्रहाः प्रिये ॥ १२४ ॥
इयं समस्तविद्यानां राज्ञी मोक्षार्थसिद्धिदा ।

वाग्भवं ऐँ, कामबीजं क्लीँ, भृगुः सकारः, सर्गवान् विसर्गवान्, अनुग्रहेण औकारेण युतः तेन सौः, पुनराद्यं वाग्भवमेव, परां भुवनेशीबीजम्, तारकं प्रणवः, नमो भगवतीति स्वरूपम्, मातङ्गेश्वरि-स्वरूपम्, अन्यानि सर्वादीनि पदानि स्वरूपाण्येव । तथा—

ऋषिर्मतङ्गो भगवान् गायत्रच्छन्द उच्यते ।
देवता नादमूर्तिस्तु मातङ्गी परमेश्वरी ॥ १२५ ॥

कामबीजं वाग्भवं च बीजशक्ती च कीलकम् ।
तार्त्तीयन्देवदेवेशि षडङ्गान्यथ विन्यसेत् ॥ १२६ ॥

आद्यबीजत्रयेणैव द्विरावत्या षडङ्गकम् ।
अम्भोजार्पितदक्षाङ्घ्रिञ्चन्द्रखण्डविराजिताम् ॥ १२७ ॥

क्वणद्वीणालसन्नादश्लाघान्दोलितकुण्डलाम् ।
दन्तपङ्क्तिप्रभारम्यां शिवां सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ १२८ ॥

कदम्बपुष्पमालाढ्यां वीणावादनतत्पराम् ।
श्यामाङ्गीं शङ्खवलयान्ध्यायेत्सर्वार्थसिद्धये ॥ १२९ ॥

---

१. क. दुष्टतः । २. ख. सर्वलोकपदं ।

अथ यन्त्रम्प्रवक्ष्यामि त्रिकोणं पञ्चकोणकम् ।
वसुपत्रङ्कलापत्रं वसुपत्रञ्चतुर्द्दलम् ॥ १३० ॥

चतुरश्रञ्चतुर्द्वारमेवम्मण्डलमालिखेत् ।
आवाह्य देवतां सम्यगुपचारैः समर्चयेत् ॥ १३१ ॥

अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम्[1]
अथ वक्ष्ये महेशानि चतुरस्रस्य पूजनम् ॥ १३२ ॥

अग्रद्वाराच्चतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ।
सरस्वतीञ्च लक्ष्मीञ्च शङ्खपद्मनिधी प्रिये ॥ १३३ ॥

विदिक्षु वामभागादि प्रादक्षिण्येन पूर्ववत् ।
बटुकङ्गणराजञ्च क्षेत्रपालञ्च योगिनीम् ॥ १३४ ॥

ततश्चतुर्द्दलेऽग्रादि सिद्धमातङ्गिनीं क्रमात् ।
महालक्ष्मीपदां सिद्धलक्ष्मीमातङ्गिनीं यजेत् ॥ १३५ ॥

महामातङ्गिनीन्देवि प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ।
अष्टपत्रे महेशानि त्वसिताङ्गादिभैरवान् ॥ १३६ ॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तभैरवः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाऽष्टभैरवाः ॥ १३७ ॥

प्रादक्षिण्येन देवेशि पुर आरभ्य पूजयेत् ।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शान्तिः श्रद्धा च पञ्चमी ॥१३८॥

वागीश्वरी क्रियाशक्तिर्लक्ष्मीः पुष्टिस्तथैव च ।
मोहिनी प्रमथा स्वामिनी विद्या बिन्दुमालिनी ॥ १३९ ॥

सुरानन्दा नागबुद्धिरेताः षोडश कीर्त्तिताः ।
पुर आरभ्य देवेशि प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ॥ १४० ॥

---

१. क. पूजनाम् ।

षोडशारे ततो देवि लक्ष्मीश्चैव सरस्वती ।
रतिः प्रीतिः कीर्त्तिशान्ती पुष्टिस्तुष्टिश्च[1] पूर्ववत् ॥ १४१ ॥

पत्रान्तरेषु देवेशि मातृणामष्टकं यजेत् ।
पूर्ववत्पञ्चकोणेषु द्राविणी शोषिणी तथा ॥ १४२ ॥

स्तम्भिनी मोहिनी देवि तथाऽऽकर्षणकारिणी ।
त्रिकोणेऽपि हि देवेशि यजेदग्रादि पूर्ववत् ॥ १४३ ॥

प्रादक्षिण्येन मनुविद्रतिप्रीतिमनोभवाः[2] ।
पुनः सम्पूज्य देवेशीं सर्वोपस्करकैः प्रिये ॥ १४४ ॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—मतङ्गाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्राय छन्दसे नमः, हृदये—श्री मातङ्ग्यै देवतायै नमः, गुह्ये—क्लीँ बीजाय, पादयोः—ऐँ शक्तये, नाभौ—सौः कीलकाय०" इति विन्यस्य, "ऐँ हृदयाय नमः, क्लीँ शिरसे स्वाहा, सौः शिखायै वषट्, ऐँ कवचाय हुँ, क्लीं नेत्राय वौषट्, सौः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादि-तलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् ।

ततो यथोक्तरूपां ध्यात्वा, मानसपूजान्ते प्रमाणोक्तम्पूजाचक्रं निर्माय, मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्वाऽर्घस्थापनाद्यात्मपूजान्ते, मण्डूकादिज्ञानात्मार्चान्तेऽष्टदल-केसरेषु विभूत्याद्याः पूर्वोक्ताः पीठशक्तीः सम्पूज्य, "ऐँ ह्रीँ सर्वशक्तिकमला-सनाय नम" इति समस्तम्पीठं सम्पूज्य, मूर्तिकल्पनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वल्लया-ङ्गत्वेन देवीमूर्त्तौ षडङ्गानि सम्पूज्य,

चतुरश्रे अग्रद्वारमारभ्य, चतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन "सरस्वत्यै नमः, लक्ष्म्यै०, शङ्खनिधये० [पद्मनिधये०][3] इति सम्पूज्य, विदिक्षु वामभागादि-प्रादक्षिण्येन-"बटुकाय नमः, गणराजाय०, क्षेत्रपालाय० योगिनीभ्य०" इति सम्पूज्य,

ततश्चतुर्दले अग्रादिप्रादक्षिण्येन "सिद्धमातंगिन्यै नमः, महालक्ष्मी-

---

१. ख. ०स्तुष्टिस्तु । २. क. ख. पुस्तकद्वये-रतिप्रीतिर्मनोभवाः ।
३. [—] क. पुस्तके नाऽस्त्ययमंशः ।

मातंगिन्यै नमः, सिद्धलक्ष्मीमातंगिन्यै नमः, महामातंगिन्यै नमः" इति सम्पूज्याऽष्टदले अग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येनाऽङ्गाद्यष्टभैरवान्पूर्वोक्तान्सम्पूज्य, षोडशदलेग्रदलमारभ्य—

"वामायै नमः, ज्येष्ठायै०, रौद्र्यै०, शान्त्यै०, श्रद्धायै०, वागीश्वर्य्यै०, क्रियाशक्त्यै०, पुष्ट्यै०, मोहिन्यै०, प्रमथायै०,[1] आश्वासिन्यै०, विद्यायै०, बिन्दुमालिन्यै०, सुरानन्दायै०, नागबुद्ध्यै नमः"

इति सम्पूज्याऽन्तरष्टदले—लक्ष्म्यै नमः, सरस्वत्यै०, रत्यै०, प्रीत्यै०, कीर्त्यै०, शान्त्यै०, पुष्ट्यै०, तुष्ट्यै नम" इति सम्पूज्य, पत्रमध्येषु ब्राह्म्याद्यष्टकं सम्पूज्य, पञ्चकोणे—"द्राविण्यै०, शोषिण्यै०, स्तम्भिन्यै०, मोहिन्यै०, आकर्षणकारिण्यै नम" इति सम्पूज्य, ततस्त्रिकोणे अग्रादिप्रादक्षिण्येन—"रत्यै०, प्रीत्यै०, मनोभवायै नम" इति सम्पूज्य, प्राग्वल्लोकपालार्चादि सर्वं समापयेदिति। तथा—

पुरश्चरणकार्ये तु लक्षत्रयमुदाहृतम्।
प्रवालमालया देवि तद्दशांशेन होमयेत् ॥ १४५ ॥

मधूककुसुमैर्देवि त्रिकोणे कुण्डके शुचिः।
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु सर्वकर्माणि साधयेत् ॥ १४६ ॥

राज्यार्थी मल्लिकाजातीपुन्नागैः श्रीफलच्छदैः।
श्रीकामुकः शुभ्रपद्मैः पङ्कजैर्वाऽपि सुव्रते ॥ १४७ ॥

उत्पलैर्भोगकामस्तु लक्ष्मीपुष्पैश्च सुव्रते।
जपाबन्धूकवकुलकिंशुकैर्वश्यकारिणी ॥ १४८ ॥

वश्यार्थी मधुसंयुक्तैर्मधूककुसुमैर्हुनेत्।
आकर्षणे तु लवणैस्तिलैस्त्रिमधुसंयुतैः ॥ १४९ ॥

बञ्जुलैर्वृष्टिकामस्तु खर्जूरैश्च गुडूचिभिः।
आयुःकामस्तु दूर्वाभिर्धनार्थी हेमपुष्पकैः ॥ १५० ॥

---

१. क. प्रथमायै।

वश्ये कदम्बकुसुमैर्द्धान्यार्थी धान्यतण्डुलैः ।
साज्यान्नै रत्नकामस्तु वश्ये कुङ्कुमरोचनैः ॥ १५१ ॥

गन्धद्रव्यैस्तु सौभाग्ये नन्द्यावर्त्तैस्तु वाङ्मये ।
करिपुष्पैः सम्पदर्थी पालाशैस्तेजसे हुनेत् ॥ १५२ ॥

कापिलेन घृतेनाऽथ तेजस्वी हवनाद्भवेत् ।
उन्मादनकरो होम उन्मत्तकुसुमैर्हुनेत् ॥ १५३ ॥

विषवृक्षैश्च निम्बैश्च श्लेष्मातकविभीतकैः ।
उलूकगृध्रकाकोत्थपक्षैस्तैलपरिप्लुतैः ॥ १५४ ॥

होमयेद्रिपुनाशाय निशायां वह्निकुण्डके ।
यमाशाभिमुखो नग्नो भूत्वा दृष्टिमलीमसः ॥ १५५ ॥

उच्चाटने वायुभागे विद्वेषो राक्षसे भवेत् ।
[1]ईशाग्नेयादिभागेऽपि शान्तिके प्राङ्मुखो भवेत् ॥ १५६ ॥

पश्चिमे स्तम्भनम्प्रोक्तमुत्तरस्यान्तु देशिकः ।
साधयेत्सर्वकर्माणि पौष्टिकादीनि साधकः ॥ १५७ ॥

पायसैर्गुडखण्डैश्च कुर्यादिक्षुरसैरपि ।
पित्तशान्तिकरो होमस्तन्यङ्केवलमेव वा ॥ १५८ ॥

उन्मादनाशनन्तूर्णम्पायसं घृतसंयुतम् ।
मरीचन्तिलतैलाक्तङ्काशश्वासहरम्भवेत् ॥ १५९ ॥

निर्गुण्डीमूलहोमेन वातदोषविनाशनम् ।
शृण्वथाऽऽकर्षणं शीघ्रमाकृतित्रितयङ्कुरु ॥ १६० ॥

जीवन्यासन्ततः कृत्वा मृदा चक्रिकरोत्थया ।
मधूच्छिष्टेन चाऽन्यापि लवणेनाऽपि पुत्रिकाम् ॥ १६१ ॥

कृत्वा तन्नाम सङ्कल्प्य मृद्रूपाङ्कुण्डके न्यसेत् ।
सप्ताङ्गुलादधः पश्चाल्लावणीम्मेखलागताम् ॥ १६२ ॥

---

१. ख. ईशानेयादि० ।

लम्बयेदूर्ध्वतः पश्चाद्वृक्षे माक्षिकसम्भवाम् ।
लवणम्पेष्यमधुना लावण्या होमयेत्सुधीः　　॥ १६३ ॥

आरभ्य दक्षिणम्पादं वामपादावधि प्रिये ।
पुरुषाणामयं होमः स्त्रीणान्देवि विपर्ययः　　॥ १६४ ॥

सप्तरात्रान्महादेवि क्षुभ्यन्ति विरहातुराः ।
पतन्ति साधकस्याङ्के भयलज्जाविवर्जिताः　　॥ १६५ ॥

लवणन्निम्बतैलेन होमयेच्छत्रुनाशनम् ।
हरिद्राचूर्णसंयुक्तं लवणं स्तम्भने हुनेत्　　॥ १६६ ॥

पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च शुभार्थञ्च यजेद्बुधः ।
मध्याह्ने मध्यरात्रे च कुर्यादुच्चाटनादिकम्　　॥ १६७ ॥

मातङ्गीविग्रहो भूत्वा सर्वकर्माणि साधयेत् ।
आवेशनन्ततः कुर्यात्कन्यानां शतकं सुधीः　　॥ १६८ ॥

कन्यापूजा च कर्त्तव्या योगिनीनां विशेषतः ।
अष्टाष्टकं समभ्यर्च्य मातङ्गीतृप्तिकृत्सुधीः　　॥ १६९ ॥

बलिन्निवेदयेत्पश्चान्मातङ्ग्यास्तु वरानने ।
देवि शक्तिं नमश्चाऽन्ते भगवत्यपि संलिखेत्　　॥ १७० ॥

मातङ्गी च ततो ब्रूयात् चण्डालि च समालिखेत् ।
ततः सर्वजनं चोक्त्वा मे वशञ्च समालिखेत्　　॥ १७१ ॥

आनयेति च संलिख्य द्विठान्तो मनुरुच्यते ।
अनेन बलिदानं स्यान्मातङ्ग्या होमसिद्धये　　॥ १७२ ॥

वटुकादिबलिं तद्वत्सम्यगुत्क्षिप्य साधकः ।
साधयेत्सर्वकर्माणि मातङ्ग्यास्तु प्रसादतः　　॥ १७३ ॥

सारसङ्ग्रहे—

बालात्रिबीजं वाग्बीजं मायाञ्च कमलां वदेत्[1] ।
तारहृद्भूगपानीयं तिश्रीमातं पदं वदेत्　　॥ १७४ ॥

---

१. क. व ।

गेश्वर्यन्ते सर्वजाऽन्ते दीर्घाकालौ च नो वियत् ।
रि सर्वमुखं रं झाद्यं निस्मरौ शक्तिरिन्दिरा ॥ १७५ ॥

मध्ये सर्ववशङ्कर्य्यो: पञ्चसूच्चारयेत्क्रमात्[1] ।
राजस्त्रीपुरुषं दुष्टमृगं सत्वपदं वदेत् ॥ १७६ ॥

लोकं स्यादमुकं मे वशमानय ठयुग्मकम् ।
वैपरीत्येन [2]चाप्युक्तबीजषट्कान्तिको मनुः ॥ १७७ ॥

अक्षरैष्टनवतिमितैरुदित आदरात् ।
अयम्मन्त्रस्त्रिभुवनवशीकारकरः परः ॥ १७८ ॥

आचार्यानुग्रहात्प्राप्यो महापुण्यतमैरयम् ।
दुःप्राप्योऽकृतपुण्यानाम्मुनीन्द्रौघैश्च सेवितः ॥ १७९ ॥
वाञ्छावितरणे कल्पपादपः परिकीर्त्तितः ।

बालात्रिबीजं वक्ष्यमाणं, वाग्बीजं ऐं, माया ह्रीं, कमला श्रीं, तारं ॐ, हृत् नमः, भगस्वरूपम्, पानीयं व, तिस्वरूपं, श्रीमातं-स्वरूपं, गेश्वरि-स्वरूपं, सर्वज-स्वरूपम्, दीर्घा नः, कालो मः, नो-स्वरूपम्, वियत्-ह, रि-स्वरूपम्, सर्वमुख-रं-स्वरूपं, झाद्यं जं, नि-स्वरूपम्, स्मरः क्लीं, शक्तिः ह्रीं, इन्दिरा श्रीं, सर्वराज-वशंकरि, सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि, सर्वदुष्टमृगवशंकरि, सर्वसत्ववशंकरि, सर्वलोक-वशंकरि, अमुकं-स्वरूपं, मे वशमानय-स्वरूपं, ऐं युग्मकं स्वाहा, वैपरीत्येन श्रीं ह्रीं सौः क्लीं ऐं ।

**मातङ्गमनुकोशे—**

सिद्धेऽष्टनवतिवर्णात्मके मन्त्रे सर्वे एव पठितफलाः ।
मन्त्रा भवन्ति तस्मान्मन्त्रमिमं सर्व्वदैव जपेदिति ॥ १८० ॥

तथा—ऋष्याद्याः पूर्वमुदिता मन्त्रस्याऽस्य भवन्ति हि ।
ततस्तु मातृका न्यस्येद् देवताभावसिद्धये ॥ १८१ ॥

---

१. ख. पञ्चसूच्चरियेत्० । २. ख. चाद्युक्त० ।

पञ्चबाणानङ्गुलीषु विन्यसेत्साधकोत्तमः ।
मकरध्वजमन्त्रञ्च तलयोर्विन्यसेत्सुधीः ॥ १८२ ॥

मकरध्वजङेमायाहृदन्तो[1] वाग्भवादिकः ।
मकरध्वजमन्त्रोऽयं सर्ववश्यकरःपरः ॥ १८३ ॥

शिखाशिरोललाटेषु भ्रूमध्ये नेत्रयुग्मके ।
श्रोत्रयोर्घ्राणयोर्वक्त्रे गण्डयोः ककुदि क्रमात् ॥ १८४ ॥

अंसयोरुरसि न्यस्येत्स्तनयोर्हृदयाम्बुजे ।
नाभिमण्डलके लिङ्गे मूलाधारे पदान्यथ ॥ १८५ ॥

त्रयोविंशतिसंख्यानि त्रित्र्येकद्विचतुस्तथा ।
षडष्टसप्तकैकैकचन्द्राष्टदशपङ्क्तिभिः ॥ १८६ ॥
वस्वष्टवन्हिचन्द्राक्षि त्रि-द्वि-त्रि-त्रि-क्रमान्न्यसेत् ।

चन्द्र १, पङ्क्ति १०, वसु ८, वह्नि ३, अक्षि २ ।
एकोनविशंतिं त्यक्त्वा मन्त्रार्णानादितः क्रमात् ॥ १८७ ॥

पदैः षड्भिः षडङ्गानि त्रितारार्द्यैः प्रकल्पयेत् ।
कामशक्तीन्दिराबीजान्युक्तानि च शिखामनौ ॥ १८८ ॥

षड्दीर्घयुक्तमारेण षडङ्गं वा प्रकल्पयेत् ।
द्राविण्याद्याः पुनः पञ्च कुक्षौ पार्श्वयुगे हृदि ॥ १८९ ॥

मणिपूरक एव स्याद्[2] ब्राह्मयाद्या विन्यसेत्ततः ।
पट्टद्वन्द्वसन्धिषु ततो ह्यष्टौ लक्ष्म्यादिका न्यसेत् ॥ १९० ॥

सव्यमारभ्य दोर्द्वन्द्वसन्धिषु क्रमतः सुधीः ।
लक्ष्म्याद्याः पूर्वमुदिताः शक्तीरष्टौ प्रविन्यसेत् ॥ १९१ ॥

कान्ते चैव भ्रुवोर्मध्ये नेत्रश्रोत्रगुदेषु च ।
नासायुग्मे मुखे गण्डद्वन्द्वे जिह्वाग्रदेशके ॥ १९२ ॥

---

१. ख. ०हृतंतो । २. स्या ।

मूलाधिष्ठानतालौ च वामाद्याः षोडश न्यसेत् ।
दक्षाङ्घ्रिद्वन्द्वमारभ्य पादसन्धिषु भैरवान् ॥ १९३ ॥

मातङ्ग्यादिचतुष्कञ्च हृदि नाभौ शिरोगुदे ।
गणेशदुर्गावटुकक्षेत्रपालांस्ततो न्यसेत् ॥ १९४ ॥

कभ्रूमध्यास्यकण्ठेषु मूलेन व्यापकन्न्यसेत् ।
सरस्वतीन्तथा लक्ष्मीं निधियुग्मम्प्रविन्यसेत् ॥ १९५ ॥

आनने च भ्रुवोर्म्मध्ये चरणद्वय एव च ।
एवन्न्यस्ततनुर्मन्त्री[1] ध्यायेद्देवीमनन्यधीः ॥ १९६ ॥

अमृतमहोदधिमध्ये रत्नद्वीपे सकल्पवृक्षवने ।
मणिमयमण्डपमध्ये मणिमयसिंहासनस्योर्द्ध्वे ॥ १९७ ॥

मातङ्गीम्मधुपूरपानमुदितामाघूर्णमानेक्षणाम्,
संस्विद्यद्वदनां कदम्बकुसुमप्रोल्लासिसद्वेणिकाम् ।
वीणाशोभिकराँ सुरक्तवसनामापक्वबिम्बाधराम् ।
कस्तूरीतिलकां शशाङ्कमुकुटां सच्छङ्खपत्रश्रुतिम् ॥ १९८ ॥

आपीनोन्नतशोभ्युरोजविनमन्मध्यांशुकश्यामलां,
ग्रैवेयाङ्गदचारुहाररसनामञ्जीरसंशोभिताम् ।

भक्तौघं वरहास्यसम्मितदृशा सन्तर्प्पयन्तीम्मुदा ।
ध्यायेत्पार्श्वगतन्तथाखिलकलारूपं शुकं[2] भावयेत् ॥ १९९ ॥

पूर्वोक्ते च शुभे पीठे यन्त्रमेतत्प्रकल्पयेत् ।
त्रिकोणम्पञ्चकोणञ्चाऽप्यष्टपत्रङ्कलाच्छदम् ॥ २०० ॥

अष्टपत्रं वेददलञ्चतुरश्रम्मनोरमम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं सर्व्वदृष्टिमनोहरम् ॥ २०१ ॥

---

१. ख. ०न्यस्तनुमन्त्री । २. क. ०कलरूपाँशुकं ।

अत्राऽऽवाह्य यजेद्देवीम्मन्त्री शृङ्गारवेषवान् ।
आदौ लयाङ्गमभ्यर्च्य भोगाङ्गम्पूर्ववद्यजेत् ॥ २०२ ॥

पूर्वोक्तवच्च रत्याद्या यजेन्मन्त्री यथाविधि ।
द्राविण्याद्याः पञ्चकोणेष्वभ्यर्च्या मन्त्रिणा सदा ॥ २०३ ॥

अष्टपत्रे यजेन्मातृर्ल्लक्ष्म्याद्याश्च तदग्रतः ।
वामाद्याः षोडशदले तद्बाह्येऽष्टदले पुनः ॥ २०४ ॥

भैरवानष्ट चाऽभ्यर्च्चेत्तद्बाह्ये च चतुर्द्दले ।
मातङ्ग्याद्या यजेन्मन्त्री तद्बाह्ये गणपादिकान् ॥ २०५ ॥

सरस्वत्यादिकान्मन्त्री तथा च प्रयजेत्ततः ।
लोकपालान्यजेद्बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः ॥ २०६ ॥

एवं सम्पूज्य मातङ्गीं यथाशक्ति मनुञ्जपेत् ।
पुनरभ्यर्च्याऽङ्गषट्कं सुमिष्टान्नैश्च पानकैः ॥ २०७ ॥

सदुग्धैश्च निवेद्याऽथ देवीन्नत्वा ततो बलिम् ।
दद्याद्भक्तेन मन्त्रज्ञस्तेनेष्टं लभतेऽचिरात् ॥ २०८ ॥

नमो भगवतीत्युक्त्वा मातङ्गेश्वरि तत्परः ।
इमम्बलिं गृह्ण-युग्मं स्वाहाशब्दमथोच्चरेत् ॥ २०९ ॥
बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वकामफलप्रदः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातः कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा —

"शिरसि—"दक्षिणामूर्त्तिऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदि—श्रीमातङ्गेश्वरीदेवतायै नमः" इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, प्राग्वन्मातृकां विन्यस्याऽङ्गुष्ठयोः—"द्रां द्राविण्यै मातङ्ग्यै नमः, तर्ज्जन्योः—शों शोषिण्यै मा०, मध्यमयोः—बं बन्धिन्यै मा०,

---

१. क. ०कलारूपांशकं ।

अनामिकयोः—मों मोहिन्यै मा०, कनिष्ठयोः[1]—आं आकर्षिण्यै मा०, करतलयोः—ऐँ मकरध्वजाय नमः" इति विन्यस्य,

"शिखायां—ऐँ क्लीँ सौः नमः, शिरसि—ऐँ ह्रीं श्रीं नमः, एवं ललाटे—ॐ, भ्रूमध्ये—नमो नमः, दक्षनेत्रे—भगवति, वामे—श्रीमातंगेश्वरि, दक्षश्रोत्रे—सर्व्वजनमनोहरि, वामे—सर्वमुखरंजिनि०, दक्षनासिकायां—क्लीं, वामायाँ ह्रीं, मुखे—श्रीं, दक्षगण्डे[2]—सर्वराजवशंकरि, वामे—सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि, ककुदि—सर्वदुष्टमृगवशंकरि, दक्षांसे—सर्वसत्ववशंकरि, वामे—सर्वलोकवशंकरि, उरसि—अमुकं, दक्षस्तने—मे, वामे—वशं, हृदि—आनय, नाभौ—स्वाहा, लिंगे—श्रीं ह्रीं ऐं, मूलाधारे—सौः क्लीँ ऐँ" इति विन्यस्य,

"ऐँ ह्रीँ श्रीँ सर्वजनमनोहरि हृदयाय नमः, ३ सर्वमुखरंजिनि शिरसे स्वाहा, ३ सर्वराजवशंकरि शिखायै वषट्, ३ सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि कवचाय हुं, ३ सर्वदुष्टमृगवशंकरि नेत्राय वौषट्, सर्वसत्ववशंकरि अस्त्राय फट्"

इति करषडङ्गन्यासं विधाय, कुक्षिदक्षवामपार्श्वहृदयनाभिषु पुनर्द्राविण्याद्याः पञ्च विन्यस्य, दक्षिणपादाङ्गुलिमूले—"आं ब्राह्मयै मातङ्ग्यै नमः, गुल्फसन्धौ—ईँ माहेश्वर्य्यै मा०," एवं वामोरुमूलतज्जानुगुल्फसन्ध्यङ्गुलिमूलेषु "कौमार्यादि-महालक्ष्म्यंता" विन्यस्य, वामदोर्मूले—"लक्ष्म्यै मातंग्यै नमः, तन्मध्यसन्धौ—सरस्वत्यै मा०, [मणिबन्धे—रत्यै मा०,[3]] अङ्गुलिमूले—प्रीत्यै मा०, दक्षकराङ्गुलिमूले—कीर्त्यै मा० मणिबन्धे—कान्त्यै मा०, मध्यसन्धौ—पुष्ट्यै मा०, मूले—तुष्ट्यै[4] मा०, शिरसि—वामायै मा०, भ्रूमध्ये—ज्येष्ठायै मा०, दक्षनेत्रे—रौद्र्यै मा०, वामे—शान्त्यै मा०, दक्षकर्णे—श्रद्धायै मा०, वामे—वागीश्वर्य्यै मा०, गुदे—क्रियाशक्त्यै मा०, दक्षनसि—लक्ष्म्यै मा०, वामे[5]—सृष्ट्यै मा०, मुखे—मोहिन्यै मा०, दक्षगण्डे—प्रमथायै मा०, वामे—भाविन्यै मा०, जिह्वाग्रे—विद्युल्लतायै मा०, मूलाधारे—चिच्छक्त्यै मा०, स्वाधिष्ठाने—सुन्दरानन्दायै मा०, तालुनि—नागबुद्ध्यै मा०," इति विन्यस्य,

दक्षपादाङ्गुलिमूले—"अँ असिताङ्गभैरवाय नमः, गुल्फे—इँ रुरुभैरवाय०,

---

१. ख. कनिष्ठिकयोः । २. क.दक्षदण्डे ।

३. [—]ख. अंशस्याऽस्याऽभावः । ४. क. तुष्ट्यै । ५. ख. वामायां ।

जानुनि—चण्डभैरवाय०, ऊरुमूले—ॠं क्रोधभैरवाय०, वामोरुमूले—लृं उन्मत्त-भैरवाय०, जानुनि—एं कपालभैरवाय०, गुल्फसन्धौ—ओं भीषणभैरवाय०, अङ्गुलिमूले-अं संहारभैरवाय०, हृदि-मातङ्ग्यै०, नाभौ-महामातंग्यै, शिरसि-सिद्धलक्ष्म्यै, गुदे—महालक्ष्म्यै मा०, शिरसि—गणेशाय०, भ्रूमध्ये—दुर्गायै, मुखे—बटुकाय०, कण्ठे-क्षेत्रपालाय नम" इति विन्यस्य, मूलेन सर्वाङ्गव्यापकं विन्यस्य, मुखे—'सरस्वत्यै मा०, भ्रूमध्ये—लक्ष्म्यै मा०, दक्षचरणे—शङ्ख-निधये०, वामे—पद्मनिधये नमः" इति विन्यस्य,

ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना त्रिकोणं विधाय, तद्बहिः पञ्चकोणं, तद्बहिरष्टदलं, तद्बहिः षोडशदलं, तद्बहिः पुनरष्टदलं, तद्बहिश्चतुर्दलं[1] तद्बहिश्चतुर्द्वारोपेतचतुरश्रत्रयमिति पूजाचक्रं निर्माय, स्वपुरतः पीठादौ संस्थाप्य, मूलेनाऽभ्यर्च्याऽर्घस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वन्मातङ्गीपीठमभ्यर्च्य, तत्र प्राग्वन्मूर्त्तिकल्पनादिपुष्पोपचारान्ते लयाङ्गमभ्यर्च्य, त्रिकोणाभ्यन्तरे प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणे प्राग्वद्रत्यादित्रयमभ्यर्च्य,[2] पञ्चकोणेषु द्राविण्यादि-बाणपञ्चकं देव्यग्रादि-प्रादक्षिण्येनाऽभ्यर्च्याऽष्टपत्रेषु[3] ब्राह्म्याद्यष्टकं, तदग्रेषु लक्ष्म्याद्यष्टकं, षोडशपत्रेषु वामादि-शक्तिषोडशकं, बाह्येऽष्टदले भैरवाष्टकं, चतुर्दले मातंग्यादिचतुष्कं, चतुरश्रस्याग्नेयादिकोणेषु गणेशादिचतुष्कं, देव्यग्रादि-द्वारचतुष्टये न्यासोक्तं सरस्वत्यादिचतुष्कं, तद्बहिर्लोकपालांस्तत्तदस्त्राणि च सम्पूज्य,

मूलमंत्रं ऋष्यादिन्यासपूर्वकं यथाशक्ति जपित्वा, समर्प्य, धूपदीपौ निवेद्य, नैवेद्यं प्राग्वत्संस्कृत्य, "ॐ नमो भगवति मातंगेश्वरि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति" नैवेद्यमुत्सृज्य, देव्या उत्तरभागे वायव्यादीशानान्तं पङ्क्तिक्रमेण "ऐँ ह्रीँ श्रीँ गुरुभ्यो नमः, एवं ३ परमगुरुभ्यः, ३ परमेष्ठिगुरुभ्यः, ३ परमाचार्यगुरुभ्यः, ३ आदिसिद्धगुरुभ्यः अस्मद्गुरुभ्यो नमः" इति सम्पूज्य, समापयेदिति । तथा—

---

१. ख. नैवायमंशः । २. ख. ०त्रयं समभ्यर्च्य । ३. अस्याऽग्रे 'द्राविण्यादिबाणपञ्चकं देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येनाभ्यर्च्याष्टपत्रेषु' इति द्विरुक्तोऽयमंशो दृश्यते क. पुस्तके, किन्त्वनावश्यकत्वादुपरि नोद्धृतः । (सम्पादकः)

पूर्वमेव जपेल्लक्षम्पुरश्चरणसिद्धये ।
पलाशपुष्पैस्त्रिस्वादुयुक्तैरन्तेऽयुतं हुनेत् ॥ २११ ॥

तर्प्पणम्मार्ज्जनं कुर्याद्भोजयेद्भूसुरानपि ।
कुमारीर्भोजयेच्चाऽपि वशयेत् क्षोभयेज्जगत् ॥ २१२ ॥

मातङ्गीविग्रहो भूत्वा सर्वकर्माणि साधयेत् ।
कुण्डे स्थण्डिले वाऽथ विदध्यात्काम्यकर्म च ॥ २१३ ॥

रक्तवस्त्रपरीताङ्गो रक्तमाल्यानुलेपनः ।
घृताक्तैर्गुग्गुलैर्हुत्वा राज्ञः स वशयेत्सुधीः ॥ २१४ ॥

मल्लिकाजातिपुन्नागैर्जुहुयाद्भाग्यवान्भवेत् ।
राज्यार्थी बिल्वपत्रैश्च हुनेत्पद्मैर्विशेषतः ॥ २१५ ॥

श्रीकामः श्वेतपद्मैश्च रक्तैर्वाऽपि च संहुनेत् ।
उत्पलैर्धनकामस्तु लक्ष्मीपुष्पैश्च होमयेत् ॥ २१६ ॥

बन्धूकैश्चैव वागर्थी किंशुकैर्वकुलैर्हुनेत् ।
वश्यार्थी मधुसंयुक्तैर्मधूककुसुमैर्हुनेत् ॥ २१७ ॥

आकर्षणे तु लवणैस्तिलैर्मधुरसंयुतैः ।
वञ्जुलैर्वृष्टिमाप्नोति गुडूचीभिर्ज्वरं हरेत् ॥ २१८ ॥

अन्नाय जुहुयादन्नन्धान्यार्थी शालितण्डुलैः ।
गन्धद्रव्येण होमस्तु सर्वसौभाग्यदो भवेत् ॥ २१९ ॥

कुङ्कुमैः रोचनाभिर्वा होमो वश्यार्थिनाम्मतः ।
नन्द्यावर्त्तैश्च वागर्थी स्त्र्यर्थी निम्बप्रसूनकैः ॥ २२० ॥

पलाशपुष्पैस्तेजोर्थी कपिलाज्येन वा हुनेत् ।
शत्रोरुन्मादकृद्धोम उन्मत्तकुसुमैर्हुनेत्[1] ॥ २२१ ॥

विषवृक्षाह्वनिम्बाख्यश्लेष्मातकबिभीतकैः ।
विषवृक्षः कुचिलेति प्रसिद्धः, श्लेष्मातकः लसोरेति प्रसिद्धः कान्यकुब्जभाषया ।

१. ख० कुसुमैरपि ।

उलूककाकगृध्रोत्थपक्षैस्तैलपरिप्लुतैः ॥ १२२ ॥

निम्बतैलपरिप्लुतैः । "पिचुमन्दकतैलसेवितैर्बलिभुक्कौशिकगृध्रपक्षकै" रिति—**मनुकोशैकवाक्यात्** ।

होमयेद्रिपुनाशाय निशायां वह्निकुण्डके ।

वह्निकुण्डे त्रिकोणकुण्डे ।

पायसैर्गुडसम्मिश्रैः खण्डैरिक्षुरसैस्तथा ॥ २२३ ॥

उन्मादनाशनो होमः पायसैर्घृतसम्प्लुतैः ।
मरिचन्तिलतैलाक्तं काशश्वासज्वरापहम् ॥ २२४ ॥

निर्गुण्डीमूलहोमेन निगडस्य विमोचनम् ।
अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि जीवस्याऽऽकर्षणम्परम् ॥ २२५ ॥

साध्यप्रतिकृतीः कुर्याच्चतस्रो मन्त्रवित्तमः ।
एका साध्यर्क्षवृक्षोत्था मधूच्छिष्टेन चापरा ॥ २२६ ॥

परा कुलालमृद्भूता शालिपिष्टोद्भवा परा ।
हृदा लिखितसाध्याख्याः कृतासु-स्थापनाः शुभाः ॥ २२७ ॥

एतां[1] स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरशतम्पृथक् ।
कुण्डाधो द्व्यङ्गुलाम्मूर्त्तिमुत्तानान्तरुजां खनेत् ॥ २२८ ॥

स्वासनाधः[2] पिष्टभवाम्मृदूत्थान्निखनेत्ततः ।
पादन्यासस्थलाधस्ताल्लम्बयेदूर्ध्वमम्बरे ॥ २२९ ॥

मधूच्छिष्टमयीमूर्द्ध्वपादान्तामप्यवाङ्मुखीम् ।
धूमेन स्पृश्यमानाञ्च ततो लोणं घृतप्लुतम् ॥ २३० ॥

गुडमाक्षिकसंयुक्तं [3]कुडवम्पेषयेत्ततः ।
तेन प्रतिकृतिं[4] कृत्वा स्पष्टाङ्गीमतिमञ्जुलाम् ॥ २३१ ॥

---

१. ख. एताः । २. क. स्वसनाधः । ३. क. कुंडवं । ४. क. प्रतिं० ।

रक्तमाल्याम्बरालेपः कृतन्यासविधिः स्वयम् ।
प्रतिमायान्तु संहारवर्त्मनाऽणुम्प्रविन्यसेत् ॥ २३२ ॥

तामप्रतिष्ठितप्राणाम्मन्त्री तदनुपूर्ववत् ।
असिना सप्तधा छित्वा तां साध्यर्क्षतरूद्भवे[1] ॥ २३३ ॥

अनले जुहुयात्साध्यं संस्मरंश्च निशामुखे ।
एकोऽङ्घ्रिरूपमूलादि द्वितीयोऽर्द्धशरीरतः ॥ २३४ ॥

तृतीयो बाहुमूलादि चतुर्थो मस्तकेन च ।
भागस्तु पञ्चमो दोष्णः[2] षष्ठो देहार्द्धतः परः ॥ २३५ ॥

ऊरुमूलादिकस्त्वेवं स्त्रीणां वामादि कल्पयेत् ।
पुंसान्दक्षिणभागादिरेकं[3] वा सप्तधा पृथक् ॥ २३६ ॥

अथवैकादशांशा वा गुल्फजानूरुखण्डतः[4] ।
एवं सप्ताहतो नार्यः संक्षुब्धा मदनातुराः ॥ २३७ ॥

स्विद्यदङ्ग्यो[5] वेपमानाः साधके न्यस्तमानसाः ।
विश्लिषत्पृथुलोत्तुङ्गनितम्बवसनाः शुभाः ॥ २३८ ॥

त्राहि त्राहि क्षमस्वेति पश्य मान्न परित्यज ।
इत्थं सर्वा व्याहरन्त्यः करुणायुक्तमानसाः ॥ २३९ ॥

पतन्ति साधकस्याऽग्रे मदनानलदीपिताः ।
तिष्ठन्ति दासवच्चाऽस्य मन्त्रिणो योषितः सदा ॥ २४० ॥

लवणन्तिलतैलाक्तं होमयेच्छत्रुनाशनम् ।
हरिद्राचूर्णसंयुक्तं लवणं स्तम्भने मतम् ॥ २४१ ॥

नक्षत्रवृक्षास्तु—

तन्त्रराजे (जे ?)—

कारस्करश्चामलकोदुम्बरो जम्बुकस्तथा ।
खदिरः कृष्णवंशौ च पिप्पलो नागरोहिणौ ॥ २४२ ॥

१. ख.० ततूद्भवे । २. क. दोशाः । ३. रेवं । ४. क. गुल्फजानुरु० ।
५. क. स्विद्यदङ्गया ।

पलाशः प्लक्षकाम्बौष्ठौ विल्वाज्र्जु नविकङ्कताः ।
वकुलः शंवरः सर्ज्जो वन्जुलः पनसस्तथा ॥ २४३ ॥

अर्क्कः शमी कदम्बश्च चूतो निम्बस्तथैव च ।
मधूकश्चेति सम्प्रोक्ता वृक्षा भानां क्रमादमी ॥ २४४ ॥

अथात इत्यादि सदेत्यन्तस्य जीवाकर्षणप्रयोगप्रतिपादकस्य श्लोकसमुदायस्याऽयमर्थः—साध्यर्क्षवृक्षेण मधूच्छिष्टेन शालितण्डुलपिष्टेन कुलालहस्तमृत्तिकया चैकैकां पुत्तलीं[1] कृत्वा, तासां हृदयेषु 'अमुकं मे वशमानये'ति साध्यनामालिख्य, तासु साध्यप्राणान्संस्थाप्य,ताः स्पृष्ट्वा, प्रत्येकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत् । अत्र मूलमन्त्रजपे अमुकपदस्थाने साध्यनाम संयोज्य जपेत् ।

अमुकपदं यद्रूपं यत्र मन्त्रेषु दृश्यते ।
साध्याभिधानं तद्रूपं तत्र स्थाने निवेशयेत् ॥ २४५ ॥

इति **नारायणीवचनात्** ।

कुण्डमध्ये ह्यङ्गुलाधः काष्ठमयीं पुत्तलीमुत्तानरूपां निखाय, स्वासनस्याऽधस्तथा पिष्टमयीं स्वपादन्यासस्थाने मृण्मयीं निक्षिपेत् । अत्र लवणेन सह निखनेदिति **सम्प्रदायः** । ततो मधूच्छिष्टमयीमधोमुखीमूर्द्ध्वपादार्कतूलतन्तुना पादयोर्बद्ध्वा, कुण्डादूर्ध्वधूमेन स्पृश्यमानां लम्बयित्वा, कुडवमात्रलवणं[2] घृतमधुगुडसहितं श्लक्ष्णं पेषयित्वा, तेन पुत्तलीं कृत्वा, स्वयं यथोक्तवेषन्यासादियुक्तो लवणमय्यां पुत्तल्यां मूलविद्यायाः प्रोक्तपदानि संहाररीत्या विन्यस्याऽन्यानपि स्वदेहकृतन्यासांस्तस्यां संहाररीत्यैव विन्यस्याकृतप्राणप्रतिष्ठाँ तामूरुमूलात्पादद्वयाग्रान्तमेकैकं भागं कटेः कण्ठावधि दैर्घ्येण द्विधाकृतभागद्वयं, बाहुद्वयेन भागद्वयं, कण्ठादूर्ध्वभागैकमिति सप्तधा तीक्ष्णशस्त्रेण छित्वा, घृतप्लुतमेकमेकं भागं संस्कृतेऽग्नौ साध्यर्क्षवृक्षसमिद्धे साध्यं स्मरन्निशामुखे मूलमन्त्रेण जुहुयात् । साध्यः पुरुषश्चेद्दक्षिणपादमारभ्य जुहुयात् । स्त्री चेद्वामपादमारभ्येति । अथवैकमेकं भागं सप्तधा कृत्वोक्तविधिना जुहुयात् । यद्वा गुल्फद्वयजानुद्वयछेदेनैकादशधा कृत्वा जुहुयादिति । **पुत्तलीमानन्तु—**

---

१. ख. पुत्तलींकां ।

२. ख. पुस्तकस्य वामभागस्थरिक्तस्थाने 'कुडवश्चतुःपलं पलमत्र टंकाधिकपञ्चतोलं' इति टिप्पणं विशेषमवलोक्यते ।

मत्स्येन्द्रसंहितायाम्—

आयामः पादयोस्तस्या आकट्याश्चतुरङ्गुलम् ।
पादोनद्व्यङ्गुलः कुक्षिस्तावदेवाङ्गुलः करः ॥ २४६ ॥

अङ्गुलद्वयमावक्त्रात्कण्ठदेशस्य मानकम् ।
सशिरोवक्त्रमानन्तु सार्द्धद्व्यङ्गुलमीरितम् ॥ २४७ ॥

द्वादशाङ्गुलिभिः सर्वाः सम्यक् पुत्तलिकाः शुभाः ॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

मातङ्गीप्रीतये मन्त्री भौमवारे प्रपूजयेत् ।
कन्यामेकामथो तिस्रः पंच सप्ताऽथ वा पुनः ॥ २४८ ॥

स्वादुभिर्भक्ष्यभोज्यैश्च स्वन्नपानैर्मनोहरैः ।
पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च स्तुत्या पूज्यास्तु देशिकैः ॥ २४९ ॥

वीणाहस्ता गायकाश्च पूज्याः सर्वेऽपि यत्नतः ।
सर्ववर्णा रमण्यश्च स्वन्नपानैर्मनोहरैः ॥ २५० ॥

अर्चनीयाश्च मन्त्रज्ञैः सर्वभावेन सर्वदा ।
सर्वा नार्य्यो भावनीयाः श्यामा[1] एवाऽत्र मन्त्रिणा ॥ २५१ ॥

भौमवारे तथा पिष्टमयान्दीपांश्च कारयेत् ।
प्रज्वालयेद् घृतेनैतान् मातङ्गीप्रीतये बुधः ॥ २५२ ॥

मातङ्गीप्रीतये मन्त्री योगिन्यष्टाष्टकं यजेत् ।
वाग्भवाद्याः प्रपूज्यास्ता प्रोच्यन्ते ता यथाक्रमम् ॥ २५३ ॥

दिव्याद्या योगिनीपूर्वा महदाद्या तथाऽपरा ।
सिद्धादिका गणेश्वर्या प्रेताशिन्यपि कीर्त्तिता[2] ॥ २५४ ॥

---

१. क. स्यामा । २. ख. कीर्त्तितः ।

डाकिनी च तथा काली कालरात्री निशाचरी ।
ऊर्ध्वकेशी विरूपाक्षी शुष्काङ्गी भोजिनी मता ॥ २५५ ॥

जटाधारिण्यपि तथा वीरभद्रेश्यपीरिता ।
धूम्राक्षी षोडशाऽप्येता ईशानादि[1] प्रपूजयेत् ॥ २५६ ॥

कलहाद्या प्रिया चाऽन्या राक्षस्यन्या प्रकीर्त्तिता ।
गदिता घोररक्ताक्षी विश्वरूपा भयङ्करी ॥ २५७ ॥

वीराद्या च कुमारी स्यान्मुण्डधारिण्यपीरिता ।
भयासुरा रुद्ररूपा झङ्कार्यपि च भीषणा ॥ २५८ ॥

त्रिपुरान्तकभैरव्यौ[2] विध्वंसिन्यपि सम्मता ।
क्रोधिनी दुर्मदा ज्ञेया आग्नेयादि प्रपूजयेत् ॥ २५९ ॥

हंसी च दित्या खट्वाङ्गी दीर्घा लम्बोष्ठयान्विता ।
तापिनी मन्त्रयोगिन्यौ कालाग्निग्राहिणी परा ॥ २६० ॥

चक्रिण्यन्या च कङ्काली भुवनेश्वर्य्यपीरिता ।
हङ्कारी[3] स्याच्च कौमारी यमदूती करालिनी ॥ २६१ ॥

नैर्ऋत्यादि यजेदेता योगिन्यः षोडश क्रमात् ।
कोशिनी मर्दिरा पश्चाल्लोमजङ्घा तथा मता ॥ २६२ ॥

असच्चारिण्यपि[4] परा लामरी कामुकी मता ।
लोमकाऽधोमुखी तद्वन्मता कुण्डोग्ररूपिणी ॥ २६३ ॥

व्याघ्री सर्वजटी चाऽन्या विकटा घोरया सह ।
कपालिनी समुद्दिष्टा षोडश्यरिविनाशिनी ॥ २६४ ॥

वायव्यादि यजेदेता योगिन्यः षोडश क्रमात् ।
लक्षार्द्धम्प्रजपेन्मन्त्रं क्षोभयेत्सर्वयोषितः ॥ २६५ ॥

---

१. क. इशान्यादि । २. क. त्रिपुराकन्त० । ३. क. हंसकारी ।
४. क. असधारिण्यपि ।

पृथ्वीश्वरांस्तदर्द्धेन वशयेन्नाऽत्र संशयः ।
तदर्द्धेन च सत्वानि वशगानि भवन्ति हि ॥ २६६ ॥

दूरस्था योषितः सर्व्वा आयान्त्ययुतजापतः ।
नेदीयसीस्तदर्द्धेन समायान्त्येव निश्चितम् ॥ २६७ ॥

सहस्रत्रयतः सर्ववाञ्छिताप्तिर्भवेद्ध्रुवम् ।
मातङ्गेशीमहामन्त्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २६८ ॥

सकृदुच्चारमात्रेण सर्वलोकप्रियो भवेत् ।
गोपनीयः प्रयत्नेन भोगमोक्षफलप्रदः ॥ २६९ ॥

आदौ वह्निपुरे लिखेत्प्रविलसद्वाक्शक्तिनामाक्षरां—
स्तत्कोणेषु मनोभवाद्रितनयालक्ष्मीमनून्बाह्यतः ।
षट्कोणेषु च बीजषट्कमपरान्पत्रेषु पञ्चस्वथो,
[1]वह्न्यम्भोधिरसाष्टसप्तकमितान् मन्त्रस्य वर्णान्बहिः ॥ २७० ॥

पत्रेष्वष्टसु रुद्रदिग्युगवसुद्वन्द्वग्रहद्वचक्षरा-
नन्ते तर्क्कमनुन्ततश्च परितो मन्त्रेण संवेष्टयेत् ।
बाह्ये मातृकया क्रमोत्क्रमवशात्साध्याक्षरैर्भूपुर—
म्भूगेहास्त्रिषु साध्यनामसहितङ्कामं लिखेन्मन्त्रवित् ॥ २७१ ॥

दिग्युगं दशकद्वयं, तेन द्वितीयतृतीयदलयोर्द्दश दश वर्णान् लिखेदित्यर्थः ।

सुवर्णरचिते पट्टे लेखन्या स्वर्णरूप्ययोः ।
राजते फलके वाऽपि भूर्ज्जे वा सुमनोहरे ॥ २७२ ॥

सरोचनाकुङ्कमचन्दनेन,
कस्तूरिकालक्तकरक्तशीतैः ।
स्वयं शुचिः साधु च मानवानां
सौभाग्यसिद्ध्यै विलिखेच्च यन्त्रम् ॥ २७३ ॥

---

१. क. वह्न्यम्भोधिरसष्ट० ।

एतद्यन्त्रं लिखित्वैवं घृतसम्पातपूर्वकम् ।
हुत्वा प्रजप्य सम्पूज्य गुलिकीकृत्य साधकः ॥ २७४ ॥

साभिषेकः[1] स्वयम्बाहौ दक्षिणे तद्धि धारयेत् ।
पूज्यते त्रिदशाद्यैश्च किम्पुनर्मानवोत्तमैः ॥ २७५ ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्य्यमन्यद्यद्यत्स्ववाञ्छितम् ।
पुत्रपौत्रादिकञ्चाऽपि लभते नाऽत्र संशयः ॥ २७६ ॥

**अस्यार्थः**- भूर्ज्जादौ प्रोक्तद्रव्यैरुक्तलेखन्या त्रिकोणमालिख्य, तन्मध्ये-साध्यनामसहितं वाग्भवबीजञ्चाऽलिख्य, तत्कोणेषु कामबीजं, शक्तिबीजं, श्रीबीजञ्चालिख्य,

तद्बहिः षट्कोणं कृत्वा तत्कोणेषु–स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मन्त्रादिगतबीज-षट्कं विलिख्य,

तद्बहिः पञ्चदलपद्मं विरच्य, [तत्प्रथमदले –'ॐ नमो, द्वितीये–भगवति, तृतीये-श्रीमातङ्गेश्वरि, चतुर्थे–सर्वजनमनोहरि, पञ्चमे—सर्वमुखरंजनो" ति स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन विलिख्य तद्बहिरष्टदलपद्मं विरच्य][2] तद्दलेषु स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन प्रथमदले—कामशक्तिश्रीबिजानि सर्वराजवंशकरीति चालिख्य, द्वितीये— सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि, तृतीये- सर्वदुष्टमृगवशंकरि, चतुर्थे – सर्वसत्वव-शंकरि, पञ्चमे सर्वलोकवशंकरि, षष्ठे—अमुकं मे वशमानय, सप्तमे - स्वाहा, अष्टमेऽन्तिमबीजषट्कञ्च विलिख्य,

तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, वृत्तयोरन्तराले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मूलमन्त्रे-णावेष्टय,

तद्बहिर्वृत्तं कृत्वा तत्रस्थवीथ्यां स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन सबिन्दुभिर्मातृका-वर्णैरावेष्ट्याऽन्ते साध्यनामालिख्य,

तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तत्कोणेषु साध्यनामयुतं कामबीजं लिखेदेतद्यन्त्र-मुक्तफलदम्भवति ।

---

१. ख. स्वाभिषेकः । २. [–] कोष्ठस्थांशस्यऽभावः क. पुस्तके ।

**मतंगमनुकोशे**—

मायाहृदोरथांते हिलि हिलि पदमुच्चरेच्च ततः ।
चण्डपदान्मातङ्गिनि वह्नेर्जयेति[1] मन्त्रोऽयम् ॥ २७७ ॥

पूजाजपादि सर्वं सम्प्रोक्तं राजमातंग्याः ।
अयुतजपाद् घृतपायसहोमात् सिद्धो भवेन्मन्त्रः ॥ २७८ ॥

तथा—वाग्भवं हृदयञ्चाऽथ श्रीमातङ्गिपदं वदेत् ।
अमोघे सत्यवादिनि मम कर्णे पदन्ततः ॥ २७९ ॥

अवतरपदं वीप्सं सत्यं कथयेति कथय-पदम् ।
एह्येहि-पदाभ्यामपरतः श्रीमातङ्ग्यै नमस्तदनु ॥ २८० ॥

वीप्सं द्विरुच्चार्य्यम् ।

मन्त्रोऽयं लक्षजापाद्दशांशहोमाच्च पायसघृताद्यैः ।
सिद्धः कर्णे कथयति शुभाशुभं पृच्छकस्याऽऽशु ॥ २८१ ॥

तथा—तस्मादपि शतगुणफलदं देव्या मूलमन्त्रमथ वच्मि ।
सिद्धेन येन बहवो मन्त्राः पठनेन सिध्यन्ति ॥ २८२ ॥

वाङ्मायाश्रीबीजं बालाबीजत्रयन्ततः कामः ।
मायाश्रीबीजमाद्यो श्रीमातङ्गेश्वरीति पदम् ॥ २८३ ॥

सर्ववशङ्करिपदतः स्वाहाकारन्ततश्च वदेत् ।
सद्यः फलदो ज्ञेयः श्रीमातंग्या मूलमन्त्रोऽयम् ॥ २८४ ॥

तस्मादष्टनवत्यक्षरमन्त्रात् । मन्त्रोद्धारः सुगमः । तथा—

बालाबीजैस्त्रिभिरथ द्विःप्रोक्तैः करषडङ्गविधिः ।
ध्यात्वा प्राग्वद्देवीं गन्धादिनाऽर्च्चयेद् भक्त्या ॥ २८५ ॥

प्राग्वदष्टनवत्यक्षरमन्त्रवत् । पूजनमपि तत्रोक्तमेव । तथा—

श्रीमातङ्गीदेव्याः सिध्यति मन्त्रस्त्रिलक्षजपात् ।
पुष्पैर्मधूकजैरथ मधुरत्रयलोलितैः कृतो होमः ॥ २८६ ॥

---

१. क. वह्निजायेति ।

सघृतेन पायसेन च फलैश्च तथा कदल्याः फलदायी ।

**प्रपञ्चसारे—**

कामिनि रंजिनि ठद्वयमपरमिति ठद्वयं स्वाहा ॥ २८७ ॥

ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो निचृत्प्रोक्ताऽस्य देवता ।
सर्वसम्मोहिनी चाऽङ्गं द्विरावृत्तिपदैर्भवेत् ॥ २८८ ॥

श्यामाङ्गीं वल्लकीन्दोर्भ्यां वादयन्तीं सुभूषणाम् ।
चन्द्रावतंसां विविधैर्गानैर्म्मोहयन्तीं[1] जगत् ॥ २८९ ॥

पूजा मातङ्गिनीपीठे रत्याद्यास्तु त्रिकोणके ।
पञ्चबाणास्ततः पूज्याः केसरेष्वङ्गपूजनम् ॥ २९० ॥

अनङ्गकुसुमाद्यास्तु पत्रेष्वग्रेषु मातरः ।
लोकपालैश्च वज्राद्यैः सप्तावृत्तिरियम्मता ॥ २९१ ॥

प्रजपेदयुतद्वन्द्वं दशाशञ्जुहुयात्ततः ।
मधूकजैस्त्रिमध्वक्तैः सर्वं सम्मोहयेज्जगत् ॥ २९२ ॥

प्रयोगः सुगम इति ।

**मातङ्गमनुकोशे—**

उच्छिष्टशब्दं पुरतो निधाय ।
चण्डालिमातङ्गिपदे च भूयः ।
पदन्ततः सर्ववशङ्करीति,
नमोऽग्निपत्न्योर्मनुरेष मध्ये ॥ २९३ ॥

नमःपदादिः स्वाहान्त एकोनविंशत्यक्षरो मन्त्रः । अत्र केचित् चाण्डालीति दीर्घञ्चकारं वदन्ति । तन्न ।'हृच्छोत्रं चान्तनेत्रेष्टकूर्मश्चैवेन्दुखण्डवानि'ति । **सारसङ्ग्रहे**—मन्त्रोद्धारे चकारस्य ह्रस्वदर्शनात् । अस्य भेदानाह तत्रैव ।

'तारत्रयादिर्मनुरेष जप्तः सर्वार्थसिद्धि विदधाति नूनम् ।'
तारत्रयं वाङ्मायाश्रीबीजात्मकम् । तथा—
कामराजभुवनेश्वरीरमा-
बीजयुक् सपदि विश्ववश्यकृत् ।

---

१. ०मोहयतीं ।

मन्त्र एष यदि वा स्मरादिकः ।

स्यादशेषजनरञ्जनक्षमः[1] ॥ २६४ ॥

प्रथमोक्तत्रिमारादिमन्त्रस्य तुम्बुरुर्नारदऋषिरिति । इतरयोस्तु—

मदनोऽस्य ऋषिः प्रोक्तछन्दो निचृदन्विता च गायत्री ।

विश्वस्य वशहेतुर्मातङ्गी देवता प्रोक्ता ॥ २६५ ॥

दृग्वन्हिलोकानल षट्द्विवर्ण—

रङ्गक्रियाऽप्यस्य मनोः प्रदिष्टा ।

अङ्गानि मन्त्रवर्णैरेवं कृत्वाथ देवतां ध्यायेत् ।

दृग्द्वयं, वह्न्यस्त्रयः ।

मातङ्गीन्नवयावकार्द्रचरणामुल्लासिकृष्णांशुकां,

वीणोल्लासिकरां समुन्नतकुचां मुक्ताप्रवालावलीम् ।

हृद्याङ्गीं सितशङ्खकुण्डलधराम्बिम्बाधरां सस्मिता-

माकीर्णालकवेणिमब्जनयनां ध्यायेच्छुकश्यामलाम् ॥ २६६ ॥

त्र्यस्रं वसुदलयुग्मं चतुरश्रम्पीठमेतस्याः ।

अस्त्रेऽर्च्या रत्याद्याः पत्रेषु ब्राह्म्याद्यास्ततोभ्यर्च्याः ॥ २६७ ॥

मातङ्ग्यन्ताः सर्वा अनङ्गकुसुमादिकाश्च पत्रेषु ।

देवीपादतलाग्रे पूज्यास्ता बाणदेवताः सर्वाः ॥ २६८ ॥

अङ्गानि च तत्पार्श्वे मध्ये देवीं यजेच्च पुनः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, केवलविद्यायाः तारत्रयादिविद्याया वा 'सतुम्बुरवे नारदऋषये नमः", इतरविद्ययो"मदनाय ऋषये नमः, निचृद्गायत्रीछन्दसे नमः, श्रीमातङ्गेश्वरीदेवतायै नमः" इति यथास्थानं विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

इत्युक्त्वा—"नमः हृदयाय नमः, उच्छिष्टशिरसे स्वाहा, चण्डालि शिखायै वषट्, मातङ्गि कवचाय हुँ, सर्ववशंकरि नेत्राय वौषट्, स्वाहाऽस्त्राय फट् ।" इति करषडङ्गन्यासं विधाय,

१. ख. स्यादसेष० ।

ध्यानमानसपूजान्ते प्राग्वत्स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिनाऽष्टदलमन्तर्बहिर्विभागेन कृत्वाऽन्तरष्टदलकर्णिकायां स्वाभिमुखाग्रं त्रिकोणं विधाय, पद्माद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तं चतुरश्रत्रयञ्च कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, स्वपुरतः संस्थाप्याऽभ्यर्च्याऽर्घादिपात्रस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वन्मातङ्गेश्वरीपीठमभ्यर्च्याऽऽवाहनादिपुष्पोचारान्ते त्रिकोणत्रिकोणेषु प्राग्वत् "रत्याद्याः" सम्पूज्य, त्रिकोणाद्बहिः पद्मकर्णिकायामेव प्राग्व"त्पञ्चबाणान्षडङ्गानि" च सम्पूज्य, प्रथमाष्टदलेषु — "ब्राह्म्याद्या", द्वितीये—"ऽनंगकुसुमाद्याः" सम्पूज्य, चतुरश्रे—"लोकपालांस्तदस्त्राणि" च सम्पूज्य प्राग्वद्धूपादि सर्वं समापयेदिति । तथा—

अयमनुलोमविलोमितबालान्तस्थस्तथा जप्तः ।
वाग्मिताञ्च कवित्वन्दत्ते गानस्य शक्तिमपि ॥ २९९ ॥

अन्यत् सर्वम्प्राग्वद् ऋषिरस्य दक्षिणामूर्त्तिः ।
अङ्गक्रिया पुरोवद्बालाबीजत्रयाभ्यासात् ॥ ३०० ॥

अंसे वेणीकुसुमनिचयाचूलिकानीलचूडा—
म्मुक्ताभूषाम्पृथुकुचनतां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
माध्वीमत्ताम्मधुरवचनां श्यामलां कोमलाङ्गी—
म्मातङ्गीन्तां सकलफलदां सन्ततम्भावयामि ॥ ३०१ ॥

त्रिकपञ्चकाष्टयुगलं षोडशकाष्टौ चतुष्कञ्च ।
पीठेऽस्मिन्सम्पूज्या श्रीदेवी भक्तिभावेन ॥ ३०२ ॥

त्रिकं त्रिकोणं, पञ्चकादि पञ्चदलादीनि पद्मानि, चकाराच्चतुर्द्वारयुक्तं चतुरश्रत्रयञ्च ।

त्र्यस्रेऽर्च्या रत्याद्या इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीश्च ।
पञ्चदलेषु ततोऽर्च्याः प्राग्वत्ता बाणदेवताः कन्याः ॥ ३०३ ॥

अष्टदले ब्राह्म्याद्याः कन्या दीर्घस्वरैः क्रमात्पूज्याः ।
बाह्येऽष्टदलेऽपि यजेदनङ्गकुसुमादिकाश्च कन्यास्ताः ॥ ३०४ ॥
पूज्याश्च षोडशारे षोडशकन्यास्तु गन्धाद्यैः ।
उर्वशीकन्यकाम्पूर्वम्मेनकाकन्यकान्ततः ।
रम्भाः घृताच्याः कन्ये च मञ्जुकेश्याश्च कन्यकाम् ॥ ३०५ ॥

तथैव काश्यपीकन्यां सुकेशीकन्यकान्ततः ।
मञ्जुस्थल्याः कन्याञ्च पूजयेद्भक्तियोगतः ॥ ३०६ ॥

सनागयक्षगन्धर्वसिद्धकिन्नरकन्यकाः ।
विद्याधरकिम्पुरुषपिशाचानाञ्च कन्यकाः ॥ ३०७ ॥

पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैः स्वनमाद्यक्षरान्विताः ।
अभ्यर्च्चयेत्ततोऽष्टारे अणिमासिद्धिकन्यकाम् ॥ ३०८ ॥

महिमासिद्धिकन्याञ्च लघिमासिद्धिकन्यकाम् ।
परकायप्रवेशिन्याः कन्यकाम्पूजयेत्ततः ॥ ३०९ ॥

कन्यकान्दूरदर्शिन्याः गुटिकासिद्धिकन्यकाम् ।
कन्यामञ्जनसिद्धेश्च पादुकासिद्धिकन्यकाम् ॥ ३१० ॥

ततश्चतुर्षु द्वारेषु पूजयेद् द्वारदेवताः ।
ततञ्च विततञ्चाऽथ घनञ्च शुषिरं[1] बहम् ॥ ३११ ॥

अग्निकोणेऽथ वटुकं गणेशं नैऋतेऽर्चयेत् ।
क्षेत्रपालञ्च वायव्यामैशान्यां योगिनीरपि ॥ ३१२ ॥

उच्छिष्टशब्दपुरतः पादुकाम्पूजयाम्यथ ।
स्वनामाद्यक्षरम्बीजङ्कृत्वा गन्धादिनाऽर्च्चयेत् ॥ ३१३ ॥

पुनः सर्वोपचारैश्च मध्ये भगवतीं यजेत् ।
स्वराः सर्वे श्रुतियुता वामभागे ततः परम् ॥ ३१४ ॥

रागाश्च रागिणीयुक्ताः पूज्याः पार्श्वे च दक्षिणे ।
अभ्यर्च्य परमेश्वर्याः पार्श्वयोः शुकसारिके ॥ ३१५ ॥

पुरतो गुरुपङ्क्तिञ्च स्वगुरुम्पूजयेत्ततः । इति ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते "शिरसि–दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः, मुखे–निचृद्गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये–श्रीमातङ्गेश्वर्यै देवतायै नमः" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

---

१. ख. सुषिरं ।

इत्युक्त्वा—ऐँ नमः हृदयाय नमः, क्लीँ उच्छिष्टशिरसे स्वाहा०, सौः चण्डालिशिखायै वषट्, ऐँ मातंगि कवचाय हुँ, क्लीँ सर्ववशंकरि नेत्राय वौषट्, सौः स्वाहा अस्त्राय फट्" इति करषडङ्गं विधा"यांसे वेणी"मित्यादि ध्यात्वा, मानसपूजान्ते—

त्रिकोणगर्भपञ्चदलकमलं, तद्बहिरष्टदलं, तद्बहिरप्यष्टदलं, तद्बहिः षोडशदलं, तद्बहिश्चतुर्द्वारोपेतं चतुरश्रत्रयमिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वदभ्यर्च्याध्यात्मपूजान्ते प्राग्वन्मातङ्गीपीठमभ्यर्च्याऽऽवाहनादि पुष्पोपचारान्ते प्राग्वल्लयाङ्गं सम्पूज्य,

त्रिकोणेऽग्रादि प्रादक्षिण्येन "रँ रत्युच्छिष्टपादुकां पूययाभि०, प्रीँ प्रीत्युच्छिष्टपा०, मं मनोभवोच्छिष्टपा०", पुनस्त्रिकोणे—"इँ इच्छाशक्त्युच्छिष्टपा०, ज्ञाँ ज्ञानशक्त्युच्छिष्टपा०, क्रियाशक्त्युच्छिष्टपा०, ततः पूर्ववदङ्गानि सम्पूज्य,

पञ्चदलेषु—"द्राँ द्राविणीकन्योच्छिष्ट–पा०, शों शोषिणीकन्योच्छिष्टपा०, मोँ मोहिनीक०, आँ आकर्षिणीक०",

ततोऽष्टदलेषु—"ब्राँ ब्राह्मीक०, ईँ माहेश्वरीक०", इत्याद्यष्टशक्तीरभ्यर्च्य,

द्वितीयेऽष्टदले—"अँ अनङ्गकुसुमाक०", इत्यादि पूर्वोक्ताः सम्पूज्य,

षोडशदलेषु—"उँ उर्वशीक०, मेँ मेनकाक०, रँ रम्भाक०, घृँ घृताचीक०, मँ मञ्जुकेशीक०, काँ काश्यपीक०, सुँ सुकेशीक०, मँ मञ्जुस्थलीक०,* नां नागक* यँ यक्षकन्या० गँ गन्धर्वक०, सिँ सिद्धक०, किँ किन्नरक०, विँ विद्याधरक०, किँ किम्पुरुषक०: पिं पिशाचक०" इति सम्पूज्य,

तद्बहिरष्टदलेषु—"अँ अणिमासिद्धिक०, मँ महिमासिद्धि०, लँ लघिमासिद्धिक०, पँ परकायप्रवेशिनीसिद्धिक०, दूँ दूरदर्शिनीसिद्धिक०, गुँ गुटिकासिद्धिक०",

---

*–* चिह्नान्तर्गतांशस्याऽभावः ख. पुस्तके ।

ततश्चतुर्द्वारेषु—"ततोच्छिष्टपा०, विँ विनतोच्छिष्टपा०, घँ घनोच्छिष्टपा०, सुँ सुषिरो०",

आग्नेयादिकोणेषु—"वँ वटुकोच्छिष्टपा०, गँ गणेशो०, क्षेँ क्षेत्रपालो०, योँ योगिन्युच्छिष्टपा०" इति सम्पूज्य, दिगीशार्चादि-दीपान्तेऽष्टनवतिवर्णमन्त्र-प्रकरणोक्तं बलिमन्त्रेण नैवेद्यमुत्सृज्य, तत्रोक्तां गुरुपङ्क्तिं देव्याः पुरतोऽभ्यर्च्य प्राग्वत्सर्वं समापयेदिति। अत्र यद्यपि मन्त्रभेदेन पूजाभेद उक्तस्तथाऽपि तन्त्रान्तर-दर्शनान्मन्त्रभेदचतुष्टयस्याऽपि संक्षेपविस्तारकथनार्थमेव द्वैविध्यम्प्रतीयते [1]न तु मन्त्रभेदपरत्वेनेति। तथा च—

**सारसङ्ग्रहे—**

बालात्रिबीजपूर्वो वा मायाद्यो मदनादिकः।
त्रितारद्यो मारशक्तिकमलाद्योऽपि[2] वा भवेत् ॥ ३१६ ॥

'वाग्भवाद्योऽथ वा मन्त्र' इति मन्त्रभेदमुक्त्वाऽन्ते विस्तारपूजनस्यैवोक्तत्वात्। एवमेव - **मत्स्येन्द्रसंहितायामपीति।**

**मातङ्गमनुकोशे—**

स्रग्वी सुवस्त्रः शुचिरप्रमत्तः,
प्रशान्तचित्तो नियुतम्प्रजप्य[3]।
उच्छिष्टभक्तेन बलिं निवेद्य,
मन्त्री निशि स्यादिति सिद्धमन्त्रः ॥ ३१७ ॥

बलिं नैवेद्यम्।

**अयमर्थः**—प्रोक्तवेषयुक्तः प्रोक्तविधिना रात्रौ देवीं सम्पूज्योच्छिष्ट-भक्तादिना च देव्यै नैवेद्यं निवेद्योच्छिष्टमुख एव [4]नित्यजपम्पौरश्चरणजपं वाऽन्यत्काम्यादिकं वा सर्वङ्कुर्यादिति। नियुतं लक्षम्। "एका च दश च शतं च सहस्रं चायुतं च नियुतं चे"ति **श्रुतेः**। अत्र पुरश्चरणाङ्गहोमद्रव्यन्नोक्तन्तत्र पूर्वोक्तमेव पालाशपुष्पं ग्राह्यम्। "पलाशकुसुमैः स्वादुयुक्तैर्मन्त्री यथाविधी"ति

१. क. मतु। २. ख. ०कम नोद्योऽपि। ३. क. प्रजप्यः। ४. नित्यं जपं।

**सारसङ्ग्रहोक्तेः**। **सारसङ्ग्रहे** तु—"वर्णलक्षं जपेन्मन्त्र"मित्युक्तम्। वर्णलक्षमेकोनविंशतिलक्षं, स्वोपास्यमन्त्रवर्णसंख्यलक्षं वा। एकलक्षजपस्तु स्वगुरुजप्तमन्त्रपर इति **साम्प्रदायिकाः**।

**सारसङ्ग्रहे**—

कुमारीपूजनम्प्रोक्तङ्कुर्यादत्राऽपि साधकः।
योगिन्यष्टाष्टकस्याऽपि पूजा कार्याऽत्र मन्त्रिणा ॥ ३१८ ॥

उच्छिष्टभक्तशेषेण रात्रौ तस्यै बलिं हरेत्।
पूर्वोदितेन मनुना मन्त्रोऽयन्तेन सिद्ध्यति ॥ ३१९ ॥

पूर्वोदितेनाऽष्टनवत्यक्षरप्रकरणोक्तबलिमन्त्रेण।

चतुर्द्दशावृत्ति जपेद्भोजनानन्तरे मनुम्॥
नृपतीनाम्पूजनीयो नारीणाञ्च विशेषतः ॥ ३२० ॥

अष्टोत्तरसहस्रेण ताम्बूलम्मनुनामुना।
अजप्तं भक्षयेद्या स्त्री याचिताऽनङ्गभोगिका ॥ ३२१ ॥

मन्त्रिणश्च वशे तिष्ठेद्यावदायुर्न संशयः।
सहदेवी तथा दूर्वा मुसली मधुयष्टिका ॥ ३२२ ॥

भद्रा च विश्वदयिता लक्ष्मीवल्लीन्द्रवल्ल्यपि।
अञ्जलिन्यपि सम्प्रोक्ता पृथगेताः स्पृशञ्जपेत् ॥ ३२३ ॥

अष्टोत्तरशतम्मन्त्रं ततस्तां मूर्ध्नि धारयेत्।
नरनारीनृपतयो धत्ते हर्षसमूहकम् ॥ ३२४ ॥

इन्द्राग्निविश्वयुग्मर्त्तुमन्वष्टवसुङ्मिता।
पृथग्जप्ताः शतशतमेताः संयोज्य पेषयेत् ॥ ३२५ ॥

शुष्कास्तद्गुटिका मन्त्रजप्ताश्चाऽथ सहस्रशः।
ललाटे च धृताः सम्यक्सर्वस्त्रीजनरञ्जिकाः ॥ ३२६ ॥

भवन्ति सर्वलोकस्य दक्षा रञ्जनकर्मणि।
एतस्य गुलिका रेणुयोगेन मनुवित्तमः ॥ ३२७ ॥

तूलवर्त्या च कृष्णाज्ययुक्तया कज्जलं घृतम्।
सहस्रम्मनुना जप्तमञ्जितन्नेत्रयोः शुभम् ॥ ३२८ ॥

प्रत्यहञ्च जगद्वश्यन्नारीसंक्षोभकारकम् ।
प्रेतग्रहगणादींश्च नाशयेदचिरादपि ॥ ३२६ ॥

पूर्वोक्तैर्दशभिर्द्रव्यैः पञ्चगव्यैश्च कापिलैः ।
युक्तैश्च ससितञ्जप्तं सहस्रम्मनुनाऽमुना ॥ ३३० ॥

धृते ललाटे भुवनं वशयत्येव नाऽन्यथा ।
क्षौमे पट्टे प्रविन्यस्य वर्त्तिका रचिता शुभा ॥ ३३१ ॥

विल्वाह्वकुमुदश्यामपद्मरेणुसुगर्भिता ।
कृष्णगोः सर्पिषा दीप्ता तदुत्पन्ना च या मषी[1] ॥ ३३२ ॥

मातङ्गीमनुना जप्ता नेत्राक्ता रञ्जनी नृणाम् ।
यद्वा नमस्कारिणी सा गदिता नाऽत्र संशयः ॥ ३३३ ॥

लक्ष्मीः सविष्णुदयिताभृङ्गराजोद्भवं रजः ।
एतद्भावितवर्त्तिः सा कपिलाज्यप्रदीपिता ॥ ३३४ ॥

तज्जाता च मषी पूर्वफलदा नाऽत्र संशयः ।
कर्पूरञ्चन्दनम्पद्मयुगम्बकुलरोचने ॥ ३३५ ॥

त्रैलोक्यं वशयेदेषा मषी तत्सम्भवा भृशम् ।
निजपञ्चेन्द्रियाणाञ्च मलं ककचसम्भवे ॥ ३३६ ॥

फले निवेश्य नीलैश्च तन्तुभिर्वेष्टयेत्फलम् ।
भुवः[2] सूनोर्दिने भूमौ स्थापयेत्तत्फलन्ततः ॥ ३३७ ॥

आभौमवारं सञ्जप्तङ् कर्पूरन्तत्समन्ततः ।
पिष्ट्वा चात्माम्बुना जप्त्वा गुलिकाः कारयेद्बुधः ॥ ३३८ ॥

मसूरकमिता एताः खादिता वश्यदाः परम् ।
हेमपञ्चाङ्गकञ्चात्ममलपञ्चकसंयुतम् ॥ ३३९ ॥

सहस्रजप्तम्भक्षेषु प्रयुक्तम्पानकेषु च ।
यस्मै दत्तं नरेशाय स वश्यो नाऽत्र संशयः ॥ ३४० ॥

---

१. क. मधी ।  २. क. भुवाः ।

पूर्वमन्त्रोदितान् सर्वान् प्रयोगानत्र चाऽचरेत् ।

पूर्वमन्त्रोदितान् राजमातङ्गीप्रकरणोक्तान ।

मातङ्गिनीं यो भजते जपाद्यैः,
कृत्वा जगद्वश्यमशेषमत्र ।
स साधकेन्द्रो निखिलांश्च भोगान्,
भुक्त्वा परतत्र ऽपि च मुक्तिमेति ॥ ३४१ ॥

ॐ मातङ्गि मातरीशे मधुमथनाराधिते महामाये ।
मोहिनि मोहप्रमथिनि मन्मथमथनप्रिये नमस्तेऽस्तु ॥ ३४२ ॥

स्तुतिषु तव देवि विधिरपि विहितमतिर्भवति विहतमतिः ।
यद्यपि भक्तिर्मामिह भवतीं स्तोतुं विलोभयति ॥ ३४३ ॥

यतिजनहृदयनिवासे वासववन्द्ये वराङ्गि मातङ्गि ।
वीणावाद्यविनोदे नारदगीते[1] नमोऽस्तु ते देवि ॥ ३४४ ॥

देवि प्रसीद सुन्दरि पीनस्तनि कम्बुकण्ठि[2] घनकेशि ।
श्यामाङ्गि विद्रुमोष्ठि स्मितमुखि मुग्धाक्षि मौक्तिकाभरणे ॥ ३४५ ॥

भरणे त्रिविष्टपस्य प्रभवसि तत एव भैरवि त्वमसि ।
त्वद्भक्तिलब्धविभवो भवति क्षुद्रोऽपि भुवनपतिः ॥ ३४६ ॥

पतितः कृपणो मूकोऽप्यम्ब भवत्याः प्रसादलेशेन ।
पूज्यः सुभगो वाग्मी भवति जडश्चाऽपि सर्वज्ञः ॥ ३४७ ॥

ज्ञानात्मिके जगन्मयि निरञ्जने नित्यशुद्धपदे ।
निर्वाणरूपिणि शिवे त्रिपुरे शरणम्प्रपन्नस्त्वाम् ॥ ३४८ ॥

त्वां मनसि क्षणमपि ध्यायति मुक्तावृतां श्यामाम् ।
तस्य जगत्त्रितयेऽस्मिन् कास्ता न तु या स्त्रियः साध्याः ॥ ३४९ ॥

साध्याक्षरेण गर्भितपञ्चनवत्यक्षरात्मिके जगन्मातः ।
भगवति मातङ्गेश्वरि नमोऽस्तु तुभ्यम्महादेवि ॥ ३५० ॥

---

१. क. ख. ०गीतेन । २. क. कम्बुकटि । ख. कम्बुकंटि ।

विद्याधरसुरकिन्नरगुह्यकगन्धर्वसिद्धयक्षवरैः ।
आराधिते नमस्ते प्रसीद कृपयैव मातङ्गि ।। ३५१ ।।

मातङ्गीस्तुतिरियमन्वहम्प्रजप्ता,
जन्तूनां वितरति कौशलं क्रियासु ।
वाग्मित्वं श्रियमधिकाञ्च गानशक्तिं,
सौभाग्यं नृपतिभिरर्चनीयताञ्च ।। ३५२ ।।

मातङ्गीमनुदिनमर्चयन्तः,
श्रीमन्तः सुभगतराः कवित्वभाजः ।
प्राप्योच्चैः सकलसमीहितार्थवर्गान्,
देहान्ते विमलतरं विशन्ति धाम ।। ३५३ ।।

।। इति मातङ्गीस्तोत्रम् ।।

कलाधीशोत्तंसां करकलितवीणाहितरसां,
कलिन्दापत्याभां[1] 'हृदि च कलये[2], रक्तवसनाम् ।
पुराणीङ्कल्याणीम्पुरमथनपुण्योदयकला-
मधीराक्षीमेनाम्मुकुटतटसन्नद्धकबरीम्[3] ।। ३५४ ।।

करोदञ्चद्वीणं कनकदलताटङ्कमहितं,
स्तनाभ्यामानम्रन्तरुणमिहिरारक्तवसनम् ।
महःकल्याणं तन्मधुमदभराताम्रनयनं,
तमालश्यामं[4] नस्तवकयतु सौख्यानि सततम् ।। ३५५ ।।

कराञ्चितविपञ्चिकां कलितचन्द्रचूडामणिं,
कपोलविलसन्महःकनकपत्रताटङ्किनीम् ।
तपःफलमधीशितुस्तरुणभाररक्ताम्बरां,
तमालदलमेचकां तरललोचनामाश्रये ।। ३५६ ।।

कस्तूरीरचिताभिरामतिलका कल्याणताटङ्किनी,
बाला शीतमयूखशोणवसना प्रालम्बधम्मिल्लका ।

---

१. ख. कलिन्दापत्यानां । २. ख. कलय हृदये । ३. क. ०मुकटु० । ४. ख. तमालं० ।

हारोदञ्चितपीवरस्तनतटी हालामहोल्लासिनी,
श्यामा काचन कामिनी विजयते चञ्चद्विपञ्चीकरा ॥३५७॥

वामे विस्तृतशालिनि स्तनतटे विन्यस्य वीणामुखीं,
तन्त्रीं तार[1]विराविणीमसकलैरास्फालयन्ती नखैः ।
अर्द्धोन्मीलदपाङ्गमंसविलसद्ग्रीवम्मुखम्बिभ्रती,
श्यामा काचन मोहिनी विजयते मातङ्गकन्यामयी ॥३५८॥

प्रतिक्षणपयोधरप्रविलसद्विपंचीगुण-
प्रसरिकरपङ्कजं[2] बलिभिदश्मपुञ्जोपरि ।
कदम्बवनमालिकाशशिकलासमुद्भासित-
म्मतङ्गकुलमण्डनम्मनसि मे समुज्जृम्भताम् ॥ ३५९ ॥

लाक्षालोहितपाणिपल्लवतलामापीनतुङ्गस्तनीं,
कर्पूरोज्ज्वलचारुशङ्खवलयां काश्मीरपत्राङ्कुराम् ।
तन्त्रीताडनपाटलाङ्गुलिदलां वन्दामहे मातरं,
मातङ्गीम्मदमन्थराम्मरकतश्यामां मनोहारिणीम् ॥३६०॥

स्रस्तैः केसरदामभिर्वलयितुं धम्मिल्लमाबिभ्रती,
तालीपत्रपुटान्तरैः सुघटितं ताटङ्किनीमौक्तिकैः ।
मूले कल्पतरोर्मदस्खलितदृक् मूर्त्त्यैव सम्मोहिनी,
काचिद्गायनदेवता विजयते वीणावती वासना ॥३६१॥

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य यत्कर्णिकान्त-
ज्ज्योतिस्तस्याप्युदरकुहरे यत्तदोङ्कारपीठम् ।
तस्याप्यन्तस्तनभरनतां कुण्डलीति प्रसिद्धां,
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततञ्चिन्तयामि ॥ ३६२ ॥

अमृतमहोदधिमध्ये रत्नद्वीपे संकल्पवृक्षवने ।
नवमणिमण्डपमध्ये मणिमयसिंहासनस्योर्द्ध्वे ॥ ३६३ ॥

---

१. क. तत्रोत्तार० । २. ख. प्रसारिकपङ्कजं ।

मातङ्गीम्भूषिताङ्गीम्मधुमदमुदिताङ्घूर्णमानाक्षियुग्मां,
स्विद्यद्वक्त्रां कदम्बप्रसरपरिलसद्वेणिकामात्तवीणां ।
विम्बोष्ठीं रक्तवस्त्रां मृगमदतिलकामिन्दुरेखावतंसां,
कर्णोद्यच्छङ्खपत्रां कठिनकुचभराक्रान्तलीलावलग्नाम् ॥३६४॥

उन्मीलद्यौवनाढ्यां निविडमदभरोद्वेगलीलाविलासां,
रत्नग्रैवेयहाराङ्गदकटककटीसूत्रमञ्जीरघोषाम् ।
आनीयार्थानभीष्टान्स्मितमधुरदृशा साधकन्तर्प्पयन्तीं,
ध्यायेद्देवीं शुकाभां शुकमखिलकलारूपमस्याश्च पार्श्वे ॥३६५॥

वेणीमूलविराजितेन्दुशकलां वीणानिनादप्रियां,
क्षोणीपालसुरेन्द्रपन्नगगणैराराधितांघ्रिद्वयाम् ।
एणीचञ्चललोचनां सुवचनां वाणीम्पुराणोज्ज्वलाम्,
श्रोणीभारदरालसामनिमिषं[1] पश्यामि विश्वेश्वरीम् ॥३६६॥

कुचकलशनिषण्णाकेलिवीणां[2],
कलमधुरध्वनिकम्पित्तोत्तमाङ्गीम् ।
मरकतमणिभङ्गमेचकाभां,
मदनविरोधिमनस्विनीन्नमामि ॥ ३६७ ॥

निशि निशि बलिमस्यै भुक्तशेषेण दत्वा,
मनुमनुगणनान्ते मन्त्रजाप्यं वितन्वन् ।
भवति नृपतिपूज्यो योषिताम्प्रीतिपात्रं,
व्रजति च पुनरन्ते शाश्वतीं मुक्तिमाद्याम् ॥३६८॥

**॥ इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितम्मातङ्गीस्तोत्रम् ॥**

देवदेव महादेव सृष्टिसंहारकारक ।
मातङ्ग्याः कवचम्ब्रूहि यदि स्नेहोऽस्ति साम्प्रति ॥ ३६९ ॥

**श्रीशिवउवाच—**

अत्यन्तगोपनङ्गुह्यङ्कवचं सर्वकामदम् ।
तव प्रीत्या मयाख्यातन्नान्येभ्यः कथ्यते शुभे ॥ ३७० ॥

---

१. क. श्रोणीं भार० । २. कुचकलशनिषण्न० ।

शपथङ्कुरु मे देवि यदि[1] किञ्चित्प्रकाश्यसि ।
अनया सदृशी विद्या न भूता न भविष्यति[2] ॥ ३७१ ॥

उच्छिष्ट रक्षतु शिरः शिखाञ्चण्डालिनीति च ।
सुमुखी कवचं रक्षेद्देवी रक्षतु चक्षुषी ॥ ३७२ ॥

महापिशाचिनी पायान्नासिकां ह्रीँ सदाऽवतु ।
ठः पातु[3] कण्ठदेशम्मे ठः पातु हृदयन्तथा ॥ ३७३ ॥

ठो भुजौ पातु मूले च सदा रक्षतु चण्डिका ।
ऐँ च रक्षतु पादौ मे सौः कुक्षिं सर्वतः शिवा ॥ ३७४ ॥

ऐँ ह्रीँ कटिदेशञ्च आँ ह्रीँ सन्धिषु सर्वदा ।
ज्येष्ठमातङ्ग्यङ्गुलीर्मे अङ्गुल्यग्रे नमामि च ॥ ३७५ ॥

उच्छिष्टचण्डालि माम्पातु त्रैलोक्यस्य वशङ्करी ।
शिवे स्वाहा शरीरं [मे] सर्वसौभाग्यदायिनी ॥ ७६ ॥

उच्छिष्टचण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि नमः ।
स्वाहा स्तनद्वयम्पातु सर्वशत्रुविनाशिनी ॥ ३७७ ॥

शवासनां रक्तवसनां युवतीं सर्वसिद्धिदाम् ।
एवन्ध्यात्वा महादेवीम्पठेत्कवचमुत्तमम् ॥ ३७८ ॥

[4]अत्यन्तगोपनन्देवि देवैरपि सुदुर्ल्लभम् ।
भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यो न द्रष्टव्यन्तु कदाचन ॥ ३७९ ॥

दत्ते च सिद्धिहानिः स्यात्सर्वथा न प्रकाशयेत् ।
उच्छिष्टेन बलिन्दत्वा शनौ वा मङ्गले निशि ॥ ३८० ॥

रजस्वलाभगं स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रञ्च साधकः ।
[5]रजस्वलाया वस्त्रेण होमङ्कुर्यात्सदा बुधः ॥ ३८१ ॥

सिद्धिविद्या[6] इतो नाऽस्ति नियमो नाऽस्ति कश्चन ।
अष्टसहस्रञ्जपेन्मन्त्री दशांशं हवनादिकम् ॥ ३८२ ॥

१. क. य । २. क. भविष्यमि । ३. ख. ठः तु । ४. ख. अत्यन्तङ्गोपनीयं ।
५. क. रजस्वलायां । ३. ख. सिद्धविद्या ।

भूर्जपत्रे लिखित्वा च रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण जीवन्यासं समाचरेत् ॥ ३८३ ॥

स्वर्णमध्ये तु संस्थाप्य धारयेद्दक्षिणे करे ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य अचिरात्पुत्रवान् भवेत् ॥ ३८४ ॥

स्त्रीणां वामकरे धार्य्यं बहुपुत्री भवेत्तदा ।
वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याऽङ्गना ॥ ३८५ ॥

जीवद्वत्सा भवेत्साऽपि समृद्धिर्भवति ध्रुवम् ।
शक्तिपूजां सदा कुर्याच्छिवाया बलिमाहरेत् ॥ ३८६ ॥

इदङ्कवचमज्ञात्वा मातङ्गीं यो जपेत्सदा ।
तस्य सिद्धिर्न भवति पुरश्चरणलक्षतः ॥ ३८७ ॥

**॥ इति श्रीरुद्रयामले मातङ्गीकवचम् ॥**

**देव्युवाच—**

देवदेव जगन्नाथ ब्रूहि मे त्वञ्जगद्गुरो ।
मातङ्गीकवचं यत्नाद्रत्नसारस्वतप्रदम् ॥ ३८८ ॥

**शिव उवाच—**

शृणुष्व देवि कवचं सारभूतं सतामिदम् ।
कथयामि तव स्नेहादप्रकाश्यमपि प्रिये ॥ ३८९ ॥

ॐ अस्य मातङ्गीकवचस्य कौत्सऋषिर्विराट् छन्दो मातङ्गी देवता पुरुषार्थचतुष्टये विनियोगः ।

मातङ्गिनी शिरः पातु ललाटं विन्ध्यवासिनी ।
श्रोत्रनासापुटे चैव चक्षुषी पातु खेचरी ॥ ३९० ॥

भ्रुवोर्मध्ये दन्तपङ्क्तौ पार्वती पातु नः सदा ।
उच्छिष्टपूर्विका पायादोष्ठाधरपुटे मम ॥ ३९१ ॥

कपोलौ कामिका पायाच्चिबुकङ्कण्ठकूपकम् ।
स्कन्धौ मे स्कन्दमाता च बाहू मे वज्रधारिणी ॥ ३९२ ॥

वक्षः पायादुमा नित्यम्मातङ्गी रङ्गभूमिषु ।
उदरम्पातु नूनम्मे दयावत्यनुरागिणी[1] ॥ ३९३ ॥

जानुनी सर्वतः पायात्पर्वते वरकन्यका ।
जङ्घाकटी मे पादौ च गुल्फे द्वे च दयायुता ॥ ३९४ ॥

सर्वतः सर्वदा पातु सुमुखी सर्वकामिनी ।
इत्येवङ्कवचन्देवि कथितं यत्नतस्त्वयि ॥ ३९५ ॥
ज्ञात्वैतत्सर्वमाप्नोति साधको नाऽत्र संशयः ।

॥ इति रुद्रयामले मातङ्गीकवचं समाप्तमिति ॥

॥ अथ सुमुखीविधानमुपदिश्यते ॥

**श्रीफेत्कारिणीतन्त्रे—**

श्रीदेव्युवाच—

सूचिता मे पुरा शम्भो मन्त्रानेकविधास्त्वया ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि देवीमुच्छिष्टपूर्विकाम् ॥ ३९६ ॥

**ईश्वर उवाच—**

शृणु देवि वरारोहे[2] देवीन्ताङ्कथयाम्यहम् ।
यया विज्ञातया देवि क्षयङ्गच्छन्ति चाऽऽपदः ॥ ३९७ ॥

स्थावरञ्जङ्गमञ्चैव कृत्रिमञ्चाङ्गजन्तथा ।
विषञ्जयति देवेशि स्वपराङ्गसमाश्रितम् ॥ ३९८ ॥

इयं विद्या परा विद्या सर्वपापापहारिणी ।
स्वर्गदा मोक्षदा चैव राज्यसौख्यफलप्रदा ॥ ३९९ ॥

इयन्देवि मया पूर्वं साधिता विषनिर्ज्जये ।
सकृदुच्चारिता विद्या ब्रह्महत्याविशोधनी ॥ ४०० ॥

सर्वपापापहन्त्रीयं वश्यसौभाग्यदायिनी ।
यदुच्छिष्टमुखो भूत्वा स्मरेद्देवीङ्कदाचन ॥ ४०१ ॥

---

१. ख. ०त्यनुरागिणीं । २. क. वरारोहि ।

तदाऽऽचान्तो भवेद्देवि विनैवाऽऽचमने[1] कृते ।
दुर्भगा सुभगा नूनन्दुःखिता सुखिता भवेत् ॥ ४०२ ॥

वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं शतहायनजीवितम् ।
निर्द्धनो धनमाप्नोति सर्वा विद्या अवाप्नुयात् ॥ ४०३ ॥

यां याम्प्रार्थयते सिद्धिं हठात्तान्तामवाप्नुयात् ।

**श्रीदेव्युवाच—**

को विधिः किम्फलञ्चाऽस्या मयि विद्यास्वरूपतः ।
कथ्यतान्देवदेवेश रहस्येन[2] निवेदितम् ॥ ४०४ ॥

**ईश्वर उवाच—**

विधानन्ते प्रवक्ष्यामि शृणु देवि मनोरमे ।
भोजनानन्तरन्देवि विनैवाऽऽचमने कृते ॥ ४०५ ॥

बलिन्दत्वा प्रथमतो मूलमन्त्रेण साधकः ।
ततो मन्त्रञ्जपेद् ध्यात्वा देवीन्तामिष्टसिद्धये ॥ ४०६ ॥

मन्त्रं शृणु महादेवि यथावत्कथयामि ते ।
दद्यादुच्छिष्टशब्दन्तु तथा चण्डालिनीति च ॥ ४०७ ॥

सुमुखीति ततो देवि कीर्त्तयेत्तदनन्तरम् ।
महापिशाचिनीत्युक्त्वा लज्जाबीजमतः परम् ॥ ४०८ ॥

नादबिन्दुसमायुक्तं ठकारत्रितयम्पुनः ।
सविसर्गम्महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४०९ ॥

अत्राऽपि चकारो ह्रस्व एव । **सारसङ्ग्रहे**—लघुमातङ्गीमन्त्रोद्धारे तथोद्धृतत्वात् । केचित्तु चण्डालिनीत्यादिपदत्रये दीर्घमिकारं वदन्ति, तत्तु सम्बुद्ध्यन्तमेव । अत एव **सारसङ्ग्रहे** प्राक् प्रोक्तमन्त्रे चण्डालिपदादीनां सम्बुद्ध्यन्तदर्शनादेतन्मन्त्रयोस्तुल्यरूपत्वादत्राऽपि तथैवेति निर्णीत**मस्मत्पितामहचरणकमलैः** । लज्जाबीजं भुवनेश्वरीबीजम्, ठकारत्रितयमिति ठँः ठँः ठँः इति ।

---

१. ख. विनैकाचमने । २. क. ख. रहस्यैनं ।

**मन्त्रमहोदधौ तु[1]—**

कर्णो द्युतिः सनयना श्वेतेशः स्याज्जरासनः ।
लक्ष्मीदीर्घेन्दुसंयुक्तानन्दीदीर्घः[2] सदृक्क्रिया　　　　॥ ४१० ॥

मेषः स माधवः कर्मी भृगुस्तन्द्री च सेन्धिका ।
खिदेवि मवियद्दीर्घपिशाचिनि हिमाद्रिजा　　　　॥ ४११ ॥

नन्दयत्रितयं सर्गो[3] द्वाविंशत्यक्षरो मनुः ।

कर्णः उ०, द्युतिः छः, नयनं इ, तेन छि० ; श्वेतेशः ष०, जरा ट०, तेन ष्ट० ; लक्ष्मी च०, दीर्घ आ०, इन्दुरनुस्वारः, तैः चां० ; नन्दी ड, दीर्घ आ०, तेन डा;, दृक् इ०, क्रिया ल, तेन लि ; मेषः न, माधवः इ, तेन नि ; कर्णः उ, भृगुः स०, तेन सु० ; तन्द्री म०, इन्धिका उ, तेन मु० ; खि देवि म स्वरूपं०, वियत् ह०, दीर्घः आ०, तेन हा ; पिशाचिनि स्वरूपं०, हिमाद्रिजा ह्रीँ, नन्दय-त्रितयं ठकारत्रयं, सर्गो विसर्गस्तेन ठः ठः ठः इति । तथा—

स्मृता भैरवगायत्री सुमुखी मुनिपूर्विका ।
मुनि७राम३द्वि२षट्६चन्द्र१वह्नचर्णै३रङ्ककम्मनोः　　॥ ४१२ ॥

शक्तिपीठे यजेद्देवीम्पञ्चकोणाढ्यकर्णिके ।
अष्टपत्रे षोडशारवृते भूपुरसंयुते　　　　॥ ४१३ ॥

मूलेन मूर्त्ति संकल्प्य पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
चन्द्राञ्चन्द्राननाञ्चारुमुखीञ्चामीकरप्रभाम्　　　　॥ ४१४ ॥

चतुराम्पञ्चकोणेषु केसरेष्वङ्गदेवताः ।
ब्राह्मचाद्या अष्टपत्रेषु षोडशारे कलादिकाः[4]　　　　॥ ४१५ ॥

कला कलानिधिः काली कमला च क्रिया कृपा ।
कुला कुलीना कल्याणी कुमारी कलभाषिणी　　　　॥ ४१६ ॥

करालाख्या किशोरी च कोमला कुलभूषणा ।
कल्पदा भूपुरे पूज्या इन्द्राद्या हेतयोऽपि च　　　　॥ ४१७ ॥

---

१. ख. ०महोदधावपि । २. ०संयुक्तानदीदीर्घः । ३. ख. सर्गि । ४. क. वलादिकाः ।

प्रयोगः सुगमः । तथा—

लक्षमेकञ्जपेन्मन्त्रन्दशांशङ्किंशुकोद्भवैः ।
पुष्पैः समिद्भिर्वाऽपि जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ॥ ४१८ ॥

इति । तथा—

न तिथिर्न च नक्षत्रन्न चाऽङ्गन्यासमत्र च ।
नाऽरिदोषो न वा विघ्नन्नाऽऽशौचन्नियमो न च ॥ ४१९ ॥

यस्य तिष्ठति मन्त्रोऽयन्न स विघ्नैस्तु बाध्यते ।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यथावज्जगदीश्वरि ॥ ४२० ॥

शवोपरि समासीनां रक्ताम्बरपरिच्छदाम् ।
रक्तालङ्कारसंयुक्ताङ्गुञ्जाहारविराजिताम् ॥ ४२१ ॥

रक्तां षोडशवर्षाञ्च पीनोन्नतघनस्तनीम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्ताम्परमज्योतिरूपिणीम् ॥ ४२२ ॥

वामदक्षिणयोगेन ध्यायेन्मन्त्रविदुत्तमः ।
उच्छिष्टेन बलिन्दत्वा जपेत्तद्गतमानसः ॥ ४२३ ॥

उच्छिष्टेन च कर्त्तव्यो जपोऽस्याः सिद्धिमिच्छता ।
उच्छिष्टजपमानस्य जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ ४२४ ॥

निबन्धे—

येषाञ्जपे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः ।
तेषामष्टसहस्राणि संख्या स्याज्जपहोमयोः ॥ ४२५ ॥

अपरञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि फलप्रदम् ।
होमं सन्तर्प्पणञ्चाऽस्याः सहसा कार्यसिद्धये ॥ ४२६ ॥

स्थण्डिले मण्डलङ्कृत्वा चतुरश्रं[1] समाहितः ।
पूजयेन्मण्डलं देवि मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ ४२७ ॥

तत्र चाग्निं समाधाय वह्निरूपां व्यवस्थिताम् ।
देवीन्ध्यात्वा चरेद्धोमन्दधिसिद्धार्थतण्डुलैः ॥ ४२८ ॥

---

१. ख. चतुरस्रं ।

सहस्त्रैकविधानेन राजा भवति वश्यगः ।
मार्जारस्य तु मांसेन यो देव्यै होममाचरेत् ॥ ४२६ ॥

स प्राप्नोति परां विद्यां शस्त्रशास्त्रवशीकृताम् ।
कुर्यात् छागस्य मांसेन होमं मधुसमन्वितम् ॥ ४३० ॥

सहस्त्रैकविधानेन भवन्ति धनसिद्धयः ।
विद्याकामश्चरेद्धोमं शर्क्कराघृतपायसैः ॥ ४३१ ॥

मासात्तस्य भवन्त्येव सिद्धविद्याश्चतुर्दश ।
रजस्वलाया वस्त्रेण मधुना पायसेन च ॥ ४३२ ॥

होमङ्कृत्वा महादेवि त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
नागवल्या चरेद्धोमं मधुना सह सर्पिषा ॥ ४३३ ॥

अयुतैकविधानेन सिद्धिरिष्टा भवेद्ध्रुवम् ।
सद्यो मार्जारमांसेन घृतेन मधुना सह ॥ ४३४ ॥

चण्डालकेशयुक्तेन भवेदाकर्षणन्ध्रुवम् ।
शशकस्य तु मांसेन मधुना लोलितेन च ॥ ४३५ ॥

कृत्वा होममवाप्नोति विद्यावित्तु वरस्त्रियः ।
धत्तूरार्क्कस्य होमेन चितावह्नौ तु मन्त्रवित् ॥ ४३६ ॥

पूर्वोक्तेन विधानेन चिताकाष्ठहुताशने ।
उलूककाकपक्षाभ्यां कृत्वा होमन्निरन्तरम् ॥ ४३७ ॥

शत्रून्विद्वेषयेदिष्टावन्योन्यङ्कलहाकुलम् ।
उलूकपक्षहोमेन गर्भपातो भवेत्स्त्रियः ॥ ४३८ ॥

सहस्त्रैकविधानेन कुर्याद्धोमं समाहितः ।
बिल्वपत्रैः समध्वाज्यैर्मासमेकन्निरन्तरम् ॥ ४३९ ॥

वन्ध्याऽपि लभते पुत्रञ्चिरजीविनमुत्तमम् ।
बन्धूककुसुमं हुत्वा रक्तम्मधुसमन्वितम् ॥ ४४० ॥

दुर्भगाया हठाद्देवि सौभाग्यं सुखदायकम् ।
प्रातरुत्थाय यः कश्चिद्धोमं [कुर्याद्] दिने दिने ॥ ४४१ ॥

जपापुष्पैराज्ययुतैरष्टोत्तरशतम्प्रिये ।
षण्मासस्य प्रयोगेन भवेदाकर्षणन्ध्रुवम् ॥ ४४२ ॥

देवगन्धर्वकन्याश्च कन्या नागाङ्गनाङ्गजाः ।
हठादागत्य कामार्त्ता बलादालिङ्गयन्ति तम् ॥ ४४३ ॥

विद्यायै क्रियते होमस्तिलैः पायसमिश्रितैः ।
समाप्नोति[1] महाविद्यां शास्त्रौघपदशालिनीम् ॥ ४४४ ॥

मधुना रुरुमांसेन होमङ्कुर्यात्प्रयत्नतः ।
विद्यावान् धनवान् विद्धि शस्त्रशास्त्रवशीकृतः ॥ ४४५ ॥

इयन्देवी महादेवी वामाचारफलप्रदा ।
दक्षिणाचारयोगेन न भवेत्फलदायिनी ॥ ४४६ ॥

भोजनानन्तरञ्चास्या बलिङ्कृत्वा दिने दिने ।
उच्छिष्टेन जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरम्प्रिये ॥ ४४७ ॥

उज्जटे वा श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे ।
बलिप्रदानतो देवी प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम् ॥ ४४८ ॥

एषा देवी मया जप्ता भैरवाकारमिच्छता ।
इत्येषा कथिता देवी सर्वपापापहारिणी ॥ ४४९ ॥

मन्त्रस्योच्चारणाद्देवि सर्वपापविवर्जितः ।
उच्छिष्टदूषणं हित्वा स पवित्रो जपेद् ध्रुवम् ॥ ४५० ॥

इत्युच्छिष्टचण्डालिनी देवी भुवनविश्रुता ।
गोप्तव्येयम्प्रयत्नेन कथनीया न कस्यचित् ॥ ४५१ ॥
गुरुभक्तिश्च कर्त्तव्या कायेन च धनेन च ।

लोकापवादो न च देवि पापं,
नैवाऽपरा तिष्ठति मर्त्यलोके ।

---

१. ख स प्राप्नोति ।

मोक्षैकसारान्धनदैकसारां,
विद्यैकसारां शृणु सिद्धिविद्याम्  ॥ ४५२ ॥

इति श्रीमद्गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज-
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
एकचत्वारिंशस्तरङ्गः ॥ ४१ ॥

—०—

[ अथ द्विचत्वारिंशस्तरङ्गः ]

।। अथ श्रीदुर्गामन्त्राः ।।

तत्र **शारदातिलके**—

ततो दुर्गामनून् वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदान् ।
मायाऽत्रिः कर्णविन्द्वाढ्यो भूयोऽसौ सर्गवान् भवेत् ।। १ ।।

पञ्चान्तकः प्रतिष्ठावान्मारुतो भौतिकासनः ।
तारादिहृदयान्तोऽयम्मन्त्रो वस्वक्षरान्वितः ।। २ ।।

माया ह्रीँ, अत्रिर्दकारः, कर्ण उकारः, बिन्दुरनुस्वारः एतदाढ्यः तेन दुँ । असौ दकार एव सः सर्गवान् विसर्गवान् । पञ्चान्तको गकारः, प्रतिष्ठावानाकारवान्, तेन गा । मारुतः यकारः, भौतिक ऐकार[1]स्तदासनः, तेन यै । अत्र दुरिति विसर्गस्य 'विसर्जनीयस्ये'ति तस्य 'ससजुषोरि'ति रेफस्तेन दुर्गायै इति मन्त्रे बोद्धव्यम् । उक्तञ्च—

'तारमायास्वबीजानि दुर्गायै हृदयान्तिक' इति ।

तथा—ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दो गायत्रन्देवता मनोः ।
दुर्गा समीरिता सद्भिर्दुरितापन्निवारिणी ।। ३ ।।

**सारसङ्ग्रहे**—

षड्दीर्घयुक्तशक्त्यन्तैर्मनुपूर्वषडर्णकैः ।
जातियुक्तैः षडङ्गानि मनोरस्य प्रकल्पयेत् ।। ४ ।।

**पदार्थादर्शे**—'दुँ[2]बीजं, स्वाहा शक्तिः' । तेन-'ॐ ह्रीँ दुँ दुर्गायै ह्राँ हृदयाय नम' इत्यादि षडङ्गमन्त्रा उन्नेयाः । तदुक्त**माचार्यचरणैः**—'तारो माया च दुर्गायै ह्रामाद्यन्ताङ्गकल्पनेति' । अत्र चकारेण दुर्गाबीजसमुच्चय इति **पद्मपादाचार्याः** ।

**शारदातिलके**—

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भुजैः,
शङ्खञ्चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।

---

१. ख. भौतिकमोकार । २. क. इन्दु ।

आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीक्वणन्नूपुरा,
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु वो रत्नोल्लसत्कुण्डला ।। ५ ।।

वामायूद्धर्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम् ।

**सारसङ्ग्रहे—**

अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वञ्चतुरश्रत्रयावृतम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं कुङ्कुमादिभिरुद्धरेत् ।। ६ ।।

**शारदातिलके—**

पीठमित्थं यजेत्सम्यङ्नवशक्तिसमन्वितम् ।
प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी पुनः ।। ७ ।।

सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नवशक्तयः ।
अजिह्वस्वत्रयक्लीबरहितैः पूजयेदिमाः ।। ८ ।।

प्रणवानन्तरं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय च ।
महासिंहाय वर्मास्त्रनतिः सिंहमनुर्मतः ।। ९ ।।

दद्यादासनमेतेन मूर्त्तिम्मूलेन कल्पयेत् ।
तस्यां सम्पूजयेन्मूर्त्तौ देवीमावाह्य मन्त्रवित् ।। १० ।।

अङ्गवृत्तिम्पुराऽभ्यर्च्य शक्तीः पत्रेषु पूजयेत् ।
जया च विजया कीर्त्तिः प्रीतिः पश्चात्प्रभा पुनः ।। ११ ।।

श्रद्धा मेधा श्रुतिः प्रोक्तास्तन्नामाद्यक्षरादिकाः ।
पत्राग्रेष्वर्च्चयेदष्टावायुधानि यथाक्रमम् ।। १२ ।।

शङ्खचक्रगदाखड्गपाशाङ्कुशधनुःशरान्[1] ।
लोकेश्वरांस्ततो बाह्ये तेषामस्त्राण्यनन्तरम् ।। १३ ।।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ॐ नारदाय ऋषये नमः, मुखे—ॐ गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीदुर्गायै देवतायै नम" इति विन्यस्य, कृताञ्जलिर्मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

१. ख. पाशाङ्कुशशरान्धनुः ।

इत्युक्त्वा—"ॐ ह्रीँ दुँ दुर्गायै ह्राँ हृदयाय नमः, ॐ ह्रीँ दुँ दुर्गायै ह्रीँ शिरसे स्वाहा" इत्यादि षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य,

ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे चन्दनादिभिरन्तर्बहिर्विभागेनाऽष्टदलकमलद्वयं कृत्वा, तद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तचतुरश्रत्रयं कुर्यात् ।

इति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत्स्वपुरतः संस्थाप्याऽर्घस्थापनादिपरतत्वार्चान्तं विधायाऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन—"आँ प्रभायै०, ईँ मायायै०, ऊँ जयायै०, एँ सूक्ष्मायै०, ऐँ विशुद्धायै, ओँ नन्दिन्यै, औँ सुप्रभायै०, मध्ये—अः सर्वसिद्धिदायै नम" इति सम्पूज्य, "ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुँ फट्[1] नम" इति पीठमध्ये समभ्यर्च्याऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्याऽन्तरष्टदलेषु—स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन—"ॐ जँ जयायै नमः, ॐ विँ विजयायै०, ॐ कीर्त्त्यै०, ॐ प्रीँ प्रीत्यै०, ॐ प्रँ प्रभायै०. ॐ श्रँ श्रद्धायै०, ❀ॐ मेँ मेधायै०,❀ ॐ श्रुँ श्रुत्यै नम" इति सम्पूज्य,

बाह्याष्टदलेषु—"ॐ शङ्खाय नमः, ॐ चक्राय० एवं गदायै०, खड्गाय०, पाशाय०, अङ्कुशाय०, शरेभ्यः०, धनुषे०" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, प्राग्वद्वीथीद्वये लोकपालार्चादि सर्वं समापयेदिति ।

**सारसङ्ग्रहे** —

जितेन्द्रियो हविष्याशी वसुलक्षं जपेन्मनुम् ।
तत्सहस्रं तिलैः स्वादुलोलितैर्वा पयोन्धसा ।। १४ ।।
जुहुयादेधिते वह्नौ तर्प्पणादि ततश्चरेत् ।

वसुलक्षमष्टलक्षं, स्वादु त्रिमधु ।

**शारदातिलके**—

इत्थञ्जपादिभिर्मन्त्री मन्त्रे सिद्धे विधानवित् ।
कुर्यात् प्रयोगानेतेन मनुना स्वमनीषितान् ।। १५ ।।

---

१. ख. नाऽस्तीदम्पदम् । ❀—❀ चिह्नस्थांऽशस्याऽभावः ख. पुस्तके ।

प्रतिष्ठाप्य विधानेन कलशान्नव शोभनान् ।
रत्नहेमादिसंयुक्तान् पदेषु नवसु स्थितान् ।। १६ ।।

मध्यस्थे पूजयेद्द वीमितरेषु जयादिकाः ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैरभिषिञ्चेन्नराधिपम् ।। १७ ।।

राजा विजयते शत्रून् योधको विजयश्रियम् ।
प्राप्नोति रोगी दीर्घायुः सर्वव्याधिविवर्जितम् ।। १८ ।।

वन्ध्याऽभिषिक्ता विधिना लभते तनयं वरम् ।
मन्त्रेणाऽनेन सञ्जप्तमाज्यं क्षुद्रग्रहापहम् ।। १६ ।।

गर्भिणीनां विशेषेण जप्तम्भस्मादिकन्तथा ।

**सारसङ्ग्रहे—**

पद्मे तारगतां शक्ति ससाध्यान्तद्दलेष्वथ ।
मन्त्रवर्णान् लिखेदष्टौ त्रिष्टुब्मन्त्रेण वेष्टयेत् ।। २० ।।

मातृकार्णैर्बहिर्व्वीतञ्चतुरश्रेण वेष्टयेत् ।
दौर्गं यन्त्रमिदम्प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरम्परम् ।। २१ ।।

अपस्मारमहाभूतक्षुद्रज्वरनिवारणम् ।
नृणां विजयदं स्त्रीणाम्पुत्रदन्नाऽत्र संशयः ।। २२ ।।

**अस्यार्थः**—अष्टदलपद्मं कृत्वा, तन्मध्ये तारन्तस्योदरे शक्तिबीजं तदुदरे साध्यनाम च विलिख्य, तद्दलेषु मन्त्रवर्णान् एकैकशो विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वाऽन्तर्वीथ्यां 'जातवेदसे सुनवाम' इति त्रिष्टुम्मन्त्रेण संवेष्टय तद्बहिर्वीथ्यां मातृकया संवेष्टय, तद्बहिश्चतुरश्रं कुर्यादेतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवति । पूर्वोक्तनवकुम्भस्थापनमस्मिन्नेव मन्त्रे ज्ञेयम् ।

**शारदातिलके—**

भान्तं वियत्सनयनं श्वेतो मर्द्दनि ठद्वयम् ।
अष्टाक्षरीयमाख्याता विद्या महिषमर्द्दिनी ।। २३ ।।

भान्तं मकारः, वियत् हकारः, नयनं इकारस्तेन हि, श्वेतः षकारः, मर्द्दनिस्वरूपम्, ठद्वयं स्वाहा ।

नारायणीयेऽपि—'विषं हि मज्जा कालोऽग्निरत्रिन्निष्ठो नि ठद्वय'मिति ।

सारसङ्ग्रहे—

मार्कण्डेयो मुनिश्छन्दो गायत्रन्देवता मनोः ।
सुरासुरनता देवी प्रोक्ता महिषमर्द्दिनी ।। २४ ।।

पदार्थादर्शे तु—अस्य शावकवत्सो नाम ऋषिः, प्रकृतिः छन्दः, मं वीजं, स्वाहा शक्तिः ।

शारदातिलके—

महिषमर्द्दिनि हुं फट् हृदयम्परिकीर्त्तितम् ।
महिषशत्रो शाधि हुँ फट् शिरोङ्गं समुदीरितम् ।। २५ ।।

महिषं ह्रेषयद्वन्द्वं हुँफडन्तः शिखामनुः ।
महिषं हनयुग्मान्ते देवि हुँ फट् तनुच्छदम् ।। २६ ।।

महिषान्ते सूदनि हुँ फडन्तं शस्त्रमीरितम् ।
मन्त्रैरेतैर्जातियुक्तैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ।। २७ ।।

गारुडोपलसन्निभाम्मणि-मौलिकुन्तलमण्डिताम् ।
नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ।
शङ्खचक्रकृपाणखेटक-बाणकार्मुकशूलकान्,
तर्ज्जनीमपि बिभ्रतीन्निजबाहुभिः शशिशेखराम् ।। २८ ।।

दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये, तदाद्यधस्थयोरपरे, तदाद्यधस्थयोरितरे । इत्यायुधध्यानम् ।

ईशानशिवस्तु—

ध्यायेच्छ्यामां महादुर्गां सर्वाभरणभूषिताम् ।
जटामुकुटशोभाढ्यां स्फुरच्चन्द्रकलान्विताम् ।। २९ ।।

पीताम्बरधरान्देवीम्पीनोन्नतकुचद्वयाम् ।
शङ्खचक्रलसद्धस्तान्तदधःखड्गखेटकौ ।। ३० ।।
बाणचापौ च तदधः सशूलान्तर्ज्जनीमधः ।

तर्जनीं तर्जनीमुद्राम् । सा तु—

तर्जन्येकाकिनी तूर्द्ध्वा शेषाः सन्नमितास्त्वधः ।
मुद्रेयन्तर्ज्जनी प्रोक्ता वक्त्रश्रोत्रोस्तु भीतिका ।। ३१ ।।

इति **सारसंग्रहोक्ता** ।

**सारसङ्ग्रहे—**

ततः पूर्वोदिते पीठे यजेन्महिषमर्द्दिनीम् ।
प्रथमावृतिरङ्गैः स्याद्दुर्गाद्याभिः परापरा ।। ३२ ।।

ध्यानोक्तैरायुधैर्बाह्यै र्लोकपालैर्ग्रहैरिता ।
तदायुधैः पञ्चमी स्यादेवम्पूजा समीरिता ।। ३३ ।।

दुर्गाऽद्या वरवर्णिन्या ह्यार्या[1] च कनकप्रभा ।
कृत्तिका ह्यभयाद्या च प्रदा कन्या सुरूपिका ।। ३४ ।।
दीर्घस्वराद्याः क्रमतः पूजयेन्मन्त्रवित्तमः ।

दीर्घाद्याः क्लीबान्त्यरहितदीर्घस्वराद्याः ।

**नारायणीये**—पूर्वपटले अनन्तत्र्यब्धियोन्यादीत्युक्त्वोत्तरपटले आद्यस्वरैः क्रमादित्युक्तम् । आद्यैः "आ ई ऊ ए ऐ ओ औ अमि"ति स्वरैरिति टीका । याद्यैः यादिभिर्हान्तैरिति ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—मार्क्कण्डेयाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदये—श्रीमहिषमर्द्दिन्यै देवतायै०" इति विन्यस्य, विनियोगमुक्त्वा,

महिषमर्दनि हुँ फट् हृदयाय नमः, महिषशत्रो शाधि हुँ फट् शिरसे स्वाहा, महिषं ह्लेषय २ हुँ फट् शिखायै वषट्, महिषं हन २ देवि हुँ फट् कवचाय हुम्, महिषसूदनि हुँ फट् अस्त्राय फट् ।"

इति पञ्चाङ्गमन्त्रान्मूलमन्त्राभिमृष्टयोः पाण्योरङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्ताङ्गुलिषु विन्यस्य, नेत्ररहितेषु हृदयादिपञ्चाङ्गेष्वपि विन्यस्य, ध्यानादिमानस-

१. ख. ह्यार्चा ।

पूजान्ते पूर्वोक्तम्पूजाचक्रं निर्मायाऽर्घस्थापनाद्यात्मपूजान्तेऽन्तरष्टदलेषु स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन–"आँ दुर्गायै नमः, ईं वरवर्णिन्यै०, ऊँ आर्यायै०, एँ कनकप्रभायै०, ऐँ कृत्तिकायै० ओँ अभयंप्रदायै०, औँ कन्यायै०, ॐ सुरूपायै०" इति सम्पूज्य,

द्वितीयेऽष्टदले-स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "यँ शङ्खाय०, रँ चक्राय०, लँ खड्गाय०, वँ खेटकाय०, शँ बाणाय०, ❀षँ चापाय०❀ सँ शूलाय०, हँ तर्ज्जन्यै नम" इति सम्पूज्य दिगीशार्चादि सर्वं समापयेदिति । तथा—

प्रजपेद्वसुलक्षञ्च तत्सहस्रन्तिलैर्हुनेत् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः ॥ ३५ ॥

तिलहोमाद्वशीकारो नृणां स्त्रीणाम्भवेद्ध्रुवम् ।
आमयान्मुच्यते मर्त्यः सद्यः सर्षपहोमतः ॥ ३६ ॥

पद्महोमात्तथा राज्ञः सङ्ग्रामे विजयो भवेत् ।
दूर्वाहोमेन मर्त्यानां रोगशान्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

ब्रह्मवृक्षोत्थकुसुमैर्लभते वृष्टिमुत्तमाम् ।
धान्यहोमेन धान्याप्तिः काकपक्षहुतेन च ॥ ३८ ॥

विद्वेषो जायते लोके ह्यत्यन्तं सुहृदोरपि ।
शत्रुर्गच्छति पञ्चत्वं सत्वं मरिचहोमतः ॥ ३९ ॥

एवं यो भजते देवीन्दुर्गाम्महिषमर्द्दिनीम् ।
स नाशयेत्क्षुद्रभूतचोरादीन् दर्शनादपि ॥ ४० ॥

शारदातिलके—

तारो दुर्गेयुगं रक्तमन्त्यो ढान्तं सलोचनम् ।
द्विठान्ता जयदुर्गेयं विद्या वेद्या दशाक्षरी ॥ ४१ ॥

तारः प्रणवः, दुर्गेयुगं दुर्गे दुर्गे इति, रक्तं रेफः, अन्त्यः क्षकारः, ढान्तं णकारः, लोचनं इकारः, द्विठः स्वाहा ।

---

❀–❀क. ख. पुस्तकद्वये 'षँ वाणाय०' इति पाठो दृश्यते किन्त्वसावसङ्गतः सूत्रे 'बाणचापौ' इति दर्शनात् । (सं०)

**नारायणीयेपि**—"तारं दुर्गेद्वयं वह्निरन्त्यं ठान्तं सदृक्शिरः" ।

**सारसङ्ग्रहे**—

नारदो मुनिराख्यातो विराट् छन्द उदाहृतम् ।
जयदुर्गा देवता स्याद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ ४२ ॥

**पदार्थादर्शे तु**— मार्कण्डेयो[1] मुनिर्बृहतीछन्दः, प्रणवो बीजं, स्वाहा शक्तिः ।

**सारसङ्ग्रहे**—

ताराद्यैः पञ्चभिर्मन्त्रपदैः सर्वेण सम्मता ।
जातियुक्तैरङ्गक्लृप्तिः.............. ॥ ४३ ॥

**शारदातिलके**—

तारादि दुर्गे हृदयं दुर्गे शिर ईरितम् ।
दुर्गायै स्याच्छिखा वर्म भूतरक्षणि कीर्त्तितम् ॥ ४४ ॥
तारादि दुर्गेद्वितयं रक्षण्यक्षि समीरितम् ।

कालाभ्राभां[2] कटाक्षैररिकुलभयदाम्मौलिबद्धेन्दुरेखाम्,
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीन्त्रिनेत्राम् ।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलन्तेजसा पूरयन्तीं,
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः ॥ ४५ ॥

आयुधध्यानमष्टाक्षरीवत् ।

अष्टाक्षरोदिते पीठे पूजयेत् पूर्ववत्सुधीः । प्रयोगः सुगमः ।

तथा—बाणलक्षं जपेन्मन्त्रं घृतेन जुहुयात्ततः ॥ ४६ ॥

दशांशं संस्कृते[3] वह्नौ ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।
मन्त्रञ्जपन्विशेद्युद्धं शत्रून्हन्यादशेषतः ॥ ४७ ॥

पूजयेद्व्यवहारादौ तत्राऽपि विजयी भवेत् ।
अर्चयेदस्त्रशस्त्राणि जयार्थी विद्ययाऽनया ॥ ४८ ॥

---

१. ख. मार्कण्डे । २. ख. कालाभ्रामा । ३. क. संकृते ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

विवादे व्यवहारादौ जप्तो विजयदो[1] भवेत् ।

तथा—तारो हृत्स्यात्ततो दुर्गेद्वयं रक्षणि च द्विठः ।। ४९ ।।

द्वादशार्णो मनुः प्रोक्तो मुन्याद्यम्पूर्ववच्चरेत् ।
व्यस्तेन च समस्तेन मन्त्रेणाऽङ्गानि षट् क्रमात् ।। ५० ।।

शारदातिलके—

[3]ध्यानपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ।
ज्वलज्वलपदस्याऽन्ते शूलिनीति पदम्पुनः ।। ५१ ।।

दुष्टग्रहहुमस्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनुः ।
भूतेन्द्रियाक्षरैः प्रोक्तो ग्रहक्षुद्रादिनाशकः ।। ५२ ।।

ज्वलज्वलेति स्वरूपम्, शूलिनीति सम्बुध्यन्तम्पदं स्वरूपम्, दुष्टग्रह हुँ स्वरूपम्, अस्त्रं फट्, वह्निजाया स्वाहा, भूतेन्द्रियाक्षरैः पञ्चदशाक्षरैः । तथा—

ऋषिर्दीर्घतमाः प्रोक्तः ककुप्छन्द उदाहृतम् ।
शूलिनी देवता प्रोक्ता समस्तसुरवन्दिता ।। ५३ ।।

**पदार्थदर्शे**—हुँ बीजं, स्वाहा शक्तिः । तथा—

दुर्गे हृद्वरदे शीर्षं विन्ध्यवासिनि तच्छिखा ।
असुरान्ते मर्द्दिनि स्यात् युद्धपूर्वम्प्रिये पुनः ।। ५४ ।।

त्रासयद्वितयं वर्म देवसिद्धसुपूजिते ।
नन्दिनि स्याद्रक्षयुगम्महायोगेश्वरि[3] क्रमात् ।। ५५ ।।

शूलिन्याद्या हुँ फडन्ताः पञ्चाङ्गमनवः स्मृताः ।
ज्वरनाशकामनायामन्यया षडङ्गन्यास उक्तो **नारायणीये**—

दुर्गे हृदयमाख्यातं वरदे तच्छिरः शिखा ।
विन्ध्यवासिनि वर्म स्यादसुरान्ते तु मर्दिनि ।। ५६ ।।

युद्धप्रियेयुतञ्चाऽस्त्रं त्रासयद्वितयम्भवेत् ।
एवमादौ शूलिनीति पदन्तारादिकं वदेत् ।। ५७ ।।

---

१. ख विजदो । २. क. धान्य० । ख. ध्याना । ३. ख.० यागेस्वरि ।

अवसाने तु सर्वेषां देवसिद्धसुपूजिते ।
नन्दिनि रक्ष[1]युग्मञ्च महायोगेश्वरीति च ।। ५८ ।।

वर्मास्त्रबीजे चाऽमूनि ग्रहरक्षाकराणि हि ।
पञ्चाशदावृत्तिन्यासाज्ज्वरस्तीव्रो विनश्यति ।। ५९ ।।

तथा—अध्यारूढाम्मृगेन्द्रं सजल जलधरश्यामलां हस्तपद्मैः,
शूलं बाणं कृपाणं ह्यरिजलजगदाचापपाशान्वहन्तीम् ।
चन्द्रोत्तंसान्त्रिनेत्राञ्चतसृभिरसिना खेटकान्बिभ्रतीभिः,
कन्याभिः सेव्यमानाम्प्रतिभटभयदां शूलिनीम्भावयामि ।।६०।।

दक्षिणाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

प्रागुक्ते पूजिते पीठे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।
विधाय पूजामङ्गानाम्पूज्याः पत्रेषु शक्तयः ।। ६१ ।।

दुर्गाद्या वरदा विन्ध्यवासिन्यसुरमर्दिनी ।
युद्धप्रिया पञ्चमी स्याद्देवसिद्धसुपूजिता ।। ६२ ।।

सप्तमी नन्दिनी प्रोक्ता महायोगेश्वरी परा ।
दलाग्रेषु तदस्त्राणि चक्रशङ्खमसिम्पुनः ।। ६३ ।।
गदेषुचापशूलानि पाशम्पश्चाद्दिशाधिपान् ।

## ।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते—"शिरसि—दीर्घतमसे[2] ऋषये नमः, मुखे—ककुप्छन्दसे०, हृदये—शूलिनीदुर्गायै देवतायै नमः" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा,

शूलिनि दुर्गे हुँ फट् हृदयाय नमः, शूलिनि वरदे हुँ फट् शिरसे स्वाहा, शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुँ फट् शिखायै वषट्, शूलिनि असुरमर्द्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुँ फट् कवचाय हुम्, देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि रक्ष २ महायोगेश्वरि हुँ फट् अस्त्राय फट्" इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् मूलमन्त्राभिमृष्टयोः पाण्योरङ्गुष्ठादिककनिष्ठान्तास्वङ्गुलीषु विन्यस्य, हृदयादिषु नेत्ररहितेषु पञ्चाङ्गेषु च विन्यस्य,

---

१. क. रक्षतु० । २. दीर्घनमसे ।

ज्वरनाशकामनायान्तु—"शूलिनि दुर्गे देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि रक्ष २ महायोगेश्वरि हुँ फट् हृदयाय नमः, शूलिनि वरदे देवसिद्धसुपूजितेत्यादि शिरसे स्वाहा शूलिनि विन्ध्यवासिनि देवसिद्धेत्यादिशिखायै वषट्, शूलिन्यसुरमर्दिनि देवसिद्धेत्यादि कवचाय हुँ, शूलिनि युद्धप्रिये त्रासय २ देवसिद्धेत्यादि अस्त्राय फट्" इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् विन्यस्य,

ध्यानादिमानसपूजान्तेऽन्तरष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन्—"ॐ दुर्गायै नमः, एवं वरदायै०, विन्ध्यवासिन्यै०, असुरमर्द्दिन्यै०, युद्धप्रियायै०, देवसिद्धसुपूजितायै०, नन्दिन्यै०, महायोगेश्वर्यै०" इति सम्पूज्य,

द्वितीयाष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन—"ॐ चक्राय०, शङ्खाय०, खड्गाय०, गदायै०, बाणाय०, चापाय०, शूलाय०, पाशाय०" इति सम्पूज्य दिगीशार्चादि शेषम्प्राग्वत्समापयेत् । इति ।

**शारदातिलके—**

मनुमेनञ्जपेन्मन्त्री वर्णलक्षञ्जितेन्द्रियः ।
सर्पिषाऽन्नेन होमस्तु तद्दशांशमितो भवेत् ॥ ६४ ॥

**सारसङ्ग्रहे—**

वर्णलक्षञ्जपेन्मन्त्रञ्जुहुयात्तद्दशांशतः ।
आज्येन साज्यहविषा तर्प्पणादि ततश्चरेत् ॥ ६५ ॥

आराध्य विप्रान् विधिवद्भक्त्याऽभ्यर्च्य गुरुन्ततः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्निजवाञ्छितान् ॥ ६६ ॥
विदधीत विधानेन गुरोराज्ञापुरस्सरम् ।

**शारदातिलके—**

अष्टोत्तरसहस्रं यस्तिलैस्त्रिमधुराप्लुतैः ।
नित्यं यो जुहुयात्तस्य शक्तिः स्यादतिमानुषी ॥ ६७ ॥
अष्टोत्तरशतन्नित्यं सर्पिषा जुहुयान्नरः ।
वाञ्छितां वत्सरादर्वागाप्नोति महतीं श्रियम् ॥ ६८ ॥
दूर्वाहोमो भवेन्नॄणां सर्ववाञ्छितसिद्धिदः ।
छुरिकाद्यानि शस्त्राणि जप्तानि मनुनाऽमुना ॥ ६९ ॥

सम्पाताज्यविलिप्तानि[1] वितरन्ति जयश्रियम् ।
अश्वत्थार्क्कसमिद्भिर्वा तिलैर्वा मधुरोक्षितैः ।। ७० ।।

होमो वशयति क्षिप्रमीप्सितान् मन्त्रिणो नरान् ।
उद्यदायुधहस्तान्तान्देवीङ्कालघनप्रभाम् ।। ७१ ।।

ध्यात्वाऽऽत्मानञ्जपेन्मन्त्रं स्पृष्ट्वाऽऽर्त्तं[2] मुञ्चति ग्रहः ।
सर्प्पाखुवृश्चिकादीनां विषमाशु विनश्यति ।। ७२ ।।

मनुनाऽनेन विधिवन्मन्त्रविद्देवताधिया ।
मन्त्रेणाऽनेन सञ्जप्तान्बाणानादाय योधकः ।। ७३ ।।

विमुञ्चेत्प्रतिसेनायां सा द्रुतं विद्रुता भवेत् ।
शूलपाशधरान्देवीन्ध्यात्वाऽऽत्मानमनाकुलः ।। ७४ ।।

प्रविशेद्युद्धदेशे यो जित्वाऽऽयाति स निर्व्रणः ।
जुहुयात्तिलसिद्धार्थैर्लक्षमेकं यथाविधि ।। ७५ ।।

नामयुक्तञ्जपेन्मन्त्रं यस्याऽसौ मृतिमेष्यति ।
गुलिका गोमयोत्पन्ना हुत्वाऽष्टशतसंख्यया ।। ७६ ।।

सप्ताहात् कुरुते मन्त्री विद्वेषं स्निग्धयोर्मिथः ।
गृहीत्वा गोमयं व्योम्नि त्रिसहस्रञ्जपेत्ततः ।। ७७ ।।

गमिष्यतान्द्वारदेशे निखातं स्तम्भनम्भवेत् ।
बहुनोक्तेन किं सर्व्वं साधयेन्मनुनाऽमुना ।। ७८ ।।

सारसङ्ग्रहे—

शूलाद्यायुधसंयुक्तामुग्रां स्वं शूलिनीन्तथा ।
विचिन्त्य प्रजपेन्मन्त्रं ग्रस्तं स्पृष्ट्वा विधानतः ।। ७९ ।।

तमाविश्य क्षणं सर्वं वदेत्पश्चाद्विनश्यति ।
मन्त्रावृत्या तदानीञ्च भूतसङ्घः पलायते ।। ८० ।।

स्मृत्वा स्वरोगिणोर्मध्ये शूलिनीं स्वायुधैर्युताम् ।
जपतो विद्रवन्त्याशु ग्रहा अवशविग्रहाः ।। ८१ ।।

---

१. क. विलितानि । २ः क. स्पृष्ट्वा ।

सर्पाद्यैर्वृश्चिकाद्युत्थञ्जुहुयात्कुकुरोद्भवम् ।
लूतिकादिककीटोत्थं विषं नाशयति क्षणात् ।। ८२ ।।

निशिते सायके देवीमावाह्यैव च शूलिनीम् ।
क्षेमङ्करीम्पूजयित्वा मनुमेनञ्जपेत्सुधीः ।। ८३ ।।

तद्वेधाच्छत्रुसेनोग्रा दिशो धावति सा दश ।
दीर्णवेगौघशूलाद्यैः परीतां शूलिनीन्निजम् ।। ८४ ।।

प्रतिपद्याऽरिसेनाञ्च प्रविश्याणुञ्जपेत्सुधीः ।
परायुधानि गृह्णाति सेना निश्चेष्टिका भवेत् ।। ८५ ।।

तथा—प्रणवो हृद्भगवति ज्वालामालिनि गृध्रग ।
णलोहितौ रिवृते च द्विठान्तः परिकीर्त्तितः ।। ८६ ।।

द्वाविंशत्यर्णको मन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ।

हृन्नमः, लोहितः पः, द्विठः स्वाहा । अन्यानि पदानि स्वरूपाणि ।

त्रिचतुःपञ्चवस्वक्षिमितैर्मन्त्रार्णकैः क्रमात् ।। ८७ ।।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत् ।
अन्यच्छूलिनि दुर्गावत्सर्वमस्य प्रकीर्त्तितम् ।। ८८ ।।

**शारदातिलके—**

उत्तिष्ठपदमाभाष्य पुरुषि स्यात्पदन्ततः ।
पितामहः सनेत्रेन्दुः स्वपिषि स्याद्भयञ्च मे ।। ८९ ।।

समुपस्थितमुच्चार्य्य यदि शक्यमनन्तरम् ।
अशक्यं वा पुनस्तन्मे वदेद्भगवतीन्ततः ।। ९० ।।
शमयाऽग्निवधूः सप्तत्रिंशद्वर्णात्मको मनुः ।

उत्तिष्ठेति[1] स्वरूपं, पुरुषि स्वरूपं, पितामहः ककारः, सनेत्रेन्दुः इकार-बिन्दुसहितः, तेन किं; स्वपिषि स्वरूपं, भयं मे स्वरूपं, समुपस्थितं स्वरूपं, यदि

१. क. उत्तिष्ठे ।

शक्यमशक्यं वा स्वरूपं, तन्मे स्वरूपं, भगवतीमिति शब्दकर्मणि द्वितीया, मन्त्रे तु सम्बुद्धिः, शमयेति स्वरूपं, अग्निवधूः स्वाहा । अत्र 'वा तन्मे' इत्यक्षराणि कीलकानि । 'हुँ दुर्गे' इत्यकीलकानीति **पदार्थादर्शे** ।

**ईशानसंहितायान्तु**—

गुणबीजं समुद्धृत्य उत्तिष्ठेति पदन्ततः इत्यादि ।
एवमेपा महाविद्या निःकीला सर्वसिद्धिदा ।। ९१ ।।

गुणान्ते भुवनेशानीदुर्गाबीजन्नियोजयेत् ।
वर्मणोऽन्ते स्वकम्बीजमुक्त्वा चाऽन्ते विलोमतः ।। ९२ ।।

पूर्वोक्तबीजत्रितयं योजयेत्क्रौञ्चदारण ।। ९३ ।।

बीजत्रयम्प्रणवमायादुर्गाबीजानि, विलोमतः दुर्गामायाप्रणवक्रमेण, एतावता आदौ बीजपञ्चकमनन्तरम्मन्त्रः, तदनुविलोमेनादिबीजत्रयमिति मन्त्रः सिद्धः ।

**शारदातिलके**—

ऋषिरारण्यकश्छन्दोऽप्यत्यनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवता वनदुर्गा स्यात्सर्वदुर्गविमोचिनी ।। ९४ ।।

**पदार्थादर्शे**—उकारो बीजं, स्वाहाशक्तिः; दुरिति बीजमिति **पद्मपादाचार्याः** ।

षड्भिश्चतुर्भिरष्टाभिरष्टभिः षड्भिरिन्द्रियैः ।
मन्त्रार्णैरङ्गक्लृप्तिः स्याज्जातियुक्तैर्यथाक्रमम् ।। ९५ ।।

पादाष्टसन्धिषु गुदलिङ्गाधारोदरेषु च ।
पार्श्वहृत्स्तनकण्ठेषु पुनर्बाह्वष्टसन्धिषु ।। ९६ ।।

मुखनासाकपोलाक्षिकर्णभ्रूमध्यमूर्द्धसु ।
मन्त्राक्षराणि विन्यस्येद्देवताभावसिद्धये ।। ९७ ।।

सौवर्णाम्बुजमध्यगान्त्रिनयनां सौदामिनीसन्निभा-
ञ्चक्रं शङ्खवराभयानि दधतीमिन्दोः कलां बिभ्रतीम् ।
ग्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरामाखण्डलाद्यैः स्तुता-
न्ध्यायेद्विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीम्पार्श्वस्थपञ्चाननाम् ।।९८।।

दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये,तदाद्यधस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम् ।

प्रागीरिते यजेत्पीठे देवीमङ्गादिभिः सह ।
अङ्गपूजा यथापूर्वन्दलमूलेष्विमा यजेत् ।। ९९ ।।

आर्या दुर्गा च भद्राख्या भद्रकाली ततोऽम्बिका ।
क्षेम्याऽन्या[1] वेदगर्भाख्या क्षेमकार्यष्टशक्तयः ।। १०० ।।

अस्त्राणि पत्रमध्येषु चक्रशङ्खासिखेटकान् ।
बाणकोदण्डशूलानि कपालान्तानि पूजयेत् ।। १०१ ।।
ब्राह्म्याद्याः स्युर्द्दलाग्रेषु लोकपालास्ततः परम् ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा—"शिरसि-आरण्यकाय ऋषये नमः, मुखे—अत्यनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि—श्रीबनदुर्गायै देवतायै नम' इति विन्यस्य प्राग्वद्विनियोगमुत्कीर्त्य,

"उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः, किं स्वपिषि शिरसे स्वाहा, भयं मे समुपस्थितं शिखायै वषट्, यदि शक्यमशक्यं वा कवचाय हुँ, तन्मे भगवति नेत्राय वौषट्, शमय स्वाहा अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्हृदयादिषडङ्गेषु च विन्यस्य,

दक्षपादाङ्गुलिमूले—"उँ नमः, गुल्फे—त्तिँ नमः, जानुनि—ष्ठँ नमः, ऊरुमूले—पुँ०, बामपादाङ्गुलिमूले—रुँ०, गुल्फे—षिँ०, जानुनि—किँ०, ऊरुमूले—स्वँ०, गुदे—पिँ०, लिङ्गे—षिँ०, मूलाधारे—भँ, उदरे—यँ०, दक्षपार्श्वे—मेँ०, बामे—सँ०, हृदि मुँ, दक्षस्तने—पँ०, बामे—स्थिँ०, कण्ठे—तँ०, दक्षकराङ्गुलिमूले—यँ०, मणिबन्धे—दिँ०, कूर्परे—शँ०, बाहुमूले—क्यँ०, बामकराङ्गुलिमूले—मँ०, मणिबन्धे—शँ, कूर्परे—क्यँ०, बाहुमूले—वाँ०, मुखे—तँ०, दक्षनासापुटे—न्मेँ०, बामे—भँ०, दक्षगण्डे—गँ०, बामे—वँ०, दक्षनेत्रे—तिँ०, बामे—शँ०, दक्षकर्णे—मँ०, बामे—यँ०, भ्रूमध्ये—स्वाँ०, शिरसि—हाँ नम" इति बिन्यस्य,

प्राग्वद्ध्यानमानसपूजान्तेऽष्टदलकमलत्रयात्मकम्प्राग्वत्पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वदर्घस्थापनाद्यङ्गपूजान्ते—

1. ख. क्षोभ्याऽन्या ।

प्रथमेऽष्टदले—'ॐ आर्यायै नमः, एवं दुर्गायै०, प्रभायै०, भद्रकाल्यै०, अम्बिकायै०, क्षेम्यायै०, वेदगर्भायै०, क्षेमङ्कर्यै०,"

द्वितीयेऽष्टदले—"चक्राय०, शङ्खाय०, खड्गाय०, खेटकाय०, बाणाय०, चापाय०, शूलाय०, कपालाय०, तृतीयाऽष्टदले—प्राग्वद्ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य दिगीशार्चादि[1] सर्वम्पूर्ववत्समापयेत् ।

**नारायणीये –**

वेदलक्षं जपेन्मन्त्रन्तद्दशांशं हुनेत्तिलैः ।
व्रीह्याज्यतिलदुग्धान्नैर्दुर्गां सञ्चिन्त्य चाऽनले ।। १०२ ।।

तर्प्पणम्मार्ज्जनङ्कृत्वा ब्राह्मणाराधनन्तथा ।
धनधान्यादिभिः सम्यक् तोषयित्वा निजङ्गुरुम् ।। १०३ ।।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री वाञ्छितार्थान्प्रसाधयेत् ।
दुर्गाम्प्रयोगभेदेन चिन्तयेद्वनवासिनीम् ।। १०४ ।।

श्रिये च दुर्गाम्महिषोत्तमाङ्ग-
स्थिताञ्च दूर्वादलरुग्वहन्तीम् ।
सचक्रशङ्खासिसखेटबाण-
चापाम्बुजन्तर्ज्जनिकां वहन्तीम् ।। १०५ ।।

चक्रशङ्खकृपाणखेटकबाणधन्वसिशूलकान् ।
पुंस्कपालसदिष्टकान् मुशलञ्च कुम्भकनन्दकान् ।। १०६ ।।

सत्करैर्वलयाङ्गदां वरभिण्डिपालकशक्तिकान् ।
बिभ्रतीं जलदद्युतिं[1] महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ।। १०७ ।।

पावकोल्लसितद्युतिं ह्यतिभीमसिंहसमागताम् ।
श्यामलां कमलस्थितां नयनत्रयोल्लसितां शुभाम् ।। १०८ ।।

व्याघ्रचर्मसदंशुकामहिबद्धकुन्तलशोभिताम् ।
चन्द्रशोभितशेखरां सुरदानवाभयभीतिदाम् ।। १०९ ।।

---

१. क. जलद्युतिं । १. क. दिगीशाचार्यादि ।

प्रत्यहम्प्रजपेन्मन्त्री स्वरक्षायै शतं ह्यथ ।
सहस्रं वा तदन्ते च प्रयोगान्कर्त्तुमर्हति ।। ११० ।।

यद्यदुद्दिश्य च मनुं सहस्रं वाऽयुतञ्जपेत् ।
अचिराल्लभते तत्तदसाध्यमपि साधकः ।। १११ ।।

प्रातःस्नायी न्यासपूर्वं [1]स्मरन्देवीमनन्यधीः
नित्यं सहस्रम्प्रजपेन्मन्त्रं साधकसत्तमः ।। ११२ ।।

ज्वरसर्पग्रहोत्थांश्च दोषान्प्रशमयेत्सुधीः ।
हुनेदारण्यकतिलै राजिकाभिश्च वा हुनेत् ।। ११३ ।।

अपामार्गसमिद्भिर्वा नाशयेत्सकलामयान् ।
अपस्मारादिकान्मन्त्री नाऽत्र कार्या विचारणा ।। ११४ ।।

न्यग्रोधोत्थसमिद्भिश्च सशुङ्गाभिर्हुनेत्सुधीः ।
अयुतं सर्वसम्पत्यै सर्वापन्मुक्तयेऽपि च ।। ११५ ।।

ग्रहादिशान्त्यै च तथा ह्यभिचारादिशान्तये ।
अर्कवृक्षसमुद्भूतैर्जुहुयाच्च समिद्वरैः ।। ११६ ।।

आरभ्य रविवारञ्च सहस्रम्प्रत्यहं सुधीः ।
दशाहतो वाञ्छितार्थसिद्धिर्भवति नाऽन्यथा ।। ११७ ।।

त्र्यहं[2] वा सप्तरात्रं वा चेध्मैः शरसमुद्भवैः[3] ।
एकैकं सकलम्मन्त्री हुनेद्वाञ्छितसिद्धये ।। ११८ ।।

त्रिंशच्छरान् शिताग्रांश्च निधाय जुहुयाद्बुधः ।
कटुतैलैः सहस्रं वा ह्ययुतन्तदनन्तरम् ।। ११९ ।।

सम्पाततैलेन शरान् समभ्यज्य यथाविधि ।
पूर्ववत्प्रजपेन्मन्त्रन्तांछरानथ भूपतिः ।। १२० ।।

शुद्धाचारश्च धीरश्च धन्वी संयतमानसः ।
गृहीत्वा परसेनाया मध्ये गच्छेदभीः क्षिपेत् ।। १२१ ।।

---

१. ख. स्मरेन्० । २. क. त्र्य । ३. ख. सारसमुद्भवैः ।

सा धावति दिशः सर्वाः सम्भ्रान्ता विह्वला तदा ।
स आगत्य पुनर्भूयो गुरून्ध्यानैर्द्धनैरपि ।। १२२ ।।

वस्त्रालङ्करणैश्चाऽपि तोषयेज्जयदायिनम् ।
अष्टाधिकशतेनाऽथ सञ्जप्तं शवभस्म च ।। १२३ ।।

निक्षिपेद्यस्य शिरसि स विद्विष्टो भवेज्जनैः ।
देशाद्देशान्तरञ्चैव काकवद्भ्रमते सदा ।। १२४ ।।

कारस्करद्रुमोत्थैश्च पत्रैर्वायुनिपातितैः ।
सहस्रञ्जुहुयात्पादरजोभिः सह वैरिणः ।। १२५ ।।

उच्चाटोऽथ भवेत्सद्यो विषवृक्षसमुद्भवैः ।
पुष्पैर्हुनेत् सहस्रञ्च सेनां संस्तम्भयेद्बुधः ।। १२६ ।।

तावद्भिस्तस्य पत्रैश्च मन्त्री सेनां निवर्त्तयेत् ।
विषवृक्षसमुद्भूतां शत्रोः प्रतिकृतिं शुभाम् ।। १२७ ।।

कृत्वा प्रतिष्ठितप्राणां खण्डं खण्डं शितैर्निशि ।
[1]कृष्णपक्षचतुर्दश्यां काकोलूकवसायुतैः ।। १२८ ।।

तद्गात्रैर्विपिने होमः कर्त्तव्योऽष्टसहस्रकम् ।
चतुर्दशीत्रयादेवन्नाशमेति रिपुर्ध्रुवम् ।। १२९ ।।

घूकवायसपक्षैश्च स्ववसारक्तसंयुतैः ।
होमाद्रिपुर्नाशमेति ह्युन्मत्तसमिधस्तथा ।। १३० ।।

होमान्मत्तो रिपुर्नूनम्भवत्येव सहस्रतः ।
वैरिणः प्रतिमां कृत्वा सम्यक्संस्थापितानिलाम् ।। १३१ ।।

विषत्रिकटुकालिप्तां सम्यगुष्णे जले क्षिपेत् ।
प्रजपेच्च मनुं सद्यो ज्वराक्रान्तो भवेद्रिपुः ।। १३२ ।।

दुग्धाभिषेकतः[2] शान्तिर्भवत्येव न संशयः ।
प्रतिमां विषवृक्षोत्थान्निःक्षिपेदुष्णवारिणा ।। १३३ ।।

---

१. ख. कृष्णपक्षे० । २. ख. दुग्धाभिषेकः ।

उन्मादश्च रिपोः सद्यः पूर्ववच्छान्तिरीरिता ।
सूर्यबिम्बतरारक्तां शूलतर्ज्जनिकाकराम् ।।

ध्यात्वाऽयुतम्प्रजप्याऽथ मारयेद्रिपुसञ्चयम् ।
असिखेटकरार्कस्था क्रुद्धा सा वनवासिनी ।। १३४ ।।

संस्मृता मन्त्रजापेन शमयेच्छत्रुसञ्चयम् ।
शरधन्वकरां सिंहस्थान्ताम्पावकसन्निभाम् ।। १३५ ।।

कारस्करद्रुसमिधामयुतञ्जुहुयात्सुधीः ।
रोगिणः करिणः सर्वे जायन्ते ह्यचिरात्सदा ।। १३६ ।।

विषवृक्षोत्थितैः पत्रैरमी नाशम्प्रयान्ति च ।
तद्वृक्षसुमनोभिः स्यादुच्चाटः करिणान्ध्रुवम् ।। १३७ ।।

राजवृक्षसमिद्धोमाद्रोगा नश्यन्ति दन्तिनाम् ।
विषवृक्षप्रसूनैश्च त्रिमध्वक्तैरिभो नवः ।। १३८ ।।

वशीभवेत्तथा शीघ्रं पत्रैरानित्यकोत्थितैः ।
त्रिस्वादुयुक्तैः करिणो ह्यनिर्मत्ता भवन्ति च ।। १३९ ।।

अभ्यङ्गः पञ्चगव्येन लोके रक्षाकरः परः ।
करिणां[1] मनुजप्तोऽयं प्रोक्तो मन्त्रविदुत्तमैः ।। १४० ।।

सर्पिस्तिलानित्यकद्रुराजिकापञ्चगव्यकैः ।
हविस्तण्डुलकैश्चैव प्रत्येकञ्च सहस्रतः ।। १४१ ।।

जुहुयादिभसङ्घानां वृद्धिर्भवति नाऽन्यथा ।
महान्तं विषवृक्षञ्च छित्त्वा निर्भिद्य पञ्चधा ।। १४२ ।।

दिक्क्रमेणैव पञ्चाऽथ ह्यायुधानि प्रकल्पयेत् ।
सम्यक् शिल्पविदा शङ्खो नन्दकश्चक्रशार्ङ्गकौ ।। १४३ ।।

कौमोदकीति क्रमेण प्रोक्तमायुधपञ्चकम् ।
निःक्षिप्य पञ्चगव्ये तज्जपेत्पञ्चसहस्रकम् ।। १४४ ।।

---

१. ख. करिणी ।

तावच्चाऽऽज्येन जुहुयात्सम्पातन्तत्र पातयेत् ।
भूयश्च पूर्वसंख्याकञ्जपङ्कुर्याद्विचक्षणः ।। १४५ ।।

विदध्यादवटान् पञ्च पञ्चगव्यप्रपूरितान् ।
मध्यादि तेष्वायुधानि निःक्षिपेद्भूतलं समम् ।। १४६ ।।

कुर्याच्चात्र बलिम्मन्त्री हरेन्मन्त्रैर्निजैः शुभैः ।
नगरग्रामदेशानां कार्या रक्षेयमीदृशी ।। १४७ ।।

यत्रेयङ्क्रियते रक्षा कमला तत्र वर्द्धते ।
धन्यधान्यसमृद्धिः स्याद्रिपुरोगभयन्न च ।। १४८ ।।

पद्मैर्नृपं वशीकुर्यात्तत्पत्नीरुत्पलैरपि ।
ब्राह्मणान् कुमुदैर्हुत्वा कह्लारैर्विश एव च ।। १४९ ।।

शूद्राँल्लवणहोमेन ग्रामञ्जातिप्रसूनकैः ।
चक्रशङ्खगदाम्भोजहस्तं सञ्चिन्तयेच्छुभम् ।। १५० ।।

रविबिम्बे मुकुन्दञ्च मनुं व्यत्यस्तलिङ्गकम् ।
प्रजपेच्चाऽथ पुरुषि भगवत्पदयोरथ ।। १५१ ।।

सर्वसिद्धिकरः प्रोक्तः प्रकारोऽयं सुमन्त्रिभिः ।
साध्यनामाक्षरैः सम्यक् विदर्भितमनुँल्लिखेत् ।। १५२ ।।

पत्रे ततः कुलालस्य करलग्नाम्प्रगृह्य च ।
तया कृता या प्रतिमा तस्या हृदि च तन्न्यसेत् ।। १५३ ।।

संस्थाप्य स्वाभिमुख्ये तां सप्ताहम्प्रजपेन्मनुम् ।
सन्ध्यात्रये शतञ्चाऽष्टाधिकं वश्यो भवेत्तु सः ।। १५४ ।।

व्रीहीन् हुनेदष्टशतम्प्रत्यहं वत्सराद्भवेत् ।
व्रीहिमान् गोपयोभिश्च पशुमान् भवति ध्रुवम् ।। १५५ ।।

घृतहोमान्मन्त्रिणः स्यात्काञ्चनाप्तिर्महीयसी ।
दध्ना च सर्वसिद्धिः स्यादन्नैरन्नसमृद्धियुक् ।। १५६ ।।

मधुहोमेन रत्नानान्निधिर्भवति नाऽन्यथा ।
दूर्वाहोमेन दीर्घायुर्मन्त्री भवति निश्चितम् ।। १५७ ।।

श्वेतगुञ्जाः समानीय कुडवप्रमिताः शुभाः ।
एतन्मन्त्रसुजप्तास्ता विकिरेच्छत्रुसैन्यके ॥ १५८ ॥
स्वयम्मन्त्री सुगुप्तः सन् तेनाऽसौ वैरिणश्चमूः ।
ज्वरादिकैर्महारोगैः पीडिता सा नृणाञ्चिरम् ॥ १५९ ॥
सेनाधिपतिमुख्यानाम्परस्परविरोधतः ।
एवं ह्युपद्रवैर्नानाविधैर्नाशम्प्रयाति च ॥ १६० ॥
तारे शक्ति ससाध्यां विलिख रविदले मध्यतः पत्रमूले,
मर्दिन्या वर्णयुग्मन्दलमनु विलिखेद्वह्निशो मूलवर्णान् ।
अन्त्यम्प्रान्ते च वीतं बहिरथ लिपिभिर्भूपुरद्वन्द्वसंस्थं,
दुर्गाया यन्त्रमेतद्युवतितनयदं सर्वरक्षाकरं स्यात् ॥ १६१ ॥
सर्वसम्पत्करन्नृणां सर्वसौभाग्यपुष्टिदम् ।
राज्यलक्ष्मीविहीनानाम्भूपतीनाञ्च राज्यदम् ॥ १६२ ॥
आमयग्रस्तनृणाञ्च रोगशान्तिकरम्परम् ।
जपहोमाज्यसम्पातसाधितं यन्त्रमुत्तमम् ॥ १६३ ॥
प्रोक्तञ्च वनदुर्गायाः सर्वदन्नाऽत्र संशयः ।

**अस्याऽर्थः**—द्वादशदलपद्मं विरच्य, तन्मध्ये तारं, तस्योदरे शक्तिं, तदन्तः साध्यनाम च विलिख्य, तत्केसरेषु महिषमर्द्दिन्यष्टाक्षरमन्त्रस्य त्रिरावृत्या प्रतिकेसरं वर्णद्वयं द्वयमालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं विरच्य, तयोरन्तरालवीथ्याम्प्रत्यक्षरं सबिन्दुकां मातृकां विलिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रद्वयसम्पुटरूपेणाऽत्र कोणेन वेष्टयेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदम् । **नारायणीये**—'अत्रिरत्र समाख्यातन्तद्बीजं शिवसर्गवान् । अत्रिः दः, सशिवः उः, सर्गो विसर्गः, तेन दुः, तद्बीजन्तस्या दुर्गाया बीजम् । कश्यपः ऋषिर्गायत्रीछन्दः, श्रीदुर्गादेवता, षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि । बीजेन सविसर्गेण सर्वत्र अष्टदलकमले दूर्वाश्यामां त्रिनेत्रां शूलबाणखड्गचक्रशङ्खखेटधनुःकपालानि दक्षिणाधःकरक्रमेण धारयन्तीं ध्यायेत् । लक्षं जपेद्दशांशं तिलैर्होमः, पूजादिकं वनदुर्गावद् ज्ञेयम् । अयं लक्षजपः कृतयुगपरः ।

**इति श्रीमद्गोस्वामिजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**द्विचत्वारिंशस्तरङ्गः ॥ ४२ ॥**

## [ त्रिचत्वारिंशस्तरङ्गः ]

।। अथ श्रीनवार्णविधानमुपदिश्यते ।।

श्रीमार्कण्डेयपुराणे खिले मेधसं प्रति सुरथवाक्यम् ।

राजोवाच—

पुनस्त्वाम्परिपृच्छामि चण्डिकापूजनं शुभम् ।
नित्यचण्ड्यादिजाप्यस्य विधानञ्च द्विजोत्तम ।। १ ।।

ऋषिरुवाच——

परिपृच्छसि यत्नेन चण्डिकापूजनञ्च यत् ।
तदहन्ते प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।। २ ।।

आदौ नत्वा महालक्ष्मीं कर्त्तृकर्त्रीं[1] सदोदिताम् ।
यन्नमस्कारतो यज्ञा न भान्ति सुकृताः क्वचित् ।। ३ ।।

त्रैलोक्यडामरम्मन्त्रं शृणु भूप नवाक्षरम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण परमैश्वर्य्यवान्नरः ।। ४ ।।

वाग्बीजमादीन्दुसमानदीप्तं,
मायार्क्कतेजोद्युतिमद्द्वितीयम् ।
कामञ्च वैश्वानरतुल्यरूपं,
तृतीयमानन्त्यसुखाय चिन्त्यम् ।। ५ ।।

विशुद्धजाम्बूनदकान्तितुल्यं,
मुम्पञ्चमं रक्ततरप्रकल्प्यम् ।
डा-षष्ठमुग्रार्त्तिहरं[2] सुनीलं,
यैः सप्तमं कृष्णतरं रिपुघ्नम् ।। ६ ।।

विपाण्डुरञ्चाष्टममादिसिद्धं,
च्चे धूम्रवर्णं नवमं विशालम् ।
एतानि बीजानि नवात्मकस्य,
जपेत्प्रदद्युः सकलार्थसिद्धिम् ।। ७ ।। इति ।

---

१. क. कर्तृकर्त्री । २. क. मुग्रार्तिहरं ।

तथा—नवबीजनिबद्धोऽयम्मन्त्रस्त्र्यैलोक्यपावनः ।
एनञ्जपति यो मन्त्री फलन्तस्य वदाम्यहम् ।। ८ ।।

वश्या भवन्ति कामिन्यो राजानोऽनुचरा इव ।
न हस्तिसर्पदावाग्निचोरशत्रुभयम्भवेत् ।। ९ ।।

सर्वाः समृद्धयस्तस्य जायन्ते चण्डिकाज्ञया ।
नश्यन्ति दारुणा रोगाः सत्यं सत्यन्न संशयः ।। १० ।।

सहस्रमस्य मन्त्रस्य नवबीजस्य यो जले ।
नाभिमात्रे जपेत्सम्यक्कवित्वँल्लभते ध्रुवम् ।। ११ ।।

अयुतन्नवबीजस्य राजबन्धनसङ्कटे ।
जपेदाशु विमुच्येत यो मन्त्री चण्डिकाज्ञया ।। १२ ।।

अस्मिन्नवाक्षरे मन्त्रे महालक्ष्मीर्व्यवस्थिता ।
तस्मात्सुसिद्धः सर्वेषां सर्वदिक्षु प्रदीपकः ।। १३ ।।

मन्त्राणाम्पल्लवो वासो मन्त्राणाम्प्रणवः शिरः ।
शिरःपल्लवसंयुक्तो मन्त्रः कामदुघाफलः ।। १४ ।।

न्यासं विना भवेन्मूकः सुप्तः स्यादासनं विना ।
पल्लवेन विना मन्त्रो नग्नः सम्परिकीर्त्तितः ।। १५ ।।

शिरोहीनो मृतः प्रोक्तो वृथा मन्त्रो गुरुं विना ।
हतो दुष्टापदत्तो यो निर्वीर्यश्चाऽधिकाक्षरः ।। १६ ।।

अन्तरन्येन बीजेन व्याप्तः कीर्तित उच्यते ।
यस्य जाप्यं शृणोत्यन्यः स मन्त्रः शून्य उच्यते ।। १७ ।।

ऋषिदैवतछन्दोभिः परित्यक्तो भुजङ्गमः ।
मूकः सुप्तो मृतो नग्नो वीर्यहीनो वृथाहतः ।। १८ ।।

भुजङ्गकीलितः शून्य ईदृङ्मन्त्रो[1] वृथाफलः ।
यत्नाद्धि वर्ज्जयेन्मन्त्रं यदि तत्सिद्धिमिच्छति ।। १९ ।।

---

१. क. ईदृङ्मो ।

मन्त्राणामित्यादिभिः श्लोकैर्मन्त्रदोषान् काँश्चिल्लक्षणपुरःसरमाह । श्लोकास्तु स्पष्टार्थाः ।

नमोऽन्तः शान्तिके पुष्टौ प्रणिपाते च कीर्त्तितः ।
वश्याकर्षणहोमेषु स्वाहान्तः सिद्धिदायकः ।। २० ।।

वौषट्पल्लवसंयुक्तो मन्त्रः पुष्ट्यादिसाधकः ।
हुङ्कारपल्लवोपेतो मारणे ब्राह्मणं विना ।। २१ ।।

मन्त्रभञ्जनकार्ये च सुघोरभयनाशने ।
वषडन्तो महाकालग्रहमालाविनाशकः ।। २२ ।।

खण्डनोच्चाटने वेधे मन्त्रः फट्पल्लवान्वितः ।
ॐकारमुस्वरौ मन्त्रौ वेदागमसमुद्भवौ ।। २३ ।।

नमोन्त इत्यादिभिः श्लोकैः कामनाभेदेन पल्लवभेदानाह । एतत्पल्लवषट्कं काम्यजपे तत्तत्कामनाभेदे मूलमन्त्रान्ते योज्यम् । तथा—

पल्लवोऽस्त्यागमे मन्त्रे वैदिके नाऽस्ति पल्लवः ।
पल्लवेन विना जप्यो मन्त्रो वेदसमुद्भवः ।। २४ ।।

न नग्नः कीर्त्यते यस्मादैश्वर्य्यपरिधानवान् ।
नद्यादौ विधिवत्स्नात्वा नाभिमात्रे जले स्थितः ।। २५ ।।

दशाञ्जलिभिरात्मानन्नवबीजेन पावयेत् ।
कृत्वा सन्ध्यादिकं सर्वमुदकान्ते समाहितः ।। २६ ।।

तर्पणाय महालक्ष्म्याः षडङ्गन्यासमारभेत् ।

षडङ्गन्यासोऽग्रे वक्ष्यते ।

एवं न्यासक्रियां कृत्वा ध्यात्वा महिषमर्द्दिनीम् ।। २७ ।।
चण्डिकान्त्रिजगद्धात्रीं ब्रह्माद्यमरवन्दिताम् ।

ततो नवबीजा एवं ते चण्डिका तृप्यतामिति ।
जलाञ्जलीनष्टोत्तरं शतं गन्धसमन्वितान् ।। २८ ।।

सेचयित्वा तदर्द्धेन तदर्द्धेनाऽपि वा पुनः ।
महालक्ष्मीन्तर्प्पयित्वा कर्त्ता कामानवाप्नुयात् ।। २९ ।।

तथा—प्रविश्य देवतागारं वितानम्परिशोभितम् ।
पुष्पप्रकरशोभाढ्यम्पूजाद्रव्यैः प्रपूरितम् ।। ३० ।।

बहुदीपप्रकाशाढ्यन्दिव्यैर्द् धूमैः सुधूपितम् ।
तत्र प्रविश्य विधिना पूजयित्वा हरीश्वरौ ।।३१ ।।

उपविश्यासने[1] मन्त्री प्राङ्मुखो धृतिमान् क्षमी ।
कामक्रोधमहामोहलोभा ज्ञानविवर्ज्जितः ।। ३२ ।।

मौनी बद्धासनो ज्ञानी ध्यानी निश्चलविग्रहः ।
अनाहतविशुद्धचाज्ञा भेदयित्वा क्रमङ्क्रमम् ।। ३३ ।।

स्वशरीराद्विनिर्गत्य सूक्ष्मरूप्यूर्द्ध्वमार्गतः ।
तमोनदीं समुत्तीर्य्य स्थित्वा स्वकरसम्पुटे ।। ३४ ।।

शोधयेत्पञ्चभूतानि ज्ञात्वा वर्णक्रमम्पृथक् ।
पृथिव्यापोऽनलो वायुः खं भूतानामयङ्क्रमः ।। ३५ ।।

पृथ्वी पीता सितं वारि रक्तवर्णो हुताशनः ।
तेषां कृष्णतरो वायुराकाशन्निर्मलं सदा ।।३६ ।।

मनसा शोधयेद्बुद्धिम्बुध्या संशोधयेन्मनः ।
तद्द्वयम्परमं शुद्धमात्मना सम्यगीरितम् ।। ३७ ।।

स्वदेहम्ब्रह्ममार्गेण योगयुक्त्या समाविशेत् ।
सुषुम्णाग्रं समाश्रित्य तिष्ठमान अनाहते ।। ३८ ।।

आदौ संशोधयेत्पृथ्वीं शोषदाहप्लवामृतैः ।
पुनर्वारि पुनस्तेजः पुनर्वायुं सुपावयेत् ।। ३९ ।।

बीजैश्चतुर्विधैर्वायोरग्नेर्वरुणशक्रयोः ।
यमिदं शोषकम्बीजं रमिदन्दाहकम्महत् ।। ४० ।।

---

१. ख. उपविश्याने ।

वमाप्लावनबीजञ्च[1] लमैन्द्रममृतात्मकम् ।
एवं शुद्धानि भूतानि भवन्ति नृपनन्दन ।। ४१ ।।

व्योम्नस्तच्छोधनन्नाऽस्ति यतस्तन्निर्मलं शिवम् ।
करालया स्वकन्देहम्प्रविश्याऽऽत्मविशोधनम् ।। ४२ ।।

कर्त्तव्यं योगमाश्रित्य सर्वकामविवर्जितः ।
भूतशुद्धिमिमाङ्कृत्वा यः कुर्याच्चण्डिकार्च्चनम् ।। ४३ ।।
तस्याऽचिरेण कालेन महालक्ष्मीः प्रसीदति ।

मौनीत्यादिभिः प्रसीदतीत्यन्तैः श्लोकैर्भूतशुद्धिमाह । तत्प्रकारः प्रयोगे वक्ष्यते ।

निकुञ्चनादधः शक्ते [रूर्द्ध्वशक्ते ][2] निपातनात् ।
मध्यशक्तेः प्रबोधाञ्च प्राणायामपरो भवेत् ।। ४४ ।।

निकुञ्चनादिप्राणायामविधिमाह—तत्राऽधःशक्तेर्मूलाधारस्थानलकुण्डल्या निकुञ्चनात् । ऊर्ध्वगमनात्, ऊर्द्ध्वशक्तेः ब्रह्मरन्ध्रस्थामृतकुण्डल्या निपातनात् अधः पातनात् । मध्यशक्तेरनाहतचक्रस्थार्ककुण्डल्याः प्रबोधनात् । अनलामृतकुण्डल्योः संयोगात् ह्लादनात् इत्याराध्यचरणादर्थोऽवगन्तव्यः ।

तथा—पूजानाञ्जपहोमानां सर्वमङ्गल्यकर्मणाम् ।
न्यासम्ब्रवीमि भूपाल महदैश्वर्यसिद्धिदम् ।। ४५ ।।

स्थिरासने स्थिरो भूत्वा निरहङ्कारनिर्ममः ।
स्वगुरोश्चरणौ नत्वा महालक्ष्मीञ्च पूर्ववत् ।। ४६ ।।

ध्यानपूर्णमनः कृत्वा न्यासब्रह्म समाचरेत् ।
क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा न्यसेत्तत्त्वं विन्दुनोपरिभूषितम् ।। ४७ ।।

मातृकान्यासविज्ञानी शिरः प्रथमपल्लवम् ।
प्रथमं विन्यसेन्मूर्घ्नि ललाटे तत्परन्न्यसेत् ।। ४८ ।।

नेत्रयोर्द्वितयं भूप द्वयमन्यत्कपोलयोः ।
श्रुत्योः स्वरद्वयन्न्यस्य द्वयन्नासापुटद्वये ।।४९।।

---

१. ख. वमाप्लावनबीजञ्च २. कोष्ठस्थांशस्थाभाव : क पुस्तके ।

[1]ओष्ठयोर्विन्यसेद्द्वन्द्वं द्वयन्दशनलेखयोः ।
जिह्वायां विन्यसेदेकन्तालुस्थाने च तत्परम् ।।५०।।

विन्यसेत्प्रथमं वर्गम्भूपते दक्षिणे भुजे ।
वामे परन्न्यसेद्वर्गन्तृतीयं दक्षिणे न्यसेत् ।।५१।।

चतुर्थं वामपादे च पञ्चमं हृदये न्यसेत् ।
शेषाक्षराणां नवकं विन्यसेत्सर्वधातुषु ।। ५२ ।।

त्वचि रक्ते च मांसे च स्नायुष्वस्थिषु पञ्चमम् ।
मज्जामेदस्सु पूयेषु द्वितयन्तत्परं न्यसेत् ।। ५३ ।।

अयन्तु[2] मातृकान्यासः प्रथमः परिकीर्त्तितः ।
साङ्गवेदस्स बीजानान्नवानान्देवतार्चने ।। ५४ ।।

पूजानामित्यादिभिरर्चनमित्यन्तैः श्लोकैर्मातृकान्यासमाह–तत्र तत्वं तत्ववाचकमक्षरं वाच्यवाचकयोरभेदात् । शिरः प्रथमपल्लवं, शिरःपल्लवस्य स्वाहाकारस्य प्रथमभूतमादिभूतं नमः पल्लवमित्यर्थः । क्षिप्त्वा-क्षिप्त्वा संयोज्याक्षराणामन्तेष्वित्यर्थः ।

आद्यम्बीजत्रयङ्कृत्वा प्रणवाद्यनमोन्तकम् ।
कनिष्ठादिषु सर्वासु पञ्चस्वङ्गुलिषु न्यसेत् ।। ५५ ।।

करमध्ये च पृष्ठे च स्युरेवम्मणिबन्धयोः ।
हृदि मूर्द्ध्नि शिखायाञ्च कवचे चक्षुरस्त्रयोः ।। ५६ ।।

बन्धेषु सम्प्रयोक्तव्यं सर्वदिक्षु पृथक् पृथक् ।
भृशं[3] सारस्वते न्यासे महत्यस्मिन् कृते सकृत् ।। ५७ ।।

त्वरितं विलयं याति जाड्यम्प्राक्पापसम्भवम् ।
आद्यमित्यादिभिः श्लोकैः करषडङ्गन्यासमाह । सः प्रयोगे स्पष्टयितव्यः ।

तृतीयन्ते प्रवक्ष्यामि न्यासम्मातृगणान्वितम् ।
मायाबीजेन संयुक्ता ब्रह्माणी पातु पूर्वतः ।। ५८ ।।

१. ख. अष्ठयो० । २. ख. अयुतं । ३. ख. भृतं ।

एवमीशानपर्यन्तमष्टौ मातृः प्रपूजयेत् ।
उर्द्ध्वं व्योमेश्वरी पातु सर्वद्वीपेश्वरी भुवि ॥ ५९ ॥

नागेश्वरी च पाताले न्यासकर्त्ता सुनिर्मम: ।
जायते त्रिषु लोकेषु सर्वलोकप्रियो यतः ॥ ६० ॥

तृतीयमित्यादिभि: श्लोकैरष्टमातृन्यासमाह । तत्र "ह्रीँ ब्रह्माणी मे पूर्वदिशं पात्वि"त्यादिप्रयोग: ।

षड्देवीनाम्पुनर्न्यासञ्चतुर्थं वच्मि भूमिप ।
पूर्वाङ्गं नन्दजा पातु कमलाक्षस्रङ्मण्डिता ॥ ६१ ॥

खड्गपात्रकरा पातु दक्षिणं रक्तदन्तिका ।
पुष्पपल्लवमूलादिहस्ता शाकम्भरी परा ॥ ६२ ॥

धनुर्बाणधरा दुर्गा वामं दुर्गार्त्तिहारिणी ।
शिर:पात्रकरा[1] भीमा मस्तकाच्चरणावधि ॥ ६३ ॥

चरणाभ्यां शिरो यावद्भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ।
अनेन न्यासयोगेन जरामरणवर्ज्जित: ॥ ६४ ॥

निर्भयश्चाऽग्निवारिभ्यां [2]मान्त्रिकस्तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ६५ ॥

षड्देवीनामित्यादिभि: श्लोकैर्नन्दजादिशक्तिषट्कन्यास: प्रयोगे स्पष्टयितव्य: ।

पादाभ्यान्नाभिपर्यन्तम्ब्रह्मा पातु सनातन: ।
नाभेर्विशुद्धिपर्यन्तम्पातु नित्यञ्जनार्दन: ॥ ६६ ॥

विशुद्धेस्तु शिखां यावत् पातु रुद्रस्त्रिलोचन: ।
हंस: पादद्वयम्पातु वैनतेय: करद्वयम् ॥ ६७ ॥

चक्षुषी वृषभ: पातु सर्वाङ्गानि जनार्दन: ।
परात्परतर: पातु सर्वानन्दमयो हरि: ॥ ६८ ॥

अभेद्य: पञ्चमो न्यास: कर्त्तु: कामदुघाफल: ।
महापापातिपापानाम्प्रायश्चित्तमसौ भवेत् ॥ ६९ ॥

---

१. क. शिर:पत्रकरा । २. क. मांत्रिक० ।

पादाभ्यामित्यादिभिर्ब्रह्मादिन्यासमाह । स प्रयोगे स्पष्टयितव्यः ।

मध्यम्पातु महालक्ष्मीरष्टादशभुजा ध्रुवम् ।
ऊर्द्ध्वं सरस्वती पातु भुजैरष्टाभिरूर्जिता ।। ७० ।।

अधः पातु महाकाली त्रिशल्लोचनमण्डिता ।
सिंहो हस्तद्वयम्पातु परहंसोऽक्षिमण्डलम् ।। ७१ ।।

महिषेण समायुक्तः प्रेतः पातु पदद्वयम् ।
सर्वाङ्गानि महेशानश्चण्डिका च परस्परम् ।। ७२ ।।
वैकुण्ठ सुखकृन्न्यासः षष्ठः कष्टोपशान्तये ।

मध्यमित्यादिभिर्महालक्ष्म्यादिन्यासमाह । स प्रयोगे[1] स्पष्टः ।

उक्तमन्त्रस्य बीजानि प्रणवाद्यम्पृथक् पृथक् ।। ७३ ।।

ब्रह्मतः पायुपर्यन्तं विन्यसेत्तानि पूर्ववत् ।
न्यासद्वयमिदम्प्रोक्तं सुगुप्तं सप्तमाष्टमम् ।। ७४ ।।

महाभयमहाव्याधिशत्रुचोरविघातनम् ।
महारक्षोगणानाञ्च कल्पान्ताग्निसमो भवेत् ।। ७५ ।।

ब्रह्मत इत्यादिभिर्न्यासद्वयमाह । ब्रह्मतः ब्रह्मरन्ध्रात् पायुपर्यन्तो दशमो येषान्तेषमेवं पायुतः ।

पूर्वाङ्गे विन्यसेन्मन्त्रं मस्तकाच्चरणावधि ।
दक्षिणे पश्चिमे वामे तथा लोमविलोमयोः ।। ७६ ।।
अस्मिन्न्यासे कृते राजन्नवमे देववद्भवेत् ।

पूर्वाङ्गेत्यादिना सार्द्धश्लोकेन समस्तमन्त्रन्यासमाह । लोमोऽनुलोमः[2] मस्तकात्पादावधिरित्यर्थः ।

हृन्मस्तकशिखास्वेनं कवचे लोचनत्रये ।। ७७ ।।
अस्त्रे सर्वासु काष्ठासु पृथङ्मन्त्रं विनिर्दिशेत् ।
नमोऽन्तम्प्रथमम्प्रोक्तं स्वाहान्तन्तत्परम्भवेत् ।। ७८ ।।

---

१. क. योगे । २. ख. लोमोऽनुलोमः स ।

वषडन्तं हुमन्तञ्च वौषडन्तं फडन्तकम् ।
पूज्यस्त्रैलोक्यदेवानां दशमेऽस्मिन्कृते सकृत् ।। ७९ ।।

दशन्यासप्रविष्टो यो यद्वदेत्तत्तथा भवेत् ।
यत्पश्यति तथा दृष्ट्या तद्भवेत्ताद्दशम्फलम् ।। ८० ।।

तेन सार्द्धं महालक्ष्मीः स्वयं वदति तत्फलम् ।
भविष्यमभविष्यं वा तम्पालयति पुत्रवत् ।। ८१ ।।

ब्रह्मविष्णुशिवास्त्वेनं पालयन्त्यात्मवत्सदा ।
त्रिषु लोकेषु पश्यन्ति तदधिकन्न किञ्चन ।। ८२ ।।

दशन्यासैः कृतैः पापं दशजन्मार्ज्जितं क्षणात् ।
सुतीव्रं विलयं याति तमिश्रं रविणा यथा ।। ८३ ।।

सन्नद्धो दशभिन्यासैश्चण्डी सप्तशती[1] भवेत्[2] ।
असाध्यं साधयत्याशु कार्यं लोकत्रयेऽपि यत् ।। ८४ ।।

माधवे मासि मध्याह्ने तपन्तं निर्मलं रविम् ।
दिवान्धास्तन्न पश्यन्ति सर्वदा सर्वथा यथा ।। ८५ ।।

चण्डीसप्तशतीजाप्ये दशन्यासैः समुज्ज्वलम् ।
त्रैलोक्ये सर्वदुष्टास्तन्न पश्यन्ति सदा तथा ।। ८६ ।।

हृदित्यादिभिस्तथेत्यन्तैः श्लोकैः समस्तमन्त्रेण षडङ्गन्यासमाह । तत्रैन मूलमन्त्रम्, नमोन्तमिति हृदयायेति चतुर्थ्यन्तपदपूर्वकमित्यर्थः । एवमग्रेप्युन्नेयम् ।

चण्डीसप्तशतीजाप्ये सरहस्ये नृपोत्तम ।
न्यासन्ते सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मविष्णुशिवोदितम् ।। ८७ ।।

अङ्गेषु सर्वसिद्ध्यर्थम्ब्रह्मामृतमुखाच्छ्रुतम् ।
अस्मिन्न्यासे दशश्लोका ब्रह्मविष्णुशिवोदिताः ।। ८८ ।।

खड्गिनी शूलिनीश्लोकमाद्यं कृष्णतरं न्यसेत् ।
शूलेन पाहि नो देवि पुनः श्लोकचतुष्टयम् ।। ८९ ।।

---

१. ख. सहाशतीं २. ख. जपेत् ।

बालार्क्कसदृशन्यासे चिन्तनीयम्महत्तरम् ।
सर्वस्वरूप इत्यादि श्लोकानाम्पञ्चकम्पुनः ।। ६० ।।

शुद्धस्फटिकसङ्काशं न्यासे त्रैलोक्यकामदम् ।
अयमेकादशो न्यासो दशन्यासममो भवेत् ।। ६१ ।।

दशन्यासैः कृतैर्यत्तु जपकर्त्ता फलं लभेत् ।
तत्फलं लभते सम्यगस्मिन्नेकादशे कृते ।। ६२ ।।

नवाक्षरस्य मन्त्रस्य जाप्ये सर्वफलप्रदे ।
एते न्यासाः प्रकर्त्तव्याश्चण्डीसप्तशतीजपे ।। ६३ ।।

चण्डीत्यादिभिरेकादशन्यासमाह । स प्रयोगे स्पष्टः ।

एवन्न्यासविधिङ्कृत्वा सृष्टिमुद्रां विलोकयेत् ।
तस्या विलोकने राजन् कृतो न्यासः स्थिरो भवेत् ।। ६४ ।।

एवमित्यादिना कृतन्यासस्थैर्यार्थं मुद्रां दर्शयेदित्याह । तत्र सृष्टिमुद्रा योनिमुद्रा ।

अर्घ्यपात्रम्प्रतिष्ठाप्य पूरयेच्छुभवारिणा ।
गन्धपुष्पाक्षतास्तत्र विन्यस्य नृपनन्दन ।। ६५ ।।

ध्यात्वा सर्वाणि तीर्थानि हस्तौ दत्वाऽभिमन्त्रयेत् ।
रक्षार्थन्तस्य कर्त्तव्या चक्रमुद्राऽस्त्रसंयुता ।। ६६ ।।

तलपृष्ठोद्भवाम्मुद्रान्दत्वाऽस्त्रेणाऽवगुण्ठयेत् ।
अर्घोदकस्य संस्कारम्पूजाद्रव्यस्य पूर्ववत् ।। ६७ ।।

परिषिञ्चति पूजार्थम्द्रव्याणि नवबीजतः ।
कृत्वा लोमविलोमाभ्यामात्मानं सम्यगर्चयेत् ।। ६८ ।।
प्रत्यर्घं सम्प्रतिष्ठाप्य मध्ये पीठार्घपात्रयोः ।

अर्घपात्रमित्यादिभिः पूजोपकरणप्रोक्षणार्थं पूजार्थं चार्घ्यादिपात्रस्थापनमात्मपूजाञ्चाऽऽह । तत्र तलपृष्ठोद्भवां मत्स्यमुद्रां प्रदर्श्य, पाद्यादि लोमविलोमाभ्यां मूर्द्धादिपादपर्यन्तं, पादादिमूर्द्धान्तिञ्च । एतत्सर्वं ध्यानमानसपूजानन्तरं कर्त्तव्यम्, तच्च प्रयोगे वक्ष्यते ।

षट्कोणे चक्रमध्यस्थमध्यबीजे व्यवस्थिताम् ।। ६९ ।।

महाकाल्याः सरस्वत्यालङ्कृतान्दक्षिणान्ययोः ।
संयुक्तान्दक्षिणे वामे सिंहेन महिषेण च ।। १०० ।।

अष्टादशभुजान्ध्यात्वा महालक्ष्मीम्प्रणम्य च ।
पीठादिपूजनङ् कुर्यात्स्वबीजेन पृथक् पृथक् ।। १०१ ।।

ॐ कारं बिन्दुमध्यस्थं नामधेयाद्यमक्षरम् ।
देवतानां स्वबीजन्तत्पूज्यमृद्धिसमृद्धिदम् ।। १०२ ।।

षट्कोणमित्यादिभिः पीठपूजामाह । तत्र नामधेयाद्यमक्षरमिति ॐकारानन्तरम्पीठादि तत्तन्नामाद्यमक्षरं सविन्दुकमुच्चार्य्य, तदनु चतुर्थीनमोन्तेन[1] तत्तन्नाममन्त्रेण पूजयेदित्यर्थः ।

ॐकारः प्रथमम्पीठं पूर्णपीठमतः परम् ।
तृतीयङ् कामपीठञ्च पूजयेत्सम्प्रदायतः ।। १०३ ।।

पूर्वादिदिक्षु पीठस्य गणेशादिचतुष्टयम् ।
गणेशक्षेत्रपालौ च पादुके बटुकास्त्रयः ।। १०४ ।।

आग्नेयादि चतुर्दिक्षु पूज्यन्देवीचतुष्टयम् ।
आद्या तत्र जया प्रोक्ता द्वितीया विजया स्मृता ।। १०५ ।।

जयन्ती चाऽपरा भूप चतुर्थी चाऽपराजिता ।
पूज्या नामपदैर्देव्यः पीठपङ्कजमध्यगाः ।। १०६ ।।

प्रागादिक्रमयोगेन पञ्च षट् षट् षडत्र च ।
प्रथमा विष्णुमाया च द्वितीया चेतना स्मृता ।। १०७ ।।

बुद्धिर्निद्रा क्षुधा छाया शक्तिस्तृष्णाऽष्टमी भवेत् ।
क्षान्तिर्जातिस्ततो लज्जा शान्तिः श्रद्धा त्रयोदशी ।। १०८ ।।

कान्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्वृत्तिः स्मृतिरेव दया तथा ।
तुष्टिः पुष्टिश्च माता च भ्रान्तिर्नामपदक्रमैः ।। १०९ ।।

त्रयोविंशतिसंख्याका ब्रह्मणा पूजिताः पुरा ।
नालमूले च सम्पूज्यमाधारादिचतुष्टयम् ।। ११० ।।

---

१. क. ०नमोन्ते ।

आधारः कूर्मशेषौ च चतुर्थी पृथिवी नृप ।
ततो नालं समभ्यर्च्य पद्मं सम्पूज्य यत्नतः ।। १११ ।।

ज्ञानामृतसुतृप्तात्मा मण्डलार्चनमारभेत् ।
अर्घोदकाद्भिरासिच्य मण्डलं सौम्यदृष्टिमान् ।। ११२ ।।

पूर्वपत्रादितः पूज्यम्मातॄणाम्मण्डलं शिवम् ।

रहस्यकथितैर्बीजैः स्वबीजेनाऽथवा पृथक् ।। ११३ ।।

आद्ये पत्रे समभ्यर्च्या ब्रह्माणी हंसवाहना ।
माहेश्वरी वृषारूढा पूज्या सा हुतभुक्दले ।। ११४ ।।

मयूरवाहना पूज्या कौमारी दक्षिणे दले ।
नैर्ऋत्ये वैष्णवी पूज्या गरुडोपरिसंस्थिता ।। ११५ ।।

पश्चिमे यज्ञवाराही दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरा ।
समीरणदले तोष्या नारसिंह्यघिनिस्वना ।। ११६ ।।

गजराजसमारूढा पूज्यैन्द्री सौम्यदिग्दले ।
गणनाथपरीवारा सदा रुद्रेण संयुता ।। ११७ ।।

ईशपत्रे समभ्यर्च्या चामुण्डा मुण्डमण्डिता ।
ब्रह्माणी कर्णिकामध्ये ······· इति ।। ११८ ।।

आद्ये पत्रे पूर्वपत्रे इत्यर्थः, पूर्वपत्रादितः पूज्यमिति स्वयमुक्तत्वात् । अत्र पूर्वत्वं देव्यग्रस्यैव ।

यष्टुरभिमुखा देवा देवाभिमुखतो दश ।
प्राच्यादिहरितो ज्ञेयाः पुजाहोमादिकर्मसु ।। ११९ ।।

इति **कुलमूलावतारात्** ।

पूज्यपूजकयोर्मध्यम्पूर्वमित्यभिधीयते ।
तदादिपरिवाराणाम्प्रादक्षिण्येन पूजनम् ।। १२० ।।

इति **दक्षिणामूर्ति-कल्पवचनाच्च** क्रमात्षट्कोणपूजनम् ।

नन्दजा हेमगर्भाभा सुरक्ता रक्तदन्तिका ।
नीला शाकम्भरी दुर्गा सर्वरूपाऽऽर्त्तिहारिणी ।। १२१ ।।

दंष्ट्राञ्चितमुखी[1] भीमा नीला पात्रशिरोधरा ।
तेजोमण्डलदुर्द्धर्षा भ्रामरी वरदार्चिता ।। १२२ ।।

आद्ये बीजे महाकालीन्ध्यानपूर्वं समर्च्चयेत् ।
तृतीयेऽष्टभुजान्ध्यात्वा समभ्यर्च्य सरस्वतीम् ।। १२३ ।।

ततः पृथक्पृथक्पूजाङ्कृत्वा महिषसिंहयोः ।
मध्यबीजे चिरन्ध्यात्वा महालक्ष्मीम्महामनाः ।। १२४ ।।

आह्वानपूर्वकन्दद्यादासनम्मणिभूषितम् ।
मण्डलस्था तु या देवी पीठस्थाः सर्वशस्तदा ।। १२५ ।।

महालक्ष्म्या सहैक्येन[2] चिन्तयेद्योगमुद्रया ।
एकाकारम्महालक्ष्म्या रूपन्ध्यात्वा परावरम् ।। १२६ ।।

मुद्रा भुजायुधाकारा चण्डिकायै प्रदर्शयेत् ।
अष्टादशाक्षमालाद्यास्ततः पाद्यं समर्पयेत् ।। १२७ ।।

वारिपुष्पाक्षतायुक्तञ्चन्दनेन प्रमोदितम् ।
अर्घन्दत्वा महालक्ष्म्यै धेनुमुद्राम्प्रदर्शयेत् ।। १२८ ।।

सङ्कल्प्याऽऽचमनम्भूप स्नानम्पुष्पाभिषेचनम् ।
विदध्याच्छ्रेयसीम्मुद्रां यया माता प्रतुष्यति ।। १२९ ।।

महार्हे चित्रिते वस्त्रे विचित्राभरणानि च ।
कस्तूरीकुङ्कुमोपेतङ्कर्पूरागुरुचर्च्चितम् ।। १३० ।।

सुरभीणि सुपुष्पाणि विल्वपत्राक्षतादि च ।
निवेद्य चण्डिकाम्भूप दिव्यैर्धूपैः सुधूपयेत् ।। १३१ ।।

ज्वलन्मणिशिखाकारैर्दीपैर्नीराजयेच्छुभैः ।
यथापर्णक्रमोपेतैर्नैवेद्यैः पायसादिभिः ।। १३२ ।।

अनेकरसपक्वान्नैर्महालक्ष्मीम्प्रतोषयेत् ।

यथावर्णक्रमोपेतैरित्यनेन त्रैवर्णिकैः[3] । सिद्धान्नं नैवेद्यं देयम् । शूद्रैस्तु खण्डाज्यादिकृतपक्वान्नै रामान्नादिभिर्वा नैवेद्यं देयमित्युक्तम् ।

---

१. क. ख. दंष्ट्रार्चित० । २. क. सहैकोन । ३. ख. त्रैवर्णिकः

त्रिषु वर्णेषु दातव्यं विष्णवे पाकभोजनम् ।
'खण्डाज्यादिकृतम्पाकं न दूष्येच्छूद्रजन्मन' ।। १३३ ।।

इति वचनात् ।

प्रणम्याऽऽचमनन्दत्वा चन्दनम्मुखवासनम् ।
सकर्पूरञ्च ताम्बूलम्भक्तिभावसमन्वितम् ।। १३४ ।।

प्राणानायम्य पूर्वोक्तन्यासान्संस्मृत्य चाऽऽत्मवान् ।
प्रथमञ्चरितम्प्रोक्तम्मधुकैटभनाशनम् ।। १३५ ।।

महिषासुरनिर्नाशञ्चरितं विद्धि[1] मध्यमम् ।
चरितञ्चोत्तरं विद्धि निशुम्भादिवधाश्रयम् ।। १३६ ।।

चरितानि जपेत्त्रीणि सरहस्यान्यतन्द्रितः ।
चरितम्मध्यमञ्चैषाञ्जपेद्वा चण्डिकामयम् ।। १३७ ।।

जपेन्नवाक्षरम्मन्त्रमथवाऽष्टोत्तरं शतम् ।
हुनेज्जपदशांशेन पायसन्तिलसर्पिषा ।। १३८ ।।

नवाक्षरेण मन्त्रेण स्मार्त्तेऽग्नौ नृपनन्दन ।
नमो देव्यै महादेव्यै महालक्ष्म्यै हुनेद्धविः ।। १३९ ।।

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततन्नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ।। १४० ।।

अनेन श्लोकपाठेन जुहुयाद्वा शुभं हविः ।
ऊद्धृतः प्रोक्षितो मन्त्रैः पात्रानीतः समुज्ज्वलः ।। १४१ ।।

संस्कृतायाम्भुवि स्थाप्यः स्मार्त्तोऽग्निः सम्प्रकीर्त्तितः ।
देवतार्च्चनजाप्यस्य होमे संस्कारमन्यथा ।। १४२ ।।

कृत्वा संस्थापयेदग्निं नाऽन्यदासादनम्मतम् ।
स्मार्त्ते हि पायसं होमे हुनेत्स्मार्त्ते हुताशने ।। १४३ ।।

तदभावे समित्सर्पिस्तिलानां हवनम्भवेत् ।
[2]सजपहोममावेद्य महालक्ष्मीम्प्रणम्य च ।। १४४ ।।

१. क. विधि । २. ख. सजपं होम० ।

शूलेन पाहि नो देवीत्येतैः श्लोकैः प्रदक्षिणम् ।
विदध्यात्सुस्थिरो भूत्वा चण्डिकाध्यानतत्परः ।। १४५ ।।

नमो देव्या इति श्लोकैः पञ्चभिः पञ्चवर्गतः ।
कृत्वा पञ्चनमस्कारानुपविश्याऽऽसने शुभे ।। १४६ ।।

सर्वस्वरूपे इत्यादि षड्भिः श्लोकैः कृताञ्जलिः ।
प्रार्थयेज्जगतान्धात्रीम्प्रणतात्मा हृदीप्सितम् ।। १४७ ।।

स्वशरीरे समारोप्य दद्यादस्यै विसर्ज्जनम् ।
अनेन विधिना नित्यं यः कुर्याच्चण्डिकार्च्चनम् ।। १४८ ।।

तस्य तुष्टा महालक्ष्मीर्यंच्च दद्याच्छृणुष्व तत् ।
महदैश्वर्य्यमतुलं त्रैलोक्ये तस्य जायते ।। १४९ ।।

धर्मराज्यसमायुक्तम्पुत्रपौत्रसमाकुलम् ।
तङ्करोति महालक्ष्मीर्ब्रह्मविष्णुशिवोपमम् ।। १५० ।।

रिपवः प्रलयं यान्ति तत्स्थानाच्छतयोजनम् ।
[1]तेनैक्येन वसन्तोऽपि न तम्पश्यन्ति दस्यवः ।। १५१ ।।

तस्य स्मरणमात्रेण विघ्नानां जायते क्षयः[2] ।
त्रिषु लोकेषु यत्किञ्चित्स सुरासुरदुर्लभम् ।। १५२ ।।

तत्सर्वन्तं समायाति महालक्ष्मीप्रसादतः ।
यो जपेत्परया भक्त्या महालक्ष्म्यास्तु पूजनम् ।। १५३ ।।

स नरो लभते सत्यम्पूजाफलमनुत्तमम् ।
चण्डीसप्तशतीस्तोत्रे आद्यस्य चरितस्य तु ।। १५४ ।।

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्री छन्द ईरितम् ।
महाकाली देवता स्याद्बीजञ्च रक्तदन्तिका[3] ।। १५५ ।।

नन्दा शक्तिः समाख्याता अग्निस्तत्वमुदाहृतम् ।
विनियोगस्तु धर्मार्थकाममोक्षाप्तये नृप ।। १५६ ।।

१. ख. तेनैकेन । २. ख. जायते यः । ३. ख. रक्तदन्तिकाँ ।

मध्यमस्य चरित्रस्य ऋषिर्विष्णुरुदीरितः ।
उष्णिक् छन्दः समाख्यातम्महालक्ष्मीश्च देवता ।। १५७ ।।

दुर्गा बीजमिति ख्यातं शक्तिः शाकम्भरी मता ।
वायुस्तत्वमिति प्रोक्तं विनियोगस्तु पूर्ववत् ।। १५८ ।।

उत्तरस्य चरित्रस्य ऋषी रुद्रः समीरितः ।
अनुष्टुप् छन्द इत्युक्तन्देवता च सरस्वती ।। १५९ ।।

भ्रामरी बीजमित्युक्तम्भीमा शक्तिर्नृपोत्तम ।
सूर्यस्तत्वमिति प्रोक्तं विनियोगः पुरोक्तवत् ।। १६० ।।

नवाक्षरस्य ऋषयो ब्रह्मविष्णुशिवाः स्मृताः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च छन्दांसि नृपसत्तम ।। १६१ ।।

महाकालीमहालक्ष्मीसरस्वत्यश्च देवताः ।
बीजम्परशिवं लिङ्गं शेषाः शक्तय ईरिताः[1] ।। १६२ ।।

अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च तत्त्वान्युक्तानि भूपते ।
विनियोगः पुरोक्तश्च सर्वाभीष्टाप्तयेऽपि च ।। १६३ ।।

शेषाः कालीशिवदूतीप्रजावत्यः ।

एतद् गोप्यतरं सर्वं वेदागमसमुद्भवम् ।
ब्रह्मणा गुरवे दत्तं गुरुणा मम शंसितम् ।। १६४ ।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां त्रिषु लोकेषु साधनम् ।
अनेन सदृशन्नाऽस्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।। १६५ ।।

।। **अथ प्रयोगः** ।।

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादि-सन्ध्याङ्गभूततर्प्पणान्तं विधाय, "ॐ कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमारि धीमहि तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्" इति गायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा, प्राग्वच्छेषं समाप्य, प्राग्वदेव "श्रीचण्डिका तृप्यतामिति" अष्टोत्तर-शतवारं, तदर्द्धमष्टाविंशतिवारं वा सन्तर्प्य, प्राग्वदङ्गदेवताः सन्तर्प्य, प्राग्वत्सूर्यार्घदानादि-योगपीठन्यासान्तं विधाय, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा,

---

१. क. इरिताः । ख. अष्टोत्तरशत ।

"शिरसि—ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्य ऋषिभ्यो नमः, मुखे—गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-छन्दोभ्यो नमः, हृदि—महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीभ्यो देवताभ्यो नमः, गुह्ये—परमशिवलिङ्गाय बीजाय नमः, पादयोः—कालीशिवदूतीप्रजावतीभ्यः शक्तिभ्यो नम" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा,

"ॐ ऐँ ह्रीँ क्लीँ हृदयाय नमः, एवं शिरसे स्वाहा, शिखायै वषडित्यादि" इति कनिष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य हृदयादि—षडङ्गेष्वपि न्यसेत् । अत्र करन्यासे करतलपृष्ठकरभमणिबन्धेषु न्यसेदिति विशेषः ।

अथ पूर्वाङ्गे—"ॐ ह्रीँ ब्रह्माणी मे पूर्वे पातु नमः, आग्नेये—ओँ ह्रीँ माहेश्वरी मे आग्नेये पातु नमः, एवं कौमारी मे दक्षिणे पातु०२, वैष्णवी मे नैर्ऋत्ये पातु०२, वाराही मे पश्चिमे पातु०२, इन्द्राणी मे वायव्यां पातु०२, चामुण्डा मे उत्तरे पातु०२, महालक्ष्मीर्मे ईशाने पातु०२, व्योमेश्वरी मे ऊर्द्ध्वं पातु०२, सप्तद्वीपेश्वरी मे मध्यं पातु०, नागेश्वरी मे अधःपातु०२, इति स्वशरीरे पूर्वाद्यष्टदिक्कल्पनया स्वाग्राद्यष्टस्थानानि प्रादक्षिण्येन परिकल्प्य, तेषु स्थानेषु शिरोगुह्यपादेषु चैकादशस्थानेष्वेकादश देवीर्न्यसेत् ।। **इति प्रथमो न्यासः**'।।[1]

ततः पूर्वाङ्गे—"ओँ ह्रीँ मम पूर्वाङ्गं नन्दजा पातु नमः, एवं दक्षिणाङ्गं रक्तदन्तिका०,पश्चिमाङ्गं शाकम्भरी०, वामाङ्गं दुर्गा०,मूर्द्धादिपादान्तं भीमा०, पादादि-मूर्द्धान्तं भ्रामरी०," ।। **इति द्वितीयो न्यासः** ।।

पादादिनाभिपर्यन्तं "ब्रह्मा पातु नमः, नाभेः कण्ठपर्यन्तं—विष्णुः पातु नमः, कण्ठाद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं—रुद्रः पातु २, पादद्वये—हंसः पातु २, करद्वये[2]—वैनतेयः पातु २. नेत्रयोः—वृषभः पातु २, सर्वाङ्गे—जनार्दनः पातु २, ब्रह्मरन्ध्रे—हरिः पातु २" ।। **इति तृतीयः** ।।

"मध्यदेहे—महालक्ष्म्यै नमः, मस्तके—सरस्वत्यै नमः, पादयोः—महाकाल्यै०, करयोः—सिंहाय०, नेत्रयोः—परहंसाय०, पादयोः—महिषसहिताय प्रेताय०, सर्वाङ्गे—महेशाय०, सर्वाङ्गे—चण्डिकायै नमः" ।। **इति चतुर्थः** ।।

---

१. '–' अयमंशो नाऽस्ति क. पुस्तके । २. ख. करद्वे ।

"ब्रह्मरन्ध्रे—ओँ ऐँ नमः, दक्षकर्णे—ओँ ह्रीँ०, वामे—ॐ क्लीँ०, दक्षनेत्रे—ॐ चाँ०, वामे—ॐ मुँ०, दक्षिणनासायां—ॐ डाँ०, वामे—ॐ यैँ०, मुखे—ॐ विँ०, लिङ्गे—च्चेँ०" ।। इति पञ्चमः ।।

'गुदे—ॐ ऐँ, लिङ्गे—ॐ ह्रीँ०, मुखे—ॐ क्लीँ०, वामनासायां ॐ चाँ नमः, दक्षनासायां—ॐ मुँ०, वामनेत्रे—ॐ डाँ०, दक्षनेत्रे—ॐ यैँ नमः, वामकर्णे—ॐ विँ नमः, दक्षकर्णे—ॐ च्चैँ नमः" ।। इति षष्ठः ।।

स्वपूर्वाङ्गे—पूर्वादिपादान्तं मूलमन्त्रमुच्चार्य्य नमः, एवं दक्षपार्श्वे०, पृष्ठभागे०, वामभागे०, पुनर्वामे०, पृष्ठे, दक्षभागे०, पूर्वाङ्गे० च न्यसेदिति सप्तमः ।।

ततो मूलमन्त्रमुच्चार्य्य—"हृदयाय नमः, एवं शिरसे स्वाहे"त्यादि-षडङ्गक्रमयोगेन न्यसेत् ।। इत्यष्टमः ।।

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुषण्डीपरिघायुधा ।। १६६ ।।

इति श्लोकं कृष्णवर्णं ध्यायन्सर्वाङ्गे मूर्द्धादिपादान्तं व्यापकत्वेन विन्यस्य, पुनः—

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाऽम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ।। १६७ ।।

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्याञ्च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनाऽऽत्मशूलस्य उत्तरस्यान्तथेश्वरि ।। १६८ ।।

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यन्तघोराणि तै रक्षाऽस्मांस्तथा भुवम् ।। १६९ ।।

खड्गशूलगदादीनि यानि चाऽस्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान्रक्ष सर्वतः ।। १७० ।।

इति श्लोकचतुष्टयं बालार्कवर्णं ध्यायन् व्यापकत्वेन विन्यस्य, पुनः—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।। १७१ ।।

एतत्तेवदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ।। ३७२ ।।

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलम्पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ।। १७३ ।।

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनाऽऽपूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानि च ।। १७४ ।।

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वान्नता वयम् ।। १७५ ।।

इति श्लोकपञ्चकं शुद्धस्फुटिकसङ्काशं ध्यायन् प्राग्वत्सर्वाङ्गे व्यापकत्वेन विन्यस्य, योनिमुद्रां बद्ध्वा स्वात्मानं देवीरूपं ध्यायन् दर्शयित्वा, हृदि महालक्ष्मीं ध्यायेत् । अत्र पूर्वोक्तमातृकान्यासषडङ्गन्यासाभ्यामेकादशन्यासा बोद्धव्याः ।

**।। अथ ध्यानम् ।।**

तत्र स्वहृदये वक्ष्यमाणम्पूजापीठं विभाव्य, तन्मध्ये वक्ष्यमाणमूलमन्त्रस्य बीजत्रयं ध्यात्वा, तत्र मध्यबीजे श्रीमहालक्ष्मीं सर्वदेवशरीरतेजसोद्भूतां ध्यायेत् । यथा—

सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूताऽमितप्रभा ।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्द्दिनी ।। १७६ ।।

श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला ।
रक्तमध्या रक्तपादा रक्तजङ्घोरुरुन्मदा ।। १७७ ।।

विचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ।। १७८ ।।

अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ।। १७९ ।।

अक्षमाला च कमलं बाणासी कुलिशं गदा ।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ।। १८० ।।

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापम्पानपात्रं कमण्डलुम् ।
[1]अलङ्कृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ।। १८१ ।।

सर्वदेवमयीमीशाम्महालक्ष्मीमिमान्नृप ।
पूजयन्सर्वदेवानां लोकानाञ्च प्रभुर्भवेत् ।। १८२ ।।

इति महालक्ष्मीं स्वैक्येन ध्यात्वा तस्या दक्षिणे प्रथमबीजे महाकालीं ध्यायेत् ।

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाऽञ्जजनप्रभा ।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ।। १८३ ।।

स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपा त्वभून्नृप ।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियाम् ।। १८४ ।।

खड्गबाणगदाशूलचक्रपाशभुषण्डभृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्चयोत्तद्रुधिरन्दधौ ।। १८५ ।।

एषा सा वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया ।
आराधिता वशीकुर्यात्पूजाकर्त्तुश्चराचरम् ।। १८६ ।।

इति महाकालीं ध्यात्वा महालक्ष्मीवामभागे महासरस्वतीं तृतीयबीजे ध्यायेद्यथा—

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्वैकगुणान्विता ।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ।। १८७ ।।

दधौ चाऽष्टभुजा बाणान्मुशलं चक्रशूलभृत् ।
शङ्खञ्च लाङ्गलं घण्टां कार्मुकं वसुधाधिप ।। १८८ ।।
एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वम्प्रयच्छति ।

अत्र दक्षिणाधःकरक्रमात् इति तिसृणामपि देवीनामायुधध्यानम्-दक्षिणाधःकरादिवामाधःकरान्तमित्यर्थः । इति महासरस्वतीञ्च ध्यात्वा, वक्ष्यमाणपीठपूजापुरःसरं महालक्ष्मीं साङ्गां सावरणां मानसैरुपचारैः सम्पूज्य,

---

१. ख. ०भुजामेति० ।

स्वमूलाधारे[1]–आत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मस्वरूपं चतुरश्रं कुण्डं कुण्डल्यग्निसमुज्ज्वलन्तं ध्यात्वा, "मूलमन्त्रमुच्चार्य्याऽहन्ताञ्जुहोमि स्वाहा" इत्येवं–"अहन्ताऽसत्यपैशुन्यकामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याणि सुषुम्णास्त्रुग्युक्तमनस्स्रुवेण पृथक् पृथग्घुत्वा, निर्द्दग्धनिखिलवैरिगणः स्थिरचित्तो मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा, जपं देव्यै समर्प्याऽऽवाह्य[2] पूजामारभेत ।

तत्र स्वर्णादिरचिते पीठे चन्दनकुङ्कुमकर्पूरादिसुगन्धद्रव्यैः कर्णिकाकेसरदलदलाग्रपरिवेषयुक्तमष्टदलकमलं निर्माय, तत्कर्णिकायां षट्कोणमण्डलं कृत्वा, तन्मध्ये मूलमन्त्रस्याद्यं बीजत्रयं स्ववामादिक्रमेण पङ्क्त्याकारेण विलिख्य, बहिश्चतुर्द्वारयुक्तचतुरश्रत्रयेण वेष्टयेत् ।

इति पूजाचक्रं निर्माय,[3] स्वपुरतश्चन्दनादिपीठे संस्थाप्य, तदुपरि मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्याऽर्घस्थापनाद्यात्मपूजान्ते [पूजापीठमर्घोदकेनाऽभ्युक्ष्य,

षट्कोणे—"ॐ ओङ्कारपीठाय नमः, अष्टदलकमले—"ॐ पूं पूर्णगिरिपीठाय नमः, चतुरश्रे–ॐ कां कामरूपपीठाय नम" इति सम्पूज्य[4]],

पूजापीठस्य बहिश्चतुर्दिक्षु स्वाग्रभारभ्य प्रादक्षिण्येन–"ॐ गं गणेशाय नमः, ॐ क्षँ क्षेत्रपालाय०, ॐ दुँ दुर्गायै०, ॐ बं बटुकाय नम" इति सम्पूज्य,

पीठस्याऽऽग्नेयादिकोणेषु—"ॐ जँ जयायै०, ॐ विँ[5] विजयायै०, ॐ जँ जयन्त्यै०, ॐ अँ अपराजितायै०",

ततः पद्मनालमूले—"ॐ आँ आधारशक्तये०, ॐ कूँ कूर्माय०, ॐ शेँ शेषाय०, ॐ पृँ पृथिव्यै०, ॐ नाँ नालाय०, ॐ पँ पद्माय०"

इति सम्पूज्याऽष्टदलकमलकर्णिकायां षट्कोणाद्बहिः पूर्वदिशि स्वदक्षिणादिवामान्तं 'ॐ विष्णुमायायै नमः, ॐ चेँ[6] चेतनायै०, ॐ बुँ बुद्ध्यै०, ॐ निँ निद्रायै०, ॐ क्षुँ क्षुधायै०" इति पञ्चशक्तीः सम्पूज्य,

दक्षिणदिशि—"ॐ छां छायायै०, ॐ शं शक्तये०, ॐ तृं तृष्णायै०, ॐ क्षाँ क्षान्त्यै०, ॐ जाँ जात्यै०, ॐ लँ लज्जायै०" इति शक्तिषट्कं सम्पूज्य,

---

१. ख. मूलाधारे । २. ख. समर्प्यवाह्य । ३. स्वपुरत० । ४. कोष्ठस्थितांशस्याऽभावः ख. पुस्तके । ५. ख. वँ । ६. ख. चँ ।

पश्चिमदिशि—ॐ" शाँ शान्त्यै०, ॐ श्रँ श्रद्धायै०, ॐ काँ कान्त्यै०, ॐ लँ लक्ष्म्यै०, ॐ धृँ धृत्यै०, ॐ वृँ वृत्यै नमः",

इति सम्पूज्योत्तरदिशि "ॐ स्मृँ स्मृत्यै०, ॐ दँ दयायै०, ॐ तुँ तुष्टयै०, ॐ पुँ पुष्टयै०, ॐ माँ मात्रे नमः" इति शक्तिषट्कं सम्पूजयेत् ।

इति प्रादक्षिण्येन त्रयोविंशतिदेवताः सम्पूज्य, कर्णिकामध्यस्थमध्यबीजे मूलमुच्चार्य्य 'श्रीमहालक्ष्म्या मूर्त्तिम्परिकल्पयामि नम" इति ध्यानोक्ताम्मूर्त्तिम्परिकल्प्य, पुनर्मूलमुच्चार्य्य "श्रीमहालक्ष्म्या मूर्त्तये नमः" इति मूर्त्ति सम्पूज्य, कराभ्याम्पुष्पाञ्जलिमादाय, हृदयकमले यथोक्तरूपां साङ्गां सावरणां महालक्ष्मीं ध्यात्वा, तेजोरूपतामापाद्य[1] सषुम्णावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, प्रवहन्नासारन्ध्रेण करस्थपुष्पाञ्जलौ मूलेन तत्तेजः समानीय—

ॐ महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ।। १८९ ।।

इति पठित्वा, मूलमुच्चार्य्य, 'श्रीमहालक्ष्मि इहागच्छाऽऽगच्छेति' कल्पितमूर्त्तेः शिरसि पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेण तत्तेजस्तस्याम्मूर्त्तौ ब्रह्मरन्ध्रे संयोज्याऽऽवाहनीम्मुद्रां प्रदर्श्य—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते ।
यावत्त्वाम्पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।। १९० ।।

इति प्रार्थ्य, मूलमुच्चार्य्य, "श्री महालक्ष्मि इह तिष्ठ तिष्ठे'ति स्थापनीमुद्रां प्रदर्श्य, "मूलं श्रीमहालक्ष्मि इह सन्निधेहि सन्निधेही'ति सन्निधापनमुद्रया सन्निधाप्य पुन "मूलं श्रीभगवति इह सन्निरुद्धा भव२" इति सन्निरोधनमुद्रया सन्निरोध्य, पुनर्मूलं श्रीभगवति इह सम्मुखी भव२" इति सम्मुखीकरणमुद्रया सम्मुखीकृत्य, पुन"मूलं श्रीभगवति इहाऽवगुण्ठिता भव२" इत्यवगुण्ठ्य, देव्यङ्गेषु षडङ्गानि विन्यस्य, मूलमुच्चार्य्य "श्री भगवति सकलीकृता भवे'त्युक्त्वा पुन"मूलं श्रीभगवत्यमृतीकृता भवे'ति देव्याः शिरसि धेनुमुद्रां प्रदर्शयन्नमृतवृष्टिं सञ्चिन्त्य, पुन"मूलं श्रीभगवति परमीकृता भवे"ति परमीकरणमुद्रां बद्ध्वा, परमामृतमयीम्भावयेत् ।

---

१. क. ०रूपतामाद्य ।

इति नवमुद्राः प्रदर्श्याऽर्घोदेकन देवीं सम्प्रोक्ष्य, पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रे मम-पदस्थाने श्रीमहालक्ष्म्या इति पदं दत्वा, प्राणप्रतिष्ठां विधाय,

अक्षमालाकमलबाणखड्गवज्रगदाचक्रत्रिशूलपरशुशङ्खघण्टापाशशक्तिदण्ड-चर्मचापपानपात्रकमण्डल्वाख्या अष्टादशमुद्राः प्रदर्श्य,

मूलेन सम्पूज्य, योनिमुद्रां च प्रदर्श्य, मूलमुच्चार्य्य "श्रीमहालक्ष्म्यै नम" इति पुष्पाञ्जलित्रयेण सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य्य, "श्रीभगवति एतत्ते आसनं नमः" इति पुष्पादिकमासनन्दत्वा, मूलेन देवीं सम्पूज्य, पुन"र्मूलं भगवति एष-तेऽर्घः स्वाहा" इत्यर्घपात्रात्पात्रान्तरेण जलमुद्धृत्य, देव्याः शिरसि दत्वा, धेनुमुद्राम्प्रदर्श्य, पुनर्मूलेन देवीं सम्पूज्य पुन"र्मूलं श्रीभगवति एतत्ते पात्रं नम" इति पाद्यपात्राज्जलमुद्धृत्य, देव्याः पादयोर्दत्वा, मूलेन देवीं सम्पूज्य, पुनर्मूलमुच्चार्य्य, "श्री भगवति एतत्ते अ चमनीयं सुधे"त्याचमनीयपात्राज्जल-मुद्धृत्य, देव्या मुखे दत्वा, मूलेन देवीं सम्पूज्य, पुन"र्मूलं श्रीभगवत्येष ते मधुपर्कः सुधे"ति देव्या मुखे दधिमधुघृतात्मकं मधुपर्कं दत्वा, पुनः सम्पूज्य, पुनराचमनीय-पात्रादाचमनीयं पूर्ववन्निवेद्य, तथैव सम्पूज्य, "श्री भगवति एतत्ते स्नानीयं नम" इति सुगन्धतैलेनाऽभ्यज्य, सुगन्धामलकादि परिकल्प्य, शुद्धजलैः स्नापयित्वा, पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैश्चाऽभिषिच्य, पुनर्नानातीर्थजलैरभिषिच्य, प्राग्वदाचमनीयं दत्वा, प्राग्वन्मूलेन सम्पूज्य, श्रेयसीं मुद्रां प्रदर्श्य ["मूलं श्रीभगवति एतत्ते वाससी नम" इति चित्रदुकूलद्वयं परिधाप्य, प्राग्वदाचमनीयं दत्वा, मूलेन सम्पूज्य "श्रीभगवत्येष ते गन्धो नम" इति गन्धं समर्प्य, पुनर्मूलेन सम्पूज्य,][1] "श्रीभगवति[2] इमानि पुष्पाणि वौषडि"ति नानाविधानि सुगन्धपुष्पाणि समर्प्य, पुष्पमुद्राम्प्रदर्श्य, "श्रीभगवति परिवारपूजार्थमनुज्ञां देही"ति प्रार्थ्य,

देव्या दक्षिणभागे प्रथमबीजे स्थितां महाकालीं ध्यात्वा, "ॐ ऐं महाकाल्यै नम" इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, देव्या वामे तृतीयबीजे स्थितां महासरस्वतीं ध्यात्वा "ॐ क्लीं महासरस्वत्यै नमः" इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, महालक्ष्म्याः पृष्ठे—"ॐ ब्रह्मसरस्वतीभ्यां नमः, महाकाल्याः पृष्ठे—"रुद्रगौरीभ्यां०, महा-सरस्वत्याः पृष्ठे – "हृषीकेशलक्ष्मीभ्याम्०" इति सम्पूज्य, महालक्ष्म्या वामाग्रे— "महिषासुराय नमः, दक्षाग्रे—ॐ सिंहाय नमः" ।

---

१. कोष्ठकान्तर्गतोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके । २. ख. मूलं श्रीभगवति ।

षट्कोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन "ॐ नं नन्दजायै नमः, एवं रक्तदन्तिकायै०, शाँ शाकम्भर्य्यै०, दुँ दुर्गायै०, भीँ भीमायै०, भ्राँ भ्रामर्य्यै नम" इति सम्पूज्य,

षट्कोणाद्बहिः कर्णिकायामेव आग्नेये—"ॐ आद्यबीजत्रयं हृदयाय नमः, एवमेवेशाने—शिरसे नमः, नैर्ऋते—शिखायै नमः, वायव्ये—कवचाय नमः, देव्यग्रे—नेत्राय नमः, देव्यग्रादिचतुर्दिक्षु—अस्त्राय नमः" इति षडङ्गानि सम्पूज्य,

अष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन—"ॐ ब्रँ ब्रह्माण्यै नमः, ॐ मां माहेश्वर्य्यै०, ॐ कौं कौमार्यै०, ॐ वैं वैष्णव्यै०, ॐ वां वाराह्यै, ॐ नां नारसिंह्यै०, ॐ इं इन्द्राण्यै०, ॐ चाँ चामुण्डायै नम" इति,

चतुरश्रप्रथमवीथ्यां देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येनाऽष्टसु दिक्षु इन्द्रेशानयोर्मध्ये, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये[1] च दशदिक्पालानभ्यर्च्य, द्वितीयवीथ्यां—वज्राद्यायुधानि तथैव सम्पूज्य,

मूलमुच्चार्य्य "साङ्गायै सपरिवारायै श्रीमहालक्ष्म्यै नम" इति त्रिः पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, पुनर्मूलमुच्चार्य्य ["श्रीभगवत्येष ते धूपो नमः" इति धूपं निवेद्य, धूपभाजनं स्वदक्षिणाग्रे निवेश्य, धूपमुद्राम्प्रदर्श्य, मूलेन देवीं सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य्य,][2] "श्रीभगवति एष ते दीपो नम" इति दीपं निवेद्य, स्ववामाग्रे दीपभाजनं निवेश्य, दीपमुद्राम्प्रदर्श्य, नानाविधं नैवेद्यं स्वर्णादिपात्रे निधाय, देव्याः पुरतश्चतुरश्रे मण्डले साधारम्पात्रं संस्थाप्याऽस्त्रेण प्रोक्ष्य, 'वमि'ति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, मूलेनाऽष्टवारमभिमन्त्र्य, हस्तेनाऽर्घोदकमादाय—

हेमपात्रगतन्दिव्यम्परमान्नं सुसंस्कृतम् ।
पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि ।। १६१ ।।

इति नैवेद्योपरि चुलुकदानं कृत्वा "ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहे'ति जलं दत्वा, प्राणादिपञ्चमन्त्रैस्तत्तन्मुद्रया पञ्चग्रासान्ग्राहयित्वा, देवीं भुञ्जानां भावयन् मूलमन्त्रं दशवारं जपित्वा, स्वर्णादिपात्रे कर्पूरादिसुवासितं सुशीतलं जलमानीय, मूलेन भगवत्यै निवेद्य,

१. क. वरुणोर्मध्ये । २. [-] कोष्ठस्थांशस्याऽभावः क. पुस्तके ।

स्मार्त्ताऽग्नौ मूलमन्त्रेण पञ्चविंशत्याहुतीर्हुत्वा, षडङ्गमन्त्रैः षडाहुतीर्हुत्वा, आवरणदेवतानां तत्तन्नाममन्त्रैरेकैकामाहुतिं हुत्वा, पूजास्थानमागत्य स्ववामाग्रे त्रिकोणमण्डले अन्नव्यञ्जनयुतं साधारम्बलिपात्रं निधाय, शुद्धोदकेनाऽऽपूर्य, गन्ध-पुष्पादिकं निक्षिप्य, बलिपात्रम्पुरतः सर्वभूतानि ध्यात्वा, 'सर्वभूतेभ्यो नम' इति गन्धाक्षतैः सम्पूज्य,

ॐ भूता ये विविधाकारा दिग्विदिक्षु समाश्रिताः ।
[पातालतलसंस्थाश्च ये च लोकान्तराश्रिताः][1] ।। १९२ ।।

योगिन्योऽप्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ।
सर्वे ते प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमम्बलिम् ।। १९३ ।।

इति भूतेभ्यो बलिं दत्वा, पुष्पाञ्जलिमादाय,

भूतानि यानीह वसन्ति भूतले
बलिं गृहीत्वा विधिवत् प्रयुक्तम् ।
अन्यत्र वासम्परिकल्पयन्तु ।
क्षमन्तु तान्यत्र नमोऽस्तु तेभ्यः ।। १९४ ।।

इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, क्षमाप्य, नाराचमुद्रया भूतानि विसृज्य, मूलेन शुद्धजलेनाऽऽत्मानमभ्युक्ष्य, देव्यै "ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहे"ति उत्तरापोशन-जलं दत्वा, करास्यक्षालनगण्डूषान्कारयित्वा, आचमनीयं दत्वा, सकर्पूरन्ताम्बूलं निवेद्य, छत्रचामरादिराजोपचारान्निवेद्य,

कांस्यादिवृहत्स्थाल्यां चन्दनादिनाऽष्टदलं कृत्वा, तन्मध्येऽष्टसु दलेषु पिष्टमयान्नवदीपान् घृतपूर्णान् कर्पूरगर्भवर्त्तियुतान् निक्षिप्य, "ह्रीमि"ति प्रज्वाल्य, क्वचिच्चतुरश्रमण्डखे निधाय, "वमि"ति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्याऽस्त्रमन्त्रेण चक्रमुद्रया संरक्ष्य, 'श्रीँ ह्रीँ ग्लूँ स्लूँ म्लूँ प्लूँ न्लूँ ह्रीँ श्रीँ" इति रत्नेश्वरी-विद्यया मूलमन्त्रेण च पृथक्पृथगभ्यर्च्य, तत्पात्रं कराभ्यामादायोत्थाय, मूल-मुच्चरन् देव्याश्चरणान्मूर्द्धान्तं मूर्द्धादिचरणान्तं पुनः पुनर्भ्रामयन्नवकृत्वो नीरा-जयेत् ।

इत्यारात्रिकं कृत्वा, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, प्रागुक्तऋष्यादि-

१. [—] ख. पुस्तकेऽयमंशो विशेषः ।

न्यासं विधाय, देवीं ध्यायन् मूलमष्टोत्तरसहस्रं, तदर्द्धं त्रिशतमष्टोत्तरशतं वा जपित्वा, जपं समर्प्य, ऋषिछन्दोदेवताविन्यासपूर्वकन्देवीमाहात्म्यस्य चरितत्रयं रहस्यसहितम्पठित्वा, तदशक्तौ मध्यमचरितं वा पठित्वा, पुनः प्राग्वन्मूलमन्त्रं वा जपित्वा, तत्सर्वम्भगवत्यै समर्प्य, "शूलेन पाहि नो देवी"त्यादि चतुर्भिः श्लोकैः प्रदक्षिणानि कृत्वा, "नमो देव्यै" इत्यादि पञ्चभिः श्लोकैः पञ्चनमस्कारैः परितोष्य, पुनः पुनः प्रणम्य, "सर्वस्वरूप" इत्यादिभिः षड्भिः श्लोकैः कृताञ्जलिरिष्टार्थप्रार्थनां कृत्वा, कुमारीं सुवासिनीं वा वक्ष्यमाणविधिना सम्पूज्य भोजनादिभिः परितोष्य, प्रणम्य, ताम्बूलादिकन्दत्वा, विसृज्यार्घ्यपात्रमुत्थाय—

साधु वाऽसाधु वा कर्म यद्यदाचरितम्मया ।
तत्सर्वं कृपया देवि गृहाणाऽऽराधनम्परम् ॥ १६५ ॥

इति देव्यै किञ्चिदर्घोदकन्दत्वा, पुनस्तत्पात्रं स्वस्थाने निवेश्य, तज्जलं किञ्चित्स्ववामकरे निधाय, पूजावशिष्टगन्धमिश्रन्तन्मूलेन त्रिरभिमन्त्र्य, तेन स्वात्मानम्प्रोक्ष्य, पुष्पाञ्जलिमादाय—

रश्मिरूपा महादेव्या अत्र पूजितदेवताः ।
महालक्ष्म्यङ्गलीनास्ताः सन्तु सर्वाः शुभावहाः ॥ १६६ ॥

इति पुष्पाञ्जलिन्दत्वा, देव्यङ्गे परिवारदेवता विलीना विभाव्य, देवीन्तेजोरूपान्ध्यायन् संहारमुद्रया निर्माल्यपुष्पेण सह तत्तेजः समुद्धृत्य—

ॐ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानम्परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमम्पदम् ॥ १६७ ॥

इत्युच्चार्य्य, वहन्नासारन्ध्रेण ब्रह्मरन्ध्रन्नीत्वा, सुषुम्णामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रात् हृदयकमलमानीय,—

ॐ तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति[1] मे हृदि ॥ १६८ ॥

इति संस्थाप्य यथोक्तरूपान्देवीन्ध्यायस्तन्मयः सुखं विहरेदिति ।

---

१. क. सुरास्तिष्ठन्तु ।

॥ अथ नित्यपूजाफलमाह ॥

अनेन विधिना नित्यं यः कुर्याच्चण्डिकार्च्चनम् ।
तस्य तुष्टा महालक्ष्मीर्दद्याच्छृणुष्व तत् ॥ १९९ ॥

महदैश्वर्य्यमतुलं त्रैलोक्ये[1] तस्य जायते ।
धर्मराज्यसमायुक्तं पुत्रपौत्रसमाकुलम् ॥ २०० ॥

तङ्करोति महालक्ष्मीर्ब्रह्मविष्णुशिवोपमम् ।
रिपवः संक्षयं यान्ति तत्स्थानाच्छत योजनम् ॥ २०१ ॥

तेनैक्येन वसन्तोऽपि न पश्यन्ति दस्यवः ।
तस्य स्मरणमात्रेण विघ्नानाञ्जायते क्षयः ॥ २०२ ॥

त्रिषु लोकेषु यत्किञ्चित्स सुरासुरदुर्लभम् ।
तत्सर्वन्तं समायाति महालक्ष्मीप्रसादतः ॥ २०३ ॥

योजयेत् परया भक्त्या महालक्ष्म्यास्तु पूजनम् ।
स नरो लभते नित्यम्पूजाफलमनुत्तमम् ॥ २०४ ॥

**इति श्रीमद्गोस्वामिजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ त्रिचत्वारिंशस्तरङ्गः ॥ ४३ ॥**

—०—

१. क. स्त्रैलोक्ये ।

## ।। अथ काम्यपूजा ।।

तत्रादौ पूजापीठभेदेन फलभेदमाह **मार्कण्डेयपुराणेखिले—**

चतुरश्रे हि शान्त्यादौ पीठे पूजा महाफला ।
वश्यादौ वर्त्तुले तद्वदर्द्धचन्द्रे सुपोषिका ।। १ ।।

त्रिकोणे सा विरोधाय पञ्चकोणेऽथवा भवेत् ।
षट्कोणपीठपूजायान्निर्भयस्तत्क्षणाद्भवेत् ।। २ ।।

खण्डनादौ रविमिते पीठे स्यात्पूजनक्रिया ।
विधूनयति शत्रूणां सप्तरात्रान्मनांसि वै[1] ।। ३ ।। इति ।

**अथ ध्यानभेदेन फलभेदस्तत्रैव—**

तुष्टिपुष्टयृद्धिकीर्त्तीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।
यथा ध्यानन्तथा कुर्यात्पूजनञ्जपकर्मणि ।। ४ ।।

बुद्धीनान्देववाचाञ्च प्राप्तये सर्वकर्मणाम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशन्ध्यानं स्यात्पूजने मतम् ।। ५ ।।

वश्ये रक्ततरन्ध्यानङ्कुर्बुरं हर्षशोकयोः ।
धूम्रमुच्चाटनाद्येषु कृष्णध्यानञ्च मारणे ।। ६ ।।

नीलोत्पलदलश्यामन्ध्यात्वा भवति सुप्रजः ।
सर्वरत्ननिभाकारान्ध्यात्वा निश्चलमानसः ।। ७ ।।

सर्वान्कामानवाप्नोति ध्रुवमुक्तम्मया तव ।
कल्पान्ताग्निसमं युद्धे ध्यानम्प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।। ८ ।।

महाशोषसमायुक्तन्ध्यानं सर्वभये भवेत् ।
पीयूषवर्षसंयुक्तम्पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।। ९ ।।

ध्यानङ्कृत्वा लभेत्सत्यं शीघ्रं सर्वान्मनोरथान् ।
एतद्गोप्यतरं सर्वं वेदागमसमुद्भवम् ।। १० ।।

---

१. क. ०न्मनां शिवे ।

ब्रह्मणा गुरवे दत्तं गुरुणा मम शंसितम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणान्त्रिषु लोकेषु साधनम् ।। ११ ।।
अनेन सदृशन्नास्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।

**अथ नित्यचण्डीविधानमाह** तत्रैव –

नित्यचण्ड्यादिजाप्यस्य विधानन्ते वदाम्यहम् ।
क्रमेण सर्वकार्याणां सिद्धये यज्ञपुण्यदम् ।। १२ ।।

पूर्वोक्तविधिना कृत्वा चण्डिकातर्पणादिकम् ।
शुक्लभूतामवष्टभ्य मासम्प्रतिदिनञ्जपेत् ।। १३ ।।

सकृद्रहस्यसंयुक्तञ्चण्डिकाचरितत्रयम् ।
दशांशहोमसहितं सोच्यते नित्यचण्डिका ।। १४ ।।

धनपुत्रयशोदात्री महाव्याधिविनाशिनी ।
महाभयमहादुःखहन्त्री सौख्यप्रदायिनी ।। १५ ।।

**।। अथाऽस्याः प्रयोगः ।।**

तत्र साधकः कृतपूर्वोक्तविधिना नित्यकृत्यः पूजास्थानं प्रविश्य, पूर्वाभिमुखः स्वासने ससुपविश्य, कुशहस्तः प्राणानायम्य, स्वेष्टदेवतां स्मरन् 'अद्याऽमुके मासि अमुकराशिगते सवितरि शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ विशेषक्षेत्रे चेदमुकक्षेत्रे अमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहममुकफलाप्तयेऽद्यारभ्य मासमात्रं नित्यचण्डीजपं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य, प्राग्वत्पूजादिकं कृत्वा, प्राग्वन्मूलमन्त्रं जपित्वा, देव्यग्रे चरितत्रयं सरहस्यं ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं सकृत्पठेत् ।

तत्र देवीमाहात्म्यस्याऽऽदिचरितस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दो महाकाली देवता रक्तदन्तिका बीजं नन्दा शक्तिरग्निस्तत्वम्प्रथमचरितजपे विनियोगः ।

मध्यमचरितस्य विष्णु ऋषिरुष्णिक् छन्दो महालक्ष्मीर्देवता दुर्गाबीजं शाकम्भरी शक्तिर्वायुस्तत्वम्मध्यमचरितजपेविनियोगः ।

उत्तमचरितस्य रुद्रऋषिरनुष्टुप् छन्दो महासरस्वती देवता भ्रामरी बीजं भीमाशक्तिः सूर्यस्तत्वमुत्तरचरितजपे विनियोगः ।

इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, तत्तच्चरितस्य पाठारम्भे यथाविधि विन्यस्य, चरितत्रयं सरहस्यम्पठेत् ।

ततो मासानन्तरं वक्ष्यमाणविधिना कुण्डादावग्निं संस्थाप्य, पायसैः सघृतैः सतिलैश्च मूलमन्त्रस्य जपदशांशसङ्ख्यहोमपुरःसरं वक्ष्यमाणविधिना हुत्वा, पूर्णाहुतिञ्च हुत्वा, ब्राह्मणान्कुमारिकाः सुवासिनीश्च सम्पूज्य, भोजयित्वा, ताम्बूलदक्षिणादिभिः परितोष्य, प्रणम्य विसृजेत् ।

एवं स्वयङ्कर्तुमशक्तश्चण्डिकापाठनिरतम्ब्राह्मणं वस्त्रालङ्करणादिभिर्यथाविधिवृतं सम्पूज्य, तद्द्वावारा यथोक्तविधिना चण्डीजपविधिं यथावत्कारयित्वा यथाशक्ति दक्षिणादिभिः परितोषयेदिति नित्यचण्डी विधिः ।

**।। अथ नवदुर्गा विधिः ।।**

शुक्लां षष्ठीमवष्टभ्य यावच्छुक्ला चतुर्द्दशी ।
नवदुर्गा विधातव्या सर्वकामफलाप्तये ।। १६ ।।

सम्पूज्य विधिवद्देवीञ्चण्डिकाङ्कृततर्प्पणाम् ।
कलशम्पञ्चरत्नाढ्य[1] सहकारदलैर्युतम् ।। १७ ।।

वज्रम्मुक्ताफलन्नीलम्पद्मरागन्तथैव च ।
मरकतेन समायुक्तम्पञ्चरत्नमिदं विदुः ।। १८ ।।

सवस्त्रं सम्प्रतिष्ठाप्य चण्डिकाग्रेऽम्भसा भृतम् ।
समन्तात्पूजयेद्दिक्षु दिशाम्पालान् यथाविधि ।। १९ ।।

चन्दनेन विलिप्ताङ्गः स्रग्वी न्यासपरायणः ।
नवाहं रूपमेकैकम्मौनी वद्धासनो जपेत् ।। २० ।।

प्रणवादिरहस्यान्तञ्चण्डिकाचरितत्रयम् ।
नवदुर्गेति विख्याता पापतापप्रणाशिनी ।। २१ ।।
सर्वैश्वर्य्यप्रदाम्भूप[2] कुर्वतामविलम्बितमिति ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र साधकः कृतनित्यकृत्यः प्राग्वत्तिथ्युल्लेखनं कृत्वा, 'नवदुर्गाविधानमहङ्करिष्ये, इति सङ्कल्प्य, प्राग्वद्देवीं सम्पूज्य, देव्यग्रे शालिपुञ्जोपरि स्वर्णादिरचितं

---

१. ख. रत्नपञ्चाढ्यं । २. क० भूय ।

कुम्भं नवतन्तुना वेष्टितं चन्दनादिचर्च्चितं सहिरण्यं वज्रमुक्ताफलपद्मराग-[1]मरकताख्यपञ्चपञ्चरत्नाढ्यमाजिघ्रकलशं,

''मय्या त्वा विशांत्विन्दवः[2] समुद्रमिव सिन्धवः सा मा सहस्व आभर-प्रजयासुभिः सह पुनर्मा विशताद्रयिरि''ति मन्त्रेण संस्थाप्य,

**इमम्मे वरुण श्रुधी[3]हवमद्या च मृडयत्वा मवस्युराचकेत त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हर्विभिः ।**

'अहेडमानो वरुणे हवोध्युरुसंसमान[4] आयुः प्रमोषीः' इति मन्त्रेण शुद्धजलैरापूर्य, तत्र कुङ्कुमकर्पूरचन्दनपङ्कं कुसुमानि च निक्षिप्य, तस्य मुखे आम्र-फलानि निधाय, तदुपरि केलिफलाढ्यं सतण्डुलं कलशसजातीयम्पात्रं निधाय, तं कुम्भमारक्तपट्टवस्त्रद्वयेन संवेष्टच कुम्भस्य दशदिक्षु पूर्वादिक्रमेणेन्द्रादिदशदि-क्पालान् सम्पूज्य,

स्वयञ्चन्दनागुरुकुङ्कुमादिगन्धविलिप्ताङ्गः[5] सुवस्त्रमाल्याढ्यालङ्कृतः[6] कृतन्यासः प्राग्वत्सरहस्यं चण्डिकाचरितत्रयं मूलमन्त्रजपपुरःसरम्मौनी ध्यानपरा-यणः प्रत्यहमेकैकामावृत्तिम्पठित्वा, दशमे दिवसे वक्ष्यमाणविधिना कुण्डादावाग्निं संस्थाप्य, प्राग्वद्धोमं कृत्वा, ब्राह्मणान्कुमारिकाः सुवासिनीश्च पूजाभोजनताम्बूल-दक्षिणादिभिः परितोषयेदिति । एतस्यैव विधानस्य कृष्णपक्षे क्रियमाणस्य **काल-रात्रिरिति** नामान्तरमुक्तन्तत्रैव—

यद्ययङ्क्रियते जाप्यः कालरात्रिरुदीरिता ।
महाकालोद्भवन्दुःखं कालरात्रिर्व्यपोहति ॥ २२ ॥

नवदुर्गाविधानेऽस्मिन्यत्फलम्परिकीर्त्तितम् ।
कालरात्रिविधानेऽपि तत्फलँल्लभते ध्रुवम् ॥ २३ ॥

एतत्त्रिगुणितं सर्वन्नवदुर्गाजपे फलम् ।
कथितन्तव वाप्नोति नित्यचण्डीजपे कृते ॥ २४ ॥

**॥ इति नवदुर्गाविधिः ॥**

---

१. मरकताख्यपञ्चरत्नाढ्य० । २. ख. विशन्त्विन्दवः । ३. ख. श्रुधि । ४. शंसमानः ।
५. ख. लिप्ताङ्गः । ६. ख. माल्यालङ्कृतः । ७. क. ०ऽस्मिन्फलं ।

तथा—शरदर्त्ताविषे मासि शुक्लपक्षे नृपोत्तम ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य नवचण्डीं समाचरेत् ।। २५ ।।

तोरणाढ्ये शुभे स्थाने सुविताने स्वलङ्कृते ।
पूर्वादिक्रमयोगेन दिग्देवीभ्यो बलिं हरेत् ।। २६ ।।

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैः दीपैश्चरुभिरुत्तमैः ।
कादम्बरी गजारूढा पुनरुल्काऽजपृष्ठगा ।। २७ ।।

कराली महिषारूढा रक्ताक्षी प्रेतसंस्थिता ।
श्वेतकुम्भीरगा श्वेता हरिता मृगवाहना ।। २८ ।।

यक्षिणी सिंहपृष्ठस्था कङ्काली वृषवाहना ।
हंसपृष्ठे सुरज्येष्ठा सर्पराज्यहिवाहना[1] ।। २९ ।।

अनेन विधिना दत्वा दिग्देवीभ्यो बलिन्ततः ।
नवग्रहाँल्लोकपालान् दिशाम्पालाञ्श्च पूजयेत् ।। ३० ।।

वसिष्ठः—

विनायकस्तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ लोकपालाः प्रकीर्त्तिताः ।। ३१ ।।

तथा—कलशम्पञ्चरत्नाढ्यं हेमवस्त्रादिकान्वितम् ।
सम्प्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य चण्डिकार्च्चनमारभेत् ।। ३२ ।।

पूर्वोक्तेन विधानेन गन्धपुष्पैरनुत्तमैः ।
वस्त्रालङ्कारकस्तूरीसिन्दूरागुरुकुङ्कुमैः ।। ३३ ।।

धूपैर्बहुविधैर्दीपैर्नैवेद्यैर्वर्णसंख्यया ।
कृत्वाऽन्यत्पूर्ववत्सर्वञ्जपेदेकाग्रमानसः ।। ३४ ।।

सकृद्रहस्यसंयुक्तञ्चण्डिकाचरितत्रयम् ।
कुमारीर्विप्रमुख्यांश्च भोजयेद्विधिपूर्वकम् ।। ३५ ।।

---

१. क. सर्वराज्य० ।

'यदाद्यदिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम्' ।[1]
द्विगुणन्तद्द्वितीयेऽह्नि त्रिगुणन्तत्परेऽहनि ।। ३६ ।।

नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्धया पूजाजपादिकम् ।
एकाहारव्रती कुर्यात्सत्यादिनियमैर्युतः ।। ३७ ।।

कृत्वा होमादिकं सर्वन्नवदुर्गाविधानवित् ।
वित्तशाठ्यम्परित्यज्य कुर्यादाचार्य्यतोषणम् ।। ३८ ।।

वस्त्राङ्गुलीयभूधेनुवाजिहेमप्रदानतः ।
अशक्तौ निष्कमेकन्तु देयमस्मै प्रयत्नतः ।। ३९ ।।

श्रृणुष्वाऽस्य फलम्भूप यो हि कश्चिदनेन वै ।
विदधीत विधानेन य एनान्नवचण्डिकाम् ।। ४० ।।

ऐन्द्रब्राह्मादयो भोगास्तमायान्ति प्रसेवितुम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रानधनः सधनो भवेत् ।। ४१ ।।

व्याधयः सङ्क्षयं यान्ति शत्रवश्च सुदारुणाः ।
न तस्याऽस्ति भयङ्किञ्चिद्राजचोराग्निवारिजमि[ति] ।। ४२ ।।

।। **अथैतत्प्रयोगः** ।।

तत्राऽऽश्विनशुक्लप्रतिपदि साधकः कृतनित्यकृत्यः सुसंवृते शुभे स्थाने सुरम्ये गृहे तोरणवितानाद्यलङ्कृते सुधूपिते दीपप्रकाशाढ्ये स्वासने प्राङ्मुखः समुपविश्य, प्रागवत्तिथ्युल्लेखनान्तं कृत्वा, अमुककामनया नवचण्डीविधानमहङ्करिष्ये इति सङ्कल्प्य,

तस्मिन् गृहे पूर्वस्यान्दिशि कादम्बरीं गजवाहनां ध्यात्वा "कादम्बरि देवि इहागच्छ२" इत्यावाह्य, क्वचित्पीठे संस्थाप्य, "श्री कादम्बरि एष ते गन्धो नमः" एवं इमानि ते पुष्पाणि वौषट्, एष ते धूपो नमः, एष ते दीपो नम" इति सम्पूज्य, तदग्रे पात्रान्तरे घृतशर्करासहितं पायसं नानाव्यञ्जनसहितमन्नं च निधाय "श्रीकादम्बरि एष ते बलिर्नम" इति बलिमुत्सृज्य 'क्षमस्वे'ति प्रणमेत् ।

---

१. '—' चिह्नान्तर्गतस्यांशस्याऽभावः ख. पुस्तके ।

एवमाग्नेय्यामुल्कामजवाहनां सम्पूज्य, बलिं प्राग्वद्दद्यात्। एवं दक्षिणे–महिषारूढां करालीं, नैर्ऋत्ये–प्रेतवाहनां रक्ताक्षीं, पश्चिमे–मकरवाहनां श्वेतां, वायव्ये–मृगवाहनां हरितां, उत्तरे–सिंहवाहनां यक्षिणीं, ईशाने[1]–वृषवाहनां कङ्कालीं, इन्द्रेशानयोर्मध्ये–हंसवाहनां सुरज्येष्ठां, निर्ऋतवरुणयोर्मध्ये–अहिवाहनां सर्प्पराज्ञीञ्च पृथक्२ सम्पूज्य, बलिं दत्वा, दशदिक्षु–यथाक्रमेणेन्द्रादीनपि लोकपालान् यथास्थानं सम्पूज्य,

प्राग्वन्मध्ये कुम्भं संस्थाप्य, द्वारपूजादिपुरःसरन्तत्र महालक्ष्मीमावाह्य, नानाविधैरुपचारैरभ्यर्च्य, तदग्रे–प्राग्वत्सरहस्यन्देवीमाहात्म्यञ्चरितत्रयम्पठित्वा कुमारिकामेकाम्ब्राह्मणांश्च सम्पूज्य, भोजयित्वा ताम्बूलदक्षिणादिभिः परितोषयेत्।

एवं द्वितीयायां द्विगुणं, तृतीयायां त्रिगुणमिति। नवम्यान्नवगुणं यथा भवति तथा पूजाचण्डीपाठकुमारीब्राह्मणभोजनादिकञ्च यथाविभवविस्तरन्नवदिनमपि महोत्सवं कुर्यादिति। अत्राऽप्येकाहारव्रतादिको नियमः कर्त्तव्यः। ततो नवमे दिने कृतचण्डिकापाठदशांशतः प्रागुक्तद्रव्यैर्होमं कृत्वा सर्वं विधिवत्समापयेत्।

यद्याचार्यद्वारा कारयति तदा तस्मै वित्तशाठ्यरहितां यथोक्तान्दक्षिणां दत्वा, प्रणम्य प्रसादयेत्। इति **नवचण्डीमहोत्सवविधिः**।

॥ **अथ शतचण्डीविधानमाह** ॥ तत्रैव—

शतचण्डीविधानन्ते यथावत्कथयाम्यहम्।
सुघोरायामनावृष्ट्यां भूकम्पे च सुदारुणे ॥ ४३ ॥

परचक्रभये तीव्रे क्षयरोग उपस्थिते।
राज्यावाप्त्यादिकार्येषु स्वायुष्यसुतजन्मनि ॥ ४४ ॥

महोपघातनाशाय पञ्चविंशतियोजने।
देशे सर्वशान्त्यर्थं शतचण्डीमिमाञ्जपेत् ॥ ४५ ॥

---

१. ख. एशाने।

शिवाभ्यासे समे देशे चतुर्द्वारं सुतोरणम् ।
पताकालङ्कृतङ्कुर्यान्मण्डपं वेदिभूषितम् ।। ४६ ।।

तत्र कुण्डम्प्रकर्त्तव्यमुक्तलक्षणसंयुतम् ।
सदाचाराः कुलीना ये श्रीमन्तः सत्यवादिनः ।। ४७ ।।

चण्डिकापाठसम्पूर्णा दयावन्तो जितेन्द्रियाः ।
ईदृग्लक्षणसंयुक्ता दम्भमोहविवर्ज्जिताः ।। ४८ ।।

दश विप्राः समभ्यर्च्या महालक्ष्मीस्वरूपिणः ।
मधुपर्कविधानेन यथावत्तद्ददाम्यहम् ।। ४९ ।।

श्रीपर्णीवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः ।
अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायसहितानि समानि च ।। ५० ।।

स्रुक्स्रुवौ च समायुक्तौ खादिरौ लक्षणान्वितौ ।
सप्तविंशति दर्भाणां वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषिता ।। ५१ ।।

विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्त्तितम् ।
सुकोष्णोदकसम्पूर्णाः पाद्यार्थे ताम्रगण्डुकाः[1] ।। ५२ ।।

शङ्खा अर्घप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विताः ।
दूर्वोदकसमायुक्ताः स्थापनीयाः पृथक् पृथक् ।। ५३ ।।

सुताम्रस्य कमण्डल्व आचम्योदकपूरिताः ।
सम्पुटा मधुपर्कार्थे[2] कांस्यदध्यादिपूरिताः ।। ५४ ।।

महान्त्यर्घाणि वस्त्राणि मुद्रिकाद्यं सुभूषणम् ।
मयूरपत्रछत्राणि सोष्णीषाणि समाहरेत् ।। ५५ ।।

पादुका आहरेत्तत्र चार्म्मा भूषणभूषिताः ।
अन्यत्स्मार्त्तं यदस्त्युक्तम्मधुपर्कस्य पूजने ।। ५६ ।।

तत्कृत्वा फलमाप्नोति महायज्ञार्हणोपमम् ।
अन्येभ्यो मधुपर्कस्य विप्रेभ्यः पूजनं स्मृतम् ।। ५७ ।।

---

१. ख. ताम्रगडुकाः । २. क. मधुपर्कार्थाः ।

भक्त्या तद्द्विगुणन्दद्यादाचार्याय सुभक्तिमान् ।
अन्यैर्द्विजैः समं यत्र देशिकस्य प्रपूजनम् ।। ५८ ।।

तस्मिन्यज्ञे फलं स्वल्पमनावृष्टौ यथा क्षितौ ।
अर्चितास्ते[1] द्विजश्रेष्ठा हृष्टान्तःपूर्णमानसाः ।। ५९ ।।

यजमानं सपत्नीकं सुतबन्धुसमन्वितम् ।
उपवेश्याऽऽसने पुण्ये कलशाग्रे सुभूषितम् ।। ६० ।।

वेदमन्त्राक्षरैः[2] पुण्यैः कुर्वन्ति स्वस्तिवाचनम् ।
कृतस्वस्त्ययनैर्विप्रैर्वेदवादित्रनिःस्वनैः ।। ६१ ।।

चण्डिकामण्डपं यायात्परिवारविभूषितः ।
पश्चिमद्वारमार्गेण प्रविश्य क्रतुमण्डपम् ।। ६२ ।।

ददाति पूजनेऽनुज्ञान्देशिकाय कृताञ्जलिः ।
देशिकः सर्वमन्त्रज्ञो नवभिर्ब्राह्मणैः सह ।। ६३ ।।

दिग्देवीश्च ग्रहान् सर्वांल्लोकपालसमन्वितान् ।
दिशापालांश्च[3] सम्पूज्य कलशं स्थाप्य यत्नतः ।। ६४ ।।

मण्डपस्य चतुर्द्दिक्षु दत्वा भूतबलिम्बहिः ।
मण्डपे कलशौ द्वौ द्वौ द्वारि द्वारि निवेशयेत् ।। ६५ ।।

गालितोदकसम्पूर्णावाऽऽम्रपल्लवशोभितौ ।
उपस्पृश्योदकन्ध्यात्वा चण्डिकान्देवपूजिताम् ।। ६६ ।।

उपविश्याऽऽसने वेद्यां बद्ध्वा पद्मासनं दृढम् ।
प्राणायामविशुद्धात्मा देशिको न्यासभूषितः ।। ६७ ।।

चण्डिकापूजनङ्कुर्याद्विशेषेण समन्वितम् ।

विशेषस्तु वक्ष्यमाणानुलेपनादिः ।

कस्तूरीं कुङ्कुमं जात्यं सकर्पूरं सचन्दनम् ।
पलद्वयन्तु सम्पूर्णमनुलेख(प)नमाहरेत् ।। ६८ ।।

---

१. ख. आर्चितास्ते । २. ख. वेदमन्त्राक्षतैः । ३. दिशाम्पालांश्च ।

दिव्यवस्त्रमलङ्कारमत्र गद्याणकत्रयम् ।
लक्षपुष्पचतुर्थांशं गुग्गुलोऽत्र पलद्वयम् ॥ ६९ ॥

दीपानां विंशतिः प्रोक्ता मण्डपे जपसाधनम् ।
कुडवौ द्वौ हविष्यान्नं नैवेद्यं सुरसं शुभम् ॥ ७० ॥

ताम्बूलानां सकर्पूरशतद्वयमनुत्तमम् ।
नवचण्डीविधानोक्तम्महालक्ष्म्याः प्रपूजने ॥ ७१ ॥

नवभिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं कृत्वा पूजान्द्विजोत्तमः ।
ददाति नवविप्रेभ्य आचार्यश्चण्डिकामयः ॥ ७२ ॥

कार्यजाप्यप्रसिद्ध्यर्थमनुज्ञामानुपूर्वकम्[1] ।
ततोऽनुज्ञामनुप्राप्य वेद्यामाचार्यसन्निधौ ॥ ७३ ॥

सुखासनेषु सन्तुष्टा उपविष्टाः सुनिश्चलाः ।
न्यासध्यानसमायुक्ता नासाग्रमवलोकिनः ॥ ७४ ॥

श्रीगन्धपुष्पमाल्याढ्याश्चण्डिकाचरितत्रयम्[2] ।
सरहस्यमृषिच्छन्दोदेवताशक्तिसंयुतम् ॥ ७५ ॥

बीजतत्वसमायुक्तमुपांशुगुणसंयुतम् ।
जपेयू रूपमेकैकम्मौनिन्यस्त्यक्तमत्सराः ॥ ७६ ॥

समुत्थाय ततः कुर्युर्देव्याः सर्वे प्रदक्षिणम् ।
चण्डिकान्तु नमस्कारैः परितोष्य पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

उपविश्याऽऽसनेषूक्तैः श्लोकैः सर्वार्थसाधकैः ।
प्रार्थयेयुः प्रार्थ्यफलम्महालक्ष्मीं दृढव्रताः ॥ ७८ ॥

कुमार्यो दश सम्भोज्या विप्रा दश तथोत्तमाः ।
महाकाल्या महालक्ष्म्याः सरस्वत्या जपञ्जपन् ॥ ७९ ॥

भोजयेत्परया भक्त्या देशिकादिदशद्विजान् ।
ततो बन्धुसमायुक्तो भुञ्जीयाद्यज्ञकृत्पुमान् ॥ ८० ॥

---

१. ख. ० मनुज्ञां मानपूर्वकम् २. क. ख. ०माल्याढ्याचण्डिका० ।

सत्कथाभिः सुगीतैश्च सर्ववादित्रनिःस्वनैः ।
पूजनैः प्रोक्षणीयैश्च वेदपाठैर्निशान्नयेत् ॥ ८१ ॥

द्वितीये दिवसे स्नात्वा विधिवच्च द्विजा दश ।
चण्डिकातत्परं कुर्युः सम्पूर्णध्यानपूर्वकम् ॥ ८२ ॥

सर्वे पृथक् पृथक्कृत्वा दिग्देवीपूजनादिकम्[1] ।
बहिर्भूतबलिन्दत्वा कृत्वा देवीप्रदक्षिणम् ॥ ८३ ॥

पुष्पागारे महारम्ये स्वस्वमासनमास्थिताः ।
जपन्ति जयचण्डीति यावद्दुर्गाप्रपूजनम् ॥ ८४ ॥

पूर्वस्मात्पूजनात् कुर्याद्द्विगुणम्पूजनं क्रमात् ।
आचार्यः सुस्थितः शान्तश्चण्डिकायाः प्रतोषणम् ॥ ८५ ॥

सुकृते पूजने विप्रा जपेयुर्द्विगुणञ्जपम् ।
द्विगुणञ्च प्रकर्त्तव्यं कुमारीद्विजतोषणम् ॥ ८६ ॥

कार्यश्च जागरो रात्रौ युक्तः सर्वमहोत्सवैः ।
चण्डिकापूजनञ्जाप्यं कुमारीद्विजभोजनम् ॥ ८७ ॥

तृतीयेऽहनि कर्त्तव्यं त्रिगुणञ्च सजागरम् ।
चतुर्थे दिवसे सर्वं सम्यक्कार्यञ्चतुर्गुणम् ॥ ८८ ॥

महाजागरणोपेतं होमः स्यात्पञ्चमेऽहनि ।
पायसैः सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम् ॥ ८९ ॥

जुहुयादुक्तविधिना दशांशेन नृपोत्तम ।
रुद्राध्याये यथा होमो मन्त्रेणैकेन साध्यते ॥ ९० ॥

तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकेनैकेन साधयेत् ।
चण्डीसप्तशतीजाप्ये होमे मन्त्रो नवाक्षरः ॥ ९१ ॥

कथितः पूजनाध्याये तस्माद्धोमे भवेदसौ ।
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं[2] नमः ॥ ९२ ॥

---

१. ख. दिग्देवीः ० । २. क. शततं ।

अथवाऽयं भवेद्धोमे श्लोकः स्तोत्रनिरूपितः ।। ९३ ।।

मूर्त्तिरहस्ये तु—'सरहस्यम्प्रजुहुयात्पायसन्तिलसर्पिषा'।

सहेति शेषः। प्रतिश्लोकं देवीमाहात्म्यस्य। तत्त्वध्यायत्रयरूपसरहस्यसहिताध्यायत्रयोदशात्मकचरितत्रयरूपम्।

जपहोमे तु सम्पूर्णे दिग्देवीनां शतं शतम्।
होतव्यन्नाममन्त्रैश्च हविष्यान्नेन सादरम् ।। ९४ ।।

शतं शतं क्रमाद्देयं समिदाज्यं चरुस्तिलैः।
ग्रहेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैः फलम्पुष्पं शतं शतम् ।। ९५ ।।

दिव्यान्ँल्लोकपालानां होमे सर्पिश्चरुस्तिलाः।
आचार्यादिद्विजाः सर्वे जुहुयुस्ते शतं शतम् ।। ९६ ।।

होमं सम्पूर्णतान्नीत्वा नमस्कृत्वेष्टदेवताम्।
चण्डिकान्देवदेवीनामृषीणां वन्दिताम्पराम् ।। ९७ ।।

स्तम्भद्वये स्रुचं कृत्वा यजमानः स्वलङ्कृतः।
घृतकुम्भदशांशेन दद्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् ।। ९८ ।।

मूर्द्धानम्मन्त्रपाठेन नवाक्षरमयेन च।
प्राशनम्मार्ज्जनाद्यञ्च नवदुर्गाविधानवित् ।। ९९ ।।

जपं हुतं समावेद्य चण्डिकायै मनोरथम्।
ब्रह्मणे निष्कषट्काढ्यन्दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ।। १०० ।।

यस्याः प्रभावमतुलं श्लोकमुक्त्वा कृताञ्जलिः।
दद्याद्गोमिथुनान्यष्टावाचार्याय सुभक्तिमान् ।। १०१ ।।

चतुर्विंशतिसंख्याकैर्होमनिष्कैः सहार्ऽचितम्।
एकैकमष्टविप्रेभ्यो दद्याद् गोमिथुनं समम् ।। १०२ ।।

निष्कत्रयसमायुक्तं वस्त्रालङ्कारभूषितम्[1]।
सुस्थितः स्वासने शान्तो यजमानो महोत्सवम् ।। १०३ ।।

१. ख. वस्त्रालङ्काभूषितम्।

कुङ्कुमाक्ताक्षतान् दूर्वाः सुगन्धं चन्दनं दधि ।
आदाय दीयते विप्रा आचार्यस्तु सुपूजितः ।। १०४ ।।

स्तोत्राणाञ्च चतुर्णान्तु महालक्ष्मीपरायणाः ।
एकैकं श्लोकमुच्चार्य्य दद्युराशिषमुत्तमम् ।। १०५ ।।

सभार्यः ससुतः पूर्णः सर्वाशीर्वादमङ्गलः ।
रत्नपुष्पाञ्जलिन्दद्याच्चण्डिकायै विसर्जनम् ।। १०६ ।।

भूरिदानन्ततो दद्यात्पुण्यवादित्रनिःस्वनैः ।
प्रविशेच्छान्तिपाठैश्च तोरणाढ्य स्वमालयम् ।। १०७ ।।

शतचण्डीविधानस्य कृतेन सुकृतेन हि ।
महालक्ष्मीर्ददात्यस्मै त्रैलोक्यसुखमुत्तमम् ।। १०८ ।।

यद्यत्कार्यं समुद्दिश्य क्रियते शतचण्डिका ।
तत्तत्तस्य महालक्ष्मीः स्वयमाशु प्रयच्छति ।। १०९ ।।

चरितत्रयजाप्यस्य चण्डिकाया नृपोत्तम ।
सरहस्यस्य नामानि ब्रह्मोक्तानि वदाम्यहम् ।। ११० ।।

महाविद्या[1]-महामन्त्रश्चण्डी सप्तशतीति च ।
मृतसञ्जीवनीनाम चतुर्थम्परिकीर्त्तितम् ।। १११ ।।

पञ्च पञ्च महाचण्डी चतुःषष्ठिपदी परम्[2] ।
एताभिर्योऽभिजानाति नामानि नृपसत्तम ।। ११२ ।।

जपं विना भवेत्तस्य चण्डिका वरदा सदा ।
शतमादौ शतञ्चाऽन्ते जपेन्मन्त्रन्नवाक्षरम् ।। ११३ ।।

चण्डीसप्तशतीमध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृतः ।
सकामः सम्पुटो जाप्यो निःकामः सम्पुटं विना ।। ११४ ।।

एतद्गोप्यतरन्तत्वञ्चण्डिकाजपसिद्धिदमिति ।

---

१. क. महाविप्रा । २. क. यतम् ।

**॥ अथ शतचण्डीप्रयोगः ॥**

तत्राऽनावृष्टयाद्यखिलदुरितशान्त्यर्थं राज्यावाप्त्यादिसकलकामनासिद्धयर्थञ्चोक्तलक्षणसम्पन्नो यजमानः शिवालयसमीपे सुसमे भूतले वक्ष्यमाणं मण्डपं विधाय, तन्मध्ये वेदिकां, तस्यैशानकोणे पूर्वोक्तलक्षणं चतुरश्रं कुण्डञ्च विरच्य, प्रमाणोक्तलक्षणान्नवब्राह्मणान्दशममाचार्यं सर्वलक्षणसंयुक्तमिति दश विप्रान्प्रमाणोक्तमधुपर्कविधानेनाऽऽचार्यब्रह्मर्त्विगष्टकत्वेन वरणपूर्वकमर्चयित्वाऽऽचार्यायेतरब्राह्मणायेच्छया द्विगुणावरणसामग्रीं दत्वा, तदनुज्ञया शुभासने समुपविष्टः सपत्नीकस्तैः कृतस्वस्त्ययनः सुतबन्धुसुहृद्वृतो वेदघोषनानावादित्रनिस्वनपूर्वकं ब्राह्मणैः सह चण्डिकामण्डपं गत्वा, प्राग्वद्द्वारपूजां कृत्वा, पश्चिमद्वारेण मण्डपं प्रविश्य, कृताञ्जलिराचार्याय चण्डिकापूजार्थमनुज्ञां दद्यात् ।

तत आचार्यः प्राप्तानुज्ञः प्रागुक्तनवचण्डिकाविधानवद्दिग्देवीः सम्पूज्य, बलिं दत्वा, मण्डपे क्वचिद्ग्रहमण्डले स्वशाखोक्तविधिना नवग्रहान्सम्पूज्य, तत्तद्वैदिकमन्त्रैर्लोकपालान् दिक्पालांश्च सम्पूज्य, वेद्यां प्रागुक्तविधिना प्रधानकुम्भं संस्थाप्य, मण्डपस्य बहिः पूर्वादितो[1] नित्यपूजाप्रकरणोक्तविधिना प्रधानकुम्भं संस्थाप्य, मण्डपस्य बहिः पूर्वादितो[2] नित्यपूजाप्रकरणोक्तप्रकारेण चतुर्दिक्षु बलिं भूतेभ्यो दत्वा, मण्डपस्य पूर्वादिद्वारचतुष्टये प्रतिद्वारं प्रोक्तविधिना[3] द्वौ द्वौ कुम्भौ संस्थाप्याऽऽचम्य, वेद्यां स्वासनमास्तीर्य्य, सम्पूज्योपविश्य, बद्धपद्मासनश्चण्डिकां ध्यात्वा, भूतशुद्धयादिकं कृत्वा, मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, मूलमन्त्रऋष्याद्यखिलन्यासजातं[4] विधाय, प्रधानकुम्भे पीठपूजापुरःसरं चण्डिकामावाह्य, सचक्रां साङ्गां सावरणां ध्यात्वा, नित्यपूजोक्तविधिनाऽर्घादिस्थापनपूर्वकं सम्यक्सम्पूज्य परितोषयेत् ।

तत्र **पूजासामग्री** तु—अशीतिगुञ्जामिता[5] **कस्तूरी**, तावन्मानं **कुङ्कुमं**, तावज्**जातीफलं**, तावान् **कर्पूरः**। एतच्चतुष्टयम्पल मात्र**चन्दनेन** घर्षयेत्तेनपलद्वय**मनुलेपनम्**भवति । पलन्तु विंशत्युत्तरत्रिशतगुञ्जामितम् । अत्युत्कृष्टं **वस्त्रन्तु** मानानुक्तेः स्त्रीजनपरिधानयोग्यं ग्राह्यम् । गद्याणत्रयहेमनिर्मित**मलङ्करणम्**,

---

१-२. ख. पूर्वादितः । ३. ख. प्रोक्तविना । ४. ख. मूलमन्त्रस्य ऋष्याद्य० ।
५. ख. अशीतिगुञ्जा ।

तत् स्त्रीजनोचितम् । गद्याणमानन्तु लौकिकतोलकस्यार्द्धमानम् । पञ्चविंशति-सहस्रसङ्ख्यकानि **पुष्पाणि** । पलद्वयं **गुग्गुलुः** । **विंशतिदीपाः** घृतपूरिताः । कुडवद्वयमात्रं हविष्यान्नं **नैवेद्यम्** । शतद्वयं नागवल्लीदलम् । तदनुरूपं **पूगीफलादिकं कर्पूरञ्च ग्राह्यम्** ।

इत्थम्पूजासामग्रीं सम्पाद्य, नवभिर्ब्राह्मणैः सह महालक्ष्मीं साङ्गां सावरणां सम्पूज्याऽऽचार्योऽन्येभ्यो[1] बहुमानपुरःसरं सप्तशतीपाठार्थमाज्ञां दद्यात् ।

ततस्ते ब्रह्मादयो विप्रा वेद्यामाचार्यसन्निधौ स्वस्वासने पूजिते समुपविश्य भूतशुद्धयाद्यखिलन्यासजातं विधाय, सुसंहृष्टमनसश्चण्डिकाध्यानपूर्वकं विधिवच्चरितत्रयं सरहस्यं जपित्वोत्थाय, देवीं प्रदक्षिणनमस्कारैः पुनः पुनः परितोष्याऽऽसनेषु समुपविश्य, प्रार्थनाश्लोकान्पठित्वा[2], यजमानस्येष्टानि फलानि पुनः पुनः प्रार्थयेयुः ।

ततो यजमानो भक्तियुक्तः सुलक्षणा दशकुमारीः सम्पूज्याऽत्युत्तमान्दशविप्रांश्च पञ्चामृतैः सम्भोज्य, ताम्बूलदक्षिणादिभिः परितोष्य, पश्चादतिभक्तिपूर्वकमाचार्यादिदशविप्रांस्तथैव भोजयित्वा, बन्धुभिः सार्द्धं स्वयमपि भुक्त्वा, नृत्यगीतवादित्रनिःस्वनैर्वेदघोषैः सत्कथाभिश्च निशान्नयेत् ।

ततो द्वितीयदिवसे आचार्यादयः स्नात्वा, नित्यक्रियां निर्वर्त्त्य, ध्यानपूर्वकं सर्वचण्डिकातर्प्पणादिकं कृत्वा, दिग्देवीपूजनं कृत्वा, बहिर्भूतबलिं दत्वा, देवीं प्रदक्षिणीकृत्य, प्रणम्याऽतिमनोहरे तस्मिन्मण्डपे स्वस्वासने समुपविश्य, जय जय चण्डीति जपन्तो यावद्दुर्गापूजनं भवति तावत्तिष्ठन्ति । आचार्योऽपि पूर्वदिवसापेक्षया यजमानेन सम्पादितैर्द्विगुणवस्त्राभरणगन्धपुष्पादिसमस्तपूजाद्रव्यैर्विशेषतः पूजां कृत्वा, द्विगुणं परितोषणं भगवत्याः कुर्यात् । ततः साचार्या ब्राह्मणा द्विगुणं जपं कुर्युः । ततो यजमानो द्विगुणं कुमारीब्राह्मणभोजनञ्च कारयित्वा तथैव रात्रौ जागरमपि[3] कुर्यात् ।

एवं तृतीयेऽहनि त्रिगुणं पूजाजपजागरणादि कार्यम् ।

एवमेवं चतुर्थे दिनेऽपि चतुर्गुणं कुर्यात् ।

---

१. ख. सम्पूज्याऽऽचार्येभ्यो । २. ख. प्रार्थनश्लोकान्० । ३. ख. जागरणमपि ।

ततः पञ्चमे दिवसे वक्ष्यमाणविधिनाऽग्निं[1] संस्थाप्य, तत्र घृततिलसहित-पायसेन जपदशांशेन चरितत्रयस्य सरहस्यस्य प्रतिश्लोकेन "नमो देव्यै महादेव्यै" इति श्लोकेन वा पूजाप्रकरणोक्तनवाक्षरमन्त्रेण वा होमं कृत्वा, दिग्देवीनां नाम-मन्त्रेण प्रत्येकं शतशतसंख्यया पायसेन तत्तन्नाम्ना हुत्वा, नवग्रहाणां वेदोक्त-तत्तन्मन्त्रेण तस्य तस्योक्तसमिद्भिर्घृतैश्चरुभिस्तिलैश्च प्रतिद्रव्येण शतं शत-मेकैकस्य हुत्वा, वैदिकमन्त्रैस्तैरेव द्रव्यैः शतं शतमाचार्यादयो द्विजा जुहुयुः । इत्थं होमे समाप्ते देवीं प्रणम्य, यजमानश्च स्तम्भये स्रुचं[2] विधाय, घृतकुम्भदशांशेन घृतेन मूर्द्धानं "दिवो अरति"मिति वैदिकमन्त्रम्पठन्नच्छिन्नधारया पूर्णाहुतिं जुहु-यात् । अथवा नवाक्षरमन्त्रेण पूर्णाहुतिं दद्यात् । ततो वक्ष्यमाणविधिना संस्राव-प्राशनं प्रणीतामार्ज्जनं च कृत्वा, जपं हुतञ्च महालक्ष्म्यै निवेद्य, मनोरथं प्रार्थ-यित्वा, यजमानो ब्राह्मणाय निष्कषट्कहेमसमेतं वस्त्रालङ्कारयुक्तं गोमिथुनद्वयं दत्वा, "यस्याः प्रभावमतुल" मिति श्लोकं कृताञ्जलिः पठित्वाऽऽचार्यं प्रणम्योक्त-लक्षणं गोमिथुनाष्टकं तस्मै दत्वाऽर्त्विग्भ्यश्चैकैकं गोमिथुनमुक्तलक्षणं दद्यात् । तत्र—

साष्टे शते सुवर्णानां हेम्न्युरोभूषणे पले ।
दीनारेपि च निष्कोऽस्त्री·······।। ११५ ।।

इत्यमरसिंहोक्तेर्निष्कशब्दस्य च बह्वर्थत्वात्तन्निश्चयस्तु ।

द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते—
शतमानं तु दशभिर्द्धरणैः पलमेव तु ।। ११६ ।।

'निष्कं सुवर्णाश्चत्वार' इति **याज्ञवल्क्य**वचनात् । तत्रैतानि वचनानि **महार्णवकारै**र्व्याख्यातानि ।

यथा—अत्र रूप्यनिष्कनिरूपणे स्वर्णपदोपादानन्तु सौवर्णमाषप्राप्त्य-र्थम् । हेमप्रमाणभूतचतुःसुवर्णमानोन्मितं रजतं निष्क इत्यर्थ इति । यत्र तु 'सौवर्णं निष्कं दद्यादि' त्युक्तं भवति तत्र 'चतुःसुवर्णोन्मितं हेम दद्या-दिति' च ।

**मतान्तरञ्च—**

सुवर्णसप्ततितमो भागो रूपक उच्यते ।
दीनारो रूपकैरष्टाविंशत्या परिकीर्त्तितः ।। ११७ ।।

१. ख. वक्ष्यमाणचतुरस्रकुण्डे वक्ष्यमाणविधिनाऽग्निं । २. ख. स्तम्भयेद्वयेस्रुचं ।

इति दीनारलक्षणम् । पूर्वोक्तामरसिंहवचने दीनारस्याऽपि निष्कत्वाद्दरिद्रैरशक्तै रयं वा निष्को ग्राह्यः ।

ततो यजमानं शान्तचित्तं सुखासने समुपवेश्याऽऽचार्य[1] ऋत्विजश्च कुङ्कुमाक्ताक्षतदूर्वाचन्दनदधीन्यादाय चतुर्णां स्तोत्राणामेकमेकं श्लोकमुच्चार्य्याऽऽशीर्वादन्दद्युः । ततो यजमानः सभार्यः सपुत्रः कृताशीर्वादमङ्गलः श्रीमहालक्ष्मीपरायणो रत्नपुष्पाञ्जलिं देव्यै दत्वा, भगवतीं विसृज्य, ब्राह्मणेभ्यो भूरिदानं दत्वा, मङ्गलघोषशान्तिपाठादिवेदघोषं कुर्वद्भिः सह ब्राह्मणैर्बन्धुभिर्भृत्यवर्गैरिष्टसुहृद्भिः सार्द्धं तोरणाढ्यं स्वलङ्कृतं स्वगृहं प्रविशेदिति **शतचण्डीयज्ञविधिः** ।

**वाराहीतन्त्रे—**

सङ्कल्पितस्तोत्रपाठे संख्यां कृत्वा पठेत्सुधीः ।
चण्डीपाठफलन्देवि शृणुष्व गदतो मम ।। ११९ ।।

एकावृत्त्यादिपाठानां यथावत्कथयामि[2] ते ।
सङ्कल्प्य पूर्वं सम्पूज्य सर्वाङ्गेषु मनून् सकृत् ।। १२० ।।

पाठाद्बलिप्रदानाच्च सिद्धिमाप्नोति मानवः ।
उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रिरावृत्तम्पठेन्नरः ।। १२१ ।।

ग्रहोपशान्तौ[3] कर्त्तव्यम्पञ्चावृत्तं वरानने ।
महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तं समुन्नयेत् ।। १२२ ।।

नवावृत्ताद्भवेच्छान्तिर्वाजपेयफलम्भवेत् ।
राजवश्याय भूत्यै च रुद्रावृत्तमुदीरयेत् ।। १२३ ।।

अर्कावृत्तेः काम्यसिद्धिर्वैरिहानिश्च जायते ।
मन्वावृत्ताद्रिपुर्वश्यस्तथा स्त्री वश्यतामियात् ।। १२४ ।।

सौख्यम्पञ्चदशावृत्ताच्छ्रियमाप्नोति मानवः ।
कलावृत्त्या पुत्रपौत्रधनधान्यागमं विदुः ।। १२४ ।।

राज्ञाभीतिविमोक्षाय वैरस्योच्चाटनाय च ।
कुर्यात्सप्तदशावृत्तं तथाऽष्टादशकम्प्रिये ।। १२६ ।।

---

१. क. आचार्यो । १. ख.० कल्पयामि । ३. ख. गृहोपशान्तौ ।

महारणविमोक्षाय विंशावृत्तम्पठेत्सुधीः ।
पञ्चविंशावर्त्तनात्तु भवेद्बन्धविमोक्षणम् ।। १२७ ।।

सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये तथा ।
जातिध्वंसे कुलोच्छेदे आयुषो नाशके तथा ।। १२८ ।।

वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये ।
तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैव निपातके ।। १२९ ।।

कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तन्ततः सम्पद्यते शुभम् ।
श्रियो वृद्धिः शतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथाऽपरा ।। १३० ।।

मनसा चिन्तितं देवि सिध्येदष्टोत्तराच्छतात् ।
शताश्वमेधयज्ञानाम्फलमाप्नोति सुव्रते ।। १३१ ।।

सहस्रावर्त्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा ।
भुक्त्वा मनोरथान् कामान् नरो मोक्षमवाप्नुयात् ।। १३२ ।।

यथाऽश्वमेधः क्रतूनां देवानाञ्च यथा हरिः ।
स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः ।। १३३ ।।

अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने ।
चण्डयाः शतावृत्तिपाठात्सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ।। १३४ ।।

पाठश्च नारायणादीन्नमस्कृत्य कार्यः ।

नारायणन्नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।। १३५ ।।

जयशब्दार्थश्च भविष्यत्पुराणे—

अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितन्तथा ।
विष्णुधर्मादिशास्त्राणि शिवधर्माश्च भारत ।। १३६ ।।

कार्ष्णञ्च पञ्चमो वेदो यन्महाभारतं स्मृतम् ।
शैवाश्च धर्मा राजेन्द्र मानवोक्ता महीपते ।। १३७ ।।
जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः ।

इति । पाठप्रकारश्च मात्स्ये—

प्रणवञ्चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहिताम्पठेत् ।
अन्ते च प्रणवन्दद्यादन्यथा विफलम्भवेत् ।। १३८ ।।

शुद्धेनाऽनन्यचित्तेन पठितव्यम्प्रयत्नतः ।
न कार्यासक्तमनसा कार्यं स्तोत्रस्य वाचनम् ।। १३९ ।।

आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकम्प्रजपेत्सुधीः ।
हस्तसंस्थापनादेव यस्माद्वै विफलम्भवेत् ।। १४० ।।

स्वयञ्च लिखितं यत्तु शूद्रेण लिखितञ्च यत् ।
अब्राह्मणेन लिखितन्तच्चाऽपि विफलम्भवेत् ।। १४१ ।।

ऋषिच्छन्दादिकं न्यस्य पठेत्स्तोत्रं विचक्षणः ।
सङ्कल्पिते स्तोत्रपाठे संख्यां कृत्वा पठेत्सुधीः ।। १४२ ।।

अध्यायम्प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन ।
कृते विरामे मध्ये तु अध्यायादि पठेत्पुनः । इति ।। १४३ ।।

श्रवणञ्च ब्राह्मणादेव कार्यम् ।

ब्राह्मणं वाचकं विन्द्यान्नान्यवर्णजमादरात् ।
श्रुत्वाऽन्यवर्णजाद्राजन् वाचकान्नरकं व्रजेत् । इति ।। १४४ ।।

**।। अथाऽग्निस्थापनम् ।।**

तत्र **श्रीमार्क्कण्डेयकल्पे—**

संस्कारैरष्टभिः कुण्डं संस्कृत्याऽग्निम्प्रतिष्ठयेत् ।
मायाबीजसमायुक्तैर्गोस्तन्यन्तैश्च साधकः ।। १४५ ।।

कुण्डमध्यभुवं दर्भैः परिमार्ज्य प्रलेपयेत् ।
प्रागग्राः स्रुवमूलेन रेखास्तिस्रः समुल्लिखेत् ।। १४६ ।।

पांसुमुद्धृत्य रेखाणामभ्युक्षणमतः परम् ।
कुण्डस्य पूजनं षष्ठः सप्तमः शरमुद्रया ।। १४७ ।।

अस्त्रावगुण्ठनं कुण्डे संस्कारश्चाऽष्टमः स्मृतः ।
अष्टमङ्गलनामानं[1] कुण्डेऽग्निं सम्प्रतिष्ठयेत् ।। १४८ ।।

---

१. क. ०नामानां ।

मणिजं वारणेयं वा श्रोत्रियावसथोद्भवम् ।
आत्मनोऽभिमुखम्मध्ये भूर्भुवःसुवरोमिति ॥ १४९ ॥

चण्डिकापाठसम्पूर्णब्रह्माणान्दक्षिणे द्विजम् ।
ततस्तदग्निमत्कुण्डं नवसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ १५० ॥

कुण्डस्योत्तरतः स्थाप्या प्रणीता वारिपूरिता ।
प्रणीतापात्रतो दक्षे उत्तरे वैश्वदेवतः ॥ १५१ ॥

स्थापयेत्प्रोक्षणीपात्रम्प्रणीतोदकपूरितम् ।
वैश्वदेवत अग्नेः ।
प्रणीतापात्रतः पूर्वे स्थाप्यः पात्रगणः क्रमात् ॥ १५२ ॥

आज्यस्थाली चरुस्थाली गव्यक्षीरसमन्विता ।
स्रुक्स्रुवौ च घृतं गव्यन्तण्डुलाः कुशपूलकाः ॥ १५३ ॥

पालाश्यः समिधस्तिस्रः पूर्णपात्रमतः परम् ।
सप्तद्वीपेश्वरीं ध्यात्वा गृहीत्वा कुशपूलकम् ॥ १५४ ॥

निक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे वारुणम्बीजमुच्चरन् ।
तेन दर्भसमूहेन शतसङ्ख्येन संस्थितम् ॥ १५५ ॥

क्रमात्पात्रगणं प्रोक्षेत्प्रोक्षणीपात्रवारिणा ।
आज्यपात्रे चरुस्थाल्यान्निःक्षिपेद्घृततण्डुलौ ॥ १५६ ॥

यथाक्रमेण कर्त्तव्यन्ततोऽधिश्रपणान्तयोः ।
आज्ये च[1] पायसे कार्यम्पर्यग्निकरणान्तयोः ॥ १५७ ॥

सव्यम्पालाशकाष्ठेन त्रिस्त्रिर्दर्भैश्च सोज्ज्वलम् ।
स्रुचयोस्तापनं[2] कृत्वा प्रणीतोदकसेचनम् ॥ १५८ ॥

पुनः प्रतापनं कृत्वा दक्षिणे स्थापनं स्मृतम् ।
उद्वास्य प्रथमम्पूर्वादानीयाऽग्नेः[3] प्रदक्षिणम् ॥ १५९ ॥

---

१. ख. न २. ख. ०स्था । ३. ख. ०दाग्नीयाग्नेः ।

कुण्डाचार्यान्तरे[1] स्थाप्य स्वबीजजपगौरवात् ।
अभिधार्य स्वमार्गेण वायव्ये स्थापयेच्चरुम् ।। १६० ।।

स्वबीजजपसंस्कारा धेनुमुद्रा तयोर्भवेत् ।
तिष्ठन् पालाशसमिधो मौनी वैश्वानरे क्षिपेत् ।। १३१ ।।

कुशपूलकयुक्ताभिः प्रोक्षण्यद्भिः प्रदक्षिणम् ।
पर्युक्ष्याग्निम्प्रणीतायान्निक्षिपेत्कुशपूलकम् ।। १६२ ।।

निधाय दक्षिणञ्जानुम्भुवामग्निमुखं हुनेत् ।
अन्वारब्धे स्रुवेणाऽऽज्यन्निर्धूमे हव्यवाहने ।। १६३ ।।

प्रजापतिर्महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वती ।
[2]एतदग्निमुखम्प्रोक्तम्मायाबीजपुरःसरम् ।। १६४ ।।

संस्रावान्प्रोक्षणीपात्रे निक्षिपेद्यज्ञसाधनम् ।
विदध्यात्कल्पितं होमयुक्तेन[3] हविषा शमी ।। १६५ ।।
ततः स्विष्टकृतन्दद्याद्धविषा प्रोज्वलेऽनले ।

मायाबीजम्ब्रह्माणी माहेश्वरी कौमारी बैष्णवी वाराही नारसिंही ऐन्द्री चामुण्डायै विच्चे स्विष्टकृते स्वाहा ।

एष प्रोक्तो महाराज मन्त्रः स्विष्टकृदाहुतेः ।
आज्यस्य नवकन्दद्यान्मायाबीजादिनामभिः ।। १६६ ।।

तत्र नन्दा भवत्याद्या द्वितीया रक्तदन्तिका ।
शाकम्भरी तृतीया च दुर्गा भीमा च तत्परा ।। १६७ ।।

भ्रामरी कालिका चैव शिवदूती प्रजापतिः ।
गन्धपुष्पफलोपेतां कृत्वा यज्ञात्मिकां स्रुवम् ।। १६८ ।।

ततः पूर्णाहुतिन्दद्याद् घृतेनाऽछिन्नधारया ।
नवाक्षरेण मन्त्रेण महालक्ष्मीपरायणः ।। १६९ ।।

---

१. क. ख. कुण्डार्चायान्तरे । २. ख. एतदग्नीमुखं । ३. ख. होममुक्तेन ।

ध्यात्वा यज्ञपुरोडाशममृतन्देवदुर्ल्लभम् ।
प्रोक्षणीपात्रमध्यस्थान् मन्त्रेणाऽश्नाति संश्रवान् ।। १७० ।।

यस्माद्यज्ञरसात्पूता[1] यज्वानो ब्रह्मरूपिणः ।
तं संश्रवपुरोडाशम्प्राश्नामि सुखपुण्यदम् ।। १७१ ।।

सलिलेन प्रणीतायास्तीर्थध्यानपरायणः ।
करोति मार्ज्जनन्दर्भशतेन श्लोकपाठतः ।। १७२ ।।

सिसृक्षोर्निखिलं विश्वम्मुहुः शुक्रम्प्रजापतेः ।
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् ।। १७३ ।।

अलक्ष्मीं मलरूपां याः सर्वभूतेषु संस्थिताम् ।
क्षालयन्ति निजस्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम् ।। १७४ ।।

अभिषिञ्चेदथाऽऽत्मानञ्चतुर्भिश्चण्डिकास्तवैः ।
दानन्दद्याद्विधानेन हेमधेन्वम्बरादिकम् । इति ।। १७५ ।।

**।। अथैतत्प्रयोगः ।।**

तत्रादौ कुण्डमध्यभूमिं दर्भमुष्टिना मायाबीजेन सम्मार्ज्य, मायाबीजेनैव गोमयेनोपलिप्य, स्रुवमूलेन प्रागग्रास्तिस्रोरेखा दक्षिणमध्योत्तरेषु मायाबीजेन विलिख्य, मायाबीजेनैव रेखामध्यात्पांसुमुद्धृत्य, बहिर्निरस्य, मायाबीजेनैव कुण्डमभ्युक्ष्य, मायाबीजमुच्चार्याऽ"मुककुण्डाय नमः" इति कुण्डं गन्धादिभिः सम्पूज्याऽस्त्रमन्त्रेणाऽस्त्रमुद्रया कुण्डं संरक्ष्याऽस्त्रमन्त्रेणैवाऽवगुण्ठनमुद्रयाऽवगुण्ठनं कुर्यादित्यष्टभिः संस्कारैः कुण्डं संस्कृत्य, तत्राऽरणिभवं सूर्यकान्तादिसम्भूतं श्रोत्रियद्विजगृहादानीतं वाग्निं 'भूर्भुवः स्वरोमि"ति स्वाभिमुखं कुण्डमध्ये संस्थाप्य, प्रज्वाल्य, चण्डिकापाठादिनिरतं ब्राह्मणं स्वदक्षिणभागे कुशासने समुपवेश्य, तं यथाविधि सम्पूज्याऽस्मिन् होमकर्मणि कृताकृतावेक्षणत्वेन त्वं ब्रह्मा भवे'ति वस्त्रालङ्करणादिभिर्वृणुयात् ।

ततो 'वृतोऽस्मी'ति तेन प्रतिवचने दत्ते कुण्डं नवगुणेन सूत्रेण संवेष्टच, कुण्डस्योत्तरभागे प्रागग्रान्दर्भानास्तीर्य्य, तेषु प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे आज्यस्थाली[2] स्रुक्स्रुवौ पूलकम्पालाशमयम्परिधित्रयं, द्वात्रिंशत्पलनिर्मितं ताम्रमयं पूर्णपात्रं

१. क. यस्याद्यज्ञरस्यात्पूता । २. इतोऽग्रे 'चरुस्थाली' इति पाठविशेषो दृश्यते ख. पुस्तके ।

चेति पात्रगमणमधोमुखं संस्थाप्य, कुशजलैः सम्प्रोक्ष्य, तानि पात्राण्युत्तानीकृत्य, पुनः प्रोक्ष्य, प्रणीतापात्रं प्रक्षाल्य, स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, प्रादेशमात्रं दर्भद्वयं, मध्ये ब्रह्मग्रन्थियुतं पवित्रं कृत्वा, तत्प्रणीतापात्रे उत्तराग्रं निधाय, प्रणीतापात्रं शुद्धजलैरापूर्य, तत्र गन्धपुष्पाक्षतान्निक्षिप्य, हस्तद्वयाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां पवित्र-मूलाग्रे धृत्वा, मायाबीजमुच्चरन्, पवित्रमध्येन प्रणीतापात्राद्बिन्दुत्रयं भूमौ निक्षिप्य, सपवित्रं तत्पात्रं कराभ्यामामस्तकमुद्धृत्य, कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे निधाय, प्रोक्षणीपात्रं प्रक्षाल्य, स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, प्राग्वत्तन्मध्ये पवित्रं जलं च निक्षिप्य, तथैवोत्पवनं कृत्वा, तत्पात्रं प्रणीतापात्रकुण्डयोर्मध्ये कुशास्तरे निधाय, श्रीमहालक्ष्मीं ध्यात्वा, कुशपूलकं गृहीत्वा, प्रोक्षणीपात्रोपरि निक्षिप्य, पुनस्तत्कुशपूलकमादाय, तेन 'वँ' बीजमुच्चरन् प्रोक्षणीपात्रजलेन समस्तं पात्र-गणं होमसाधनं च प्रोक्ष्य, कुशपूलकं प्रोक्षणीपात्रोपरि निधायाऽऽज्यस्थालीं प्रक्षाल्य, तस्यां पवित्रं सुगन्धिगोघृतं च निक्षिप्य, कुण्डादङ्गारानुद्धृत्य, वाय-व्यकोणे क्वचित्पात्रे निधाय, तदुपर्याज्यस्थालीं निधाय, दर्भद्वयं प्रक्षाल्य, तदुपरि मायाबीजेन त्रिः प्रदक्षिणम्भ्रामयित्वा, दग्धशेषमग्नौ निक्षिप्याऽऽज्यस्थाली-मङ्गारेभ्य उत्तार्योत्तरतो निधायाऽऽङ्गारान्कुण्डे निक्षिप्य, जलं [1]स्पृष्ट्वाऽऽज्य स्थालीं कुण्डं प्रदक्षिणं कारयन्नानीय, स्वपुरतो दर्भेषु निधाय 'वमि'ति धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, मायाबोजेनाऽष्टवारमभिमन्त्र्य, चरुस्थालीं प्रक्षाल्य, तत्र गोदुग्धं तण्डु-लांश्च निक्षिप्य, तस्मिन्नग्नौ चरुस्थालीं निधाय, मूलमन्त्रं स्मरन् पालाशकाष्ठेन-प्रदक्षिणमूर्द्ध्वमवघट्टयँश्चरूं श्रपयित्वा,स्विन्ने तस्मिञ्ज्वलितेन पलाशकाष्ठेन प्रदक्षिणं त्रिःपर्यग्नि[2]करणं मायाबीजेन कृत्वा, मूलमन्त्रेण श्रुवेण घृतैरभिधार्य्यो-त्तार्य, प्राग्वत्प्रदक्षिणमानीय, वायव्ये[3] निधाय, प्राग्वद्धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, मायाबीजे-नाऽभिमन्त्र्य, स्रुक्स्रुवावधोमुखौ वह्नौ प्रताप्य, प्रणीताजलेन प्रोक्ष्य, पुनः प्रताप्य, स्वदक्षिणाग्रे कुशास्तरे निधाय, पलाशसमित्त्रयमादाय घृतप्लुतं, तिष्ठं-स्तूष्णीं वह्नौ निक्षिप्य, कुशपूलकहस्तः प्रोक्षणीजलेन प्रदक्षिणमग्निं[4] परिषिच्य, कुशपूलकं प्रणीतापात्रोपरि निधाय, स्रुवमादाय, दक्षिणजानुना भूमिं स्पृशन्, वामहस्तेनाऽऽज्यस्थालीं स्पृशन्,स्रुवेणाऽऽज्यमादाय, मायाबीजमुच्चार्य्य, "प्रजा-पतये स्वाहा[5] प्रजापतये इदं न मम, पुनर्माया महाकाल्यै, पुनर्माया महालक्ष्म्यै,पुन-र्माया महासरस्वत्यै स्वाहे"ति हुत्वा, तत्तन्नाम्नोद्देशत्यागमुक्तयुक्त्या कुर्यात् ।

१. ख. स्थब्ध्वाऽऽ० । २. ख. त्रिः पर्यग्नि० । ३. ख व्ये । ४. ख. ०मग्नं ।
५. इदम्पदद्वयन्नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

अत्र प्रत्याहुति हुतशेषं श्रुवलग्नं घृतं प्रोक्षणीपात्रे निक्षिपेदित्यग्निमुखहोमं [ कृत्वा, कर्त्तव्यहोमं ][1] कल्पितपायसाद्युक्तद्रव्यैरुद्दिष्टसङ्ख्यं हुत्वा, मायाबीजमुच्चार्य्य "ब्रह्माणीमाहेश्वरीकौमारीवैष्णवीवाराहीनारसिंहीऐन्द्रीचामुण्डायै विच्चे स्विष्टकृते स्वाहे"ति तेनैव हविषा सकृद्धुत्वा "मायाबीजं नन्दजायै स्वाहा नन्दजायै इदं न मम, एवं रक्तदन्तिकायै; शाकम्भर्य्यै; दुर्गायै; भ्रामर्यै; कालिकायै; शिवदूत्यै; प्रजापतये" इत्याज्येनैकैकामाहुतिं हुत्वा, तत्तन्नाम्नोद्दिशत्यागं विधाय, गन्धपुष्पफलोपेतां श्रुचं घृतैरापूर्य तिष्ठन्, स्वाहान्तेन नवाक्षरेण महालक्ष्मीं ध्यायन्नच्छिन्नधारया पूर्णाहुतिं दद्यात् । शतचण्डीमखे तु तत्रोक्तविधिना पूर्णाहुतिं दद्यात् । इत्थं पूर्णाहुतिं हुत्वा, प्रोक्षणीपात्रस्थं संस्रवघृतं गृहीत्वा—

यस्माद्यज्ञरसात्पूताश्यज्वानो ब्रह्मरूपिणः ।
तं संस्रवत्पुरोडाशं प्राश्नामि सुखपुण्यदम् ।। १७६ ।।

इति मन्त्रेण तं घृतं प्राश्याऽऽचम्य, प्रणीतापात्रमुत्थाप्य, स्वपुरतः कुशेषु निधाय, तीर्थध्यानपरो दर्भपूलकेन "याः शिवाः शक्तय" इति श्लोकेन 'शूलेन पाहि नो देवी' त्यादिभिश्चतुर्भिः श्लोकैश्च स्वात्मानमभिषिञ्च्य ब्राह्मणान् भोजनाच्छादनादिभिस्तोषयेदिति ।

## ।। अथ कुमारीपूजाविधिः ।।

तत्र श्रीमार्कण्डेयकल्पे ऋषिरुवाच—

सर्वयज्ञोत्तमं भूप कुमारीपूजनं शृणु ।
कृते यस्मिन्महालक्ष्मीरचिरेण प्रसीदति ।। १७७ ।।

आमन्त्रयेद्दिने पूर्वे कुमारीम्मन्त्रपूर्वकम् ।
पूजादिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम् ।। १७८ ।।

मण्डले चरणौ तस्याः क्षालयेदुष्णवारिणा ।
अर्चयेद्धेमपात्रेण वारिपुष्पाक्षतैः समम् ।। १७९ ।।

सुविताने शुभे स्थाने पङ्कजोपरिपीठके ।
उपवेश्य कुमारीन्तां स्वाङ्गे न्यासं समाचरेत् ।। १८० ।।

१. कोष्ठस्थांशो नास्ति क पुस्तके । २. ख. यस्मा यज्ञ० ।

आत्मानं विधिवत्पूज्य क्रोधदर्प्पविवर्ज्जितः ।
अथ ध्यायेत्कुमारीन्तां महालक्ष्मीस्वरूपिणीम् ।। १८१ ।।

मातुलुङ्ग गदां खेटं पात्रं पीयूषपूरितम् ।
दक्षिणाधः कराद्धस्तैर्विभ्रतीं सर्वमङ्गलाम् ।। १८२ ।।

सुतप्तहेमसर्वाङ्गीमाद्यामाद्यैः सुपूजिताम् ।
नवाक्षरेण मन्त्रेण सुसिद्धेन समर्च्चयेत् ।। १८३ ।।

दद्यादाचमनन्तस्यै दद्याद्वस्त्रे सकञ्चुके ।
सकङ्कणाङ्गुलीयानि कर्णालङ्करणे शुभे ।। १८४ ।।

ग्रैवेयकं प्रदत्वा च चन्दनेन विलेपयेत् ।
पूजयेत्पुष्पमालाभिर्द्दिव्यैर्द्धूपैः सुधूपयेत् ।। १८५ ।।

कुर्यादारात्रिकं राजन्नुदयं वाच्यताम्मुहुः ।
भोजयेद्भक्तिभावेन पायसं शर्क्कराघृतम् ।। १८६ ।।

सुपक्वान्नानि चाऽन्यानि सर्वक्षोभविवर्जितः ।
फलेक्षु स्वादु चान्यच्च दद्यात्तस्यै पुनः पुनः ।। १८७ ।।

यावत्सा[1] भोजनङ्कुर्यात्तावन्मौनञ्जपेत्सुधीः ।
दद्यादाचमनन्तस्यै ताम्बूलञ्च समर्प्पयेत् ।। १८८ ।।

अनर्घेण च दानेन कुमारीम्प्रणतोऽसकृत्[2] ।
प्रदक्षिणनमस्कारान्कृत्वा मूर्दघ्नि कृताञ्जलिः ।। १८९ ।।

विसर्ज्जयेत्कुमारीन्तां स्वगृहं हर्षनिर्भरः ।
अनेन विधिना भक्त्या कुमारीम्पूजयाऽऽनुपुयात् ।। १९० ।।

यं यम्प्रार्थयते कामं देवानामपि दुर्ल्लभम् ।
कुमारीपूजनं कृत्वातन्तम्प्राप्नोत्यसंशयः ।। १९१ ।।

ब्रह्मविष्णुमहेशानां कुमारी परमा कला ।
तत्पूजनेन राजेन्द्र त्रैलोक्यं स्यात्सुपूजितम् ।। १९२ ।।

---

१. क. यावत्स । २. ख० ऽस्वकृत् ।

शतक्रतुफलन्तस्य यः कुमारीः प्रपूजयेत्[1] ।
तस्मात्पूजय भूपाल कुमारीं यतमानसः ।। १६३ ।।
स्वराज्यम्प्राप्स्यते विश्वं मा ते भूदत्र संशयः ।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र साधकः कृतनित्यकृत्यः पूजादिनात्पूर्वदिने कुमार्या गृहं गत्वा, गन्धाक्षतादिभिर्मूलमन्त्रेण 'भगवति कुमारि पूजार्थं त्वं मया निमन्त्रिताऽसि मां कृतार्थये'ति निमन्त्र्य, पूजादिने तामाहूयाऽभ्यङ्गस्नानादिना परिष्कृतां समलङ्कृतां पूजागृहं नीत्वाऽष्टदलपद्मोपरि समादाय, पीठे मृद्वासने समुपवेश्य, तस्याः पादावुष्णजलेन मण्डलोपरि प्रक्षाल्य, सूक्ष्मवस्त्रेण प्रोञ्छ्य, [2]स्वस्तिकासनेनोपविष्टान्तां महालक्ष्मीस्वरूपां ध्यायन्स्वशरीरे पूर्वं पूजाप्रकरणोक्तविधिना न्यासजातं विधायाऽऽत्मपूजां कृत्वा, तस्याम्—

ॐ मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् ।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ।। १६४ ।।

इत्यावाह्याऽऽवाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय, तां प्रमाणोक्तरूपां ध्यात्वा, नवाक्षरमन्त्रेणार्घपात्रादिभिः पूजाप्रकरणोक्तविधिना सम्पूज्य, दीपान्ते षड्रसोपेतं पञ्चविधमन्नं नैवेद्यं समर्प्य, यावत्सा भोजनं करोति तावन्मौनी ध्यानी मूलमन्त्रं नवाक्षरं जपेत् । ततो भुक्तवत्यां तस्यां करोद्वर्त्तनं करक्षालनादिकं च दत्वाऽऽचमने समर्प्य, ताम्बूलं सकर्पूरं दत्वाऽऽरात्रिकं कृत्वा, प्रदक्षिणनमस्कारैः पुनः पुनः परितोष्य, मस्तके न्यस्ताञ्जलिर्विशिष्टवस्तुदक्षिणां दत्वा,हर्षपूर्वकं तां तद्गृहं विसृजेदिति**कुमारीपूजाविधिः** ।

**।। अथाऽत्र पूज्यकुमारीलक्षणानि ।।**

**तत्रादौ पूज्या स्कन्दे—**

अरोगिणीं सुपुष्टाङ्गीं सुरूपां व्रणवर्जिताम् ।
एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक् प्रपूजयेत् ।। १६५ ।।

**अपूज्या च तत्रैव—**

हीनाधिकाङ्गीं कुष्ठीञ्च विशीलकुलसम्भवाम् ।
ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गीं रक्तापूपव्रणाङ्कितां[3] ।। १६६ ।।

---

१. ख. प्रपूजये । २. ख. वस्तिकास । ३. ख. रक्तपूप० ।

जात्यन्धाङ्ककरां काणीं कुरूपां तनुलोमशाम् ।
सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यान्दासीगर्भसमुद्भवाम् ॥ १९७ ॥ इति ।

फलविशेषे च तत्रैव—

ब्रह्माणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम् ।
लाभार्थे वैश्यसम्भूतां सुतार्थे शूद्रवंशजाम् ॥ १९८ ॥
दारुणे चाऽन्त्यजातीनां पूजयेद्विधिना नरः ।

॥ अथ दुर्गास्तोत्रम् ॥

यत्कर्म धर्मनिलयम्प्रवदन्ति तज्ज्ञा
यज्ञादिपुण्यमखिलं सफलन्त्वयैव ।
त्वञ्चेतना यत इति प्रविचार्य्य चित्ते,
नित्ये त्वदीयचरणौ शरणम्प्रपद्ये ॥ १९९ ॥

पाथोधिनाथतनयापतिरेष शेष-
पर्यङ्कलालितवपुः पुरुषः पुराणः ।
त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब सोऽपि,
व्याघूर्णमाननयनः शयनञ्चकार ॥ २०० ॥

तत्कौतुकञ्जननि यस्य जनार्द्दनस्य,
कर्णप्रसूतमलजौ मधुकैटभाख्यौ ।
तस्याऽपि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तु—
न्त्वन्मायया कवलितौ विलयङ्गतौ तौ ॥ २०१ ॥

यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं,
यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरञ्च ।
यल्लोकशोकजननं व्रतबद्धहार्द्दि,
तल्लीलयैव दलितं गिरिजे भवत्या ॥ २०२ ॥

यो धूम्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्या-
म्भस्मीबभूव गिरिजे तव हुङ्कृतेन ।

---

१. ख. रक्तपूप० ।

सर्वासुरक्षयकृते गिरिराजकन्ये,
मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः ॥ २०३ ॥

केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां,
हन्तुं न जातु सुलभावपि चण्डमुण्डौ ।
तौ दुर्मदौ सपदि चाऽम्बरतुल्यमूर्त्ती,
मातस्तवाऽपि कुलिशापतितौ विशीर्णौ ॥ २०४ ॥

दौत्येन ते शिव इति प्रथितप्रभावो
देवोऽपि दानवपतेः सदनञ्जगाम ।
भूयोऽपि तस्य चरितान्प्रथयाञ्चकार,
सा त्वम्प्रसीद शिवदूति विजृम्भितन्ते ॥ २०५ ॥

चित्रन्तदेतदमरैरपि ये न जेयाः,
शस्त्राभिघातपतिताद्रुधिरादपर्णे ।
भूमौ बभूवुरमिताः प्रतिरक्तबीजा-
स्तेऽपि त्वयैव गगने गिलिताः समस्ताः ॥ २०६ ॥

आश्चर्यमेतदतुलं यदभूत्सुरारी,
त्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनहृष्टपाणी ।
शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसंज्ञौ[1]
नीतौ त्वया जननि तावपि नाकलोकम् ॥ २०७ ॥

त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मिन्,
यस्मिन्प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः ।
तस्मिन्निपत्य शलभा इव दानवेन्द्रा
भस्मीभवन्ति हि भवानि किमत्र चित्रम् ॥ २०८ ॥

तत्किं गृणामि भवतीम्भवतीव्रताप-
संवर्द्धने प्रलयिनीं[2] प्रणमज्जनेषु ।
तत्किं गृणामि भवतीम्भवतीव्रताप—
निर्वापणप्रणयिनीं विगतिस्थितेषु ॥ २०९ ॥

१. ख. सुंभनिसुंभ० । २. ख. प्रलयनीं ।

वामे करे तदितरे[1] च तथोपरिष्टात्,
पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलुङ्गम् ।
खेटङ्गदाञ्च दधतीम्भवतीम्भवानीं,
ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव ।। २१० ।।

यद्वारुणात्परमिदञ्जगदम्ब यस्ते,
बीजं स्मरेदनुदिनन्दहनाधिरूढम् ।
मायाङ्कितन्तिलकितन्तरुणेन्दुबिन्दु-
नादैरमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्ति ।। २११ ।।

आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्र-
ङ्कर्मार्पणन्तव विसर्जनमत्र देवि ।
मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं,
मातः क्षमस्व वरदे बहिरन्तरस्थे ।। २१२ ।।

अन्तःस्थिताऽस्यखिलजन्तुषु तुल्यरूपा,
विद्योतसे बहिरिवाऽखिलविश्वरूपा ।
का भूरिशब्दरचना वचनादिका सा,
दीनञ्जनञ्जननि मामव[2] निष्प्रपञ्चम्[3] ।। २१३ ।।

एतत्पठेदनुदिनन्दनुजान्तकारि,
चण्डीचरित्रमतुलम्भुवि यस्त्रिकालम् ।
श्रीमान् सुखी सुविजयी सुभगः कृती स्या-
त्यागी चिरन्तनवपुः कविचक्रवर्त्ती ।। २१४ ।।

श्रीसिद्धनाथापर नामधेयः
श्रीशम्भुनाथोभुवनैकनाथः
तस्य प्रसादात्सकलागमश्रीः,
पृथ्वीधरः स्तोत्रमिदञ्चकार ।। २१५ ।।

[ इति दुर्गास्तोत्रम् ]

।। इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मजगोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
चतुश्चत्वारिंशस्तरङ्गः ।। ४४ ।।

---

१. ख. चदितमे । २. क. माम । ३. ख. निष्प्रपञ्चा ।

[पञ्चचत्वारिंशस्तरङ्गः]

॥ अथ भैरवीमन्त्राणां विधानमुपदिश्यते ॥

शारदातिलके—

अज्ञानतिमिरध्वंसि संसारार्णवतारणम् ।
आनन्दबीजमवतादक्र्यन्त्रैपुरम्महः ॥ १ ॥

अथ वक्ष्ये परां विद्यान्त्रिपुरामतिगोपिताम् ।
यां ज्ञात्वा सिद्धिसङ्घानामधिपो जायते नरः ॥ २ ॥

त्रिपुराशब्दव्युत्पत्तिः सिद्धेश्वरीमते—

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्रिदेवैरर्चिता पुरा ।
त्रिपुरेति तथा नाम कथितन्दैवतैः पुराः ॥ ३ ॥

अन्यत्राऽपि—

त्रिमूर्त्तिसर्गाच्च पराभवत्वात्त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः ।
लये त्रिलोक्या अपि पूरणत्वात्प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम ॥४॥

वियद्भृगुहुताशस्थो भौतिको बिन्दुशेखरः ।
वियत्तदादिकेन्द्राग्निस्थितं वामाक्षिविन्दुमत् ॥ ५ ॥

आकाशभृगुवह्निस्थो मनुसर्गेन्दुखण्डवान् ।
वाग्भवम्प्रथम्बीजं कामराजं द्वितीयकम् ॥ ६ ॥

तृतीयं शक्तिबीजाख्यं त्रिभिर्बीजैरितीरिता ।
पञ्चकूटात्मिका विद्या वेद्या त्रिपुरभैरवी ॥ ७ ॥

वियत् हकारः, भृगुः सकारः, हुताशो रेफः, ते तिष्ठन्त्यत्र एतादृशः भौतिकः ऐकारः, विन्दुरनुस्वारः, तेन ह्स्रैँमित्याद्यं कूटम् । वियत् हकारः, तदादिः सकारः, कस्वरूपं, इन्द्रो लकारः, अग्नी रेफः, वामाक्षि ईकारः, तेन ह्स्क्लरीँ इति द्वितीयं कूटम् । आकाशः हकारः, भृगुः सकारः, वह्नी रेफः, मनुरौकारः, सर्गो विसर्गः, इन्दुखण्डोऽनुस्वारः, तेन ह्स्रौंः इति तृतीयं कूटम् ।

सारसङ्ग्रहेऽप्येवमेवोद्धारः । ज्ञानार्णवे तु 'तृतीयकूटे सर्गं हित्वा बैन्दव'-मि'ति विन्दुमात्रमेवोक्तम् । अत्र यथागुरूपदेशं ज्ञेयम् ।

**पिङ्गलामते** 'शक्त्याद्या तु भवेद्विद्या शिवाद्यो मन्त्र उच्यते'। शक्त्याद्या सकाराद्या तदा कूटत्रयेऽपि हकारसकारयोर्व्यत्ययो बोध्यः।

**सारसमुच्चये**—

भैरवीयमुदिताऽकुलपूर्वा,
देशिकैर्यदि भवेत्कुलपूर्वा।
सैव शीघ्रफलदा भुवि विद्ये-
त्युच्यते पशुजनेष्वतिगोप्या ॥ ८ ॥ इति।

या अकुलपूर्वा[1] हकाराद्या, सा कुलपूर्वा सकाराद्या यदि भवेत्तदा विद्येत्युच्यत इत्यर्थः। **पदार्थादर्शे**—पञ्चकूटात्मिकेति। हसकलरेति पञ्चव्यञ्जनसंयोगात्पञ्चकूटात्मत्वं, रेफरहितत्वेन चतुःकूटत्वं, रेफोपरि नादयोगे षट्कूटत्वं ज्ञेयम्।

**सारसङ्ग्रहे**—

वागैश्वर्य्यप्रदन्नित्यं वाग्भवं समुदाहृतम्।
त्रैलोक्यक्षोभणकरं वश्याकृष्टिकरम्परम् ॥ ९ ॥

कामराजमिति ख्यातं त्रिलोक्यां सुभगत्वदम्।
[2]शाक्तं क्ष्वेडादिहरणं कविताकारकम्परम् ॥ १० ॥

साधकानां धर्मधनसुखमोक्षप्रदायकम्।
दक्षिणामूर्त्तिरस्याणोर्मुनिः पूज्यतमो मतः ॥ ११ ॥

पङ्क्तिश्छन्दः समाख्यातं देवता च प्रकीर्त्तिता।
देववन्दितपादाब्जा देवी त्रिपुरभैरवी ॥ १२ ॥

**पदार्थादर्शे**—

आद्यं बीजं, मध्यं शक्तिः, अन्त्यं वा शक्तिः।

**सारसङ्ग्रहे**—

दीर्घभाजा त्वादिमेन बीजेनाऽङ्गानि षट् क्रमात्।

---

१. ख. कुलपूर्वा। २. ख. शक्ति।

**शारदातिलके—**

नाभेराचरणान्न्यस्येद्वाग्भवम्मन्त्रवित्पुनः ।
हृदयान्नाभिपर्यन्तं कामबीजम्प्रविन्यसेत् ।। १३ ।।

शिरसो हृत्प्रदेशान्तन्तार्त्तीयं विन्यसेत्ततः ।

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—**

वामपाणितले तद्वद्दक्षपाणौ द्वयन्न्यसेत् ।
करयोः सम्पुटे चैवमेवं[1] न्यासद्वयम्भवेत् ।। १४ ।।

**शारदातिलके—**

मूर्द्ध्न्याधारे हृदि न्यस्येद्भूयो बीजत्रयं क्रमात् ।

**ज्ञानार्णवे—**

कुर्वीत देहसन्नाहं त्रिभिर्बीजैः क्रमात्प्रिये ।
करयोर्विन्यसेदादौ मणिबन्धे तलेऽग्रके ।। १५ ।।

दक्षवामे च विन्यस्य कक्षाकूर्परपाणिषु ।
पुनर्दक्षे च वामे च पादयोश्च तथा न्यसेत् ।। १६ ।।

नादान्ते हृदये लिङ्गे न्यसेद्देवि ततः परम् ।
एतेष्वङ्गेषु देवेशि संहारक्रमतो न्यसेत् ।। १७ ।।

विद्यासृष्टिक्रमेणैव जानीहि परमेश्वरि ।

**शारदातिलके—**

नवयोन्यात्मकं न्यासं कुर्याद्बीजैस्त्रिभिः पुनः ।
कर्णयोश्चिबुके भूयः शङ्खयोर्वदने पुनः ।। १८ ।।

नेत्रयोर्नसि विन्यस्येदंसयोर्जठरे पुनः ।
ततः कूर्परयोः कुक्षौ जानुनोर्ध्वजमूर्द्धनि ।। १३ ।।

पादयोर्गुह्यदेशे च पार्श्वयोर्हृदयाम्बुजे ।
स्तनद्वये कण्ठदेशे रत्यादिमथ विन्यसेत् ।। १४ ।।

---

१. ख. चैकमेवं ।

मूले रतिं[1] हृदि प्रीतिम्भ्रुवोर्मध्ये मनोभवम्[2] ।
बालाबीजैस्त्रिभिर्न्यस्येत्स्थानेष्वेषु विलोमतः ।। १५ ।।

अमृतेशीञ्च योगेशीं विश्वयोनिं क्रमादिमाः ।
विलोमबीजैर्विन्यस्येन्मूर्त्तिन्यासमथाऽऽचरेत् ।। १६ ।।

स्वस्वबीजादिकम्पूर्वम्मूर्द्ध्नीशानमनोभवम्[3] ।
न्यसेद्वक्त्रे तत्पुरुषम्मकरध्वजमात्मवित् ।। १७ ।।

हृद्यघोरकुमारादि कन्दर्पन्तद नन्तरम् ।
गुह्यदेशे प्रविन्यस्येद्वामदेवादिमन्मथम् ।। १८ ।।

सद्योजातं कामदेवम्पादयोर्विन्यसेत्ततः ।
ऊर्द्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु तान् ।। १९ ।।

प्रविन्यस्येद्यथापूर्वम्भृगुव्योमाग्निसंस्थितः ।
सद्यादिपञ्चह्रस्वाद्यम्बीजमेषाम्प्रकीर्त्तितम् ।। २० ।।

भृगुः सकारः, व्योम हकारः, अग्नी रेफः, सद्यादीति ओ ए उ इ अ एभिर्युक्तः ।

**कालिकापुराणे—**

सह्रोमीशानरूपाय ततो मनोभवाय वै ।
नम इत्यन्ततः प्रोक्त्वा मूर्द्ध्नीशानं न्यसेत्पुनः ।। २१ ।।

एवं सर्वमूर्त्तिष्वप्यूहनीयम् ।

**ज्ञानार्णवे—**

पञ्चबाणान् क्रमेणैव कराङ्गुलिषु विन्यसेत् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं क्रमेण परमेश्वरि ।। २२ ।।

थान्तद्वयं समालिख्य वह्निसंस्थं क्रमेण तु ।
मुखवृत्तेन नेत्रेण वामेन परिमण्डितम् ।। २३ ।।

बाणद्वयमिदम्प्रोक्तम्मादनम्भूमिसंस्थितम् ।
चतुर्थस्वरबिन्द्वाढ्यन्नादयुक्तं वरानने ।। २४ ।।

---

१ ख. मूलेन । २. ख. मनोभवाम् । ३. ख. मूर्द्ध्नीशानं० ।

फान्तं शक्रसमायुक्तं वामकर्णविभूषितम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं सर्गवाँश्चन्द्रमाः प्रिये ॥ २५ ॥

पञ्चबाणा महेशानि नामानि शृणु पार्व्वति ।
क्षोभणो द्रावणो देवि तथाऽऽकर्षणसंज्ञकः ॥ २६ ॥

वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि ।
कामास्तत्रैव विज्ञेयास्तेषाम्बीजानि संशृणु ॥ २७ ॥

पराबीजम्मध्यबाणं वाग्भवम्परमेश्वरि ।
तुर्य्यबाणन्ततश्चैव स्त्रीबीजञ्च[1] क्रमात्प्रिये ॥ २८ ॥

पञ्चकामा इमे देवि नामानि शृणु वल्लभे ।
काममन्मथकन्दर्प्पमकरध्वजसंज्ञकम् ॥ २९ ॥

मीनकेतुर्महेशानि पञ्चमः परिकीर्त्तितः ।
ललाटगलहृन्नाभिमूलाधारेषु वै क्रमात् ॥ ३० ॥

थान्तद्वयं दकारद्वयं, वह्निस्थं रेफस्थं, क्रमेणेति प्रथमं मुखवृत्तेनाकारेण, द्वितीयं वामनेत्रेण[2] ईकारेण मण्डितं शोभितम्; मादनं ककारः, भूमिस्थं लकारोपरिगतं, चतुर्थस्वर ईकारः, विन्दुरनुस्वारः, नादोऽर्द्धचन्द्रः, तद्युक्तं; फान्तं बकारः शक्रो लकारस्तद्युक्तः, वामकर्ण ऊकारस्तेनालङ्कृतः, सर्गो विसर्गस्तद्युक्तः; चन्द्रमाः सकारः, पराबीजं मायाबीजं, मध्यमबाणं कामबीजं, वाग्भवं विद्याद्यं तुर्यं बाणं, फान्तादि प्रागुद्धृतं, अन्यत्स्वरूपमेव ।

**शारदातिलके—**

भालभ्रूमध्यवदनकर्णिकाकण्ठहृत्सु च ।
नाभ्यधिष्ठानयोः पञ्च ताराद्याः सुभगादिकाः ॥ ३१ ॥

'कर्णिका कर्णभूषण' **इत्यमरकोशात्**कर्णभूषणस्थानं कर्णो गृह्यते ।

ललाटभ्रूमध्यभागमुखकर्णान्तकण्ठके ।
हृन्नाभिलिङ्गेष्वेवैता न्यस्तव्या अष्टशक्तयः ॥ ३२ ॥

१. ख. स्त्रीँबीजञ्च । २. ख. वा नेत्रेण ।

'कर्णिका कर्णभूषण' इत्यमरकोशात्कर्णभूषणस्थानं कर्णो गृह्यते ।

ललाटभ्रू मध्यभागमुखकर्णान्तकण्ठके ।
हृन्नाभिलिङ्गेष्वेवैता न्यस्तव्या अष्टशक्तयः ।। ३२ ।।

इति कालिकापुराणवचनाच्च ।

तथा—न्यस्तव्या विधिना देव्यो मन्त्रिणा सुभगा भगा ।
भगसर्पिण्यथ परा भगमालिन्यनन्तरम् ।। ३३ ।।

अनङ्गाऽनङ्गकुसुमा भूयश्चाऽनङ्गमेखला ।
अनङ्गमदना सर्वा मदविभ्रममन्थराः ।। ३४ ।।

वाक्कामब्लूं पुनः स्त्रीं सस्ताराः पञ्चोदितास्त्वमी ।
न्यासङ्कुर्याद् भूषणाख्यन्ततः साधकसत्तमः ।। ३५ ।।

न्यसेच्छिरसि भालभ्रू कर्णाक्षियुगले नसि ।
गण्डयोरोष्ठयोर्दन्तपङ्क्त्योरास्ये न्यसेत्स्वरान् ।। ३६ ।।

युगलशब्दस्य त्रिभिरन्वयः । भ्रूयुग्मेति कालिकापुराणात् । तेन तदादिदन्तान्तेषु नासामन्तरेण द्विर्द्विर्वर्णन्यासः ।

चिबुकेऽथ युगले कण्ठे पार्श्वयोः स्तनयुग्मके ।
गलचिबुकाधस्थोच्चास्थिप्रदेशः कण्ठस्तदधः ।
दोर्मूलयोः [कूर्परयोः][1] पाण्योस्तत्पृष्ठदेशतः ।

नाभौ गुह्ये पुनश्चोर्वोर्जानुनोर्जङ्घयोस्ततः ।
स्फिचोः पत्तलयोः पश्चाच्चरणाङ्गुष्ठयोर्द्वयोः ।। ३७ ।।

कादिरान्तान्न्यसेद्वर्णान् स्थानेष्वेषु समाहितः ।

पाण्योरेकं तत्पृष्ठयोरेकमिति सम्प्रदायः । गुह्ये लिङ्गे, 'लिङ्गे चोरुद्वये तथे'ति कालिकापुराणात् ।

काञ्च्याङ्ग्रैवेयके पश्चात्कटके हृदि गुह्यके ।। ३८ ।।

१. [—] चिह्नाङ्कितोंऽशो नास्ति क. पुस्तके ।

कर्णकुण्डलयोर्मौलौ वललान् शक्षषान् सहौ ।
अष्टाविमान् प्रविन्यस्येदेवन्देशिकसत्तमः[1] ।। ३९ ।।

कटके उपान्त्यो लकारः । वर्णाः सबिन्दुका एव न्यस्याः ।

**शारदातिलके—**

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिनीम्,
रक्तालिप्तपयोधराञ्जपवटीं विद्यामभीतिं वरम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीन्त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं,
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे सुमन्दस्मिताम् ।। ४० ।।

**पदार्थादर्शे**—दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये तदधःस्थयोरन्त्ये । दक्षोर्द्ध्वतो दक्षाधःपर्यन्तमिति केचित् ।

**भैरवीतन्त्रे—**

हृदयस्थारुणाम्भोजकर्णिकामध्यसंस्थिताम् ।
जपाकुसुमसङ्काशमरुणाम्बरभूषणाम् ।। ४१ ।।

स्मितधौतमहामोहान्त्रिनेत्राञ्चन्द्रशेखराम् ।
विश्वसौन्दर्य्यसर्वस्वजन्मसागररूपिणीम् ।। ४२ ।।

ब्रह्माब्जनेत्ररुद्रेशशिवाख्यैर्मुण्डसम्भवैः ।
मण्डिताङ्गीम्महादेवीम्मुक्ताजपवटीधराम् ।। ४३ ।।

पुस्तकालङ्कृतकरां वरदाभयधारिणीम् ।
आनन्दमधुरान्देवीम्मदाघूर्णितलोचनाम् ।। ४४ ।।

रक्ताङ्गरागसुभगान्ध्यायेत्त्रिपुरभैरवीम् ।
दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये इत्यायुधध्यानम् ।

**सारसङ्ग्रहे—**

अन्तःपूजान्ततः कृत्वा बाह्यपूजां समारभेत् ।
रक्ताम्बरः प्रीतमना मौक्तिकाभरणैर्युतः ।। ४६ ।।

---

१. क. ०सत्तमः ।

चन्दनागुरुकर्प्पूररक्तगात्रानुलेपनः ।
ब्रह्मचर्यरतः शान्तो विरतः परदूषणे ॥ ४६ ॥

सर्वभूतसमो मौनी कुमारीपूजकः सदा ।
सुशुद्धैरुणैर्द्रव्यैर्देव्याः पूजनमारभेत् ॥ ४७ ॥

वामादिशक्तिसहितम्पीठं सम्पूज्य मन्त्रवित् ।
तन्मध्ये कल्पयेद्यन्त्रन्नवयोन्यात्मकञ्शुभम् ॥ ४८ ॥
अष्टच्छदञ्च तद्बाह्ये चतुरश्रम्मनोरमम् ॥ ४९ ॥

**दक्षिणामूर्त्तिः—**

वामा ज्येष्ठा च रौद्री चाऽप्यम्बिकेच्छा ततः परम् ।
ज्ञाना[1] किया कुब्जिका च विभ्वी देवि विभीषिका ॥ ५० ॥
इतरी चैव आनन्दा सम्पूज्या चाऽभितः प्रिये ।

शारदातिलके—तु इच्छादयः शक्तय उक्ता यथा—

इच्छादिशक्तिभिर्युक्तम्भैरव्याः पीठमर्च्चयेत् ।
इच्छा ज्ञाना[2] क्रिया पश्चात्कामिनी कामदायिनी ॥ ५१ ॥

रती रतिप्रिया नन्दा नवमी स्यान्मनोन्मनी ।
वरदाभयधारिण्यः सम्प्रोक्ता नव शक्तयः ॥ ५२ ॥

वाग्भवं लोहितोरायै श्रीकण्ठो लोहितोऽनलः ।
दीर्घवान्यैपरा पश्चादपरायै[3] हसौः पुनः ॥ ५३ ॥

सदाशिवमहाप्रेतङेऽन्तम्पद्मासनन्नमः ।
अनेन मनुना दद्यादासनं श्रीगुरुक्रमम् ॥ ५४ ॥

प्राङ्मुखयोन्यन्तराले[4] पूजयेत्कल्पयेत्ततः ।
पञ्चभिः प्रणवैर्मूर्त्तिन्तस्यामावाह्य देवताम् ॥ ५५ ॥

पूजयेदागमोक्तेन विधानेन समाहितः ।
तारो वाक्शक्तिकमलाहसखफ्रें हसौः स्मृताः ॥ ५६ ॥

वामकोणे यजेद्देव्या रतिमिन्दुसमप्रभाम् ।
नतिपाशधरां सौम्यां[5] मदविभ्रमविह्वलाम् ॥ ५७ ॥

१. २. ख. ज्ञान । ३. क. पराण्यै । ४. ख. प्राङ्मध्य० । ५. क. सौमां ।

प्रीतिन्दक्षिणकोणस्थान्तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ।
अङ्कुशं[1] प्रणतिन्दोर्भ्यान्धारयन्तीं समर्च्चयेत् ।। ५८ ।।

अग्रे मनोभवां रक्तां रक्तपुष्पाद्यलङ्कृताम् ।
इक्षुकार्मुकपुष्पेषुवारिणीं सुस्मिताननाम् ।। ५९ ।।

अङ्गान्यभ्यर्च्चयेत्पश्चाद्यथापूर्वं विधानवित् ।
दिक्ष्वग्रे च निजैर्मन्त्रैः पूजयेद्बाणदेवताः ।। ६० ।।

हस्ताब्जैर्धृतपुष्पेषुप्रणामा भूतसप्रभाः ।
अष्टयोनिष्वष्टशक्तीः पूजयेत्सुभगादिकाः ।। ६१ ।।

मातरो भैरवाङ्कस्था मदविभ्रममन्थराः ।
अष्टपत्रेषु सम्पूज्या यथावत्कुसुमादिभिः ।। ६२ ।।

लोकपालास्ततो दिक्षु तेषामस्त्राणि तद्बहिः ।
पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैर्ज्ञात्वैनाम्परदेवताम् ।। ६३ ।।
यो भजेदुक्तमार्गेण स भवेत् सम्पदाम्पदम् ।

### ।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—श्री दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः, मुखे—पङ्क्तिछन्दसे नमः, हृदये—श्रीत्रिपुरभैरव्यै देवतायै नमः, गुह्ये—ह्स्रैँ बीजाय नमः, पादयोः—ह्स्क्लीँ शक्तये नमः" इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा 'ह्स्राँ ह्स्रीं' मित्यादिना करषडङ्गन्यासं कृत्वा, पादादिनाभिपर्यन्तं, 'ह्स्रैँ नमः'; नाभ्यादिहृदयान्तं ह्स्क्लीँ; हृदयाच्छिरःपर्यन्तं 'ह्स्रौंः'[2] ।

वामपाणौ–१, दक्षे-२, उभयोः – ३ । शिरसि–१, मूलाधारे–२, हृदि-३ । दक्षमणिबन्धे–१, करतले-२, कराग्रे-३, एवं वामे । दक्षदोर्मूले— १, कूर्परे–२, तले –३, एवं वामेऽपि । दक्षगुल्फे—१, पादतले –२, पादाग्रे—३, एवं

१. अङ्गुशं । २. ख. ह्स्रौं ।

वामपादेऽपि । दक्षोरुमूले—१, जानुनि—२, पादतले—३, एवं वामेऽपि । नादान्ते—१, हृदि—२, लिङ्गे–३ । दक्षकराग्रे—१, तत्तले—२, मणिबन्धे–३, एवं वामकरेऽपि । दक्षकरतले–१, तत्कूर्परे—२, तन्मूले–३, एवं वामेऽपि । दक्षपादतले—१, जानुनि—२, तदूरुमूले—३, एवं वामपादेऽपि । लिङ्गे—१, हृदि–२, नादान्ते–३ । वामकर्णे—ऐं, दक्षे-क्लीं, चिबुके—सौः, वामशङ्खे—ऐं, दक्षे—क्लीं, मुखे—सौंः, वामनेत्रे ऐं, दक्षे—क्लीं०, नसि—सौः, वामबाहुमूले—ऐं, दक्षे—क्लीं, हृदि—सौः, वामकूर्परे–ऐं, दक्षे–क्लीं, कुक्षौ–सौः, वामजानुनि–ऐं, दक्षे–क्लीं, लिङ्गे-सौः, वामपादे–ऐं, दक्षे–क्लीं, गुदे–सौः, वामपार्श्वे–ऐं, दक्षे–क्लीं, हृदि–सौः, वामस्तने–ऐं, दक्षे–क्लीं, कण्ठे–सौः ।

लिङ्गे–ऐं रत्यै, हृदि–क्लीं प्रीत्यै, भ्रूमध्ये–सौः मनोभवायै, भ्रूमध्ये–सौः अमृतेश्यै, हृदि–क्लीं योगेश्यै, मूले–ऐं विश्वयोन्यै । शिरसि–स्ह्रौं ईशानाय मनोभवाय[1][2], मुखे–स्ह्रैं तत्पुरुषाय मकरध्वजाय[3], हृदि-ह्स्रुँ अघोराय कुमाराय[4] कन्दर्पाय, गुह्ये–स्ह्रिं वामदेवाय मन्मथाय, पादयोः–स्ह्रँ सद्योजाताय कामदेवाय नमः, ऊर्ध्ववक्त्रे मस्तके–स्ह्रौं ईशानाय मनोभवाय, भाले–स्ह्रैं तत्पुरुषाय मकरध्वजाय; दक्षकर्णे–अघोरकुमाराय कन्दर्पाय; वामे–स्ह्रिं[5] वामदेवाय[6] मन्मथाय०, चूडाधः–स्ह्रं सद्योजाताय– कामदेवाय०, ।

अङ्गुष्ठयोः–द्रां क्षोभणबाणाय०, तर्जन्योः–द्रीं द्रावणबाणाय०, मध्यमयोः–क्लीं आकर्षणबाणाय०, अनामयोः–ब्लूँ वशीकरणबाणाय०,कनिष्ठयोः —सः उन्माद[7]बाणाय० । पुनरङ्गुष्ठयोः–ह्रीं कामाय०, तर्जन्योः–क्लीं मन्मथाय०, मध्यमयोः–ऐँ कन्दर्पाय० अनामयोः–ब्लूँ मकरध्वजाय०, कनिष्ठयोः —स्त्रीँ मीनकेतनाय०, ललाटे—ह्रीं कामाय०, गले–क्लीँ मन्मथाय०, हृदि–ऐँ कन्दर्पाय०, नाभौ—ब्लूँ मकरध्वजाय०, मूलाधारे—स्त्रीँ मीनकेतवे० ।

भाले–ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै०, भ्रूमध्ये—५[8] भगायै०, मुखे–५ भगसर्पिण्यै०, कर्णयोः—५ भगमालिन्यै०, —कण्ठे—५ अनङ्गायै०, हृदि–५ अनङ्गकुसुमायै०, नाभौ—५ अनङ्गमेखलायै०, मूलाधारे—५ अनङ्गमदनायै० ।

शिरसि—अँ नम०, भाले–आँ०, दक्षभ्रुवि—इं०, वामे–ईः०, दक्षकर्णे-

१. क. ईशानायै. । २. क. नमोभवाय । ३. खं. मकध्वजाय । ४. ख. कुमार । ५. क. स्हिँ । ६. क. वामदेव । ७. ख. उन्मादन । ८, क. ४ ।

—उं०, वामे ऊं०, दक्षनेत्रे—ऋं०, वामे—ॠं०, नसि—लृं०, दक्षगण्डे लॄं०, वामे—एं०, ओष्ठे—ऐं, अधरे-ओं०, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ—औं०, अधः—अं०, मुखे—अः०, चिबुके—कं०, गले—खं, 'कण्ठे—गं०, दक्षपार्श्वे—घ[1]'०, —वामे—ङं०, दक्षस्तने—चं०, वामे—छं०, दक्षांसे० जं०, वामे—झं०, दक्षकूर्परे—ञं०, वामे—टं०, पाण्योः—ठं०, तत्पृष्ठयोः—डं०, नाभौ—ढं०, गुह्ये—णं०, दक्षोरौ-तं०, वामे-थं०, दक्षजानुनि—दं०, वामे-धं०, दक्षजङ्घायां—नं०, वामे—पं०, दक्षस्फिचि—फं०, वामे-बं०, दक्षपादतले-भं०, वामे-मं०, दक्षपादाङ्गुष्ठे-यं०, वामे—रं०, काञ्च्यां—वं०,[2] कण्ठे—लं०,[3] वलये—लं०, हृदि-शं०, गुह्ये—क्षं०, दक्षकुण्डले—षं०, वामे—सं०, मौलौ—हं नमः"

इति विन्यस्य, ध्यानमानसपूजान्ते प्रमाणोक्तरूपं पूजाचक्रं निर्माय, स्वपुरतः संस्थाप्याऽभ्यर्च्याऽर्घस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठमभ्यर्च्याऽष्टदलकेसरेषु देव्याः पृष्ठभागादितः, पृष्ठे वामान्तदक्षिणवामयो 'ज्येष्ठां रौद्री"मित्येवं दक्षिणवामक्रमेणाऽग्रे आनन्दाशक्तिर्यथा भवति तथा—

"ॐवामायै नमः, एवं ज्येष्ठायै०, रौद्रयै०, अम्बिकायै०, इच्छायै०, ज्ञानायै०, क्रियायै०,[4] कुब्जिकायै०, विभ्वै०, विषघ्न्यै०, दूतयै०, आनन्दायै०"

इति द्वादश शक्तीः सम्पूज्याऽथवाऽष्टदलकेसरेषु मध्ये—"ॐ[5] इच्छायै नमः, एवं ज्ञानायै०, क्रियायै०, कामिन्यै०, कामदायिन्यै०, रत्यै०, रतिप्रियायै०, नन्दायै०, मनोन्मन्यै नम" इति सम्पूज्य,

ऐं परायै अपरायै परापरायै ह्सौः सदाशिवमहाप्रेत पद्मासनाय नम' इति पीठमन्त्रेण समस्तम्पीठं सम्पूज्य, मूर्त्तिकल्पनादिप्राणप्रतिष्ठान्ते वराभयपुस्तकाक्षमालाः प्रदर्श्याऽऽसनादिपुष्पोपचारान्ते प्राङ्मध्ययोन्योर्मध्ये देव्याः पृष्ठभागे—'ऐं परगुरुभ्यो[6] नमः, ऐं अपरगुरुभ्यो नमः, ऐं परापरगुरुभ्यो नम" इति सम्पूज्य, योनिमुद्रां बद्ध्वा हृदि,मुखे, भ्रूमध्ये, ललाटे, ब्रह्मरन्ध्रे च मूलविद्यां स्मरन् संस्थाप्य दर्शयेत् ।

---

१. क. पुस्तके 'कण्ठे-गं, दक्षपार्श्वे–घं०' इति द्विरुक्तः पाठः । २. ख. तं. । ३. ख. वं. । ४. ख. नाऽस्त्ययमंशः । ५. क. ॐ च । ६. ख. परम० ।

ततः प्राग्वल्लयाङ्गं, भोगाङ्गञ्चाऽभ्यर्च्य, त्रिकोणस्याऽग्रकोणे—"ऐँ रत्यै नमः, उत्तरे—क्लीं प्रीत्यै०, दक्षे—सौः मनोभवायै नम" इति स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य,

त्रिकोणाद्बहिरष्टकोणाभ्यन्तरे देव्यादक्षिणे—'द्रां क्षोभणबाणा०, द्रीँ-द्रावणबाणाय०, वामे—क्लीं आकर्षणबाणाय०, ब्लूं वशीकरणबाणाय०, देव्यग्रे—सः उन्मादबाणाय नमः।

ततो बाणस्थानेष्वेव—"ह्रीं कामाय०, क्लीं मन्मथाय०, ऐं कन्दर्पाय०, ब्लूं मकरध्वजाय०, स्त्रीं मीनकेतवे०" इति बाणान्कामांश्च सम्पूज्याऽष्टयोनिषु देव्याः पृष्ठभागस्थयोनिमारभ्य—

'अनङ्गकुसुमायै०, अनङ्गमेखलायै०, अनङ्गमदनातुरायै०, सुभगायै०, भगायै०, भगसर्पिण्यै०, भगमालायै नमः",

ततोऽष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन "अं असिताङ्गभैरवाय० आं ब्राह्म्यै नमः; इं रुद्रभैरवाय० ईं माहेश्वर्यै नमः; उं चण्डभैरवाय० ऊं कौमार्यै; ऋं क्रोधभैरवाय० ॠं वैष्णव्यै०; लृं उन्मत्तभैरवाय लॄं वाराह्यै०, एं कपालिभैरवाय० ऐं इन्द्राण्यै०, ओं भीषणभैरवाय०, औं चामुण्डायै०, अं संहारभैरवाय० अः महालक्ष्म्यैः नम" इति सम्पूज्य,

दलाग्रस्थितग्रन्थिषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन—"कामरूपपीठाय०, मलयपीठाय०, कोल्लगिरिपीठाय०, कुलान्तकपीठाय०, चौहारपीठाय०, जालन्धरपीठाय०,[1] उड्डियाणपीठाय०, देवीकोटपीठाय नम" इति सम्पूज्य,

बहिर्मातृकामण्डले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन—"हेतुकाय०, त्रिपुरान्तकाय०, वेतालाय०, अग्निजिह्वाय०, कालान्तकाय०, कपालिने०, एकपादाय०, भीमरूपाय०" इत्यष्टदिक्षु सम्पूज्याऽधः निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—मलयाय०, ऊर्द्ध्वेवा इन्द्रेशानयोर्मध्ये—"हाटकेश्वराय" इति सम्पूज्य, चतुरस्रे प्रथमरेखायाम्—'इन्द्रादीन्', द्वितीयरेखायाम्—'वज्रादीन्य' पि सम्पूज्य शेषं समापयेत्।

**शारदातिलके—**

दीक्षाम्प्राप्य जपेन्मन्त्रन्तत्त्वलक्षञ्जितेन्द्रियः।
पुष्पैर्भानुसहस्राणि जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षजैः॥ ६४॥

१. ख. नाऽस्त्ययमंशः।

त्रिमध्वक्तैः प्रसूनैर्वा करवीरसमुद्भवैः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः ।। ६५ ।।

जुहुयादरुणाम्भोजैरदोषैर्मधुराप्लुतैः ।
लक्षसङ्ख्यं तदर्द्धं वा प्रत्यहम्भोजयेद्द्विजान् ।। ६६ ।।

वनिता युवती रम्याः प्रीणयेद्देवताधिया ।
होमान्ते धनधान्याद्यैस्तोषयेद्पुरुषमात्मनः ।। ६७ ।।

एवङ्कृते जगद्वश्यो रमाया भवनम्भवेत् ।
रक्तोत्पलैस्त्रिमध्वक्तैररुणैर्वा हयारिजैः ।। ६८ ।।

पुष्पैः पयोन्नैः सघृतैर्होमैर्विश्वं वशन्नयेत् ।
वाक्सिद्धिं लभते मन्त्री पालाशकुसुमैर्हुतात् ।। ६९ ।।

कर्पूरागुरुसंयुक्तङ्गुग्गुलञ्जुहुयात्सुधीः ।
ज्ञातन्दिव्यमवाप्नोति तेनैव सम्भवेत्कविः[1] ।। ७० ।।

क्षीराक्तैरमृताखण्डैर्होमः सर्वापमृत्युजित् ।
दूर्वाभिरायुषे होमः क्षीराक्ताभिर्दिनत्रयम्[2] ।। ७१ ।।

गिरिकर्णीभवैः पुष्पैर्ब्राह्मणान्वशयेद्द्रुतम् ।
कह्लारैः पार्थिवान्पुष्पैस्तद्वधूः कर्णिकारजैः ।। ७२ ।।

मल्लिकाकुसुमैर्हुत्वा राजपुत्रान्वशन्नयेत् ।
कोरण्टकुसुमैर्वैश्यान् वृषलान्पाटलोद्भवैः ।। ७३ ।।

अनुलोमविलोमान्तःस्थितसाध्याह्वयान्वितम् ।
मनुमुच्चार्य[3] जुहुयान्मन्त्री मधुरलोलितैः ।। ७४ ।।

सर्षपैः कटुसम्मिश्रैर्वशयेत्पार्थिवान् क्षणात् ।
अनेनैव विधानेन तत्पत्नीस्तत्सुतानपि ।। ७५ ।।

जातीविल्वभवैः पुष्पैर्मधुरत्रयसंयुतैः ।
नरनारीनरपतीन्[4] होमयेद्वशयेद्ध्रुवम् ।। ७६ ।।

---

१. ख. स भवेत्० । २. ख. क्षीराक्ताभिर्द्दि. । ३. क. मनुमुच्चार्या । ४. क. नरपतीर् ।

मालतीवकुलोद्भूतैः पुष्पैश्चन्दनलोलितैः ।
जुहुयात्कवितांमन्त्री लभते वत्सरान्तरे ।। ७७ ।।

मधुरत्रयसंयुक्तैः फलैर्बिल्वसमुद्भवैः ।
जुहुयाद्वशयेल्लोकं श्रियमाप्नोति वाञ्छिताम् ।। ७८ ।।

पाटलैः कुमुदैः कुन्दैरुत्पलैर्नागचम्पकैः ।
नन्द्यावर्त्तैर्विकसितैः कृतमालैर्जुहोति यः ।। ७९ ।।

जायते वत्सरादर्वाक् श्रिया विजितपार्थिवः ।
साज्यमन्नम्प्रजुहुयाद्भवेदन्नसमृद्धिमान् ।। ८० ।।

कस्तूरीकुङ्कुमोपेतङ्कर्पूरञ्जुहुयाद्वशी ।
कन्दर्पादधिकं सद्यः सौन्दर्यमधिगच्छति ।। ८१ ।।

लाजान्प्रजुहुयान्मन्त्री दधिक्षीरमधुप्लुतान् ।
विजित्य रोगानखिलान्स जीवेच्छरदां शतम् ।। ८२ ।।

पादद्वयम्मलयजम्पादङ्कुङ्कुमकेशरम् ।
पादङ्गोरोचना तानि त्रीणि पिष्ट्वा हिमाम्भसा ।। ८३ ।।

विदध्यात्तिलकम्भाले यान्पश्येद्यैर्विलोक्यते ।
यान्स्पृशेत्स्पृश्यते यैर्वा वश्याः स्युस्तस्य तेऽचिरात् ।। ८४ ।।

कर्पूरकपिचोराणि समभागानि कारयेत् ।
चतुर्भागा जटामांसी तावती रोचना मता ।। ८५ ।।

कुङ्कुमं सप्तभागं स्याद्द्विभागञ्चन्दनम्मतम् ।
अगुरुर्नवभागः स्यादिति भागक्रमेण च ।। ८६ ।।

हिमाद्भिः कन्यकापिष्टमेतत्सर्वं सुसाधितम् ।
आदाय तिलकम्भाले कुर्याद्भूमिपतीन्नरान् ।। ८७ ।।

वनिता मदगर्वाढ्यान्मदोन्मत्तान्मतङ्गजान् ।
सिंहान् व्याघ्रान्महासर्पान् भूतवेतालराक्षसान्[1] ।। ८८ ।।
दर्शनादेव वशयेत्तिलकन्धारयन्नरः ।

१. क. भूतिवेताल० ।

**सारसङ्ग्रहे—**

पलाशपुष्पैस्त्रिस्वादुयुतैर्होमायुतद्वयम् ।
कुर्यात्सरस्वतीलक्ष्मीसौभाग्यानाङ्गृहं हि सः ।। ८९ ।।

राजीकरञ्जसशमीवटोद्भवसमिद्वरैः ।
विल्वप्रसूनैस्त्रिस्वादुयुक्तैर्हवनमाचरेत् ।। ९० ।।

नरनारीनृपाणाञ्च रञ्जनम्भवति ध्रुवम् ।
मालतीवकुलोद्भूतैर्दलैश्चन्दनवारिणा ।। ९१ ।।

तिक्तैर्हुनेद्रमा तस्य कवित्वमपि जायते ।
अनुलोमविलोमेन मध्यस्थं साध्यकर्मयुक् ।। ९२ ।।

मनुम्प्रजप्य होतव्यं लोणराजिकया ततः ।
नरनारीनृपांश्चैव वशयेन्नाऽत्र संशयः ।। ९३ ।।

त्रिस्वादुयुग्विल्वफलैर्होमो मर्त्यानुरञ्जनः ।
साधकस्य समृद्धिश्च कमलाया भवेदपि ।। ९४ ।।

त्रिस्वादुयुग्गुडूचीभिर्होमोऽप्यञ्ज्वरनाशनः ।
मध्याद्यं योनियुक्तं लिखतु वसुमनुञ्चाऽष्टपत्रे त्रिशोऽर्णान् ।
गायत्र्या वर्णवीतं क्षितिगृहयुगयुक्कामकोणे च मन्त्री ।
लाक्षालोहैश्च वीतं वरकरविधृतं होमसम्पातसिद्ध—
म्पुत्रायुःपौत्रदन्तत्समरविजयदं वाक्प्रदं रोगहन्तृ ।। ९५ ।।

**अयमर्थः**—पूर्वोक्तं नवयोन्यात्मकं चक्रं विलिख्य, मध्यादि नवसु योनिषु ससाध्यं मूलमन्त्रस्यैकैकमक्षरं त्रिरावृत्या विलिख्याऽष्टसु पत्रेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन वक्ष्यमाणत्रैपुरगायत्रीवर्णांस्त्रिशस्त्रिशो विलिख्य, तद्वाह्ये वृत्तद्वयान्तराले मातृकावर्णान्सबिन्दुकान्विलिख्य, तद्वहिर्भूपुरद्वयेनाऽष्टकोणं कृत्वा, तत्कोणेष कामबीजं लिखेत् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवति । तथा—

वह्नेर्गेहयुगान्तरे च मदनङ्कोणेषु पत्रेष्वमु—
न्त्वष्टद्वन्द्वमितेषु चाऽम्बरवृतं क्षोणीगृहान्तस्थितम् ।
भूर्जे कुङ्कुमरोचनाविलिखितं सौभाग्यसम्पत्करं,
यन्त्रन्त्रैपुरमीरितं सुकविताकीर्त्तिप्रदं शोभनम् ।। ९६ ।।

अस्यार्थः— भूर्ज्जे षट्कोणमालिख्य, तन्मध्ये तत्कोणेषु कामबीजं ससाध्यमालिख्य, तद्बहिः षोडशदलं विरच्य, तद्दलेष्वपि कामबीजमालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, तयोरन्तराले सबिन्दुहकारेण यन्त्रं संवेष्टच, बहिश्चतुरश्रं कुर्यात् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् । तथा—

षट्कोणमध्ये कामस्थं शक्तिबीजं समालिखेत् ।
कोणेषु वाग्भवम्बीजं ब्लूंकारं तस्य सन्धिषु ॥ ९७ ॥

स्त्रींबीजेनावृतङ्कुर्याद्रोचनाकुङ्कुमादिभिः ।
लिखितं साधितं सम्यक् सम्पत्सौभाग्यदायकम् ॥ ९८ ॥
पञ्चकामाख्ययन्त्रं हि सर्वस्त्रीवश्यकारकम् ।

अस्यार्थः—षट्कोणं विरच्य, तन्मध्ये कामबीजं, तदन्तर्भुवनेश्वरीबीजञ्च ससाध्यं विलिख्य, तत्कोणेषु वाग्भवबीजमालिख्य, षट्कोणसन्धिषु ब्लूङ्कारं विलिख्य, तत्सर्वं स्त्रीङ्कारेण वेष्टयेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।

तथा—त्रिपुरे देवि विद्महे कामेश्वरि च धीमहि ।
तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात् ॥
त्रिपुरायाश्च गायत्री सम्प्रोक्ता सर्वसिद्धिदा ॥ ९९ ॥

अथैतस्य वाग्भवादिबीजत्रयस्य साधनं **सारस्वतमते**—
नवकुन्दनिभान्देवीम्मुक्ताजालविभूषणाम् ।
मुद्रा कपालं विद्याक्षमालाराजच्चतुर्भुजाम् ॥ १०० ॥

मुद्रा व्याख्यानमुद्रा, विद्या पुस्तकम् ।
वाग्भवं यो महेशानि लक्षं जपति संयतः ।
कविता जायते तस्य नानावृत्तार्थशोभिता ॥ १०१ ॥

रक्तां सुरतरोर्मूले विलसन्मणिपीठगाम् ।
सृणिपाशकपालेषुमातुलुङ्गधनुःकराम् ॥ १०२ ॥

रक्तैरलङ्कृताम्पुष्पैर्मदाघूर्णितलोचनाम् ।
हेलाविलाससम्पन्नान्नवयौवनसुन्दरीम् ॥ १०३ ॥

देवीं ध्यात्वा जपेल्लक्षं यो बीजम्मध्यमं वशी ।
त्रैलोक्यं क्षोभयेदाशु पुरावत्सिद्धिभागसौ ॥ १०४ ॥

सृणिरङ्कुशः, दक्षोर्द्ध्वादिष्वङ्कुशेषुमातुलुङ्गाः, वामोर्द्ध्वादिषु पाशधनुःकपालानि इत्यायुधध्यानम् । तथा—

अक्षमालासुधाकुम्भमुद्रापुस्तकधारिणीम् ।
नवकुन्देन्दुसङ्काशां राजन्मौक्तिकभूषणाम्[1] ।। १०५ ।।

शक्तिं संविन्मयीं ध्यात्वा बीजं सारस्वतं वशी ।
यो जपेज्जायते तस्य कविता भुवि सम्मता ।। १०६ ।।

तन्त्रान्तरे च—विद्याकामो वाग्भवाख्यं शुक्लवस्त्रानुलेपनम् ।
मौक्तिकाभरणो भूमिगृहे जप्यात्त्रिलक्षकम् ।। १०७ ।।

गद्यपद्यान्युद्गिरन्तीं स्ववाणीमतिभावयन् ।
पलाशैरेव जुहुयात्पुष्पैस्त्रिमधुराप्लुतैः ।। १०८ ।।

स जायते कविश्रेष्ठः सुन्दरीणाञ्च वल्लभः ।
त्रिलोकीवशकामश्चेत्कामराजं द्वितीयकम् ।। १०९ ।।

कस्तूरीकुङ्कुमामोदमधुरारुणभूषणः ।
रक्तक्षौमाम्बरधरो जपेल्लक्षत्रयं सुधीः ।। ११० ।।

नेत्राञ्चलैर्मदालोलैर्वशे विदधतीञ्जपन् ।
अम्बिकेति स्वकं रूपं ध्यायन् हृष्टेन चेतसा ।। १११ ।।

जुहुयान्मालतीपुष्पैः शीतकर्पूरसम्प्लुतैः ।
जगन्ति तस्य वश्यानि भवन्ति वहुनाऽत्र किम् ।। ११२ ।।

वाग्विलासमधिगन्तुमना यो बीजमन्त्यमपि पुष्करलक्षम् ।
सञ्जपेद्विमलभूषणवस्त्रो[2] यो भवेत्कविवरोऽमितकीर्त्तिः ।। ११३ ।।

मालतीमुकुलजैर्द्दलैश्चन्दनाम्भसि घनैर्विनिर्जितैः ।
श्रीकरोकुसुमकैर्हुतक्रिया सैव चाऽऽशुकविताकरी मताइति ।। ११४ ।।

अस्याश्चैतन्यमन्त्रो **योगिनीतन्त्रे**—

शिवाष्टमं केवलमादिबीज—
म्भगस्य पूर्वाष्टमबीजमन्यत् ।

---

१. ख. राजमौक्तिक० । २. ख. भूषवस्त्रो ।

परं शिवान्तं गदिता त्रिवर्णा
सङ्केतविद्या गुरुवक्त्रगम्या ।। ११५ ।।

शिवः उकारस्तस्मादष्टमं ऐकारः; भग एकारः, एतत् पूर्वाष्टमं तस्माद्विलोमेनाष्टमं ईकारः; शिवोऽनुस्वारः सोऽन्ते यस्य तेन औं । अस्या विद्याया 'एषा त्रैपुरकन्दा स्या' दिति तन्त्रराजवचनात् त्रैपुरकन्देति नाम ।

आह्लादिनीमन्त्रोऽपि **योगिनीतन्त्र** एव ।

कमलं परिलुप्तमध्यमान्त्यस्वरमीशादियुतं सविन्दुनादम् ।
निगमादि नमोन्तरे विराजद्भुवि देवीहृदयम्प्रदिष्टमेतत्[1] ।। ११६ ।।

कमलशब्दस्य मकाराकारयोर्लोपे कृते केवलं कलाववशिष्टौ । ईशादिः ई, तेन क्ली इति, बिन्दुरनुस्वारः, नादोऽर्द्धचन्द्रस्तद्युक्तं, तेन क्लीँ इति सिद्धम् । निगमादिः प्रणवः, प्रणवनमसोर्मध्ये इदम्बीजं देयम् । तदेयं देवीहृदयविद्येति ।

अस्या दीपिनीमन्त्रः **सिद्धेश्वरीतन्त्रे**—

वागीश्वर्यास्तु मन्त्रे हुतवहदयितास्थानगं वाग्भवाख्यं,
क्लिन्ने क्लेदिन्यपि स्यादिह तदनु महाक्षोभमित्येव योज्यम् ।
तस्मात्कुर्वित्यसौ चेन्मनुरयमुदितो रुद्रवर्णस्तदन्त-
स्तारान्मोक्षन्तदन्ते कुरुपदसहितं स्याच्च सम्मोहनाख्यम् ।।११७।।

बीजानां दीपनानि स्युरिह हि मनवो यैः सुदीप्तः सदैव,
त्रैविद्यो मन्त्रराजो भवति जपविधौ[2] सर्वसम्पत्तिकारी ।।

वागीश्वर्या दशाक्षर्य्याः, वाग्भवं बालायाः एतदन्त[3] एको मन्त्रः, रुद्रार्णश्चाऽपरः, प्रणवाद्योऽन्यः । वर्णानां दीपनानीत्यनेन वागीश्वरीमन्त्रान्ते वाग्भवं, एकादशाक्षरमन्त्रान्ते कामराजं, पञ्चाक्षरमन्त्रान्ते शक्तिबीजं दत्वा तत्तद्बीजसाधने जपनीयम् । त्रिबीजसाधनप्रकारस्तूक्त एव ।

**ज्ञानार्णवे**—

वाग्भवम्बीजमुच्चार्य्य जीवप्राणसमन्वितम् ।
सकला भुवनेशानी द्वितीयम्बीजमुद्धृतम् ।। ११८ ।।

---

१. क. प्रविष्ट० । २. क. पजविधौ । ३. ख. एतदंद ।

जीवः प्राणो वह्निसंस्थः शक्रस्वरविभूषितः
विसर्गाढ्यो महेशानि विद्या त्रैलोक्यमातृका ।। ११९ ।।

चैतन्यभैरवीनामेति । जीवः सः, प्राणो हः, सकलाः वर्णत्रयं स्वरूपं, चन्द्रेण मादनमिति दक्षिणामूर्त्तिवचनात् । वह्नी रेफः ।

उद्यद्भानुसहस्राभां[1] नानालङ्कारभूषिताम् ।
मुकुटोद्ध्वलसच्चन्द्ररेखां रक्ताम्बराञ्चिताम् ।। १२० ।।

पाशाङ्कुशधरान्नित्यं वामहस्तकपालिनीम् ।
वरदाभयशोभाढ्याम्पीनोन्नतघनस्तनीम् ।। १२१ ।।

एवं ध्यात्वा यजेद्देवीम्पूर्वसिंहासनस्थिताम् ।

पाशाङ्कुशावेकत्र दक्षाद्यूर्द्ध्वयोर्हस्तयोस्तदाद्यधश्चायुधध्यानम् ।

द्विरावृत्त्या षडङ्गानि न्यसेत्सर्वाङ्गरक्षणम् ।
त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं वसुपत्रं वरानने ।। १२२ ।।
चतुरश्रञ्चतुर्द्वारमेवम्मण्डलमालिखेत् ।

तथा– प्रथमावरणन्देवि षडङ्गानान्तु पूर्ववत् ।
रत्यादिकास्ततः पूज्याः पूर्ववत्परमेश्वरि ।। १२३ ।।

अग्रे वसन्तं वामे तु कामदेवं बरानने ।
चन्द्रन्दक्षिणदिक्कोणे बाणान्पूर्ववदद्रिजे ।। १२४ ।।
डाकिनीं राकिनीञ्चैव लाकिनीन्ततः ।
साकिनीं हाकिनीन्देवि पश्चिमादिक्रमाद्यजेत् ।। १२५ ।।
अनङ्गकुसुमाद्याश्च वसुपत्रेषु पूर्ववत् ।
परभृत्सारसाख्यौ च शुकमेघाह्वयौ पुनः ।। १२६ ।।
अपाङ्गभ्रूविलासौ च भावहावौ च पूजयेत् ।
इन्द्राद्यांल्लोकपालांश्च क्रमेण परिपूजयेत् ।। १२७ ।।

पूर्ववद्रत्यादिपूजां कृत्वाऽग्रकोणे "ॐ वसन्ताय नमः, एवं स्ववामे—कामदेवाय०, दक्षिणे—चन्द्राय०, देव्यग्रादिषट्कोणेषु — डाकिन्यै०, राकिन्यै०,

---

१. ख.० सस्राभां ।

लाकिन्यै०, काकिन्यै०, हाकिन्यै०; पूर्वाद्यष्टपत्रेषु–अनङ्गकुसुमायै०, अनङ्गमेखलायै०, अनङ्गमदनायै०, अनङ्गमदनातुरायै०, सुभगायै०, भगायै०, भगसर्पिण्यै०, भगमालायै०," इति सम्पूज्य, दलाग्रेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन— "परभृते०, साराय०,[1] शुकाय०, मेघाय०, अपाङ्गाय०, भ्रूविलासाय०, भावाय० हावाय०" इति सम्पूज्येन्द्रादिपूजां पूर्ववत्समापयेदिति ।

**ज्ञानार्णवे** –

कामेश्वरी च रुद्राणी पूर्वसिंहासनस्थिता ।
एतस्या एव विद्याया बीजद्वयमुदाहृतम् ।। १२८ ।।

तदन्ते परमेशानि नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ।
एतस्या एव तार्त्तीयं रुद्राणीम्परमेश्वरि ।। १२९ ।।

नित्याद्यष्टाक्षरं स्वरूपम् ।

पूजाध्यानादिकन्देवि चैतन्या इव पूर्ववत् ।
त्रिकोणे तु विशेषोऽस्ति कथयामि तवाऽनघे ।। १३० ।।

अग्रकोणक्रमेणैव नित्यक्लिन्नाम्मदद्रवाम् ।
षडङ्गावरणम्पश्चात्पूजयेत्सर्वसिद्धये ।। १३१ ।।

शिवचन्द्रौ मादनान्तस्पान्तं वह्निसमन्वितम् ।
शक्तिभिन्नं विन्दुनादकलाढ्यं वाग्भवम्प्रिये ।। १३२ ।।

सम्पत्प्रदाया भैरव्याः कामराजन्तदेव हि ।
सदाशिवस्य बीजन्तु महासिंहासनस्य च ।। १३३ ।।
एषा विद्या महेशानि वर्णितुं नैव शक्यते ।

शिवचन्द्रौ सकौ, मादनान्तं खः, पान्तं कः, शक्तिरेकारः, 'हसकान्तफरेमात्मबीजमि'ति **संहितोक्तेः** । सम्पत्प्रदा त्रिपुरभैरवी, सदाशिवबीजं शिवाद्यमिति **संहितोक्तेः** ।

उद्यत्सूर्यसहस्राभाञ्चन्द्रचूडान्त्रिनलोचनाम् ।
नानालङ्कारसुभगां सर्ववैरिनिकृन्तनीम् ।। १३४ ।।

---

१. सूत्रे 'परभृत्सारसाख्यौ चे' ति पाठदर्शनादत्र 'सारसाय' इति पाठः सम्भाव्यः । (सम्पा०)

स्रवद्रुधिरमुण्डालीकलितां रक्तवाससम्[1] ।
त्रिशूलण्डमरुं खङ्गन्तथा खेटकमेव च ।। १३५ ।।

पिनाकञ्च शरान्देवि पाशाङ्कुशयुगङ्क्रमात् ।
पुस्तकञ्चाक्षमालाञ्च शवसिंहासनस्थिताम् ।। १३६ ।।

दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये, तदाद्यधस्थयोरितरे, तदाद्यधस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम् ।

वामाञ्ज्येष्ठाञ्च रौद्रीञ्च कालीञ्च वरलोचने ।
कलाढ्याञ्च बलाढ्याञ्च यजेद्विकरणोम्प्रिये ।। १३७ ।।

बलप्रमथनीञ्चैव सर्वभूतान्तमावदेत् ।
दमनीञ्च तथा चोक्त्वा मनोन्मनि-पदान्विताम् ।। १३८ ।।

एवम्पीठं समभ्यर्च्य ततः सिंहासनं यजेत् ।
अघोरे वाग्भवन्तत्वं घोरे तु भुवनेश्वरी ।। १३९ ।।

घोरघोरतरे रमां सर्वतः सर्वसर्वेभ्यः[2] ।
नमस्ते रुद्ररूपेभ्यो ह्रीं श्रीं बीजयुगं लिखेत् ।। १४० ।।

त्रिंशद्भिश्च त्रिभिर्व्वर्णैर्विद्येयङ्कथिता प्रिये ।
अनेन मनुना देवि यजेत्सिंहासनम्बुधः ।। १४१ ।।

आदावङ्गावृतिर्द्देवि[3] द्विरावृत्याऽङ्गपूजनम् ।
रत्यादित्रयमभ्यर्च्य तथाऽनङ्गादिका यजेत् ।। १४२ ।।
मूलमस्येति शेषः ।

ब्राह्म्यादियुग्मं सम्पूज्य वसुपत्रेषु मातृकाः ।
भूबिम्बे लोकपालाँश्च सायुधान्परमेश्वरि ।। १४३ ।।
द्वितीयसिंहासनगाम्पूजयेद्रुद्रभैरवीम् ।

आसनपूजायां "वामायै नमः, एवं ज्येष्ठायै०, रौद्र्यै०, काल्यै०, कलविकरिण्यै०, बलविकरिण्यै०, बलप्रमथन्यै०,[4] सर्वभूतदमन्यै नम" इति पूर्वादि समभ्यर्च्य,

---

१. ख. ०वाससाम् । २. ख. सर्वसर्वोयः । ३. वृत्तिर्द्देवि । ४. ख. बलप्रथमिन्ये० ।

मध्ये—"मनोन्मन्यै नमः, अघोरे ऐं ॐ घोरे ह्रीं घोरतरे श्रीं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यो ह्रीं श्रीं दक्षिणसिंहासनाय नम" इत्यर्च्चयेत् । मूलस्य द्विरावृत्या षडङ्गानीति शेषः ।

डाकिनीराकिनीबीजे लाकिनी-काकिनीयुगात् ।। १४४ ।।

बीजे आकृष्य देवेशि योजयेच्चन्द्रसूर्ययोः ।
आद्यमैकारसंयुक्तमन्यदीकारसंयुतम् ।। १४५ ।।

शक्रस्वरान्वितन्देवि तार्त्तीयम्बीजमालिखेत् ।
विन्दुनादकलाक्रान्तन्त्रितयं गिरिसम्भवे ।। १४६ ।।

डाकिन्यादिबीजानि डरलादीनि, चन्द्रसूर्ययोर्बीजे सहौ, आकृष्य लाकिन्यादियुगाद्योजयेदित्यर्थः । आद्यषड्वर्णात्मकं कूटं डरलकसहैं, एवमग्रेऽपि कला-विसर्गस्तद्युक्त[1] तृतीयं कूटं "बिन्दुनादयुतञ्चाद्ययुग्ममन्त्यं विसर्गवदि"ति संहितोक्तेः ।

द्विरावृत्या षडङ्गानि विधाय परमेश्वरि ।
बालसूर्यप्रभान्देवीञ्जपाकुसुमसन्निभाम् ।। १४७ ।।

मुण्डमालावलीरम्याम्बालसूर्यसमांशुकाम् ।
सुवर्णकलशाकारपीनोन्नतपयोधराम् ।। १४८ ।।

पाशाङ्कुशौ पुस्तकञ्च तथा च जपमालिकाम् ।
एवन्ध्यात्वा यजेद्देवीम्मानसैरुपचारकैः ।। १४९ ।।

यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि त्रिकोणन्तत्पुटं लिखेत् ।
बहिरष्टदलं पद्मं रविपत्रं ततो लिखेत् ।। १५० ।।

तत्पुटं तस्य त्रिकोणस्य पुटं, षट्कोणमित्यर्थः ।

षडङ्गावरणन्देवि पूर्ववत् पूजयेच्छिवे ।
रत्यादित्रितयन्देव त्रिकोणे परिपूजयेत् ।। १५१ ।।

डाकिन्याद्यास्तु षट्कोणे वसुपत्रे ततः परम् ।
ब्राह्म्यादियुगलं पश्चाद्रविपत्रे ततः परम् ।। १५२ ।।

१. ख. तदुक्तं ।

बालायाः पीठशक्तीश्च वामाद्याः पूजयेत्क्रमात् ।
चतुरश्रे लोकपालान्सायुधान्परमेश्वरि ।। १५३ ।।

इयं षट्कूटा भैरवी ।

एतस्या एव विद्यायाः षड्वर्णान् क्रमतः स्थितान् ।
विपरीतान्वदेद्देवि विद्येयं भोगमोक्षदा ।। १५४ ।।
नित्याद्या भैरवी देवी रिपुमारविनाशिनी ।

विपरीतान् हसकलरडें इत्यादिक्रमात्पठितान्, इयं नित्याभैरवी-न्यासपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेदिति ।

हसाद्यं वाग्भवन्देवि हसकान्ते सुरेश्वरि ।। १५५ ।।

भूबीजम्भुवनेशानि द्वितीयम्बीजमुद्धृतम् ।
शिवचन्द्रौ महासेनो भुवनेश्वरभैरवी ।। १५६ ।।

भूबीजं लः, शिवो हः, चन्द्रः सः, औ स्वरूपम्, महासेनो विसर्गश्चेति तृतीयम्बीजम् ।

मध्यबीजेन देवेशि षड्दीर्घस्वरभेदिना ।
षडङ्गानि प्रविन्यस्य ध्यायेद्देवीञ्चतुर्भुजाम् ।। १५७ ।। इति ।

हसकल ह्रां हृदयाय नमः, हसकलह्रीं शिरसे स्वाहेत्यादि प्रयोगः ।

जपाकुसुमसङ्काशान्दाडिमीकुसुमप्रभाम् ।
चन्द्ररेखाजटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससम् ।। १५८ ।।

नानालङ्कारसुभगाम्पीनोन्नतघनस्तनीम् ।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्दधानाञ्च शिवां श्रयेत् ।। १५९ ।।

वामोर्द्ध्वादितदधोऽन्तमायुधध्यानम् । एतस्या यन्त्रमिति शेषः ।

षडङ्गावरणन्देवि पूर्ववत्परितो यजेत् ।
रत्याद्याः पूजयेद्देवि त्रिकोणे तदनन्तरम् ।। १६० ।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च पूज्यास्तत्रैव सुन्दरि ।
डाकिन्याद्यास्ततः पूज्या वसुपत्रे ततः परम् ।। १६१ ।।

डाकिन्याद्याः षट्कोणेषु ।

अनङ्गकुसुमाद्याश्च ब्राह्म्याद्यादियुगलन्ततः ।
भूबिम्बे लोकपालाँश्च बटुकाद्याँश्च पूजयेत् ॥ १६२ ॥

बटुकाद्यान् हेतुकाद्यान् ।

योगिनीनाञ्चतुःषष्टिम्पूजयेत्सुरवन्दिते ।
चतुःषष्टियोगिनीभ्यो नम इति प्रयोगः ।

अष्टपत्रेषु भूबिम्बे त्वेकोच्चारेण पूजयेत् ॥ १६३ ॥
अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमो लिखेत् ।

अनेन मनुनेति कोटियोगिन्यर्च्चायां **संहितोक्तेः** ।

भुवनेश्वरभैरव्या भेदान्तरमथोच्यते ॥ १६४ ॥
सहाद्या सैव देवेशि ततश्च कमलेश्वरी ।
ध्यानपूजादिकं सर्वमेतस्या इव पार्वति ॥ १६५ ॥
सम्पत्प्रदा भैरवीवद्विद्धि कौलेशभैरवीम्[1] ।
हसराद्या भैरवी सा त्रिषु बीजेषु[2] पार्वति ॥ १६६ ॥
इयन्तु सहराद्या स्यात्पूजाध्यानादिकन्तथा ।

तथा सम्पत्प्रदावत् ।

एतस्या एव विद्याया आद्यन्ते रेफवर्जिते ॥ १६७ ॥
तदेयम्परमेशानि नाम्ना सकलसिद्धिदा ।
सम्पत्प्रदाभैरवीवद्ध्यानपूजादिकम्प्रिये ॥ १६८ ॥

एतस्याः कौलेशभैरव्याः, एतच्छब्दस्य प्रत्यासन्नपरत्वात् । सम्पत्प्रदायास्तु कौलेश्या विच्छेदात् ।

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—**

उत्तरास्येन देवेशि मयाऽद्यापि प्रजप्यते ।
महासिंहासनगता भैरवी डामरेश्वरी ॥ १६९ ॥
पूर्वोक्तभैरवीदेव्याः कामकूटे परां शिवम् ।
हित्वोच्चरेत्तदा विद्या महासिंहासनेश्वरी ॥ १७० ॥

१. क. कौलेस० । २. ख. बीजैषु ।

उत्तराम्नायविद्येशी भोगमोक्षफलप्रदा ।

पूर्वोक्त इति त्रिपुरभैरव्याः । कामकूटे शिवं हकारं हित्वा परां ईकामुच्चरेत् । तेन हकाररहितं द्वितीयकूटं ज्ञेयम् ।

तथा—बन्धूककुसुमाभासाम्पञ्चमुण्डाधिवासिनीम् ।
स्फुरच्चन्द्रकलारत्नमुकुटाम्मुण्डमालिनीम् ।। १७१ ।।

त्रिनेत्रां रक्तवसनां पीनोन्नतघनस्तनीम् ।
पुस्तकञ्चाक्षमालाञ्च वरदञ्चाऽभयङ् क्रमात् ।। १७२ ।।

दधतीं संस्मरेन्नित्यमुत्तराम्नायमानिताम् ।
मादनान्तफरेमात्ममहाचण्डं समुल्लिखेत् ।। १७३ ।।

योगेश्वरि च मुग्धाक्षि विद्येयं कालिका मता ।
नवाक्षरीं[1] महेशानि स्मरेदुत्तरनायिकाम् ।। १७४ ।।

अनया विद्यया देवी सम्यक्सम्मानिता भवेत् ।
न्यासपूजादिकं सर्वं त्रिपुरेशीव सुन्दरि ।। १७५ ।।

महासम्पत्प्रदा देवि महाभयविनाशिनी ।

मादनान्तमिति-मादनान्तं खः, तेन ख्फ्रें:, महाचण्डयोगेश्वरीति स्वरूपम्, मुग्धाक्षीति देवीसम्बुद्धिर्नवाक्षरत्वात् । डामरभैरव्युपासकेनेयमपि जप्या ।

तथा—डामरेश्वरभैरव्याः कादिं हित्वा सुरेश्वरि ।
विन्दुनादकलाक्रान्तं शक्तिबीजं समुच्चरेत् ।। १७६ ।।

भयविध्वंसिनी नाम भैरवी परिकोर्त्तिता ।
उत्तराम्नायगम्भीरा डामरेशीव पूजयेत् ।। १७७ ।।

**अस्यार्थः**—डामरेश्वरभैरव्याः शक्तिकूटे कादिं विसर्गं हित्वा विन्दुना युतमुच्चरेदिति ।

तथा—हसखान्ते फरेमात्मबीजं सँल्लिख्य मन्त्रवित् ।
भयविध्वंसिनी नाम भैरव्या द्वयमालिखेत् ।। १७८ ।।

---

१. ख. नवाक्षरी ।

मध्यमञ्चान्तिमञ्चैव विद्येयम्भोगमोक्षदा ।
अघोरभैरवी देवी श्यामा मुण्डस्रगाकुला ।। १७९ ।।

दक्षिणोत्तरयोः प्रौढा पञ्चशुण्डाधिवासिनी ।
पुस्तकञ्चाक्षमालाञ्च पाशञ्चैवाऽङ्कुशन्तथा ।। १८० ।।

खट्वाङ्गंडमरुञ्चैव कपालं शूलमेव च ।
दधती[1] परमेशानि षट्कूटामिव पूजयेत् ।। १८१ ।।

।। अथ भैरवीस्तोत्रम् ।।

ब्रह्मादयः स्तुतिशतैरपि सूक्ष्मरूपा-
ञ्जानन्ति नैव जगदादिमनादिमूर्त्तिम् ।
तस्माद्वयङ्कुचनतान्तव कुङ्कुमाभाम्,
स्थूलां स्तुमः सकलवाङ्मयमातृभूताम् ।। १८२ ।।

सद्यःसमुद्यतसहस्रदिवाकराभां,
विद्याक्षसूत्रवरदाभयचिह्नहस्ताम् ।
नेत्रोत्पलैस्त्रिभिरलङ्कृतवक्त्रपद्मा-
न्त्वान्तारहाररुचिरान्त्रिपुरे भजामः ।। १८३ ।।

सिन्दूरपूररुचिराङ्कुचभारनम्र—
ञ्जन्मान्तरेषु कृतपुण्यफलैकगम्यम् ।
अन्योन्यभेदकलहाकुलमानसास्ते,
जानन्ति किञ्जडधियस्तव रूपमम्ब ।। १८४ ।।

स्थूलां वदन्ति मुनयः श्रुतयो गृणन्ति,[2]
सूक्ष्मां वदन्ति मनसामधिवासमन्ये ।
त्वाम्मूलमाहुरपरे जगताम्भवानि,
मन्यामहे वयमपारकृपाम्बुराशिम् ।। १८५ ।।

चन्द्रावतंसकलितां शरदिन्दुशुभ्रा-
म्पञ्चाशदक्षरमयीं हृदि भावयन्तीम् ।

१. क. दधती । २. क. गृहांति ।

त्वाम्पुस्तकञ्जपवटीममृताढ्यकुम्भं,
व्याख्याञ्च हस्तकमलैर्दधतीन्त्रिनेत्राम् ।। १८६ ।।

शम्भुस्त्वमद्रितनयाकलितार्द्ध भागो
विष्णुस्त्वमम्ब कमलापरिरब्धदेहः ।
पद्मोद्भवस्त्वमसि वागधिवासभूमि-
स्तेषां क्रियाश्च जगति त्रिपुरे त्वमेव ।। १८७ ।।

आश्रित्य वाग्भवभवाँश्चतुरः परादीन्,
भावान्पदेषु विहितान्समुदीरयन्ति ।
कण्ठादिभिश्च करणैः परदेवतान्त्वां,
संविन्मयीं हृदि कदाऽपि न विस्मरामि ।। १८८ ।।

आकुञ्च्य वायुमवजित्य च वैरिषट्क-
मालोक्य निश्चलधिया निजनासिकाग्रम् ।
ध्यायन्ति मूर्द्ध्नि कलितेन्दुकलावतंस-
न्त्वद्रूपमम्ब कृतिनस्तरुणार्कमित्रम् ।। १८९ ।।

त्वम्प्राप्य मन्मथरिपोर्[1]र्वपुरर्द्ध भागं,
सृष्टिङ्करोषि जगतामिति वेदवादः ।
सत्यन्तदद्रितनये जगदेकमात-
र्नोचेदशेषजगतः स्थितिरेव न स्यात् ।। १९० ।।

पूजां विधाय कुसुमैः सुरपादपाना-
म्पीठे तवाऽम्ब कनकाचलगह्वरेषु ।
गायन्ति सिद्धवनिताः सह किन्नरीभि-
रास्वादितासवरसारुणनेत्रपद्माम् ।। १९१ ।।

विद्युद्विलासवपुषः श्रियमुद्वहन्तीं,
यान्तीं स्ववासभवनाच्छिवराजधानीम् ।
सौषुम्णवर्त्मकमलानि विकाशयन्ती-
न्देवीम्भजे हृदि परामृतसिक्तगात्रीम् ।। १९२ ।।

१. ख. मन्मथरियो ।

आनन्दजन्मभवनम्भवनं श्रुतीना-
ञ्चैतन्यमात्रतनुमम्ब तवाऽऽश्रयामि ।
ब्रह्मेशविष्णुभिरुपासितपादपद्मां,
सौभाग्यजन्मवसतिन्त्रिपुरे यथावत् ।। १९३ ।।

शब्दार्थभाविभवनं सृजतीन्दुरूपा,
या तद्बिभर्त्ति पुनरर्क्कतनुः स्वशक्त्या ।
वह्न्यात्मिका हरति तत्सकलं युगान्ते,
तां शारदाम्मनसि जातु न विस्मरामि ।। १९४ ।।

नारायणीति नरकार्णवतारिणीति,
गौरीति खेदशमनीति सरस्वतीति ।
ज्ञानप्रदेति नयनत्रयभूषितेति,
त्वामद्रिराजतनये बहुधा वदन्ति ।। १९५ ।।

ये स्तुवन्ति जगन्मातः श्लोकैर्द्वादशभिः क्रमात् ।
त्वामनुप्राप्य वाक्सिद्धिम्प्राप्नुयुस्ते नराः श्रियम् ।। १९६ ।।

।। इति भैरवीस्तोत्रम् ।।

।। अथाऽस्याः कवचम् ।।

श्रीपार्वत्युवाच—

भैरव्याः सकला विद्याः श्रुताश्चाऽधिगता मया ।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं यत्पुरोदितम् ।। १९७ ।।

त्रैलोक्यविजयन्नाम शस्त्रास्त्रविनिवारकम् ।
त्वत्तः परतरो नाथ कः कृपाङ्कर्त्तुमर्हति ।। १९८ ।।

ईश्वर उवाच—

शृणु पार्वति वक्ष्यामि सुन्दरि प्राणवल्लभे ।
त्रैलोक्यविजयन्नाम शस्त्रास्त्रविनिवारकम् ।। १९९ ।।

पठित्वा धारयित्वा च त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
जघान सकलान्दैत्यान् यद्धृत्वा मधुसूदनः ।। २०० ।।

ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते यद्धृत्वाऽभीष्टदायकः ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि वासवस्त्रिदशेश्वरः ।। २०१ ।।

यस्य प्रसादादीशोऽहन्त्रैलोक्यविजयी विभुः ।
न देयम्परशिष्येभ्योऽसाधकेभ्यः कदाचन ।। २०२ ।।

पुत्रेभ्यः किमथाऽन्येभ्यो दत्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।
भैरव्याः कवचस्याऽपि दक्षिणामूर्त्तिरेव च ।। २०३ ।।

विराट्छन्दो जगद्धात्री देवता कालभैरवी ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।। २०४ ।।

अधरो बिन्दुमानाद्यः कामः शक्रशशीयुतः ।
भृगुर्मनुस्वरयुतः सर्गी बीजत्रयात्मिका ।। २०५ ।।

बालैषा मे शिरः पातु बिन्दुनादयुताऽपि सा ।
भालम्पातु कुमारीशा सर्गहीनकुमारिका ।। २०६ ।।

दृशौ पातु च वाग्बीजङ्कर्णयुग्मं सदाऽवतु ।
कामबीजं सदा पातु घ्राणयुग्मम्पराऽवतु ।। २०७ ।।

सरस्वतीप्रदा बाला जिह्वाम्पातु शुचिप्रभा ।
ह्स्रैँ कण्ठं हसकलरीं स्कन्धं[1] पातु हसौर्भुजौ ।। २०८ ।।

पञ्चमी भैरवी पातु करौ हसैं सदाऽवतु ।
हृदयं [मे] हसकलीं वक्षः पातु हसौः स्तनौ ।। २०९ ।।

पातु सा भैरवी देवी चैतन्यरूपिणी मम ।
हस्रैं पातु सदा पार्श्वयुग्मं हसकलरीं सदा ।। २१० ।।

कुक्षिम्पातु हस्रैं[2] मध्यं भैरवी भुवि दुर्ल्लभा ।
ऐं ईं औं मध्यदेशं च बीजविद्या सदाऽवतु ।। २११ ।।

हसैः पृष्ठं सदा पातु नाभिं हसकलरीं सदा ।
पातु हसौः कटौ पातु षट्कूटा भैरवी मम ।। २१२ ।।

---

१. ख स्कन्दं ।   २. ख ह्स्रैः ।

ह्स्रैं सक्थिनीं[1] पातु हसकलरीं सदाऽवतु ।
गुह्यदेशं ह्स्रौं पातु जानुनी भैरवी मम ।। २१३ ।।

सम्पत्प्रदा सदा पातु हैं जङ्घे ह्क्लीं पदम् ।
पातु हसौः सर्वदेहं भैरवी सर्वदाऽवतु ।। २१४ ।।

हसैं मामवतु प्राच्यां हसक्लीं पावकेऽवतु ।
हसौर्मे दक्षिणे पातु भैरवी चक्रसंस्थिता ।। २१५ ।।

ह्लीं क्लीं ब्लें मां सदा पातु नैर्ऋत्यां चक्रभैरवी ।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु वायव्ये हूं हूं पातु सदोत्तरे ।। २१६ ।।

ह्लीं ह्लीं पातु सदैशान्ये दक्षिणे कालिकेऽवतु ।
ऊर्द्ध्वं प्रागुक्तबीजानि रक्षन्तु मामधःस्थले ।। २१७ ।।

दिग्विदिक्ष्ववतु स्वाहा कालिका खड्गधारिणी ।
ॐ ह्लीं स्त्रीं हूं फट् सा तारा सर्वत्र माऽवतु ।। २१८ ।।

सङ्ग्रामे कानने दुर्गे तोयतारङ्गदुस्तरे ।
खड्गकर्तृधरा सोग्रा सदा माम्परिरक्षतु ।। २१९ ।।

इति ते कथितन्देवि सारात्सारतरम्महत् ।
त्रैलोक्यविजयन्नाम कवचम्परमाद्भुतम् ।। २२० ।।

यः पठेत्प्रयतो भूत्वा पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
स्पर्द्धामुद्धूय भवने लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ।। २२१ ।।

यः शत्रुभीतो रणकातरो वा,
भीते वने वा सलिलालये वा ।
वादे सभायाम्प्रतिवादिनो वा,
राज्ञः प्रकोपाद् ग्रहसङ्कुलाद्वा ।। २२२ ।।

प्रचण्डदण्डाक्षमनाश्च भीतो,
गुरोः प्रकोपादपि कृच्छ्रसाध्यात् ।

---

१. क शक्थि ।

अभ्यर्च्य देवीम्प्रपठेत्त्रिसन्ध्यं,
स स्यान्महेशप्रतिमो जयी च २२३ ॥

त्रैलोक्यविजयन्नाम कवचम्मन्मुखोदितम् ।
विलिख्य भूर्ज्जे गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥ २२४ ॥

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
तद्गात्रम्प्राप्य शस्त्राणि भवन्ति कुसुमानि च ॥ २२५ ॥

लक्ष्मीः सरस्वती तस्य निवसेद्भवने मुखे ।
एतत्कवचमज्ञात्वा यो जपेद्भैरवीम्पराम् ॥ २२६ ॥

बली वा प्रजपेद्विद्वान्दरिद्रो मृत्युमाप्नुयात् ।

**इति रुद्रयामले त्रैलोक्यविजयन्नाम भैरवीकवचम् ॥**

**इति गोस्वामिजगन्निवासात्मज-श्रीगोस्वामि-**
**शिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**पञ्चचत्वारिंशस्तरङ्गः ॥ ४५ ॥**

—•—

## [ षट्चत्वारिंशस्तरङ्गः ]

### ।। अथाऽन्नपूर्णाविधानम् ।।

**तत्र श्रीज्ञानार्णवे—**

तारञ्च भुवनेशानीं श्रीबीजङ् कामराजकम् ।
हृदन्ते भगवत्यर्णान्माहेश्वरिपदं वदेत् ।। १ ।।
अन्नपूर्णेऽग्निजायाञ्च विद्येयं विंशदक्षरी ।

तारः प्रणवः, भुवनेशी मायाबीजं, हृन्नमः, अग्निजाया स्वाहाकारः, भगवत्यादिपदत्रयं स्वरूपम् । अत्र माहेश्वर्यन्नपूर्णेति पदयोर्न सन्धिः विंशदक्षरीत्युक्तेः ।

तथा—ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्याऽनुष्टुब्छन्दोऽभिधीयते ।
अन्नपूर्णेश्वरी देवी देवता परिकीर्त्तिता ।। २ ।।

बीजं भुवनेशानी श्रीबीजं शक्तिरुच्यते ।
कीलकङ्कामबीजं स्यात्षडङ्गानि ततः परम् ।। ३ ।।

**दक्षिणामूर्त्तिः—**

षड्दीर्घस्वरसम्भिन्नां हृल्लेखाङ्कुरु पार्वति ।
एभिरङ्गानि विन्यस्य वर्णन्यासमथाचरेत् ।। ४ ।।
ब्रह्मरन्ध्रे च सीमन्ते भालभ्रूमध्ययोर्नसि ।
वक्त्रे कण्ठे च हृदये कुक्षिनाभिषु लिङ्गके ।। ५ ।।
आधारे स्फिग्द्वये चोरुद्वये जानुद्वये तथा ।
पादयोर्देवदेवेशि पदन्यासन्ततश्चरेत् ।। ६ ।।
नवद्वारेषु देवेषु पदन्यास उदाहृतः ।

**ज्ञानार्णवे तु—**

पदानि नव देवेशि नवद्वारेषु विन्यसेत् ।
मूर्द्धादिगुदपर्यन्तम्पुनस्तेषु वरानने ।। ७ ।।
गुदादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्पादानान्नवकन्न्यसेत् ।

गुदः पर्यन्तो दशमो येषां ब्रह्मरन्ध्रादीनां द्वाराणामेवं ब्रह्मरन्ध्रो गुदादीनामित्यर्थः । तेन ब्रह्मरन्ध्रादिलिङ्गपर्यन्तं नवपदानि विन्यस्य, पुनर्गुदादिदक्षनेत्रान्तानि तान्येव पदानि न्यसनीयानीति ।

ब्रह्मरन्ध्रास्यहृदयमूलाधारेष्वनुक्रमात् । ।। ८ ।।
चतुर्बीजानि विन्यस्य स्वरेष्वन्यान्प्रविन्यसेत् ।
गोलकञ्च ततो देवि विन्यसेद्विधिवत्प्रिये ।। ९ ।।

गोलकं व्यापकं "मूलेन व्यापकन्यासं कुर्याद्देहस्य सिद्धये" इति **दक्षिणाभर्त्र्येकवाक्यात्** । स्वरेषु स्वरन्यासस्थानेषु ।

तप्तकाञ्चनसङ्काशाम्बालेन्दुकृतशेखराम् ।
नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटाङ्कुङ्कुमारुणाम् ।। १० ।।
चित्रवस्त्रपरीधानां शफराक्षीन्त्रिलोचनाम् ।
सुवर्णकलशाकारपीनोन्नतघनस्तनीम् ।। ११ ।।
नृत्यन्तमीशमनिशन्दृष्टानन्दमयी[1]म्पराम् ।
सानन्दमुखलोलाक्षीम्मेखलाढ्यनितम्बिनीम् ।। १२ ।।
अन्नदानरतान्नित्यम्भूमिश्रीभ्यान्नमस्कृताम् ।

अन्नदानरतामित्यनेन वामहस्ते पात्रं, दक्षिणे दर्वीं धृतवतीति ज्ञेयम् ।

अथवा दक्षिणे हस्ते दर्वीं ध्यायेत्सुवर्णजाम् ।
दुग्धान्नभरितम्पात्रन्दिव्यरत्नविभूषितम् ।। १३ ।।

वामहस्ते महेशानीति **संहितोक्तेः** ।

**ज्ञानार्णवे**—
त्रिकोणञ्च चतुःपत्रं वसुपत्रन्ततः परम् ।
कलापत्रञ्च भूबिम्बं सचतुर्द्वारमालिखेत् ।। १४ ।।

भूबिम्बं चतुरस्रत्रयात्मकम् ।

चतुरश्रत्रयङ्कुर्याञ्चतुर्द्वारोपशोभितम् ।

इति **सम्मोहनपञ्चरात्रात्** । एतत्सर्वदैवतपरं ज्ञेयम् ।

सर्वेष्वेवं विधातव्यं पूजाचक्रेषु भूगृहम् ।। १५ ।।

इति स्वयमभिधानात् ।

सिंहासनस्य परितः पीठदेवीः समच्चर्येत् ।
सिंहासने दक्षिणे तु कथिताः पीठनायिकाः ।। १६ ।।

---

१. ख. ० दृष्ट्वानन्द० ।

ता एव पूजिताः पीठे वामाद्याः परमेश्वरि ।

वामाद्याः शैवपीठशक्तयः ।

अथवा—समभ्यर्च्य जयाद्यास्तु पीठशक्तीर्नव क्रमात् ।
पीठञ्च पीठमन्त्रेण हृल्लेखाद्याः[1] प्रपूजयेत् ॥ १७ ॥

इति **सम्मोहनतन्त्रवचनात्** ।

जयादिनवशक्तीश्च पूजयेत्तदनन्तरम् ।

इति **सारसङ्ग्रहवचनाच्च** पूर्वोक्तभुवनेश्वरीपीठस्य जयादिनवशक्तय[2]स्तत्पीठमन्त्रश्चग्राह्यः ।

तथा— एवन्ध्यात्वा यजेद्देवीं षडङ्गावरणं यजेत् ।
तारम्प्रासादबीजञ्च हृच्छिवाय ततः परम् ॥ १८ ॥

सप्ताक्षरी महाविद्या अनया देवि पूजयेत् ।
गोक्षीरधामधवलम्पञ्चवक्त्रन्त्रिलोचनम् ॥ १९ ॥

प्रसन्नवदनं शान्तन्नीलकण्ठविराजितम् ।
कपर्द्दिनं[3] स्फुरत्सर्पभूषणम्मलसन्निभम् ॥ २० ॥

नृत्यन्तमीश्वरन्देवन्त्रिकोणाग्रे महेश्वरि ।
ॐ नमः पदमाभाष्य ततो भगवते पदम् ॥ २१ ॥

ततो वाराहरूपाय[4] भूर्भुवःस्वःपतिस्तथा ।
ङेन्तश्च भूपतित्वञ्च मे देहीति ददापय ॥ २२ ॥

वह्निजायान्वितो मन्त्रो वराहस्य वरानने ।
अनया विद्यया देवि वामकोणे प्रपूजयेत् ॥ २३ ॥

ॐ नमः पदमाभाष्य ङेन्तन्नारायणं लिखेत् ।
नारायणन्दक्षकोणे क्रमेण परिपूजयेत् ॥ २४ ॥

वामदक्षिणयोः पूज्ये भूश्रियौ परमेश्वरि ।
एतेन मनुना देवि कथयामि तवाऽनघे ॥ २५ ॥

---

१. क. हृल्लेखायाः । २. ख. ०शक्तिय । ३. क. कपर्द्दिन । ४. ख. वराह० ।

अन्नम्मह्यम्पदञ्चान्नम्मे देह्यन्नाधिपान्तिके ।
तये ममान्नं सँल्लिख्य प्रदापय ततः परम् ।। २६ ।।

वह्निजायान्वितो मन्त्रः सम्पुटीकृत्य पूजयेत् ।
ग्लौमात्मकेन रमया वामदक्षिणयोः क्रमात् ।। २७ ।।

ततश्चतुर्द्दले पूज्याः पश्चिमादिक्रमेण तु ।
तारेण परविद्याञ्च भुवनेशीन्तदात्मना ।। २८ ।।

कमलां रमया भद्रे कामेन सुभगां यजेत् ।
वसुपत्रे महेशानि ब्रह्माद्याः पश्चिमादितः ।। २९ ।।

षोडशारे महेशानि चन्द्रमण्डलरूपिणीः ।
कलाः षोडश सम्पूज्याः पश्चिमादिक्रमेण हि ।। ३० ।।

अमृता मानदा पुष्टिस्तुष्टिः प्रीती रतिस्तथा ।
ह्रीश्च श्रीश्च स्वधा रात्रिर्ज्योत्स्ना हैमवती तथा ।। ३१ ।।

छाया च पूर्णिमा नित्या अमावास्या तु षोडशी ।
शेषवर्णैः प्रपूज्याश्च अन्नपूर्णान्तिशब्दकाः ।। ३२ ।।
चतुरस्रे लोकपालान् क्रमेण परिपूजयेदिति ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्रातःकृत्यादिपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये—श्रीअन्नपूर्णायै देवतायै नमः, गुह्ये—ह्रीँ बीजाय नमः, पादयोः—श्रीँ शक्तये०, नाभौ क्लीं कीलकाय नम" इति विन्यस्य ममान्नसमृद्धये जपे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा "ह्राँ हृदयाय नमः, ह्रीँ शिरसे स्वाहा, ह्रूँ शिखायै वषट्, ह्रैँ कवचाय हुँ, ह्रौँ नेत्राय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट् । इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तकरयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य,

"शिरसि—ॐ नमः, सीमन्ते—ह्रीँ०, भाले—श्रीं०, भ्रूमध्ये—क्लीं०,

नासायां—नं०, मुखे—मों०, कण्ठे—भं०,[1] हृदि—गं०, उदरे—वं०, नाभौ—तिं०, लिङ्गे—मां०, मूलाधारे—हें०, दक्षस्फिचि—श्वं०, वामे—रिं०, दक्षोरौ—अं०, वामे—न्नं०, दक्षजानुनि—पूँ, वामे—०र्णों, दक्षपादे—स्वां०, वामे हां०"

**इति वर्णन्यासः ।**

ततो ब्रह्मरन्ध्रे—"ॐ नमः, दक्षनेत्रे - ह्रीं०, वामे श्रीं०, दक्षश्रोत्रे—क्लीँ०, वामे—नमो नमः, दक्षनासारन्ध्रे—भगवति नमः, वामे—माहेश्वरि नमः, मुखे—अन्नपूर्णे नमः, लिङ्गे—स्वाहा नमः" इति विन्यस्यैतान्येव पदानि गुदलिङ्गमुखवामदक्षिणनासारन्ध्रवामदक्षिणश्रोत्रवामदक्षनेत्रेषु न्यसेदिति **न्यासः** । ततो ब्रह्मरन्ध्रे—"ॐ नमः, मुखे—ह्रीँ०, हृदये-श्रीं, मूलाधारे-क्लीं०" इति विन्यस्य, शिष्टषोडशवर्णान् षोडशस्वरन्यासस्थानेषु न्यसेत् । **इति पदन्यासः ।**

ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तभुवनेश्वरीपीठं समभ्यर्च्याऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणाग्रे—"ॐ हौं नमः शिवाय शिवाय नमः" इति मन्त्रेण नृत्यन्तं शिवं सम्पूज्य, वामकोणे—"भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा वराहाय नमः" इति वराहं सम्पूज्य, दक्षकोणे—"ॐ नमो नारायणाय नम" इति नारायणं सम्पूज्य, त्रिकोणाभ्यन्तरे देव्या वामभागे—"ग्लौं अन्नं मह्यमन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौं भूम्यै नमः", दक्षे—"श्रीं अन्नं मह्यम न्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रियै नम" इति सम्पूज्य, चतुर्द्दले देव्यग्रादि—"ॐ परविद्यायै नमः, ह्रीँ भुवनेश्वर्यै०, श्रीँ कमलायै०, क्लीँ सुभगायै नमः" ।

इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु—ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य, षोडशदलेषु देव्यग्रादि-प्रादक्षिण्येन "नँ अमृतायै अन्नपूर्णायै नमः, मों मानदायै अन्न०, भँ पुष्टयै अ०, गं तुष्टयै अ०, वं प्रीत्यै अ०, तिं रत्यै अ०, मां ह्रियै अ०, हें श्रियै अ०, श्वं स्वधायै अ०, रिं रात्र्यै अ०, अं ज्योत्स्नायै अ०, न्नं हैमवत्यै अ०, पूं छायायै अ०, र्णों पूर्णिमायै अ०, स्वां नित्यायै अ०, हां अमावास्यायै अ०", तद्बहिश्चतुरश्रे प्राग्वदिन्द्रादीन्सम्पूज्य शेषं समापयेदिति ।

१. ख. मं ।

दक्षिणामूर्त्तिः—

लक्षञ्जपेत्सनियमो दशांशेन तु होमयेत् ।
रम्ययायससर्पिर्भ्यां सिद्धिदा भवति ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

एष कृतयुगजपः ।

सारसङ्ग्रहे—

तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः ।
अन्नपूर्णेश्वरी देवी पूजिताऽन्नसुवर्णदा ॥ ३४ ॥

अनया विद्यया जातः कुबेरो धननायकः ।
अन्नपूर्णेश्वरी नाम सर्वसम्पत्समृद्धिदा ॥ ३५ ॥

तथा— बीजहीनेयमेव स्यात्षोडशार्णा[1] तथाऽपरा ।
मायाद्या साऽथ ताराद्या मता सप्तदशाक्षरी ॥ ३६ ॥

मायातारादिका चाऽन्या गदिताऽष्टादशार्णका ।
मुन्याद्याः पूर्वमुदिता माययाऽङ्कक्रिया मता ॥ ३७ ॥

अर्चनाङ्गेन्द्रवज्राद्यै[2]ः साधयेत्पूर्ववच्च ताः ।

भगवति भवरोगात्पीडितन्दुःकृतोत्थात्,
सुतदुहितृकलत्रोपद्रवेणाऽनुयातम् ।
विलसदमृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तम्,
सकलभुवनमातस्त्राहि मामों नमस्ते ॥ ३८ ॥

माहेश्वरीमाश्रितकल्पवल्ली-
महम्भवच्छेदकरीम्भवानीम् ।
क्षुधार्त्तजायातनयाद्युपेत-
स्त्वामन्नपूर्णे शरणम्प्रपद्ये ॥ ३९ ॥

दारिद्र्यदावानलदह्यमानं,
स्वाहेऽन्नपूर्णे गिरिराजकन्ये ।

१. ख. स्यात्षोडशार्णा । २. ख. अर्चनागेन्द्र० ।

कृपाम्बुधौ मज्जय मान्त्वदीये,
त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिम् ।। ४० ।।

इत्यन्नपूर्णास्तुतिरत्नमेत-
च्छ्लोकत्रयं यः पठतीह भक्त्या ।
तस्मै ददात्यन्नसमृद्धिमम्बा
श्रियञ्च विद्याञ्च यशश्च भुक्तिम्[1] ।। ४१ ।।

।। इति[2] अन्नपूर्णास्तुतिः ।।

नमः कल्याणदे देवि नमः शङ्करवल्लभे ।
नमो भुक्तिप्रदे देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तुते ।। ४२ ।।

नमो मायागृहीताङ्गि नमः शङ्करवल्लभे ।
माहेश्वरि नमऽस्तेस्तु अन्नपूर्णे नमोऽस्तुते ।। ४३ ।।

अन्नपूर्णे हव्यवाहपत्नीरूपे हरप्रिये ।
कलाकाष्ठास्वरूपे च अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।। ४४ ।।

उदितभानुसहस्राभे नयनत्रयभूषिते ।
चन्द्रचूडे महादेवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।। ४५ ।।

विचित्रवसने देवि अन्नदानरतेऽनघे ।
शिवनृत्यकृतामोदे अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।। ४६ ।।

साधकाभीष्टदे देवि भवदुःखविनाशिनि ।
कुचभारनते देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।। ४७ ।।

षट्कोणपद्ममध्यस्थषडङ्गयुवतीमये ।
ब्रह्माण्यादिस्वरूपे च अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।। ४८ ।।

देवि चन्द्रकृतापीठे सर्वसाम्राज्यदायिनि ।
सर्वानन्दकरे देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।। ४९ ।।

---

१. ख. मुक्तिम् । २. ख. अति ।

इन्द्राद्यञ्चितपादाब्जे रुद्रादिरूपधारिणि ।
सर्वसम्पत्प्रदे देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।। ५० ।।

पूजाकाले पठेद्यस्तु स्तोत्रमेतत्समाहितः ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नाऽत्र संशयः ।। ५१ ।।

प्रातःकाले पठेद्यस्तु मन्त्रजापपुरस्सरम् ।
तस्यैवाऽन्नसमृद्धिः स्याद्वर्द्धमाना दिने दिने ।। ५२ ।।

यस्मै कस्मै न दातव्यन्न प्रकाश्यङ् कदाचन ।
प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ।। ५३ ।।

**।। इत्यन्नपूर्णास्तोत्रम् ।।**

**।। अथाऽस्याः कवचम् ।।**

**देव्युवाच—**

कथिता ह्यन्नपूर्णाया या विद्यास्ताः सुदुर्लभाः ।
कृपया कथिताः सर्वाः श्रुताश्चाधिगता मया ।। ५४ ।।

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचम्मन्त्रविग्रहम् ।
शृणु पार्वति वक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ।। ५५ ।।

ब्रह्मविद्यास्वरूपञ्च महदैश्वर्य्यदायकम् ।
पठनाद्धारणान्मर्त्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ।। ५६ ।।

त्रैलोक्यरक्षणस्याऽस्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराड्देवता च अन्नपूर्णा समृद्धिदा ।। ५७ ।।

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
ह्रीँ नमो भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदन्ततः ।। ५८ ।।

अन्नपूर्णे ततः स्वाहा चैषा सप्तदशाक्षरी ।
पातु मामन्नपूर्णा सा व्याख्याता भुवनत्रये ।। ५९ ।।

विमाया प्रणवाद्यैषा तथा सप्तदशाक्षरी ।
पात्वन्नपूर्णा सर्वाङ्गे रत्नकुम्भान्नपात्रदा ।। ६० ।।

श्रीबीजाद्या तथैवैषा द्विरन्ध्रार्णा तथा मुखम् ।
प्रणवाद्या भ्रुवौ पातु कण्ठं वाग्बीजपूर्विका ॥ ६१ ॥

विमाया तु तथा चैषा हृदयन्तु महेश्वरी[1] ।
ऐँ ह्रीँ श्रीँ च नमोऽन्ते च तथा भगवतिपदन्ततः ॥ ६२ ॥

माहेश्वरी पदञ्चान्नपूर्णे स्वाहेति पातु मे ।
नाभिमेकोनविंशार्णा[2] पायान्माहेश्वरी सदा ॥ ६३ ॥

तारम्माया रमा कामः षोडशार्णा ततः परम् ।
शिरःस्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिकाऽपरा[3] ॥ ६४ ॥

अन्नपूर्णा महाविद्या ह्रीँ पातु भुवनेश्वरी ।
शिरो ह्रीँ ह्रीँ तथा क्लीँ च त्रिपुटा पातु मे गुदम् ॥ ६५ ॥

षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि पुनन्तु माम् ।
इन्द्रो माम्पातु पूर्वे च वह्निकोणेऽनलेऽवतु ॥ ६५ ॥

यमो मे दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यान्निर्ऋतिश्च माम् ।
पश्चिमे वरुणः पातु वायव्यम्पवनोऽवतु ॥ ६६ ॥

कुबेरश्चोत्तरे पातु ऐशान्यां शङ्करोऽवतु ।
ऊर्द्ध्वाधः पातु सततम्ब्रह्माऽनन्तो यथाक्रमात् ॥ ६७ ॥

वज्राद्याश्चायुधाः पान्तु दशदिक्षु यथाक्रमात् ।
इति ते कथितम्पुण्यन्त्रैलोक्यरक्षणम्परम् ॥ ६८ ॥

यद्धृत्वा पठनाद्देवाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च धारणात्पठनाद्यतः ॥ ६९ ॥

सृजत्यवति हन्त्येव कल्पे कल्पे पृथक् पृथक् ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकन्देव्यै मूलेनैव पठेत्ततः ॥ ७० ॥

---

१. ख. महेश्वरि । २. ख. नाभिमेकोर्णं० । ३. ०कात्परा ।

युगायुतकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
वाणी वक्त्रे वसेत्तस्य सत्यं सत्यन्न संशयः ।। ७१ ।।

अष्टोत्तरशतञ्चाऽस्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थान्धारयेद्यदि ।। ७२ ।।

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि पुण्यवतां वरः ।
ब्रह्मास्त्रादीनि सर्वाणि तद्गात्रं प्राप्य पार्वति ।। ७३ ।।

माल्यानि कुसुमान्येव सुखदानि भवन्ति हि ।

**।। इति भैरवीतन्त्रे अन्नपूर्णाकवचम् ।।**

**सारसङ्ग्रहे—**

अन्नप्रदाख्यमन्त्रस्य पूर्वोक्तस्योच्यते विधिः ।
ऋषिर्ब्रह्मा समाख्यातश्छन्दश्चाऽतिकृतिर्मतम् ।। ७४ ।।

देवते भूश्रियौ प्रोक्ते धनधान्यप्रदे शुभे ।
वेदेषु षण्मुनिद्वन्द्वमितैर्मन्त्रार्णकैः पृथक् ।। ७५ ।।

पञ्चाङ्गानि मनोः कुर्याज्जातियुक्तानि मन्त्रवित् ।

क्षीराब्धौ रजतौघवप्रकनकद्वीपे सुराढ्ये शुभे,
कल्पद्रुव्रजशोभिते मणिमये सद्वित्तपस्याऽग्रतः ।
आसीने वसुधाश्रियौ धनसमूहान्संसृजन्त्यौ मुहु-
र्भक्ताय प्रविचिन्तयेद्दिनमुखे धान्यान्नसम्पत्तये ।। ७६ ।।

आवाह्य वैष्णवे पीठे देवीं गन्धादिभिर्यजेत् ।
पुराङ्गानि यजेद्वाह्ये दिक्षु भूतानि संयजेत् ।। ७७ ।।

आद्यानि चत्वारि पुनर्विदिक्षु पूजयेदिमाः ।
निवृत्याद्याश्चतस्रस्तु बलाक्याद्यास्ततः परम् ।। ७८ ।।

इन्द्रादयस्तदस्त्राणि चैवम्पूजा समीरिता ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा,

"शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—अतिकृतिछन्दसे नमः, हृदये—भूश्रीभ्यां नम" इति विन्यस्य, मम धनधान्यसमृद्धये विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा मूलमन्त्रेणाऽभिमृष्टयोः पाण्योरङ्गुष्ठयो—"रन्न-महि हृदयाय नमः, तर्जन्योः अन्नं मे देहि शिरसे स्वाहा; मध्यमयोः—अन्नाधिपतये शिखायै वषट्; अनामयोः—ममान्नं प्रदापय कवचाय हुँ; कनिष्ठयोः—स्वाहा अस्त्राय फट्" इति विन्यस्य हृदयादिष्वपि नेत्रहीनेषु पञ्चाङ्गेषु न्यसेत् ।

ततो ध्यानादिमानसपूजान्ते चतुर्द्वारयुक्चतुरश्रत्रयवेष्टितमष्टदलकमलद्वयं पूजाचक्रं कृत्वा, प्राग्वत्संस्थाप्य, सम्पूज्य तत्र वक्ष्यमाणवैष्णवपीठं सम्पूज्य, तत्र भूश्रियौ समावाह्याऽऽसनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य,

प्रथमाऽष्टदलस्य दिग्दले—"ॐ आकाशाय नमः, एवं वायवे; अग्नये०, जलाय०", विदिग्दलेषु—"ॐ निवृत्यै नमः, प्रतिष्ठायै०,[1] विद्यायै०, शान्त्यै०" इति सम्पूज्य, द्वितीयाष्टदलेष्काक्षरलक्ष्मीप्रकरणोक्तबलाक्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य, प्राग्वदिन्द्रादिपूजामारभ्य शेषं समापयेदिति ।

तथा—नियुतम्प्रजपेन्मन्त्रन्तद्दशांशञ्च मन्त्रवि ।
जुहुयादाज्यसम्पृक्तेनाऽन्नेन च यथाक्रमम् ।। ७९ ।।

तर्प्पणादि ततः कृत्वा विप्रान्सम्भोज्य यत्नतः ।
गुरुं सन्तोष्य यत्नेन मन्त्रसिद्धमवाप्नुयात् ।। ८० ।।

दिनादौ प्रजपेन्मन्त्रमष्टोत्तरशतं सुधीः ।
क्षेत्रधान्यान्नरत्नौघसमृद्धौ भवति ध्रुवम् ।। ८१ ।।

**दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—**

केवलङ्कामबीजन्तु कामेशीमनुरुच्यते[2] ।
ऋषिः सम्मोहनः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम् ।। ८२ ।।

कामेश्वरी देवता स्यात्कतुर्यें बीजशक्तिके ।
पृथिवी कीलकम्प्रोक्तम्महावश्यकरी मता ।। ८३ ।।

---

१. ख. तिष्ठायै० । २. क. मनुरुच्ये० ।

षड्दीर्घस्वरभिन्नेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ।
पूर्वोक्तपञ्चबाणाञ्श्च पूर्ववद्विन्यसेत्प्रिये ।। ८४ ।।

जपाकुसुमसङ्काशान्धनुर्बाणधरां स्मरेत् ।
नानालङ्कारसुभगाम्मोहयन्तीञ्जगत्त्रयम् ।। ८५ ।।

त्रिकोणञ्चाष्टपत्रञ्च ततो भूबिम्बमालिखेत् ।
मोहिनीं क्षोभणीञ्चैव वशिनीं स्तम्भनींतथा ।। ८६ ।।

आकर्षणीन्द्राविणीञ्च तथैवाऽऽह्लादिनीं क्रमात् ।
क्लिन्नाञ्च क्लेदिनीञ्चैव दिक्षु मध्ये च पूजयेत् ।। ८७ ।।

ततः सिंहासनञ्चेष्ट्वा देवीमावाहयेत्प्रिये ।
उपचारैः समाराध्य ततो मुद्राम्प्रदर्शयेत् ।। ८८ ।।

अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वङ्गपूजनम् ।
त्रिपुरेशीव बाणानामर्चनम्परमेश्वरि ।। ८९ ।।

अनङ्गरूपिण्यनङ्गमदनाऽनङ्गमन्मथा ।
अनङ्गकुसुमा तद्वदनङ्गमदनातुरा ।। ९० ।।

अनङ्गशिशिरा चैव तथा चाऽनङ्गमेखला[1] ।
अनङ्गदीपिका चाऽष्टदलेषु क्रमतो यजेत् ।। ९१ ।।

इन्द्रादयश्च सम्पूज्याः पुनराराधयेच्छिवाम् ।
अर्कलक्षञ्जपेन्मन्त्रम्बन्धूक कुसुमैर्हुनेत् ।। ९२ ।।

तद्दशांशेन देवेशि पुरश्चारी ततो भवेदिति ।

### ।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—सम्मोहनाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदि—श्रीकामेश्वरीदैवतायै०, गुह्ये—कं बीजाय०, पादयोः—ईं शक्तये०, नाभौ लं कीलकाय०" इति विन्यस्य ममेष्टार्थसिद्धये विनियोगः ।

---

१. क. ०मेखलाम् ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा "क्लाँ क्लीमि" त्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानादिज्ञानात्मार्चान्ते स्वाग्राद्यष्टदलकेसरेषु— "ॐ मोहिन्यै नमः, एवं क्षोभिण्यै०, वशिन्यै०, स्तम्भिन्यै०, आकर्षिण्यै०, द्राविण्यै०, आह्लादिन्यै०, क्लिन्नायै०, मध्ये—क्लेदिन्यै नमः, क्लीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम" इति पीठमभ्यर्च्याऽऽवाहनाङ्गार्चाद्यन्तं पूर्ववत्कृत्वा, त्रिपुरभैरवीप्रकरणोक्तवत्पञ्चबाणान्सम्पूज्य,

देव्यग्राद्यष्टपत्रेषु—"ॐ अनङ्गरूपिण्यै नमः, एवं अनङ्गमदनायै०, अनङ्गमन्मथायै०, अनङ्गकुसुमायै०, अनङ्गमदनातुरायै०, अनङ्गशिशिरायै०, अनङ्गमेखलायै०, अनङ्गदीपिकायै नम" इति सम्पूज्य लोकपालार्चादि शेषं समापयेत्। इति ।

तथा— त्रिपुरेशीतन्त्रमध्ये बाणाः प्रोक्ता महेश्वरि ।
तैरेव पञ्चभिर्बाणैर्विद्या पञ्चाक्षरी भवेत् ।। ६३ ।।

त्रिपुरेशी तन्त्रमध्ये पञ्चभिर्बाणैः 'द्राँ द्रीँ क्लीँ ब्लूँ सः' इत्येतैः ।

तथा— ऋषिरस्यास्तु मदनो गायत्रं छन्द ईरितम् ।
बाणेश्वरी च देवेशि देवता चेयमीरिता ।। ६४ ।।

व्यस्तैः समस्तैरङ्गानि पञ्चबाणैरथाऽऽचरेत् ।

द्रां हृत्, द्रीं शिरः, क्लीं शिखा, ब्लूं कवचं, सः नेत्रं, समस्तैरस्त्रम् ।

पूर्ववत्पञ्चबाणानान्न्यासङ्कुर्याद्विचक्षणः ।। ६५ ।।

पञ्चकामान्प्रविन्यस्येत्पूर्ववत्परमेश्वरि ।
उद्यद्दिवाकराभासां नानालङ्कारभूषिताम् ।। ६६ ।।

बन्धूककुसुमाकाररक्तवस्त्राङ्गरागिणीम् ।
इक्षुकोदण्डपुष्पेषुविराजितभुजद्वयाम् ।। ६७ ।।

ध्यायेदिति शेषः ।

त्रिपुरेशीव सम्पूज्या मोहयेज्जगतीमिमाम्[1] ।
एवं ध्यात्वा वर्णलक्षञ्जपेन्मन्त्रं समाहितः ।। ६८ ।।
तद्दशांशेन जुहुयाद्बन्धूककुसुमैस्ततः ।

---

१. ख. ०ज्जतोमिमाम् ।

अङ्गन्यासान्तं कृत्वा, बाणान्कामाञ्श्च विन्यस्य, ध्यात्वा मानसपूजाद्यात्मपूजान्ते पीठादिजपान्तं भैरवीवत्कुर्यात् ।

पूर्वोक्तपञ्चकामैस्तु पञ्चकामेश्वरी भवेत् ।। ९९ ।।

ऋषिः सम्मोहनो नाम गायत्रं छन्द उच्यते

देवतेयमिति ।

इयं कामेश्वरी चैवं व्यस्तैश्चैव समस्तकैः ।

अङ्गानि पूर्ववत्कामबाणन्यासद्वयञ्चरेत् ।। १०० ।।

ह्रीँ हृत्, क्लीँ शिरः, ऐँ शिखा, ब्लूँ कवचं, स्त्रीँ नेत्रं, सर्वैरस्त्रम् ।

रक्तां रक्तदुकूलाङ्गलेपनां रक्तभूषणाम् ।

पाशाङ्कुशधनुर्बाणपुस्तकञ्चाक्षमालिकाम् ।। १०१ ।।

वराभीती च दधतीन्त्रैलोक्यवशकारिणीम् ।

पञ्चकामैः परिवृतान्ध्यायेद्देवीं विचक्षणः ।। १०२ ।।

वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधःस्थयोरन्ये, तदाद्यधःस्थयोरपरे, तदाद्यधःस्थयोरितरे आयुधानि चिन्तयेदिति ।

अन्यत्सर्वम्पूजनादि पञ्चबाणेश्वरीव वै ।। १०३ ।।

अङ्गन्यासान्तं कृत्वा, बाणकामौ विन्यस्य पीठन्यासादिजपान्तं बालावत् कुर्यादिति ।

श्रीयन्त्रसारे-

मदनभासितमध्यमथेन्द्रिय-
च्छदविराजितपञ्चमनोभवम् ।
स्मरशरैर्लिपिभिश्च समावृतं,
कुगृहकोणविराजितमन्मथम् ।। १०४ ।।

लिखतु पञ्चमनोभवमेतदि-
त्युदितयन्त्रमशेषसमृद्धिदम् ।
कनकनिर्मितपट्टतले ततः,
शुभतरे दिवसे विधृतं द्रुतम् ।। १०५ ।।

सकलमानवसिद्धसुराङ्गना-
हृदयरञ्जनमीप्सितकामदम् ।

रुचकपूर्वविभूषणयोजितं,
धृतवती वनिताप्यखिलान्नरान् ।। १०६ ।।

निजवशे प्रविधाय रमाम्परां,
समधिगम्य सुतैः सह मोदते ।
इति विलिख्य च कुङ्कुमकर्दमे,
तदनुलिप्ततनोः सकलञ्जगत् ।। १०७ ।।

वशमुपैति निरीक्षणमात्रतः,
किमुत सान्त्वसहासनसङ्गमैः ।

**अयमर्थः**—पञ्चदलं कमलं कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, तद्दलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मूलमन्त्रस्यैकैकं बीजं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वाऽभ्यन्तरवीथ्यां पूर्वोक्तपञ्चबाणबीजैरावेष्टच, द्वितीयवीथ्यां मातृकार्णैरावेष्टच, तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तत्कोणेषु कामबीजं लिखेदेतदुक्तविधिना धृतमुक्तफलदम्भवतीति ।

तथा— वाग्भवं त्रिपुरेशान्या हित्वा तत्संक्षिपेत्सुधीः ।
कामशक्तिद्वयान्तस्तु विद्येयं त्र्यक्षरी भवेत् ।। १०८ ।।

कामेश्वरीति—तद्वाग्भवं संक्षिपेन्निक्षिपेत् । तेन 'क्लीँ ऐँ सौः' इति ।

द्विरावृत्या षडङ्गानि पञ्चबाणान्प्रविन्यसेत् ।
पञ्चकामान्विन्यस्य मूलेन व्यापकन्न्यसेत् ।। १०९ ।।

उद्यत्सूर्यसहस्राभाम्माणिक्यवरभूषणाम् ।
स्फुरच्चन्द्रदुकूलाढ्यान्नानालङ्कारभूषिताम् ।। ११० ।।

इक्षुकोदण्डबाणाँश्च पुस्तकञ्चाक्षमालिकाम् ।
दधतीञ्चिन्तयेन्नित्यं सर्वराजवशङ्करीम् ।। १११ ।।

वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधःस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम् । अङ्गानन्तरं पञ्चबाणान्प्रपूज्यैव रत्यादित्रितयं यजेत् ।

ततोऽनङ्गाद्यष्टकञ्च सभैरवसमातरम् ।
अष्टपत्रेषु चाग्रेषु यजेत्पीठाष्टकम्प्रिये ।। ११२ ।।

इन्द्रादयश्च सम्पूज्या मध्ये देवीं समर्चयेत् ।
[पुरश्चरणकृत्यन्तु त्रिपुरेशीवत्सुन्दरि ॥ ११३ ॥

अङ्गन्यासान्तं कृत्वा, बाणकामौ विन्यस्य, मूलेन व्यापकं कृत्वा, ध्यानादिजपान्तं कृत्वा शेषं सयापये][1] दिति ।

## [ बगलामुखीविधानम् ]

**श्रीभैरवयामले-श्रीदेव्युवाच-**

प्रभो त्वम्भैरवश्रेष्ठ सर्वतन्त्रानुजीवक[2] ।
नानारहस्यसारञ्च त्वत्प्रसादाच्छ्रणोम्यहम् ॥ ११४ ॥

दिव्यतन्त्रमहातन्त्रपूर्वपश्चिमसंज्ञकम् ।
दक्षिणोत्तरमूर्द्ध्वञ्च ह्युपायाः कथिताः प्रभो ॥ ११५ ॥

वश्याकर्षणदिव्यञ्च मारणोच्चाटनादिकम् ।
विद्वेषम्मोहनञ्चान्यद्विविधङ्कामनादिकम् ॥ ११६ ॥

विस्तारपूर्वकथितं[3] ज्ञातव्यं येन तन्मया ।
इदानीं स्तम्भनन्देव कथयस्व प्रसादतः ॥ ११७ ॥
कथयस्व सुरश्रेष्ठ यद्यहन्तव वल्लभा ।

**श्रीभैरव उवाच—**

साधु साधु महाप्राज्ञे सर्वतन्त्रार्थसाधके ।
न कस्यचिन्मयाख्यातम्पृष्टो[4] वाऽपि न केनचित् ॥ ११८ ॥

गुह्याद्गुह्यतरन्देवि त्वत्स्नेहात्प्रकटीकृतम् ।
अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि शृणु चैकाग्रमानसा ॥ ११९ ॥

विद्या या परमा गुप्ता महास्तम्भनकारिणी ।
तारम्प्रथममुच्चार्य्य स्थिरमायामथोच्चरेत् ॥ १२० ॥

सम्बोधनपदन्देवि वदेच्च वगलामुखी[5] ।
तदग्रे सर्वदुष्टानां ततो वाचम्मुखम्पदम् ॥ १२१ ॥

---

१. कोष्ठस्थोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके ।  २. ख. ०जीवकः ।
३. ख. विस्तारपूर्वं० ।  ४. क. ख. पृष्ठो ।  ५. बगलमुखी ।

स्तम्भयेति पदं जिह्वां कीलयेति ततः परम् ।
बुद्धिं विनाशयेत्यस्मात्स्थिरमायाम्पुनर्लिखेत् ।। १२२ ।।

लिखेच्च पुनरोङ्कारं स्वाहेति पदमन्ततः ।
षट्त्रिंशदक्षरा विद्या महास्तम्भनकारिणी ।। १२३ ।।

गजानाञ्च रथानाञ्च दुर्जनान्[1] शीघ्रकारिणः ।
स्तम्भयेत्पञ्च दिव्यानि मानवेषु च का कथा ।। १२४ ।।
त्रैलोक्यस्तम्भनी विद्या देवि श्रीबगलामुखी ।

तारं प्रणवं[2], स्थिरमायां ह्लीँ, सम्बोधनपदं बगलामुखि इति, सर्वदुष्टानां स्वरूपं., मुखं स्वरूपं पदं स्वरूपं, स्तम्भय-स्वरूपम्, जिह्वां कीलय-स्वरूपं, बुद्धिं-विनाशय स्वरूपं, स्थिरमाया प्राग्वद्बीजं, ॐकारं स्वरूपम्, स्वाहा-स्वरूपम् ।

तथा—नारायण ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दश्च बगलामुखी ।
देवता गदिता देवि त्रैलोक्यस्तम्भकारिणी ।। १२५ ।।

स्थिरमाया भवेद्बीजं शक्तिः स्वाहा समीरिता ।
विनियोगस्तु विख्यातः पुरुषार्थचतुष्टये ।। १२६ ।।

स्थिरमायाञ्च हृदये शिरश्च बगलामुखि ।
सर्वदुष्ट शिखान्न्यस्य कवचं स्तम्भयान्तिकम् ।। १२७ ।।
जिह्वां कीलय नेत्रञ्च बुद्धिं विनाशयाऽस्त्रकम् ।

सर्वदुष्ट इति समग्रपदस्य ग्रहणम् । तेन सर्वदुष्टानां शिखायै इति । स्तम्भयान्तिकमित्यनेन 'वाचं[3]मुखं पदं[4] स्तम्भय' इति पदचतुष्टयं कवचे प्रोक्तम् । सुगममन्यत् ।

मूर्ध्नि भाले भ्रुवोर्मध्ये नेत्रयोः श्रोत्रयोर्नसोः ।। १२८ ।।
गण्डयोरोष्ठयोर्वक्त्रे चिबुके च गले प्रिये ।
दोःपत्सन्धिषु साग्रेषु[5] मन्त्रवर्णान्न्यसेत्क्रमात् ।। १२९ ।।

एवन्न्यासविधिः प्रोक्तस्ततो ध्यानं शृणु प्रिये ।
यस्य स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत्क्षणात् ।। १३० ।।

---

१. ख. दुर्जनात् । २. ख. प्रणवः । ३. क. वाचंद्र । ४. ख. नाऽस्त्ययं शब्दः ।
५. क. सामग्रेषु ।

गम्भीराञ्च मदोन्मत्तान्तप्तकाञ्चन सन्निभाम् ।
चतुर्भुजान्त्रिनयनाङ्कमलासनसंस्थिताम् ॥ १३१ ॥

मुद्गरन्दक्षिणे पाशं वामे जिह्वाञ्च वज्रकम् ।
पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम्[1] ॥ १३२ ॥

हेमकुण्डलभूषाञ्च पीतचन्द्रार्द्धशेखराम् ।
पीतभूषणभूषाञ्च स्वर्णसिंहासनस्थिताम् ॥ १३३ ॥

एवं ध्यात्वा च देवेशि शत्रुस्तम्भनकारिणीम् ।
महाविद्याम्महामायां साधकेष्टफलप्रदाम् ॥ १३४ ॥

दक्षिणाधरोत्तरयोर्मुद्गरपाशौ, वामाधरोत्तरयोर्जिह्वावज्रे, जिह्वां साधकविपक्षजनस्येति, धृतमुद्गरवैरिजिह्वामिति वचनात् ।

**श्रीदेव्युवाच—**

ध्यानन्तु कथितन्देव महाश्चर्यप्रदायकम् ।
इदानीङ्कथयस्वेश पूजनं सर्वसिद्धिदम् ॥ १३५ ॥

**ईश्वर उवाच—**

पूजनं शृणु देवेशि साधके सिद्धिदायकम् ।
नित्यन्नैमित्तिकङ्काम्यम्पूजनन्त्रिविधम्प्रिये ॥ १३६ ॥

भूप्रदेशे मनोरम्यपुष्पामोदे सुधूपिते ।
गोमयेनोपसँल्लिप्ते पुष्पप्रकरशोभिते ॥ १३७ ॥

मण्डपे विधिवत्तत्र आसनन्तु समर्च्चयेत् ।
सौवर्णे वाऽथ रौप्ये वा पैत्तले वाऽथ भूर्जके ॥ १३८ ॥

कर्पूरागुरुकस्तूरीश्रीखण्डैः कुङ्कुमैरपि ।
लिखेद्यन्त्रम्प्रयत्नेन लेखन्या हेमताम्रयोः[2] ॥ १३९ ॥

मध्ये योनिं समालिख्य तद्बाह्ये तु षडश्रकम् ।
तद्बाह्येऽष्टदलम्पद्मन्तद्बाह्ये षोडशच्छदम् ॥ १४० ॥

---

१. ख. सान्द्रवक्ष० । २. ख. तारयोः ।

चतुरश्रत्रयं बाह्ये चतुर्द्वारोपशोभितम् ।
यत्र नोक्ता महादेवि पीठं वा पीठशक्तयः ।। १४१ ।।

तत्र मायोदितम्पीठं ज्ञेयन्ता एव शक्तयः ।
तत्तद्बीजेन पीठञ्च यजेन्मायागुनाऽथवा ।। १४२ ।।

इति श्रीशिवयामलवचनाद् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र श्रीवगलामुखीमन्यां वा देवीमनुक्तपीठां यजेत् ।

तथा—तत्राऽऽवाह्य यजेद्देवीम्पुष्पान्तैरुपचारकैः ।
अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य यथास्थानम्महेश्वरि ।। १४३ ।।

पूर्वद्वारे गणेशञ्च दक्षिणे वटुकन्तथा ।
पश्चिमे योगिनी पूज्या क्षेत्रपालन्तथोत्तरे ।। १४४ ।।

ईशानादिनिर्ऋत्यन्तङ् गुरुपङ्क्तिं समर्च्चयेत् ।
वगला पूर्वपत्रे तु स्तम्भनी च ततः परम् ।। १४५ ।।

जम्भनी मोहिनी[1] च स्यादचला चञ्चला तथा ।
दुर्धरा कल्मषा धीरा कल्पना कालकर्षणी ।। १४६ ।।

भ्रामिका मन्दगमना भोगाख्या चैव योगिका ।
एताः षोडशपत्रेषु गन्धपुष्पाक्षतैर्यजेत् ।। १४७ ।।

षोडशस्वरसंयुक्ताः सम्प्रदायात्कुलागमे ।
यजेच्च पत्रमध्येषु कल्पिते चाऽष्टपत्रके ।। १४८ ।।

ब्रह्माण्याद्यष्ट[2] पूर्वादौ वाहनाकल्पसंयुताः ।
स्थिरमाया बीजपूर्वाः परिपूज्याः कुलागमे ।। १४९ ।।

डादिहान्ताः षडश्रेषु पूज्याः षड्धातुमातृकाः ।
लोकेशाँश्च तदस्त्राणि पूजयेच्च ततः प्रिये ।। १५० ।।

योनिमध्ये मूलदेवीन्त्रिरञ्जलिभिरर्च्चयेत् ।
धूपदीपसुनैवेद्यैर्गन्धताम्बूलदीपकैः ।। १५१ ।।

---

१. ख. मोहनी । २. क. ब्रह्माण्यादाष्ट ।

नीराज्य विधिवत्पश्चाज्जपसङ्ख्यान्निवेदयेत् ।
पवित्रारोपणन्देवि दमनेन च पूजयेत् ।। १५२ ।।
बलित्रयन्ततो दद्यात्पानान्नादीनि साधकः ।

बलित्रयमित्युपलक्षणं बलिपञ्चकन्दद्यादित्यर्थः ।

।। अथ प्रयोगः ।।

ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि–नारायणऋषये नमः, मुखे–तृष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये – श्रीबगलामुख्यै देवतायै नमः, गुह्ये –ह्लीँ बीजाय नमः, पादयोः–स्वाहाशक्तये नम" इति विन्यस्य,

प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा—"ॐ ह्लीँ हृदयाय[1] नमः, बगलामुखि शिरसे स्वाहा, सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुँ, जिह्वां कीलय नेत्राय वौषट्, बुद्धिं विनाशय अस्त्राय फट्" इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा,

"शिरसि—ॐ नमः, ललाटे—ह्लीं[2] नमः, भ्रूमध्ये—वं०, दक्षनेत्रे—गं०, वामे–लां०, दक्षश्रोत्रे–मुं०, वामे–खि०, दक्षनसि–सं०, वामे–र्वं०, । दक्षगण्डे–दुं०, । वामे–ष्टां०, ओष्ठे–नां०, अधरे–वां०, मुखे–चं०, चिबुके–मुं०, गले-खं०, दक्षबाहुमूले–पं०, मध्ये–दं०, मणिबन्धे[3]–स्तं०, अङ्गुलिमूले–भं०, अग्रे–यं०, । वामदोर्मूले–जिं०, मध्ये–ह्वां०, मणिबन्धे–कीं०, अङ्गुलिमूले–लं०, । अग्रे–यं०, दक्षोरुमूले–बुं०, जानुनि–द्धिं०, गुल्फे-विं०, अङ्गुलिमूले-नां०, अग्रे–शं०, वामोरुमूले—यं०, जानुनि–ह्लीं०, गुल्फे– ॐ०, अङ्गुलिमूले–स्वां[4] । अग्रे–हां नमः" इति विन्यस्य, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते पूर्वोक्तभुवनेश्वरीपीठं सम्पूज्य, सर्वं नित्यहोमान्तं कृत्वा, भैरवीप्रकरणोक्तवद्बलिपञ्चकं दत्वा शेषं प्राग्वत्समापयेदिति ।

तथा— साधनं सम्प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ।
सर्वपीतोपचारेण पीताम्बरधरो नरः ।। १५३ ।।
जपमालाञ्च देवेशि हरिद्राग्रन्थिसम्भवाम् ।
पीतमासनसमारूढः पीतध्यानपरायणः ।। १५४ ।।
पीतपुष्पार्चनन्नित्यमयुतञ्जपमाचरेत् ।
दशांशेन कृतो होमः पीतद्रव्यैः सुशोभनैः ।। १५५ ।।

---

१. क. ॐ हृदयाय । २. क. ह्लीँ । ख. क्लीँ । ३. क. मणिमबन्धे । ४. क. ख. स्वं ।

तर्प्पणादि ततः कुर्यान्मन्त्रं सिद्ध्यति मन्त्रिण: ।
साध्यसंज्ञां समुच्चार्य स्तम्भयेति ततः परम् ।। १५६ ।।

गतिस्तम्भकरी विद्या अरिस्तम्भनकारिणी ।
मेधाम्प्रज्ञाञ्च शस्त्रादीन्[1] देवमानवपन्नगान् ।। १५७ ।।
स्तम्भयेच्च महाविद्या सत्यं सत्यं वरानने ।

**श्रीदेव्युवाच—**

अधुना साधनन्देव शीघ्रम्प्रत्ययकारकम् ।
मन्त्रयन्त्रौषधजपाद्युताद्यैः कथयस्व मे ।। १५८ ।।

साधनं कामितार्थस्य मन्त्रसाधनस्य प्रागेवोक्तत्वात् ।

**श्रीभैरव उवाच—**

शृणु प्राज्ञे महागुप्तम्प्रकटीक्रियतेऽधुना ।
एकान्ते निर्जने रम्ये शुचौ देशे गृहे पुरे ।। १५९ ।।

कुण्डं सलक्षणङ्कृत्वा मेखलात्रयशोभितम् ।
योनिर्वितस्तितः प्रोक्ता षट्कर्माण्यत्र साधयेत् ।। १६० ।।

मधुरत्रितिलाज्येन वश्यं लाभानि साधयेत् ।
तथाऽऽकर्षणकामस्तु लोणत्रिमधुरान्वितम् ।। १६१ ।।

निम्बपत्रन्तैलयुक्तं विद्वेषणकरम्परम् ।
हरितालं हरिद्राञ्च लवणेनैव संयुतम् ।। १६२ ।।
स्तम्भने होमयेद्देवि प्रज्ञाञ्चैव गतिम्मतिम् ।

स्तम्भयेदिति शेषः ।

सर्ज्जिकाकृष्णसारेण महिष्या रुधिरेण च ।। १६३ ।।

रिपूणाम्मारणन्देवि श्मशानाग्नौ हुनेन्निशि ।
गृध्राणामपि काकानां गृहधूमयुतेन वै ।। १६४ ।।

पक्षेण जुहुयाद्देवी शत्रोरुच्चाटनाय वै ।
लाजा त्रिमधुयुक्ता च सर्वरोगोपशान्तये ।। १६५ ।।

---

१. क. शास्त्रादीन् ।

लक्षमेकञ्जपेद्देवि ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
पर्वताग्रे महारण्ये सिद्धशैवालये गृहे ॥ १६६ ॥

सङ्गमे च महानद्योर्निशायामधिसाधयेत्[1] ।
श्वेतब्रह्मतरोर्मूलपादुकाञ्चैव कारयेत् ॥ १६७ ॥

अलक्तेन तु रागेण रञ्जिताञ्च हरिद्रया ।
षट्त्रिंशदक्षरी विद्या या लक्षैकेन मन्त्रिता ॥ १६८ ॥

शतयोजनमात्रन्तु मनश्चिन्तितमात्रतः ।

गच्छेदिति शेषः ।

रसं मनःशिलातालं माक्षिकेण समन्वितम् ॥ १६९ ॥

पिष्ट्वाऽभिमन्त्र्य लक्षैकं सर्वाङ्गे लेपनङ्कृतम् ।
अदृश्यकारकन्देवि लोके च महदद्भुतम् ॥ १७० ॥

एकवर्णायाः सुरभेर्द्विशेषं क्षीरमाहरेत् ।
शर्करामधुसंयुक्तं त्रिशतैर्मन्त्रितम्प्रिये ॥ १७१ ॥

पाययित्वा[2] तु हरते विषं स्थावरजङ्गमम् ।
दारिद्र्यमोचनन्देवि लक्षमेकञ्जपन्नरः ॥ १७२ ॥

दशांशेन कृतो होम एभिर्द्रव्यैः पृथक् पृथक् ।
लक्ष्मीयुक्तो भवेद्देवि दारिद्र्यं नाशयेद् द्रुतम् ॥ १७३ ॥

अथ सम्यक् प्रवक्ष्यामि कामनायन्त्रतः परम् ।
पटे वाऽप्यथ पाषाणे संज्ञामाभाष्य कारयेत् ॥ १७४ ॥

आद्यन्ते स्थिरमायाञ्च हरिद्रातालकैर्लिखेत् ।
उन्मत्तरससंयुक्तं गाढन्त्रिवलयैर्लिखेत् ॥ १७५ ॥

गर्भस्तम्भङ्गतिस्तम्भञ्चमत्कारकरी परा ।

करोतीति शेषः ।

भूर्जपत्रे समालिख्य तालोन्मत्तरसैर्निशि ॥ १५६ ॥

---

१. ख. ०मपि० । २. ख. यापयित्वा ।

षट्कोणान्तस्य मध्ये तु विद्यां वलयतो लिखेत् ।
साध्यसञ्ज्ञान्ततो देवि पीतसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ १७७ ॥

चक्रम्भ्राम्य कुलालस्य विपरीतन्तु मृत्तिकाम् ।
तन्मध्ये च लिखेद्बीजन्त्रिवलाकारतः प्रिये ॥ १७८ ॥

षष्ठयन्तसाध्यनामान्ते मुखं स्तम्भय चोच्चरेत् ।
बाह्ये न्यस्तम्महाबीजञ्चतुराशाः समालिखेत् ।
साध्यनामाक्षरन्देवि चाऽभिमन्त्र्य स्वविद्यया ॥ १७९ ॥

षष्ठयन्तञ्चोच्चरेत्साध्यं सम्बुध्यन्ताञ्च देवताम् ।
मा मुञ्चेति पदम्पश्चाद्वदेदाम्रेडितन्त्रिकम् ॥ १८० ॥
पीतोपचारैः सम्पूज्य मुखस्तम्भनमुत्तमम् ॥ १८१ ॥

**भूर्जपत्रेत्यादीनामयमर्थः—**

धत्तूररसैः षिष्टहरितालेन षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं मूलविद्यां वृत्ताकारेण विलिख्य, तद्गुलिकीकृत्य, सूत्रेण संवेष्टय, कुलालचक्रं विपरीतेन भ्रामयित्वा, तस्मान्मृदमादाय, तन्मध्येऽन्तर्बहिर्विभागेन वृत्ताकारेण त्रिःस्थिर-मायाबीजं ससाध्यं विलिख्य, तद्बाह्ये चतुरश्रं चतुर्द्वारयुक्तं कृत्वा, तस्य द्वारशा-खाचतुष्टये 'हल ई अं' इति व्यस्तं बीजं व्यस्तसाध्यनामाक्षरैः सह विलिख्य, साध्यनामगर्भितया मूलविद्यया देवतानाम सम्बोधनपूर्वं त्रिःप्रमाणोक्तसम्बोधन-पूर्वञ्चाऽभिमन्त्र्य, अत्राऽभिमन्त्रणे संख्यानुक्ते रष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरष्टकृत्वो वा कार्यं गौरवलाघवं विदित्वाऽभिमन्त्र्य, तत्र यन्त्रे देवीमावाह्य, पीतोपचारैः सम्पूज्य मनीषितार्थे विनियुञ्ज्यादिति[1] ।

एतद्यन्त्रं वरारोहे श्मशानाङ्गारकैर्लिखेत् ।
भेकस्य वदने क्षिप्त्वा[2] धातुसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ १८२ ॥

भूमिस्थम्मण्डलङ्कृत्वा पीतपुष्पैः समर्चयेत् ।
उच्चारोत्सर्गमन्त्रं वा पदमुच्चारमानयेत् ॥ १८३ ॥

वामपादे लसत्पूर्वकुलालोद्भवमृत्तिकाम् ।
पूरकस्य प्रयोगेण पश्चाद्वै प्रत्यपद्यता ॥ १८४ ॥

---

१. ख. विनियुंजीवेति । २. क. दिप्त्वा ।

अन्योन्यमिलितत्वेन कृतोच्चारं समन्ततः ।
वामदक्षिणयोर्बद्ध्वा द्वौ द्वौ पादौ प्रकल्पयेत् ।। १८५ ।।

नाम साध्यस्याणुगतं गतिं च स्तम्भयेति च ।
पूर्ववत्पादमालिख्य पाषाणे वाऽथ पादुके ।। १९५ ।।

पूर्वोक्तैः सम्मुखीकृत्य पीततन्तुना वेष्टयेत् ।
शय्यायास्तलसंस्थं च खनेत्स्वात्मप्रयत्नतः ।। १८६ ।।

वामहस्ते न्यसेद्वा ताम्पीतपुष्पैस्तु पूजयेत् ।
महदाश्चर्यंदम्भद्रे रेतःस्तम्भनमुत्तमम् ।। १८७ ।।

श्मशानखर्प्परं ग्राह्यं श्मशानाङ्गारमाहरेत् ।
मायाबीजं त्रिधाऽऽलिख्य साध्यसंज्ञाञ्च मध्यतः ।। १८८ ।।

अपसव्येन चलनात्तस्या त्रिवलानया ।
वामहस्तेन निखनेत्खर्प्परन्तमधोमुखम् ।। १८९ ।।

छादयेद्वामपादेन मलोत्सर्गन्ततोपरि ।
स्तम्भनञ्चैव देवेशि रिपूणाम्मुखबन्धनम् ।। १९१ ।।

ताटङ्कपत्रमादाय लिखेत्साध्यन्तु नामतः ।
आद्यन्ते विलिखेद्बीजं त्रिविधोत्तरकं लिखेत् ।। १९२ ।।

वामहस्तपुटङ्कृत्वा करपिण्डीयकण्टकात् ।
सप्तप्रख्यं कष्टकानि भित्वा चैव पुटीकृतम् ।। १९३ ।।

पृथग्विद्यां समुच्चार्य्यं नाम साध्यस्य साधकः ।
भाण्डमध्ये स्थितं वाऽथ सौवीरेण च पूरयेत् ।। १९४ ।।

गतिमतिस्तम्भकरः प्रयोगः प्रत्ययावहः ।
दिव्यस्तम्भकरीन्देवि नान्यग्रन्थेष्वपीरिताम् ।। १९५ ।।

त्वत्प्रीत्या कथयाम्यद्य शृणु त्वम्प्रियमुत्तमम् ।
यत्र स्थानम्भवेद्दिव्यन्देवालये गृहेऽपि वा ।। १९६ ।।

तत्रस्थान्तु लिखेद्विद्यां साधकात्साध्यनामतः ।
आटरूषस्य पत्रेण परिमार्ज्य ततोपरि ।। १९७ ।।

स्तम्भयेत्तप्तदिव्यानि कृतदोषो विशुद्ध्यति ।
उत्तरावारुणीमूलं सप्तविद्याभिमन्त्रितम् ।। १९८ ।।

महाकृतस्य दोषस्य कृतदिव्ये विशुद्ध्यति ।
अथवा दीपमार्गेण रात्रौ कृत्वा तु मण्डलम् ।। १९९ ।।

भूर्जपत्रे समालिख्य पूर्वोक्तद्रव्यकेन वा ।
दीपम्प्रज्वालयेद्यत्नात्कपिलाज्येन पूरितम् ।। १९९ ।।

तावत्तु दीपयेद्दीपं यावद्दिव्यम्प्रशाम्यति ।
एवन्ते कथितम्भद्रे कामनाप्रत्ययावहम् ।। २०० ।।

इयन्तु परमा विद्या किमन्यत्परिपृच्छसि ।

**इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ षट्चत्वारिंशस्तरङ्गः ।। ४६ ।।**

—०—

## [ सप्तचत्वारिंशस्तरङ्गः ]

## [ त्रिपुटाविधानम् ]

**सारसङ्ग्रहे—**

अथ वक्ष्ये मन्त्रवरनिपुटासंज्ञकं शुभम् ।
लोकरञ्जककर्त्तारञ्चतुर्वर्गफलप्रदम् ।। १ ।।

यशस्करम्पुत्रपौत्रफलदङ्कविताकरम् ।
कमला भुवनेशानी तृतीयश्च मनोभवः ।। २ ।।
वर्णत्रयात्मा त्रिपुरानामको मन्त्र ईरितः ।

कमला श्रीँ, भुवनेशानी ह्रीँ, मनोभवः क्लीँ ।

**श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—**

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य गायत्रं छन्द ईरितम् ।

**शारदातिलके—**ऋषिः सम्मोहन इत्युक्तम् ।

**सारसङ्ग्रहे—**

भृगुः सम्मोहनोऽस्यर्षिः छन्दो गायत्रमुच्यते ।
देवता त्रिपुटा ख्याता द्विरुक्तेनाऽग्नुनाऽङ्गकम् ।। ३ ।।

अथवा भुवनेशान्या षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ।

हेमाभाम्पारिजातद्रुमरुचिरवने मण्डपे स्वर्णभूमौ,
रत्नोद्यत्कुट्टिमेऽधोलसदमरतरोश्चारुसिंहासनेऽब्जे,
षट्कोणस्थां स्मरेऽहं कमलयुगगुणानङ्कुशञ्चापबाणौ,
बिभ्राणां हस्तपद्मैर्मणिमयमुकुटाञ्चारुभूषान्त्रिनेत्राम् ।।४।।

दूतीभिश्चामरादर्शसमुद्गककरण्डकान् ।
ताम्बूलञ्च वहन्तीभिरावृताम्परितः शुभाम् ।। ५ ।।

दूतीभिः घृणिन्यादिभिः ।

**नारायणीये—**

सौम्यादि[1]घृणिनीसूर्यामादित्याञ्च प्रभावतीम् ।। इति ।।
पीयूषदृष्ट्या पश्यन्तीं साधकञ्च मनोहराम् ।। ६ ।।

---

१. ख. सौम्याति ।

क्षिणामूर्त्तिः—

षट्कोणम्पूर्वमालिख्य मध्ये विद्यां लिखेत्सुधीः ।
वीप्सया तान्तु षट्कोणकोणेषु[1] क्रमतो लिखेत् ।। ७ ।।

बाह्ये वसुदलङ्कुर्याद्दीर्घस्वरभूषितम्[2] ।
चतुरश्रञ्चतुर्द्वारभूषितम्मण्डलँल्लिखेत् ।। ८ ।।

चतुरश्रं चतुरश्रत्रयं, गृहं सम्मार्ष्टीति तद्वदेकवचनमुद्देश्य[3]गतसङ्ख्यापरम् । मध्ये षट्कोणान्तस्थचतुःपत्रपद्ममध्ये 'यजेदेनाञ्चतुःपत्रे षट्कोणस्थाम्बुजे बुध' इति **नारायणीयवचनात्** ।

सारसङ्ग्रहे—

शाक्ते पीठे यजेद्देवीन्नवशक्तिसमन्विते ।
अङ्गानि पूजयेदादौ लक्ष्म्याद्याः कोणषट्कगाः ।। ९ ।।

षट्कोणपार्श्वे च निधी यजेन्मातृश्च तद्वहिः ।
लोकपालाँश्च रमणीरूपानभ्यर्चयेत्क्रमाद्[4] ।। १० ।।

काञ्चनाभाङ्कृशां लक्ष्मीं सवराब्जद्वयाभयाम् ।
स्वर्णाभमरिशङ्खाह्वगदाब्जसुकरं हरिम् ।। ११ ।।

गुणसृण्यभयाह्वेष्टधारिणीमरुणां शिवाम् ।
शिवं स्वर्णाभमेणाह्वटङ्काभीतीष्टधारिणम् ।। १२ ।।

स्वर्णाभान्नीलकमलकरां सौम्यां रतिं स्मरम् ।
पाशाङ्कुशौ चापबाणौ धारयन्तं रुचारुणम् ।। १३ ।।

त्रिपुटाह्वामहाविद्यापूजा प्रोक्ता समासतः ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—सम्मोहनभृगवे ऋषये नमः, मुखे—गायत्राय छन्दसे०, हृदये—श्रीत्रिपुटायै देवतायै०" इति विन्यस्य,

---

१. क. षट्कोणेषु । २. क० भूषिताम् । ३. ख. वदेकवचन० । ४. ख. ०नभ्यच्चयेत० ।

"श्रीँ हृदयाय नमः, ह्रीँ शिरसे स्वाहा, क्लीँ शिखायै वषट्, श्रीँ कवचाय हुँ, ह्रीँ नेत्राय वौषट्, क्लीं अस्त्राय फट्" इति करषडङ्गन्यासं विधाय,

ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते पूर्वोक्तभुवनेश्वरीपीठे कृत्वा, प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य, चतुर्द्दलेषु देव्या वामदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन—"घृणिन्यै०, सूर्यायै०, आदित्यायै०, प्रभावत्यै०" षट्कोणेषु देव्यग्रदलमारभ्य—"लक्ष्म्यै हरये०, गिरिजायै शिवाय०, रत्यै अनङ्गजाय०" इति सम्पूज्य, षट्कोणपार्श्वयोर्देवीदक्षिणे—"शङ्खनिधये०, वामे—पद्मनिधये०" इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य दिगीशार्चादि सर्वं प्राग्वत्समापयेदिति ।

तथा—इति ध्यात्वा मन्त्रमिमञ्जपेदादित्यलक्षकम् ।
तत्सहस्रम्प्रजुहुयान्मधुराक्तैः समिद्वरैः ।। १४ ।।

श्रीराजवृक्षसम्भूतैः सजपाकुसुमैः शुभैः ।
तर्प्पणम्मार्जनङ्कृत्वा ब्राह्मणाराधनन्तथा ।। १५ ।।

श्रीवृक्षो बिल्वः ।

तथा—लक्ष्मीगौरीसुकन्दर्प्पबीजानि क्रमतः सुधीः ।
कृत्वा कलायान्तां चेन्दौ तञ्चाकाशे स्मरेच्च तत् ।। १६ ।।

सिन्दूरवर्णमखिलन्त्रैलोक्यन्तन्मयत्वतः ।
स्मृत्वा तदाऽखिलान्देवान्वशयेत्किम्पुनर्नरान् ।। १७ ।।

एनम्मनुं यो भजते भजते कविताम्पराम् ।
दिव्यां लक्ष्मीञ्च सौभाग्यमतुलं लभतेऽचिरात् ।। १८ ।।

बहुकालञ्च विहरेत्सुस्थिरम्भुवि मानवः ।

प्रपञ्चसारे—पाशश्रीशक्तिस्मरमन्मथशक्तीन्दिराङ्कुशाश्च । अयमष्टाक्षर इति । पाशः आं, स्मरः मन्मथश्च कामबीजद्वयम्, इन्दिरा श्रीबीजं, अङ्कुशः क्रों ।

तथा—ऋष्याद्या अजगायत्रशक्तयः समुदीरिताः ।
स्त्रीवश्याकर्षणादौ तु विनियोग उदाहृतः ।। १९ ।।

षड्दीर्घमायायाऽङ्गानि सर्वैरष्टाङ्गमिष्यते ।
हृच्छिरश्च शिखावर्मनेत्रास्त्रोदरपृष्ठके ।। २० ।।

अष्टाङ्गं विन्यसेन्मन्त्री मूलेन व्यापकन्न्यसेत् ।
आनन्दरूपिणीन्देवीम्पाशाङ्कुशधनुःशरान् ।। २१ ।।
बिभ्रतोन्दोर्भिररुणाङ्कुचार्त्तां हृदि भावयेत् ।

वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम् ।

।। अथः प्रयोगः ।।

प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि–अजाय ऋषये नमः, मुखे–गायत्राय छन्दसे, हृदये–शक्तये देवतायै०" इति विन्यस्य स्त्रीवश्याकर्षणे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा "ह्रां ह्रीमि"त्यादिना करषडङ्गन्यासं कृत्वा, "हृदये—आँ नमः, [शिरसि–श्रीं, शिखायां–ह्रीं, कवचे–क्लीं, नेत्रे–क्लीं, अस्त्रस्थाने—ह्रीं, उदरे–श्रीं, पृष्ठे–क्रों नम" इति विन्यस्य,

ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते, मध्ये–"हृल्लेखायै नमः,][1] अग्रे–गगनायै० दक्षिणे–रक्तायै०, उत्तरे–कालिकायै०, पश्चिमे–महोच्छुष्मायै०" इति सम्पूज्य, प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य चतुरश्रे लोकेशार्चादि प्राग्वत्सर्वं समापयेदिति । तथा—

अष्टलक्षञ्जपेत्साज्यैर्दशांशञ्जुहुयात्तिलैः ।
तर्प्पणादि ततः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।। २२ ।।

सारसङ्ग्रहे—

योनिर्वियत्सनेत्रञ्च परमे पदमुच्चरेत् ।
अस्थिगं मेद उक्त्वा च रक्तस्थं दृक्द्विठावधिः ।। २३ ।।
प्रणवाद्यो दशार्णोऽयमश्वारूढामनुर्यतः ।

योनिः एकारः, वियत् हकारः, सनेत्रं इकारयुक्तं, तेन हि इति ; परमेस्वरूपं, अस्थि शकारः, मेदो वकारस्तेन श्व इति, रक्तं रेफः, दृक् इकारस्तेन रि इति । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा विराट्छन्दो देवता परिकीर्त्तिता ।। २४ ।।

---

१. [—] कोष्ठान्तर्गतोंशो नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

अश्वारूढा त्रिभिः पादैः प्रणवाद्यैर्द्विरीरितैः ।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत् ।। २५ ।।

अश्वारूढान्नवशशियुताम्भालनेत्राञ्च दोष्णा,
पाशाबद्धाम्मदनविवशां साध्यमाश्वानयन्तीम् ।
दक्षेणोद्यत्कनकरचितां वेत्रयष्टिन्दधाना-
म्बन्धूकाभाम्मनसि कलये पीनवक्षोजनम्राम् ।। २६ ।।

शाक्ते पीठे यजेद्देवीम्पुराऽङ्गानि प्रपूजयेत् ।
मातृरिन्द्रादिकान्बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः ।। २७ ।।

पूजेयमश्वारूढायाः प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा ।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—विराट्छन्दसे नमः, हृदये—अश्वारूढायै देवतायै नम" इति विन्यस्य वश्यार्थे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा "ॐ एहि हृदयाय नमः, ॐ परमेश्वरि शिरसे स्वाहा, ॐ स्वाहा शिखायै वषट, ॐ एहि कवचाय हुँ, ॐ परमेश्वरि नेत्राय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्" इति षडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु ब्राह्मयाद्याः प्राग्वत्सम्पूज्य, चतुरश्रे लोकपाला-न्सम्पूज्य धूपादिशेषं समापयेदिति ।

तथा—जपेदयुतसङ्ख्याकन्तद्दशांशं हुनेद्घृतैः ।
तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः ।। २८ ।।

इत्थं ध्यात्वैव सकलं विश्वं वशयतेऽचिरात् ।
आज्यान्नञ्जुहुयान्मन्त्री लभते वाञ्छितम्फलम् ।। २९ ।।

त्रिमध्वक्तैस्तथा लोणैर्हुतैर्वश्या नृपाः किल ।
प्रोक्तेनैव विधानेन वश्याः स्युर्वनिता अपि ।। ३० ।।

अनया विद्यया सर्पिर्होमः काञ्चनदो मतः ।
त्रिस्वादुभिः सहस्रञ्च हुनेत्स्त्रीवश्यसिद्धये ।। ३१ ।।

पूर्वोक्तेनैव होमेन नारीमाकर्षयेद्ध्रुवम् ।
प्रणवादथ मायादिरयमेकादशार्णकः ।। ३२ ।।

षड्दीर्घमाययैवाऽस्य षडङ्गविधिरीरितः ।
तथा– प्रणवम्पाशहृल्लेखे ह्यङ्कुशाद्योऽयमीरितः ।। ३३ ।।

त्रयोदशार्णको द्वाभ्यामेकेनैकेन युग्मतः
पञ्चभिश्च तथा द्वाभ्यां षडङ्गविधिरीरितः ।। ३४ ।।

पाशः आँ, हृल्लेखा ह्रीँ, अङ्कुशः क्रोँ, अयं दशार्णः ।

पुरश्चरणमस्याऽर्णोः पञ्चलक्षम्प्रकीर्त्तितम् ।
पूजादिकं स्यादनयोः पूर्वमन्त्रानुसारतः ।। ३५ ।।[1]

कोष्ठानां षोडशङ्कृत्वा मध्यस्थे वेदकोष्ठके ।
प्रणवं साध्यसमेतं शिष्टेषु द्वादशाऽथ मन्त्रार्णान् ।
अशेषनारीनरपनरवश्यप्रदम्मतम् ।
अश्वारूढायन्त्रमेतत्पूजितं सर्वकामदम् ।। ३६ ।।

**केरलीये यन्त्रसारे—**

मध्ये शक्ति ससाध्याञ्ज्वलनपुरयुगाश्रिष्वथो पाशशक्ति,
क्रोमैं क्लीं: सौः क्रमेण प्रविलिखतु बहिर्मन्त्रवर्णान्दलेषु ।
एकैकम्भानुसङ्ख्येष्वपि मदनशरैर्नित्यया मातृकार्णै -
श्चावीतं यन्त्रमेतद्धरणिपुरगतं श्रीकरं वश्यकारि ।। ३७ ।।

**अस्यार्थः**—षट्कोणमध्ये ससाध्यं शक्तिबीजं विलिख्य, तत्कोणेषु–आं ह्रीं क्रों ऐं क्लीं सौः" इत्येकमेकं बीजं विलिख्य, बहिर्द्वादशदलेषु शक्तिरहितद्वादशाक्षराण्येकैकक्रमेणालिख्य, बहिर्वृत्तचतुष्टयं कृत्वा, प्रथमवीथ्याम्पूर्वोक्तैर्बाणबीजैर्द्वितीयवीथ्यां वक्ष्यमाणनित्यक्लिन्नानित्याविद्यया, तृतीयवीथ्यां मातृकार्णैश्च निरन्तरं संवेष्टच, तद्बहिश्चतुरश्रं कुर्यादेतदुक्तफलदम्भवति[2] । तथा—

---

इतः परं ख. पुस्तके विशेषोऽयमंशो दृश्यते—
आलिख्य कोष्ठानि विकारसंख्या१८न्यन्तश्चतुष्के प्रणवं ससाध्यम् ।
अन्येष्वथ द्वादशमन्त्रवर्णांलिलखेदिदं यन्त्रमशेषवश्यम् ।।
इति शारदातिलके ।

२. भवतीति ।

प्रणवो भुवनाधीशा नमो भगपदं वति ।
माहेश्वर्येहि परमेश्वरि स्वाहान्तिको मनुः ।। ३७ ।।
एकविंशार्णकः प्रोक्तः पूजाद्यञ्चाऽस्य पूर्ववत् ।

भुवनाधीशा ह्रीं, अन्यत्सुगमम् ।

[।। अथाऽस्याः स्तोत्रम् ।।

ॐ अश्वारूढे रक्तवर्णे स्मितसौम्यमुखाम्बुजे ।
राजस्त्रीसर्वजन्तूनां वशीकरणनायिके ।। ३८ ।।

वशीकरणकार्यार्थम्पुरा देवेन निर्म्मिते ।
तस्मादवश्यं वाराहि सर्व्वान्मे वशमानय ।। ३९ ।।

अन्तर्बहिश्च मनसि व्यापारेषु सभासु च ।
यथा स्मरन्ति मामेव तथाऽवश्यं वशङ्कुरु ।। ४० ।।

चामरान्दोलिकाछत्रं राजचिह्नानि यच्छति ।
अभीष्टसम्पदो राज्यन्तथा देवि वशङ्कुरु ।। ४१ ।।

मन्मथस्मरणाद्रामा यान्ति रन्तुम्मया सह ।
स्त्रीरत्नेषु महत्प्रेम तथा जनय कामदे ।। ४२ ।।

मृगपश्वादयः सर्वे मान्दृष्ट्वा प्रेमवीक्षिताः ।
अनुगच्छन्ति मामेव त्वत्प्रसादात्तथा कुरु ।। ४३ ।।

वशीकरणकार्यार्थं यत्र यत्र प्रयुज्यसे ।
सम्मोहनार्थं वर्द्धित्वा तत्कार्यन्तत्र कर्षय ।। ४४ ।।

वशयस्तीति चाऽत्रैव वश्यकार्येषु दृश्यसे ।
तथा माङ्कुरु वाराहि वश्यं सर्वम्प्रदर्शय ।। ४५ ।।

वशीकरणबाणास्त्रम्भक्तानामनिवारितम् ।
तस्मादवश्यं वाराहि जगत्सर्व्वं वशङ्कुरु ।। ४६ ।।

वश्यस्तोत्रमिदन्देव्यास्त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
सोऽभीष्टं वशयेत्सर्व्वं रामां राज्यमथाऽपि वा ।। ४७ ।।

।। इत्यश्वारूढास्तोत्रम् ।। ][1]

---

१. [—] कोष्ठान्तर्गतस्तोत्रस्याऽभावः क. पुस्तके ।

सारसङ्ग्रहे—

मायां वदेद्‌गौरिरुद्रदयिते-योपदं वदेत् ।
गेश्वर्य्यन्ते च वर्म्माऽस्त्रद्विठान्तः षोडशाक्षरः ।। ४८ ।।

माया ह्रीँ, वर्म्म हुँ, अस्त्रं फट्, द्विठः स्वाहा ।

अजोऽस्य ऋषिराख्यातोऽनुष्टुप्छन्दश्च देवता ।
गौरी सौभाग्यसद्वश्यसर्वसम्पत्प्रदायिका ।। ४९ ।।

षड्दीर्घमायया कुर्य्यात्षड़ङ्गानि मनोरथ ।
हेमाभाम्बिभ्रतीन्दोर्भिर्द्दर्प्पणाञ्जनसाधने ।। ५० ।।

पाशाङ्कुशौ सर्वभूषान्ताङ्गौरीं सर्वदा स्मरेत् ।

वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम् ।

शाक्ते पीठे यजेद्‌गौरीञ्चन्दनाद्यैर्मनोहरैः ।। ५१ ।।

अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य सुभगाद्यास्ततो यजेत् ।
सुभगा ललिता चाऽन्या कामिनी काममालिनी ।। ५२ ।।

पाशाङ्कुशौ दर्प्पणाञ्जनशलाकाऽष्टमी मता ।
शक्रादयस्तदस्त्राणि गौरीपूजा समीरिता ।। ५३ ।।

प्रपञ्चसारे तु—

धर्मादिकल्पिते पीठे पीठशक्तीरिमा यजेत् ।
प्रज्ञा ज्ञाना च वाग्वागीश्वरी स्याज्ज्वलिनी परा ।। ५४ ।।

वामा[1] ज्येष्ठा च रौद्री च गुह्यशक्तिश्च ता नव ।
ह्रस्वत्रयक्लीबवर्ज्यस्वराढ्यभृगुणाऽन्विता ।। ५५ ।।

ह्रस्वत्रयं अ इ उ, क्लीबाः ऋ ॠ ऌ ॡ, भृगुः सकारः ।

गौं गौरीमूर्त्तये हृच्च पीठमन्त्रश्च कल्प्यते ।
एवं पीठे यजेद्देवीं चन्दनाद्यैर्मनोहरैः ।। ५६ ।।

सुभगायै च विद्मान्ते हेन्ते स्यात्काममालिखेत् ।
न्यै स्याद्धीमहि तन्नो च गौरी स्यात्तु प्रचोदयात् ।। ५७ ।।

१. क. धामा ।

गायत्र्या त्वनया सर्वानुपचारान्प्रकल्पयेत् ।
अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य सुभगाद्यास्ततो यजेत् ।। ५८ ।।

भृगुः साम्बुः सद्वितुर्यषष्ठार्केन्दुस्वरादिकाः ।
सुभगा ललिता चाऽन्या कामिनी काममालिनी ।। ५९ ।।
दिक्ष्वन्यत्राऽथाऽऽयुधानि लोकपालैस्तदायुधैः ।

भृगुः सकारः, अम्बु वकारः, द्वि आ, तुर्यः ई, षष्ठ ऊ, अर्क ऐं, तेन स्वां स्वीं स्वूं स्वैं । आयुधानि दर्प्पणाञ्जनसाधनपाशाङ्कुशाः ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि अजाय ऋषये नमः, मुखे–अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदये–श्रीगौर्यै देवतायै०, इति विन्यस्य, ममेष्टार्थसिद्धय जपे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा–"ह्रां ह्रीं" मित्यादिकरषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपरतत्वान्तम्पीठमभ्यर्च्याऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "सां प्रभायै०, सीं ज्ञानायै०, सूं वाचे०, सें वागीश्वर्यै०, सैं ज्वलिन्यै०, सों वामायै०, सौं ज्येष्ठायै०, सं रौद्र्यै०, सः गुह्यशक्त्यै०" इति सम्पूज्य, "गौं गौरीमूर्तये नम" इति समस्तम्पीठमभ्यर्च्याऽऽवाहनादिमुद्रादर्शनान्ते "सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयादि"ति गायत्र्यासनादि सर्वानुपचारान्दद्यात् ।

ततः पुष्पोपचारान्ते पूर्ववदङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु दिग्दलेषु–"स्वां सुभगायै नमः, स्वीं ललितायै०, स्वूं कामिन्यै०, स्वैं काममालिन्यै०, विदिक्षु–पाशाय०, अङ्कुशाय०, दर्पणाय०, अञ्जनशलाकायै नमः" इति तदग्रादि प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुरश्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपादिशेषं प्राग्वत्समापयेदिति । तथा–

एकलक्षञ्जपेन्मन्त्रन्तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ।
तर्प्पणादि ततः कुर्याद् गुरुं सन्तोष्य[1] यत्नतः ।। ६० ।।

---

१. ख. तोष्य ।

सिद्धे मन्त्री प्रकुर्वीत मन्त्रे कामानि नाऽन्यथा ।
वामाक्षीनाम निशया वामोरौ विलिखेन्निशि ।। ६१ ।।

आच्छादयन्वामदोष्णा तन्मनाः प्रजपेन्मनुम् ।
शतं सहस्रं लोलाक्षीमानयेत्काममोहिताम् ।। ६२ ।।

एतन्मन्त्रेण सञ्जप्तं गन्धपुष्पफलादिकम् ।
दत्तं संसेवितं सर्वजनतावश्यकारकम् ।। ६३ ।।

तथा – काङ्क्षितस्त्रीवशं शब्दं करिसुद्वन्द्वदुद्वयम् ।
घेद्वयं[1] वा द्वयं स्त्रीं स्वाहेति मन्त्रोऽयमीरितः ।। ६४ ।।

एकोनविंशत्यर्णाढ्यो मन्त्र स्त्रीवश्यदः परः ।
अस्य पूजादिकं सर्वं मन्त्री पूर्ववदाचरेत् ।। ६५ ।।

अस्य घेवर्णतस्त्ववर्वाक्साध्यनाम प्रयोजयेत् ।
जपेन्मन्त्रं शतं वाऽपि स वश्यो भवति ध्रुवम् ।। ६६ ।।

सारसङ्ग्रहे—

माया सलोहिताद्मावतिस्वाहा सप्तवर्णकः ।
पद्मावत्या मनुः प्रोक्तः सर्ववश्यप्रदायकः ।। ६७ ।।

माया भुवनेशीबीजं, लोहितः पकारः, द्मावति स्वाहा स्वरूपम् । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्री छन्द उच्यते ।
पद्मावती देवता स्याद् ह्रींबीजं शक्तिरस्य तु ।। ६८ ।।

स्वाहा स्यान्माययाऽङ्गानि षड्दीर्घस्वरभिन्नया ।
कृत्वा देवीन्ततो ध्यायेत्साधकः स्थिरमानसः ।। ६९ ।।

रक्तोत्पलकरद्वन्द्वमब्जस्थाङ्कमलाननाम् ।
बन्धूकाभान्त्रिनयनान्नानाकल्पोज्ज्वलां स्मरेत् ।। ७० ।।

शक्तिपीठे यजेद्देवीम्पुराङ्गानि च मातरः ।
लोकपालांस्तदस्त्राणि पद्मावत्यर्चना मता ।। ७१ ।।

प्रयोगः सुगमः । तथा—

---

१. ख. घेदय ।

पुरश्चरणस्यैकलक्षम्प्रोक्तञ्च मन्त्रिभिः ।
तद्दशांशेन च घृतैर्जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ।। ७२ ।।

एवम्मनुं यो भजते सुभगः सर्वयोषिताम् ।
षट्कोणे विलिखेच्छक्तिं षट्सु कोणेषु संलिखेत् ।। ७३ ।।

मन्त्रार्णाञ्श्च ततो बाह्ये लिपिवीतमिदम्मतम् ।
रम्यम्पद्मावतीयन्त्रं वश्यदन्नाऽत्र संशयः ।। ७४ ।।

लिपिवीतं मातृकया । अन्यत्सुगमम् । तथा—

वाग्भवम्प्रथमम्बीजं द्वितीयम्भुवनेश्वरी ।
तृतीयञ्च रमाबीजमाद्यं लक्ष्मिपदन्ततः ।। ७५ ।।

स्वयम्भुवे[1] पदान्ते च प्रवदेद् भुवनेश्वरीम् ।
ज्येष्ठायै हृदयं चैव मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ।। ७६ ।।

वाग्भव ऐं, हृदयम् नमः । अन्यत्सुबोधम् ।

ऋषिरस्य स्मृतो ब्रह्मा छन्दोऽष्टिः समुदाहृतम् ।
देवता ज्येष्ठलक्ष्मीश्च श्रीमाये शक्तिबीजके ।। ७७ ।।

प्रमृज्य[2] त्रिःकरो[3] विद्वानङ्गन्यासमथाऽऽचरेत् ।
त्रिवेदाब्धीन्द्वग्नियुग्मवर्णैरङ्गानि षट् क्रमात् ।। ७८ ।।

शिरोभ्रूमध्यवक्त्रेषु बीजानान्त्रितयन्न्यसेत् ।
हृन्नाभ्याधारजान्वङ्घ्रयोः पदानाम्पञ्चकन्न्यसेत् ।। ७९ ।।

पद्मासनस्थामरुणामरुणाम्बरधारिणीम्[4] ।
कुङ्कुमक्षोदलिप्ताङ्गीम्प्रोत्फुल्लकमलेक्षणाम् ।। ८० ।।

मन्दस्मितमुखीञ्ज्येष्ठाङ्कलशं वसुपात्रकम् ।
दधानामूर्द्ध्वबाहुभ्याम्पाशमप्यङ्कुशन्तथा ।। ८१ ।।
चिन्तयेत्परया भक्त्या देवीमित्थम्प्रपूजयेत् ।

वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम् । कलशं सुधाढ्यम् ।

---

१. क. स्वयम्भुवने । २ ख. प्रमज्य । ३. ख. त्रिकरौ । ४. ख. मरुणामरुणार० ।

सम्यग्धर्मादिभिः पीठं मन्त्रवित्परिकल्पयेत् ।
लोहिताक्षी विरूपाक्षी कमला नीललोहिता ।। ८२ ।।

समदा वारुणी पुष्टिरमोघा विश्वमोहिनी ।
पूर्वादिदलमूलेषु मध्ये चाऽर्च्याः क्रमादिमाः ।। ८३ ।।

वदेच्च रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलशब्दतः ।
ज्यैष्ठायै धीमहि प्रोक्त्वा तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।। ८४ ।।

अनयाऽऽवाह्य ताञ्ज्येष्ठाम्पूजयेच्चन्दनादिभिः ।
अङ्गानि मातॄर्लोकेशांस्तदस्त्राणि प्रपूजयेत् ।। ८४ ।।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये०, मुखे—अष्टिछन्दसे०, हृदये—ज्येष्ठालक्ष्म्यै देवतायै०, गुह्ये—श्रीं बीजाय०, पादयोः—ह्रीं शक्तये इति विन्यस्य,

मूलविद्यया करौ प्रमृज्य "ऐं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, आद्यलक्ष्मि शिरसे स्वाहा, स्वयम्भुवे शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुं, ज्येष्ठायै नेत्राय वौषट्, नमः अस्त्राय फडि"त्यङ्गमन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय,

ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपरतत्त्वान्तम्पीठं सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादि—मध्यान्तं—"लोहिताक्ष्यै०, कमलायै०, नीललोहितायै०, मदायै०, वारुण्यै०, पुष्ट्यै०, अमोघायै०, विश्वमोहिन्यै नम" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य "ऐं ह्रीं श्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम" इति समस्तम्पीठं सम्पूज्य,

"रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि तन्नो लक्ष्मीःप्रचोदयात्" इत्यनया गायत्र्याऽऽवाह्य, मूलविद्ययाऽऽसनादिपुष्पोपचारान्तं कृत्वा, प्रागवदङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदले ब्राह्म्याद्याश्चतुरश्रे[1] लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपादिशेषं समापयेदिति । तथा—

लक्षन्तु प्रजपेन्मन्त्रञ्जुहुयात्तद्दशांशतः ।
पायसेन सुसिद्धेन सर्पिःसिक्तेन साधकः ।। ८५ ।।
तर्प्पणम्मार्ज्जनङ्कृत्वा ब्राह्मणाराधनञ्चरेत् ।

---

१. ख. ब्राह्म्याद्याश्च० ।

ज्येष्ठामनु यो भजते मनुष्यः,
सन्यासपूजाजपतर्पणैश्च ।
भोगानिह प्राप्य बहून्स मर्त्यः,
परत्र विष्णोः पदमेति नित्यम् ।। ८६ ।।

सारसङ्ग्रहे—खों खेऽन्त्यो[1]ऽन्त्यकलायुक्तस्त्रिवर्णोऽयन्त्रिकण्टकी ।

खं हकारः, उं स्वरूपं, तेन हुं; खे स्वरूपम्, अन्त्यः क्षकारः, अन्त्यकला विसर्गः, तेन क्षः इति । तथा—

ऋष्यादिकम्पुरा प्रोक्तं द्विरुक्तार्णैः षडङ्गकम् ।। ८७ ।।

नाभेर्नीलनिभामधोऽरुणरुचिङ्कण्ठात्सिताभानना,
न्तुन्दालम्बिभिराननैर्युगमितैर्दंष्ट्रोत्कटैर्भीषणाम् ।
दोपद्वन्द्वदरारिहस्तकमलाञ्चन्द्रोल्लसच्छेखरा-
मुद्यद्भालविलोचनां भयहरान्देवीं सदा भावयेत् ।। ८८ ।।

युगमितैश्चतुर्भिः, दरः शङ्खः, अरिश्चक्रं, वामाद्यूर्द्ध्वयोः शङ्खचक्रे, अन्ययोरन्यत् ।

ततः पूर्वोदितेनाऽथ वर्त्मनाऽमूं[2] यजेत्सुधीः ।
वर्णलक्षञ्जपेदन्ते दशांशेन घृतं हुनेत् ।। ८९ ।।

आत्मानन्देवतारूपं ध्यात्वा कृत्वा करद्वये ।
शूलमुद्राङ्ग्रहग्रस्तं स्पृष्ट्वैवम्प्रजपेन्मनुम् ।। ९० ।।

आशु ग्रहात्प्रमुच्येत नरो मन्त्रप्रभावतः ।
तथा—ईशयुक्पूर्वमन्त्रान्त्यौ मध्ये योषिद्भवेदियम् ।। ९१ ।।
वश्यत्रिकण्टकी विद्या त्र्यर्णा मन्त्रिभिरीरिता ।

पूर्वमन्त्रान्त्यौ खे क्षः इति वर्णौ, ईशयुतौ ईकारयुक्तौ, एतयोर्मध्ये योषित् स्त्री इत्यक्षरं यदि भवेदित्यर्थः ।

पूर्वोक्तवत्सर्वमस्य[3] कुर्यान्मन्त्री यथाविधि ।। ९२ ।।

पूर्ववत् वक्ष्यमाणत्वरिताविद्यावत् एतन्मन्त्रद्वयस्याऽपि ज्ञेयम् ।

---

१. क. खोऽन्त्यो । २. ख. ०ऽसुं । ३. क. ख. ०सर्वंसस्य ।

**उत्तरतन्त्रे**—

हान्तान्तपूर्वो मान्तश्च नान्तो णान्तस्तथैव च ।
कैकादश आदिषष्ठः खान्तो विष्णुपुरःसरः ।। ९३ ।।

एभिरष्टाक्षरैर्मन्त्रः शोणपद्मसमप्रभः ।
ॐकारम्पूर्वतः कृत्वा जप्यः सर्वैस्तु साधकैः ।। ९४ ।।

हान्तान्तपूर्वः शकारः, मान्तो यकारः, नान्तः पकारः, णान्तः तकारः, कैकादशः टकारः, आदिषष्ठः चकारः, खान्तः ककारः, विष्णुः अकारः, विष्णुपुरःसर इत्यनेनाऽकारादिः शकारान्तो मन्त्र इत्युक्तम् । तथा—

नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः छन्दोनुष्टुप् च वैष्णवी ।
देवता मुनिभिः प्रोक्ता सर्वसिद्धिप्रदा तथा ।। ९५ ।।

मूलमन्त्राक्षरैः कुर्यात्त्रिभिस्त्रिभिरनुक्रमात् ।
एकैकं वर्जयन्पश्चादङ्गानि षडनुक्रमात् ।। ९६ ।।

'अकच हृत्, कचट शिरः' इत्यादि प्रणवपूर्वं कुर्यात् । अकचैते सप्रणवा इति **हयशीर्षवचनात्** ।

ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे ।
बाह्वोर्गुह्ये पादयोश्च जङ्घयोर्जघने क्रमात् ।। ९७ ।।

विन्यसेदक्षराण्यष्टौ ॐकारं च तथा स्मरेत् ।
शोणपद्मप्रतीकाशाम्मुक्तमूर्द्धजलम्बिनीम् ।। ९८ ।।

चलत्काञ्चनसम्भूतकुण्डलोज्वलशालिनीम् ।
स्वर्णरत्नसमुन्नद्धकिरीटसूत्रधारिणीम् ।। ९९ ।।

शुक्लकृष्णारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम् ।
बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभसन्निभाम् ।। १०० ।।

कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
चतुर्भुजां विवसनाम्पीनोन्नतपयोधराम् ।। १०१ ।।

दक्षिणोर्द्ध्वेन निस्त्रिंशम्परेण सिद्धसूत्रकम् ।

निस्त्रिंशं खड्गं, सिद्धसूत्रं जपमाला ।

बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभीतिवरदायिनीम् ।। १०२ ।।

आनम्रनागनासोरुं गुप्तगुल्फां सुपार्ष्णिकाम् ।
गात्रेण रत्नस्तम्बञ्च सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ।। १०३ ।।

किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीम्मुहुर्मुहुः ।
पञ्चाननम्पुर.संस्थन्निरीक्षन्तीं स्ववाहनम् ।। १०४ ।।

ईदृशीमम्बिकान्ध्यात्वा ॐ नमः फडिति मस्तके ।
स्वकीये[1] सुमनो दद्यात्साऽहमेवं विचिन्त्य च ।। १०५ ।।

पञ्चाननम्मण्डलस्य मध्ये वश्यम्प्रपूजयेत् ।
आवाहनन्ततः कुर्याद्गायत्र्या शिरसा सह ।। १०६ ।।

महामायायै विद्महे चण्डिकायै सुधीमहि ।
एवमुक्त्वा ततः पश्चात्तन्नो[2] देवी प्रचोदयात् ।। १०७ ।।

ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धम्पुष्पं सधूपकम् ।
दीपादिकञ्च दद्यात्तु मोदकम्पायसन्तथा ।। १०८ ।।

पुष्पाञ्जलित्रयन्दद्यान्मूलमन्त्रेण शोभनम् ।
एवं सम्पूज्य मध्ये तु मन्त्रेणाऽङ्गानि पूजयेत् ।। १०९ ।।

सिद्धसूत्रञ्च खड्गञ्च खड्गमन्त्रेण पूजयेत् ।
शैलपुत्रीञ्चण्डघण्टां स्कन्दमातरमेव च ।। ११० ।।

कालरात्रिञ्च दिक्पत्रेष्वर्च्चयेच्चन्दनादिभिः ।
चण्डिकामथ कूष्माण्डीन्तथा कात्यायनीं शुभाम् ।। १११ ।।

महागौरीञ्चाऽग्निकोणनैर्ऋत्यादिषु पूजयेत् ।
ततः सम्पूज्य लोकेशांस्तदस्त्राणि च मन्त्रवित् ।। ११२ ।।

महामायान्नमामीति मूलमन्त्रेण चाऽष्टधा ।
पूजयेत्पद्ममध्ये तु सुमनोऽञ्जलिभिस्तथा ।। ११३ ।।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।। ११४ ।।

---

१. क. सुकीये । २. ख. ०त्ततो ।

सप्तधाऽऽवर्त्तनङ्कृत्वा स्तुतिमेतान्तु साधकः ।
पञ्चप्रणामान्कुर्वीत ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रकैः ।। ११५ ।।
योनिमुद्रान्ततः पश्चाद्दर्शयित्वा विसर्ज्जयेत् ।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि-नारदाय ऋषये नमः, मुखे - अनुष्टुपछन्दसे० हृदये-श्रीवैष्णव्यै महामायादेवतायै नमः" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा 'ॐ अ क च हृदयाय नमः, ॐ क च ट शिरसे स्वाहा, ॐ च ट त शिखायै वषट्, ॐ ट त य कवचाय हुँ, ॐ तपय नेत्राय वौषट्, ॐ प य श अस्त्राय फट्" इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं कृत्वा,

ध्यानानन्तरं "ॐ नमः फडिति" स्वशिरसि पुष्पं दत्वा, मानसपूजादि-परतत्वपूजान्ते—"ॐ पञ्चाननाय नम" इति पीठमध्ये सम्पूज्य, "ॐ महामायायै विद्महे चण्डिकायै सुधीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् स्वाहा" इत्यन्ते "श्रीवैष्णवि इहाऽऽगच्छाऽऽगच्छे"त्यावाह्य, मूलेन स्थापनादिपरमीकरणान्तं कृत्वा, प्राण-स्थापनादिपुष्पोपचारान्ते मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा, प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु देव्यग्रादि-चतुर्दलेषु—"ॐ शैलपुत्र्यै नमः, ॐ चण्डघण्टायै०, ॐ स्कन्दमात्रे०, ॐ कालरात्र्यै०, आग्नेयादिदलेषु—ॐ चण्डिकायै०, ॐ कूष्माण्डयै०, ॐ कात्यायन्यै०, ॐ महागौर्य्यै०" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्येन्द्रादि-पूजानन्तरं "मूलान्ते महामायां नमामी"ति पुष्पाञ्जलयष्टकं देव्यै समर्प्य, धूपा-दिशेष समापयेदिति । तथा—

लक्षद्वयं[1] भवेदस्य पुरश्चरणकर्म वै ।
दशांशहोमश्चाऽऽज्येन कर्त्तव्यस्तर्प्पणादिकम् ।। ११६ ।।
ॐ नमोऽन्ते[2] महामायायै मनुर्वसुवर्णकः ।
तथा— ॐनमोन्ते च वैष्णव्यै मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः ।
एतन्मन्त्रद्वयस्याऽपि सर्वम्पूर्वोक्तमाचरेत् ।। ११७ ।।

१. क. लक्षं द्वयं । २. क. नमोते ।

कालिकापुराणे—

अशुचिर्न महामायाम्पूजयेत्तु कदाचन ।
अवश्यन्तु स्मरेन्मन्त्रं योऽतिभक्तियुतो नरः ११८ ॥

दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणञ्च न विद्यते ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं व्रजेत् ॥ ११९ ॥

जानूर्द्ध्वं क्षतजे जाते नित्यकर्माणि सन्त्यजेत् ।
नैमित्तिकन्तु तदधः स्रवद्रक्तो न चाऽऽचरेत् ॥ १२० ॥

लोतके तु समुत्पन्ने क्षुरकर्मणि मैथुने ।
धूमोद्गारे तथा वान्ते नित्यकर्माणि सन्त्यजेत् ॥ १२१ ॥

द्रव्ययुक्तेऽत्यजीर्णे च नैव भुक्त्वा च किञ्चन ।
कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा ॥ १२२ ॥

जलस्याऽपि नरश्रेष्ठ भोजनाद्भेषजादृते ।
नित्यक्रियां निवर्त्तेत सह नैमित्तिकैः सदा ॥ १२३ ॥

जलौकाङ्गूढपादञ्च कृमिकण्डूपदादिकम् ।
कामाद्धस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि सन्त्यजेत् ॥ १२४ ॥

विशेषतः शिवपूजाम्प्रमीतपितृको नरः ।
यावद्वत्सरपर्यन्तम्मनसाऽपि न चाऽऽचरेत् ॥ १२५ ॥

[महागुरुनिपाते च काम्यङ्किञ्चिन्न चाऽऽचरेत् ।
आर्त्विज्यम्ब्रह्मयज्ञञ्च श्राद्धं देवक्रियान्तथा ॥ १२६ ॥

गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्यैव च पाणिना ।
न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतःपाते च भैरव ॥ १२७ ॥

स्मरेद्ध्यायेन्मनसा जपेदित्यर्थः । अतिभक्तियुतः सततेष्टदेवतागतचित्तः नित्यमपि नाऽऽचरेदित्यर्थः । स्रवदिति वर्त्तमानमविवक्षितम् ।

नाभेरूर्द्ध्वमधो वाऽपि यस्य क्षरति शोणितम् ।
अशुचिस्तदहः कर्म कुर्वन्नरकमाप्नुयात् ॥ १२८ ॥

इति **भविष्यपुराणवचनात्**—तदधः जान्वधः नित्यं कुर्यादेवेत्यर्थः । लोतके अश्रुजले, 'लोतमश्रुणि चेरितमि'ति **विश्वप्रकाशकोशात्** । द्रव्ये अन्नादौ, जलस्याऽपीति भेषजात् भेषजनिमित्तमपि जलस्याऽपि भोजनादृते इत्यर्थः । गूढपादः सर्पः, गण्डूपदः किञ्चुलकः, आर्त्विज्यं ऋत्विक्त्वमाक्षिप्य तिरस्कृत्य पाणिनेत्युपलक्षणम् ।

**योगार्णवे**—

वान्तोद्गारे[1] च क्षतजे लोतके च समुद्भवे ।
गूढपादस्पर्शने च उपस्थस्पर्शने तथा ।। १२९ ।।

रेतःपाते तथा क्षौरे प्रमीतपितृके तथा ।
नित्यन्नैमित्तिकङ्काम्यस्मनसाऽपि न चाऽऽचरेत् ।। १३० ।।

उद्गारे धूमोद्गारे, लोतके,

क्रन्दनादश्रुपाते तु नित्यनैमित्तिकं त्यजेत् ।
तदेव हर्षात्सञ्जातङ्कर्म कुर्वन्न दुष्यति ।। १३१ ।।

इति **मत्स्यपुराणोक्तेः** । उपस्थस्पर्शे कामतः शौचे, 'गृहीतशिश्नश्चोत्थाये'ति तत्स्पर्शोक्तेः । प्रमीतपितृक इत्युपलक्षणं तेन मातर्यपि प्रमीतायाम् ।

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याऽशुचिर्भवेत्[2] ।
नाऽपि दैवन्न वा पैत्रं यावत्पूर्णो न वत्सरः ।। १३२ ।।

इति **देवीपुराणवचनात्** । एतत्सर्वं महामायोपासकपरम्प्रकरणादिति । अथवा सकामपरम् । 'अथ सूतकिनः पूजां वदाम्यागमबोधितामि'त्यादि प्राक्पूजाप्रकरणोक्ततत्त्वसारसंहितावचनादिति । अन्यथा पूर्वलिखितवचनानां वैयर्थ्यापत्तिः ।

**इति गोस्वामिजगन्निवासात्मज-श्रीगोस्वामि-**
**शिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**सप्तचत्वारिंशस्तरङ्गः ।। ४७ ।।**

—०—

१. क. वान्तो हारे । २. ख. ०तस्याशुर्भवेत् ।

## [ अष्टचत्वारिंशस्तरङ्गः ]

### [ परिमलमन्त्रविधानम् ]

फेत्कारिणीतन्त्रे—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रम्परिमलात्मकम् ।
येन विज्ञातमात्रेण नाऽसाध्यम्भुवनत्रये ॥ १ ॥

रुद्रजाया महायोगिन्यन्ते गौरिपदं वदेत् ।
भुवनभयङ्करीति वर्मान्तमुच्चरेन्मनुम् ॥ २ ॥

रुद्रजाया मायाबीजं, योगिनि स्वरूपं, गौरि स्वरूपं, भुवनभयङ्करि स्वरूपं, वर्म हुङ्कारः । तथा—

अङ्गिराश्च ऋषिर्देवी गायत्रीछन्द उच्यते ।
सिंहवक्त्रा च भूतानां भयङ्कारिण्यतः परम् ॥ ३ ॥

महाकृत्या देवता चेत्युक्त्वा न्यासं समाचरेत् ।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन मन्त्रार्द्धेनाऽत्र योगिनी ॥ ४ ॥

हृदयञ्च ततोऽर्द्धेन मन्त्रार्द्धेण शिरः क्रमात् ।
शिखाकवचनेत्रास्त्रमेवन्न्यासक्रमस्ततः ॥ ५ ॥

सिंहाननां कृशमुखीं लम्बमानपयोधराम् ।
दंष्ट्राकरालवदनान्त्रिनेत्रां सर्वतोज्ज्वलाम् ॥ ६ ॥

कृष्णकञ्चुकसंवीतां विधूमाग्निसमप्रभाम् ।
त्रिशूलचक्रचषकखट्वाङ्गकरपङ्कजाम्[1] ॥ ७ ॥

लेलिहानमहाजिह्वां विद्युत्प्रेक्षणभीषणाम् ।
ध्यात्वा कृत्यां विधानेन पूजयेन्मन्त्रवित्तमः ॥ ८ ॥

ध्यात्वा कृत्यामर्चयीत रक्तैः पुष्पैश्च वश्यके ।
कृष्णाम्मारणकृत्येषु मांसरक्तासवैस्तथा ॥ ९ ॥

कृत्याञ्च मदनां सर्वकृत्यामुत्सादिनीन्तथा ।
भीषणां श्रीमतीञ्चैव प्रतिष्ठाञ्च ततः परम् ॥ १० ॥

---

१. ख. खट्वाकर० ।

विद्यामभ्यर्चयेदष्टपत्रेषु क्रमतः सुधीः ।
पूर्वे तु शाङ्करीं नाम शुभ्रवर्णां वरान्विताम् ।। ११ ।।

द्विभुजां सौम्यवदनां पाशाङ्कुशधरां शिवाम् ।
दक्षिणे भीरिकां नाम लम्बजिह्वामधोमुखीम् ।। १२ ।।

कृष्णवर्णां रक्तकेशीं रक्तमाल्यानुलेपनाम् ।
चतुर्भुजां सिंहनादज्वलच्छूलकपालिनीम् ।। १३ ।।

खड्गहस्तां शिरोमालां सर्वाभरणभूषिताम् ।
पश्चिमे वारुणीन्नाम[1] स्वर्णवर्णां हसन्मुखीम् ।। १४ ।।

सुवर्णमालिकां शुभ्रदंष्ट्रामभयदां[2] सदा ।
उत्तरे भीषिकान्नाम चतुर्वक्त्राम्भयङ्करीम् ।। १५ ।।
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रन्नित्यमष्टोत्तरं शतम् ।

।। अथ प्रयोगः ।।

प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि अङ्गिरसे ऋषये नमः, मुखे—देवीगायत्रीछन्दसे०, हृदये—महाकृत्यायै देवतायै नम" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्राँ ह्रीँ महायोगिनि गौरि हृदयाय नमः, ह्रीँ ह्रीँ भुवनभयङ्करि हुँ फट् शिरसे स्वाहा, ह्रूँ ह्रीँ महायोगिनि गौरि फट् शिखायै वषट्, ह्रैँ ह्रीँ भुवनभयङ्करि हुँ फट् कवचाय हुँ, ह्रौँ ह्रीँ महायोगिनि गौरि फट् नेत्राय वौषट्, ह्रः ह्रीँ भुवनभयङ्करि फट् अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रैः करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते भुवनेशीपीठं सम्पूज्य, तत्राऽऽवाह्याऽङ्गपूजान्तं प्राग्वद्विधाय,

देव्याः पुरोभागे—"ॐ शाङ्कर्यै नमः, दक्षिणे—भीरिकायै०, वामे-वारुण्यै०, उत्तरे—भीषिकायै०" इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु देव्यग्रमारभ्य—"ॐ कृत्यायै नमः, एवं मदनायै०, सर्वकृत्यायै०, [सर्वकल्पायै०][3] उत्सादिन्यै०, भीषण्यै०, श्रीमत्यै०, प्रतिष्ठायै०, विद्यायै नम" इति सम्पूज्य, अथवा षडङ्गपूजानन्तरमष्टदलेषु

१. क. वारुणान्नाम । २. ख. ०ममयदां । ३. [–] सूत्रे तु पदस्याऽस्याऽभावः ।

प्रोक्तशक्तीः सम्पूज्याऽभ्यन्तरे प्रोक्तशक्तिचतुष्टयं सम्पूज्य,लोकपालार्चादिकं पूर्ववत्कुर्यादिति । तथा—

अथाऽस्या विनियोगस्तु कर्त्तव्यो मन्त्रिणा सदा ।
कालं विदित्वा प्रतिमाम्मधूच्छिष्टेन कारयेत् ।। १६ ।।

द्वादशाङ्गुलकां शत्रोर्नखरोमसमन्विताम् ।
हृदये नामधेये च फट्कारं सप्तमर्मके ।। १७ ।।

अमुष्य प्राण इह चाऽमुष्य जीव इह स्थितः ।
अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुः ।। १८ ।।

श्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणानिहाऽऽनयाऽग्निवल्लभा ।
इति प्राणम्प्रतिष्ठाप्य मरिचैर्लेपयेत्ततः ।। १९ ।।

मृतब्राह्मणचण्डालकेशाभ्याम्पादयोः पृथक् ।
बद्ध्वा कारस्करमये तोरणे चाऽप्यधोमुखीम् ।। २० ।।

तस्याऽधो मेखलायुक्तन्त्रिकोणं वह्निकुण्डकम् ।
चन्द्रगौरं विधायाऽग्निं परिस्तीर्य्य शरैस्तृणैः ।। २१ ।।

विभीतकपरिध्या च कल्पयेद्यस्य मारणम् ।
जुहुयान्निम्बतैलाक्तैः काकोलूकोत्थपक्षकैः ।। २२ ।।

दारयैनं शोषयैनं[1] मारयेत्यभिधाय च ।
अष्टोत्तरशतेनैवमनया जुहुयाद्बुधः ।। २३ ।।

होमान्ते विधिवत्कृत्यामाराध्याऽग्नेश्च सन्निधौ ।
यो मे कण्ठग्रहो वाऽतिदूरस्थो[2] वाऽन्तिकेऽस्ति च ।। २४ ।।

पिब क्रव्यमसृक् तस्य त्वेवमुक्त्वा निवेदयेत् ।
संरक्ष्याऽग्निं विधानेन नवरात्रं समापयेत् ।। २५ ।।

मृतस्तिष्ठति तेनांऽशस्तावदस्य रिपोर्मृतिः ।
अर्कक्षीरेण मरिचम्पिष्ट्वा सिद्धार्थमेव च ।। २६ ।।

१. ख. शांषयेनं । २. क. ख. ०दरस्थो ।

जले सँल्लोड्य मन्त्रेण रिपुन्ध्यात्वा निरुद्धदृक् ।
कृष्णाम्बरोत्तरीयोग्रः पादेनाऽऽक्रम्य तद्रिपुम् ॥ २७ ॥

वज्रशूलमिति ध्यात्वाऽद्भिस्तस्योपरि क्षिपेत् ।
नवरात्रान्तरे शत्रुर्म्रियते नाऽत्र संशयः ॥ २८ ॥

हरिसिद्धे चितावह्नौ तैलसिक्तैर्विभीतकैः ।
जुह्वतो म्रियते शत्रुः सत्यमौशनसोदितम् ॥ २९ ॥

रिपोः प्रतिकृतिङ्कृत्वा साध्यर्क्षफलकेऽमले ।
अर्कक्षीरेण मरिचम्पिष्ट्वा तत्रैव लेपयेत् ॥ ३० ॥

फूत्कारं हृदये कृत्वा शिवन्निर्माय कूपके ।
क्षिपेत्कृष्णचतुर्दश्याञ्जप्त्वा मन्त्रं सहस्रशः ॥ ३१ ॥

सद्योऽवगाहनङ्कृत्वा त्वस्यामेव च रक्षणम् ।
मन्त्रं जप्त्वा विधानेन भेदयेत्सिंहमुद्रया ॥ ३२ ॥

षण्मासान्म्रियते शत्रुः सन्ध्ययोरुभयोरपि ।
उद्धृतं वायुना पत्रं शुष्कं वैभ्रान्तकन्ततः ॥ ३३ ॥

गृहीत्वा च लिखेन्मन्त्री कृष्णसर्पस्य शोणितैः ।
नामधेयं रिपोरन्ते वायुबीजन्नियोजयेत् ॥ ३४ ॥

निखनेत्तस्य गेहे तु काकवद्भ्रमते ध्रुवम् ।
वातोद्धृतैः शुष्कपत्रैः काष्ठैरशनिपातितैः ॥ ३५ ॥

उष्ट्रास्थिना शवाङ्गारैः शत्रोरुच्चाटनम्भवेत् ।
दूर्वाङ्गुडूचीङ्गव्येन सर्पिषा तिलतण्डुलैः ॥ ३६ ॥

अन्नैः समिद्भिः पालाशैः शान्तिङ्कुर्याद्विचक्षणः ।
लक्ष्मीर्विल्वफलैः पत्रैर्नन्द्यावर्त्तैः श्रिये तथा ॥ ३७ ॥

रक्तपुष्पैरपामार्गैरङ्कालैश्च सुभद्रकैः ।
मधुरत्रयसंसिक्तैरेभिः कुर्यात्तु वश्यकम् ॥ ३८ ॥
उक्तमौशनसे तन्त्रे च्यवनस्याऽपि कथ्यते ।
शान्तिङ्कृत्वा विधानेन जपेत्परिमलन्त्विदम् ॥ ३९ ॥

महाव्याधिप्रशमनन्नित्यमष्टाधिकं शतम् ।
जपेदेकाग्रचित्तस्तु लोकवश्यकरम्परम् ।। ४० ।।

मनसा चिन्तयेत्कृत्याङ्गजारूढां वियद्गताम् ।
तस्य वश्यो भवेत्क्षिप्रमश्वारूढान्तथा भवेत् ।। ४१ ।।

चोरव्याघ्रमृगादीनां सलिलादिभयापहाम् ।
सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वपापविनाशनम् ।। ४२ ।।

सप्ताभिमन्त्रितन्तोयम्पीत्वा मन्त्री समाहितः ।
मेधावी च भवेद्वाग्मी तावज्जप्त्वाऽभिषेकतः ।। ४३ ।।

सप्ताऽभिमन्त्रितङ्कृत्वा विषमप्यमृतम्भवेत् ।
पक्षम्मासं द्विमासं वा षण्मासं वत्सरन्तु वा ।। ४४ ।।

एवं यः कुरुते मर्त्यः स पुण्याङ्गतिमाप्नुयात् ।
अथ वक्ष्ये विशेषेण महाशान्तिविधिक्रमम् ।। ४५ ।।

सर्वसिद्धिकरम्पुण्यं सर्वपापविनाशनम् ।
सर्वमुद्राप्रहरणं सर्वारिष्टविनाशनम्[1] ।। ४६ ।।

अकालमृत्युमथनं सदा विजयवर्द्धनम् ।
आयुष्यम्पावनम्पुष्टिलक्ष्मीसौभाग्यवश्यकृत् ।। ४७ ।।

पुत्रदम्पौत्रदञ्चैव अलक्ष्मीमलनाशनम् ।
महाव्याधिप्रशमनमपस्मारविनाशनम् ।। ४८ ।।

योगिनीभूतवेतालाः प्रेतकूष्माण्डपन्नगाः ।
तत्र स्थाने न तिष्ठन्ति डाकिन्याद्या विशेषतः ।। ४९ ।।

कृत्यामभ्यर्चयेद्वत्से यथाविधिपुरःसरम् ।
षोडशारँल्लिखेत्पद्मं योनियुक्तं सविन्दुकम् ।। ५० ।।

तन्मध्येऽष्टदलं लिख्य पकारादि[2] न्यसेत्क्रमात् ।
तन्मध्ये रसकोणन्तु लिखेन्मूलमनुं स्मरन् ।। ५१ ।।

---

१. ख. ०रिष्टनाशनम् । २. ख. यकारादि ।

चन्द्रबिम्बँल्लिखेन्मध्ये तस्योर्द्ध्वे[1] प्रेतमालिखेत् ।
तस्य मध्ये न्यसेत्कुम्भं वस्त्रस्रग्रत्नभूषितम् ।। ५२ ।।

कुम्भमध्ये न्यसेत्कृत्यां सर्वलक्षणसंयुताम् ।
अर्चयेच्च यथान्यासम्पायसन्तु निवेदयेत् ।। ५३ ।।

परितोऽष्टघटे न्यस्येदसिताङ्गादिभैरवान् ।
गन्धपुष्पादिनाऽभ्यर्च्य तद्बाह्ये क्षेत्रपालकान् ।। ५४ ।।

लोकेशान्तं यजेद्देवि तदग्रे होममाचरेत् ।
जुहुयादाज्यसंसिक्ताऽपामार्गत्तिलसर्षपान् ।। ५५ ।।

दूर्वाग्रखदिराश्वत्थैः प्रत्येकन्तु शताष्टकम् ।
कुण्डे वा स्थण्डिले वाऽपि होमकर्म समाचरेत् ।। ५६ ।।

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लक्ष्मीं ध्यायेद्यथाविधि ।
कुम्भमध्ये न्यसेद्देवीं दक्षिणे तु श्रियं स्मरेत् ।। ५७ ।।

वामपार्श्वे यजेद्देवीं हृल्लेखाम्परमेश्वरीम् ।
तस्यैव वामपार्श्वे तु पूजयेद्गणनायकम् ।। ५८ ।।

अयुतम्मूलमन्त्रन्तु जपेन्मृत्युविनाशनम् ।
नियुतम्भ्रूणहत्यान्तु यजेत्परिमलं बिदुः ।। ५९ ।।

महाव्याधिप्रशमनन्तावज्जप्त्वाऽभिषेकतः ।
एवं यः कुरुते मर्त्यः स पुण्याङ्गतिमाप्नुयात् ।। ६० ।।

येन ज्ञातम्परिमलं यस्य वक्त्रे स्थितं सदा ।
तस्याऽसाध्यं न विद्येत व्याध्यरिभ्यो भयन्नहि ।। ६१ ।।

इत्यादि **वाखुले तन्त्रे** ख्यातः परिमलो मनुः ।
महाशान्तिकरः पुंसां दुःखदारिद्र्यनाशनः ।। ६२ ।।

**योगिनीतन्त्रे**—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देव्याः संक्षेपतो विधिम् ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।। ६३ ।।

---

१. क. तस्योर्द्ध्व ।

मन्त्रोद्धारम्प्रवक्ष्यामि तथा ध्यानमनुत्तमम् ।
लक्ष्मीर्लज्जा तथा माया मात्रा द्वादशिका तथा ।। ६४ ।।

वज्रवैरोचनीये च माये फट् स्वाहया युते ।
लक्ष्मीबीजं यदाद्यं स्यात्तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ।। ६५ ।।

लज्जाबीजेन चाऽऽद्येन वशमायान्ति मानवाः ।
मायाबीजेन चाऽऽद्येन महापातकनाशनम् ।। ६६ ।।

मात्राद्वादशिकं[1] बीजमाद्यं स्यान्मुक्तिदायकम् ।
अनाद्यबीजमाद्यन्तु कीर्त्तयेन्मनुरुत्तमः ।। ६७ ।।

वज्रवैरोचनीये च मायायुग्ममतः परम् ।
फट् स्वाहया समायुक्तं मन्त्रमाहुरनुत्तमम् ।। ६८ ।।
भुक्तिमुक्तिप्रदम्पुण्यं सर्वसिद्धिफलप्रदम् ।

लक्ष्मीबीजं श्रीं, लज्जा भुवनेशीबीजं, माया हूँ, 'माया लज्जा च हूङ्कारो ह्रीङ्कारश्च वे'ति **करङ्किणीतन्त्रवचनात्** । मात्राद्वादशिका ऐं, माया हूं, बीजद्वयं; अनादिबीजं प्रणवः । षोडशाक्षर एको विशिष्टो मन्त्रः तारादिस्तु त्रयोदशाक्षर एव ।

मन्त्रवर्णेषु ये देवाश्छन्दांसि ऋषयश्च वै ।
तान्सर्वान् श्रोतुमिच्छामि कथयस्व प्रसादतः ।। ६९ ।।

**श्रीभैरव उवाच—**

प्रणवे तु त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वकारे वरुणः साक्षाज्जकारे वसुधाधिपः[2] ।। ७० ।।

[रेफे हुताशनो देवो वकारे वसुधाधिपः ।
ऐंकारे त्रिपुरा देवी रेफे त्रिपुरभैरवी ।। ७१ ।।

त्रैलोक्यविजया देवि सदैवोंकारसंस्थिता ।
चकारे चन्द्रमा देवो नकारे][3] गिरिनायकः ।। ७२ ।।

१. ख. द्वादशकं । २. क. गिरिनायकः । ३. [—] कोष्ठगोऽयमंशो नाऽस्ति क. पुस्तके ।

ईकारे कमला साक्षाद्यकारे च सरस्वती ।
मायायुग्मे[1] सदा देवी प्रकृत्या सह सङ्गता ।। ७३ ।।

प्रकृतिश्चैव फट्कारे स्वाकारे कुसुमायुधः ।[2]
ह्राकारे च रतिस्तिष्ठेदेवम्मन्त्रसमुच्चयः ।। ७४ ।।

छन्दःसम्म्राडिति प्रोक्तम्मन्त्रे त्रैलोक्यसुन्दरि ।
ब्रह्मा मुनिः समुद्दिष्टो महेश्वरि महामनोः ।। ७५ ।।

चतुर्णामादिबीजानां शृणु देवि वदाम्यहम् ।
लक्ष्मीः प्रथमबीजे स्याल्लज्जाबीजे मनोभवः ।। ७६ ।।

तृतीयेऽस्मिन्महादेवी महापातकनाशिनी ।
महादेवी मूलदेवीत्यर्थः । चतुर्थे सरस्वती इति ।
चतुर्थे तु गुणातीता मुक्तिविद्याप्रदायिका ।। ७७ ।।

मन्त्रोद्धार इति प्रोक्तो ध्यानञ्च कथयाम्यहम् ।

पञ्चाङ्गमन्त्रास्तु प्रागेव नित्यपूजाप्रमाणनिरूपणे करन्यासप्रकरणे प्रमाणत्वेनोद्धृताः । न्यासः प्रयोगे लिख्यते च ।

ध्यानमस्यास्त्रिधा प्रोक्तं सकलन्निष्कलन्तथा ।। ७८ ।।

कलातीतमिति प्राज्ञे कथयामि यथातथम् ।
स्वनाभौ नीरजं ध्यायेच्छुद्धं विकसितं सितम् ।। ७९ ।।

तत्पद्मकोशमध्ये तु मण्डलञ्चण्डरोचिषः ।
जपाकुसुमसङ्काशं रक्तबन्धूकसन्निभम् ।। ८० ।।

खड्गछिन्नं करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् ।
प्रसारितमुखीम्भीमाँल्लेलिहानोग्रजिह्विकाम् ।। ८१ ।।

---

१. ख. मायाग्मा । २. इतः परमयमंशः क. पुस्तके व्युत्क्रमरूपेण द्विरुक्त्या वा चाऽङ्कितः—

हाकारे चन्द्रमा देवो नकारे गिरिनायकः ।
ईकारे कमला साक्षाद्यकारे च सरस्वती ।।
मायायुग्मे सदा देवी प्रकृत्या सह सङ्गता ।
प्रकृतिश्चैव फट्कारे स्वाकारे कुसुमायुधः ।।

पिबन्तीं रौधिरीन्धारां निजकण्ठसमुद्भवाम् ।
विकीर्णकेशपाशाञ्च नानापुष्पसमन्विताम् ।। ८२ ।।

दक्षिणे च करे कर्त्रीम्मुण्डमालाविभूषिताम् ।
दिगम्बराम्महारूपाम्प्रत्यालीढपदस्थिताम् ।। ८३ ।।

अस्थिमालाधरान्देवीन्नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
षोडशवर्षदेशीयाम्पीनोत्तुङ्गकुचद्वयाम् ।। ८४ ।।

रतिकामोपरिस्थितां[1] केचिद्ध्यायन्ति मन्त्रिणः ।
विपरीतरतस्थौ तु ध्यायेद्रतिमनोभवौ ।। ८५ ।।

वर्णिनीडाकिनीयुक्तां वामदक्षिणपार्श्वयोः ।
दक्षिणे वर्णिनीं ध्यायेद्वामपार्श्वे तु डाकिनीम् ।। ८६ ।।

वर्णिनीं लोहितां सौम्याम्मुक्तकेशीन्दिगम्बराम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ।। ८७ ।।

देवीङ्कण्ठोच्छलद्रक्तधारापानम्प्रकुर्वतीम् ।
अस्थिमालाधरान्देवीन्नागयज्ञोपवीतिनीम् ।। ८८ ।।

डाकिनीं वामपार्श्वे च कल्पान्तजलदोपमाम् ।
विद्युच्छटाभनयनान्दन्तपङ्क्तिबलाकिनीम् ।। ८९ ।।

दंष्ट्राकरालवदनाम्पीनोत्तुङ्गकुचद्वयाम् ।
महादेवीम्मुक्तकेशीम्महाघोरान्दिगम्बराम् ।। ९० ।।

लेलिहानमहाजिह्वाम्मुण्डमालाविभूषिताम् ।
कपालकर्त्त्रिकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ।। ९१ ।।

देवीं गलोच्छलद्रक्तधारापानम्प्रकुर्वतीम् ।
करस्थनृकपालेन भीषणेनाऽतिभीषणाम् ।। ९२ ।।

आभ्यान्निषेव्यमाणान्तां ध्यायेद्देवीं विचक्षणः ।

प्रत्यालीढपदस्थितां रतिकामयोर्निर्भरयन्त्रणाभिप्रायेण सङ्कुचितचरणाभ्यां स्थितामित्यर्थः ।। **इति सकलध्यानम्** ।।

---

१. ख. ०स्थेतां ।

अथ निष्कलध्यानम्—

अपरञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि यथाक्रमम् ।
स्वनाभौ नीरजं शुभ्रं भानुमण्डलमण्डितम् ।। ९३ ।।

योनिचक्रसमायुक्तं गुणत्रितयसंयुतम् ।
तत्र मध्ये महादेवीञ्चिन्तयेत्सूक्ष्मरूपिणीम् ।। ९४ ।।

प्रदीपकलिकाकारामद्वितीयव्यवस्थिताम्[1] ।
करकच्छपिकायुक्ताम्बद्धपद्मासनास्थिताम् ।। ९५ ।।

योनिमुद्रासमायुक्तां हृदयस्थितलोचनाम् ।
पीनवक्षोजयुगलां ध्यानञ्चातिकलं स्मृतम् ।। ९६ ।।

ध्येयमेतद्गृहस्थानां यतीनान्तु निशामयः ।
अन्तरे स्वशरीरस्य नाभिनीरजसङ्गताम् ।। ९७ ।।

निर्लेपान्निर्गुणां सौम्याम्बालचन्द्रप्रभामिव ।
समाधिमात्रगम्याञ्च गुणत्रितयवेष्टिताम् ।। ९८ ।।

कलातीतां गुणातीताम्मुक्तिमार्गप्रदायिनीम् ।
अथाऽस्या मण्डलं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः ।। ९९ ।।

पद्ममष्टदलङ् कुर्यात्कर्णिकाकेसरोज्वलम् ।
तस्य मध्ये प्रकुर्वीत मण्डलञ्चण्डरोचिषः ।। १०० ।।

मण्डलं वर्त्तुलम् ।

रजःसत्वतमोरेखात्रयां योनिन्तु मध्यतः ।
मायायुग्मन्तथाऽन्यस्य फडक्षरसमन्विताम् ।। १०१ ।।

योनिं स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणं न्यस्य मध्ये विलिख्य—

सितं कुर्याद्दलम्पूर्वमाग्नेयं रक्तवर्णकम् ।
याम्यं कृष्णमतः पीतं शुक्लं रक्तमतः क्रमात् ।। १०२ ।।

---

१. ख. प्रदीपकलिकारामं० ।

कृष्णम्पीतम्प्रकुर्वीत कर्णिकाञ्चैव मध्यतः ।

चकारात्पीतामेव कर्णिकां कुर्यादित्यर्थः ।

रजःसत्वतमोरेखा रक्तशुक्लासिताः क्रमात् ॥ १०३ ॥

योनिरिति शेषः ।

चतुर्द्वारसमायुक्तं क्षेत्रपालैरधिष्टितम् ।

चतुर्द्वारयुक्तं चतुरश्रत्रयमिति शेषः ।

पूर्वद्वारे करालञ्च विकरालञ्च दक्षिणे ॥ १०४ ॥

पश्चिमे चाऽतिकालञ्च महाकालन्तथोत्तरे ।
प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजामेषां समाचरेत् ॥ १०५ ॥

प्रकाशनाभिधान्देवीं योगिनीण्डाकिनीन्तथा ।
भैरवीञ्च महापूर्वाम्भैरवीन्तदनन्तरम् ॥ १०६ ॥

इन्द्राणीञ्च शताक्षीञ्च ततः संहारिणीङ्क्रमात् ।
पूर्वादिके दले शक्तीः[1] पूजयेत्क्रमयोगतः ॥ १०७ ॥

प्रणवादिनमोऽन्तेन शक्तिपूजां समाचरेत् ।
ततो देव्यासनम्मध्ये देवीमूर्त्तिन्ततः परम् ॥ १०८ ॥

मध्ये देव्यासनं पूजयेदिति शेषः ।

तस्यामावाहनं कुर्यान्मिन्त्रेणाऽनेन साधकः ।
प्रणवम्प्रथमङ्कृत्वा सर्वबुद्धिप्रदे ततः ॥ १०९ ॥

वर्णिनीये ततो वाच्यं सर्वसिद्धिप्रदेततः ।
डाकिनीये ततो वाच्यन्देवीनाम ततः परम् ॥ ११० ॥

एह्येहीति ततो वाच्यमिहेति तदनन्तरम् ।
तिष्ठ तिष्ठेति च तथा माये च तदनन्तरम् ॥ १११ ॥

फडक्षरसमायुक्तं स्वाहेति तदनन्तरम् ।
इत्यावाहनमुद्दिष्टं स्थापनेन समन्वितम् ॥ ११२ ॥

---

१. ख. शक्तिः ।

देवीनाम - 'वज्रवैरोचनीये च एह्येहीति ततो वदेत्' ।
इति **करङ्किणीतन्त्रवचनात्** ।

पुष्पाञ्जलित्रयं कृत्वा यजेन्मन्त्रमनुत्तमम् ।। ११३ ।।

श्रियो मन्त्रेण सम्पूज्य मण्डलस्थाम्महेश्वरीम् ।
सम्पूजयेत्ततोऽङ्गानि ततोऽस्त्रं मनुवित्तमः ।। ११४ ।।

अस्त्रं कर्त्रीं, अङ्गार्च्चनात्पूर्वं देवीद्वयम्पूज्यम् ।
वर्णिनीण्डाकिनीं यष्ट्वा ततोऽङ्गानि समर्च्चयेत् ।

इति **करङ्किणीतन्त्रवचनात्** ।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे - सम्म्राट्छन्दसे नमः, हृदये—श्रीछिन्नमस्तायै देवतायै नम" इति विन्यस्य,

प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा—"ॐ आं खङ्गाय हृदयाय नमः" इत्यङ्गुष्ठाभ्यां कनिष्ठयोर्न्यसेत् । 'ॐ ईं[1] सुखङ्गाय शिरसे स्वाहा,' इति तर्जनीभ्यामनामिकयोर्न्यसेत् । "ॐ श्रीँ वज्राय शिखायै वषट्," इति मध्यमाभ्यां मध्यमयोर्न्यसेत् । "ॐ ऐँ पाशाय कवचाय हुँ" इत्यनामिकाभ्यां तर्जन्योर्न्यसेत् । "ॐ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः असु रक्षय हूँ हूँ अस्त्राय फट्" इति कनिष्ठिकाभ्यामङ्गुष्ठयोर्न्यसेदिति करन्यासं विधाय, एभिरेव पञ्चाङ्गमन्त्रैर्हृदयादिपञ्चाङ्गेषु नेत्ररहितेषु न्यसेत् ।

ततो ध्यानमानसपूजान्ते प्रमाणोक्तम्पूजामण्डलमुद्धृत्य, संस्थाप्याऽभ्यर्च्याऽर्घस्थापनाद्यात्मपूजान्ते पीठमभ्यर्च्य,मूर्त्तिकल्पनमूर्त्तिपूजान्ते—"ॐ सर्वबुद्धिप्रदे वर्णिनीये[2] सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये वज्रवैरोचनीये एह्येहि इह तिष्ठ तिष्ठ हूं हूं फट् स्वाहे"ति मन्त्रेण देवीमावाह्य, संस्थाप्य, सन्निधापनादिमुद्रादर्शनान्ते मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा,

श्रीबीजेनाऽऽसनादिमानसपूजान्ते देव्या दक्षिणपार्श्वे—"ॐ वर्णिन्यै नमः, वामे—ॐ डाकिन्यै नम" इति ध्यानप्रकरणोक्तरूपां ध्यात्वा, सम्पूज्य, पञ्चाङ्गानि च प्राग्वत्सम्पूज्य, देव्या दक्षिणहस्ते—"कर्त्र्यै नम" इत्यभ्यर्च्य, चतुरश्रे

---

१. क. 'ई' इति नाऽस्ति । २. ख. वर्णनीये ।

देव्यग्रद्वारमारभ्य, प्रादक्षिण्येन—"ॐ करालाय०, ॐ विकरालाय०, ॐ अतिकरालाय०, ॐ महाकरालाय०" इति प्रतिद्वारमेमैकं सम्पूज्याऽष्टदलेषु देव्यग्रदलादि—"ॐ प्रकाशना० एवं योगिन्यै०, डाकिन्यै०, भैरव्यै०, महाभैरव्यै०, इन्द्राण्यै०, शताक्ष्यै०, संहारिण्यै०" इति सम्पूज्येन्द्रादिपूजामारभ्य, सर्वम्प्राग्वत्कृत्वा समापयेदिति। तथा—

लक्षमेकञ्जपेन्मन्त्रं लभेत्सिद्धिं यथेप्सिताम्।
होमकर्म ततः कृत्वा ततः कुर्वीत कामनाम्[1] ॥ ११५ ॥

समिद्भिः श्रीफलानाञ्च घृताक्ताभिः समाचरेत्।
तदभावे विधातव्यमपामार्गसमिद्वरैः ॥ ११६ ॥

तर्प्पणादि यथापूर्वङ्कृत्वा काम्यानि साधयेत्।
गुरवे दक्षिणान्दद्याद्वस्त्राणि विविधानि च ॥ ११७ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां गुरुरेव समाश्रयः।
जायते येन वा प्रीतिस्तत्तस्मै च प्रदापयेत् ॥ ११८ ॥

जायन्ते सिद्धयस्तेन साधकस्येप्सितप्रदाः।
साधितोयम्महामन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ११९ ॥

ददात्यष्टौ महासिद्धिः किम्पुनः क्षुद्रकाः क्रियाः।
अर्चितव्यास्तदा भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥ १२० ॥

भुक्तौ मुक्तौ च शान्तौ च श्वेतपुष्पं विनिर्दिशेत्।
आकृष्टौ च वशीकारे रक्तमेव विनिर्दिशेत् ॥ १२१ ॥

स्तम्भने मोहने चैव पीतपुष्पं विनिर्दिशेत्।
काम्यकर्मणि सर्वत्र ध्यानं स्यात्पुष्पवर्णकम् ॥ १२२ ॥

रात्रौ विशेषतः पूजा कर्त्तव्या सिद्धिमिच्छता।
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १२३ ॥

सिद्धविद्याधराश्चैव गुह्यकाश्चाऽपि किन्नराः।
एते च वश्यमायान्ति किम्पुनः क्षुद्रमानुषाः १२४ ॥

१. ख. कामतां।

अथ किम्बहुनोक्तेन ब्रह्महत्यादिकञ्च यत् ।
तत् क्षालयति मन्त्रोऽयं लक्षजापान्न संशयः ।। १२५ ।।

अगम्यागमनञ्चैव तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम्[1] ।
सकृदुच्चारितो[2] मन्त्रो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ।। १२६ ।।

एष मन्त्रः सदा गोप्यो न प्रकाश्यः कदाचन ।
श्रद्दधानाय दातव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः ।। १२७ ।।

नाऽरिदोषो न विद्वेषो नाऽऽशौचन्नियमोऽपि वा ।
सिद्धमन्त्रतया नाऽत्र पूर्वसेवापरिश्रम. ।। १२८ ।।

जाग्रच्छयान उत्तिष्ठन् भुञ्जानो मैथुनेऽपिवा ।
सदा कालञ्जपेन्मन्त्रम्मारस्तस्य न विद्यते ।। १२९ ।।

वने राजकुले द्यूते सङ्ग्रामे शत्रुसङ्कटे ।
सदा काले जपेन्मन्त्रम्मारस्तस्य न विद्यते ।। १३० ।।

लिखित्वा स्वकरे मन्त्रम्मुष्टिबन्धं समाचरेत् ।
स्तम्भयत्याशु शस्त्राणि यावन्मुष्टिन्न मुञ्चति ।। १३१ ।।

[मुष्टिम्बद्ध्वा रणं द्यूतं विशेद्राजकुलन्नरः ।
उद्यदायुधहस्ताश्च भवन्ति यदि बैरिणः ।। १३२ ।।

नैवम्मुञ्चन्ति शस्त्राणि यावन्मुष्टिन्न मुञ्चति ।][3]
लिखित्वा स्वकरे मन्त्रमातुरं संस्पृशञ्जपेत् ।। १३३ ।।

विमुच्यते हठाद्रोगान्मुक्तरोगः सुखी भवेत् ।
शुक्लेन ध्यानमात्रेण मन्त्रमेनञ्जपेच्च यः ।। १३४ ।।

महोरगशतैर्दष्टमृतमुत्थापयेन्नरम् ।
रक्तेन वशमायान्ति सर्वे भूतलवासिनः ।। १३५ ।।

पीतेन स्तम्भयेत्सर्वन्नौकावाजिगजादिकम् ।
लिखित्वा स्वकरे मन्त्रं यावन्मुष्टिन्न मुञ्चति ।। १३६ ।।

---

१. क. भक्षकी । २. क. सकृदुच्चरितो । ३. [—] कोष्ठान्तर्गतांशस्याऽभावः क. पुस्तके ।

कृष्णेन ध्यानमात्रेण रिपुमुच्चाटयेन्नरः ।
मारयेदल्पयत्नेन कृष्णध्यानान्न संशयः ।। १३७ ।।

तर्प्पणञ्च प्रकुर्वीत पयसा पायसेन वा ।
घृतेन मधुना वाऽपि सुरया मन्त्रसाधकः ।। १३८ ।।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति यथाक्रमम् ।
तर्प्पणस्य विधानेन हठात्सिद्धिः प्रवर्त्तते ।। १३९ ।।

ततो होमम्प्रकुर्वीत समिद्भिः कुसुमैस्तथा ।
श्रीफलानाम्पलाशानान्तथैवोदुम्बरस्य च ।। १४० ।।

सर्वसिद्धिप्रदो होमो विधातव्यः प्रयत्नतः ।
शतमष्टोत्तरङ्कृत्वा जुहुयाच्च ततः परम् ।। १४१ ।।

मालतीकुसुमैर्होमः कर्त्तव्यो मधुसंयुतम् ।
घृतेन सहितो वाऽपि वागैश्वर्य्यप्रकाशकः ।। १४२ ।।

आज्ययुक्तो बलिर्द्देयश्चण्डिकायै सहामिषः ।
षण्मासन्दधिसंयोगाल्लक्ष्मीस्तस्य स्थिरा भवेत् ।। १४३ ।।

छागस्य मांसं रक्तञ्च घृतेन प्लावितन्तथा ।
यो जुहोत्ययुतन्देवि राजा तस्य वशो भवेत् ।। १४४ ।।

श्वेतेन करवीरेण होमं सम्यक् प्रकुर्वतः ।
लक्षमात्रं विधानेन जीवयेत्कालदष्टकम् ।। १४५ ।।

जुहुयात्तिलपुष्पाणि मधुनाक्तानि साधकः ।
लक्षसंख्यानि यो देवि सिद्धिस्तस्य सुसम्पदा ।। १४६ ।।

कर्णिकारसहस्राणि यो जुहोति तिलैः सह ।
प्राप्नोति परमां सिद्धिमीक्षितां वरसुन्दरीम् ।। १४७ ।।

बन्धूककुसुमं हुत्वा घृतेनाऽयुतसङ्ख्यकम् ।
तस्य प्रीता भवेद्देवी सर्वसौख्यप्रदायिनी ।। १४८ ।।

तिलतण्डुलहोमेन मधूककुसुमेन च ।
जगन्ति तस्य मित्राणि जायन्ते वरसुन्दरि ।। १४९ ।।

आरक्तकरवीराणि सरक्तचन्दनानि च ।
हुत्वा नृपं वशीकृत्य प्राप्नोति महतीं श्रियम् ।। १५० ।।

पायसेन चरेद्धोमं घृतेन सह सुन्दरि ।
त्रिसन्ध्वम्मासमात्रेण भवेद्वागीशसन्निभः ।। १५१ ।।

फेत्कारिणीतन्त्रे—

धूमावतीप्रयोगोऽयमधुना कथ्यते मया ।
दान्तावर्घीशविन्द्वन्तौ बीजे धूमावति द्विठः ।। १५२ ।।

धूमावती मनुः प्रोक्त. शत्रुनिग्रहकारकः ।

दान्तौ धकारद्वयं, अर्घीशविन्द्वन्तौ पृथगूकारसंयुक्तौ च, धूमावतिस्वरूपं ठद्वयं स्वाहाकारः । तथा—

पिप्पलादो मुनिश्छन्दो निचृज्ज्येष्ठा च देवता ।। १५३ ।।

तच्चतुर्थेन वर्णेन बिन्दुनादयुतेन च ।
षड्दीर्घजातियुक्तेन कुर्यादङ्गानि मन्त्रवित् ।। १५४ ।।

'धां हृदयाय नमः' इत्यादि करषडङ्गन्यासः । तथा—

विवर्णा चञ्चला कृष्णा दीर्घा च मलिनाम्बरा ।
विमुक्तकुन्तला रूक्षा विधवा विरलद्विजा ।। १५५ ।।

काकध्वजगजारूढा विलम्बितपयोधरा ।
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्षी धूतहस्ता त्वरान्विता ।। १५६ ।।

प्रवृद्धलोमा तु भृशं जटिला कुटिलेक्षणा ।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं सदा कलहतत्परा ।। १५७ ।।

एवंविधां सदा ध्यायेत्ततः कर्म समाचरेत् ।
जपेत्कृष्णचतुर्दश्याम्पुरश्चरणसिद्धये ।। १५८ ।।

उपवासपरो मन्त्री शून्यागारे दिवानिशम् ।
अयञ्जपः पूर्वसेवार्थं लक्षजपः पुरश्चरणम् ।
श्मशाने विपिने चैव जपेल्लक्षन्तु वाग्यतः ।। १५९ ।।

सोष्णीष आर्द्रवासाश्च पुरश्चरणकर्मणि ।

होमोऽपि घृतेनैव, तर्पणादिकञ्च प्राग्वदिति ।

आख्यापर्यन्तमालिख्य तस्मिन् स्थाप्य शिवञ्जपेत् ॥ १६० ॥

अवष्टभ्य शिवं शत्रुनाम्नाऽथ प्रजपेन्मनुम् ।
सहस्रादूर्ध्वतः शत्रुर्ज्वरेण परिगृह्यते ॥ १६१ ॥

पञ्चगव्येन शान्तिः स्याज्ज्वरस्य पयसाऽपि वा ।
मन्त्राद्यक्षरमालिख्य शत्रुनाम ततः परम् ॥ १६२ ॥

द्वितीयान्तम्मनोः शत्रोर्नामैवम्मनुमालिखेत् ।
रणेऽयुतजपाच्छत्रोर्निश्चितम्मरणम्भवेत् ॥ १६३ ॥

कृत्वा यन्त्रे रिपोराख्यामरण्ये यामिनीदले ।
उत्सादो जायते शत्रोर्मनोरयुतजापतः ॥ १६४ ॥

दग्ध्वा काकं श्मशानाग्नौ तद्भस्मादाय मन्त्रितम् ।
विरोधिनाम्नाऽष्टाशासु सद्य उच्चाटनं रिपोः ॥ १६५ ॥

श्मशानभस्मना कृत्वा शिवन्तस्योपरि न्यसेत् ।
विरोधिनामसरुद्धं कृष्णपक्षे समर्च्चयेत् ॥ १६६[1] ॥

[महिषीक्षीरधूपञ्च दद्याच्छत्रुविपत्करम् ।
महिषीरूपेणाऽऽगत्य स्वप्ने शत्रुन्निपातयेत् ॥ १६७ ॥

मन्त्रेणाऽनेन निखनेत्तद्भस्म रिपुमन्दिरे ।][2]
शत्रुमुच्चाटयेत्तूर्णन्नाऽत्रकार्या विचारणा ॥ १६८ ॥

न्यस्य पाणितले शत्रोराख्यानञ्चितिभस्मना ।
वह्नावधोमुखं रुद्धः स्थापयेदयुतञ्जपन् ॥ १६९ ॥

धूमावतीमनुम्मन्त्री शत्रुं यमपुरन्नयेत् ।
प्राग्वत्करतले नामार्णद्वयोर्द्ध्वं रिपोर्न्यसेत् ॥ १७० ॥

---

[illegible] णो विशेषः ख. पुस्तके–'श्मशानभस्म रिपुमन्दिरे' ।

२. [–] ख. पुस्तके कोष्ठस्थांशस्याऽभावः ।

जलस्थः प्रजपेन्मन्त्री हूङ्कारन्नाशयेदरिम् ।
श्मशानभस्मना लिङ्गङ्कृत्वा पुष्पादिनाऽर्चयेत् ।। १७१ ।।

भगवतीति सम्भाष्य मनसा कर्म चिन्तयन् ।
निम्बकाकच्छदानेकीकृत्वा चाऽष्टशतञ्जपेत् ।। १७२ ।।

दद्याद्धूपं साध्यनाम्ना सद्यो विद्वेषयेदरीन् ।
चिताकाष्ठानले[1] क्षीरहोमाच्छान्तिः प्रजायते ।। १७३ ।।

[रजोधूपप्रदानेन गृध्ररूपेण कालिका ।
मारयत्यरिमागत्य शान्तिर्निर्माल्यधूपतः ।। १७४ ।।

वराहबालधूपेन हन्यात्सूकररूपिणी ।
अश्वत्थपत्रधूपेन शान्तिर्भवति नाऽन्यथा ।। १७५ ।।][2]

शान्तिः सर्वाभिचारस्य पञ्चगव्येन जायते ।
क्षीरेण वाऽपि देवेशि मधुरत्रितयेन वा ।। १७६ ।।

कीले क्ष्वेडतरोर्देवि शत्रोर्नाम समालिखेत्[3] ।
विदर्भ्य[4] मूलमन्त्रेण साध्यनामाक्षराणि वै ।। १७७ ।।

जप्त्वा पदद्वये मन्त्री खनेदुच्चाटने रिपोः ।
तत्पादद्वयधूलिकीर्णहविषा दत्वाऽरिजेभ्यो बलि-
न्तज्जप्त्वा चितिभस्म कीर्णतमरेर्गेहे च तद्वद्भवेत् ।
वायव्ये विलिखेत्तदर्णसहितं वाद्यभ्यचाष्टौ[5] शिवा-
भ्यर्क्षे त्वया विमाक्षवर्गराः चूत्वैव तन्नो मतम्,
दूर्णतस्यातुपत्रवे विनिहितं जप्त्वा सहस्राक्षरं,
कान्तं पुत्रगृहेषु तच्छिरसि वा तेषां कुलोच्चाटनम् ।। १७८ ।।[6]

ज्येष्ठागारे श्मशाने वा निर्माल्ये पादगोचरे ।
गर्दभावासभूमौ वा वज्रस्थाने चतुःपथे ।।१७९।।

ऊषरे मेहनोद्भूमौ पुष्पितानाममेध्ययोः ।
आनीय[1] शर्करांमन्त्री दिग्वासा दक्षिणामुखः ।।१८०।।

---

१. क. चिन्ता० । २. [—]कोष्ठगतम्पद्यद्वयन्नाऽस्ति ख. पुस्तके । ३. क. समालिखेत् । ४. क. विदर्भ । ५. ख. ०वाष्टौ । ६. षट्पादात्मकम्पद्यमिदं सर्वथाऽस्पष्टम् ।

श्मशानलोष्ठे निक्षिप्य चिताग्नौ भर्जयेत्तथा ।
चूर्णन्तत्तु जपेल्लक्षन्निक्षिपेच्छत्रुवेश्मनि ।।१८२।।

सेनामध्ये च सर्वेषां लक्षादुच्चाटनम्भवेत् ।
गर्त्ते पिपीलिकानान्तु पादधूलिषु तान्कणान् ।।१८३।।

सघृतान्सप्तवारन्तु जुहुयान्मन्त्रविन्निशि ।
भ्रमते काकवत्सर्वाम्महीमाचरणादिषु ।।१८३।।

कृत्वा प्रतिकृतिं रात्रौ जन्मवृक्षेण मन्त्रवित् ।
कृत्वा प्रतिष्ठाम्प्राणस्य विद्ध्वा मर्मसु कण्टकैः ।।१८४।।

आयसैर्मन्त्रमावर्त्य वक्ष्यमाणैः प्रवेष्टयेत् ।
पूर्वोक्तशर्कराभिस्तु जप्त्वा नित्यम्प्रतापयेत् ।।१८५।।

सप्तरात्रेण तस्याऽपि भवेदुच्चाटनन्ध्रुवम् ।
मुखे शल्यद्वये लेख्यौ सारमेयवराहयोः ।।१८६।।

[मन्त्रेण दर्भितौ साध्यौ भौमवारे दयादियाम् ।
धत्तूररससंयुक्तचिताङ्गारेण मन्त्रिणा ।।१८७।।

वात्यस्य पृष्ठतो बद्ध्वा केशपाशेन तञ्जपेत्][2]
श्मशाने शत्रुमार्गे वा तद्गृहे निखनेन्निशि ।।१८८।।
विद्वेषणम्भवेत्सद्यो गौरीशङ्करयोरपि ।
अश्वत्थत्वचि मन्त्रार्णैर्दर्भितं साध्यमालिखेत् ।।१८९।।

अन्यद्विषतरोस्तद्वज्जप्त्वा चोद्धृत्य चाऽभ्यसेत् ।
पूर्वोक्तकण्टकैर्विद्ध्वा जपेत्स्पृष्ट्वा शतं शतम् ।।१९०।।

विद्विष्टौ भवतस्तौ तु नाम्नामपि च तत्क्षणात् ।

वर्णान्स्तान्विलिखेद्विलेख्यमभितः कोणेषु मन्त्राक्षरैः,
संरुद्धान्परितः प्रभञ्जनगृहे मध्ये च साध्यम्पृथक् ।
अङ्गारैः कनकोत्तरैरपि पदे मन्त्रञ्जपन्ताडयेत्,
कार्पासेन वने कुजादिदिवसे भूलोकविद्वेषताम् ।।१९१।।

---

१. ख. अग्नीय । २. [-] ख. पुस्तके कोष्ठस्थांशस्याऽभावः ।

शापाद्यञ्च पूर्वमूर्त्तिं शत्रोरालिख्य शोधयेत् ।
शान्तये निशि ताञ्जप्त्वा वह्निरूपे विलेपयेत् ।।१९२।।

एवं सप्तदिनं रात्रावाजप्याऽऽलिख्य[1] शोधयेत् ।
व्योषाग्निलशुनोन्मत्तहिङ्गुसिद्धार्थसूरणैः ।।१९३।।

पिण्डैर्लवणसम्भूतैरुन्मत्तद्रवसंयुतैः ।
पेषयित्वा तेन सम्यक् लिखेन्मन्त्री मनुञ्जपेत् ।।१९४।।

बलिम्मध्ये खनेत्कीलं युक्तरूपन्ततोपरि ।
वह्निम्प्रज्वाल्य तत्काष्ठैर्द्रव्ययुक्तैर्हुनेज्जपेत् ।।१९५।।

निक्षिप्य प्रतिमान्तत्र ज्वरे नित्यं जपेन्मनुम् ।
सप्तरात्रन्ततः कुण्डं रत्यागारेऽथवा हुनेत् ।।१९६।।

त्रिकोणशूलदीप्ताग्रमयस्कान्तेन चान्वितम् ।
तत्राऽपि निखनेत्कीलं वह्निम्प्रज्वाल्य पूर्ववत् ।। १९७ ।।

ततः प्रतिकृतिम्मन्त्री वह्नेरुपरि लम्बयेत् ।
उक्तद्रव्येण सँल्लिप्तामूर्ध्वपादामधोमुखीम् ।। १९८ ।।

रक्तद्रवैः समाराध्य प्रज्वाल्य विषवृक्षकैः ।
इन्धनैः प्रतिमां यावत्समित्पुञ्जनिभां हुनेत् ।। १९९ ।।
अनिलादिभिरामृत्योर्वशं याति न संशयः ।

**इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ अष्टचत्वारिंशस्तरङ्गः ।। ४८ ।।**

—०—

१. ख.ऽऽलिप्य ।

[एकोनपञ्चाशतरङ्गः]

फेत्कारिणीतन्त्रे—

अथातः- सम्प्रवक्ष्यामि पुण्यं वै दक्षिणाविधिम् ।
सर्वसिद्धिप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम् ।। १ ।।

देवैर्देवत्वविषये सिद्धैः खेचरसिद्धये ।
पन्नगै राक्षसैर्मर्त्यैर्मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः ।। २ ।।

कामिभिर्द्धनिभिश्चार्थलिप्सुभिः[1] सेवितं सदा ।
देवीन्दक्षिणसंज्ञान्ताम्प्रवक्ष्यामि यथाविधि ।। ३ ।।

उत्तरतन्त्रे—

वर्गाद्याद्यं वह्नियुतं रतिविन्दुसमन्वितम् ।
त्रिगुणञ्च ततः कूर्चयुग्मं लज्जायुगन्ततः ।। ४ ।।

दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववच्च ततः पुनः ।
ठद्वयेन समायुक्तम्मन्त्रमेनं विदुर्बुधाः ।। ५ ।।

वर्गाद्यं कवर्गस्तदाद्यं ककारः, वह्निः रेफः, रतिः ईकारः, बिन्दुरनुस्वारः, एतैः क्रीं इति, त्रिगुणं एतद्वीजं त्रिरुच्चरेदित्यर्थः । कूर्चयुग्मं हूङ्कारद्वयं, लज्जायुगं ह्रीङ्कारद्वयं दक्षिणे कालिके स्वरूपम्, ततः पुनः पूर्ववच्चेति चकार एवकारार्थबोधकः । तेनैतद्वीजसप्तकं पूर्वोक्तक्रमेणैव पुनरप्युच्चरेदित्यर्थः । ठद्वयं स्वाहाकारः, द्वाविंशत्यक्षरात्माऽयं मन्त्रः सर्वसमृद्धिदः ।

कालीतन्त्रेऽपि—

कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिविन्दुसमन्वितम् ।
कूर्चयुग्मन्तथा लज्जायुगलं तदनन्तरम् ।। ६ ।।

दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोद्धरेत् ।
अन्ते वह्निवधून्दद्याद्विद्याराज्ञी[2] प्रकीर्त्तिता ।। ७ ।।

फेत्कारिणीतन्त्रे—

नाऽत्र शुद्धयाद्यपेक्षाऽस्ति न वा मित्रादिदूषणम् ।
न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम् ।। ८ ।।

---

१. ख. कामिभिर्धर्मिभिः । २. क. विद्याराज्ञां ।

न वित्तव्ययबाहुल्यङ्कायक्लेशकरन्नहि ।
य एनञ्चिन्तयेन्मन्त्रं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥ ९ ॥

तस्य हस्ते सदैवाऽऽस्ते सर्वसिद्धिर्न सँशयः ।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायान्तस्य जायते ॥ १० ॥

तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निःप्रभा मताः ।
राजानोऽपि हि दासत्वम्भजन्ते किम्परे जनाः ॥ ११ ॥

वह्नेः शैत्यञ्जलस्तम्भङ्गतिस्तम्भं विवस्वतः ।
दिवारात्रिव्यत्ययञ्च सर्वङ्कर्त्तुं क्षमो भवेत् ॥ १२ ॥

ब्रह्महत्यां सुरापानमगम्यागमनन्तथा ।
सर्वमाशु तरत्येव दक्षिणामेव चिन्तयन् ॥ १३ ॥

वागीश्वरसमो वादे धनेन धनदोपमः ।
कामतुल्यः स नारीणां शत्रूणां[1] स यमोपमः[2] ॥१४॥

सर्वस्यैव जनस्यैव वल्लभः कीर्त्तिवर्द्धनः ।
अन्ते च लभते देव्या दुर्लभँल्लोकमुच्चकैः ॥१५॥

चन्द्रसूर्यप्रभो भूत्वा वसेत्कल्पायुतन्दिवि ।
इत्येवमादिकञ्चैव बहु किङ्कथ्यते प्रिये ॥१६॥

न तस्य दुर्लभङ्किञ्चिद्यः स्मरेत्कालिदक्षिणाम् ।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तस्तृष्टुप्छन्द उदाहृतम् ॥१७॥

देवता कालिका देवी हूं बीजं ह्रीं च शक्तिका ।
दीर्घषट्कयुजाद्येन रतिविन्दुयुतेन च ॥ १८ ॥

षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री त्रिः सकृद्वा यथाविधि ।

आद्येन पूर्वोक्तकवर्गाद्याद्येन[3] ककारेणेत्यर्थः । रतिबिन्दुयुतेन ईकारबिन्दुयुक्तेन, तेन प्रत्याहारन्यायेन मध्यस्थरेफस्याऽपि ग्रहणं, तेन ह्रीमिति बीजमायातं, दीर्घषट्कयुजेति 'क्राँ क्री' मित्यादि दीर्घस्वरयुक्तेनेत्यर्थः ।

---

१. क. नाऽस्ति । २. क. ययोपमः । ३. क. कवर्गीद्याद्येन ।

कालीतन्त्रे त्वन्यथोक्तम्—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द उदाहृतम् ।
देवता कालिका प्रोक्ता लज्जाबीजन्तु बीजकम् ॥ १९ ॥

शक्तिस्तु कूर्च्चबीजं स्यादनिरुद्धसरस्वती ।
कवित्वार्थे विनियोग एवमृष्यादिकल्पना ॥ २० ॥

कीलकञ्चाद्यबीजन्तु क्रमेण विन्यसेत्प्रिये ।
ऋषिन्न्यसेन्मूर्द्ध्नि देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे ॥ २१ ॥

देवतां हृदये चैव बीजन्तु गुह्यदेशके ।
शक्तिन्तु पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकन्न्यसेत् ॥ २२ ॥

वीरतन्त्रे षडङ्गेऽपि विशेष उक्तः—

दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ।

कालीतन्त्रेऽपि—

प्रणवञ्चाद्यबीजञ्च षड्दीस्वरभाजितम् ।
कुर्यात्षडङ्गविन्यासं मूलखण्डत्रयेण वा ॥ २३ ॥

फेत्कारिणीतन्त्रे—

पञ्चाशद्भिर्मातृकार्णैर्हृदयन्द्वौ भुजौ तथा ।
तथा जङ्घाद्वयञ्चैव योजनीयन्दश दश ॥ २४ ॥

पञ्चधा पञ्चधा चैव पुनश्चैव च सप्तधा ।
समस्ताङ्गम्प्रकुर्वीत शोधितम्मन्त्रवित्तमः ॥ २५ ॥

कुमारीकल्पे—

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके ।
गुह्ये वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजङ्क्रमान्न्यसेत् ॥ २६ ॥

फेत्कारीतन्त्रे[1]—

करालवदनाङ्घोराम्मुक्तकेशीञ्चतुर्भुजाम् ।
कालिकान्दक्षिणान्दिव्याम्मुण्डमालाविभूषिताम् ॥ २७ ॥

सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामोर्द्ध्वाधः कराम्बुजाम् ।
अभयं वरदञ्चैव दक्षिणाधोर्द्ध्वपाणिकाम् ॥ २८ ॥

---

१. ख. फेत्कारिणी० ।

महामेघप्रभां श्यामान्तथा चैव दिगम्बराम् ।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।। २९ ।।

कर्णावतंसतान्नीतशवयुग्मविराजिताम् ।
घोरदंष्ट्राङ्करालास्याम्पीनोन्नतपयोधराम् ।। ३० ।।

शवानाङ्करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ।।३१।।

घोररूपाम्महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ।
दन्तुरान्दक्षिणव्यापिमुक्तलम्बकचोच्चयाम् ।।३२।।

शवरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थिताम् ।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।।३३।।

महाकालसमायुक्तां शवोरसि रतान्विताम् ।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ।।३४।।

एवं सञ्चिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम्[1] ।।३५।।

सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरम्बिभ्रतीं,
घोरास्यां शिरसां स्रजां सुरुचिरामुन्मुक्तकेशावलीम् ।

सृक्कासृक्प्रवहां श्मशाननिलयां श्रुत्योः शवालङ्कृतिं,
श्यामाङ्गीकृतमेखलां शवकरैर्देवीम्भजे कालिकाम् ।।३५।।[2]

'इति ध्यायेत्' ।[3]

त्रिकोणं विलिखेत्पूर्वम्पुनश्चाऽपि त्रिकोणम् ।
एवं[4] षट्कोणकङ्कृत्वा बहिः षट्कोणकन्तथा ।।३६।।

पुनस्त्रिकोणन्तस्यान्तस्तन्मध्ये स्थापयेच्छिवाम् ।

तस्यान्तःषट्कोणद्वयात्मकचक्रस्य मध्ये ।
बहिरष्टदलङ्कुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभितम् ।।३७।।

---

१. क. श्मशानीलय० । २. क. पुस्तके पद्यस्यास्याऽभावः । ३. '—' नाऽस्त्ययमंशः क. पुस्तके । ४. ख. एकं ।

चतुरश्रत्रयं कुर्यादिति शेषः ।[1]

ततो मध्यत्रिकोणान्तर्न्यसेद्देवीञ्च दक्षिणाम् ।
महाकालञ्च तत्रैव न्यसेदेष विधिः स्मृतः ॥३८॥

ततः पूर्वादिकोणेषु वामावर्त्तेन पूजयेत्
कालीं कपालिनीं कुल्लाम्प्रथमे तु त्रिकोणके ॥३९॥

नीलां घनां करालाञ्च तथैवाऽपरके त्रिके ।
कुरुकुल्लाविरोधिन्यौ विप्रवित्तान्तथापरे ॥ ४० ॥

उग्रामुग्रप्रभान्दीप्तान्तुरीये तु त्रिकोणके ।
मात्राम्मुद्राम्मिताञ्चैव तथा पञ्चमके त्रिके ॥ ४१ ॥

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः ।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यश्च सस्मिताः ॥ ४२ ॥

तर्जनीं तर्जनीमुद्राम् ।

बहिर्मण्डलतश्चाऽपि ब्राह्मी नारायणी तथा ।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चाऽपराजिता ॥ ४३ ॥
वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च ।

---

१. अतः परन्निम्नाङ्कितोऽंशो विशेषो दृश्यते ख. पुस्तके—

मन्त्रमहोदधौ— आदौ षट्कोणमारच्य त्रिकोणत्रितयन्ततः ।
पद्ममष्टदलम्बाह्ये भूपुरन्तत्र पूजयेत् ॥१॥

कालीतन्त्रे तु— आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणान्तद्बहिर्न्यसेत् ।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥२॥

ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलन्ततः ।
वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्भूपुरमेककम् ॥३॥

कुमारीकल्पेऽपि— आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणान्तद्बहिर्न्यसेत् ।
बहिस्त्रिकोणमालिख्य षट्कोणान्तद्बहिर्लिखेत् ॥४॥

मध्ये तु बैन्दवञ्चक्रम्बीजमायाविभूषितम् ।
षट्कोणात्तु बहिर्वृत्तन्ततोऽष्टदलकं लिखेत् ॥५॥

बहिर्वृत्तेन संयुक्तम्भूपुरेकेन संयुतमिति ।

कुमारीकल्पे

ब्राह्म्याद्याः पूजयेत्पत्रे पत्राग्रे भैरवान्यजेत् ।। ४४ ।।

भैरवास्तु ज्ञानार्णवे—

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधश्चोन्मत्तभैरवः ।
कपाली भीषणश्चेति संहारश्चाऽष्टमः स्मृतः ।। ४५ ।।

फेत्कारीतन्त्रे—

सम्पूज्य यत्नतश्चाऽपि बलिं सम्प्रतिपादयेत् ।
बलिमुत्थाय नैवेद्यन्नैऋर्त्याञ्चाऽपि धारयेत् ।। ४६ ।।

हृदये चैव देवेशीं समर्प्य विधिव द्बुधः ।
निर्माल्यं वै शुचौ देशे धारणीयं सदैव हि ।। ४७ ।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि-भैरवाय ऋषये नमः, मुखे—त्रिष्टुप्छन्दसे० हृदये—श्रीदक्षिणकालिकायै देवातायै०, गुह्ये—-हूं बीजाय०, पादयोः-ह्रीं शक्तये०, सर्वाङ्गे—-क्रीं कीलकाय नमः" इति विन्यस्य ममेष्टसिद्धये विनियोग" इति कृताञ्जलिरुक्त्वा- "क्रां हृदयाय नमः,क्रीं शिरसे स्वाहाः, क्रूं शिखायै वषट्, क्रैं कवचाय हुं,क्रौं नेत्राय वौषट्, क्रः अस्त्राय फट्" । अथवा- ॐ क्राँ हृदयाय नम" इत्यादि मूलखण्डत्रयेण वा ।

इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा-'हृदि-अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं नमः । दक्षभुजे—एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः । वामे-ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः । दक्षजङ्घायां—णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः । वामजङ्घायां—मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नम" इति विन्यस्य, मूलमन्त्रेण पञ्चधा पुनः (पञ्चधा पुनः)[1] सप्तधा व्यापकं न्यसेत् ।

ततो ब्रह्मरन्ध्रे क्रीं[2] नमः, भ्रुवोर्मध्ये—क्रीं०. ललाटे-क्रीं०, नाभौ-०, हूँ गुह्ये-हूँ०, वक्त्रे-ह्रीं०, सर्वाङ्गे-ह्रीं नमः" इति विन्यस्य,

१. ख. अस्यांशस्याऽभावः । २. क० ह्रीं ।

ध्यानादिमानसपूजान्ते त्रिकोणगर्भितान्तर्बहिर्विभागेन षट्कोणद्वयकर्णिकमष्टदलकमलं कृत्वा, तद्बहिश्चतुर्द्वारोपेतं चतुरश्रत्रयं कुर्यात् ।

इति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्याऽभ्यर्च्यार्घस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेशीपीठमभ्यर्च्याऽऽवाहनाद्यङ्गार्चान्ते प्रथमत्रिकोणे वामावर्त्तेन स्वाग्रादि– "ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै०, द्वितीये स्वाग्रादि– ॐ कुरुकुल्लायै०, ॐ विरोधिन्यै०, ॐ विप्रचित्तायै०, तृतीये–ॐ उग्रायै०, ॐ उग्रप्रभायै० दीप्तायै०, चतुर्थे–नीलायै०, घनायै०, करालायै०, पञ्चमे–मात्रायै०, मुद्रायै०, मितायै०, अष्टदलेषु–ॐ ब्राह्म्यै०, नारायण्यै०, माहेश्वर्य्यै०, चामुण्डायै०, कौमार्य्यै०, अपराजितायै०, वाराह्यै०, नारसिंह्यै नम" इति वामावर्त्तेन सम्पूज्य पत्राग्रेषु–अं असिताङ्गभैरवाय०, इं रुरुभैरवाय०, (उं चण्डभैरवाय०)[1] ऋं क्रोधभैरवाय०, लृं उन्मत्तभैरवाय०, एं कपालिभैरवाय०, ओं भीषण भैरवाय०, अं संहारभैरवाय नम" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, प्रादक्षिण्येनेन्द्रादींस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपादिशेषं प्राग्वत्कुर्यादिति ।

अस्या विद्याया **गायत्री कुमारीतन्त्रे**—

कालिकायै पदम्प्रोच्य विद्महे तदनन्तरम् ।
श्मशानवासिनी ङेन्तां धीमहीति ततो वदेत् ।। ४८ ।।

तन्नोऽघोरे पदम्प्रोच्य प्रचोदयात्पठेदिति ।
अस्याः पठनमात्रेण महापातककोटयः ।। ४९ ।।

सद्यः प्रलयमायान्ति साधकस्य न चाऽन्यथा ।
रावणस्य वधाच्चैव रामचन्द्रो विमोचितः ।। ५० ।।

गुरुदाराकर्षणाच्च देवचन्द्रो विमोचितः ।
आत्मकन्याकर्षणाच्च ब्रह्माऽपि च विमोचितः ।। ५१ ।।

मातृवधात्परशुरामो मोचितोऽस्याः प्रसादतः ।
सुरापानाच्च श्रीकृष्णो दत्तात्रेयस्तथैव च ।। ५२ ।।

एवमेषा महाविद्या गोप्तव्या देवि सुन्दरि ।
महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद्दशधा यदि ।। ५३ ।।
सत्यं सत्यम्महादेवि मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।

१. कोष्ठस्थांशस्याऽभावः ख. पुस्तके ।

अथाऽस्याः पूजने क्वचित् क्वचिद्विशेषः सोऽत्र लिख्यते ।

कुलचूडामणौ–

मूलादि-ब्रह्मरन्ध्रान्तङ्कुलन्ध्यात्वा गुरुं स्मरेत् ।
प्रह्लादानन्दनाथाख्यं सनकानन्दमेव च ।। ५४ ।।

कुमारानन्दनाथाख्यं वसिष्ठानन्दनाथकम् ।
ज्ञानानन्दम्बोधानन्दं ध्यानानन्दमतः परम् ।। ५५ ।।

क्रोधानन्दन्ततः पश्चाद्ध्यायेत्कुलमुखोपरि ।
महारसरसोन्मादहृदयानन्दलोचनाः ।। ५६ ।।

कुलालिङ्गनसम्भिन्ना मोचिताशेषतामसाः ।
कुलशिष्यैः परिवृताः पूर्णान्तःकरोद्यताः ।। ५७ ।।

वराभययुताः सर्वे कुलतन्त्रार्थवादिनः ।
एवङ्कुलगुरुन्ध्यात्वा विसृज्य कुलमातृकाम् ।। ५८ ।।

कुलस्थानं समानीय मूलञ्च शक्तिमानतः ।
जप्त्वा जपं समर्प्याऽथ स्नानार्थन्तीर्थमाश्रयेत् ।। ५९ ।।

शिखाबन्धनमन्त्र : कुमारीतन्त्रे–

प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य मण्यन्ते धरणीति च ।
वज्रिणीति पदम्प्रोक्तं महाप्रतिसवे तथा ।। ६० ।।

रक्षद्वयं ततो हुँ फट् स्वाहा च तदनन्तरम् ।
अनेनैव च मन्त्रेण रक्षाङ्कुर्याद्विचक्षणः ।। ६१ ।।

रक्षां शिखाबन्धनरूपाम् ।

कुमारीकल्पे—

ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहामन्त्रेण मन्त्रितम् ।
जलमानीय सव्ये तु आसनं शोधयेत्ततः ।। ६२ ।।

प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य लज्जाबीजन्तथैव च ।
ततो विशुद्धशब्दान्ते धर्मगात्रि ततः परम् ।। ६३ ।।

सर्वशब्दं समुच्चार्य्य पापानि शमयेति च ।
अशेषान्ते विकल्पं स्यादपनयेत्यतः परम् ।। ६४ ।।

कूर्चयुग्मम्भवेन्मन्त्रः पादप्रक्षालने प्रिये ।
प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य सर्वविघ्नांस्ततः परम् ।। ६५ ।।

उत्सारय ततो हुं फट् स्वाहा च तदनन्तरम् ।
अनेनैव च मन्त्रेण विघ्नमुत्सारयेत्ततः ।। ६६ ।।

प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य रक्ष रक्ष ततः परम् ।
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण भूमिञ्च परिशोधयेत् ।। ६७ ।।

ततः पवित्रवज्रादौ प्रणवम्पूर्वमुद्धरेत् ।
वर्मद्वयन्ततश्चैव फट् स्वाहा तदनन्तरम् ।। ६८ ।।

अनेनैव च मन्त्रेण कुर्याद्भूम्यभिमन्त्रणम् ।

मत्स्यसूक्ते—

मृद्वचूडकमासीनश्चाऽन्ये तु कोमलेऽपि वा ।
विष्टरे च समाश्रित्य साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम् ।। ६९ ।।

मृद्वादिलक्षणमाह तत्रैव –

अर्वाक् षण्मासतो गर्भञ्च्युतमाहुर्मृदुम्बुधाः ।
चूडोपनयनैर्हीनम्मृतञ्चाचूडकं विदुः ।। ७० ।।

निवृत्तचूडको बालो हीनोपनयनः पुमान् ।
यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेवङ्कोमलं विदुः ।। ७१ ।।

अन्यत्राऽपि—

कृष्णसारन्द्वीपिचर्माऽचूडकं[1] कम्बलन्तथा ।
पीतवस्त्रञ्च शुक्लं वा आसनाय प्रकल्पयेत् ।। ७२ ।।

वीरतन्त्रे—

मृतासनं विना देवि यो जपेत्कालिकाम्पुनः ।
तावत्कालन्नारकी स्याद्यावदाभूतसम्प्लवम् ।। ७३ ।।

---

१. ख. चर्मचूडकं ।

कुमारीकल्पे—

ॐकारान्तं सुरेखे च वज्ररेखे ततः परम् ।
हुं फट् स्वाहेति च कुर्यान्मण्डलन्तु शवासने ॥ ७४ ॥

वीरासनेनोपविशेत्सम्पूज्याऽऽसनमेव च ।
अधिष्ठाने तु पुष्पस्य प्रणवम्पूर्वमुद्धरेत् ॥ ७५ ॥

शताभिषेकेति पदं समयप्रिये-पदन्ततः ।
समाश्रये पदम्प्रोच्य हुं फट् स्वाहा ततः परम् ॥ ७६ ॥

अनेन मनुना देव्याः पुष्पाधिष्ठानमाचरेत् ।
प्रणवम्पुष्पकेतुञ्च राजार्हेति पदन्ततः ॥ ७७ ॥

शताय सम्यगित्युक्त्वा समृद्धाय ततः परम् ।
ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे ॥ ७८ ॥

पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा च ततः परम् ।
विशुद्धम्पुष्पमेतेन जलम्पूर्ववदाहरेत् ॥ ७९ ॥

भूतशुद्धिं विधायेत्थन्देवीरूपेण चिन्तयेत् ।
प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य शेषं लाङ्गलमेव च ॥ ८० ॥

हुं फट् स्वाहा मनुः प्रोक्तः कायवाक्चित्तशोधने ।
प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य चात्मानं रक्ष इत्यपि ॥ ८१ ॥

रक्ष हुं फट् ततः स्वाहा मन्त्रः स्यादात्मरक्षणे ।
अन्तःपूजाम्प्रवक्ष्यामि जनानामान्तरम्महत् ॥ ८२ ॥

स्वकीयहृदये ध्यायेत्सुधासागरमुत्तमम् ।
रत्नद्वीपन्तु तन्मध्ये नन्दनोद्यानशोभितम् ॥ ८३ ॥

परितो भावये न्मन्त्री[1] पारिजातम्मनोहरम् ।
तत्र कल्पद्रुमन्ध्यायेत्पञ्चाशदक्षरात्मकम् ॥ ८४ ॥

तन्मूले भावयेन्मन्त्री नानारत्नोपशोभितम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशं व्याप्तम्ब्रह्माण्डमण्डपम् ॥ ८५ ॥

१. क. भावेन्मन्त्री ।

शतयोजनवस्तीर्णञ्ज्योतिर्मयमनुत्तमम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारशोभितम् ॥ ८६ ॥

बहुचामरघण्टादिवितानैरुपशोभितम् ।
मन्दवायुसमाक्रान्तङ्गन्धपुष्पैरलङ्कृतम् ॥ ८७ ॥

तन्मध्ये वेदिकान्ध्यायेन्नानारत्नोपशोभिताम् ।
सुवर्णसूत्ररचितञ्चिन्तयेच्छत्रमुत्तमम् ॥ ८८ ॥

पीठोपरि महद्यन्त्रम्पीयूषपूरपूरितम् ।
तत्र देवीं विभाव्याऽथ पूजाङ्कुर्यात्क्रमेण तु ॥ ८६ ॥

आगतं स्वागतञ्चैव आसनङ्कल्पयेत्सुधीः ।
पाद्यत्रयन्ततो दद्यात्कुर्यादर्घ्यचतुष्टयम् ॥ ९० ॥

त्रयमाचमनम्पात्रम्मधुपर्कत्रयन्ततः ।
प्रक्षालनपात्रयुग्मङ्कल्पयेत्साधकोत्तमः ॥ ९१ ॥

एवन्तु भोगपात्रञ्च साधकः षोडशे[1] दले ।
सहस्रारामृतेनैव पात्राणि पूरयेत्तदा ॥ ९२ ॥

सर्वोपरि ततो ध्यायेत्पश्चिमाननपङ्कजम् ।
क्षरन्तममृतन्नित्यन्देव्यङ्गकमलान्तरे ॥ ८३ ॥

शिवशक्तिसमायोगादमृतानन्दनन्दिनीम् ।
ब्रह्ममयीं समातोष्य परिवारसमन्विताम् ॥ ९४ ॥

मानसैरुपचारैस्तु दीयते द्रव्यमुत्तमम् ।
पाद्यञ्च पादयोर्द्द्यान्मूर्द्ध्नि चाऽर्घ्यम्प्रकल्पयेत् ॥ ९६ ॥

सहस्रदलशृङ्गाग्रान्दरीकाननविच्युतम् ।
परामृतञ्च पानीयम्भावपुष्पैः सुवासितम् ॥ ९७ ॥

स्वर्णपात्रे जलङ्कृत्वा दद्यादाचमनम्मुखे ।
मधुपर्कम्मुखे दद्याद्द्यादाचमनीयकम् ॥ ९८ ॥

---

१, ख. शोडशे ।

चतुर्विंशतितत्त्वेन गन्धन्दद्याद्विचक्षणः ।
सुवर्णकुसुमन्दद्यात्कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ।। ९९ ।।

पूर्वोक्तभावकुसुमैः सम्पूज्य धूपदीपकैः ।
मनःकल्पितनैवेद्यन्दद्याद्देव्यै मनोरमम् ।। १०० ।।

षडङ्गं गुरुशक्तिञ्च पूजयेदङ्गदेवताः ।
स्ववामे मण्डलङ्कृत्वा रत्नसिंहासनान्वितम् ।। १०१ ।।

तत्र देवीं समानीय नानागन्धसमन्वितम्[1] ।
उद्वर्त्तनादिकङ्कृत्वा स्नानीयन्दापयेद्यथा ।। १०२ ।।

वसनेन च तेजस्त्वंम्प्रोञ्छयेत्तेन वै तनुम् ।
आकाशतत्त्वदिव्येन तेन वस्त्रम्प्रकल्पयेत् ।। १०३ ।।

विधिवद्वन्दनङ्कृत्वा केशसंस्कारमारभेत् ।
नानारत्नसमायुक्तकङ्कत्या[2] देवमानया ।। १०४ ।।

पट्टगुच्छङ्केशपाशन्नानारत्नसमन्वितम् ।
ललाटे तिलकन्दद्यात्सिन्दूरैः केशमध्यगम् ।। १०५ ।।

नागेन्द्रदन्तरचितं शङ्खन्दद्यान्मनोरमम् ।
हस्तकेयूरकञ्चैव कङ्कणङ्कटकन्तथा ।। १०६ ।।

पादाङ्गुलीयकन्दद्यान्नानारत्नोपशोभितम् ।
पादयोर्नूपुरन्दद्यात्कटयाञ्च क्षुद्रघण्टिकाम् ।। १०७ ।।

शिरोरत्नम्प्रदद्याच्च मुकुटं रत्ननिर्मितम् ।
ताटङ्कङ्कुण्डलङ्कर्णभूषणं सुपरिष्कृतम् ।। १०८ ।।

नयने कज्जलन्दद्यान्नासाग्रे गजमौक्तिकम् ।
श्रीपात्रङ्कण्ठभूषाञ्च मुक्तामणिविराजितम् ।। १०९ ।।

आनन्दहारत्रितयमङ्गलीयकरत्नकम् ।
सर्वाङ्गलेपनं[3] दद्याद्गन्धचन्दनशिल्लकैः ।। ११० ।।

---

१. ख. समान्वितम् । २. ख. कङ्कतया । ३. ख. सर्वाङ्गे० ।

सुवर्णपादुके दद्यात्पुरा[1] कुण्डलचिह्निते ।
मण्डलेषु समानीय रत्ननिर्मितदोलया ।। १११ ।।

पुनः पाद्यादिकन्दत्वा पूजयेत्तां सनातनीम् ।
गन्धादिकम्पुनर्दत्वा पूजयेद्भावपुष्पकैः ।। ११२ ।।

सुमेखलाम्पद्ममालाम्पुष्पन्नानाविधन्तथा ।
सप्तद्वीपात्समुद्भूतन्दद्याद्देव्यै सुसाधकः ।। ११३ ।।

कुण्डगोलोद्भवम्पुष्पन्धूपन्दद्यात्समीरणम् ।
सहस्रकर्णिकापात्रघृतन्दद्यात्परामृतम् ।। ११४ ।।

मूलाधारम्पात्ररूपं विज्ञानञ्च प्रदीपकम् ।
आमूलब्रह्मरन्ध्रान्तं सुषुम्णामृतवायुना ।। ११५ ।।

अनाहतध्वनिमयीं घण्टामेतान्निवेदयेत् ।
नैवेद्यं सद्वस्तूपेतमर्थञ्च चामरन्ततः ।। ११६ ।।

सूर्यञ्च दर्प्पणञ्चन्द्रमण्डलं छत्रमुत्तमम् ।
सुधामहार्णवन्दद्याद्द्याच्च मांसपर्व्वतम् ।। ११७ ।।

सुवर्णचरुकञ्चैव युक्तायुक्तपरात्मकम् ।
भक्ष्यम्भोज्यन्तथाञ्चोष्यं लेह्यम्पेयञ्च चर्वणम् ।। ११८ ।।

दद्याच्छेषयुतेनैव पुनराचमनीयकम् ।
वायुचक्रन्ततो दद्यान्मूलाधारोत्थवायुना ।। ११९ ।।

रजस्तमःसत्वगुणैः कर्पूरचूर्णमिश्रितम् ।
रत्नपात्रे परिष्कृत्य ताम्बूलञ्च निवेदयेत् ।। १२० ।।

पुष्पशक्त्या नमस्कुर्यात्तत्र देवीं सुरेश्वरीम् ।
मनोनर्त्तकदानेन शृङ्गारादिरसोज्ज्वलैः ।। १२१ ।।

सितैः स्नानादिभिर्द्देवीन्तोषयेत्साधकोत्तमः ।
माता कामेश्वरी देवी पिता कामेश्वरश्च सः १२२ ।।

---

१. क. पुरात् ।

मनसैक्यं विभाव्याऽथ साधकः सिद्धिमालभेत् ।
इत्यन्तःपूजनम्प्रोक्तम्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।। १२३ ।।

रक्तपद्मम्महेशानि मनसा यः प्रयच्छति ।
कल्पकोटिसहस्रन्तु देवीलोके स तिष्ठति ।। १२४ ।।

स्थित्वा देवीपुरे श्रीमांस्ततो राजा भविष्यति ।
मनसाऽपि महादेव्यै नैवेद्यन्दातुमिच्छति ।। १२५ ।।

यो नरो भक्तिसंयुक्तः स दीर्घायुः सुखी भवेत् ।
मनसाऽपि च यो भक्त्या देवीङ्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।। १२६ ।।

देवीगेहे वसेत्सोऽपि नरकन्नैव पश्यति ।
नमनम्मनसा देव्यै यो भक्त्या कुरुते नरः ।। १२७ ।।

सोऽपि विश्वं विजित्याऽऽशु देवीलोके महीयते ।
पञ्चमुण्डे समासीनाम्मुण्डमालाविभूषिताम् ।। १२८ ।।

ताम्रार्क्कायुतसङ्काशां रत्नसिंहासनस्थिताम् ।
ततः स्त्रीवेशधारी स्यात्सिन्दूराङ्कितभालकः ।। १२९ ।।

शृङ्गारोज्ज्वलवेशाढ्यस्ताम्बूलापूरिताननः ।
एवं वेशादिकं सर्वं वनितामपि कारयेत् ।। १३० ।।

पीठन्यासन्ततः कुर्यादाधारशक्तिपूर्वकम् ।
प्रकृतिङ्कमठञ्चैव शेषम्पृथ्वीन्तथैव च ।। १३१ ।।

सुधाम्बुधिमणिद्वीपञ्चिन्तामणिगृहन्तथा ।
श्मशानम्पारिजातञ्च तन्मूले रत्नवेदिकाम् ।। १३२ ।।

तस्योपरि मणेः पीठन्न्यसेत्साधकसत्तमः ।
चतुर्द्दिक्षु मुनीन्देवान् शिवाँश्च शवमुण्डकान् ।। १३३ ।।

धर्मादींश्चाऽप्यधर्मादीन् पादगात्रचतुष्टये ।
हृदि कन्दन्तथा पद्मं सूर्य्यं सोमं महेश्वरि ।। १३४ ।।

वैश्वानरन्तथा सत्वं रजश्चैव तमस्तथा ।
आत्मानञ्चैव विन्यस्य शक्तीर्हृत्पद्मके न्यसेत् ।। १३५ ।।

इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी ।
रती रतिप्रिया नन्दा कर्णिकायाम्मनोन्मनी ।। १३६ ।।

वाग्भवम्प्रथमम्प्रोक्त्वा परायै तदनन्तरम् ।
अपरायै विरूपायै ह्सौर्वाच्यमतः परम् ।। १३७ ।।

सदाशिवमहाप्रेतं ङेन्तम्पद्मासनन्तथा ।
नम इत्येव मन्त्रोयम्पीठन्यास उदाहृतः ।। १३८ ।।

एवन्देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।

**भावचूडामणौ भैरव उवाच—**

मातर्द्देवि महाभागे बन्धमोक्षप्रवर्त्तिनि ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गुरुक्रममनुत्तमम् ।। १३९ ।।

**देव्युवाच—**

गुरुक्रमस्तु बहुधा ग्रन्थे विस्तरगौरवात् ।
कालानामप्यनादित्वात्कथन्तत्कथयामि ते ।। १४० ।।

न ज्ञात्वा तत्कुलन्देव नष्टमार्गो भविष्यति ।
नष्टमार्गान्मिन्त्रविद्ये न तादृक्फलगोचरे ।। १४१ ।।

गुरूणां शिष्यभूतानान्नाऽस्ति चेत्सन्ततिक्रमः ।
तन्त्रमन्त्राश्च विद्याश्च निःफला नाऽत्र संशयः ।। १४२ ।।

विंशतिः पुरुषा वाऽपि नव सप्त त्रयोऽपि वा ।
न ज्ञात्वा गुरुवंशानां शिष्यश्चेन्नष्टसन्ततिः ।। १४३ ।।

स्ववंशादधिकं ज्ञेयं गुरुवंशं महाशुभम् ।
जनकादधिको ज्ञेयो मन्त्रदस्तु महेश्वरः ।। १४४ ।।

तस्मात्सर्वत्र देवेश संक्षेपाच्छृण तान् गुरून् ।
आदौ सर्वत्र देवेश मन्त्रदः परमो गुरुः ।। १४५ ।।

परापरगुरुस्त्वं हि परमेष्ठिगुरुस्त्वहम् ।
सर्वमन्त्रेषु विद्यासु स्वयम्प्रकृतिरूपिणी ।। १४६ ।।

ततः पुरुषरूपश्च ततश्च गुरुसन्ततिः ।
तेनैव हि मदंशाश्च मद्भक्ताश्च विशेषतः ।। १४७ ।।

सर्वमन्त्रेषु गुरवः सर्वत्र सिद्धिदायकाः ।
दिव्यौघा गुरवो देवि सिद्धौघा गुरवस्तथा ।। १४८ ।।

मानवौघाः समासेन कथयामि तवाऽऽग्रहः[1] ।
सर्वमन्त्रेषु तन्त्रेषु[2] प्रोक्ता मन्त्रचतुष्टयी ।। १४९ ।।

तत्रादौ कालिका[3] देवी तस्याः शृणु गुरुक्रमम् ।
महादेवी महादेवस्त्रिपुरश्चैव भैरवः ।। १५० ।।

दिव्यौघा गुरवः प्रोक्ताः सिद्धौघान् कथयामि ते ।
ब्रह्मानन्दः पूर्णदेवश्चलचित्तश्चलाचलः ।। १५१ ।।

कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः ।
माया मायावती चैव मानवौघान् शृणु प्रिय ।। १५२ ।।

विमलः कुशलश्चैव भीमसेनः सुधाकरः ।
मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः ।। १५३ ।।

मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनौ ।
समयानन्दसन्तोषौ कालिकागुरवः स्मृताः ।। १५४ ।।

अत्र देवीम्प्रति **भैरववाक्यम्**—

दिव्या वसन्ति खे नित्यं सिद्धा भूमाविहाऽपि च ।
मानवौघा मानवेषु मम रूपधराः सदा ।। १५५ ।।

आनन्दनाथशब्दान्ते गुरवः सर्वसिद्धिदाः ।
स्त्रियोऽपि गुरुरूपाश्चेदम्बान्ताः परिकीर्त्तिताः ।। १५६ ।।
मानवौघान्तिके देवि स्वगुरुम्परिपूजयेत् ।

**यामले**—

बलिपूजादिकं सर्वन्निशायाङ् क्रियते सदा ।
तत्तदक्षयतां याति कालीविद्याप्रसादतः ।। १५७ ।।

---

१. ख. तवाग्रतः २. क. नाऽस्त्ययमंशः ३. ख. कालिकालिका ।

कुलचूडामणौ—

रात्रौ पर्यटनङ्कुर्याद्रात्रौ च शक्तिपूजनम् ।
न करोति कथन्देव साधकः कौलिको भवेत् ।। १५८ ।।

।। अथ काम्यबलिः ।।

कालिकापुराणे—

छागन्तु वामतो दद्यान्महिषं वितरेत्पुनः ।
दक्षिणे वामतो दद्यादग्रे देहस्य शोणितम् ।। १५९ ।।

नाभेरधस्ताद्रुधिरम्पृष्ठभागस्य न प्रिये ।
स्वगात्ररुधिरं दद्यान्न कदाचित्तु साधकः ।। १६० ।।

नौष्ठस्य चिबुकस्याऽपि नेन्द्रियाणान्तथैव च ।
कण्ठाधो नाभितश्चोर्द्ध्वं हृद्भागस्य च यत्नतः ।। १६१ ।।

पार्श्वयोश्चाऽपि रुधिरन्दुर्गायै विनिवेदयेत् ।
न च रोगादिकाङ्क्षाच्च नाऽन्यघाताच्च भैरव ।। १६२ ।।

सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्याधारे च मानवः ।
निधाय देव्यै दद्यात्तु तद्युक्तम्मन्त्रपूर्वकम् ।। १६३ ।।

यः स्वहृदयसञ्जातम्मांसम्माषप्रमाणतः ।
तिलमुद्गप्रमाणं वा देव्यै दद्यात्तु भक्तितः ।। १६४ ।।

षण्मासाभ्यन्तरे तत्तत्काममिष्टमवाप्नुयात् ।

इदन्तु ब्राह्मणव्यतिरिक्तपरम् ।

अथाऽतो बलिदानन्तु वक्ष्यामि श्रीप्रियङ्करम् ।। १६५ ।।

प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य पद्मे युग्मम्पठेत्ततः ।
महापद्मे-पदम्ब्रूयात्पद्मावतिपदन्ततः ।। १६६ ।।

वह्निजायावधिः पश्चाद्बलिन्दद्याच्चतुःपथे ।
प्रणवम्भुवनेशानीमेकजटे-पदन्ततः ।। १६७ ।।

महायक्षाधिपम्ब्रूयात्पतये पदमुच्चरेत्[1] ।
मयोपनीतकम्ब्रूयात्पतये पदमुच्चरेत् ।
मयोपनीतकम्ब्रूयाद्बलिं गृह्णद्विधा पदम् ।। १६८ ।।

गृह्णापय युगम्मम सर्वशान्तिं कुरुद्वयम् ।
परविद्यां द्विधाकृष्य[2] क्रूरद्वन्द्वञ्च छिन्धियुक् ।। १६९ ।।

मायाबीजन्ततो हूँ च बलिन्दद्यात्स्वाहया निशि ।
बलिमन्त्रद्वयम्प्रोक्तं वीराणां हितकाम्यया ।। १७० ।।

वाराहीसंहितायाम्—

अथाऽतो बलिदानस्य विधानोऽत्र प्रवक्ष्यते ।
चामरः कृष्णसारश्च मत्स्यो मूषोऽथ शूकरः ।। १७१ ।।

महिषो वानरः खड्गो बलिश्छागादिको भवेत् ।
कृष्णछागद्वयन्दद्यात्पश्चाद्द्यान्महाबलिम् ।। १७२ ।।

श्वेतः कृष्णो लोहितश्च कपिलश्चित्रपाण्डरौ ।
षड्विधश्छागलः प्रोक्तो गृहस्थानाम्परो बलिः ।। १७३ ।।

उत्तमौ सितकृष्णौ च मध्यमौ चित्रपाण्डरौ ।
लोहितः कपिलश्चैव कनिष्ठः परिकीर्त्तितः ।। १७४ ।।

त्रिमासात्परतश्चैव यावदेकन्तु वत्सरम् ।
कृष्णो वा श्वेततरुणः प्रशस्तो बलिरुच्यते ।। १७५ ।।

षण्मासात्परतश्चैव यावद्वर्षद्वयम्भवेत् ।
उत्तमोऽसौ बलिः प्रोक्तस्तस्माद्धीनोऽधमः स्मृतः ।।१७६ ।।

कृष्णवर्णो बलिर्यस्तु श्वेतपुच्छो यदा भवेत् ।
छागलन्तादृशं विद्वान् दूरतः परिवर्जयेत् ।। १७७ ।।

---

१. क. पुस्तकेऽयमंशो विशेषो दृश्यते 'मयोपनीतकम्ब्रूयात्पतये पदमुच्चरेत्', किन्त्वसावनावश्यकत्वादुपरि नोद्धृतः । (सम्पा०) २. क. विधाकृष्य ।

एवं शते (सिते) कृष्णपुच्छे वर्जयेन्मतिमान्सदा ।
कृष्णवर्णोऽथ यश्छागः पृष्ठवंशे सितो यदि ।। १७८ ।।

प्रशस्तन्तं विजानीयाद्विपरीन्तु वर्ज्जयेत् ।
खञ्जङ्काणन्तथा कुब्जं सच्छिद्रं व्याधिसंयुतम् ।। १७९ ।।

व्यशनं[1] दन्तरहितं वर्जयेत्तं विचक्षणः ।
पञ्चाब्दम्महिषं श्वेतम्प्रशस्तम्परिकीर्त्तितम् ।। १८० ।।

स एव महिषः कृष्णः पाण्डरश्चाऽधमो बलिः ।
पक्षिणस्तु प्रशस्ताः स्युः सर्ववर्णाः सुशोभनाः ।। १८१ ।।

त्रिपक्षात्परतश्चैव दिने वाऽपि विवर्जयेत् ।
मनुष्ये कोटिवर्षाणि तृप्तिङ्गच्छति देवता ।। १८२ ।।

गण्डैर्वर्षसहस्राणि महिषैः शरदां शतम् ।
छागलैर्वत्सरादूर्द्ध्वं[2] द्वादशाब्दन्दशाब्दकम् ।। १८३ ।।

पूर्णसंवत्सरे चैव त्रिवर्षङ्कच्छपेन तु ।
वाराहेण तु पञ्चाशत्तदर्द्धञ्चामरेण तु ।। १८४ ।।

अब्दैकं गोधिकाभिश्च षण्मासं गात्रशोणितम् ।
पायसेनाऽपि षण्मासन्तृप्तिङ्गच्छति देवता ।। १८५ ।।

न दद्यात्स्त्रीपशोर्मांसं हव्यकव्ये विशेषतः ।
हीनेन्द्रियपशोर्मांसन्दूरतः परिवर्जयेत् ।। १८६ ।।

अथ सम्प्रोक्षणङ्कृत्वा बलिं समुत्सृजेद्बुधः ।
स्वयम्पूर्वमुखो[3] भूत्वा बलिङ्कुर्यादुदङ्मुखम् ।। १८७ ।।

अर्घ्यपात्रोदकैः शुद्धैर्मूलेन प्रोक्षयेत्त्रिशः ।
ॐ वाराही यमुना गङ्गा करतोया सरस्वती ।। १८८ ।।

कावेरी चन्द्रभागा च सिन्धुभैरवसागराः ।
अजस्नाने महेशानि सान्निध्यमिह कल्पय ।। १८९ ।।

---

१. ख. व्यसने २. ख. ०दूर्द्ध्वे । ३. क. पूर्वे मुखो ।

पशुपाशविनाशाय हेमकूटस्थिताय च ।
परापराय परमेष्ठिने हूँकाराय च मूर्त्तये ।। १९० ।।

ॐ सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतः पृष्ट्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।। १९१ ।।

बिल्वपत्रोदकैरेभिः प्रोक्षणङ्कारयेदथ ।
त्रिशः सम्पूजयेत्तञ्च तत्रेष्टङ् गन्धचन्दनैः ।। १९२ ।।

ततो निरीक्षितो मन्त्री पठेत्करपुटः स्वयम् ।
छाग त्वम्बलिरूपेण[1] मम भाग्यादवस्थितः ।। १९३ ।।

प्रणमामि सदा भक्त्या रूपिणम्बलिरूपिणम् ।
चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशिने ।। १९४ ।।

चण्डिकाबलिरूपाय बले तुभ्यन्नमो नमः ।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।। १९५ ।।

अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ।
वाङ् मायाकमलाबीजैस्तन्मूर्द्धिन त्रिःकुशान् क्षिपेत् ।। १९६ ।।

ततो बलिं समुत्सृज्य काम्यङ्कृत्वा विशालधीः ।
आनीय खङ्गम्पुरतो गन्धादिभिः समर्चयेत् ।। १९७ ।।

कृष्णम्पिनाकपाणिञ्च कालरात्रिस्वरूपिणम् ।
उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।। १९८ ।।

रक्ताम्बरधरञ्चैव पाशहस्तङ् कुटुम्बिनम् ।
पिबमानञ्च रुधिरम्भुञ्जानन्द्रव्यसंहतिम् ।। १९९ ।।

इति ध्यात्वा यजेत्तन्तु मन्त्रेणाऽनेन याजकः ।
रसना त्वञ्चण्डिकायाः सुरलोकप्रसादकः ।। २०० ।।

मायाद्वन्द्वं खङ्गपदङ् कालिकालिपदन्ततः ।
वज्रेश्वरी[2] ततो लोहदण्डां ङेन्तां नमःपदम् ।। २०१ ।।

---

१. क. छागलम्ब० । २, ख. वज्रेश्वरि ।

मायाबीजं लिखेत्खड्गे सिन्दूरचन्दनादिना ।
देव्या बीजन्न्यसेत्तत्र पूजयित्वा नमश्चरेत् ॥ २०२ ॥

असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ॥ २०३ ॥

ततः खड्गं गृहीत्वा तु देवतारसनाधिया ।
अभिमन्त्र्य च मूलेन वक्ष्यमाणेन च स्वयम् ॥ २०४ ॥

ब्रह्ममायाद्वयं कालियुगं विकटरूपतः ।
दंष्ट्रे स्फ्रें पदम्ब्रूयात्फेत्कारिणीति खादय ॥ २०५ ॥

द्वितयं छेदययुगं सर्वान्दुष्टांस्ततः पठेत् ।
मारयद्वितयं पश्चादजं खड्गेन छिन्धियुक् ॥ २०६ ॥

कालिकालि किचिद्वन्द्वं पिबयुग्रुधिरं पदम् ।
स्फ्रौं स्फ्रौं किलियुगं कालि कृन्तयुगभिमन्त्रणे[1] ॥ २०७ ॥

आँ हूँ फडिति मन्त्रेण स्कन्धे खड्गन्नियोजयेत् ।
अथ वक्ष्यामि खड्गानांल्लक्षणन्तन्त्रवर्त्मना ॥ २०८ ॥

येन सच्छेदनेनाऽपि साधकः सिद्धिमालभेत् ।
सर्वेषामुत्तमः खड्गश्चन्द्रहासः सुखावहः ॥ २०९ ॥

पञ्चाशदङ्गुलैः कार्यः किं वा तालत्रयेण तु ।
करवीरदलाकारः किं वा पद्मदलाकृतिः ॥ २१० ॥

अथवा कुब्जखड्गेन दण्डखड्गेन भेदयेत् ।
महाबलीनां सर्वेषान्दात्रमत्र प्रकीर्त्तितम् ॥ २११ ॥

कर्त्तृकया क्षुरेणाऽपि छिन्द्यात् क्षुरिकया[2] न[3] च ।
कुठारपरशुखण्डाभ्यां छेदयेन्न कदाचन ॥ २१२ ॥

---

१. क. ० युगभिमन्त्रिने । २. ख. छुटिकया । ३. ख. नि ।

छेदयेत्तीक्ष्णखड्गेन अच्छिद्रेण शुभेन च ।
नाऽऽकाशे छेदयेत्तन्तु वने देशे शुचौ तथा ।। २१३ ।।

छेदयेदनिशं सर्वम्बलिम्पूर्वमुखं शुभम् ।
उदङ् मुखः स्वयन्मन्त्रबीजेनैव च साधकः ।। २१४ ।।

छागलादिपशूनाञ्च विपरीतमुखेन तु ।
प्रहाराणाञ्चाधिकारी तेषामेव विधीयते ।। २१५ ।।

स्वयं वा भ्रातृपुत्रो वा भ्राता वा सुहृदोऽपि वा ।
सपिण्डश्छेदयेद्वाऽपि शुद्धान्तःकरणं यदि ।। २१६ ।।

न रिपुं नाऽङ्गहीनं वा न काणन्न च कुब्जकम् ।
न योजयेच्छत्रुपक्षम्बलिच्छेदनकर्मणि ।। २१७ ।।

यदि वायव्यदिग्भागे नैर्ऋत्ये दक्षिणेऽपि वा ।
मस्तके पतिते चैव हानिरत्र विनिर्दिशेत् ।। २१८ ।।

शेषेषु दिक्षु सर्वासु विदिक्षु च फलं शृणु ।
पूर्वे चोत्तरदिग्भागे पतते यदि मस्तकम् ।। २१९ ।।

सर्वसम्पत्करं विन्द्याद्राजा राज्यं विनिर्दिशेत् ।
भ्रमित्वा[1] दक्षिणे कर्णे यदा पतति वै शिरः ।। २२० ।।

तदा सिद्धिञ्च मासान्ते वामकर्णे विपद्भवेत् ।
राज्ञामग्रे भवेद्धानिर्गृहस्थानां शुभम्भवेत् ।। २२१ ।।

ऐशान्यमध्ययोश्चैव पतते यदि मस्तकम् ।
तदा स्वल्पेन कालेन सर्वसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।। २२२ ।।

छिन्नं शिरो निपतितं सहास्यं यदि दृश्यते ।
विभूतिन्तस्य जानीयाद्राजा राज्यं विनिर्दिशेत् ।। २२३ ।।

---

१. क. भ्रामित्वा ।

एकवारे भवेत्सिद्धि[1]-र्द्विवारे हानिरुच्यते ।
गृहस्थानां विजानीयाद्राज्ञान्तु विपरीतकम् ।। २२४ ।।

यदाशु[2] दृश्यते नेत्रे तदा हानिं विनिर्दिशेत् ।
यदा कटकटाशब्दो दन्तानां श्रूयते क्वचित् ।। २२५ ।।

तदा तु मरणं विन्द्याद्धानिं सर्वत्र निर्दिशेत् ।
दद्याद्राक्षसदिग्भागे मन्त्री बलिशिरः स्वयम् ।। २२६ ।।

तद्दक्षिणे रक्तपात्रन्तु विपरीतं न सन्ददेत् ।
देवस्य सम्मुखङ्कृत्वा छिन्नम्भागम्प्रकल्पयेत् ।। २२७ ।।

तदैव शस्तञ्जानीयान्मध्यमं विपरीतकम् ।
महाबलीनां वायव्ये प्रदद्यात्साधकोत्तमः ।। २२८ ।।

बलीनामिति संज्ञानां शिरश्च पुरतो ददेत् ।
कीलकान्ते न्यसेत्सर्वं यथा कम्पो न जायते ।। २२९ ।।

शीर्षोपरि ज्वलद्दीपम्प्रदद्याच्चन्दनोक्षितम् ।
घृतेन सार्वभौमः स्यात्तेन सिद्धिं च विन्दति ।। २३० ।।

सूत्रवर्तिन्न दद्याच्च वस्त्रवर्ज्या[3] प्रशस्यते ।
अङ्गुष्ठस्य प्रमाणञ्च दीर्घञ्चैव षडङ्गुलम् ।। २३१ ।।

कार्पाससूत्रैर्वा दद्यादेकविंशतिसूत्रकैः ।
सुगन्धिद्रव्यैस्तत्कुर्यात्कर्पूरागुरुचन्दनैः ।। २३२ ।।

ब्राह्मणाङ्कच्छपानाञ्च गोधायाश्च विशेषतः ।
मत्स्यानामपि पक्षीणान्न दीपन्दापयेच्छिरे ।। २३३ ।।

शीर्षोपरि ज्वलद्दीपो यावत्कालम्प्रवर्तते ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे तस्माद्यत्नेन दापयेत् ।। २३४ ।।

लोमदाहोद्भवङ्गन्धङ्घ्रात्वा देवी प्रसीदति ।
तस्मात्सँव्वर्द्धयेद्दीपं तस्मात्पात्रं विवर्जयेत् ।। २३५ ।।

१. ख. बभूत्सिद्धि । २. ख. यदास्तु । ३. ख. वस्त्रवर्त्या ।

निर्वाणे मृत्युमाप्नोति दीयमाने प्रदीपके ।
न क्षीरं शोषितन्दद्यान्न चाऽऽज्यञ्च कदाचन ।। २३६ ।।

शर्करायुतदूर्वाणि प्रदद्यात्त्रिर्महाघृतम् ।
सैन्धवं शृङ्गवेरञ्च कदलीफलमेव च ।। २३७ ।।

पातयेन्मधुराणाञ्च काममुद्दिश्य साधकः ।
बलिप्रकारमुद्दिष्टं वाराहीसंहिताक्रमात् ।। २३८ ।।

तथा— लक्षमेकञ्जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः ।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकञ्जपेत्प्रिये ।। २३९ ।।

होमे च तर्प्पणे चैव पूजावत्कथितो विधिः ।
दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत् ।। २४० ।।

होमस्तु घृतेनैव 'द्रव्यानुक्तौ घृतं होम' इति कपिलवचनात् ।।

**फेत्कारीये—**

एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे ।
तत्रस्थः साधयेद्योगी विद्यान्त्रिभवतारिणीम् ।। २४१ ।।

पञ्चक्रोशान्तरे[1] यत्र न लिङ्गान्तरमीक्ष्यते ।
तदेकलिङ्गमाख्यातन्तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।। २४२ ।।

**अन्यत्राऽपि—**

उज्जटे पर्वते वाऽपि निर्जने वा चतुष्पथे ।
देवागारे देवशून्ये बिल्वमूले नदीतटे ।। २४३ ।।

स्वगृहे निर्जनारामे तथा चाऽश्वत्थसन्निधौ ।
एषामन्यतमं स्थानं समाश्रित्य जपञ्चरेत् ।। २४४ ।।

**कालीतन्त्रे—**

दन्ताक्षमालया चैव राजदन्तेन मेरुणा ।

---

१. ख. पञ्चकोशान्तरे ।

प्रजपेदित्यर्थः । तस्य द्वादशपटलेऽपि ।

दन्ताक्षमालिका सा तु पूर्वोक्ता भुवि दुर्लभा ।। २४५ ।।

नागयज्ञोपवीताञ्च चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् ।
जटाजूटाञ्च संञ्चिन्त्य महाकालसमीपगाम् ।। २४६ ।।

कूर्चं लज्जायुगम्बीजद्वयञ्चाऽन्ते नियोज्य च ।
एवं सञ्चिन्त्य देवीन्तु ह्यर्क्कपुष्पैः समर्च्चयेत् ।। २४४ ।।

कामबाणसमाविद्धा विलज्जा विह्वलाः स्त्रियः ।
स्वं स्वं सन्त्यज्य भर्त्तारमालिङ्गन्ति सदैव तम् ।। २४५ ।।

अत्र वश्ये यथास्थितद्वाविंशत्यक्षरमूलमन्त्रस्यान्ते "हुं ह्लीं ह्लीं क्रीँ क्रीं" इति बीजपञ्चकं संयोज्य, जपपूजादिकं कुर्यादिति श्रीमदाराध्यश्रीसुन्दराचार्य-चरणाः । आकर्षणे तु प्रोक्तबीजपञ्चके[1] यत्र बीजद्वयन्तत्रैकैकमेव ग्राह्यं, बीज-त्रयम्मूलमन्त्रस्याऽऽद्यन्तयोर्योजनीयम् । केचित्तु "दक्षिणे कालिके स्वाहा" इत्येव मूलमन्त्रस्तस्य चोक्तबीजानि प्रयोगेषु योज्यान्यन्यानि त्याज्यानीति वदन्ति ।

अग्रस्थाञ्च यजेद्देवीम्मालापुष्पैः सुपीतकैः[2] ।
अभ्यर्च्यैकैकशस्त्वादौ[3] तथैवान्तेऽपि योजयेत् ।। २४९ ।।

आकर्षणम्भवत्येव सदा स्थावरजङ्गमे ।
स्वर्गपातालगं वाऽपि किमन्यद्भूतले स्थितम् ।। २५० ।।

आकर्षयति सर्वञ्च महाकालवचो यथा ।
कपिलान्द्विभुजाङ्कर्त्रि कपालं सव्यदक्षिणम् ।। २५१ ।।

ध्यात्वैवं सर्ववर्णस्य शेषे ठद्वयमेव हि ।
एवम्प्रजप्य पुष्पेण कृष्णेनैव[4] प्रपूजयेत् ।। २५२ ।।

मारणन्तु भवेत्तस्य यमुद्दिश्य कृता क्रिया ।
उच्चाटयति पिङ्गाक्षी सन्त्रासयति केकरा ।। २५३ ।।

---

१. क. प्रोक्तपंचीजपञ्चके । २. क. अग्रतस्यांवव्यालापुष्पैः सुपातकैः । ३. क. कैकस० । ४. क. कृष्णेणैव ।

विद्रावयति मुक्तास्या प्रोन्मत्तयति घूर्णिता ।
विक्षोभयति संक्षुब्धा सम्पादयति सम्मता ।। २५४ ।।

सङ्कोचयति संरुद्धा विप्ररुद्धा विरोधयेत् ।
यो यो भावो जने नेयस्तद्भावस्थां स्मरेदिति ।। २५५ ।।

अत्र सर्वत्र कर्त्तव्यम्भावमात्रस्य चिन्तनम् ।
उच्चाटनं विनाऽन्यत्र सर्वत्र सुरतम्मतम् ।। २५६ ।।

सुरतं देवदेव्योर्ध्येयमिति ।

स्नातः शुक्लाम्बरधरः कृतनित्यक्रियो दिवा ।
रात्रौ नग्नः शयानश्च मैथुने च व्यवस्थितः ।। २५७ ।।

अथवा मुक्तकेशश्च तेन स्युः सर्वसिद्धयः ।
स्तम्भनम्मोहनञ्चैव वशीकारो विशेषतः ।। २५८ ।।

नग्नाम्परस्त्रियं वीक्ष्य प्रजपेदयुतन्नरः ।
स भवेत्सर्वविद्यानाम्पारगः सर्वदैव हि ।। २५९ ।।

तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निःप्रभा मताः ।
गद्यपद्यमयी वाणी तस्य सर्वविधा भवेत् ।। २६० ।।

अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यम्भक्षयन्नरः ।
प्रजपेदयुतन्तावदेष प्रतिनिधिः स्मृतः ।। २६१ ।।

अष्टोत्तरशतञ्जप्त्वा भगमामन्त्र्य यत्नतः ।
मैथुनं यः प्रयात्येष धनधान्यसुतान्वितः ।। २६२ ।।

सर्वविद्यावतां श्रेष्ठो भवेन्नैवाऽत्र संशयः ।
ऋतुमत्या भगं पश्यन्नयुतम्प्रजपेन्नरः ।। २६३ ।।

अनर्घ्यकविता तस्य गद्यपद्यमयी भवेत् ।
छन्दोबद्धा परन्तस्य वाणी[1] वक्त्रात्प्रजायते ।। २६४ ।।

सुरतेषु च जप्तव्यं सदा पापविमुक्तये ।
धनागमाय च तथा परयोषा[2]-समागमे ।। २६५ ।।

१. क. वर्णा । २. क. परयोधा० ।

यदि न योषित्संसर्गस्तदा रेत: प्रयत्नतः ।
समुत्सार्य ततो जप्यं सर्वकामार्थसिद्धये ।। २६६ ।।

श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः ।
जपेदयुतसङ्ख्यन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ।। २६७ ।।

तत्रैव प्रेतमारुह्य यो जपेन्मन्त्रवित्तमः ।
अयुतं वाग्यतो भूत्वा विभीः सत्वपरायणः ।। २६८ ।।

स याति परमां सिद्धिं देवैरपि सुदुर्ल्लभाम् ।
आकर्षणं वशीकारो मारणोच्चाटनादिकम् ।। २६९ ।।

स्तम्भनम्मोहनञ्चैव त्रासनं हासनन्तथा ।
वाग्मित्वञ्च धनित्वञ्च बहुपुत्रत्वमेव च ।। २७० ।।

बहुवल्लभतां याति सर्वप्रियत्वमेव च ।
न जरा न च वा रोगो न मृत्युर्न च वा भयम् ।। २७१ ।।

न वा प्रीतिर्मनुष्येषु न च वा कायपातनम् ।
अथवा स भवेन्नित्यञ्चतुर्विंशतिसिद्धिभाक् ।। २७२ ।।

स्वदेहरुधिराक्तैस्तु विल्वपत्रैः सहस्रशः ।
श्मशानेऽभ्यर्च्चयेद्देवीं वागीशसमतां व्रजेत् ।। २७३ ।।

स्वरेतोभ्यक्तपत्रेणाऽभ्यर्कस्यैव सहस्रशः ।
श्मशानेऽभ्यर्चयेद्देवीं सर्वसिद्धिं स विन्दति ।। २७४ ।।

धनवान्बलवान्वाग्मी सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ।
सुखी स्यान्नाऽत्र सन्देहो महाकालवचो यथा ।। २७५ ।।

श्मशाने योषितन्नीत्वा मन्त्रैरभ्यर्च्य सहस्रकम् ।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तपुष्पैरलङ्कृतम् ।। २७६ ।।

तावत्पुष्पैर्मनुम्प्राच्र्य ततो ध्यायेच्च चण्डिकाम् ।
ततो गत्वा लभेद्राज्यं यद्यसौ न भयायते ।। २७७ ।।

श्मशानशयने चैव शवासनगतः पुनः ।
असकृत्तु जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदम्भवेत् ।। २७८ ।।

तर्प्पयेच्च शवास्येषु रक्तमांसादिभिस्त्रिधा ।
त्रिस्त्रिर्मन्त्रमुदीर्य्यैव सर्वसिद्धिर्भवेत्ततः ।। २७९ ।।

तर्प्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा ।
रेतोभिश्च तथा तद्वत्स्वकीयेन कचेन च ।। २८० ।।

मैथुनायितयोषाया भगप्रक्षालनेन च ।
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि ।। २८१ ।।

शशकस्य च रक्तेन वाग्मित्वन्तस्य जायते ।
धनित्वञ्जायते तस्य सर्वसिद्धिश्च जायते ।। २८२ ।।

वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः ।
आज्ञया देवराजोऽसौ रूपेण च मनोभवः ।। २८३ ।।

बलेन पवनो ह्येष सर्वतत्वार्थसाधकः ।
साधितासाधितं मांसं सास्थि दद्यात्सदा बलिम् ।। २८४ ।।

मूषमांसम्मेषमांसञ्च्छागम्माहिषमेव च ।
सर्वं सास्थि प्रदातव्यं सदा लोमसमन्वितम् ।। २८५ ।।

स्वनखं छिन्नमज्जीवं केशं सम्मार्जनीगतम् ।
निवेदयेत्श्मशाने तत्सर्वसिद्धिप्रदम्भवेत् ।। २८६ ।।

नारीरजोयुतङ्कृत्वा पर्णानां शतमुत्तमम् ।
प्रत्येकम्प्रजपेन्मन्त्रन्ततस्तद्धोमयेद्बुधः ।। २८७ ।।

युगानामयुतन्तेन पूजिता दक्षिणा भवेत् ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वाग्मी धीरश्च जायते ।। २८८ ।।

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्पृथिव्याञ्जातु जायते ।
योनिरूपं हि कुण्डं वै कृत्वा वितस्त्यरत्नितः ।। २८९ ।।

हस्तविस्तारतो वाऽपि कृत्वा चैव यथाविधि ।
तत्र कार्या हि मन्त्रेण वह्निस्थापनिका क्रिया ।। २९० ।।

महाकालाय देवाय दद्यात्प्रथममाहुतिम् ।
स्रुवेणाऽऽज्येन मांसेन भक्तेन रुधिरेण च ।। २९१ ।।

कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ।
आमिषादिभिरप्येवञ्जुहुयात्स्मशानालये ।। २९२ ।।

स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः ।
दिवा सर्वम्प्रकर्त्तव्यं सर्वकामार्थसिद्धये ।। २९३ ।।

रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुनेनाऽपि तत्वतः ।
प्रकर्त्तव्यम्प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ।। २९४ ।।

द्विजानामेष सर्वेषां विधिरत्र च दर्शितः ।
शूद्राणाञ्चैव सम्प्रोक्तं रात्रौ हृष्टम्महामतम् ।। २९५ ।।

महाकालं यजेद्यत्नात्पश्चाद्देवीम्प्रपूजयेत् ।
त्रिधा विभज्य मन्त्राद्यैर्यत्नात्साधकसत्तमः ।। २९६ ।।

मांसं रक्तन्तिलङ्केशन्नखम्भक्तञ्च पायसम् ।
आज्यञ्चेति प्रयत्नेन होतव्यं सर्वसिद्धये ।। २९७ ।।

एवङ्कृत्वा विधानेन भजते सिद्धिमुत्तमाम् ।
यद्यत्प्रार्थयते जन्तुस्तत्तत्प्राप्नोति नित्यशः ।। २९८ ।।

देवत्वन्दानवत्वञ्च सिद्धचारणतान्तथा ।
सदा हुत्वा समाप्नोति नित्यमेवमतन्द्रितः[1] ।। २९९ ।।

[**मन्त्रमहोदधौ**—

स्त्रीणाम्प्रहारन्निन्दाञ्च कौटिल्यञ्चाऽप्रियं वचः ।
आत्मनो हितमन्विच्छन् कालीभक्तो विवर्ज्जयेत् ।। ३०० ।।

त्रिपञ्चारे महापीठे शवस्य हृदि संस्थिताम् ।
महाकालेन देवेन मारयुद्धम्प्रकुर्वतीम् ।। ३०१ ।।

तान्ध्यायन्स्मेरवदनां विदधत्सुरतं स्वयम् ।
जपेत्सहस्रमपि यः स शङ्करसमो भवेत् ।। ३०२ ।।

अस्थिलोमत्वचायुक्तम्मांसम्मार्जारमेषयोः ।
उष्ट्रस्य महिषस्याऽपि बलिं यस्तु समर्प्पयेत् ।। ३०३ ।।

---

१. ख. मतन्द्रितम् ।

भूताष्टम्योर्मध्यरात्रे वश्याः स्युस्तस्य जन्तवः ।
विद्यालक्ष्मीयशःपुत्रैः स चिरं सुखमेधते ।। ३०४ ।।

हविष्याशनरतो दिवा देवीं स्मरञ्जपेत् ।
नक्तन्निधुवनासक्तो लक्षं स स्याद्धरापतिः ।। ३०५ ।।

रक्ताम्भोजैर्हुतैर्मन्दी धनैर्जयति वित्तपम् ।
विल्वपत्रैर्भवेद्राज्यं रक्तपुष्पैर्वशीकृतिः ।। ३०६ ।।

असृजा महिषादीनां कालिकां यस्तु तर्प्पयेत् ।
तस्य स्युरचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः ।। ३०७ ।।][1]

तन्त्रान्तरे तु—

पुरश्चरणमुद्दिष्टं दशसाहस्रकम्बुधैः ।
तथा होमञ्च कुरुते भवेत्तेन पुरस्क्रिया ।। ३०८ ।।

कलौ चतुर्गुणा सङ्ख्या तेन शीघ्रफलप्रदा ।
होमन्तु रक्तपुष्पेण कुण्डे कुर्याद्यथाविधि ।। ३०९ ।।

एतन्मन्त्रजपान्मन्त्री मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
पितृमातृवधाच्चैव किमन्यैः क्षुद्रपातकैः ।। ३१० ।।

कपिलारत्नसम्पूर्णपृथ्वीदानस्य यत्फलम् ।
होमकोटिसहस्रैश्च देव्या ध्यानेन तत्फलम् ।। ३११ ।।

तथा नियमसंसिद्धिं लभते साधकः शुचिः ।
स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रं यं यन्तन्तं वशन्नयेत् ।। ३१२ ।।

शतमष्टोत्तरञ्जप्त्वा रक्तपुष्पेण होमतः ।
कुर्यान्नृपं वशम्मन्त्री नाऽसाध्यम्भुवनत्रये ।। ३१३ ।।

शून्यागारे देवगृहे स्वयम्भूस्थान एव च ।
हविष्याशी ब्रह्मचारी भवेदिन्द्रसमो जपात् ।। ३१४ ।।

---

१, [—] कोष्ठस्थांशस्याऽभावः क. पुस्तके ।

कुण्डे त्रिकोणसंज्ञे तु शान्तौ पुष्टौ तथैव च ।
अयुतञ्जुहुयान्मन्त्री सहस्रस्य त्रितयम्पुनः ।। ३१५ ।।

काम्ये सहस्रमारक्तैः पुष्पैर्हुत्वा दशांशतः ।
तर्प्पणञ्च पुनस्तत्र देवीन्ध्यात्वा हुताशने ।। ३१६ ।।

सम्पूज्य मूलमन्त्रेण विल्वपत्रैर्घृतान्वितैः ।
सहस्रम्प्रत्यहं हुत्वा प्राप्नोति परमाङ्गतिम् ।। ३१७ ।।

घृताक्तमालतीपुष्पैर्होमाद्द्रुतकविर्भवेत् ।
नाऽसाध्यं विद्यते किञ्चिदेतन्मन्त्रविदः सदा ।। ३१८ ।।

देव्या आराधने सक्तो गुरुभक्तिपरायणः ।
वाञ्छितँल्लभते मन्त्री नाऽन्यथा जायते फलम् ।। ३१९ ।।

**।। अथ शिवाबलिप्रकारः ।।**

**तदुक्तं कुलचूडामणौ—**

विल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वाऽपि साधकः ।
मांसप्रधानन्नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ।। ३२० ।।

कालि कालीति वक्तव्ये तत्रोमा शिवरूपिणी ।
पशुरूपा समायाति परिवारगणैः सह ।। ३२१ ।।

भुङ्क्त्वा[1] रौति यदैशान्यां मुखमुत्तुल्य[2] सुस्वरम् ।
तदेव मङ्गलन्तस्य नाऽन्यथा कुलभूषण ।। ३२२ ।।

अवश्यमन्नदानेन नियतन्तोषयेच्छिवाम्[3] ।
नित्यं श्राद्धं यथा सन्ध्यावन्दनम्पितृतर्प्पणम् ।। ३२३ ।।

तथैव कुलसेव्यानान्नित्यञ्जम्बुकपूजनम् ।
पशुरूपां शिवान्देवीं यो नाऽर्च्चयति निर्जने ।। ३२४ ।।

शिवारावेण तस्याऽऽशु सर्वन्नश्यति निश्चितम् ।
जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित्सुकृतानि च ।। ३२५ ।।

१. ख. भुक्त्वा । २. ख. ० मुत्तोल्य । ३. क. शिवम् ।

गृहीत्वा पापमादाय शिवा रोदिति निर्जने ।
एकया भुज्यते यत्र शिवया कुलभैरव ।। ३२६ ।।

तत्रैव सर्वशक्तीनाम्प्रीतिः परमदुर्लभा ।
पशुशक्तिर्नरशक्तिः पक्षिशक्तिस्तु भैरव ।। ३२७ ।।

पूजिता निर्गुणङ्कर्म सगुणं साधयेद्यतः ।
तेन सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यम्पूजनम्महत् ।। ३२८ ।।

राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके ।
शुभाशुभानि कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत् ।। ३२९ ।।

गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालिन्दिरूपिणि[1] ।
शुभाशुभफलव्यक्तिम्ब्रूहि गृह्ण बलिन्तव ।। ३३० ।।

एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलजनप्रिय ।
यदि नो भुज्यते वत्स तदा नैव शुभम्भवेत् ।। ३३१ ।।

शुभं यदि भवेत्तत्र भुज्यते तदशेषतः ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि शान्तिस्वस्त्ययनञ्चरेत् ।। ३३२ ।।

।। अगस्तिसंहितायान्दीपदानम् ।।

यथा— अर्थादिसाधने दीपन्दक्षिणाया मनोहरम् ।
भार्गवेन[2] कृतन्दीपम्भर्गस्याऽज्ञापुरस्कृतम् ।। ३३३ ।।

नानारोगार्त्तिहरणन्नानाक्लेशविनाशनम् ।
महाशत्रुभयप्राप्ते प्राप्ते प्राणस्य सङ्कटे ।। ३३४ ।।

दत्वा दीपम्प्रयत्नेन कालिकाकल्पभूरुहम् ।
मूलञ्जप्त्वा हविष्येण दिवसञ्चाऽयुतार्द्धकम् ।। ३३५ ।।

रात्रौ च प्रहरेऽतीते ततो दीपम्प्रकल्पयेत् ।
न्यासादिकन्ततः कुर्यात्षोढाकवचसंयुतम् ।। ३३६ ।।

१. ख. कालाग्निरूपिणि । २. ख. भार्गवेण ।

प्रथमाञ्च द्वितीयाञ्च नैवेद्यम्परिकल्पयेत् ।
स्वयङ्गृह्णीत दिग्वासा दीपम्प्रज्वाल्य चाऽऽदरात् ।। ३३७ ।।

कुमारीः पूजयेत्पश्चाद्यन्त्रङ् कुर्याद्धि शाम्भवम् ।
षट्कोणद्वयमध्यस्थन्त्रिकोणञ्चतुरस्रकम् ।। ३३८ ।।

चतुर्द्वारसमोपेतन्तत्कोणङ् कुलिशान्वितम् ।
तन्मध्ये पूजयेद्देवीम्महाकालसमन्विताम् ।। ३३९ ।।

दीपं यस्योपरि न्यस्य सङ्कल्पङ् कामनान्वितम् ।

**।। अथ कालीस्तोत्रम् ।।**

तदुक्तं वीरतन्त्रे—

कर्पूरम्मध्यमान्त्यस्वरपररहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं,
बीजन्ते मातरेतत्त्रिपुरहरवधूस्त्रिःकृतं ये जपन्ति ।
तेषाङ्गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः,
स्वच्छन्दन्ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिङ्गतानाम् ।।३४०।।

ईशानः सेन्दुवामश्रवणपरिगतो बीजमन्यन्महेशि,
द्वन्द्वन्ते मन्दचेता यदि जपति जनो[1] वारमेकङ्कदाचित् ।
जित्वा वाचामधीशन्धनदमपि चिरम्मोहयन्नम्बुजाक्षी,
वृन्दञ्चन्द्रार्द्धचूडे प्रभवति स महाघोरशावावतंसे ।। ३४१ ।।

ईशो वैश्वानरस्थः शशधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तो,
बीजन्ते द्वन्द्वमन्यद्विगलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति ।
द्वेष्टारं घ्नन्ति ते च त्रिभुवनमपि ते वश्यभावन्नयन्ति,
सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे त्र्यक्षरे च ।। ३४२ ।।

ऊर्द्ध्वं वामे कृपाणङ्करकमलतले छिन्नमुण्डन्तथाऽधो,
सव्येऽभीतिं वरञ्च त्रिजगदघहरे दक्षिणे कालिके च ।
जप्त्वैतन्नामवर्णन्तव मनुविभवम्भावयेन्त्येवमम्ब,
तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितवदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ।। ३४३ ।।

१. क. मनो ।

वर्गाद्यं वह्नियुक्तं विधुरतिललितन्तत्त्रयङ्कूर्चयुग्मं,
लज्जाद्वन्द्वञ्च पश्चात् स्मितमुखि तदधस्ठद्वयं योजयित्वा ।
मातर्येये जपन्ति स्मरहरमहिले भावयन्तः स्वरूप—
न्ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति ।।३४४।।

प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपि च परम्बीजमत्यन्तगुह्यम्,
त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयन्तो जपन्ति ।
तेषान्नेत्रारविन्दे विहरति कमला वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे,
वाग्देवी देवि मुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठपीनस्तनाढ्ये ।। ३४५ ।।

गतासूनाम्बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलस—
न्नितम्बां दिग्वस्त्रान्त्रिभुवनविधात्रीन्त्रिनयनाम् ।
श्मशानस्थान्तल्पे शवहृदि महाकालसुरत-
प्रसक्तान्त्वान्ध्यायञ्जननि जडचेता अपि कविः ।। ३४६ ।।

शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः,
परं सङ्कीर्णायाम्प्रकटितचितायां हरवधू ।
प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरि सुरतेनाऽपि युवतीम्,
सदा त्वान्ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषाम्परिभवः ।। ३४७ ।।

वदामस्ते किंवा जननि वयमुच्चैर्जडधियो,
न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम् ।
तथाऽपि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चाऽस्माकमपि ते,
तदेतत्क्षन्तव्यन्न खलु पशुरोषः समुचितः ।। ३४८ ।।

समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवती,
रतासक्तो[1] नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम् ।
विवासास्त्वान्ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः,
समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरञ्जीवति कविः ।। ३४९ ।।

१. ख. रतास्क्तो ।

समः स्वस्थीभूतो जपति विपरीतो यदि सदा,
　　विचिन्त्य त्वान्ध्यायन्नतिशयमहाकालसुरताम् ।
तदा तस्य क्षोणीतलविहरमानस्य विदुषः,
　　कराम्भोजे वश्या हरवधु महासिद्धिनिवहाः ।। ३५० ।।

प्रसूते संसारञ्जननि भवती पालयति च,
　　समस्त क्षित्यादिप्रलयसमये संहरति च ।
अतस्त्वान्धाताऽपि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरहो,
　　महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौमि भवतीम् ।। ३५१ ।।

अनेके सेवन्ते हरगृहिणि गीर्वाणनिवहान्,
　　विमूढास्ते मातर्नहि किमपि जानन्ति परमम् ।
समाराध्यामाद्यां हरिहरविरञ्च्यादिभिरपि,
　　प्रपन्नोऽस्मि स्मेरां रतिरसमहानन्दनिरताम् ।। ३५२ ।।

धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगन-
　　न्त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।
स्तुतिः का ते मातर्निजकरुणया मामगतिक-
　　म्प्रसन्नात्वम्भूया न भवमनुभूयान्मम जनुः ।। ३५३ ।।

श्मशानस्थः स्वस्थो गलितचिकुरो दिक्पटधरः,
　　सहस्रन्त्वर्काणान्निजगलितवीर्येण कुसुमम् ।
जपंस्त्वत्प्रत्येकम्मनुमपि तव ध्याननिरतो,
　　महाकालि स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः ।। ३५४ ।।

गृहे सम्मार्ज्जन्या परिगलितवीर्यंहि चिकुरं,
　　समूलम्मध्याह्ने वितरति चितायाङ्कुजदिने ।
समुच्चार्य्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत्कालि सततम्,
　　गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः ।। ३५५ ।।

स्वपुष्पैराकीर्णङ्कुसुमधनुषो मन्दिरमहो,
　　पुरो ध्यायन् ध्यायञ्जपति परमन्तावकमनुम् ।
स गन्धर्वश्रेणीपतिरिव कवित्वामृतनदी-
　　नदीनः पर्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति ।। ३५६ ।।

त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदना-
म्महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम् ।
समायुक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो,
जनो यो ध्यायेत्त्वाञ्जननि किल सः स्यात्स्मरहरः ।। ३५७ ।।

सलोमास्थि स्वैरम्पललमपि मार्ज्जारमपि ते,
परम्मैषम्मौषन्नरमहिषयोश्छागमपि वा ।
बलिन्ते पूजायामपि वितरतां मर्त्यवसतां,
सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ।। ३५८ ।।

वशी लक्षम्मन्त्रम्प्रजपति हविष्याशनरतो,
दिवा मातर्युष्मच्चरणकमलध्याननिपुणः ।
परन्नक्तन्नग्नो निधुवनविनोदेन च मनु-
ञ्जपेल्लक्षं स स्यात्स्मरहरसदृक्षः क्षितितले ।। ३५९ ।।

इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणजनुः-
स्वरूपाख्यम्पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम् ।
निशार्द्धं वा पूजासमयमथ वा यस्तु पठति,
प्रलापस्तस्याऽपि प्रसरति कवित्वामृतरसः ।। ३६० ।।

कुरङ्गाक्षीवृन्दन्तमनुसरति प्रेमतरलं,
वशस्तस्य क्षोणीपतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः ।
रिपुः कारागारङ्कलयति च तत्केलिकलया,
चिरञ्जीवन्मुक्तः स भवति सुभक्तः प्रतिजनु ।। ३६१ ।।

।। इति कर्पूरस्तवराजः समाप्तः ।।
।। अथाऽस्याः कवचम् ।।

श्रीभैरव्युवाच –

कालीपूजा श्रुता नाथ विभावा विविधाः प्रभो ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचम्मन्त्रविग्रहम् ।। ३६२ ।।
त्वमेव शरणन्नाथ[1] त्राहि मान्दुःखसङ्कटात् ।

---

१. क. शरणा नाथ ।

भैरव उवाच—

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवल्लभे ।
त्रैलोक्यमङ्गलन्नाम कवचम्मन्त्रविग्रहम् । । ३६३ ।।

पठित्वा धारयित्वा तु त्रैलोक्यम्मोहयेत्क्षणात् ।
नारायणोऽपि यद्धृत्वा नारी भूत्वा महेश्वरः ।। ३६४ ।।

योगेशं क्षोभमनयद्यद्धृत्वा च रघूद्वहः ।
वरदृप्ताञ्जघानैव रावणादिनिशाचरान् ।। ३६५ ।।

यस्य प्रसादादीशोऽपि त्रैलोक्यविजयी विभुः ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छचीपतिः ।। ३६६ ।।

एवं हि सकला देवाः सर्वसिद्धीश्वराः प्रिये ।
श्रीजगन्मङ्गलस्याऽस्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।। ३६७ ।।

छन्दोऽनुष्टुब्देवता च दक्षिणा कालिकेरिता ।
जगताम्मोहने दुष्टविजये भुक्तिमुक्तिषु ।। ३६८ ।।

योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
शिरो मे कालिका पातु क्रींकारैकाक्षरी परा ।। ३६९ ।।

क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटञ्च कालिका खड्गधारिणी ।
हूँ हूँ पातु नेत्रयुग्मं ह्रीँ ह्रीँ पातु श्रुती मम ।। ३७० ।।

दक्षिणे कालिके पातु घ्राणयुग्मम्महेश्वरी ।
क्रीं क्रीं क्रीं रसनाम्पातु हूं हूं पातु कपोलकम् ।। ३७१ ।।

वदनं कालिका पातु ह्रीँ ह्रीँ स्वाहास्वरूपिणी ।
द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्याऽखिलप्रदा ।। ३७२ ।।

खड्गमुण्डधरा काली सर्वाङ्गमभितोऽवतु ।
क्रीं हूँ ह्रीँ त्र्यक्षरी पातु चामुण्डा हृदयम्मम ।। ३७३ ।।

ऐं हूँ ॐ ऐं स्तनद्वन्द्वं ह्रीं फट् स्वाहा ककुत्स्थलम् ।
अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकर्त्तृका ।। ३७४ ।।

क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीँ ह्रीँ करौ पातु षडक्षरी मम ।
क्रीं नाभिम्मध्यदेशञ्च दक्षिणे कालिकेऽवतु ।। ३७५ ।।

क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठञ्च कालिका सा दशाक्षरी ।
हूँ ह्रीँ दक्षिणे कालिके ह्रीँ हूँ पातु कटिद्वयम् ।। ३७६ ।।

कालिका द्वादशाक्षरी स्वाहा मे चोरुयुग्मकम् ।
ॐ ह्रीँ क्रीं मे स्वाहा पातु जानुनी कालिका सदा ।। ३७७ ।।

काली हृन्नामविद्येयं[1] चतुर्वर्गफलप्रदा ।
क्रीं हूँ ह्रीँ पातु मे गुल्फन्दक्षिणे कालिकेऽवतु ।। ३७८ ।।

'क्रीँ हूँ ह्रीँ स्वाहा'[2] सा पातु चतुर्दशाक्षरी मम ।
खड्गमुण्डधरा काली वरदाऽभयपाणिनी ।। ३७९ ।।

विद्याभिः सकलाभिश्च सर्वाङ्गमभितोऽवतु ।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।। ३८० ।।

विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा[3] दीप्ता घनत्विषः ।
नीला घना वलाका च मात्रा मुद्राऽसिता च माम् ।। ३८१ ।।

एताः सर्वाः खड्गधरा मुण्डमालाविभूषणाः ।
रक्षन्तु मां दिग्विदिक्षु ब्राह्मी नारायणी तथा ।। ३८२ ।।

माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चाऽपराजिता ।
वाराही नारसिंही च सर्वाश्चाऽमितभूषणाः[4] ।। ३८३ ।।

रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु मां विदिक्षु यथा तथा ।
इति ते कथितन्दिव्यङ्कवचम्परमाद्भुतम् ।। ३८४ ।।

श्रीजगन्मङ्गलन्नाम महाविद्यौघविग्रहम् ।
त्रैलोक्याकर्षणम्ब्रह्मकवचम्मन्मुखोदितम् ।। ३८५ ।।

---

१. ख. काली श्रुता सुविद्येयं । २. '—' ख. क्रीँ ह्रीँ स्वाहा ।
३. क. तथाग्रोग्रप्रभा । ४. ख. ० श्चमितभूषणाः ।

गुरुपूजां विधायाऽथ विधिवत्प्रपठेन्नरः ।
कवचं त्रिः सकृद्वाऽपि यावज्ज्ञानञ्च वा पुनः ।। ३८६ ।।

एतच्छतार्द्धमावर्त्य त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादतः ।। ३८७ ।।

महाकविर्भवेन्मासात्सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
पुष्पाञ्जलिं कालिकायै मूलेनैव पठेत्सकृत् ।। ३८८ ।।

शतवर्षसहस्राणि पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
भूर्ज्जे विलिखितञ्चैतत्स्वर्णस्थन्धारयेद्यदि ।। ३८९ ।।

शिखायान्दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद्बुधः ।
त्रैलोक्यम्मोहयेत्क्रोधात्त्रैलोक्यञ्चूर्णयेत्क्षणात् ।। ३९० ।।

पुत्रवान्धनवाञ्श्रीमान्नानाविद्यानिधिर्भवेत् ।
ब्रह्मास्त्राणि च शस्त्राणि तद्गात्रस्पर्शनात्ततः ।। ३९१ ।।

नाशमायान्ति या नारी बन्ध्या वा मृतपुत्रिणी ।
कण्ठे वा वामबाहौ वा कवचस्याऽस्य धारणात् ।। ३९२ ।।

बह्वपत्या जीवद्वत्सा[1] भवत्येव न संशयः ।
न देयम्परशिष्येभ्योऽभक्तेभ्योऽपि विशेषतः ।। ३९३ ।।

शिष्येभ्यो भक्तपुत्रेभ्यश्चाऽन्यथा मृत्युमाप्नुयात् ।
स्पर्द्धामुद्धूय[2] कमला वाग्देवी मुखमन्दिरे ।। ३९४ ।।

पौत्रान्तस्थैर्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम् ।
इदङ्कवचमज्ञात्वा यो जपेत्कालिदक्षिणाम् ।। ३९५ ।।

शतलक्षम्प्रजप्त्वाऽपि तस्य विद्या न सिद्ध्यति ।
स शस्त्रघातमाप्नोति सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ।। ३९६ ।।

**।। इति श्रीभैरवीभैरवसंवादे जगन्मङ्गलन्नामकालिकाकवचम् ।।**

---

१. ख. जीववत्सा । २. ख. स्पर्द्धामुद्वीक्ष्य ।

।। अथ श्रीदक्षिणकालिकाया मन्त्रभेदाः ।।

तन्त्रान्तरे—

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रविविन्दुसमन्वितम् ।
एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ।। ३९७ ।।

वर्गाद्यः ककारः, वह्नी रेफः, रतिरीकारः, ।

देवीतन्त्रे—

मायाद्वन्द्वङ् कूर्च्चयुग्ममैन्द्रान्तम्मादनत्रयम् ।
मायाविन्द्वीश्वरयुतन्दक्षिणे कालिके पदम् ।। ३९८ ।।

संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत् ।
एकविंशत्यक्षरोऽयं ताराद्यः कालिकामनुः ।। ३९९ ।।

मायाद्वन्द्वं भुवनेशीबीजद्वयं, कूर्च्चयुग्मं हूं हूं इति, मादनत्रयं ककारत्रयं, ऐन्द्रान्तं इन्द्रस्य लकारस्य समीपे भव ऐन्द्रो[1] रेफः अन्ते यस्य, माया ईकारः, ईश्वरं अर्द्धचन्द्रः, दक्षिणे कालिके स्वरूपं, संहारक्रमयोगेन क्रीँ क्रीँ क्रीँ हूं हूं ह्रीं ह्रीं इत्यनेन प्रकारेण, तारः प्रणवः ।

विश्वसारे—

स्वाहान्तोऽयं त्रयोविंशत्यक्षरो मन्त्रराजकः ।
विना प्रणवन्तु देवेशि द्वाविंशत्यक्षरो मतः ।। ४०० ।।

विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहाप्रणववर्जिता ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ।। ४०१ ।।

कालीतन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महाविद्यां सिद्धाद्याञ्च महोदयाम् ।
ईश्वरेण पुरा प्रोक्तान्देवीहृदयसंस्थिताम् ।। ४०२ ।।

अस्या ज्ञानप्रभावेण कलयामि जगत्त्रयम् ।
प्रणवम्पूर्वमुच्चार्य्य हृल्लेखा बीजमुद्धरेत् ।। ४०३ ।।

रतिबीजं समुद्धृत्य पपञ्चमम्भगान्वितम् ।
ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी प्रकीर्त्तिता ।। ४०४ ।।

१. क. इन्द्रो ।

अनया सदृशी विद्या काली तन्त्रेषु दुर्लभा ।

रतिबीजं क्रीं, पपञ्चमं मकारं, भग एकारस्तद्युक्त[1] तेन मे । तथा—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदाहृतम् ।। ४०५ ।।

सिद्धकाली ब्रह्मरूपा देवता भुवनेश्वरी ।
रतिबीजं बोजमस्या हृल्लेखा शक्तिरुच्यते ।। ४०६ ।।

हृल्लेखा षट्कदीर्घेण प्रणवाद्येन कल्पयेत् ।
अङ्गषट्कन्ततो न्यस्य ध्यात्वा देवीं शिवो भवेत् ।। ४०७ ।।

खड्गो भिन्नेन्दुविम्बस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा,
सव्ये पाणौ कपोलोद्गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती ।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा,
पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा ।। ४०८ ।।

पूजादिकन्तु दक्षिणावत् । पुरश्चरणन्तु तत्रैव—

जपेद्विंशतिसाहस्रं सहस्त्रैकेन संयुतम् ।
होमयेत्तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित् ।। ४०९ ।।

त्रिकोणङ्कुण्डमासाद्य सिद्धविद्यः शिवो भवेत् ।
पूजनञ्च प्रयोगञ्च दक्षिणावदुपाचरेत् ।। ४१० ।।

रक्तपुष्पस्य होमेन साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ।
विल्वपत्रस्य होमेन राज्यम्भवति निश्चितम् ।। ४११ ।।

रक्तप्रसूनहोमेन वशयेदखिलञ्जगत् ।
पीतपुष्पस्य होमेन स्तम्भयेद्वायुमप्यथ ।। ४१२ ।।

मालतीपुष्पहोमेन साक्षाद्वाक्पतिसन्निभः ।
कृष्णपुष्पस्य होमेन शत्रून्मारयतेऽचिरात् ।। ४१३ ।।

अस्य सर्वस्य होमस्य सङ्ख्या स्यादयुतावधिः ।
अस्याः स्मरणमात्रेण महापातककोटयः ।। ४१४ ।।
सद्यः प्रलयमायान्ति साधकः खेचरो भवेत् ।

---

१. क. एकास्तद्युक्तं ।

विश्वसारतन्त्रे–

मूलबीजन्ततो मायाँल्लज्जाबीजन्ततः परम् ।
महाविद्या महाकाली महाकालेन भाषिता ॥ ४१५ ॥

मूलबीजं क्रीं, माया हूँ ।

माया लज्जा च हूङ्कारो ह्रींकारश्च भवेदि' ति करङ्किणीतन्त्रोक्तेः ।

लज्जाबीजं ह्रीँ ।

अथ पञ्चाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलानने ।
प्रजापतिं समुद्धृत्य वह्न्यारूढः ततः प्रिये ॥ ४१६ ॥

चतुर्थस्वरसंयुक्तन्नादविन्दुसमन्वितम् ।
बीजत्रयङ्क्रमेणैव तदन्ते बह्निसुन्दरी ॥ ४१७ ॥

पञ्चाक्षरी महाविद्या कथिता पद्मयोनिना ।

प्रजापतिः ककारः । वह्निसुन्दरी स्वाहा । तथा—

षडक्षरीम्महाकालीं शृणु वक्ष्यामि सुन्दरि ॥ ४१८ ॥

बीजत्रयं समुद्धृत्य अस्त्रवर्णं समुद्धरेत् ।
बह्निजायावधिः[1] प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी ॥ ४१९ ॥

अष्टाक्षरी महाविद्या कथ्यते शृणु पार्वति ।
बीजत्रयङ्क्रमेणैव पुनर्बीजत्रयं सुधीः ॥ ४२० ॥

स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।

बीजत्रयं क्रीं हूं ह्रीमिति पूर्वोक्तत्र्यक्षरविद्योक्तम् । तथा—

एकादशाक्षरी विद्या कथ्यते शृणु पार्वति ॥ ४२१ ॥

वाग्भवं हृदयं पश्चाद्वह्न्यारूढम्प्रजापतिम् ।
चतुर्थस्वरसंयुक्तन्नादबिन्दुविभूषितम् ॥ ४२२ ॥

द्विगुणन्तु ततः कृत्वा ङेन्तञ्च कालिकापदम् ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा[2] ॥ ४२३ ॥

---

१. क.० जायावधि । २. ख. एकादशाक्षरी प्रिये ।

ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्त्तिश्छन्दः पङ्क्तिरुदाहृतम् ।
परात्परतरा शक्तिः कालिका देवता स्मृता ।.४२४ ।।

एकादशाक्षरी विद्या कालिकायाः सुदुर्लभा ।
लक्षत्रयञ्जपेद्विद्याम्पुरश्चरणकर्मणि ।। ४२५ ।।

अन्यासां वर्णलक्षं स्यात् कथितम्पद्मयोनिना ।

**।। अस्या ध्यानम् ।।**

चतुर्भुजाङ्कृष्णवर्णाम्मुण्डमालाविभूषिताम् ।
खड्गञ्च दक्षिणे पाणौ बिभ्रतीन्दीवरद्वयम् ।। ४२६ ।।

कर्त्रिञ्च खर्प्परञ्चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रतीम् ।
द्याँल्लिखन्तोञ्जटामेकाम्बिभ्रतीं शिरसा[1] द्वयीम् ।। ४२७ ।।

मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामथ चाऽपरम् ।
वक्षसा नागहारञ्च बिभ्रतीं रक्तलोचनाम् ।। ४२८ ।।

कृष्णवस्त्रधराङ्कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विताम् ।
वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणम्पदम्[2] ।। ४२९ ।।

विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहानं शवद्वयम् ।
साट्टहासाम्महाघोररावयुक्तां विभीषणाम् ।। ४३० ।।

अन्यत्सर्वं दक्षिणावत् । पूर्वोक्तानाञ्च मन्त्राणां पूजादिकं च दक्षिणावत् । अस्याः पुरश्चरणं लक्षत्रयमन्यासाम्मन्त्रवर्णसङ्ख्याजपः ।

मूलबीजन्ततो मायां लज्जाबीजन्ततः परम् ।
दक्षिणे कालिके चेति तदन्ते वह्निसुन्दरी ।। ४३१ ।।

एकादशाक्षरी विद्या चतुर्व्वर्गफलप्रदा ।
कवचम्मूलबीजञ्च तदन्ते भुवनेश्वरी ।। ४३२ ।।

दक्षिणे कालिके चेति अस्त्रान्ता समुदीरिता ।
दशाक्षरी महाविद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।। ४३३ ।।

---

१. क. शिरसो । २. क. दक्षिण. ।

अथाऽपराम्प्रवक्ष्यामि विद्यां विंशतिवर्णकाम् ।
यस्याः प्रसादाद्देवेशि भवेद्भूमिपुरन्दरः ।। ४३४ ।।

मूलबीजत्रयम्ब्रूयात्ततः कूर्च्चत्रयं वदेत् ।
लज्जाबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तम्पदद्वयम् ।। ४३५ ।।

पूर्ववत्षट् तथा बीजान्यन्ते च वह्निसुन्दरीम् ।

**प्रकारान्तरमाह—**

मूलबीजद्वयम्ब्रूयात्ततः कूर्च्चद्वयं वदेत् ।
लज्जाद्वयं समुद्धृत्य अन्यत्पूर्ववदुद्धरेत् ।। ४३६ ।।

ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ।
देवता सद्भिरुद्दिष्टा काली दक्षिणपूर्विका ।। ४३७ ।।

निजबीजम्बीजमस्या हृल्लेखा शक्तिरीरिता ।
ततश्च साधकश्रेष्ठैः कीलकं वह्निवल्लभा ।। ४३८ ।।

अथाऽपराम्प्रवक्ष्यामि विद्यान्त्रिभुवनेश्वरीम् ।
निजबीजं समुद्धृत्य तदन्ते वह्निसुन्दरीम् ।। ४३९ ।।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः सर्वमन्त्रसमन्वितः ।
अष्टाक्षरी तु या प्रोक्ता सर्वमन्त्रेषु गोपिता ।। ४४० ।।

निजबीजद्वयं कूर्च्चद्वयं लज्जाद्वयं ततः ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या काली सर्वफलप्रदा ।। ४४१ ।।

निजं कूर्च्चन्तथा लज्जान्तदन्ते वह्निसुन्दरीम् ।
पञ्चाक्षरी महाविद्या पञ्चवक्त्र ऋषिः स्मृतः ।। ४४२ ।।

नवाक्षरीम्महाविद्यां शृणुष्व कमलानने ।
निजबीजत्रयं कूर्च्चद्वयं लज्जायुगन्ततः ।। ४४३ ।।

स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वसम्पत्प्रदा मता ।
अथापराम्प्रवक्ष्यामि विद्यान्ताञ्च नवाक्षरीम् ।। ४४४ ।।

मूलबीजं[1] समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तम्पदद्वयम् ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वशत्रुभयङ्करी ।। ४४५ ।।

अथ चाऽष्टाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलनने ।
निजबीजं ततः कूर्च्चन्ततो मायां समुद्धरेत् ।। ४४६ ।।

पुरस्तामेव चोच्चार्य्यं स्वाहान्ता मोक्षदायिनी ।
अथाऽपराम्प्रवक्ष्यामि दशतत्वसमन्विताम् ।। ४४७ ।।

मूलद्वयं कूर्च्चयुग्मन्तथा लज्जाद्वयन्ततः ।
[पुनस्तान्येव बीजानि तदन्ते वह्निसुन्दरी ।। ४४८ ।।

चतुर्दशाक्षरी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।
ब्रह्मत्रयं समुद्धृत्य रतिवह्नि समन्वितम् ।। ४४९ ।।

नादविन्दुसमायुक्तं लज्जाकूर्च्चद्वयन्ततः ।][2]
पुनः क्रमेण चोद्धृत्य वह्निजायावधिर्मनुः ।। ४५० ।।

षोडशीयं समाख्याता विद्या कल्पद्रुमोपमा ।

**मायातन्त्रे**—

हृदयं वाग्भवन्देवि निजबीजयुगन्ततः ।
कालिकायै पदं चोक्त्वा तदन्ते वह्निसुन्दरी ।। ४५१ ।।

।। **अथ विद्यामाहात्म्यम् तदुक्तम्**— ।।

**कालीतन्त्रे**—

एवं समस्तविद्यानां राज्ञी स्तोतुं न शक्यते ।
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ।। ४५२ ।।

सर्वसिद्धिप्रदा भूमिरनिरुद्धसरस्वती ।
तस्मादस्या ज्ञानमात्रात् सिद्धयः सम्भवन्ति हि ।। ४५३ ।।

अनिरुद्धसरस्वत्या ज्ञानमात्रेण साधकः ।
पाण्डित्ये च कवित्वे च वागीशसमतां व्रजेत् ।। ४५४ ।।

१. ख. मूलत्रयं । २. [—] कोष्ठगतोंशो न विद्यते ख पुस्तके ।

अस्य पाण्डित्यवैदग्ध्यं विचित्रपदकल्पनैः ।
देवा अपि विलज्जन्ते किम्पुनर्मानुषादयः ।। ४५५ ।।

यदि चेत्त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ।
अनिरुद्धसरस्वत्याः समो मन्त्रोऽस्ति वै तदा ।। ४५६ ।।

अस्या जपो ब्रह्मजपी ज्ञानमस्याऽऽत्मचिन्तनम् ।
योगसन्धारणं सम्यग्ध्यानमस्या न संशयः ।। ४५७ ।।

महापदि महापापे महाग्रहनिवारणे ।
महाभये महोत्पाते महाशोके महोत्सवे ।। ४५८ ।।

महामोहे महासौख्ये महादारिद्र्य सङ्कटे ।
महावश्ये महाशून्ये महाज्ञाने महारणे ।। ४५९ ।।

दूराध्वनि दुरावासे दुर्भिक्षे दुर्निमित्तके ।
समस्तक्लेशसङ्घातं स्मरणादेव नाशयेत् ।। ४६० ।।

अस्या ज्ञानम्महाध्यानं ध्यानमस्याऽऽत्मदर्शनम् ।
तस्मादस्याः समा विद्या नाऽस्ति तन्त्रे न संशयः ।। ४६१ ।।

श्मशानशयने वीरः कुलस्त्रीभिर्विहारवान् ।
कुलामृतनिषेवी च देवीतत्वार्थकोविदः ।। ४६२ ।।

ब्रह्मादिभुवने तस्य समो नाऽस्ति नरोऽपरः ।
स एव सुकृती लोके स एव कुलभूषणः ।। ४६३ ।।

धन्या च जननी तस्य येन देवी समर्च्चिता ।
धनेन धननाथश्च तेजसा भास्करोपमः ।। ४६४ ।।

बलेन पवनो ह्येष येन[1] देवी समर्च्चिता ।
वक्त्रे सरस्वती तस्य लक्ष्मीस्तस्य सदा गृहे ।। ४६५ ।।

तीर्थानि देहे शंसन्ति येन देवी समर्च्चिता ।
गानेन तुम्बुरः साक्षाद्दानेन वासवोपमः ।। ४६६ ।।

---

१. ख. ये ।

दत्तात्रेयसमो ज्ञानी येन देवी समर्च्चिता ।
वह्निरिव रिपोर्हन्ता गङ्गेव मलनाशकः ।। ४६७ ।।

शुचौ शुचिसमः साक्षादिन्दोरिव सुखप्रदः ।
पितृदेवसमः शास्ता काल इव दुरासदः ।। ४६८ ।।

वारीश इव गम्भीरो निर्ऋतेरतिदुर्ल्लभः[1] ।
वृहस्पतिसमो वक्ता धरणीसदृशः क्षमी ।। ४६९ ।।

कन्दर्प्पसदृशः स्त्रीषु येन देवी समर्च्चिता ।
अहो भाग्यमहो लोके कुलज्ञानपरायणः ।। ४७० ।।

तेषाम्मध्ये च यः कोऽपि कालीसाधनतत्परः ।
त्यजसि[2]त्वम्परञ्चैव पुमांसम्परमन्तथा ।। ४७१ ।।

मादृशञ्च[3] क्वचित्काले प्रधानम्परमेश्वरि ।
कालीज्ञानिनमासाद्य न त्यक्ष्यसि कदाचन ।। ४४२ ।।

नहि कालीसमा पूज्या नहि कालीसमम्फलम् ।
नहि कालीसमं ज्ञानन्नहि कालीसमन्तपः ।। ४७३ ।।

ये गुणाः परमेशस्य पञ्चकृत्त्वविधायिनः ।
ते गुणाः सन्ति सर्वज्ञे कालीतत्वस्य नाऽन्यथा ।। ४७४ ।।

कालिकाहृदयज्ञानलतासाधनतत्परः ।
देववन्मानुषो भूत्वा लभेन्मुक्तिञ्चतुर्विधाम् ।। ४७५ ।।

इति ते कथितं सर्वङ् कालिकातत्त्वमुत्तमम् ।
अनेन सम्यगास्थाय सर्वकर्मफलँल्लभेत् ।। ४७६ ।।

स्वतन्त्रे—

श्मशानकालिकामन्त्रं शृणुष्वाऽवहिता शिवे ।
वाणीम्मायान्ततो लक्ष्मीङ्कामबीजन्ततः परम् ।। ४७७ ।।

---

१. क. निर्ऋतेरिति दुर्लभः । २. क. त्यजीस । ३. क. सदृशञ्च ।

कालिके सम्पुटत्वेन चतुष्कम्बीजमालिखेत् ।
एकादशार्णा देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनी ।। ४७८ ।।

ऋषिर्भृगुर्विराट् छन्दो देवता कालिका परा ।
श्मशानाद्या च वाङ्माये बीजशक्ती महेश्वरि[1] ।। ४७९ ।।

कीलकं कामबीजन्तु शृणु पूजाविधिम्प्रिये ।
चतुस्त्रिचतुरर्णैस्तु विद्यावर्णैः[3] षडङ्गकम् ।। ४८० ।।

विन्यस्य ध्यानङ्कुर्वीत कालिकायाः समाहितः ।
अञ्जनाद्रिनिभान्देवीं श्मशानालयवासिनीम् ।। ४८१ ।।

त्रिनेत्राम्मुक्तकेशीञ्च शुष्कमांसातिभीषणाम् ।
पिङ्गाक्षीं वामहस्तेन द्रव्यपूर्णङ्कपालकम् ।। ४८२ ।।

सद्यश्छिन्नशिरो दक्षहस्तेन दधतीं शिवाम् ।
स्मितवक्त्रां सदा चर्ममांसचर्व्वणतत्पराम् ।। ४८३ ।।

नानालङ्कारभूषाङ्गीन्नग्नाम्मत्तां सदासवैः ।
एवन्ध्यात्वा यजेद्देवीं श्मशाने तु विशेषतः ।। ४८४ ।।

गृहे वाऽपि गृहस्थश्च मांसैर्मत्स्यैः सुशोभनैः
नग्नो भूत्वा महापूजाङ्कुर्याद्रात्रौ समाहितः ।। ४८५ ।।

पद्मञ्चाष्टदलं वृत्तं तद्बाह्ये धरणीतलम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तम्मध्ये मूलं समालिखेत् ।। ४८६ ।।

दलेष्वष्टासु विलिखेत् कवर्गाद्यष्टवर्गकम् ।
धरण्यां विलिखेदाद्यञ्चतुष्कञ्च चतुष्ककम् ।। ४८७ ।।

पूर्वादि उत्तरान्तानाम्मध्ये देवीम्प्रपूजयेत् ।
ब्राह्म्याद्याः पूजयेन्मातृर्दलेष्वष्टासु सर्वतः ।। ४८८ ।।
६

भैरवानसिताङ्गाद्यान् धरण्यां पूजयेत्प्रिये ।
वर्णलक्षञ्जपेन्मन्त्रन्तद्दशांशेन होमयेत् ।। ४८९ ।।

---

१. महेश्वरी । २. क. विद्याः वर्णैः

वर्णलक्षं मन्त्रवर्णसङ्ख्यालक्षमित्यर्थः ।

रजस्वलां स्त्रियङ्कृत्वा रेतोरुधिरसंयुतम् ।
द्रव्यंञ्चाष्टविधम्मांसम्मत्स्यम्बहुविधम्प्रिये ।। ४६० ।।

निवेद्य स्वात्मसात्कृत्वा कालीभक्तिपरायणः ।
तदा भोगञ्च मोक्षञ्च लभते नाऽत्र संशयः ।। ४६१

कामबीजं समालिख्य कालिकायै पदन्ततः ।
नमोऽन्तेन च देवेशि सप्तार्णो मनुरुत्तमः ।। ४६२ ।।

सर्वाङ्गे कालिका देवी ह्यन्यत्सर्वञ्च पूर्ववत् ।
श्रीगुरोः कृपया लब्ध्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।। ४६३ ।।

**अथ गुह्यकाली विश्वसारे—**

अथ वक्ष्ये महेशानि सर्वविद्याफलप्रदाम् ।
चतुर्वर्गप्रदां साक्षान्महापातकनाशिनीम् ।। ४६४ ।।

सर्वसिद्धिप्रदान्नित्याम्भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् ।
इन्द्रादिरूढं वर्गाद्यं रतिबिन्दुसमन्वितम् ।। ४६५ ।।

त्रिगुणञ्च तथा कृत्वा ईशानञ्च[1] समुद्धरेत् ।
षष्ठस्वरसमायुक्तन्नादविन्दुकलान्वितम् ।। ४६६ ।।

द्विगुणञ्च ततः कृत्वा ईशद्वयं समुद्धरेत् ।
वामाक्षिवह्निसंयुक्तन्नादबिन्दुविभूषितम् ।। ४६७ ।।

तद्गुह्ये कालिके प्रोक्तञ्चाऽथवा दक्षिणे वदेत् ।
सर्वबीजम्पुनः पूर्वक्रमेण परियोजयेत् ।। ४६८ ।।

वह्निजायावधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी ।
अथवेति गुह्ये दक्षिणे वा ।

**इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ एकोनपञ्चाशस्तरङ्गः ।। ४ ।।**

---

१. ख. ईशद्वयं ।

## [ पञ्चाशस्तरङ्गः ]

फेत्कारिणीतन्त्रे—

प्रासादबीजमुद्धृत्य कालीतिपदमुद्धरेत् ।
महाकालिपदञ्चोक्त्वा किणियुग्ममतः परम् ।। १ ।।

अस्त्रमग्निप्रियान्तोऽयम्भद्रकालीमहामनुः ।

प्रासादबीजमुक्तम् । अन्यत्पदत्रयं स्वरूपम् । युग्ममिति द्विरुच्चरेदित्यर्थः । अस्त्रं फट्, अग्निप्रिया स्वाहा[1] ।

पदैः षड्भिः षडङ्गानि जातियुक्तानि कल्पयेत् ।। २ ।।

हौं हृत्, कालि शिरः, महाकालि शिखा, किणि किणि कवचम्, फट् नेत्रम्, स्वाहाऽस्त्रम् ।

ध्यातव्येयं सदा देवी भद्रकाली भयापहा ।
क्षुत्क्षामा कोटराक्षी मषिमलिनमुखी मुक्तकेशी रुदन्ती,
नाऽहन्तृप्ता वदन्ती जगदखिलमिदङ्ग्रासमेकङ्करोमि ।
हस्ताभ्यान्धारयन्ती ज्वलदनलशिखासन्निभम्पाशमुग्र-
न्दन्तैर्जम्बूफलाभैः परिहरतु भयम्भद्रदा भद्रकाली ।। ३ ।।

आराध्य प्रजमेन्मन्त्रन्नित्यमष्टोत्तरं शतम् ।
रिष्टमाला विधातव्या शतेनाऽष्टोत्तरेण च ।। ४ ।।

प्रयोगश्चाऽत्र कर्त्तव्यः सामान्यपटलोदितः ।
अशेषङ्कालिकातन्त्रकथितङ्कार्य्यसिद्धये ।। ५ ।।

कालिकातन्त्रकथितं श्मशानकालीतन्त्रकथितम् ।

इयन्देवी महादेवी शत्रुनिग्रहकारिणी
यथेष्टचिन्तया[2] धर्मकामार्थसिद्धिदा ।। ६ ।।

सामान्यपटलोदितः फेत्कारिणीतन्त्रे सामान्यपटले प्रोक्तः ।

फेत्कारिणीतन्त्रे—

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि महाकालीमहामनुम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण नाऽसाध्यं विद्यते भुवि ।। ७ ।।

---

१. ख. खा । २. ख. यथेष्टचेष्टया ।

प्रलयाग्नी रक्तगतावूर्ध्वकेश्या समन्वितौ ।
नादबिन्दुसमायुक्तावेवं क्रोधीद्वयम्पुनः ॥ ८ ॥

पशुं गृहाणपदतो वर्माऽस्त्रानलवल्लभा ।
चतुर्दशाक्षरी प्रोक्ता महाकाली ध्रुवादिका ॥ ९ ॥

प्रलयाग्नी क्षकारद्वयम्, रक्तो रेफः, ऊर्द्ध्वकेशी एकारः, नादबिन्दु प्राग्वत्, तेन क्ष्रें क्ष्रें इति बीजद्वयम् । क्रोधी ककारः तद्द्वयं, एवमित्यनेन रेफगतमेकारनादयुक्तं[1] चेत्यवगन्तव्यम् । पशुं गृहाण स्व०, वर्म हुं, अस्त्रं फट्, अनलवल्लभा स्वाहा । ध्रुवादिका प्रणवाद्या । तथा—

न्यासशुद्धी न ऋष्यादि नाऽत्र किञ्चिद्विचारणा ।
कृष्णतोयेन सम्पूर्णे कुम्भे चैवाऽथ कालिकाम् ॥ १० ॥

ब्राह्मयादिभिश्च दूतीभिर्युक्तां सम्पूज्य भक्तितः ।
पञ्चवक्त्राम्महारौद्रीम्प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम् ॥ ११ ॥

शक्तिशूलधनुर्बाणखेटखड्गवराभयान् ।
दक्षादक्षभुजैर्देवीम्बिभ्राणाम्भोगिभूषणाम् ॥ १२ ॥

ध्यात्वैवं सिद्धकं साध्यं साधयेन्मनसि स्थितम् ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥ १३ ॥

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा चण्डिकाऽष्टमी ।
पूर्वादीशानपर्य्यन्तङ्कुम्भाङ्कुशस्थिता[2] इमाः ॥ १४ ॥

कार्त्तिकायां[3] तमोदेवीम्महाकालीम्भयापहाम् ।
नमोच्चारेण संरब्धे रज्वा[4] प्रज्वलिते पुरे ॥ १५ ॥

जुहुयाद्वैरिणं क्रुद्धो देवीमन्त्रञ्जपन्यथा ।
समिधःपिचुमन्दस्य[5] विभीतचितिकाष्ठकाः ॥ १६ ॥

हरं विषं राजिकाञ्च[6] कण्ठजालचलान्विताः ।
गृहधूमश्मशानास्थिविभीताङ्गारहोमतः ॥ १७ ॥

१. ख.० नादबिन्दुयुतं । २. क.० कुम्भीकुशस्थिता । ३. ख. कर्तिकायां
४. क. रज्जा । ५. ख. पिचुमिन्दस्य । ६. ख. रंजिकाञ्च ।

सप्ताहाद्वैरिणं हन्ति कालिकामन्त्रयोगतः ।
उच्चाटमपराह्णे च सन्ध्यायाम्मारणन्तथा ।। १८ ।।
दक्षिणस्यान्दिशि स्थित्वा ग्रामादेर्दक्षिणामुखः ।

फेत्कारिणीतन्त्रे—

गृध्रकर्णिपदम्प्रोक्त्वा विरूपादिपदन्ततः ।
लम्बस्तनिपदम्पश्चान्महोदरिपदं वदेत् ।। १९ ।।

उत्पादय पदं[1] भूयस्तथैवोपरि वेत्ति च ।
पदान्येतानि वीप्स्याऽथ वदेद्वर्मास्त्रमेव च ।। २० ।।

वह्निजायापदं चोक्त्वेति, वीप्स्य द्विरुच्चार्य्य, वर्म हुम्, अस्त्रं फट्, वह्निजाया स्वाहा । तथा—

पिप्पलादो मुनिः प्रोक्तो निचृच्छन्द उदाहृतम् ।
भद्रकाली देवता स्यात् पञ्चाङ्गं स्वयमेव तु ।। २१ ।।

स्वयमेव मूलमन्त्र एव, मूलमन्त्रेणैवेत्यर्थः । गृध्रकर्णि २ विरूपाक्षि २ हृदयाय नमः, लम्बस्तनि २ महोदरि शिरसे स्वाहा, उत्पादय २ वेत्ति २ शिखायै वषट्, वर्माऽस्त्राभ्यां कवचम्, स्वाहयाऽस्त्रमिति । तथा—

अतिरौद्रा महादंष्ट्रा भृशदीर्घा[2] कृशोदरी ।
सुवृत्तनयना शूरा दीर्घघोणा मदातुरा[3] ।। २२ ।।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषा नीलजीमूतसन्निभा ।
भृकुटचट्टाट्टसन्दीप्ता महारदनभीषणा ।। २३ ।।

दष्टोष्ठा कोपताम्राक्षी रक्तदीर्घशिरोरुहा ।
त्रिशूलव्यग्रदोर्दण्डा नरकीटपलाशिनी ।। २४ ।।

अतिरक्ताम्बरा देवी रक्तमांसासवप्रिया ।
शिरोमालाविचित्राङ्गी पिबन्ती शोणितासवम् ।। २५ ।।

---

१. ख. उत्पातय पदं । २. ख. भृशंदीर्घा । ३. क. महातुरा ।

नृत्यन्ती च हसन्ती च पिशाचगणसेविता ।
पिशाचस्कन्धमारुह्य भ्रमन्ती वसुधातलम् ।। २६ ।।

शङ्करस्य मुखोत्पन्ना योगिनी योगवल्लभा ।
इत्थम्भूताम्भद्रकालीम्मातृभिः परिवारिताम् ।। २७ ।।

ध्यात्वा सम्यक् समाराध्य ततो मन्त्रञ्जपेद्बुधः ।
अयुतम्मन्त्रसिद्ध्यर्थम्मातृकान्यासतत्परः ।। २८ ।।

ततो होमादिकमपि कार्य्यम् । होमस्तु घृतेनैव प्रागुक्तवचनादिति ॥

धूमावत्याञ्च यत्प्रोक्तमनयाऽपि तदाचरेत् ।
उक्तान् प्रयोगानेवाऽत्र विशेषविधिरुच्यते ।। २९ ।।

ऋज्वायतन्तु[1] निर्दोषमेकमूलं वनान्तरात् ।
विषवृक्षं समादाय ततो होमं समाचरेत् ।। ३० ।।

शून्यागारे तथा कुण्डङ्कृत्वा तत्र त्रिकोणकम् ।
विषवृक्षेन्धनेनाऽग्निम्प्रज्वाल्याऽऽधाय तत्सुधीः ।। ३१ ।।

ततो दण्डञ्जपन्मन्त्री विषवृक्षस्य साधकः ।
अष्टोत्तरशतं वह्नौ तद्दण्डन्निःक्षिपेद्बुधः ।। ३२ ।।

सुविनीतं द्विजं वीरङ्कृत्वा चोत्तरसाधकम् ।
दिक्षु सर्वासु संस्थाप्य स्वभटान्[2] खड्गहस्तकान् ।। ३३ ।।

कृतरक्षः समाराध्य वह्निं क्रोधसमन्वितः ।
अष्टोत्तरशतञ्जप्त्वा दण्डाग्रञ्जातवेदसि ।। ३४ ।।

दत्वा सिद्धार्थकम्मन्त्री जुहुयात्सवनद्वयम् ।
यष्ट्यग्रमग्नौ विनिवेश्य पश्चात्,
सिद्धार्थकैस्तैलसमुत्क्षितैश्च ।
हुनेत् सहस्रद्वयमत्र धीमान्,
विसृज्य वह्निं बलिदानपूर्वम् ।। ३५ ।।

---

१. ख. ऋज्वायजन्तु । २. क. स्वभयन् ।

ध्यायेद्देव्याः स्वरूपम्प्रलयघननिभं रक्तवर्णोग्रनेत्रम्,
शूलाग्रप्रोतसिंहन्तरुणनरशिरःस्रग्धरन्तीक्ष्णदंष्ट्रम् ।
उल्का[1]व्यग्रोर्द्ध्वहस्तं रुधिरमधुमदभ्रान्तचित्तं सुघोरं[2],
शत्रूणां सङ्घमुच्चैः करविधृतशिलादण्डनिर्घोषघोषम्[3] ।। ३६ ।।

भावयित्वा करेणोल्कान्दक्षिणेन रिपोर्मुखम्[4] ।
गत्वा[5] दूरेण विसृजेत्तद्वत्[6] क्रुद्धाननस्थितः ।। ३७ ।।

सुसहायः स्थितस्तीर्थं[7] गच्छेत्पश्चात्तु वाग्यतः ।
स्नात्वाऽवश्यं शुचिर्भूत्वा[8] कण्ठमात्रोदके स्थितः ।। ३८ ।।

जपेत्सुदर्शनन्दुर्गां सावित्रीं सुसमाहितः ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु जपेदन्यच्छतं[9] शतम् ।। ३९ ।।

उष्णीषवास[10] आच्छाद्य[11] ससहायः[12] सुरालयम् ।
गत्वा तु महतीम्पूजाङ्कृत्वा देवस्य चक्रिणः ।। ४० ।।

पादयुग्मं समालम्ब्य वर्णलक्षञ्जपेद्बुधः[13] ।
तावज्जप्त्वा[14] घटे त्वद्भिरभिषिञ्चेत्स्वकं वपुः ।। ४१ ।।

दक्षिणां विधिवद्दत्वा [शांतिहोमञ्च कारयेत् ।
यद्वा दुर्गाञ्जपेल्लक्षं सावित्रीञ्च तथैव च ।। ४२ ।।

कृत्वाऽभिषेकन्ताभ्याञ्च शक्तितो भोजयेद्द्विजान् ।
दक्षिणां शक्तितो दत्वा][15] सिद्धो भवति साधकः ।। ४३ ।।

रुद्रदण्डप्रयोगोऽयं दारुणो[16] रणसूदनः ।
पुरा दैवासुरे[17] युद्धे हरेण किल निर्मितः ।। ४४ ।।

---

१. ख. उल्कः । २. ख. सुचिरं । ३. ख. ० निर्घोषशेषम् । ४. क. रिपोमुखम् । ख. रिपोन्मुखम् । ५. ख. नत्वा । ६. ख. विसृते० । ७. ख. सुसुसहायततस्तीर्थं । ८. ख. शुचि भूत्वा । ९. ख. शत । १०. ख. उष्णीशवास । ११. ख. आधाद्य । १२. ख. सुसहायः । १३. ख. वर्णकृतंजद्वधः । १४. ख. तावजह्या । १५. नाऽस्त्ययमंशः कोष्ठगतः ख. पुस्तके । १६. ख. दारुणे । १७. ख. देवासुरे ।

तत्प्रयोगमहं वक्तुं शक्तोऽपि न तथाऽपि[1] चेत् ।
प्रयोगमात्रन्तद्वक्ष्ये विद्वेषोच्चाटनादिकम्[2] ।। ४५ ।।

विभीतफलके शत्रोर्लिखेन्नाम विदर्भितम्[3] ।
मन्त्रञ्जप्त्वा सहस्रन्तत्खनेत्पितृवने[4] बुधः ।। ४६ ।।

उच्चाटनम्भवेत् क्षिप्रमचलस्याऽपि किम्पुनः ।
मानवानान्द्विजश्रेष्ठे[5] न[6] कर्त्तव्यम्मनीषिभिः ।। ४७ ।।

तथैव किल तस्यैव त्रिकोणोऽधोमुखं[7] खनेत् ।
धत्तूरबीजचूर्णेन जप्त्वा[8] चालिप्य[9] तत्पदे ।। ४८ ।।

खनेदुच्चाटयेच्छत्रून्वाताहतरजो यथा ।

## [ ।। अथ ताराप्रकरणम् ।। ][10]

**फेत्कारिणीतन्त्रे—**

कैलासशिखरासीनं चन्द्रखण्डविराजितम्[11] ।
वक्षस्थले सुखासीना[12] पृच्छति स्म नगात्मजा[13] ।। ४९ ।।

कथमीशान सार्वज्ञमभवत्ते तपोधन ।
कां विद्याम्प्राप्य कवयो भारतादीन् प्रचक्रिरे[14] ।। ५० ।।

श्रुत्वा नगात्मजावाक्यं विहस्य परमेश्वरः ।
प्राह प्रियाम्परिष्वज्य साधु साध्विति पूजयन् ।। ५१ ।।

शृणु साध्वि महाविद्यामज्ञानेन्धनवाहिनीम्[15] ।
यामवाप्य महात्मानो धर्मकामार्थमुक्तिषु ।। ५२ ।।

नाऽसाध्यम्मेनिरे केचित् कवयः शुद्धबुद्धयः ।
वादे सदसि वा वाक्यस्तम्भिनी प्रतिवादिनः[16] ।। ५३ ।।

---

१. ख. तथेति । २. ख. विद्वेपो० । ३. ख. पिदर्भितम् । ४. ख. पितृगृहे । ५. ख. द्विजश्रेष्ठ । ६. ख. म । ७. ख. त्रिकोणंधो० । ८. ख. जह्या । ९. ख. चालिख्य । १०. [—] क. पुस्तके नास्त्ययमंशः । ११. ख. पिणद्धुतम् । १२. ख. समासीनां । १३. ख. नगात्मजः । १४. ख. प्रचक्रिये । १५. ख. ०ज्ञानेधन० । १६. ख. प्रतिपादिनः ।

विद्याहानिकरी वैरिविदुषाम्बलिदानतः ।
हास्याय या सदस्यानामशुद्धमपि जल्पयेत् ।। ५४ ।।

वादिनं वाऽथ राजानम्मन्त्रिणो वशमानयेत् ।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण[1] शक्तिरुग्रा प्रजायते ।। ५५ ।।

जपादेव तु सर्वज्ञो[2] जायते नाऽत्र संशयः ।
जिह्वायान्न्यसनादेव मूकोऽपि सुकविर्भवेत्[3] ।। ५६ ।।

अव्याहतगतिः शास्त्रे ह्यजेयो वाक्पतेरपि ।
अस्योद्धारमहं वक्ष्ये मम सार्वज्ञकारणम् ।। ५७ ।।

प्रथमं स-परं दत्वा चतुर्थस्वरभूषितम् ।
रेफारूढन्ततः पश्चादिन्दुखण्डविभूषितम् ।। ५८ ।।

त्रङ्कारञ्च ततो दत्वा चतुर्थस्वरभूषितम् ।
दीर्घोकारसमायुक्तं[4] हङ्कारं योजयेत्ततः ।। ५६ ।।

फट्कारञ्च ततो दद्यात् सम्पूर्णं सिद्धमन्त्रकम् ।
पञ्चरश्मिसमायुक्तो ह्यज्ञानेन्धनपावकः[5] ।। ६० ।।

सपरः[6] हकारः, चतुर्थस्वरं ईकारस्तद्युक्तः, रेफारूढः रेफोपरिस्थितः, इन्दुखण्डोऽनुस्वारः, तद्युक्तश्च, एतेन मायाबीजं सिद्धम् । त्रङ्कारमिति ।

आद्यम्पञ्चमवर्गस्य[7] वह्निवर्णसमागतम् ।
मायावर्णसमाक्रान्तमिन्दुबिन्दुकलान्वितम् ।। ६१ ।।

इति **कुब्जिकातन्त्रवचनात्** । केवलतकार इति बहवः ।

लज्जाबीजं बधूबीजं[8] सदीर्घञ्च तनुच्छदम् ।

इति **करङ्किणीतन्त्रवचनात्** सकारयुक्तं तकारमिति केचित् । स्वाराध्यमतमत्र प्रमाणम् । दीर्घोकारः ऊकारः, पञ्चरश्मिः प्रणवः । तथा—

---

१. ख. सानमात्रेण । २. ख. सर्वाणो । ३. ख. स्तुकवि ० । ४. ख. दीर्घीकार ० ।
५. ख. ह्यज्ञनिंधन० । ६. ख. सपरं । ७. ख. वर्णस्य । ८. ख. बधूबाहुं ।

कलयेत्[1] स्थिरचित्तेन पण्डितोऽहम्महाकविः ।
अजस्रभावनाभ्यासाद्भवेदेवन्न[2] संशयः ।। ६२ ।।

सुविमलनखपाणिपाददन्तो
मुदितमनाः परदूषणेषु मौनी ।
हरिहरकमलोद्भवाङ्घ्रिभक्तो
भवति चिराय सरस्वतीनिवासः ।। ६३ ।।

कृतसुकृतसहस्रानेकजन्मप्रभावै[3]-
र्भवति यदि[4] मनुष्यो गुर्वधीनश्चिराय ।
कथमपि मनुमेनम्प्राप्य भक्ताय तस्मै,
निजकुलतिलकाय[5] ज्येष्ठपुत्राय दद्यात् ।। ६४ ।।

न पापरतये दद्यान्नाऽभक्ताय कदाचन ।
गुरुभक्ताय शान्ताय दद्याद्दात्रे दयात्मने ।। ६५ ।।'

मनुर्विमृश्य[6] दातव्यो ज्येष्ठस्याऽपि विनीतताम् ।
पुत्रस्य किमुताऽन्यस्मै विगोत्राय[7] स्वपौरुषम्[8] ।। ६६ ।।

गुरुचरणसरोजे सर्वदा भक्तिभावात्,
परिचरति विधेया चाऽस्य सर्वात्मना स्यात् ।
कथमपि मनुमेनम्मानयन्मानवोऽसौ,
भवति जगति वादिद्वैतसिद्धान्तहन्ता ।। ६७ ।।

सर्वदा गोपयेदेनम्मनुञ्च गुरुमेव च ।
तेन वीर्य्यवती[9] विद्या निर्वीर्य्या[10] स्यात्प्रकाशनात् ।। ६८ ।।

उत्पादकब्रह्मदात्रो[11]-र्गरीयान्मन्त्रदः पिता ।
तस्मान्मन्येत सततम्पितुरभ्यधिकङ्गुरुम् ।। ६९ ।।

---

१. ख. कल्पयेत् । २. ख. ॰ देवन । ३. ख. जन्ममभावै । ४. ख. नाऽस्ति ।
५. ख. तिलका । ६. क. मनुर्विमृष्य । ख. मुनिविमृश्य । ७. ख. विगोत्राम ।
८. ख. स्यपौरुषम् । ९, ख. वीर्य्यपती । १०. ख. निवीर्या । ११. ख. उत्पातक॰।

उपदेशादयम्मन्त्रो बलिमन्त्रस्तथैव च ।
कर्त्तव्यो विदुषा सिद्धिरस्य मन्त्रस्य लाभतः ।। ७० ।।
विद्या ब्राह्मणमित्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् ।

शेवधिर्निधिः ।

असूयकाय माम्मादा यथा[1] स्यां वीर्यवत्तरा ।
यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं[2] ब्रह्मवादिनम् ।। ७१ ।।

तस्मै माम्ब्रूहि विप्राय निधिपायाऽप्रमादिने[3] ।
यद्यदृष्टबलाल्लाभो मन्त्रस्याऽस्य भवेदुमे[4] ।। ७२ ।।

स्वगोत्रपौरुषे[5]-नैतदन्यगोत्रन्नयेत्सुधीः ।
[6]विद्यावेदानवाप्नोति कीर्तिमायुः सुतान् बहून् ।। ७३ ।।

स वासः श्रीसरस्वत्यो[7]-र्यत्र सारस्वतो मनुः ।

मत्स्यसूक्ते —

मायाबीजं समुद्धृत्य सतञ्च वह्निना सह ।
मायां विन्द्धीश्वरयुतं द्वितीयम्बीजमुत्तमम् ।। ७४ ।।

कूर्च्चबीजन्तृतीयन्तु फट्कारन्तदनन्तरम् ।
सम्पूर्णसिद्धिमन्त्रस्तु[8] रश्मिपञ्चकसंयुतः ।। ७५ ।।

लीलया[9] वाक्प्रदा चेति नीलसरस्वती मता ।
तारकत्वप्रदा तारा सुखभुक्तिप्रदायिनी ।। ७६ ।।

उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता ।
ताराद्यैकजटा चैषा स्वाहान्ता च शुभङ्करी ।। ७७ ।।

तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा[10] महानीलसरस्वती ।
कुल्लुकेयं समाख्याता केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः ।। ७८ ।।

---

१. ख. द्यथा । २. ख. विधान्नि० । ३. ख. निधिनापप्रमादिने । ४. ख. भवेद्रुमे । ५. ख. पौरूषं० । ६. ख. विधा० । ७. ख. सवाश्रयात्परस्वस्थे । ८. ख. ०सिद्धमन्त्रस्तु । ९. ख. लीकया । १०. ख. त्र्यर्णौ ।

एषैव हि महाविद्या[1] मायाद्या सकलेष्टदा[2] ।
वाग्भवाद्या[3] यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी ॥ ७९ ॥

**तारार्णवे[4]—**

वसिष्ठाराधिता[5] विद्या न तु शीघ्रफला[6] यतः[7] ।
अतस्तेनाऽपि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ॥ ८० ॥

ततः प्रभृति विद्येयम्फलदात्री न कस्यचित् ।
चन्द्रबीजमुपान्तस्थबीजोपरि[8] नियोजितम् ॥ ८१ ॥

ततः प्रभृति विद्येयं वधूरिव यशस्विनी ।
फलिनी सर्वविद्यानाञ्जयिनी जयकाङ्क्षिणाम् ॥ ८२ ॥

विपक्षक्षयकरी विद्या अमृतत्वप्रदायिनी ।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण[9] विजयी[10] भुवि जायते ॥ ८३ ॥

**एकवीराकल्पे—**

लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्च्चबीजन्तथा हि फट् ।
एवम्पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी ॥ ८४ ॥

वधूबीजं स्त्रीङ्कारः । तथा –

षोडशव्यञ्जनं वह्निवामाक्षिविन्दुसंयुतम् ।
इन्दुबीजसमारूढं वधूबीजम्प्रकीर्त्तितम् ॥ ८५ ॥

इन्दुः सकारः ।

**नीलतन्त्रे –**

ताराद्या पञ्चवर्णेयं[11] श्रीमन्नीलसरस्वती ।
सर्वभाषामयी शुद्धा[12] सर्वाम्नायैर्नमस्कृता[13] ॥ ८६ ॥

'अस्या विद्याया उपासनायां'[14] द्विजानामेवाधिकारः[15] ।

---

१. ख. महाविधा । २. ख. सकलेच्छदा । ३. ख. भवाद्या । ४. ख. तारार्णवो । ५. ख. वशिष्टा० । ६. ख. फल । ७. ख. प्रदा । ८. ख. ०मुपान्तस्थं० । ९. ख. मत्रस्मत्तानमात्रेण । १०. ख. विजया । ११. ख. पञ्चवलेयं । १२. ख. शुद्ध । १३. ख. सर्वाम्नाय० । १४. '–' ख. अस्यां विद्यायां । १५. ख. ०धिकारकः ।

महाविद्या महेशानि न शूद्राय कदाचन । इति स्वतन्त्रे शिवोक्तेः । अस्याः पूजनविधौ प्रातःकृत्यमारभ्य क्वचित् क्वचिद्विशेषः सोऽत्र लिख्यते ।

नीलतन्त्रे —

मन्त्रध्यानम्प्रवक्ष्यामि जपात् सार्वज्ञदायकम् ।
मन्त्रध्यानान्महेशानि शुद्ध्यति[1] ब्रह्महा यतः ।। ८७ ।।

मूलचक्रे च ह्ल्लेखां सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
स्वाधिष्ठाने[2] पीतवर्णान्द्वितीयन्तु विभावयेत् ।। ८८ ।।

नाभौ जीमूतसङ्काशङ्कूर्च्चबीजम्महाप्रभम् ।
[अस्त्रबीजं हृदि ध्यायेत् कालाग्निसदृशप्रभम्][3] ।। ८९ ।।

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सर्वविद्यां विभावयेत् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां योगिभिर्दृष्टपूर्वकाम्[4] ।। ९० ।।

अथवा सर्वविद्यान्ताञ्जिह्वायान्दीपरूपणीम्[5] ।
तत्प्रभापटले जिह्वान्दीपरूपां विभावयेत् ।। ९१ ।।

मत्स्यसूक्ते —

ॐ माया[6] वह्निजाया च स्मृत आचमने मनुः ।
प्रणवम्मणिधरिणीति वज्रिणि[7] सर्वशब्दतः ।। ९२ ।।

वशङ्करि ततो हुं फट् स्वाहेति बन्धयेच्छिखाम् ।

नीलतन्त्रे —

उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै पदमुच्चरेत् ।
शिवचैतन्यमय्यै च स्वाहेति तन्मनुः स्मृतः ।। ९३ ।।

तन्मनुरर्घ्यमनुः[8] ।

ॐ भगवत्येकजटे विद्महे पदमुच्चरेत् ।
[ विकटदंष्ट्रे धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात् ।। ९४ ।।

मत्स्यसूक्ते —

तारं लज्जाविशुद्धान्ते सर्वपापानि चैव हि ।
शमयान्ते त्वशेषान्ते विकल्पम्पदमुच्चरेत् ।। ९५ ।।][9]

---

१. ख, सिद्ध्यति । २. ख. स्वाविधानं । ३. [–] ख. पुस्तके नाऽस्त्ययमंशः । ४. ख. ०पर्विकाम् । ५. ख. ०रूपिणी । ६. ख. भावा । ७. ख. वज्रिणी । ८. ख. तन्पनु० । ९. ख. [—] कोष्ठस्थोऽयन्न विद्यतेंऽशः ।

अपनयान्ते वर्म फट् स्वाहा पादविशुद्धये[1] ।
प्रणवं सर्वविघ्नाञ्श्च[2] उत्सारय च[3] हुं फट् ।। ९६ ।।

स्वाहान्तमनुनाऽनेन विघ्नानुत्सारयेत्ततः ।
प्रणवं रक्षयुग्मञ्च वर्मद्वन्द्वन्ततोऽपि फट् ।। ९७ ।।

वह्निजायावधिर्मन्त्रो भूमिशोधन ईरितः ।
प्रणवम्पवित्रवज्रभूमे[4] 'हुं फट्'[5] ततः पुनः ।। ९८ ।।

स्वाहेत्यनेन मनुना कुर्याद्भू म्यभिमन्त्रणम्[6] ।
आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहेति[7] मण्डलम् ।। ९९ ।।

तन्त्रान्तरे—
ॐ कारं आः सुरेखे च वज्ररेखे[8] ततः परम् ।
हुं फट् स्वाहेति च[9] कुर्यान्मण्डलं च शवासने[10] ।। १०० ।।

वीरासनेनोपविश्य सम्पूज्यासनमेव च ।
तथा— प्रणवमाश्च हुमन्ते[11] स्वाहा वाक्चित्तशोधने ।। ।।
ॐ वज्रोदके हुं फडिति जलमानीय मन्त्रयेत् ।। १०१ ।।

ॐ पुष्पकेतुराजार्हते 'शताय पदन्ततः'[12]
[तथा सम्यक्रादस्यान्ते संयुक्ताय पदन्ततः][13] ।। १०२ ।।

ॐ पुष्पे पुष्पे[14] महापुष्पे सम्भवे[15] पुष्पशब्दतः ।
[चयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा पुष्पाधिष्ठानमाचरेत् ।। १०३ ।।

प्रणवं हूं पुष्पकेतु राजार्हते तथा ।
शताय सम्यगुच्चार्य्य समृद्धाय च तारकम् ।। १०४ ।।

पुष्पेयुगं महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे ।
पुष्पे][16] चयावकीर्णे[17] हुं फट् स्वाहेति समुद्धरेत् ।। १०५ ।।

---

१. ख. स्वाहाशब्द० । २. ख. सर्वविघ्नांश्च । ३. ख. उत्सार एवं । ४. ख. पवित्रवत्-भूमे । ५. '-' ख. हुं फट्स्वाहा । ६. ख. म्यधिमन्त्रणम् । ७. क. स्वाहा , ८. रेखे च । ९. ख. वत् । १०. ख. सवासने । ११. ख. जपन्ते । १२. ख. '— ' तथा । १३. [ — ] शताय सम्युगुच्चर्य्यं समृद्धाय च तारकम् । १४. ख. युग्मं । १५. ख. पुष्पसम्भवे । १६. [—] कोऽठस्थांशस्याऽभावः ख. पुस्तके । १७. ख. चयावकीर्णं ऐ ।

प्रविशुद्धमनेनैव पुष्पन्देव्यास्तथाऽऽचरेत् ।
प्रणवो वह्निजायान्तो मन्वारम्भः परिग्रहे ।। १०६ ।।

उत्तरतन्त्रे—

सयोनिं चन्दनेनाऽष्टपत्रमब्जं सुशोभनम्[1] ।
भूपुरं[2] वसुवज्राढ्यं यन्त्रमेकजटात्मकम् ।। १०७ ।।

कुलचूडामणौ—

आः सुरेखे वज्ररेखे हुँ फट्द्वयमेव[3] च ।
मन्त्रेणानेन सँल्लिख्य[4] भूतशुद्धिं समाचरेत् ।। १०८ ।।

मायान्नाभौ रक्तवर्णान्ध्यात्वा तज्जातवह्निना[5] ।
शुष्कं[6] पापात्मकन्देहन्दग्धं सञ्चिन्तयेत्ततः ।। १०९ ।।

त्रीङ्कारं हृदि पीताभन्तदुद्भूतेन वायुना ।
भस्म प्रोत्सारितं[7] कृत्वा ललाटे चिन्तयेत्ततः ।। ११० ।।
कूर्च्चन्तुषारवर्णाभन्तदुद्भूतामृतेन तु ।

कूर्च्चं हूं ।

तदस्थि प्लावितं[8] कृत्वा तत्राऽऽत्मानं विचिन्तयेत् ।। १११ ।।

समस्तदोषनिर्मुक्तन्निर्मलन्देवतात्मकम् ।
भूतशुद्धिं विधायाऽथ शून्यं विश्वं विभावयेत् ।। ११२ ।।

निर्मलन्निर्गुणं शुद्धमात्मानन्तारिणीमयम् ।
अन्तरिक्षे ततो ध्यायेदाःकाराद्रक्तपङ्कजम् ।। ११३ ।।

भूयस्तस्योपरि[9] ध्यायेत् हूङ्कारन्नीलसन्निभम् ।
ततो हूङ्कारबीजान्तःकर्त्रिकाम्बीजभूषिताम् ।। ११४ ।।
कर्तृकोपरिगतं[10] ध्यायेदात्मानन्तारिणीमयम् ।

---

१. ख. सुशोभने । २. ख. भूयुग्म । ३. ख. फट्द्वयमेव । ४. क. सँल्लिख्येति । ५. ख. तज्ज० । ६. ख. शुकं । ७. ख. प्रोत्कारितं । ८. ख. तदलिप्तापितं । ९. ख. भूयस्यास्तुपरि । १०. ख. कर्तृकोपणितं ।

**नीलतन्त्रे—**

मन्त्रेणाऽन्तरितां[1] कृत्वा षड्वारम्मातृकां[2] न्यसेत् ।
क्रमोत्क्रमाद्[3] वरारोहे ताराषोढा प्रकीर्त्तिता ।। ११५ ।।

कृतेऽस्मिन्न्यासवर्य्ये[4] तु सर्वम्पापम्प्रणश्यति ।
योगिनीनाम्भवेत्पूज्यः स देवो[5] न तु मानुषः ।। ११६ ।।

यन्नमन्ति महेशानि षोढापुटितविग्रहाः ।
अल्पायुः[6] स भवेत् सद्यो[7] देवता कम्पते भिया ।। ११७ ।।

नास्त्यस्य पूज्यो लोकेऽस्मिन् पितृमातृमुखो जनः ।

षड्वारमिति—सृष्टिस्थितिसंहारक्रमोत्क्रमेणेत्यर्थः । सृष्टिरकारादिक्षान्तः, 'स्थितिडादिठान्तः'[8], संहृतिः क्षाद्यकारान्तः[9] । विलोमे[10] तु क्षाद्यकारान्तः,[11] ठादि-डान्तः, अकारादि-क्षान्त इति ।

**अथ षोढान्तरं[12] यामले—**

न प्रकाश्यमिदङ्क्वाऽपि मन्त्रिणः कायरक्षणे ।
प्रणवम्मातृकावर्णैः पुटितम्मातृकास्थले[13] ।। ११८ ।।

तेनैव पुटितं वर्णं न्यसेत्तत्रैव पार्वति ।
मायाबीजन्तथा देवि विन्यस्तव्यं[14] प्रयत्नतः ।। ११९ ।।

वधूबीजं[15] तथा चैव विन्यसेत् सुसमाहितः ।
कूर्च्चबीजन्तथा देवि न्यसनीयमशेषतः ।। १२० ।।

अस्त्रञ्चैव तथा न्यस्त्वा सकलन्तदनन्तरम् ।
गुह्यषोढाद्वयन्देवि न प्रकाश्यङ् कदाचन ।। १२१ ।।
अवश्यम्प्रत्यहङ्कार्य्यन्न पूजा न जपस्तथा ।

---

१. ख. ०न्तरितं । २. ख. ०मानूयं । ३. ख. क्रमोक्रमाद् । ४. ख. कृतेऽस्मिन्मा-सवर्चे । ५. ख. देयो । ६. अव्यायुः । ७. क. पूज्यो । ८. '-' ख. नाऽस्त्ययमंशः । ९. ख. क्षायकारान्तः । १०. ख. विलोमेन । ११. ख. क्षायकारान्तः । १२. ख. पोठान्तरं । १३. ख. मातृके स्थले । १४. ख. विन्यस्त । १५. ख. व····बीजं ।

फेत्कारीये—

ताराषोढाम्प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपिताम् ।
सर्वविघ्नोपशमनीं सर्वपापप्रणाशिनीम् ।। १२२ ।।

महादारिद्र्यशमनीं[1] सर्वसम्पत्प्रदायिनीम् ।
सर्वकामप्रदान्नित्यां सर्वसाम्राज्यदायिनीम् ।। १२३ ।।

शिष्याय भक्तिरूपाय विनीताय महात्मने ।
वदान्याय कुलीनाय शुद्धाचाररताय च ।। १२४ ।।

एवं विधाय देवेशि साधकाय प्रकाशयेत् ।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यादित्याज्ञा शङ्करैः कृता ।। १२५ ।।

रुद्रैस्तु प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः ।
लोकपालैस्तृतीयः स्याच्छिवशक्त्या चतुर्थकम् ।। १२६ ।।

तारादिभिः पञ्चमः स्यात् षष्ठः पीठैर्निगद्यते ।
एकेन सहिता रुद्राः पञ्चाशत् परिकीर्त्तिताः ।। १२७ ।।

विन्दुयुक्तमातृकार्णैस्त्र्यक्षरीबीजपूर्वकैः ।
ङेन्तैर्नमोन्तैर्देवेशि विन्यसेत्तान क्रमात्सुधीः ।। १२८ ।।

तारिणीन्त्र्यक्षरीम्प्रोक्ताम्भवबन्धविनाशिनीम् ।
नीलवर्णान्त्रिनयनां शवासनसमायुताम् ।। १२९ ।।

बिभ्रतीं विविधाभूषां[2] मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ।
एवन्ध्यात्वा तारिणीन्तु समाहितमनाः शिवाम् ।। १३० ।।

स्वरैर्हृदि न्यसेत् सूर्यं रक्तन्त्र्यक्षरपूर्वकम् ।
भ्रुवोर्मध्ये यवर्गेण सोमं शुक्लन्तु विन्यसेत् ।। १३१ ।।

नेत्रत्रये कवर्गेण लोहितम्मङ्गलं[3] न्यसेत् ।
चवर्गेण बुधं श्यामन्न्यसेद्धृदयमण्डले ।। १३२ ।।

---

१. ख. ० दारिद्र० । २. ख. विविधां भूषां । ३. ख. ० मङ्गकं ।

टवर्गेण कण्ठकूपे पीतवर्णम्बृहस्पतिम् ।
गलदेशे तवर्गेण पाण्डुरम्भार्गवन्न्यसेत् ।। १३३ ।।

नाभिदेशे[1] पवर्गेण नीलवर्णं शनिन्न्यसेत् ।
शवर्गेण धूम्रवर्णं राहुं वक्त्रे न्यसेत्ततः ।। १३४ ।।

लक्षाभ्यां[2] गुह्यके देशे केतुं धूम्रं वरानने ।
इन्द्रमग्निं[3] यमं[4] रक्षो वरुणम्पवनं विधुम् ।। १३५ ।।

ईशानमात्मनो मूर्द्ध्नि दिक्षु चाऽष्टस्वरक्रमात् ।
अधोऽनन्तम्मूर्द्ध्नि देशे ब्रह्माणञ्च ततो न्यसेत् ।। १३६ ।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवो देवि षट् शिवाः परिकीर्त्तिताः ।। १३७ ।।

मूलाधारे च[5] ब्रह्माणण्डाकिनीसहितन्न्यसेत् ।
सर्वत्र त्र्यक्षरीमुक्त्वा वादिसान्तं सबिन्दुकम् ।। १३८ ।।

स्वाधिष्ठानाख्यचक्रे तु सविष्णुं राकिनीन्तथा ।
बादिलान्तम्प्रविन्यस्य नाभौ तु मणिपूरके ।। १३९ ।।

डादिफान्तार्णसहितं रुद्रञ्च लाकिनीन्तथा ।
अनाहते कादिठान्तमीश्वरङ्काकिनीयुतम् ।। १४० ।।

विशुद्धाख्यमहाचक्रे षोडशस्वरसंयुते ।
सदाशिवं शाकिनीन्तु विन्यसेत् पूर्ववत्ततः ।। १४१ ।।

आज्ञाचक्रे तु[6] देवेशि हक्षवर्णसमन्वितम् ।
परं शिवम्ब्रह्मरूपं हाकिनीसहितन्न्यसेत् ।। १४२ ।।

'तारा चोग्रा'[7] महोग्रा च वज्रा काली सरस्वती ।
कामेश्वरी च चामुण्डा इत्यष्टौ तारिणी[8] मताः ।। १४३ ।।

---

१. ख. नारिदेशे । २. ख. लाक्षाभ्यां । ३. ख. ० मग्नि । ४. ख. मयं । ५. ख तु ।
६. ख. च. । ७. '-' ख. नाचोग्रा । ८. ख. चारिणी ।

सर्वादौ तारिणीवर्णं समुच्चार्य्य क्रमेण च ।
स्वरादिवसुवर्गेण भूषितेन च बिन्दुना ।। १४४ ।।

ङेन्ता नमोन्तान्न्यस्तव्यास्ताराद्या ध्यानपूर्वकम्[1] ।
ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कण्ठगह्वरे ।। १४५ ।।

हृदये नाभिदेशे च लिङ्गे चाऽऽधारके न्यसेत् ।
मूलाधारे कामरूपं हृदि जालन्धरन्तथा ।। १४६ ।।

ललाटे पूर्णगिर्य्याख्य[2]-मुड्डियाणं[3] तदूर्द्ध्वके ।
वाराणसीम्भ्रुवोर्मध्ये अवन्तीं लोचनत्रये[4] ।। १४७ ।।

मायावतीं मुखवृत्ते कण्ठे मधुपुरीन्ततः[5] ।
अयोध्यान्नाभिदेशे च कच्याङ्काञ्चीं विनिर्द्दिशेत् ।। १४८ ।।

दशैतानि[6] प्रधानानि पीठानि क्रमतो विदुः ।
ह्रस्वदीर्घस्वरैर्वर्णैर्नमोन्तैः क्रमतो न्यसेत् ।। १४९ ।।

ॐकारपुटितं[7] कृत्वा मनुना व्यापकन्न्यसेत् ।
इति षोढा च कथिता ताराद्या सर्वसिद्धिदा ।। १५० ।।
अक्षोभ्यः सर्वजन्तूनान्न्यासस्याऽस्य[8] प्रसादतः ।

**सिद्धसारस्वते—**

अखिलवाग्रूपिणि प्रोच्य हृदयाय नमो वदेत् ।
अखण्डवाग्रूपिणी[9] शिरसे वह्निवल्लभा[10] ।। १५१ ।।

ब्रह्मवाग्रूपिणीत्युक्त्वा शिखायै वषडित्यपि ।
विष्णुवाग्रूपिणीत्युक्त्वा कवचाय[11] हुमाचरेत् ।। १५२ ।।

रुद्रवाग्रूपिणीत्युक्त्वा नेत्रत्रयाय वौषट् ।
सर्ववाग्रूपिणीत्युक्त्वा अस्त्राय फडिति स्मरेत् ।। १५३ ।।

---

१. ख. ध्यानपूर्विका । २. क. पूर्णनिर्याख्यं । ३. ख. डडिपाणं । ४. ख. लौचनीत्रये । ५. ख. मधुपरा० । ६. ख. देशेतानि । ७. ख. ॐकारं० । ८. ख. ०न्यासस्वास्य । ९. ख. ०रूपिणी तु । १०. ख. वह्निवह्निना । ११. ख. कवराय ।

षड्दीर्घमायया चैव बीजान्ते चाऽभियोजयेत् ।
ब्रह्मणा कथितम्मह्यं मया तुभ्यन्नगात्मजे ।। १५४ ।। इति ।।

फेत्कारिणीतन्त्रे— श्रीशिवोक्तेर्ब्रह्मा[1] ऋषिः ।

नीलतन्त्रे—

अक्षोभ्य ऋषिरेतस्या बृहती छन्द ईरितम् ।
उग्रतारा देवता च चतुर्वर्गफलप्रदा ।। १५५ ।।
हूँ बीजमस्त्रं शक्तिः स्यान्माया च कीलकं वधूः ।

कुलचूडामणौ—

बीजान्ते एकजटायै हृदयम्परिकीर्त्तितम् ।
तारिण्यै शिरसे स्वाहां वज्रोदके शिखान्तथा ।। १५६ ।।
उग्रजटे च कवच[2]-म्महापरिसरे तथा ।
पिङ्गोग्रैकजटे तद्वन्नेत्रास्त्रे परिकीर्त्तिते ।। १५७ ।।

उत्तरतन्त्रे— षड्दीर्घाढ्याद्यबीजेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ।

आद्यबीजेन[3] मायाबीजेन मन्त्रोद्धारवचनेषु प्रणवस्य पश्चादुक्तेः ।

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद् घोराट्टहासारवा[4],
खङ्गेन्दीवरकर्त्तिखर्प्परभुजा हूङ्कारबीजोद्भवा ।
खर्वानीलविशालपिङ्गलजटाजूटोग्रनागैर्वृता[5],
जाड्यन्न्यस्य कपालिके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ।। १५८ ।।

प्रत्यालीढपदा शवहृदयनिर्भरयन्त्रणाभिप्रायेण सङ्कुचितचरणा । ऊर्द्ध्वादि-दक्षकरयोराद्ये, तदादि वामयोरन्ये ।

खङ्गं दक्षिणहस्तेन[6] बिभ्रतीन्दीवरन्त्वधः ।
कर्त्रीञ्च खर्प्परञ्चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रतीम् ।। १५९ ।।

इति तत्रैवोक्तेः ।

---

१. ख. श्रीशिवोक्तेब्रह्मा । २. ख. उग्रजटे महाकवचं । ३. ख. आद्यद्यबीजेन । ४. ख. प्रत्यापीठपदा० । ५. ख. पिंगतजटा० । क. ०पिङ्गलजडा । ६. ख. दाडिमहस्तेम ।

तन्त्रचूडामणौ—

तस्योपरि ततो ध्यायेद्धूङ्कारन्नीलसन्निभम् ।
तस्योपरि ततो ध्यायेत् कर्त्तृकाम्बीजभूषिताम् ।। १६० ।।

तस्योपरि महादेवीं खर्वान्नीलघनप्रभाम् ।
लम्बोदरीं व्याघ्रचर्मसमावृतनितम्बिनीम् ।। १६१ ।।

पीनोन्नतपयोभारां रक्तवर्त्तुललोचनाम् ।
पिङ्गोग्रैकजटाजूटान्नीलनागसमुज्ज्वलाम् ।। १३२ ।।

नीलोत्पललसन्मालाबद्धजूटां[1] भयङ्करीम् ।
श्वेतास्थिपट्टिकायुक्त[2]-कपालपञ्चशोभिताम् ।। १६३ ।।

ललाटे रक्तनागेन कृतकर्णावतंसकाम् ।
अतिशुभ्रमहानागकृतहारहृदोज्ज्वलाम् ।। १६४ ।।

दूर्वादलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनीम् ।
*चतुर्भुजां रक्तमांसखड्गमण्डितमुष्टिकाम् ।। १६५ ।।

जटाजूटेन सूत्रेण कर्त्र्या तु तीक्ष्णधारया ।
खड्गेन दक्षिणस्योर्द्ध्वे शोभितां वीरनादिनीम् ।। १६६ ।।*

तदधस्ताद्बीजवृत्तकर्तृकालङ्कृताम्पराम् ।
वामोर्द्ध्वे रक्तनालं यद्विकस्वरमनोहरम् ।। १६७ ।।

दधतीं नीलपद्मं[4] च तदधस्तात् कपालकम् ।
जगताञ्जाड्यसंयुक्तं[5] दधतीं कुन्दसन्निभम् ।। १६८ ।।

धूम्राभनागसन्दोहकृतकेयूरसङ्कुजाम्[6] ।
सुवर्णवर्णनागेन कङ्कणोज्ज्वलपाणिकाम् ।। १६९ ।।

---

१. ख. ०मालाँ बद्ध० । २. ०ख. ०पदिका० । *-* ख. पुस्तके चिह्नान्तर्गतांशस्याऽभावः ।
३. ख. नीवपद्मं । ४. ० संदुक्तं । ५. ख. ० संङ्कुताम् । ६. ख. कफणोज्ज्वलपाणिकः । ।

शुभ्रवर्णमहादेवशवहृद्विमलासनाम्[1] ।
निर्यन्त्रणभिया तद्वत्सङ्कुचत्प्रपदाञ्चलाम् ।। १७० ।।

शवपादद्वयारूढवामपादां[2] हसन्मुखीम् ।
कृष्णाभनागसंशोभिकटिसूत्रान्त्रिलोचनाम् ।। १७१ ।।

ईषद्रक्तेन नागेन कृतनूपुरपल्लवाम् ।
सद्यश्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डै[3] रक्तभूषणैः ।। १७२ ।।

अन्योन्यकेशग्रथितैः पादपद्मप्रलम्बितैः ।
पञ्चाशद्भिर्महामालाशोभिताम्परमेश्वरीम् ।। १७३ ।।

ज्वलच्चितामध्यगतां[4] द्वीपिचर्मोत्तरांशुकाम्[5] ।
अक्षोभ्यनाग-'सम्बद्ध'[6]-जटाजूटां वरप्रदाम् ।। १७४ ।।

सावेशस्मेरवदनां ललज्जिह्वाङ्करालिनीम् ।
एवन्ध्यात्वा पण्डितोऽहम्भावयेच्च महाकविः ।। १७५ ।। इति ।।

वश्यार्थी रक्तवर्णान्तामाकृष्टौ पीतरूपिणीम्[7] ।
मारणोच्चाटने धूम्राङ्कृष्णान्तु तदपेक्षया ।। १७६ ।।

चिन्तयेत्परमेशानीं व्याघ्रप्रेतकृतासनाम् ।[8] ।

कुमारीकल्पे—

ततोऽर्घपात्रं विन्यस्य द्वारपालान्[9] समर्च्चयेत्[10] ।
गांबीजाद्यं[11] गणेशञ्च[12] वामाद्यं वटुकन्तथा ।। १७७ ।।

क्षामाद्यं[13] क्षेत्रपालञ्च मायाद्यं[14] योगिनीस्ततः[15] ।।
पूर्वाधो वामदक्षे च ध्यात्वैवम्पूजयेत्सुधीः ।। १७८ ।।

ध्रुवाद्याः सर्वे दीर्घाद्याः शक्तिबीजपुरःसराः ।

---

१. ख. शुभ्रवर्णं । २. ख. ०वामपादो । ३. ख. सद्यश्छिद्र० । ४. ख. ज्वलञ्जिता० । ५. ख. द्वाचर्मो० । ६. '—' ख. नास्त्ययमंशः । ७. ख. पीतरूपिणी । ८. ख. पेतकतासनाम् । ९. ख. द्वारपाला । १०. ख. क्षमार्चयेत् । ११. ख. गाँवीजाढ्यं । १२. ख. मणेशंय । १३. ख. क्षामायं । १४. ख. यामाय । १५. स्तथा ।

तारातन्त्रे—

तन्मध्ये पूजयेद्देव्या वाहनं शवमेव च ।
श्मशानन्तत्र सञ्चिन्त्य[1] तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत् ॥ १७९ ॥

तन्मूले मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम् ।
नानालङ्कारभूषाढ्यम्मुनिदेवैश्च मण्डितम् ॥ १८० ॥

शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्ततः ।
चतुर्दिक्षु शवान्मुण्डाञ्चिचताङ्गारास्थिभूषितान् ॥ १८१ ॥

सिद्धसारस्वते—

लक्ष्मीः सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च ।
कीर्त्तिः शान्तिश्च पुष्टिश्च तुष्टिरित्यष्टशक्तयः ॥ १८२ ॥

देव्या नीलसरस्वत्याः पीठशक्तय ईरिताः ।

ततो मध्ये ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः ।

उत्तरतन्त्रे—

महाकाल्यथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च ।
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ॥ १८३ ॥

भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता शक्तीस्ताः परिपूजयेत् ।
मध्ये देव्यासनम्पूज्यम् ........ ................ ॥ १८४ ॥

फेत्कारिणीतन्त्रे—

आवाह्य स्थापयित्वाऽऽदावर्ध्यन्दद्यादनुत्तमम्[2] ।
श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पमित्यभिधाय[3] च ॥ १८५ ॥

प्रतीच्छाग्निप्रियान्तेन[4] सतारेणाऽर्च्चयेत् पुनः ।
दत्वा गन्धादिकमपि बलिमुक्तन्निवेदयेत् ॥ १८६ ॥

बलिं नैवेद्यम् ।

प्रणवम्पूर्वमुच्चार्य्य पद्म-युगलमेव च ।
महापद्म-पदम्ब्रूयात् पद्मावतिपदन्ततः ॥ १८७ ॥
हुं स्वाहेति च मन्त्रोऽयं यथापूर्वम्बलिं हरेत् ।

---

१. ख. संपित्थ । २. क. ० दद्यावनुत्तमम् । ख. स्थापयिदावद्यंदनुत्तमम् । ३. ख. वज्रयूथ० । ४. ख. प्रतीस्थाग्नि० ।

मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते ।

**यामले** —

दूर्वाक्षतञ्गन्धपुष्पञ्जपापुष्पाजमोदकम्[1] ।
अर्घ्यं[2] गृह्ण[3] जगद्धात्रि देहि सिद्धिं[4] सुरेश्वरि ।। १८८ ।।

**कुलचूडामणौ**—

अर्घ्यं[5] दत्वा जपापुष्पं[6] दापयेन्मन्त्रमुच्चरन् ।
वज्रपुष्पं[7] प्रतीच्छेदं सम्बोधनपदान्वितम् ।। १८९ ।।

**फेत्कारिण्याम्**—

श्रीमदेकजटे चोक्त्वा[8] वज्रपुष्पं प्रतीच्छ[9] च ।
ताराद्यवह्निजायान्तमुदीर्य्य यजनं चरेत् ।। १९० ।।

**नीलतन्त्रे**—

अभावे वज्रपुष्पस्य स्मरणात्फलभाग्भवेत्[10] ।
कल्पकोटिजपक्रान्ते विश्वान्ते[11] त्रिश्वमोहिनि ।। १९१ ।।

गृहाण परमप्रीते रम्यमाचमनीयकम्[12] ।
एष गन्धः सुराध्यक्षे नागयज्ञोपवीतिनि ।। १९२ ।।

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गि चन्दनं गृह्ण तारके ।
वज्राधिकतनुस्पर्शे सन्तानकुसुमार्च्चिते ।। १९३ ।।

वज्रपुष्पम्प्रतीच्छेदम्मन्त्रपूतम्महेश्वरि ।
दशाङ्गधूपगन्धेन सफलङ्कुरु पूजनम् ।। १९४ ।।

प्रयच्छ मे[13] महासिद्धिं गृहाण मदनुग्रहात् ।
दीपञ्च मधुसर्प्पिभ्र्यामुज्ज्वलं[14]चारुदीपनम् ।। १९५ ।।

गृहाण वरदे मातः कवितान्देहि[15] मेऽचिरम् ।
परमं वारुणीकल्पङ्कोटिकोपान्तकारिणि ।। १९६ ।।
गृहाण कलितां सिद्धिन्देहि मे मोक्षदायिनि ।

---

१. ख. ० जवापुष्पा० । २. ख. अर्घं । ३. ख. गृह्ल । ४. ख. सुद्धि । ५. ख. अर्घं । ६. क. ख. जवापुष्प । ७. ख. मन्त्रपुष्पं । ८. ख. प्रोक्ता । ९. ख. प्रतीव । १०. ख. स्मरणं० । ११. ख. विश्वान्तर । १२. क. वाचमनीयकम् । १३. ख. प्रयत गे । १४. ख. ० मुज्जलं । १५. ख कविनान्देहि ।

यामले—

षडङ्गमर्च्चयेद्देव्या देहेषु केसरेषु च ।

फेत्कारीये[1]—

वज्रपुष्पम्प्रतीच्छेति[2] हुं फट्स्वाहेति नामतः ।
एतन्मन्त्रे नाम मन्त्रभिन्नं[3] चैव न संशयः ।। १९७ ।।
अनेन मनुना देवि परिवारान् समर्च्चयेत् ।
सर्वत्रादौ प्रणवो देयस्तदुक्तन्तत्रैव ।
प्रणवं वह्निजायान्तं वज्रपुष्पं विनिक्षिपेत् ।। १९८ ।।

इति ।

भावचूडामणौ—

अथ तारागुरून्[4] वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदान् ।
उर्द्ध्वकेशो[5] व्योमकेशो नीलकण्ठो वृषध्वजः ।। १९९ ।।

दिव्यौघान् सिद्धिदान् वत्स सिद्धौघाञ्शृणु तत्वतः ।
वशिष्ठः कूर्मनाथश्च मीननाथो महेश्वरः ।। २०० ।।

हरिनाथो मानवौघाञ् शृणु वक्ष्यामि सद्गुरून् ।
तारावती भानुमती जया[7] विद्या महोदरी[8] ।। २०१ ।।

सुखानन्दः परानन्दः पारिजातः कुलेश्वरः ।
विरूपाक्षः फेरवी[9] च कथितं तारिणीकुलम् ।। २०२ ।।

फेत्कारिणीतन्त्रे—

अक्षोभ्यवज्रमादौ तु तारिणीं मूर्द्ध्नि पूजयेत् ।
प्रणवाद्यग्निजायान्तम्पुष्पम्प्रतीच्छ चेत्यति[10] ।। २०३ ।।

वैरोचनन्तथा शङ्खम्पाण्डुरं[11] पद्मनाभकम् ।
असिताङ्गं यजेन्मन्त्री दिक्ष्विन्द्रादि चतुर्द्दले ।। २०४ ।।

---

१. ख. फेत्काराये । २. ख. ० प्रतीवेति । ३. ख. मात्रभिन्नं । ४. ख. तारागुरू । ५. ख. ऊर्द्ध्वकेशो । ६. ख. व्यामकेशो । ७. ख. तया । ८. ख. महेश्वरी । ९. ख. केरवी । १०. ख. येत्यपि । ११. क. पाण्डरं ।

लामकीम्मामकीञ्चैव पाण्डरान्तारया सह ।
वह्न्यादिषु तु[1] कोणेषु मन्त्रैः स्वैः स्वैर्युगैः क्रमात् ।। २०५ ।।

द्वारे पूर्वादितः पश्चात्[2] पद्मान्तकयमान्तकौ ।
विघ्नान्तकं समभ्यर्च्य पूजयेन्नरकान्तकम्[3] ।। २०६ ।।

नात्युच्चन्नातिनीचञ्च ध्यात्वा देवीं यजेन्मनुम् ।
बलिन्दत्वा नमस्कृत्य स्तुत्वा देवीं विसर्ज्जयेत् ।। २०७ ।।

प्रणवम्पूर्वमुच्चार्य्य हृल्लेखाञ्च ततः परम् ।
एकजटे-पदान्ते च महाशब्दमुदीरयेत् ।। २०८ ।।

यक्षादिपदमाभाष्य[4] पतये पदतो मया ।
उपनीतम्पदञ्चोक्त्वा बलिं गृह्णेति च द्विधा ।। २०९ ।।

गृह्णापय द्विधा चोक्त्वा मम सर्वपदान्ततः[5] ।
शान्ति कुरुद्वयञ्चैव परविद्यामनन्तरम् ।। २१० ।।

द्विधाकृत्येति[6] च ब्रूयात् त्रुटच्छिन्धीति च द्विधा ।
माया स्वाहेति मन्त्रोऽयम्बल्यादौ बुद्धिसिद्धिदः ।। २११ ।।
परसैन्यग्रहारिष्ट[7]-रोगकृत्याविनाशनः ।

अनेन भोजनकालेऽर्द्धरात्रे च बलिर्द्देयः ।

भोजनावसरे देवि मध्यरात्रे च साधकः ।। २१२ ।।

बलिं दद्यादनेनैव सर्वकार्य्येषु सर्वदा ।

इति कुब्जिकामतात् सर्वदा प्रत्यहं भोजनकालेषु कार्येषु मध्यरात्रे इत्यर्थः ।

## ।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकाले प्रागुक्तप्रकारेण गुरुध्यानानन्तरम्—

'नमोऽस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे[8] ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञिकम्" ।। २१३ ।।

---

१. ख. नास्ति । २. ख. वश्चित् । ३. ख. ० न्मरकान्तकम् ।
४. ख. पक्षादि० । ५. ख. ० पदरन्ततः ६. ख. द्विधाकृत्वेति । ७. ख. ० गृहारिष्टे० ।
८. क. ह्यष्टदेव० ।

इति स्तुत्वा प्रागुक्तप्रकारेण कुण्डलिन्या उत्थापनादिस्वस्थानस्थापनानन्तरं मूलाधारे—'ह्रीं'मि'ति बीजं सूर्यकोटिसमप्रभं ध्यात्वा, स्वाधिष्ठाने—'स्त्री' मिति बीजं पीतवर्णं विभाव्य, मणिपूरके—'हू' मिति बीजं जीमूतसङ्काशं महाप्रभं ध्यात्वाऽनाहते—'फडि' त्यस्त्रबीजं कालाग्निसङ्काशं[1] ध्यात्वा, मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं समस्तविद्यां सूर्य्यकोटिप्रतीकाशां ध्यायेत् । ततो देवीं मानसैरुपचारैः पूजयित्वा, ऋष्यादिन्यासपूर्वकं यथाशक्ति मूलं जपित्वा[2] जपं समर्प्य ।[3]

घोररूपे महामाये सर्वशत्रुभयङ्करि ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि त्राहि मां शरणागतम् ।। २१४ ।।

इति स्तुत्वा, [प्रागुक्तप्रकारेण 'प्रातःप्रभृती'त्यादि श्लोकपठनानन्तरं][4] पृथिवीप्रार्थनादिस्नानान्तं[5] कर्म विधाय, तान्त्रिकसन्ध्यां[6] यथोक्तप्रकारेण कुर्य्यात् । तत्रायं विशेषः—

'ॐ मणिधरणि वज्रिणि सर्ववशंकरि हुं फट् स्वाहे'ति- शिखाबन्धनम्, [ॐ ह्रीं स्वाहे'त्याचमनम्][7] 'उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै नित्यशिवचैतन्यमय्यै श्रीमदुग्रतारायै स्वाहे'ति अर्घदानम्, 'ॐ भगवत्येकजटे विद्महे विकटदंष्ट्रे धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयादि'ति गायत्र्या जपः ।

ततः प्रागुक्तप्रकारेण तर्प्पणादि-गृहागमनानन्तरं[8] 'ॐ ह्रां[9] विशुद्धसर्वपापानि शमयाऽशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहे'ति पादौ[10] प्रक्षाल्य, पूर्ववद्द्वारपूजादि[11] विधायापसर्प्पन्तु ते भूता' इति श्लोकान्ते 'सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहे'ति विघ्नानुत्सार्य,[12] 'ॐ रक्ष रक्ष हुँ हुँ फट् स्वाहे'ति मन्त्रेण यागभूमिं संशोध्य 'ॐ पवित्रवज्रभूमे हुँ फट् स्वाहे'ति मन्त्रेण भूमिमभिमन्त्र्य, 'आः सुरेखे वज्ररेखे[13] हुँ फट् स्वाहेति चन्दनादिना मण्डलं कृत्वा, तत्राऽऽसनमास्तीर्य्य, 'ॐ कामरूपपीठाय नम' इत्यासनं सम्पूज्य, 'आः हुं स्वाहे'ति मन्त्रेण वाक्—चित्ते संशोध्य, 'ॐ[14] वज्रोदके हुँ फडि'ति मन्त्रेण जलमभिमन्त्र्य, 'ॐ पुष्पकेतु-

---

१. ख. ० संकाषां । २. ख. तत्वा । ३. ख. समर्प ।
४. [—] ख. शक्तिप्रकारेण शतः प्रमीत्यादिकोत्र पाठानन्तरं । ५. ख. पाथनादिस्नात्वांत । ६. ख. संपां । ७. ख. [—] कोष्ठगस्याऽभावः । ८. ख. गृहाणमनानंतरं । ९. ख. नाऽस्ति । १०. ख. दौ । ११. ख. पूजां । १२. ख. विप्रानु० । १३. ख. पदस्यास्याभावः । १४. ख. नाऽस्ति ।

राजार्हते शताय सम्यग्युक्ताय[1] 'ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे पुष्पसम्भवे[2] पुष्पचयावकीर्णे[3] हुं फट् स्वाहे'ति पुष्पाधिष्ठानमभिमन्त्र्य --

'ॐ हुँ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् समृद्धाय ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे पुष्पचयावकीर्णे[4] हुँ फट् स्वाहे'ति पुष्पाणि समुद्धृत्याऽनेनैव मन्त्रेण पुष्पाणि संशोध्याऽन्यत्सर्वं प्राग्वद्विधाय, सुवर्णादिपीठे—

'आ[5]: सुरेखे वज्ररेखे[6] हुं फट् स्वाहे' ति मन्त्रेण प्रागुक्तन्देव्या यन्त्रन्निर्माय, [स्वपुरतः पीठोपरि निधाय, प्रागुक्तसामान्यार्घं विधाय, सम्भारान् प्रोक्ष्य. प्रागादिदिक्षु यन्त्रोपरि– "ॐ ह्रीँ गाँ गणेशाय नमः, ॐ ह्रीँ बाँ वटुकाय नमः, ॐ ह्रीँ क्षाँ क्षेत्रपालाय नमः, ॐ ह्रीँ याँ योगिनीभ्यो नमः, ॐ श्मशानाय कल्पवृक्षेभ्यो नमः तन्मूले— मणिपीठाय नमः, नानामणिभ्यो०, नानालङ्कारेभ्यो०, मुनिभ्यो०, देवेभ्यो०, मांसास्थिमोदमानशिवाभ्यो नमः, चतुर्दिक्षु–शवमुण्डे चिताङ्गारास्थिभ्यो नमः"

ततोऽष्टदलकेशरेषु प्रागादि–"ॐ लक्ष्म्यै नमः, सरस्वत्यै०, रत्यै०, प्रीत्यै०, कीर्त्यै०, शान्त्यै०, पुष्ट्यै०. तुष्ट्यै०, मध्ये "ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः" ततः भूतशुद्धिं कुर्यात् ।][7]

गुर्वादिवन्दनादि प्रागुक्तप्रकारेण[8] भूतशुद्धिसमये नाभौ– 'रं' बीजस्थाने ह्रीङ्कारं[9] रक्तवर्णं विचिन्त्य, तज्जाताग्निना पापपुरुषं सन्दह्य, हृदि-त्रीङ्कारं[10] यं बीजस्थाने[11] सञ्चिन्त्य, तदुत्थवायुना भस्म प्रोत्सार्य्य. ललाटे– हूं बीजं वं बीजस्थाने शुक्लवर्णं विचिन्त्य, तदुत्थामृतवृष्ट्या[12] स्वदेहमाप्लाव्य[13], शेषं[14] पूर्ववत् कृत्वा[15], 'भूतशुद्धिं विधाये' त्यादिप्रमाणश्लोकोक्तप्रकारेणाऽऽत्मानं तारिणीमयं ध्यात्वा, प्राणप्रतिष्ठादिमातृकान्यासान्ते प्रमाणोक्तप्रकारेण मूलमन्त्रान्तरितां षड्वारं मातृकां विन्यस्य, ताराषोढादिन्यासान् कुर्यात् ।

---

1. ख. संयुक्ताय । २. क. संभवे । ख. स्तपुष्पसंभवे । ३. ख. ० चयावकार्यो । ४. ख. दुष्पायचपापकीर्णे । ५. ख. भाः । ६. ख. नाऽस्ति । ७. [—] क. पुस्तके नाऽस्ति कोष्ठगोंऽशः । ८. ख. प्रकारेण । ९. ख. सकारं । १०. ख. भींकारं । ११. ख. वीतसाने । १२. ख.० मृतराध्या । १३. ख. स्वदेहमासात्प्र । १४. ख. शेयं । १५. ख. कृत्या ।

**अथ ताराषोढान्यास**[1]:— "शिरसि❀– अं ॐ अं नमः, ॐ अः ॐ नमः❀ इत्यादि; क्षं[2] ॐ क्षं ॐ क्षं ॐ"[3] इत्यादि मातृकान्यासस्थानेषु प्रत्यक्षरपुटितं[4] प्रणवं[5], प्रणवपुटितं प्रत्यक्षरं[6] च न्यसेत् ।

पुनः "अं ह्रीं अं नमः, ह्रीं अं ह्रीं नमः"[7] इत्यादि क्षं ह्रीं क्षं नमः, ह्रीं क्षं ह्रीं नम" इत्यन्त मातृकास्थानेषु प्रत्यक्षरपुटितं [मायाबीजं, मायाबीजपुटितं प्रत्यक्षरं च न्यसेत्][8]

[पुनः अं स्त्रीं अं नम इत्यादि क्षं स्त्रीं क्षं नमः," स्त्रीं अं स्त्रीं नमः, स्त्रीं क्षं स्त्रीं नमः" इत्यन्तं तथैव प्रत्यक्षरपुटितं][9] स्त्रीबीजं स्त्रीबीजपुटितं प्रत्यक्षरं च न्यसेत् ।

ततः "अं हूं अं, हूं अं हूं इत्यादि क्षं हूं क्षं, हूं क्षं हूं नम" इत्यन्तं प्रत्यक्षर-पुटितं कूर्च्चबीजं कूर्च्चबीजपुटितं प्रत्यक्षरं च मातृकास्थानेषु[10] न्यसेत् ।

ततः "अं फट् अं, फट् अं फट् इत्यादि क्षं फट् क्षं, फट् क्षं फट्" इत्यन्तं प्रत्यक्षरपुटितमस्त्रमस्त्रपुटितं प्रत्यक्षरं च तथैव[11] न्यसेत् ।

ततः 'अं मूलं अं, मूलं अं मूलं इत्यादि क्षं मूलं क्षं, मूलं क्षं मूलं नम" इत्यन्तं[12] प्रत्यक्षरपुटितं[13] 'मूलमन्त्रं मूलमन्त्रपुटितं'[14] प्रत्यक्षरं च न्यसेत् । **इति** [15]व्यस्तसमस्तमूलमन्त्रमातृकाप्रत्यक्षरपरस्परपुटित**तारागुह्यषोढान्यासः** ।

**अथ महाषोढान्यास**[16]:— "शिरसि—ह्रीं स्त्रीं हूं[17] श्रीकण्ठपूर्णोदरीभ्यां नमः, मुखे—ह्रीं स्त्रीं हूं अनन्त—विरजाभ्यां, ३दक्षनेत्रे[18]-३[19] इं सूक्ष्मशाल्मलीभ्यां नमः, एवं ईं[20] त्रिमूर्त्ति-लोलाक्षीभ्यां, अमरेश[21]—वर्त्तुलाक्षीभ्यां, ३ऊं क्रोधीशदीर्घ-

---

१. ख. अथ तारायोगन्यासः । ❀ख. अं ओं नमः अः अं अ नमः । २. ख. हुं । ३. ख. ॐ नमः । ४. ख. यत्वक्षरपुटिते । ५ ख. मणेवं । ६. ख. यत्यक्षर० । ७. "—" ख. अं ह्रीँ अं महा अं ह्रीं । ८. [—]कोष्ठस्थांशस्थाने 'मायाबीजपुटितं' मेवांशः ख. पुस्तके । ९. [—] कोष्ठगाँशस्याऽभावः ख. पुस्तके । १०. ख. नाऽस्त्ययमंशः । ११. ख. नास्ति । १२. ख. मातृष्वस्थानेषु इत्यंतं । १३. ख. प्रत्यहर० । १४. ख. मूलं मूलपुटितं । १५. ख. व्यत्या० । १६. महापीठन्यासः । १७. ख. ह्रीँ । १८. ख. रक्षनेत्रे । १९. ख. ॐ । २०. ख. ह्रीँ । २१. ख. अपरेश ।

घोणाभ्यां, ३ ॠं[1] भारभूतीश[2]–दीर्घमुखीभ्यां, ३ ॠं अतिथीश–गोमुखीभ्यां, ३ लृं स्थाण्वीश–दीर्घजिह्वाभ्यां[3], ३ लॄं हरेश–कुण्डोदरीभ्यां, ३ एं झिण्टीशोर्द्ध्व-केशीभ्यां[4], ३ ऐं भौतिकेश–विकृतमुखीभ्यां, ३ ओं सद्योजातेश[5]–ज्वालामुखीभ्यां ३ औं अनुग्रहेशोल्कामुखीभ्यां, ३ अं अक्रूरेश–सुश्रीमुखीभ्यां, ३ अः महासेनेश–विद्यामुखीभ्यां, ३ कं क्रोधीश–महाकालीभ्यां, ३ खं चण्डीश–सरस्वतीभ्यां, ३ गं पञ्चान्तकेश–सर्वसिद्धिभ्यां, ३ घं शिवोत्तमेश[6]–गौरीभ्यां, ३ ङं[7] एकरुद्रेश–त्रैलोक्यविद्याभ्यां, ३ चं कूर्मेश–मन्त्रशक्तिभ्यां, ३ छं एकनेत्रेशात्मशक्तीभ्यां, ३ जं[8] चतुराननेश–भूतमातृभ्यां, ३ 'झं अजेशलम्बोदरीभ्याँ'[9], ३ ञं[10] सर्वेश–द्राविणीभ्यां, ३ टं सोमेश–नारीभ्यां, ३ ठं लाङ्गलीश–खेचरीभ्यां, ३ डं[11] दारुकेश–मञ्जरीभ्यां, ३ ढं अर्द्धनारीश–रूपिणीभ्यां, ३ णं उमाकान्तेश–वीरिणीभ्यां, ३ तं[12] आषाढीशकाकोदरीभ्यां, ३ थं दण्डीश[13]–पूतनाभ्यां, ३ दं अत्रीश[14]–भद्रकालीभ्यां, ३ धं[15] मीनेश–योगिनीभ्यां, ३ नं मेषेश–शिखिनीभ्यां, ३ पं लोहितेश–गर्जिनीभ्यां, ३ फं शिखीश[16]–कालरात्रिभ्याँ, ३ बं छगलण्डेश–कुट्टिनीभ्यां, ३ भं द्विरण्डेशकपर्द्दिनीभ्यां, ३ मं महाकालेश-वज्रमुखीभ्यां, ३ यं वालीश-जयाभ्यां[17], ३ रं भुजङ्गेश–सुमुखेश्वरीभ्यां, ३ लं[18] पिनाकीश–रेवतीभ्यां, ३ वं खड्गीश–माधवीभ्यां, ३ शं वकेश–वारुणीभ्यां, ३ षं श्वेतेश–वायवीभ्यां, ३ सं भृग्वीश–रक्षोवधारिणीभ्यां[19], ३ हं नकुलीश[20]–सहजाभ्यां, ३ लं शिवेश–लक्ष्मीभ्यां, ३ क्षं संवर्त्तकेश[21]-व्यापिनीभ्यां नम" इति मातृका न्यासस्थानेषु[22] न्यसेदिति **रुद्रन्यासः ।**

**अथ ग्रहन्यासः**—हृदि—रक्तवर्णं सूर्यं ध्यात्वा "ह्रीं स्त्रीं हूं अं १६ सूर्याय नमः, भ्रूमध्ये – शुक्लवर्णं सोमं ध्यात्वा ' ३ यं रं लं वं सोमाय नमः", नेत्रत्रये–लोहितं मङ्गलं ध्यात्वा "३ कं ५ मङ्गलाय नमः', हृदये –श्यामवर्णं बुधं ध्यात्वा "३ चं ५ बुधायनमः", कण्ठकूपे—पीतवर्णं गुरुं ध्यात्वा "३ टँ ५ वृहस्प-

१. ख. क्षं । २. ख. मारभूतीश । ३. ख.—दीर्घतिकाभ्या । ४. क. भिण्डीशो० । ख. सिटीशौ० । ५. ख. सयोंजातश । ६. ख. यं शिवोर्त्तभे–। ७. ख. ङं । ८. ख. गं। ९. '–' ख. सं भजेशलम्बोदराभ्यां । १०. ख. जं। ११. ख. उं। १२. ख. हं । १३. ख. दण्डाश । १४. ख. अत्राश– । १५. ख. प । १६. ख. शिखाश० । १७ ख. वालीशयाभ्यां । १८. ख. नाऽस्ति । १९. ख. भृग्वीरसोबधारिणीभ्यां । २०. ख. वकुलीश । २१. ख. सर्वतेश । २२. ख. न्याससामेषु ।

तये०", गलदेशे—पाण्डुरवर्णं[1] भार्गवं ध्यात्वा "३ तं ५ शुक्राय नमः', नाभौ—नीलवर्णं शनिं ध्यात्वा "३ पं ५ शनैश्चराय०", वक्त्रे—धूम्रवर्णं राहुं ध्यात्वा "३ शं षं सं हं राहवे०", गुह्ये—धूम्रं केतुं ध्यात्वा "३ लं क्षं केतवे नमः" इति[2] [ ग्रहन्यासः ] ।।

**अथ लोकपालन्यासः**— ललाटे—"ह्रीं स्त्रीं हूं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं इन्द्राय नमः, दक्षललाटे—३ आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अं अः अग्नये नमः', दक्षकर्णे—३ कं ५ यमाय०, दक्षकर्णपृष्ठे—३ चं ५ निर्ऋतये०, चोरकूपे—३ टं ५ वरुणाय; वामकर्णपृष्ठे—३ तं ५ वायवे; वामकर्णे—३ पं० ५ कुबेराय०, वामललाटे ३ यं रं लं वं ईशानाय०, ब्रह्मरन्ध्रे—३ शं षं सं हं प्रजापतये०, पादाधः—३ लं क्षं अनन्ताय नमः": ।। **इति लोकपालन्यासः** ।।

**अथ शिवशक्तिन्यासः**—मूलाधारे—'ह्रीँ स्त्रीँ[3] हूं[4] वं शं षं सं डाकिनीसहिताय ब्रह्मणे नमः, स्वाधिष्ठाने—३ वं[5] भं मं यं रं लं राकिनीसहिताय विष्णवे नमः,[6] मणिपूरके[7]—३ डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीसहिताय रुद्राय०, अनाहते—कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनीसहिताय ईश्वराय०, विशुद्धौ—३ अं १६ शाकिनीसहिताय सदाशिवाय० भ्रूमध्ये ३ हँ[8] क्षं हाकिनीसहिताय परमशिवाय नमः" [।। **इति शिवशक्तिन्यासः** ।।]

**अथ तारादिन्यासः**—शिरसि—"ह्रीँ स्त्रीं हूँ अं आं कं ५ तारायै०,[9] ललाटे—३ इं ईं चं ५ उग्रायै०, भ्रूमध्ये—३ उं ऊं टं ५ महोग्रायै०, कण्ठकूपे—[10] ३ ऋं ॠं तं ५ वज्रायै०, [हृदि—लृं लॄं पं ५ महाकाल्यै०,][11] नाभौ—३ एं ऐं[12] यं रं लं. वं सरस्वत्यै०, लिङ्गे—३ ओं औं शं षं सं हं[13] कामेश्वर्य्यै०, आधारे-[14] ३ अं अः ❀लं क्षं❀ चामुण्डायै नमः ।। **इति तारादिन्यासः पञ्चमः** ।।[15]

---

१. ख. पोंडर० । २. ख. नाऽस्ति । ३. ख. स्वीं । ४. ख. हं । ५. ख. त्वं । ६. ख. नाऽस्ति । ७. ख. मणिपूरे । ८. क. ख. पुस्तकद्वये 'लं' इति पाठोऽयमसङ्गतः 'आज्ञाचक्रे तु देवेशि हक्षवर्णसमन्वित' मिति सूत्रे निदर्शनात् (सम्पा०)। ९. ख. तारायै नमः । १०. ख. कण्ठदेशे । ११. ख. [—] अस्यांऽशस्याऽभावः । १२. ख. यैं । १३. ख. नाऽस्ति । १४. मूलाधारे । ❀—❀ ख. हं लं क्षं । १५. क. अंशस्याऽस्याऽभावः ।

**अथ पीठन्यासः**[1]-मूलाधारे— "ह्रीं स्त्रीं हूं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूपपीठाय नमः, हृदि–३ आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अः जालन्धरपीठाय०, ललाटे–३ कं ५ पूर्णगिरिपीठाय नमः, ललाटोर्द्ध्वे–३ चं ५ उड्डियाणपीठाय नमः, भ्रूमध्ये–३ टं ५ वाराणसीपीठाय०, नेत्रयोः–३ तं ५ अवन्ती-पीठाय०, मुखवृत्ते–३ पं ५ मायापुरीपीठाय[2]०, कण्ठे–३ यं रं लं वं मधुपुरीपीठाय[3]०, नाभिदेशे–३ शं षं सं हं० अयोध्यापीठाय नमः, कट्यां–३ लं क्षं काञ्चीपीठाय नमः," ।। **इति पीठन्यासः** ।।

[4][ इति ताराषोढान्यासं विधाय ॐकारपुटितमूलेन त्रिर्व्यापकन्न्यसेत् ।

**अथ वाग्रूपिणीकरषडङ्गन्यासः**— "ॐ ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः, ह्रीं ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा, स्त्रीं हूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्, हूं ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुं, ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, समस्तम्मूलमुक्त्वा ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्" ।

---

१. ख. पुस्तकेऽसङ्गतोऽयम्पीठन्यासः— "ह्रीँ स्त्रीँ हूँ अं इं उं एं ओं कामरूपपीठाय नमः मूलाधारे, ह्रीँ स्त्रीँ आं इं ऐं ओं जालन्धरपीठाय नमः भ्रूमध्ये, ह्रीँ स्त्रीँ हूँ तं ५ अवतिपीठाय नमः मुखे, ह्रीँ स्वीं ह्रूं यं रं लं वं मधुपुरीपीठाय नमः कण्ठे, ह्रीँ स्त्रीं हूँ शं षं सं अयोध्यापीठाय नमः नाभौ, ह्रीँ स्त्रीं हूं हूं लं क्षं कांचीपुरीपीठाय नमः कट्योः । इति पीठन्यासः षष्ठः । २. क. पुस्तके 'पार्वतीपीठाय' इत्यंशो निर्दशितः, किन्तूपर्य्युद्धृतोंशः सूत्रसम्मतत्वादेवोल्लिखितोऽस्माभिः(सम्पा०) । ३. क. उक्तप्रकारेणैवायमसङ्गतः 'मायापुरीपीठाय' इत्यंशः । (संपादक) ४. [—] कोष्ठान्तर्गतांशस्थाने ख. पुस्तके क्रमव्युत्क्रमेणोल्लिखितोऽयन्निम्नांशोऽत्राविकलमुद्ध्रियते— ततः प्रणवपुटितेन मनुना व्यापकन्यासं सप्तधा कृत्वा षडङ्गन्यासं कुर्यात्–अस्य श्रीमहोग्रतारामहाविद्यायाः अक्षोभ्य-ऋषिः, बृहतीछन्दः, महोग्रतारा देवता, हूँ बीजं, फट् शक्तिः, ह्रीँ स्त्रीँ कीलकं, चतुर्वर्गफलसिद्ध्यर्थे विनियोगः । शिरसि, मुखे, हृदये, गुह्ये, पादयोः, सर्वाङ्गे-ऋष्यादीन्विन्यस्य करादिषु न्यसेत् । यथा––

"ह्रीँ अखिलवाग्रूपिण्यै नमः अङ्गुष्ठयोः, ह्रीँ अखण्डवाग्रूपिण्यै नमः तर्जन्योः, ह्रूँ ब्रह्मवाग्रूपिण्यै नमः मध्यमयोः, ह्रेँ विष्णुवाग्रूपिण्यै नमः अनामिकयोः, ह्रीँ रुद्रवाग्रूपिण्यै नमः कनिष्ठयोः, ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्, ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुं, ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः, ह्रीँ अखण्डवाग्रूपिण्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्" इति षडङ्गन्यासः ।

**अथ ऋष्यादिकरषडङ्गन्यास**.— तत्र शिरसि– "अक्षोभ्याय ऋषये नमः, अथवा ब्रह्मणे ऋषये नमः; मुखे-वृहती छन्दसे०, हृदये–श्रीमदुग्रतारायै दैवतायै०, गुह्ये–हूं बीजाय०, पादयोः–फट् शक्तये०, नाभौ–ह्रीं स्त्रीं कीलकाय नम" इति विन्यस्य मम कवित्वादिसिद्धये विनियोग इति विनियोगमुक्त्वा–

"ॐ एकजटायै हृदयाय नमः, ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा, स्त्रीं वज्रोदके शिखायै वषट्, हूं उग्रजटे कवचाय हुं. फट् महाप्रतिसरे नेत्राय वौषट्, मूलं पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट्" इति मन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् । अथ वा "ह्रां ह्रीं" इत्यादिना करषडङ्ग न्यासं कुर्य्यात् ।

---

अथवा "ह्राँ एकजटायै हृत्, ह्रीँ तारिण्यै शिरः, ह्रूँ वज्रोदके शिखा, ह्रैँ उग्रजटे कवचम्, ह्रौँ महापरिसरे नेत्रत्रयम्, ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्रम् । एवं वा करषडङ्गानि विन्यस्य, व्यापकन्यासं मूलेन कृत्वा, विशेषार्घ्यस्थापनं कुर्य्यात् । यथा—

स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रं विधाय, आधारशक्तिं सम्पूज्य, तत्र साधारं कपालादिपात्रं निधाय, तत्र मूलविद्यया विमलजलमापूर्य्य, विल्वपत्ररक्तचन्दनवज्रपुष्पदूर्वाक्षतानि निक्षिप्य, पूर्ववत्संस्थाप्य, सम्पूज्याऽर्घस्याऽग्नीशासुरवायुमध्ये दिक्षु च हृदयादिषडङ्गानि सम्पूज्य, मत्स्यमुद्रयाऽऽछाद्य, तत्र मूलविद्यां दशधा प्रजप्य, तेजोमयेन जप्ते(ले)न सर्वं विद्यामयं विभाव्य, तज्जलेनाऽऽत्मानं पूजोपकरणान्यभ्युक्ष्येति विशेषार्घं संस्थाप्य, पूर्ववद्देवतां ध्यात्वा, करकलितदूर्वाक्षतरक्तचन्दन वज्रपुष्पापराजितापुष्पादिमिलित-दिनकरकिरणारुणकुसुमाञ्जलौ मातृकायन्त्रं विभाव्य, हृदयान्मूलमन्त्रतेजोमयीं शुद्धज्ञानचैतन्यरूपां षट्चक्रभेदनक्रमेण सहस्रदलकमलकर्णिकान्तपरशिवं प्रापयित्वा, क्रियासमभिव्याहारेण तदमृताम्बुधौ विश्राम्य, तद्लोलीभूतामानन्दमयीं ताम्प्रव[ह]न्नासापुटादानीय, कल्पितमूर्त्तावावाहयेत्—

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।<br>
यावत्त्वाम्पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥

श्री नीलसरस्वतीदेवि श्रीमदुग्रतारे श्रीमदेकजटे वा इहाऽऽवह २, इहतिष्ठ २, इह सन्निधेहि २, इह सन्निधानं कुरु २, अङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य, "आँ ह्रीं

ततो यथोक्तरूपां देवीं ध्यात्वा, मानसोपचारैः सम्पूज्य, प्राग्वदर्ध्यादिपात्रस्थापनाद्यात्मपूजान्तेऽर्घोदकेन पूजाचक्रं प्रोक्ष्य, पीठस्य चतुर्दिक्षु—"ॐ ह्रीं गं गणेशाय नमः, ॐ ह्रीं वां वटुकाय०, ॐह्री क्षां क्षेत्रपालाय०, ॐह्रीं, यां योगिनीभ्यो नमः" इति सम्पूज्य,

ततः मण्डूकादिसुधासमुद्रान्ते नवरत्नमयद्वीपाय०, स्वर्णपर्वताय०, श्मशानाय०, कल्पद्रुमाय०, नानामणिभ्यो नमः, नानालङ्कारेभ्यः०, मुनिभ्यो०, देवेभ्यः०, शिवाभ्यः०, शवेभ्यः०, मुण्डेभ्यः०, चिताङ्गारास्थिभ्यः० ।

ततो विचित्ररत्नभूमिकादिपरतत्वान्तं सम्पूज्याऽष्टदलकेशरेषु— "महालक्ष्म्यै०, सरस्वत्यै०, रत्यै०, प्रीत्यै०, कीर्त्यै०, शान्त्यै०, तुष्टयै०, पुष्टयै नम" इति सम्पूज्याऽथ वा "महाकाल्यै, रुद्राण्यै०, उग्रायै०, भीमायै०, घोरायै०, भ्रामर्य्यै०, महारात्र्यै०, भैरव्यै०" इति सम्पूज्य,

मध्ये—"ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम" इति सम्पूज्य, ततो मूर्त्तिकल्पनान्ते देवीमावाह्य, स्थापनादिमुद्रादर्शनान्ते मूलमुच्चार्य्य—"ॐ श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहे"ति मन्त्रेणाऽऽसनादिपुष्पोपचारान्तं कृत्वा, प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे दक्षिणोत्तरायतं रेखात्रयं विभाव्य गुरुपङ्क्तित्रयं पूजयेत् । यथा—

ऊर्द्ध्वरेखायां—"ऊर्द्ध्वकेशानन्दनाथ ॐ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट्

---

क्रों स्वाहा" श्रीमदुग्रतारायाः प्राणाः इह प्राणाः, आँ ह्रीँ क्रोँ श्रीमदुग्रतारायाः जीव इह स्थितः, आँ ह्रीँ क्रोँ श्रीमदुग्रतारायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुश्श्रोत्रघ्राणप्राणा इहाऽऽगत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा" इति लेलिहामुद्रया प्राणप्रतिष्ठाँ कृत्वा, पाद्याद्युपचारैर्विहितैरर्च्चयेत् । यथा—

मूलमुच्चार्य्य श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हूँ फट् स्वाहा इदम्पाद्यं श्री नीलसरस्वतीदेवतायै नमः' । एवं सर्वत्रोपचारेष्वयं मन्त्रः प्रयोक्तव्यः । एवमर्घ्यं स्वाहा, आचमनं स्वधा, स्नानं नमः, आचमनीयं स्वधा, गन्धो नमः, पुष्पाणि वौषट्, धूपं दीपनैवेद्याचमनताम्बूलान्तं पूर्ववन्निवेद्य, योनिमुद्रया प्रणम्य, 'श्रीदेवि आज्ञापय भवत्याः परिवारान् पूजयामि' इति प्राथ्याऽऽवरणपूजां कुर्यात् ।

स्वाहा०, व्योमकेशानन्दनाथ ॐ वज्रपुष्पं०, नीलकण्ठानन्दनाथ ॐ वज्रपुष्पं०, वृषध्वजानन्दनाथ ॐ वज्रपुष्पं०, तदधोरेखायां–वसिष्ठानन्दनाथ ॐ वज्रपु०, कूर्मानन्दनाथ ॐ वज्र०, मीनानन्दनाथ ॐ वज्र०, महेश्वरानन्दनाथ वज्र०, हरिनाथानन्दनाथ वज्र०, तदधोरेखायां–तारावत्यम्ब ॐ वज्र पु०, भानुमत्यम्ब–ॐ वज्र०, जयाम्ब ॐ वज्र०, विद्याम्ब ॐ वज्र०, महोदर्य्यम्ब ॐ वज्र०, सुखानन्दनाथ वज्र०, परानन्दनाथ ॐ वज्र०, पारिजातानन्दनाथ ॐ वज्र०, कुलेश्वरानन्दनाथ ॐ व०, विरूपाक्षानन्दनाथ ॐ वज्र०, फेरव्यम्ब ॐ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा", ततः स्वगुरुत्रयं पूजयेत् ।

ततो देव्याः शिरसि – "ॐ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहे"त्यक्षोभ्यनागं त्रिः पूज्य. देव्यग्रादि-चतुर्द्दलेषु–"रोचन वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा०, शङ्ख-

---

अग्नीशासुरवायुमध्ये दिक्षु च "ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः" इत्यादिमन्त्रैः षडङ्गमभ्यर्च्य, यन्त्रस्य वायव्यादीशपर्य्यन्तं गुरुपंक्तिं पूजयेद्यथा –

"ॐ ऊर्द्ध्वकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा, ॐ व्योमकेशानन्दनाथवज्र०, ॐ नीलकण्ठानन्दनाथ वज्र, ॐ वृषध्वजानन्दनाथवज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा" एते दिव्यौघाः ।

"ॐ वसिष्ठानन्दनाथ वज्र, ॐ कूर्मानन्दनाथ वज्र, ॐमीननाथ वज्र०, ॐ महेश्वरानन्दनाथ वज्र०, ॐ हरिनाथानन्दनाथ वज्र०" एते सिद्धौघाः ।

"ॐ तारावत्यम्ब वज्र०, ॐ भानुमत्यम्ब०. ॐ जयाम्ब व०, ॐ महोदर्य्यम्ब० वज्र०, ॐसुखानन्दनाथ वज्र०, ॐपरानन्दनाथ वज्र०, ॐपारिजातानन्दनाथ वज्र०, ॐ कुलेश्वरानन्दनाथ वज्र०. ॐ फेरव्यम्ब वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा" इति मानवौघाः ।

अथ देव्याः मौलौ– "ॐ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा" एवं गुरो वज्र, परमगुरो वज्र, ॐ परापरगुरो वज्र, ॐ परमीष्टीगुरो वज्रमित्यादि ।

ततः पूर्वादिपत्रेषु— "ॐ महाकालि वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा, ॐ रुद्राणि वज्र०, ॐ उग्रे वज्र०; ॐ घोरे वज्र०, ॐ भौमे वज्र०, ॐ भ्रामरि वज्र, ॐ म(अ)होरात्रि वज्र०, ॐ भैरवि वज्र०," इति पूर्वादिक्रमेण पूजयेत् ।

पाण्डुर ॐ वज्र०, पद्मनाभ ॐ व०, असिताङ्ग ॐ व०, कोणदलेषु—लामकि ॐ व०, मामकि ॐ व०, पाण्डुरे ॐ व०, तारे ॐ व०, देव्यग्रादिद्वारेषु—पद्मान्तक व०, यमान्तक ॐ व०, विघ्नान्तक ॐ व०, नरकान्तक ॐ व० इति सम्पूज्य।

ततः "इन्द्र वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहे" त्यादिना लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपदीपान्ते "ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति हुं स्वाहे"ति नैवेद्यं निवेद्य, नित्यहोमादि पूजाशेषं प्राग्वत् कृत्वा, शेषं समापयेदिति।

प्रत्यहम्भोजनकाले—"ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृह्ण २ गृह्णापय २ मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यां द्विधाकृत्य त्रुट छिन्धि छिन्धि ह्रीं स्वाहे" ति मन्त्रेणाऽन्नादिभिर्बलिं दद्यादिति।][4]

**फेत्कारिणीतन्त्रे**—

महाचीनक्रमान्नत्वा ताराम्भुवनतारिणीम्।
तत्साधनविधिं वक्ष्ये मम सार्वज्ञकारणम्॥ २१५॥

सर्व एव शुभः कालो नाऽशुभो विद्यते क्वचित्।
न च दोषो दिवा रात्री सन्ध्यायाञ्च महानिशि॥ २१६॥

वस्त्रावस्थानदेहस्य देहस्पर्शादिवारिणाम्।
शुद्धिं न चर्चयेदत्र निर्विकल्पम्मनश्चरेत्॥ २१७॥

---

ततः पूर्वादिदिक्पत्राग्रेषु वामावर्त्तक्रमेण— 'ॐ वैरोचन वज्र०, ॐ शङ्खपाण्डुर वज्र०, ॐ पद्मनाभ वज्र०, ॐ असिताभ वज्र०," ततो वामावर्त्तेऽग्न्यादिविदिग्दले—ॐ नामक वज्र०, ॐ मामक, ॐ पाण्डर वज्र, ॐ तारक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा," ततः प्रागादिद्वारेषु—"पद्मान्तक वज्र, ममान्तक, विघ्नान्तक, नरकान्तक वज्र" इति सम्पूज्य, "इन्द्र वज्रपुण्पं प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा" इत्यादिना लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, पुनर्गन्धादिधूपदीपान्ते "ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति हुँ स्वाहे" ति नैवेद्यं निवेद्य, नित्यहोमादि पूजादिशेषं प्राग्वत्कृत्वा शेषं समापयेदिति।

प्रत्यहम्भोजनकाले "ॐ ह्रीँ एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्णापय २ मम सर्वशान्तिं कुरु २ परविद्यां द्विधाय कृत्य त्रुट २ छिन्धि मम सर्वजगद्वशमानय ह्रीँ स्वाहा" इति मन्त्रेणाऽन्नादिभिर्बलिं दद्यादिति।

नाऽत्र सिद्धाद्यपेक्षाऽस्ति न वा मित्रादिदूषणम् ।
य एनं चिन्तयेन्मन्त्रं सर्वकामसमृद्धिदम् ।। २१८ ।।

गद्यपद्यमयी वाणी सभायान्तस्य जायते ।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निःप्रभा मताः ।। २१९ ।।

राजानोऽपि च दासत्वम्भजन्ते किम्परे जनाः ।
सर्वदा पूजयेद्देवीमस्नातः कृतभोजनः ।। २२० ।।

महानिश्यशुचौ देशे बलिस्मन्त्रेण दापयेत् ।
स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात् पूजयेच्च ताः ।। २२१ ।।

जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्याऽत्र[1] जपञ्चरेत् ।
स्त्रियङ्गच्छन् स्पृशन् पश्यन् यत्र तत्राऽपि चूडके ।। २२२ ।।

भक्ष्यन्ताम्बूलमन्यच्च भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि ।
मांसमत्स्यदधिक्षौद्रपयःशाकाद्यमैक्षवम् ।। २२३ ।।

भक्ताद्यशेषभक्ष्याणि[2] दत्वा भक्ष्यञ्जपञ्चरेत् ।
दिक्कालनियमो[3] नाऽस्ति स्थित्यादिनियमो न च ।। २२४ ।।

जपे न कालनियमो नाऽर्चादिषु बलिष्वपि ।
स्वेच्छानियम एवाऽत्र महामन्त्रस्य साधने ।। २२५ ।।

नाऽधर्मो[4] जायते तेन किञ्च[5] धर्मो महान् भवेत् ।
स्वेच्छाचारोऽत्र[6] गदितः प्रचरेद्धृष्टमानसः ।। २२६ ।।

कृतार्थम्मन्यमानश्च सन्तुष्टनिजमानसः ।
सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्च्चयेद्दलैः[7] ।। २२७ ।।

[8]वैल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसीवर्ज्जितैः शुभैः ।
एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे ।। २२८ ।।

१. ख. विश्याऽत्र । २. ख. भक्त्याद्य० । ३. क. दिक्पाल० । ४. ख. नाऽधमो । ५. ख. किञ्चिद् । ६. ख. स्वेच्छाचारीत्र । ७. ख. ० श्वेत्लौहित्य० । ८. ख. विल्वै० ।

तत्रस्थः साधयेद्योगी ताराम्भुवनतारिणीम् ।
अवाप्य मन्त्रं विधिवत् परितोष्य तथा गुरुम् ।। २२६ ।।

गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैर्यथाविभवविस्तरैः ।
मृदुचूडकमासीनोऽप्यन्येषु कोमलेषु च ।। २३० ।।

विष्टरेषु समाश्रित्य साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ।
प्रत्यालीढपदां घोराम्मुण्डमालाविभूषिताम् ।। २३१ ।।

खर्वां लम्बोदरीम्भीमां व्याघ्रचर्मावृताङ्कटौ ।
नवयौवनसम्पूर्णाम्पञ्चमुद्राविभूषिताम् ।। २३२ ।।

पञ्चमुद्रा[1] जटाग्रन्थिरचनाविशेष उक्तः ।

चतुर्भुजां ललज्जिह्वाम्भीमरूपां वरप्रदाम् ।
खड्गकर्त्रिधरान्दक्षे कपालोत्पलधारिणीम्[2] ।। २३३ ।।
पिङ्गोग्रैकजटान्ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ।
अक्षोभ्यैरुग्रनागैरिति वचनात् अक्षोभ्यनामानो नागाः[3] ।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ।। २३४ ।।

प्रज्वलत्पितृभूमध्यगतान्दंष्ट्रावराननाम् ।
सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलङ्कारविभूषिताम् ।। २३५ ।।

विश्वव्यापकतोयान्तःश्वेतपद्मान्तरस्थिताम् ।
भावनावशसम्पन्नो[4] भवेद्योगी महाकविः ।। २३६ ।।

जडोऽपि यदि वा मूर्खो भावनावशतत्परः ।
लभतेऽभिमतां वाणीम्मन्त्रस्य लक्षजापतः ।। २३७ ।।

एष लक्षजपोऽस्य मन्त्रस्य पुरश्चरणम् । एकलिङ्गे श्मशाने वेत्यादिस्थान-विशेषाभिधानात् । एष कृतयुगजपः, कलौ चतुर्गुणजपः कार्यः ।

**तन्त्रचूडामणौ** तु विशेषः—
सिद्धमन्त्रतया नाऽत्र युगसेवापरिश्रमः ।
नक्तभोजी हविष्याशी जपेद्दिवां दिवा शुचिः ।। २३८ ।।

१. ख. ० मुद्रेति । २. ख. कपोलो ० । ३. ख. नामाः । ४. ख. ० संशक्तो ।

तत्कृत्वा सिद्धिमाप्नोति जपेच्च मनसा स्थिरम् ।
जपकाले च सततम्भार्यां यत्नेन योजयेत् ।। २३६ ।।

वर्ज्जयेद्विष्णुकल्पञ्च वर्ज्जयेत्तुलसीदलम् ।
वर्ज्जयेन्मालतीपुष्पं वर्ज्जयेदन्यपूजनम् ।। २४० ।।

हस्तप्रक्षालनं शौचमाचान्तं तत्तदाचरेत् ।

गान्धर्वतन्त्रे— एवं कृत्वा हविष्याशी[1] जपेल्लक्षमनन्यधीः ।
ततः प्रयोगं सर्वेषां वश्यादिकञ्च कारयेत् ।। २४१ ।।

वीरतन्त्रे—स्वेच्छाचारपरो[2] मन्त्री पुरश्चरणसिद्धये ।
रहस्यमालामादाय लक्षमेकञ्जपेत्सदा ।। २४२ ।।

रुद्रयामले—

नरगजाश्वमुण्डैर्वा[3] व्याघ्रशूलादिपातितैः ।
विरच्य विधिवन्मालां लक्षमेकञ्जपेत्कृती ।। २४३ ।।

ताराप्रदीपे—

स्फाटिकीं वैद्रुमी[4] चैव हैमीं राजतमौक्तिकीम् ।
महाशङ्खमयीम्मालामथ वा मृण्मयीम्पुनः ।। २४४ ।।
पद्माक्षीं जीवपुत्राक्षीं रौद्राक्षीं वा प्रकल्पयेत् ।

अन्यत्राऽपि—

महाशङ्खेऽप्यशक्तश्चेत् स्फाटिक्या मालया जपेत् ।। २४५ ।।

सिद्धसारस्वते—

एवञ्जपम्पुरा कृत्वा दशांशमसितोत्पलैः ।
आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री तद्दशांशेन तर्प्पणम् ।। २४६ ।।

एवं जपं पुरा कृत्वा तद्दशांशं शि(सि)तोत्पलैः ।[5]
आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री वैल्वैर्वा जुहुयात्ततः ।। २४७ ।।

---

१. ख. हविष्यासी । २. ख. ० परा । ३. ० मुण्डै । ४. ख. वैद्रमीं । ५. ख. पद्यार्द्धं नाऽस्ति ।

कालागुरुद्रवोपेतैर्निर्मलैर्गन्धवारिभिः ।
तर्पयेच्च परान्देवीन्तत्प्रकार इहोच्यते ।। २४८ ।।

जले चाऽऽवाह्य विधिवत्पाद्याद्यैरुदकात्मकैः ।
सन्तर्प्य विधिवद्देवीं परिवारान् सकृत् सकृत् ।। २४९ ।।

देवीबुद्ध्या स्वमात्मानं सम्पूज्य साधकोत्तमः ।
तारिणीं सिञ्चयामीति जलम्मूर्द्धिन विनिःक्षिपेत् ।। २५० ।।

कुल्लुकां यो न जानाति महामन्त्रञ्जपेन्नरः ।
पञ्चत्वञ्जायते तस्य त्वथ वा वातुलो भवेत् ।। २५१ ।।

**मायातन्त्रे—**

कुल्लुकान्धारयेच्छीर्षे लिखित्वा भूर्ज्जपत्रके ।
राजद्वारे सभायाञ्च विजयी भवति ध्रुवम् ।। २५२ ।।

**तारार्णवे—**

काली कूर्च्चं वधूर्माया फडन्ता कुल्लुका मता ।

काली क्रीमिति बीजम् ।

**मत्स्यसूक्ते—**

न जानाति च यो मूढः कुल्लुकान्तारिणीञ्जपेत् ।
यावज्जीवन्तु जप्तव्यन्न सिद्ध्यति कदाचन ।। २५३ ।।

**फेत्कारिणीतन्त्रे—**

मधुना त्रिदिनादर्वागर्भकजिह्वायां[1] न्यसेदमुम्मन्त्री ।
यदि पठति पण्डितोऽसौ न पठति चेन्नाऽस्य मूर्खता भवति ।। २५४ ।।

[ **मत्स्यसूक्ते—**

पितुर्भ्राता लिखेन्मन्त्रम्मातुर्भ्राता तथा पुनः ।
पिता वा विलिखेन्मन्त्रन्नान्य एव कदाचन ।। २५५ ।।

जातमात्रस्य दिवसत्रितयादधः ।

---

१. क० जिह्वयां ।

जिह्वायां विलिखेन्मन्त्रं मध्वाज्याभ्यां शलाकया ।
सुवर्णकृतया मन्त्री यद्वा धवलदूर्वया ।। २५६ ।।

गतेऽष्टमेऽब्दे बालोऽसौ जायते कविराड् ध्रुवम् ।
तथा परैरजेयोऽपि भूपसङ्घैर्द्धनार्चितः ।। २५७ ।।][1]

न कदाऽपि भवेन्मूर्खो मनुमेकं वेत्ति यो मनुजः[2] ।
अचिरादीहितसिद्धिर्महाशङ्खस्य मालया ।। २५८ ।।

यस्मिन्मन्त्रे य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः ।
कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गो वा मोक्ष एव च ।। २५९ ।।

भ्रान्तिस्तत्र न कर्त्तव्या सिद्धिहानिः[3] प्रजायते ।
शुद्धचित्तस्य नित्यादिसिद्धिः स्यादपवर्गजा ।। २६० ।।

उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशन्नयेत् ।
राजानं जपमात्रेण बलिना सकलञ्जगत् ।। २६१ ।।

सिद्धमन्त्रो यदा मन्त्री वलिशस्याऽपि मूर्द्धनि ।
करन्दत्वा दिशत्याशु सोऽपि श्लोकं करोत्युत ।। २६२ ।।

नीलसारस्वते मन्त्रे कविताविघ्नकारणम् ।
अनास्थैव[4] द्वितीयन्तु न किञ्चिद्विघ्नकारणम् ।। २६३ ।।

क्षिप्रप्रसादा[5] भजतां सदा नीलसरस्वती[6] ।
विशेषतः कलियुगे मत्प्रसाद्भविष्यति ।। २६४ ।।

अल्पज्ञमपि विद्वांसो मानयिष्यन्ति वाग्मिनः ।
वाचस्पतिरिवाश्चर्य्यम्मन्त्रस्य ज्ञानमात्रतः ।। २६५ ।।

मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण चाऽनुभावद्वयम्भवेत् ।
तात्कालिकी च कविता परैरनाभभाविता[7] ।। २६६ ।।

---

१. [—] कोष्ठस्थोंऽशोऽयं ख. पुस्तके विशेषः । २. ख. मनुः ।
३. ख. सिद्धिः हानिः । ४. ख. अनास्थैब । ५. ख. क्षिप्रप्रसादो । ६. ख. नीलसरस्वतीम् । ७. ख. ० रनुभिभाविता ।

पुष्करिण्या जलेऽगाधे यष्टिकाष्ठन्तमोग्रहे ।
दन्तेनाऽऽनीय तत्तूर्णङ्कीलकन्तेन कारयेत् ।। २६७ ।।

तेन क्षौद्रघृताक्तेन पद्मिनीपात्रमात्रके ।
लिखेद्वर्णावलीमध्ये[1] मूलमन्त्र सुसिद्धिदम् ।। २६८ ।।

तत्कुण्डे चतुरस्रे तु निःक्षिप्य जुहुयादपि ।
सहस्रं क्षीरनीराक्तम्पद्मानां लोहितत्विषाम् ।। २६९ ।।

पूर्वोक्तबलिमन्त्रेण[2] यथापूर्वम्बलिंहरेत् ।

बलिमन्त्रेण पद्मे महापद्मे इति मन्त्रेण ।

एवं यः कुरुते कर्म स स्याद्द्रुतकविर्ध्रुवम् ।। २७० ।।

अर्द्धरात्रे ततो नित्यम्बलिन्दद्याच्चतुःपथे ।

ॐ ह्रीं एकजटे इत्यादि पूर्वमन्त्रेण ।

अथवा मधुलाजाभ्यां जिह्वायाम्बालकस्य तु ।। २७१ ।।

नालच्छेदाद्यथापूर्वं लिखेद्धेमशलाकया ।
मूलमन्त्रं लिखेन्मन्त्री यस्योष्ठे श्वेतदूर्वया ।। २७२ ।।

वाक्योच्चारणतो बालो वाग्मी द्रुतकविर्भवेत् ।
शताभिजप्तमात्रेण रोचनातिलकन्नरः ।। २७३ ।।

कृत्वा पश्यति यं[3] मन्त्री[4] तं कुर्याद्दासवद्वशे ।
श्मशानाङ्गारमादाय मङ्गले वासरे निशि ।। २७४ ।।

कृष्णवस्त्रेण संवेष्टय बध्नीयाद्रक्ततन्तुना ।
शताभिमन्त्रितन्तञ्च प्रक्षिपेद्वैरिमन्दिरे ।। २७५ ।।

सप्ताहाभ्यान्तरे तेषामुच्चाटनमिदम्महत् ।
नरास्थि निखनेन्मन्त्री[5] क्षारयुक्तहरिद्रया ।। २७६ ।।

---

१. ख. ० वर्णवली ० ।   २. ख. पूर्वोक्तयथा ।   ३. ख. नाऽस्ति ।   ४. ख. यंत्री ।
५. ख. ० न्मन्त्रं ।

सहस्रम्परिजप्यैतन्निशायाँ रविवासरे ।
क्षिप्यते यस्य गेहे तु मृत्युस्तस्य त्रिमासतः ।। २७७ ।।

क्षेत्रेषु शस्यहानिः[1] स्याज्जवहानिस्तुरङ्गमे ।
योनियुग्मं लिखेद्भूर्ज्जे लाक्षारसेन मन्त्रवित् ।। २७८ ।।

तन्मध्ये साध्यसंयुक्तम्मूलमन्त्रं लिखेत्ततः ।
स्वरान्ह्रस्वगतांश्चाऽपि कादीन् वर्णान्यथाक्रमात् ।। २७९ ।।

अष्टवर्गसमायुक्तम्मन्त्रमेनम्प्रयोजयेत् ।
वेष्टितम्पीतवस्त्रेण जतुना परिवेष्टयेत् ।। २८० ।।

बध्नीयात् पट्टवस्त्रेण शिशूनाङ्कण्ठभूषणम् ।
स्त्रीणां वामकरे बद्धमयेषान्दक्षिणे भुजे ।। २८१ ।।

वन्ध्याऽपि लभते पुत्रन्निर्धनो धनवान् भवेत्[2] ।
इयं रक्षा पुरा बद्धा ज्ञानार्थं गौतमादिभिः ।। २८२ ।।

कीर्त्यर्थम्पार्थिवैरन्यैः सङ्ग्रामजयकाङ्क्षिभिः ।

**अस्याऽर्थः**—भूर्ज्जपत्रे षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं मूलमन्त्रं विलिख्य, ह्रस्वस्वरैस्तदावेष्टय, बहिरष्टदलेषु कवर्गाद्यष्टवर्गान् लिखेदेतदुक्तफलदं[3] भवति । **इति नीलसरस्वत्याः प्रपञ्चोऽयन्निर्दशितः ।**

ब्रह्मणा पूर्वमस्मभ्यम्माया तुभ्यन्नगात्मजे ।। २८३ ।।

इति निगदितमेतद्गौतमाद्यैर्यदुक्तं,
सकलजनहितार्थम्मन्त्रवर्णस्वरूपम्
यदधिगमवशात्स्याद्वाञ्छिताशेषसिद्धि-
र्द्रुततरकवितायै यत्नमन्यत्त्यजेच्च ।। २८४ ।।

**फेत्कारिण्याम्**—

कालिकामन्त्रतन्त्रोक्तप्रयोगान्समुपाचरेत् ।
अत्रोक्तं सम्यक् तत्राऽपि प्रयोगं समुपाचरेत् ।। २८५ ।।

---

१. ख. सस्यहानिः । २. ख. धनमाप्नुयात् । ३. ख. विलिख्य धारयेदेतदुक्तफलदं ।

**। अथाऽस्याः स्तुतिः ।।**

ॐघोररूपे महारावे सर्वशत्रुभयङ्करि ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि त्राहि, मां शरणागतम् ।। २८६ ।।

सुरासुरार्च्चिते देवि देवगन्धर्वसेविते ।
जाड्यपापहरे देवि त्राहि मां शरणागतम् ।। २८७ ।।

जटाजूटसमायुक्ते लोलजिह्वानुकारिणि ।
द्रुतबुद्धिकरे देवि त्राहि मां शरणागतम् ।। २८८ ।।

सौम्यरूपे क्रोधरूपे चण्डरूपे नमोऽस्तु ते ।
सृष्टिरूपे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम् ।। २८९ ।।

जडानाञ्जडतां हिंसि भक्तानाम्भक्तवत्सले[1] ।
मूकतां हर मे देवि त्राहि मां शरणागतम् ।। २९० ।।

बुद्धिन्देहि यशो देहि कवित्वन्देवि देहि मे ।
मूढत्वं हर मे देवि[2] त्राहि मां शरणागतम् ।। २९१ ।।

हूं हूङ्कारेण मे[3] देवि बलिहोमप्रिये नमः ।
उग्रतारे[4] नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम् ।। २९२ ।।

इन्द्रादिदिविषद्वृन्दवन्दिते[5] करुणामये ।
तारे ताराधिनाथास्ये त्राहि मां शरणागतम् ।। २९३ ।।

अष्टम्याञ्च चतुर्द्दश्यान्नवम्यां यः पठेन्नरः ।
षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ।। २९४ ।।

मोक्षार्थी लभते मोक्षन्धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकाम् ।। २९५ ।।
य इदम्पठति स्तोत्रं शुभन्तस्य च न संशयः ।

**इति श्रीरुद्रयामले शरणागतन्नाम तारास्त्रोत्रम् ।।**

---

१. ख. ० भभूवत्सले । २. ख. हरमेवि । ३. ख. हूं हूंकार नमो । ४. ख. उश्रूतारे ।
५. ० द्वन्दवन्दिते ।

॥ अथ कवचम् ॥

पुरा कैलाशशिखरे ताराम्पप्रच्छ शङ्करः ।[1]
गुप्तभावेन देवेशि कथयस्व तु सादरम् ॥ २९६ ॥

केनोपायेन सहसा शरीरं सुदृढम्भवेत् ।
कथं वा सिद्धिरतुला तव मन्त्रविदाम्प्रिये ॥ २९७ ॥

श्रीतारोवाच –

अस्ति गुह्यतरं वाक्यं निःसृतं वक्त्रपङ्कजात् ।
इदं रहस्यम्परमङ्कथयामि तव प्रभो ॥ २९८ ॥

श्रूयताम्परमं गुह्यङ्कवचम्मन्मुखोदितम् ।
मधुकैटभयोर्युद्धे कथितम्पद्मजन्मनि ॥ २९९ ॥

तत्प्रभावस्तु देवेश लयं विष्णुर्न गच्छति ।
भवत्सुकथितम्पूर्वन्तत्र स्मरसि मायया ॥ ३०० ॥

उद्धृतं सारभूतानाङ्कवचं योगिनीमते ।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यन्न प्रकाश्यङ्कदाचन ॥ ३०१ ॥

शपथङ्कुरु मे देव यदि स्नेहोऽस्ति साम्प्रतम् ।
श्रूयतां सावधानेन लिखितं सारसङ्ग्रहम् ॥ ३०२ ॥

सत्यं सत्यम्पुनः सत्यं सत्यं सत्यम्पुनः पुनः ।
कवचेन विना देव यो मामर्च्चयते नरः ॥ ३०३ ॥

तमश्नाति महोग्रा सा योगिनीभिः सुनिश्चितम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानाम्बीजं रक्षतु मूलकम् ॥ ३०४ ॥

तदूर्ध्वं शक्तिबीजन्तु लिङ्गं रक्षतु यत्नतः ।
मणिपूरं सदा पातु वधूबीजमशेषतः ॥ ३०५ ॥

---

१. अस्याग्रे ख. पुस्तके कवचमनुल्लिख्य केवलन्निम्नांश एवोद्धृतः—"इत्यादि । श्रीदेव्युवाच तारापूजा श्रुता नाथ विद्याश्च सकलास्ततः । इत्यादि । त्रैलोक्यमोहनं च ।"

अनाहतं वर्म्मबीजम्पातु मे सर्वसर्वतः ।
अस्त्रादि सर्वदा पातु विशुद्धं कण्ठभूषणम् ।। ३०६ ।।

शेषन्तु पातु मान्नित्यमाज्ञास्थानं द्विपत्रकम् ।
शीर्षम्पातु तथा तारा जटा पातु सदाननम् ।। ३०७

नीलसरस्वती पातु हृदयम्मे सदा पुनः ।
मूलाधारं सदा पातु महानीलसरस्वती ।। ३०८ ।।

अक्षोभ्यः पातु सर्वाङ्गम्बृहती पातु भालकम् ।
उग्रतारा देवता मे गह्वरम्पातु सर्वदा ।। ३०९ ।।

बाहू मे सर्वदा पातु मायाबीजमशेषतः ।
स्तनद्वयं सदा पातु कूर्च्चं विघ्नविदारकम् ।। ३१० ।।

रसनां सर्वदा पातु लक्ष्मीदेवी च शाश्वती ।
रसनाग्रं सदा पातु सरस्वती प्रयत्नतः ।। ३११ ।।

रतिः पातु रदान्नित्यं प्रीतिर्मे वदनन्तथा ।
कीर्त्तिः कीर्त्ति सदा पातु शान्तिः शान्ति सदाऽवतु ।। ३१२ ।।

पुष्टिर्मे पातु पुष्टिञ्च तुष्टिस्तुष्टिं सदाऽवतु ।
वैरोचनः पातु शङ्खं शङ्खपूर्वस्तथैव च ।। ३१३ ।।

पाण्डुरो मे सदा गण्डम्पातु नित्यञ्च सर्वशः ।
पद्मनाभः सदा पातु नाभिम्मे दशपत्रिकाम् ।। ३१४ ।।

असिताङ्गः पातु लिङ्गं ना(ला)मकः पातु कर्णकौ ।
मामको मे तथा हस्तौ ग्रीवकम्पातु पाण्डरः ।। ३१५ ।।

तारा मे पातु हृदयम्पृष्ठम्पद्मान्तको मम ।
पार्श्वद्वन्द्वं सदा पातु पद्मान्तकयमान्तकौ ।। ३१६ ।।

चरणौ पातु मे नित्यं विघ्नान्तनरकान्तकौ ।
तारा मे पातु सततमष्टाङ्गम्परमेश्वरी ।। ३१७ ।।

इदन्तु कवचन्देव कथितम्मन्मुखच्युतम् ।
प्रमादाद्यदि देवेश यत्र कुत्र प्रकाश्यते ।। ३१८ ।।

योगिनीभिस्तदाऽहन्तु स्वयञ्च वधकारिणी ।
यदि भाग्यवशाल्लब्धङ् केनचित् साधकेन वै ।। ३१९ ।।

तदा तस्य महासिद्धिर्वपुष्पाञ्जायते ध्रुवम् ।
निषिद्धेभ्यो न दातव्यन्न प्रकाश्यङ् कदाचन ।। ३२० ।।

यदि दद्यान्निषिद्धेभ्यस्तदाऽहं वधकारिणी ।
दद्याच्छान्ताय शुद्धाय मन्त्रतन्त्रयुताय च ।। ३२१ ।।

गुरुभक्तियुतायैव तदा सिद्धिरनुत्तमा ।
रहस्यङ्कथितन्दिव्यमनन्तफलदायकम् ।। ३२२ ।।
गोपितव्यन्त्वया देव न प्रकाश्यं कदाचन ।

**।। इति श्रीयोगिनीतन्त्रे ताराकवचं समाप्तम् ।।**

**।। अथाऽस्या[1] विद्याया मन्त्रभेदाः[2] ।।**

मत्स्यसूक्ते–प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत् ।
गगनं शेषसंयुक्त[3] विन्दुनादविभूषितम् ।। ३२३ ।।

कूर्च्चबीजञ्च हृदयन्तारायै च समुद्धरेत् ।
सकलन्दुस्तरं[4] तारय तारयेति तथा पुनः ।। ३२४ ।।

तारयुग्मं[5] वह्निजाया मन्त्रोऽयं सुरपादपः ।
ध्यानपूजादिकं सर्वम्पूर्ववत् समुपाचरेत् ।। ३२५ ।।

चतुर्लक्षजपेनाऽस्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ।
गगनं हकारः । शेष आकारस्तेन हाँ इति । तथा–
प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य तारायै तारिणी तथा ।।। ३२६ ।।

ङेऽन्ता स्वाहेति मन्त्रोऽयन्नवाक्षर इतीरितः ।
ध्यानं वक्ष्ये शृणु प्राज्ञ सर्वपापनिवारकम् ।। ३२७ ।।

---

१. ख. अथाऽस्य । २. ख. मन्त्रभेदः । ३. ख. शेयसंयुक्तं । ४. ख. सकृत्यदु० ।
५. ख. विद्यायाः तारयुग्मं ।

यस्यास्तोयेषु सर्वत्र बाधा भवति न स्मृतेः ।
श्यामवर्णान्त्रिनयनान्द्विभुजां[1] वरपङ्कजे ॥ ३२८ ॥

दधानां बहुवर्णाभिर्बहुरूपाभिरावृताम् ।
शक्तिभिः स्मेरवदनां, स्वच्छमौक्तिकभूषणाम्[2] ॥ ३२९ ॥

रक्तपादुकयोर्न्यस्तपदाम्बुजयुगां स्मरेत् ।
वर्णलक्षञ्जपेन्मन्त्रन्नियमेन यथाविधि ॥ ३३० ॥

दशांशं जुहुयान्मन्त्री घृताक्तै रक्तपुष्पकैः ।
इति सिद्धा महाविद्या दद्यात् सर्वमनोरथान् ॥ ३३१ ॥

मातृकार्णवे—

वाग्भवङ्कुलबीजञ्च तारकं वाग्भवत्तथा ।
हृल्लेखा चाऽस्त्रमन्त्रान्ते[3] वह्निजायावधिर्मनुः ॥ ३३२ ॥

अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो वेदमातुरनुत्तमः ।
पञ्चाङ्गान्यस्य मन्त्रस्य पञ्चबीजैः प्रकल्पयेत् ॥ ३३३ ॥

अस्त्रं शेषाक्षरैर्न्यस्य[4] कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
ध्यानपूजादिकं सर्वम्पूर्ववच्च समाचरेत् ॥ ३३४ ॥

कुलबीजं भुवनेश्वरीबीजम् ।

मत्स्यसूक्ते— प्रणवम्पूर्वमुद्धृत्य पद्ममुखि तथैव च ।
महापद्मे पदम्ब्रूयात्[5] पद्मावतिपदन्तः ॥ ३३५ ॥

माये[6] स्वाहेति मन्त्रोऽयम्प्रोक्तः सप्तदशाक्षरः ।
पूजा पूर्ववदुद्दिष्टाऽर्द्धरात्रे[7]च चतुष्पथे ॥ ३३६ ॥
जपमस्याश्चरेद्यस्तु स स्याद्द्रुतकविस्तथा[8] ।

स्वच्छन्दसङ्ग्रहे[9]—

शिवबीजम्महेशानि शक्तिबीजन्ततः परम् ।
बिन्दुसर्गसमायुक्तं वेदाद्यं[10] तदधः[11] क्रमात् ॥ ३३७ ॥

---

१. क. ०न्द्विवुजां । २. ख. स्ववमौ० । ३. ख. चात्रम० । ४. ख. शेषान्तरे ।
५. ख. कृष्णात् । ६. ख. पाये । ७. ख. ० ह्यर्द्धरावे । ८. ख. स्याद्रत० ।
९. ख. स्ववंद० । १०. ख. वेदायं । ११. ख. तद्बुधः ।

त्रिमायावर्मबीजेन हंसबीजमुदीरितम् ।
एषा[1] नवाक्षरी विद्या कथिता भुवि दुर्लभा ।। ३३८ ।।

आज्ञासिद्धिमवप्नोति त्रैलोक्यवशमानयेत् ।
वशमायान्ति सहसा वेदविद्याश्चतुर्द्दश ।। ३३९ ।।

हंसतारा महाविद्या तव स्नेहात् प्रकाशिता ।
कवितामावहेत् पुंसां धनार्थी धनमाप्नुयात् ।। ३४० ।।
मोक्षार्थी लभते मोक्षन्नात्र कार्या विचारणा ।

।। अथाऽस्याः पुरश्चरणभेदाः ।।

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम् ।। ३४१ ।।

पञ्चगव्येन मिलितञ्चन्दनाद्यैर्विशेषतः ।
निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धमानतः कानने वने ।। ३४२ ।।

तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानतः ।
एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः ।। ३४३ ।।

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
शवमानीय तद्द्वारे तेनैव परिखन्य च ।। ३४४ ।।

तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम् ।
तेनैव सर्वसिद्धीशो नाऽत्र कार्या विचारणा ।। ३४५ ।।

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
अष्टम्याञ्च[2] चतुर्द्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।। ३४६ ।।

सूर्योदयं समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम् ।
तावज्जपेन्निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।। ३४७ ।।

अथ वेति— शरत्काले चतुर्थ्यादिनवम्यन्तं विशेषतः ।
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम् ।। ३४८ ।।

---

१. ख. एवा । २. ख. अष्टम्यां ।

जपेदेकाकी विजने केवलन्तिमिरालये ।
[अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् ।। ३४९ ।।

**तारार्णवे—**

चतुर्थ्यादिनवम्यन्तं शुक्ले रात्रौ तु कानने ।
जपेदेकाकी तिमिरे दिनशः षट्सहस्रकम् ।। ३५० ।।][1]
अष्टम्यां च नवम्यां च सोपवासः[2] स्थिरः सदा ।

**मुण्डमालातन्त्रे—**

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णाष्टमी भवेत् ।
सहस्रसङ्ख्यञ्जप्त्वा तु पुरश्चरणमिष्यते ।। ३५१ ।।

कृष्णाञ्चतुर्द्दशीम्प्राप्य नवम्यन्तम्महोत्सवे ।
अष्टमीनवमीरात्रौ पूजाङ् कुर्याद्विचक्षणः ।। ३५२ ।।

दशम्याम्पारणङ्कुर्य्यान्मत्स्यमांसादिसंयुतम्[3] ।
षट्सहस्रं जपेन्नित्यन्देव्या भक्तिपरायणः ।। ३५३ ।।

चतुर्द्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्द्दशी ।
तावज्जपेन्महेशानि पुरश्चरणमिष्यते ।। ३५४ ।।

**तारणीतन्त्रे—ईश्वर उवाच—**

श्रूयतां शैलतनये जाड्यनाशकरी परा ।
चतुर्वर्गफला विद्या मन्त्रसिद्धिप्रदायिका ।। ३५५ ।।

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं वामाक्षिपरिभूषितम्[4] ।
नादबिन्दुसमायुक्तं वसुसिद्धिप्रदायकम् ।। ३५६ ।।

पुनश्चतुर्मुखन्देवि लकारेण विभूषितम् ।
स्वरेणैव चतुर्थेन चन्द्रखण्डेन च प्रिये ।। ३५७ ।।

---

१. ख. [—] कोष्ठस्थांशस्य स्थाने निम्नांशोऽयं ख. पुस्तके—दिनशः षट्सहस्रन्तु प्रजपेत्साधकोत्तमः । २. सोसोपवासः । ३. ख. ० मांसादिभिः प्रिये । ४. ख. नामाक्षि० ।

लाञ्छितं वै महाबीजञ्चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
ततः कृष्णपदं चोक्त्वा ततो देविपदं स्मृतम् ।। ३५८ ।।

ह्लीङ्कारञ्च ततो दद्यात् खपूर्वमुद्धरेत्ततः ।
ईकारेण च रेफेण सकारेण विभूषितम् ।। ३५९ ।।

ततो वाग्भवमुच्चार्य्य मन्त्रमेनं समुद्धरेत् ।
नवाक्षरो मनुर्द्देवि तारिण्याः समुदीरितः ।। ३६० ।।

इयमेव महाविद्या स्वर्गे मर्त्त्ये च दुर्ल्लभा ।
अष्टसिद्धिप्रदा देवि चतुर्वर्गफलप्रदा ।। ३६१ ।।

अनया सदृशी सिद्धिर्न[1] भूता न भविष्यति ।
यो विद्यां लभते देवि[2] किमु तस्य न जायते[3] ।। ३६२ ।।

अचिराल्लभते वाणीं गद्यपद्यप्रमोदिनीम्[4] ।
ज्ञानमात्रेण विद्यायाः क्षिप्रं द्रुतकविर्भवेत् ।। ३६३ ।।

विना छन्दो विना[5] शिक्षां विनाऽभ्यासेन पार्वति ।
विना ज्ञानं विना यत्नं विनाऽऽलापं कवेरपि[6] ।। ३६४ ।।

जिह्वायाञ्जायते तस्य कवित्वं रसनिर्मितम्[7] ।
गुरुङ्गणपतिन्नत्वा भूतशुद्धिं समाचरेत् ।। ३६५ ।।

स्वाधिष्ठाने स्थितं[8] बीजं वाग्भवं सर्वसिद्धिदम् ।
तत्तद्भूताग्निबलिभिः शरीरन्दह्यते बुधैः ।। ३६६ ।।

तद्भस्मपुञ्जमुत्सार्य्य ह्रीं समुद्भववायुना ।
ललाटे कामबीजन्तु तदुद्भूतामृतेन च ।। ३६७ ।।

तदस्थि प्लावितं[9] कृत्वा[10] दृढीभूतम्भवेत्ततः ।
निर्लेपन्निर्गुणं शुद्धमात्मानन्देवतामयम् ।। ३६८ ।।

सर्वपापविनिर्मुक्तन्देहं सञ्चिन्त्य[11] साधयेत् ।
शरीरस्य[12] विशोध्येन[13] प्राणायामञ्चरेत्ततः ।। ३६९ ।।

१. ख. विद्या न । २. ख. नाऽस्ति । ३. ख. जा ··· । ४. ख. गद्यमोदिनीम् । ५. ख. पिना । ६. ख. कवेदपि । ७. ख. रसनिर्मि । ८. ख. सितं । ९ ख. सावितं । १०. ख. तत्वा । ११. ख. सञ्चित्य । १२. ख. शरीरस्थ । १३. ख. विशोधन ।

आद्येन[1] मूलबीजेन प्राणायामत्रयञ्चरेत् ।
मन्त्रन्यासन्ततो देवि श्रूयतां सर्वसिद्धिदम् ।। ३७० ।।

शक्तिरस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहती छन्द[2] ईरितम् ।
तारिणी देवता प्रोक्ता ह्रीङ्कारम्बीजमुच्यते ।। ३७१ ।।

वाग्भवं शक्तिरित्युक्तमिति न्यासादिकञ्चरेत् ।
बीजेन तु[3] षडङ्गेषु षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।। ३७२ ।।

धर्मादि विन्यसेन्मन्त्री ततो धर्मादि विन्यसेत् ।
उपर्य्युपरि मध्ये च क्रमेणैतान्न्यसेत्ततः ।। ३७३ ।।

कल्पवृक्षं समुच्चार्य्य मणिपीठन्ततः स्मरेत् ।
शवमुच्चारयित्वा[4] तु तत्रोपरि कपालकम् ।। ३७४ ।।

चतुर्द्दिक्षु न्यसेद्देवि चिन्तामणिसमन्वितम् ।
हृत्पद्माष्टदले तत्र चाऽष्टशक्तीर्न्यसेत्ततः[5] ।। ३७५ ।।

दुर्गा जया ततो मेधा विजया सुप्रभा मता ।
काली गौरी शिवा चैव इत्यष्टौ शक्तयः स्मृताः ।। ३७६ ।।

तत एव स्वदेहेषु पञ्चयोनिन्न्यसेद्बुधः ।
केशान्ते दक्षिणे भागे योनिबीजं न्यसेत्ततः ।। ३७७ ।।

केशान्ते वामभागे च योनिविश्वान्ततो न्यसेत् ।
नासामूलेन[6] देवेशि योनिरूपां[7] विभागतः ।। ३७८ ।।

योनिकामां योनिहारान्नेत्रयोः सव्यवामयोः ।
योनिरूपान्न्यसेदोष्ठे[8] साधकः सर्वसिद्धये ।। ३७९ ।।

मुखकोणेषु[9] देवेशि वामदक्षविभेदतः ।
चिबुके च महादेवि विन्यसेत् साधकोत्तमः ।। ३८० ।।

योनिच्छायां[10] योनिकामां योनिरूपान्ततः परम् ।
बाहुमूले तथा वामे हृदि चैव वरानने ।। ३८१ ।।

---

१. ख. आपेन । २. ख. तुद । ३. ख. नाऽस्ति । ४. क. उच्चरयित्वा । ख. उच्चायित्वा । ५. ख. न्यततः । ६. ख. वासामूलेन । ७. ख. योनिरूपं । ८. ख. न्यसेदोषे । ९. ख. कोणे च । १०. ख. ० छाया ।

योनिचित्रां योनिनित्यां[1] योनिरूपां न्यसेत्ततः ।[2]
स्तनयोर्नाभिदेशेषु योनिस्थानं सदा स्मरेत्[3] ।। ३८२ ।।

योनिसिद्धां योनिबुद्धां[4] योनिरूपान्न्यसेत्ततः ।
एताः स्मृताश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताश्च विचक्षणैः ।। ३८३ ।।

देहपीठे ततो देवीन्ध्यायेत् सुस्थिरमानसः ।
कृष्णाँल्लम्बोदरीम्भीमान्नागकुण्डलशोभिताम् ।। ३८४ ।।

रक्तमुखीं ललज्जिह्वां रक्ताम्बरधराङ्कटौ ।
पीनोन्नतस्तनयुगां महानागेन वेष्टिताम् ।। ३८५ ।।

शवस्योपरि देवेशि तस्योपरि कपालके ।
नासाग्रध्याननिरताम्महाघोरां[5] वरप्रदाम् ।। ३८६ ।।

चतुर्भुजान्दीर्घकेशीं[6] दक्षिणस्योर्द्ध्वबाहुना ।
बिभ्रतीं नलिनीमेकां वामोर्द्ध्वे[7] पानपात्रकम् ।। ३८७ ।।

वराभयकरां[8] देवीमधस्ताद्दक्षवामयोः[9] ।
पिबन्तीं रौधरीं धाराम्पानपात्रे सदा शिवे ।। ३८८ ।।

सर्वसिद्धिप्रदान्देवीं[10] नित्यां गिरिनिवासिनीम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तां[11] नागयज्ञोपवीतिनीम्[12] ।। ३८९ ।।

दीर्घनासां दीर्घजङ्घां दीर्घाङ्गीं दीर्घजिह्विकाम् ।
चन्द्रसूर्याग्निभेदेन[13] लोचनत्रयसंयुताम् ।। ३९० ।।

शत्रुनाशकरीन्देवीम्महाभीमां वरप्रदाम् ।
व्याघ्रचर्मशिरोबद्धां जगत्त्रयविभाविनीम् ।। ३९१ ।।

साधकानां सुखङ्कर्त्रीं[14] सर्वलोकभयङ्करीम् ।
एवम्भूताम्महादेवीं तारिणीम्प्रणमाम्यहम् ।। ३९२ ।।

---

१. ख. योनित्यां । २. ख. न्यसेद्बुधः । ३. ख. न्यसेत् । ४. ख. योनिरूपां । ५. ख. महायोगां । ६. ख. दीर्घकेशां । ७. ख. वामोर्ध्वं । ८. ख, ०धरां । ९. ख. ० धामयोः । १०. ० देवो । ११. ख. ० संक्रान्तां । १२. ख. ० वीतिनाम् । १३. ख. ० सूर्यातिभेदेन । १४. ख. सुखकरीं ।

यन्त्रन्निर्माय देवेशि स्थापयेद्यन्त्रमध्यतः ।
रक्तं मलयजेनाऽपि वसुपत्रं लिखेत्ततः ।। ३९३ ।।

तद्वाह्येप्यष्टपत्राणि[1] लिखेत् साधकसत्तमः ।
वह्निमण्डलयुग्मञ्च यन्त्रमध्ये लिखेत्ततः ।। ३९४ ।।

पूर्वदले च देवेशि आद्यबीजं लिखेत्ततः ।
द्वितीयं दक्षिणे पत्रे तृतीयम्पश्चिमे दले ।। ३९५ ।।

उत्तरे च दले देवि फट्कारञ्च लिखेत्ततः ।
चतुर्द्वारसमायुक्तमष्टपत्रसमन्वितम् ।। ३९६ ।।

तत्र पूर्वोक्तमार्गेण पीठं सम्पूज्य पूर्ववत् ।
ध्यात्वाऽऽवाह्य[2] महेशानीं यजेद्वै मन्त्रमुच्चरन् ।। ३९७ ।।

'षडङ्गेनैव देवेशि'[3] पूजयित्वा तु पार्वतीम् ।
क्षेत्रपालम्भैरवञ्च गणनाथं सहाम्बिकम्[4] ।। ३९८ ।।

एतच्चतुष्टयन्देवि यजेद्द्वारचतुष्टये[5] ।
पूर्वाद्यष्टदले[6] देवि एताः सम्पूज्य साधकः ।। ३९९ ।।

अणिमाऽनङ्गमदना लघिमा मदनातुरा ।
अनङ्गकुसुमा देवि तथाऽष्टकर्णिका तथा ।। ४०० ।।

कपालिका च देवेशि ततोऽष्टयोगिनीस्तथा[7] ।
तथा षोडशपत्रेषु पूजयेत् परिचारिकाः ।। ४०१ ।।

सुखदाम्मोक्षदान्तत्र भक्तिदाम्भोगदान्तथा ।
मुक्तिदां सिद्धिदाञ्चैव कामदान्धनदामपि ।। ४०२ ।।

मोक्षदां शिवदाञ्चाऽपि[8] वरदामात्मदान्तथा ।
योगदाम्भाग्यदान्देवि भक्तिदां[9] सर्वसिद्धिदाम् ।। ४०३ ।।

---

१. ख. तद्वाह्येऽष्टपत्राणि । २. ० वाह्य । ३. '—' ख. षडङ्गेनेवेशि । ४. ख. सहान्वितम् । ५. ख. ० द्वारचतुष्टयम् । ६. ख. पूर्वाद्यदले । ७. ख. ० योगिनी तथा । ८. ख. ० ञ्चैव । ९ ख. भुक्तिदां ।

अणिमाद्यष्टसिद्धिञ्च पूर्वद्वारे यजेत्ततः ।
वह्नेर्दशकला देवि द्वारे च दक्षिणे तथा ।। ४०४ ।।

पाश्चात्यद्वारे देवेशि कलाश्चन्द्रस्य पूजयेत् ।
उत्तरे च तथा देवि रवेरपि कलास्ततः ।। ४०५ ।।

षडङ्गेन यजेद्देवीन्ततश्चाऽस्त्राणि पूजयेत् ।
एतास्तु देवदेवेशि चतुर्थ्यन्ताः समीरिताः ।। ४०६ ।।

नमोन्ताश्च महादेवि प्रोक्ताः सकलसिद्धिदाः ।
पुष्पैर्बहुविधैश्चैव रक्तचन्दनचर्च्चितैः ।। ४०७ ।।

रक्तपुष्पैर्महादेवि नानागन्धसमन्वितैः ।
विल्वपत्रैस्तथा गन्धैर्जवापुष्पैर्विशेषतः[1] ।। ४०८ ।।

श्वेतपुष्पपरागैश्च[2] करवीरैर्मरूवकैः ।
विल्वपुष्पैः कुन्दपुष्पैर्लवङ्गैश्च सुशोभनैः ।। ४०९ ।।

अपराजितायाः पुष्पैश्च चम्पकैः केसरैस्तथा ।
एभिः पुष्पैर्महादेवि पूजयेन्नित्यतारिणीम् ।। ४१० ।।

मालतीवकपुष्पैश्च सदूर्वैश्चार्च्चयेत्तथा ।
कदम्बैः श्वेतकुसुमैर्वकुलैः काञ्चनैस्तथा ।। ४११ ।।

एवं सम्पूजयित्वा तु एभिर्मन्त्रैर्महेश्वरि ।

प्रयोगः सुगमः । तथा—

लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः ।। ४१२ ।।

**इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजगोस्वामि-**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ पञ्चाशत्तमस्तरङ्गः ।। ५० ।।**

—०—

१. ख. गन्धैर्वापुष्पै० । २. ख. श्वेतरक्तपरागैश्च ।

[ एकपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः ]

।। अथ चमत्कारकारिण्यो विद्याः प्रदर्श्यन्ते ।।

तत्र श्रीतन्त्रराजे—

अथ षोडशनित्यानां विद्या कौतुकिनामिह ।
चमत्कारकरीर्विद्या[1] वदामि तव सुन्दरि ।। १ ।।

सिद्धसारस्वतम्मृत्युञ्जयन्त्रिपुटगारुडे ।
अश्वारूढामन्नपूर्णान्नवात्मानन्नवात्मकम् ।। २ ।।

ततश्च देवीहृदयं गौरीविद्याञ्च लक्षदाम् ।
निष्कत्रयप्रदामिष्टवादिनीञ्च मतङ्गिनीम् ।। ३ ।।

राज्यलक्ष्मीम्महालक्ष्मीं सिद्धलक्ष्मीमनन्तरम् ।
शुचिः स्वेन ततो मायावियद्दाहस्ववह्नियुक्[2] ।। ४ ।।

हंसहृत्तेजसां योगाद् द्युतिदाहचरस्वकैः ।
पुनश्च हंसहृद्धंसद्वयदाहवनैरपि ।। ५ ।।
समायैरुदिता विद्या पञ्चार्णाऽमृतविग्रहा ।

शुचिः ऐकारः, स्वेन विन्दुना युक्तस्तेन ऐं, माया भुवनेशोबीजम्, वियत् शकारः, दाहः रेफः, स्वः विन्दुः, वह्निः ईकारः, तेन श्रीं इति । हंसः हकारः, हृत् सकारः, तेजः खकारः, द्युतिः फकारः, दाहः रेफः, चर एकारः, स्वः विन्दुः, तेन हसखफ्रें इति कूटं सिद्धम् । हंसः हकारः, हृत् सकारः हंसद्वयं हकारद्वयम्, दाहो रेफः, वनः औकारः, माया विसर्गः, तेन हसहह्रौः[3] ।

तथा— पटलेऽस्मिन्ननुक्तानामङ्गानि निजविद्यया ।
मायया[4] वा विदध्याच्च ध्याने चाद्यानुदीरिते ।। ६ ।।

पयोव्रतः पञ्चलक्षञ्जपित्वा कुलसुन्दरीम् ।
ध्यात्वा सिद्धमनुः पश्चाद्विदध्याद्विनियोगकम् ।। ७ ।।

अनया मन्त्रितैरद्भिः शोधयित्वा तु कन्यकाम् ।
पाययित्वा च ताम्ब्रूयात् श्लोकयेति समाहितः ।। ८ ।।

१. ख. ० करीविद्या । २. क. विहद्दाह० । ३. क. हसहरौः । ४. क. मामया ।

गङ्गाप्रवाहवत्तस्याः भारती निःसरेन्मुखात् ।
आचष्टे च त्रिकालस्थानर्थान् पृष्टान्महाद्भुतान्[1] ।। ९ ।।

पटलेऽस्मिन्नित्यादिश्लोकस्याऽयमर्थः— निजविद्यया स्वस्वविद्यया षोढा विभिन्नेनाऽऽद्यबीजेन[2] गुरूक्तक्रमेणेत्यर्थः । मायया हृल्लेखया, दीर्घस्वरषट्कभिन्नयेत्यर्थः[3] । आद्या अमृतविग्रहा, एतदुक्तम्भवति—अनुदीरितध्याने सति तत्तद्देवतानां ध्यानममृतेश्वरीध्यानमेवेति । कुलसुन्दरीं ध्यात्वेत्यस्याऽयमर्थः—पञ्चदशे पटले प्रोक्तकुलसुन्दरीविग्रहां ध्यायेदिति ।

तथा— भूः स्वेन स्याद्धरा स्वेता ज्या हृन्मायासमन्वितम् ।
पालयेति द्विरुक्त्वा तत् प्रतिलोममुदीरयेत् ।। १० ।।

विद्या मृत्युञ्जयाख्याऽसौ दीर्घस्वरयुजा[4] हृदा ।
विधायाऽङ्गानि नियतं स्वात्मानञ्चिन्तयेदिति ।। ११ ।।

आद्यमध्यतृतीयार्णनालपत्रसुकर्णिके[5] ।
समासीनं सुधार्द्राङ्गं[6] मौलाविन्दुकलान्वितम् ।। १२ ।।

सुसितं हरिणाक्षस्रक्चिन्तापाशकरं हरम् ।
स्वैक्येन भावयन्नित्यञ्जपन् दीर्घायुरेधते ।। १३ ।।

भूः ओकारः,स्वेन विन्दुना, तेन ओमिति[7] । ज्या जकारः, स्वः विन्दुः [धरा उ][8]स्ताभ्यामिता प्राप्ता, तेन जुमिति । हृत्सकारः, माया विसर्गस्तेन सः इति । पालयेति द्विरुक्त्वा पालय पालयेत्यर्थः । तत्[9] उद्धृताक्षरत्रयं प्रतिलोमं सः जुं ओं इति । अत्र प्रयोगेषु तु[10] प्रथमं प्रणवाद्यक्षरत्रयमुच्चार्य्याऽनन्तरं पालनीयस्याख्यां द्वितीयान्तामुच्चार्य्य, ततः पालय-युगं, ततो व्युत्क्रमेणाक्षरत्रयं चोच्चरेदिति सम्प्रदायार्थः । दीर्घस्वरयुजा हृदा-दीर्घस्वरषट्कभिन्नेन सकारेण सबिन्दुनेति सम्प्रदायः । हरिणेत्यायुधचतुष्टयं[11] वामोर्द्ध्वक दिदि-तदधःकरान्तम्प्रादक्षिण्यक्रमेण । चिन्ता व्याख्यानमुद्रा । तथा—

---

१. क. पृष्ठा महाद्भुतान् । २. ख. विनिभिन्ने ० । ३. ख. ० स्वरषट्भि० । ४. ख. ०स्वरयुता । ५. ०ख. मालपत्र० । ६. क. सुधाद्राङ्गं । ७. क. आमिति । ८. क. ख. पुस्तकद्वयेऽपि कोष्ठगांशस्याऽभावः । ९. क. उत् । १०. ख. नाऽस्ति । ११. हिरणे० ।

तृतीयममृताख्याया द्वितीयन्तदनन्तरम् ।
रसावह्निस्वसहितः प्राणस्तैस्त्रिपुटोदिता ।। १४ ।।

अमृताख्यायाः सिद्धसारस्वतविद्यायास्तृतीयं श्रीबीजमित्यर्थः । तस्या एव द्वितीयं ह्रीमिति । प्राणः ककारः, रसा लकारः, वह्निरीकारः स्वं विन्दुस्तेन क्लीमिति ।

तथा— त्रिभिर्द्विरुक्तै रङ्गानि कृत्वा नित्यान्तु नित्यशः ।
जपेदह्नो मुखे चैक्यम्भावयँस्त्रिसहस्रकम् ।। १५ ।।

तेन विद्यां श्रियं कान्तिं कवितां गानकौशलम् ।
नरनारीनृपाणाञ्च वाल्लभ्यँल्लभते नरः ।। १६ ।।

अरुणामरुणाब्जस्थाम्प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ।
पुष्पेष्वङ्कुशपद्मानि पद्मपाशेक्षुबाणकान् ।। १७ ।।

दधानाम्बाहुभिः षड्भिर्माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ।
शृङ्गारभूषापिटक-चामरादर्शपादुकाः ।। १८ ।।

दधानाः परितस्तस्या गायन्त्यश्चापि शक्तयः ।
परिवार्य्य स्थितास्ताभिर्वृतान्तां स्वैक्यतः स्मरेत् ।। १९ ।।

अत्रायुधक्रमस्तु दक्षिणाधरहस्तादि-वामाधोहस्तान्त[1] प्रादक्षिण्येन बोध्यः ।

तथा— भूः स्वेन हंसदाहाभ्यां मरुद्वह्नी[2] क्ष्मया युतौ ।
वैरिमोहीत्यक्षराणाञ्चतुष्कं गरुडेति च ।। २० ।।

जवी सवह्निग्रासश्च हंस-हिंसद्वयन्तथा ।
स्वाहान्तो गदितो मन्त्रस्तार्क्ष्यस्याऽखिलरक्षितुः ।। २१ ।।

त्रयोविंशार्णको मन्त्र उपरागेषु साधितः ।
फणिदष्टान्[3] पिशाचाद्यैः क्लिष्टानन्याँश्च रोगिणः ।। २२ ।।

विषार्त्तान् त्रिविधैरुग्रैर्मूर्छितान्श्च[4] गतासुकान् ।
पाययेच्छतजप्तेन तोयेनाऽभ्युक्षणात् क्षणात् ।। २३ ।।

१. ख. ०वामाधर० । २. क. मरुद्वह्नि । ३. ख. फणिदष्टान् । ४. ख. त्रिविधै रुद्रै० ।

कुर्वतस्ताण्डवं शम्भोरग्रे मेरुसमं विभुम् ।
आहितानि[1] च खादन्तं स्मरंस्ताक्ष्यंमनुञ्जपेत् ।। २४ ।।

यक्षाक्षबीजतैलेनाऽप्याशु नस्येन[2] नाशयेत् ।
गरलम्भुजगानाञ्च समस्तानामयत्नतः ।। २५ ।।

भूः ओकारः, स्वेन विन्दुना सहितेति शेषः । एतत् काकाक्षिवत् पूर्वापरयोरन्वेति । हंसदाहाभ्यां हकाररेफाभ्यां अन्योन्यं सुश्लिष्टाभ्याम् । मरुद्वह्नी[3] क्ष्मया[4] युतौ क्ष्मया सहितौ, मरुद्वह्नी[5] मरुच्च वह्निश्च क्ष्मा चेत्यर्थः, ते च आकार–ईकार-ऊकाराः' । तेन मरुदादिवर्णाः पृथक् पृथगिति सम्प्रदायस्तेन 'ह्लां ह्लीं ह्लूं' इत्यक्षरत्रयं निष्पन्नम् । वैरिमोहीत्यक्षराणां चतुष्कं-'वैरिमोहि' इत्यक्षराणां चतुष्टयस्य स्वरूपग्रहणम् । गरुडेति च गरुड इति स्वरूपम् । जवी पकारः, सवह्निग्रासः वह्निना सहितो ग्रासः, वह्निरितीकारस्य संज्ञाऽप्याग्नेयत्वसाम्यात् सम्प्रदायाच्च इकारः, ग्रास इति क्षकारः, इकारसहितः क्षकार इत्यर्थः । हंस-हिंसद्वयं हंस इत्यक्षरद्वयम्, 'हिंस प्र (इ) त्यक्षरद्वयञ्च'[6] । पिशाचाद्यैरित्याद्यशब्दो भूतप्रेतापस्मारकृत्यादिविषयः । त्रिविधैरुग्रैः स्थिरकृत्रिमजङ्गमाख्यैर्विषविशेषैः ।

तथा— प्रणवञ्चरहंसाग्नी जवी दाहो नभश्चरौ[7] ।
शून्याम्बु च सदाहोऽग्निर्हृदम्बु मरुदन्वितम्[8] ।। २६ ।।

हंसश्च मरुता[9] युक्तः प्रोक्ता विद्या दशाक्षरी ।

चरहंसाग्नी इति मध्यपदलोपी समासस्तेन चरयुतहंसाग्नी इत्यर्थः । चर-एकारः, हंसाग्नी इकारसहितो हकारः, जवी पकारः, दाहो रेफः, नभश्चरौ एकारसहितो मकारः, शून्याम्बु दिव्यत्वात् शून्याम्बुनी इति यावत् । अत्र वियच्छब्दस्य पर्य्यायत्वात् सम्प्रदायाच्च शून्यमिति शकारः । [वकारसहितः शकारः, इत्यर्थः । सदाहोऽग्निः इकारसहितो रेफ इति यावत् । हृदम्बु मरुदन्वितं - वकार-आकारसहितः सकारः, हंसः हकारो, मरुता युक्तः आकारयुक्तः ।][10]

---

१. ख. अहितानि । २. ख. नश्येन । ३. क. मरुद्वह्नि । ४. क. क्ष्ममया ।
५. क. मरुद्वह्नि । ६. '–' क. पुस्तके नाऽस्त्ययमंशः । ७. क. नभमश्चरौ ।
८. ख. मरुदान्वितम् । ९. क. मारुता । १०. [–] ख. पुस्तके कोष्ठस्थांशोनाऽस्ति ।

तथा— षडङ्गं मायया कृत्वा जपेदक्षरलक्षकम् ।
ततो यमुद्दिश्य जपन्निशि कुर्यादयत्नतः ।। २७ ।।

समानयेत्स्वगेहे तमानाशात् प्रोक्तकारिणम् ।
वश्यमाकर्षणं लक्ष्मीं सुवर्णं वाञ्छितानि च ।। २८ ।।

प्राप्नोत्ययत्नादनया 'सिद्धया विद्ययाऽनिशम्'[1] ।
लोहितां लोहिताश्वस्थां लोहिताम्बरभूषणाम् ।। २९ ।।

चतुर्भुजान्त्रिनयनाम्प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ।
भल्लं दक्षेण वामेन चर्मयष्टि समुज्ज्वलाम् ।। ३० ।।

अन्याभ्यां हेमपाशेन कण्ठे बद्ध्वा स्वसाधकम् ।
हेमवेत्राहतं बद्धकरयुग्मङ्कृताञ्जलिम् ।। ३१ ।।

दासोऽहमिति भाषन्तम्पतितन्निजपादयोः ।
स्मरन् विद्याञ्जपन् मर्त्यो वशे कुर्यादयत्नतः ।। ३२ ।।
समस्तञ्जीवभुवनमश्वारूढाख्यविद्यया ।

तथा— प्रणवं नमसा युक्तं तथा भगवतीति च ।
माहेश्वरीति प्रोक्त्वाऽन्नपूर्णे स्वाहेति तन्मनुः ।। ३३ ।।

विधाय माययाऽङ्गानि जपेद्विद्यामहर्मुखे ।
सहस्रवारन्नियतन्न तस्य स्याद्दरिद्रता ।। ३४ ।।

भुजङ्गत्रासकरणनृत्यासक्तावलोकिनीम् ।
स्मितवक्त्रां हेमपात्रात्पायसन्दधतीं स्मरेत् ।। ३५ ।।

भवानीं सर्वदा विद्यां जपवान्न कदाचन ।
बुभुक्षितो भवेदेतान्न कदाचिच्च कुत्रचित् ।। ३६ ।।

तथा नृत्तस्थितं मान्त्वान्तदालोकनकौतुकाम्[2] ।
आभ्यामभजन्नित्यशो यो मन्त्राभ्यां याचते वरम् ।। ३७ ।।

---

१. '—' ख. विद्यया सिद्धयाऽनिशम् । २. ख. ० कौतुकम् ।

तस्यावयोः प्रसादेन सिद्धयत्येवाऽऽशु चिन्तितम् ।
तिष्ठेच्चोपरि सर्वेषां सर्वथा सर्वतः सदा ।। ३८ ।।

तथा— हसंहृद्ग्रासनभसां रसाम्बुव्याप्तदाहकैः ।
क्ष्मास्वयोगान्नामतश्च नवात्मा नवभिश्च तैः ।। ३९ ।।

तस्यैव क्ष्माक्षरं हित्वा वह्निन्तत्र प्रयोजयेत् ।
नवात्मिका तु ते विद्या द्वावेतौ सर्वसिद्धिदौ ।। ४० ।।

हंसहृद्ग्रासभसां हकारसकारक्षकारभकाराणां, रसाम्बुव्याप्तदाहकैः सहितानामित्यर्थः । क्ष्मास्वयोगात् तेषामष्टाक्षराणां कूटाक्षरत्वेन स्थितानामूकारबिन्दुभ्यामिति यावत् । नवात्मानामतः स्वरूपतश्च नवभिः सम्भूयेति[1] यावत् । तैरक्षरैस्तस्य[2] नवात्ममन्त्रस्य एवावधारणे क्ष्माक्षरं उकारं, वह्निं ईकारम् । तत्र ऊकाराक्षरस्थाने नवात्मिका प्राग्वत् ।

तथा— प्रणवं त्रिपुटान्त्यार्णन्नमसा चतुरक्षरी ।
देवी हृदयसंज्ञाऽसौ विद्या सर्वार्थसिद्धिदा ।। ४१ ।।

ध्यानमुक्तममुष्यास्तु[3] सततं सर्वमङ्गलाम् ।
सितकुष्ठं स्वर्णपुष्पीमूलन्तत्पत्रवारिणा ।। ४२ ।।

पिष्ट्वा शुद्धः पायसाशी विद्याजापी जितेन्द्रियः ।
भूमौ शयीत तां रात्रिं विजने सुशुभे गृहे ।। ४३ ।।

तल्लिप्ताकण्ठहृत्कस्तत्रालिखितमायकः ।
स्वपन्निशीथिनीं विद्यां जपन्नाज्ञास्थितान्तथा ।। ४४ ।।

अतिलोहितरूपान्तां त्रिद्यान्तान्देवतामपि ।
स्वप्ने सा तं समासाद्य वदेदस्याऽभिवाञ्छितम् ।। ४५ ।।

देवी हृदयविद्येयं स्त्रीणां सद्यःफलप्रदा ।
सौभाग्यलक्ष्मीकीर्त्यायुरारोग्यविजयावहा ।। ४६ ।।

सततं सर्वमङ्गलामिति सर्वमङ्गलां ध्यायेदित्यर्थः ।

---

१. ख. सम्भूते । २. ख. तैरक्षैस्तस्य । ३. क. ध्यानमुक्तमनुष्यास्तु । ख. ध्यानमुत्तमनु० ।

तथा—प्रणवं रुद्रदयिते तथा योगेश्वरीति च ।

स्वाहान्तिका तु विद्येयङ्कथिता द्वादशाक्षरी ।। ४७ ।।

गौरी विद्येत्यसौ प्रोक्ता लक्षजप्ता तु साधिता ।

ध्याता प्राग्वद्धयारूढा देवी साधयतीप्सितम् ।। ४८ ।।

निशामध्ये तु निशया निजवामोरुदेशतः ।

साध्यनामसमोपेतामालिख्यैनान्तु तन्मनाः ।। ४९ ।।

ध्यायंस्तथा जपेद्विद्यान्तदैवाऽऽकर्षयेत् प्रियाम् ।

नाऽनया सदृशी विद्या विद्यते व‍ंनतावशे ।। ५० ।।

राजवश्ये तथा लोके वश्ये स्त्रीवश्यकर्मणि ।

न विद्याः सन्ति भुवने हयगौरीमनुद्वयात् ।। ५१ ।।

निशया हरिद्रया, साध्यनामसमोपेतां साध्यसाधककर्मणा समोपेतां, एनां गौरीविद्याम्, हयगौरीमनुद्वयात् अश्वारूढविद्या-गौरीविद्याद्वयात् ।

तथा— अग्निर्नादश्च तद्युक्तस्तावेवाऽथ नभोधरे ।

एतद्द्वितीयन्तौ स्यातां काकटेति ततः परम् ।। ५२ ।।

मुण्डि स्वाहेति विद्येयमुक्ता पञ्चदशाक्षरी ।

अग्निः इकारः, नादश्च तद्युक्तः, इकारेण टकारो युक्तः, तौ प्रोक्तौ । एवाऽवधारणे । अस्य मन्त्रस्य प्रथमद्वितीयवर्णाविव तृतीयचतुर्थवर्णौ भवत इत्यर्थः । नभोधरे उकार सहितो मकार इति यावत् । एतद्दितीयं—अस्य मन्त्रस्य द्वितीयमक्षरमेव षष्ठमक्षरमित्यर्थः । तौ स्यातां—पञ्चमषष्ठवर्णाविव सप्तमाष्टमवर्णौ स्यातामिति यावत् । काकटेति काकट इति त्रीण्यक्षराणि । मुण्डि स्वाहेति चत्वार्य्यक्षराणि ।

तथा— कृताङ्गो मायया ध्यात्वा तान्देवीं सर्वमङ्गलाम् ।

जपेद्विद्याम्मौनयुतः कदलीपूगमध्यतः ।। ५३ ।।

त्रिसन्ध्यार्चासमोपेतं सा प्रीता लक्षदा दिनैः[1] ।

सर्वमङ्गलां सर्वमङ्गलासमानविग्रहाम्, कदलीपूगमध्यतः, लक्षदा लक्षस्वर्णप्रदा ।

---

१. ख. यनैः ।

तथा— प्रणवं नवकेशीं[1] च कनकंवति-संयुतम् ।
स्वाहान्ता द्वादशार्णेयं विद्या निष्कत्रयप्रदा ।। ५४ ।।

नवकेशीं 'नवकेशी' चत्वार्यक्षराणि । कनकं वतिसंयुतं, कनकवति इति पञ्चाक्षराणि । निष्कत्रयप्रदा नामतोऽर्थतश्च ।

नित्यशो गिरिशृङ्गस्थवटमूले त्रिलक्षकम् ।
जपित्वा वर्णशो विद्याम्फलमुक्तमवाप्नुयात् ।। ५५ ।।

त्रिलक्षकं जपित्वा वर्णशः सम्भूय षट्त्रिंशल्लक्षवारं जपित्वेत्यर्थः । उक्त-निष्कत्रयमितं स्वर्णमित्यर्थः । अवाप्नुयादित्यस्य नित्यश इत्यनेन सम्बन्धः ।

तथा— चरः प्राणो मरुद्युक्तो व्याप्तं प्राणो[2] धरान्वितः ।
व्योमद्वयम्मरुद्युक्तं रयश्च धरया[3] युतः ।। ५६ ।।

चरः प्राण इति प्रोक्ता विद्याऽभीष्टं वदेन्मिथः ।
जातीपुष्पैर्निशामध्ये पूजिता मङ्गलाकृतिः ।। ५७ ।।

चरः एकारः, प्राणो मरुद्युक्तः आकारसहितः ककारः, व्याप्तं यकारः, प्राणो धरान्वितः, उकारसहितः ककारः । व्योमद्वयम्मरुद्युक्तम् सुश्लिष्टोच्चारितं नकारद्वयं[4] अकारयुक्तम् । रयश्च धरया युतः उकारसहितः तकारः । चर एकारः । प्राणः ककारः । मङ्गलाकृतिः सर्वमङ्गलादेव्याः प्रोक्तविग्रहा ।

तथा— सिद्धसारस्वतस्यादौ त्र्यक्षराणि ततः परम् ।
मातङ्गिन्यै तथा स्वाहा पुनस्त्रीणीति तन्मनुः ।। ५८ ।।

द्वादशार्णेयमचिरात्सौभाग्गङ्कवितां श्रियम् ।
गानाभियोगं विश्वेषां मान्यताञ्च प्रयच्छति ।। ५९ ।।

सिद्धसारस्वतस्यादौ त्र्यक्षराणि । तानि वाग्भवहृल्लेखाश्रीबीजानि ।

मायाकृताङ्गो नित्यशस्ताम्प्रजपेदुदयेरवेः ।
सहस्रवारन्तेनाऽसौ सिद्धा सर्वम्प्रयच्छति ।। ६० ।।'

---

१. ख. नवकोशीं । २. क. प्रोणों । ३. क. धारया । ४. ख. णकारद्वयम् ।

इन्द्रनीलनिभां रक्तवसनाभरणोज्ज्वलाम् ।
प्रलम्बवेणिसन्नद्धसौगन्धिकसमुज्ज्वलाम् ॥ ६१ ॥

तत्क्लृप्तमुण्डमालाञ्च मुक्तास्तबकशोभिताम् ।
ऊर्मिकावीरकटकनूपुरैर्मण्डिताङ्घ्रिकाम् ॥ ६२ ॥

वादयन्तीं सदा वीणां स्वसमानाङ्गनाजनैः ।
स्तूयमानाञ्च परितो ध्यायेद्देवीं शुचिस्मिताम् ॥ ६३ ॥

तथा— मातङ्गिन्या द्वितीयञ्च तृतीयन्तदनन्तरम् ।
रसाचरस्वैरम्बु स्याद्वातान्गी तदनन्तरम् ॥ ६४ ॥

राज्यदे राजलक्ष्मीति हृन्माया व्युत्क्रमात्त्रयम् ।
विद्याऽसौ राज्यलक्ष्म्यास्तु षोडशार्णा समीरिता ॥ ६५ ॥

ध्यात्वा तां विजयां विद्याञ्जपेन्नित्यञ्च पूजयेत् ।
राज्यम्प्रयच्छति प्रीता साधकायाऽविलम्बितम् ॥ ६६ ॥

मातङ्गिनीविद्याया द्वितीयतृतीयाक्षरद्वयं—हृल्लेखाश्रीबीजरूपं राज्यलक्ष्मीविद्याया प्रथमद्वितीयाक्षरद्वयम्भवतीति । रसाचरस्वैरम्बु—लकार-एकार-बिन्दुभिरुपेतो वकारः 'व्लें' इति । वाताग्नी—अकारश्च इकारश्च पृथक् पृथगिति यावत् । राज्यदे राज्यलक्ष्मीति – राज्यदे राज्यलक्ष्मीति सप्ताक्षराणि । हृन्माया—विसर्जनीयसहितः सकार[1] इति यावत् । व्युत्क्रमात्त्रयम्—आद्याक्षरत्रयं प्रतिलोमक्रमेणेत्यर्थः । तां राज्यलक्ष्मीं विजयां—विजयानित्यासमानविग्रहाम् ।

तथा—प्रणवं श्रीपुटाम्मायाँ कमले तदनन्तरम् ।
कमलातो लये पश्चात् प्रसीदद्वितयम्पुनः ॥ ६७ ॥

आद्यत्रयं महाक्ष्म्यै नमः प्रोक्ता महेश्वरि ।
विद्या ते सप्तविंशार्णा समस्ताभीष्टदाऽनिशम् ॥ ६८ ॥

---

१. ख. साकारः ।

बीजत्रयैः षडङ्गानि द्विरुक्तैर्विहितानि वै ।
ध्यानञ्च विजयारूपं प्रजप्याद्दिनशस्तथा ।। ६९ ।।

कीर्त्तिलक्ष्मीधनारोग्यविजयाद्यखिलेष्टदा ।
तुलास्थे भास्करे पूजा पूर्णायां सकलेष्टदा ।। ७० ।।

तथा— ज्याचकं दाहवह्निस्वान्नभो हंसो मरुद्युतः ।
चण्डतेजश्च सङ्कर्षवर्णाः स्युस्तदनन्तरम् ।। ७१ ।।

व्योमाग्न्या कालिमन्थाने वर्णा हंसश्च मायया ।
सिद्धलक्ष्म्याश्च विद्येयम्प्रोक्ता सप्तदशाक्षरी ।। ७२ ।।

ज्याचकं दाहवह्निस्वान्–जकार–उकार–रेफ–ईकार–विन्दुभिः प्रथमम्बीजम् । नभो मकारः । हंसो मरुद्युक्तः–आकारसहितो हकारः । चण्डतेज इत्यक्षरचतुष्टयम् । सङ्कर्षवर्णाः[2] सङ्कर्षवर्णत्रयम्[3] । व्योमाग्न्या–इकारसहितो[4] नकार[5]: । कालिमन्थाने इति पञ्चवर्णाः । हंसश्च मायया–विसर्गेण सहितो हकारः ।

तथा— आद्येन कृत्वा चाऽङ्गानि जपेद्विद्यान्तु नित्यशः ।
प्रातः सहस्रवारन्तु तर्प्पयेत्तद्दशांशकम् ।। ७३ ।।

प्रसन्ना वर्षतो नित्यपूजायां साधकस्य तु ।
प्रयच्छति जयं युद्धे श्रियं सर्वातिशायिनीम् ।। ७४ ।।

भूतप्रेतपिशाचापस्मारकृत्यादिवारणम् ।
करोति मार्गे कान्तारगिरिकृच्छ्रेऽभिरक्षति ।। ७५ ।।

ध्यानन्तु तस्या देवेशि मङ्गले मङ्गलासमम् ।
युद्धमार्गादिरक्षासु शृणु वक्ष्ये यथाविधि ।। ७६ ।।

शतशीर्षान्त्रिनयनाम्प्रतिवक्त्रम्भयानकाम् ।
हस्तद्विशतसंयुक्तां स्वसमाकारशक्तिभिः ।। ७७ ।।

---

१. ख. साकारः । २. ख. सङ्कर्षणवर्णाः । ३. ख. सङ्कर्ष इति वर्णत्रयम् । ४. ख. इकारेण० । ५. ख. णकारः ।

वृतामनन्तैर्हस्तेषु साधकाभीष्टहेतिकाम् ।
ध्यात्वैवमर्च्चयन्निष्टमवाप्नोत्यखिलन्ध्रुवम् ॥ ७८ ॥

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च[1] कृत्वा सूत्राष्टकन्ततः ।
मार्ज्जयेद्बाह्यवीथीषु पञ्च पञ्च तथैकधा ॥ ७९ ॥

तदन्तरपि कोणेषु त्रयमेकीकृते ततः ।
मध्यादि विलिखेन्मन्त्रवर्णान्[2] षोडश नाम च ॥ ८० ॥

प्रदक्षिणत्रयान्मध्ये पूजयेत्तत्र तां सदा ।
समस्ताभीष्टसंसिद्ध्यै सिद्धलक्ष्मीन्तु नित्यशः ॥ ८१ ॥

आद्येन—बीजेन—प्राग्वत्स्वरभिन्नेन, कृत्वा सूत्राष्टकम् समान्तरालमित्यर्थः । तथा— यथा प्रतिकोणमेकमेकं कोष्ठमवशिष्यते तथेत्यर्थः । तदन्तः वीथ्यामिति शेषः । त्रयं कोष्टत्रयम् । एतदुक्तम्भवति । द्वितीयवीथ्याँ प्रतिदिशं मध्ये एकमेकं कोष्ठमवशिष्यते तथेत्यर्थः । मार्ज्जयेदिति । मध्यादि एतत्क्रियाविशेषणम् । सर्वमध्यकोष्ठे आद्यमक्षरं यथा तथेत्यर्थः । मन्त्रवर्णान् षोडशाऽवशिष्टानिति यावत् । नाम साध्यादीनाम् । प्राग्वन्मध्यकोष्ठलिखितबीजोदरे इति यावत् । मध्ये इत्यनन्तरश्लोके[3] वक्ष्यमाणत्वात् प्रदक्षिणत्रयात् विलिखेदिति पूर्वत्राऽन्वयः । तत्र चक्रे ।

अयमत्र विरचनाक्रमः—प्राक्प्रदक्षिणोदक्[4] च समान्तरालं सूत्राष्टकास्फालादेकोनपञ्चाशतत्कोष्ठात्मकं समचतुरस्रं[5] विधाय, तत्तद्बाह्यवीथीगतकोष्ठेषु चतुर्विंशत्यां[6] प्रतिदिशं मध्यस्थमध्यकोष्ठे पञ्चकं पञ्चकमेकीकृत्य, तदन्तर्वीथीस्थकोष्ठषोडशके प्रतिकोणमेकमेकं तत्तदुभयपार्श्वस्थकोष्ठाभ्यां सह त्रीणि त्रीणि कोष्ठान्येकीकृत्य, शिष्टसप्तदशकोष्ठेषु सर्वमध्यस्थकोष्ठे साध्यादिसमेतं प्रथमं बीजं, तद्बाह्यवीथीस्थेष्वष्टकोष्ठेष्वग्रादिप्रादक्षिण्येन तद्बाह्यवीथ्यादिकोष्ठचतुष्टये प्राग्वत्क्रमात् तद्बाह्यवीथ्यां कोणकोष्ठचतुष्टये[7] वायव्यादिनैर्ऋत्यन्तं विद्यायाः सप्तदशांशान् क्रमेण विलिखेदिति ।

---

१. क. प्राक्प्रदक्षि० । ख. प्राक्प्रत्यग्दक्षिणेदक्च । २. ख. ० वर्णां ।
३. ख. ० श्लोकेन । ४. ख. प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् । ५. ख. ० चतुश्रं । ६. ख. चतुर्विंशत्या । ७. ख. कोष्ठचतुष्टये ।

### ।। अथ परञ्ज्योतिर्विद्याविधानम्[1] ।।

तत्र श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

प्रणवम्पूर्वमुच्चार्य्य परां हंसः पदं लिखेत् ।
ततः सो हं शिरो देवि वसुवर्णेयमीरिता ।। ८२ ।।

परा मायाबीजं, हंसः इति स्वरूपम्, सो हमिति स्वरूपम्, शिरः स्वाहा ।

तथा— प्रणवाच्चित्कला ज्ञेया मायया व्याप्ति रूपिणी ।
[हंसपदेन देवेशि साक्षादात्मस्वरूपिणी ।। ८३ ।।

तत्रत्यबिन्दुत्रितयात्सृष्टिस्थितिलयात्मिका ।
प्रसूते बिन्दुनाऽऽद्येन वामेयम्ब्रह्मरूपिणी ।। ८४ ।।][2]

बिन्दुनाऽथ द्वितीयेन पालयन्तीञ्जगत्त्रयम् ।
ज्येष्ठेयं वैष्णवी माया चाऽऽद्या सत्वगुणा प्रिये ।। ८५ ।।

अन्येन बिन्दुना सर्वङ्ग्रसन्ती तमसा वृता ।
रौद्री बिन्दुत्रयन्देवि प्रसूते चान्तिका तदा ।। ८६ ।।

आत्मानन्दर्शयेत्येषा हंसाख्या सहृतिर्यदा[3] ।
तदेयन्दर्प्पणाकारा[4] ततो ज्योतिर्मयी भवेत् ।। ८७ ।।

वर्णाभ्यां वह्निजायायाः परञ्ज्योतिरिति प्रिये ।
एवन्धिया यजेन्मन्त्री साक्षाद्ब्रह्म भवेत्तु सः ।। ८८ ।।

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द उच्यते ।
परञ्ज्योतिर्मयी साक्षाद्देवता परिकीर्त्तिता ।। ८९ ।।

प्रणवोऽन्त्यद्वयम्बीजशक्ती शेषन्तु कीलकम् ।
स्वाहा तु हृदयं सोहं शिरो हंसः शिखा भवेत् ।। ९० ।।

मायया कवचन्तारबीजेन नयनत्रयम् ।
पूज्यमन्त्रेण[5] देवेशि समग्रेणाऽस्त्रकम्भवेत् ।। ९१ ।।

---

१. क. ० ज्योतिविद्या ० । २. [—] क. पुस्तके कोष्ठस्थांशस्याऽभावः ।
३. ख. संहृतिर्यदा । ४. ख. ० न्तर्प्पणाकारा । ५. ख. पूज्यं मन्त्रेण ।

ज्ञानाग्नौ मातृकावर्णहविषा चाऽक्षराहुतिम् ।
मन्त्रेणाऽनेन जुहुयात् क्षणान्निर्वाणगो[1] भवेत् ।। ९२ ।।

।। अथ परदेवतानिष्कलविधानम् ।।

अथ वक्ष्ये महेशानि परनिष्कलदेवताम् ।
यस्याः स्मरणमात्रेण चिदा नन्दायते तनुः ।। ९३ ।।

अनुग्रहादिर्देवेशि बिन्दुनादकलात्मकः ।
परनिष्कलदेवीयम्परब्रह्मस्वरूपिणी ।। ९४ ।।

अनुग्रहादिः ओकारः ।

शुक्लाम्बरपरीधाना शुक्लमाल्यानुलेपना ।
ज्ञानमुद्राङ्किता योगिपतिवृन्देन सेविता ।। ९६ ।।

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य गायत्री मनोश्छन्दः क्रमाद्वदेत् ।
ब्रह्मैव देवता बीजशक्ती अण्डङ् क्रमेण तु ।। ९३ ।।

मकारः कीलकम्मोक्षफलदा ज्ञानरूपिणी ।
स्वरद्वन्द्वस्य मध्ये तु क्षिप्त्वा त्यक्त्वा चतुष्टयम् ।। ९७ ।।

ऋ ॠ ऌ ॡ च देवेशि षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ।
ततो यन्त्रं लिखेन्मन्त्री त्रिकोणञ्चाष्टपत्रकम् ।। ९८ ।।

चतुरस्रञ्चतुर्द्वारमण्डितं ज्ञानदम्भवेत् ।
ब्रह्मरन्ध्रे बिचिन्त्यैतत्तत्राऽऽवाह्य परमेश्वरीम् ।। ९९ ।।

गन्धपुष्पादिभिः सम्यङ् मनोज्ञैरुपचारकैः ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वङ्गपूजनम् ।। १०० ।।

अकारेण च ऋग्रूपं ब्रह्माणम्पुरतो[2] यजेत् ।
सामवेदेन सहितमुकारेण हरिं यजेत् ।। १०१ ।।

देवीदक्षिणतः पश्चादन्त्यकोणे शिवं यजेत् ।
यजुःस्वरूपं कालेन त्रिकोणे कथितम्प्रिये ।। १०२ ।।

---

१. ख. क्षरान्नि० । २. ख. ० पुरुतो ।

अष्टपत्रे चतुर्दिक्षु पुरस्ताद्दिक्क्रमेण तु ।
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मनो यजेत्क्रमात् ।। १०३ ।।

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिश्चतुष्टयम् ।
विदिक्षु पूजयेन्मन्त्री ततो ब्राह्म्यादिका यजेत् ।। १०४ ।।

तेष्वेव वसुपत्रेषु चतुरस्रे ततः परम् ।
इन्द्रादिलोकपालांश्च पूर्वादिक्रमतो यजेत् ।। १०५ ।।

गन्धपुष्पादिनैवेद्यतर्प्पणैः परितोषयेत् ।
ज्ञानरूपो भवेन्मन्त्री मोक्षस्तस्य करे स्थितः ।। १०६ ।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादि–योगपीठन्यासान्ते "शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे-गायत्री छन्दसे नमः, हृदये-श्रीब्रह्म[1] देवतायै०, गुह्ये–अं बीजाय०, पादयोः—उं शक्तये०, नाभौ–मं कीलकाय नम" इति विन्यस्य मोक्षार्थे विनियोगः ।

ततः पूर्वोक्तमातृकाषडङ्गन्यासं कृत्वा, त्रिकोणगर्भमष्टदलकमलं चतुर्द्वारोपेतचतुरस्रभूषितमिति पूजाचक्रं निर्माय, ततः पात्रस्थापनाद्यात्मपूजान्ते देवीमावाह्य, पुष्पोपचारान्ते षडङ्गपूजां प्रोक्तक्रमेण विधाय, त्रिकोणे[2] देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन "अं ऋग्रूपाय ब्रह्मणे नमः, उँ सामवेदसहिताय हरये नमः, मं यजुःस्वरूपाय शिवाय नमः," अष्टदले पुर आरभ्य प्रादक्षिण्येन चतुर्दिक्षु–"आत्मने०, अन्तरात्मने०, परमात्मने०, ज्ञानात्मने नमः ।" विदिक्षु–"निवृत्त्यै०, प्रतिष्ठायै०, विद्यायै०, शान्त्यै नम" इति सम्पूज्य, पुनस्तस्मिन्नेवाऽष्टदलेऽग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन— "ब्राह्म्याद्यष्टमातृः[3] सम्पूज्य, चतुरस्रे प्रागवदिन्द्रादिलोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य धूपदीपादि शेषं समापयेदिति ।

।। अथ सञ्जीवनी विद्या ।।

तत्र श्रीदक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

देवि पश्चिमवक्त्रेण मयाद्याऽपि प्रजप्यते ।
विद्याचतुष्टयं साक्षादमृतानन्दविग्रहम् ।। १०७ ।।

---

१. ख. ब्रह्माण्यै० । २. ख. त्रिकाणे ।

महासिंहासनगतान्तत्र श्रीसञ्जीवनीं शृणु ।
शक्तिबीजं समालिख्य शिवचन्द्रौ समालिखेत् ।। १०८ ।।

[अनुस्वारविसर्गाभ्याम्मण्डितौ क्रमतः प्रिये ।
सञ्जीवनी च जूं जीवम्प्राणग्रन्थिस्थमालिखेत् ।। १०९ ।।][1]

कुरुशब्दं भृगुः सर्गी वह्निजायान्वितो मनुः ।
विंशत्यर्णो ऋषिः शुक्रो गायत्री[2] छन्द उच्यते ।। ११० ।।

सञ्जीवनी देवता स्याच्छक्तिरन्त्यादि[3] बीजकम् ।
त्रितयञ्च चतुष्कञ्च त्रितयम्पञ्चकन्तथा ।। १११ ।।
द्विकं द्विक[4]ञ्च क्रमतः षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ।

शक्तिबीजं ह्रीम् । शिवचन्द्रौ हकारसकारौ । [अनुस्वारविसर्गाभ्यां युक्तौ, तेन 'हंसः' इति, सञ्जीवनि जूं, जीवं प्राणग्रन्थिस्थं कुरु स्वरूपं, भृगुः सकारः सर्गी-विसर्गवान्][5] वह्निजाया स्वाहा ।

भूर्जे क्षीरेण विलिखेत् षट्कोणम्मण्डलं सुधीः ।
कर्पूराभां हरिन्मुक्ताभूषणैर्भूषितां[6] पराम् ।। ११२ ।।

ज्ञानमुद्रामक्षमालान्दधतीञ्चिन्तयेत्पराम् ।
एवन्ध्यात्वाऽऽवाह्य मध्ये[7] पूजयेदुपचारकैः ।। ११३ ।।

आदावङ्गानि सम्पूज्य षट्कोणेषु च पूजयेत् ।
सञ्जीवनीन्तथा बुद्धिपूर्वां सञ्जीवनीन्ततः ।। ११४ ।।

अहङ्कारमयीन्तद्वत्सत्वसञ्जीवनीम्प्रिये ।
रजःसञ्जीवनीञ्चैव तमःसञ्जीवनीं क्रमात् ।। ११५ ।।

शक्तिबीजेन देवेशि ङेनमोऽन्ताः प्रपूजयेत् ।
इति साधारणा पूजा विशेषं शृणु पार्वति ।। ११६ ।।

---

१. [—] कोष्ठस्थोंऽशो न दृश्यते क. पुस्तके । २. ख. गायत्र्यं । ३. ख. ०रत्यादि । ४. ख. त्रिकञ्च । ५. [—] ख. कोष्ठस्थोंशो नाऽस्ति । ६. ख. हीरमुक्त० । ७. ख. ० वाह्यध्ये ।

इति पूजां पुरा[1] कृत्वा तत्पादावरणं[2] यजेत् ।
प्राणापानौ तथा व्यान उदानश्च समानकः ।। ११७ ।।

अग्रकोणे ततञ्चैव बिततञ्चव तथा घनम् ।
सुषिरं वैखरीशब्दं द्वितीये कोणके यजेत् ।। ११८ ।।

पृथिव्यप्तेज आख्यातं वाय्वाकाशौ तृतीयके ।
शब्दस्पर्शौ च रूपञ्च रसगन्धौ चतुर्थके ।। ११९ ।।

इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव❀ परा माया च पञ्चमे ।
भूर्भुवःस्वस्तपः सत्यं षष्ठे कोणे क्रमाद्यजेत् ।। १२० ।।

सर्वस्यान्ते वदेद्देवि षट्सु सञ्जीवनीपदम् ।
कृता सञ्जीवनीपूजा*[3] मृत्युञ्जयति निश्चयात् ।। १२१ ।।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—शुक्राय ऋषये नमः, मुखे- गायत्रीछन्दसे[4]०, हृदये—श्रीसञ्जीवन्यै देवतायै०, गुह्ये—ह्रीँ बीजाय०, पादयोः—स्वाहा शक्तये० इति विन्यस्य, आयुर्वृद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा,

"ह्रीं हंसः हृदयाय नमः, सञ्जीवनि शिरसे स्वाहा, जूं जीवं शिखायै वषट्, प्राणग्रन्थिस्थं कवचाय हुम्, कुरु नेत्राय वौषट्, सः स्वाहाऽस्त्राय फट्" इति मन्त्रानङ्गुष्ठादि तलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यसेत् ।

ततो यथोक्तरूपां देवीं ध्यात्वा, मानसोपचारैः सम्पूज्य, चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रभूषितं षट्कोणमिति पूजाचक्रं निर्मायाऽऽवाहनादि—पुष्पोपचारान्ते प्रोक्त-क्रमेणाऽङ्गानि[5] सम्पूज्य,

षट्कोणेऽग्रकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन—"ह्रीं जीवन्यै नमः ह्रीं बुद्धि-सञ्जीवन्यै०, ह्रीं अहङ्कारमयीसञ्जीवन्यै०, ह्रीं सत्वसञ्जीवन्यै०,

---

१. ख. पुरां । २. ख. तत्पदाव० । ३. ❀—❀चिह्नान्तर्गतोऽशो नाऽस्ति ख पुस्तके । ४. ख. गायत्राय छन्दसे । ५. ख. पूर्वं प्रोक्त० ।

ह्रीं रज:सञ्जीवन्यै०, ह्रीं तम: सञ्जीवन्यै नम" इति पुन:[1] सम्पूज्य,

तस्मिन्नेव[2] षट्कोणे पुरोवर्त्तिप्रथमकोणे—"ह्रीं प्राणसञ्जीवन्यै नम:, ह्रीँ अपानसञ्जीवन्यै०, ह्रीं व्यानसञ्जीवन्यै०, ह्रीं उदानसज्जीवन्यै०, ह्रीं समानसञ्जीवन्यै नम" इति सम्पूज्य,

ततो द्वितीयकोणे—"ह्रीं ततसञ्जीवन्यै नम:, ह्रीं विततसं०, ह्रीं घनसं०, ह्रीं सुषिरसं०, ह्रीं वैखरीसं०, इति सम्पूज्य,

ततस्तृतीयकोणे—"ह्रीं पृथिवीसं०, ह्रीं अप्सं०, ह्रीं तेज:सं०, ह्रीं वायुसञ्जीव०, ह्रीं आकाशसं०, इति सम्पूज्य,

चतुर्थकोणे ह्रीं शब्दसं०, ह्रीं स्पर्शसं०, ह्रीं रूपसं० ह्रीँ रससं०, ह्रीं गन्धसं०" इति सम्पूज्य,

पञ्चमकोणे— "ह्रीं इच्छासं०, ह्रीं ज्ञानासं० ह्रीं क्रियासं०, ह्रीं परासं०, ह्रीं मायासं० । षष्ठे – ह्रीं भू:सं०, ह्रीं भुव:सं०, ह्रीं स्व:सं०, ह्रीं तप:सं०, ह्रीं सत्यसञ्जीवन्यै नम:" इति सम्पूज्य, चतुरस्रे लोकेशांस्तदस्त्राणि च सम्पूजयेत् । ततो धूपदीपादि प्राग्वत् समापयेदिति ।

तथा— वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रम्पुरश्चरणहेतवे ।
तद्दशांशेन जुहुयाद्दूर्वास्त्रिमधुसंयुता: ।। १२२ ।।

तथा— अथ वक्ष्ये परेशानीम्मृत्युञ्जयपरम्पराम् ।
वदद्वन्द्वं वादिनीति वाङ्मध्ये निक्षिपेत्प्रिये ।। १२३ ।।

हस्राद्यं वाग्भवन्देवि क्लिन्ने क्लेदिनि चाऽऽलिखेत् ।
महाक्षोभङ्कुरुद्वन्द्वं शिवशक्तिकलानलान् ।। १२४ ।।

वामाक्षिविन्दुनादाढ्यन्तारबीजन्ततो[3] वदेत् ।
मोक्षङ्कुरुयुगं हस्रशक्रस्वरविसर्गवत् ।। १२५ ।।

---

१. ख. नाऽस्ति । २. ख. पुनस्तस्मिन्नेव । ३. ख. ०नादाढ्यांस्तार० ।

इयं सञ्जीवनी देवी ऋषिरस्याः सितः प्रिये ।
गायत्रं[1] छन्द आख्यातन्देवतेयन्तु भैरवी ॥ १२६ ॥

वदद्वन्द्वं—वदवदेति स्वरूपम् । वादिनि इति स्वरूपम् । अनयोः स्वरूपयो-र्मध्ये वागिति निःक्षिपेत्तेन वद वद वाग्वादिनीति । वाग्भवं ऐं सहस्राद्यं, तेन ह्स्रैं[2] इति । क्लिन्ने क्लेदिनि स्वरुपम् । महाक्षोभं स्वरूपम् । कुरुद्वन्द्वं कुरु कुर्विति । शिव-शक्तिकलानलान्—हकार—सकार-ककार-लकार-रेफान् । वामाक्षि ईकारः, विन्दु-नादौ च तैराढ्यान्, तेन हस्क्लीँ इति । तारबीजं प्रणवः । मोक्षं स्वरूपं, कुरु-युगं प्रागवत् । ह्स्रशक्रस्वरविसर्गवत्[3] शक्रस्वर औकारः, तेन ह्स्रौः[4] ।

तथा— आद्यकूटं भवेद्वीजम्मध्यकूटञ्च कीलकम् ।
अन्त्यकूटम्भवेच्छक्तिः साक्षान्मृत्युविनाशिनी ॥ १२७ ॥

नवशक्राष्टवर्णांस्तु[5] न्यसेद्वै हृच्छिरः शिखाम् ।
क्रमेणाऽनेन चोच्चार्य्य पुनरङ्गत्रयन्न्यसेत् ॥ १२८ ॥

अथ त्रिकोणमालिख्य ततः षट्कोणमालिखेत् ।
बहिरष्टदलम्पद्मञ्चतुरस्रं समालिखेत् ॥ १२९ ॥

वसुपत्रे कामपीठं षट्कोणे जालपीठकम् ।
ओड्डियाणं त्रिकोणे तु विद्याभागत्रयेण तु ॥ १३० ॥

ध्यात्वा चाऽऽवाहयेद्देवीङ्कदम्बवनमध्यगाम् ।
पुस्तकं वामहस्तेन दक्षिणेनाऽक्षमालिकाम् ॥ १३१ ॥

बिभ्रतीङ्कुन्दधवलाङ्कुमारीञ्चिन्तयेत्पराम् ।
सर्वोपचारैः सम्पूज्य षडङ्गावरणं यजेत् ॥ १३२ ॥

वसन्तम्मदनञ्चन्द्रं विद्याभागत्रयेण तु ।
त्रिकोणे पूजयेन्मन्त्री प्रादक्षिण्येन चाग्रतः ॥ १३३ ॥

ब्रह्मविष्णवीशशब्दान्ते यजेत्सञ्जीवनीत्रयम् ।
इति सञ्जीवनीषट्कन्त्रिकोणे पूजयेत्सुधीः ॥ १३४ ॥

---

२. ख. गायन्त्यं । ३. क. ह्स्रौंः । ४. ख. ०शक्रस्वरा० । ५. क. ह्सौः ।
६. ख. नवशक्ताष्ट० ।

धर्मार्थकाममोक्षान्ते जयान्ते विजयान्तिके ।
सञ्जीवनीपदन्तूक्त्वा षट्कोणेषु च पूजयेत् ।। १३५ ।।

अष्टकान्ते तु मातॄणाङ्कुर्य्यात्सञ्जीवनीपदम् ।
अनेन विधिना विद्वान् पूजयेद्वसुपत्रके ।। १३६ ।।

नियोज्य लोकपालान्तपद[1] सञ्जीवनीति च ।
क्रमेणाऽनेन देवेशि पूजयेच्चतुरस्रके[2] ।। १३७ ।।

तारवीजं शक्तिबीजं श्रीबीजञ्चादिमङ्कुरु ।
इति जप्ता महेशानि पुरुषार्थप्रदा भवेत् ।। १३८ ।।
पुनश्चाराऽऽधयेद्देवीङ्गन्धपुष्पादिभिः प्रिये ।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि--सिताय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे०, हृदये—श्रीसञ्जीवनीभैरव्यै देवतायै०, गुह्ये—हस्रैं बीजाय०, पादयोः—ह्स्रौः[3] शक्तये—नाभौ—हसकलरीं कीलकायं०" इति विन्यस्य मृत्युनाशार्थे विनियोगः ।

ततो 'वद वद वाग्वादिनि ह्स्रैं हृदयाय नमः, क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं[4] कुरु २ ह्स्क्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ मोक्षं कुरु कुरु ह्स्रौः शिखायै वषट्, वदवद वाग्वादिनि ह्स्रैं कवचाय हुं, क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु २ ह्स्क्लीं नेत्राय वौषट्, ॐ मोक्षं कुरु २ ह्स्रौः अस्त्राय-फट्" इति मन्त्रानङ्गुष्ठादि-तलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् ।

ततो ध्यानमानसपूजान्ते त्रिकोणषट्कोणाऽष्टदलगर्भं चतुर्द्वारोपेतचतुरश्रमिति पूजाचक्रं निर्माय, पात्रस्थापनादि—योगपीठार्चान्ते त्रिकोणे-उड्डियाण पीठं, षट्कोणे-जालन्धरपीठं, अष्टदले—कामरूपपीठमिति विद्याभागत्रयेण षडङ्गोक्तक्रमेण ध्यात्वा ततो देव्यावाहनाद्यङ्गपूजान्ते त्रिकोणेऽग्रकोणमारभ्य विद्याप्रथमभागमुच्चार्य्य—"वसन्तसञ्जीवन्यै नमः", द्वितीयभागमुच्चार्य्य "मदनसञ्जीवन्यै०", तृतीयभागमुच्चार्य "चन्द्रसञ्जीवन्यै०" इति सम्पूज्य, पुनस्त्रिकोणे

---

१. ख. लोकपालान्ते० । २. ख. ०च्चतुश्रके । ३. ह्सैं । ४. क. ह्सौः ।
५. क. महामोक्षं ।

प्राग्वद्द्वियाभागत्रयेण "ब्रह्मसञ्जीवन्यै०," विष्णुसञ्जीवन्यै०, ईशसञ्जीवन्यै०" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य,

ततः षट्कोणेऽग्रकोणमारभ्य "धर्मसं०, अर्थसं०, कामसं०, मोक्षसं०, जयसं०[1], विजयसञ्जीवन्यै नम" इति सम्पूज्याऽष्टदलेऽष्टमातृः सञ्जीवनी-पदान्ताः सम्पूज्य, चतुरश्रे लोकपालान् सम्पूज्य[2], सञ्जीवनीपदान्तांस्तदस्त्राणि[3] च सञ्जीवनीपदान्तानि सम्पूज्याऽऽरात्रिकान्ते मूलमन्त्रस्य जपसमये मन्त्रस्यादौ प्रणवं, शक्तिबीजं, श्रीबीजञ्च दत्वा, जपं विधाय, पुनर्देवीं गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य, शेषं प्राग्वत् समापयेदिति ।

तथा—पुरश्चरणरीतिस्तु पूर्वसञ्जीवनीव हि ।। १३९ ।।

**इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मजगोस्वामि—**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ एकपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः ।। ५१ ।।**

—०—

१. ख. नास्त्ययमंशः । २. ख. नास्त्ययमंशः । ३. क. जीवनी०।

[ द्विपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः ]

।। अथ वाराहीविधिः ।।

तत्र श्रीतन्त्रराजे—

शुचिः स्वेनाऽथ शून्यं स्यान्नभसा भूरसः स्थिरा ।
अम्बु पश्चाद्रयः[1] साग्निर्महताम्बु रयौ तथा ।। १ ।।

इलायुताग्निरेतानि पुनरम्बु मरुद्युतम् ।
दाहश्च मरुता हंसस्त्वग्निनैतत्त्रयम्पुनः ।। २ ।।

अम्बुदाहौ मरुद्युक्तौ हंसोऽथ धरया नभः ।
तेजोऽग्निना पुनः पञ्च वातः स्वेन समायुतः[2] ।। ३ ।।

तोयञ्चरेण तत्पूर्वन्तोयमग्नियुतन्ततः ।
शून्यं व्याप्तेन शुचिना शून्यं शक्त्या नभोयुतम् ।। ४ ।।

दाहो धरास्वसहितस्तोयञ्चरसमन्वितम् ।
एतत्पूर्वमधः प्रोक्तं चतुष्टयमतः परम् ।। ५ ।।

ज्या स्वेन युक्ता सचरो रसश्चैतस्य पूर्वकम् ।
रसोऽग्निना पुनः प्रोक्तचतुष्कात्त्रयमन्ततः ।। ६ ।।

नभो भुवा चरेणाऽपि हंसस्त्वेतस्य पूर्वकम् ।
हंसोऽग्निना प्राक्त्रितयं हृद्रयस्वसमायुतम्[3] ।। ७ ।।

रसश्चरेण तत्पूर्वमग्निना च रसो युतः ।
पश्चादुक्तत्रयं वातो धरया च नभः प्रिये ।। ८ ।।

प्राणः स्वेन युतः पश्चाद्धृद्रयस्वयुतं रसः ।
व्याप्तमेतत्त्रयम्पश्चाद्धृद्दाहेनाऽम्बु संयुतम् ।। ९ ।।

गोत्रा धरायुता स्पर्शो नादयुक्तो जवी युतः ।
दाहेन[4] पूर्वं पूर्वञ्च पूर्वञ्च मरुता युतम् ।। १० ।।

शून्यं मरुत्स्वसहितं हृद्दाहेनाऽम्बुना चरः ।
स्पर्शो मरुत्स्वसहितो हृद्दाहेनाम्बु संयुतम् ।। ११ ।।

१. क. पश्चाद्रवः ।　२. क. समाहितः ।　३. ख. रुद्रय० ।　४. दोहन ।

ज्या चाग्निसंयुता हंसस्तथाऽम्बु मरुता सह ।
हृद्द्रयेण स्वेन युतं रसश्च स्वेन संयुतः ।। १२ ।।

प्राणदाहौ धरायुक्तौ पुनस्तौ वह्निना वियत् ।
वार्दाहयुक्तमम्बु स्याद्वियद्व्याप्तस्वसंयुतम् ।। १३ ।।

पूर्वद्विरुक्तवर्णौ च शुचिः स्वेन युतस्तथा ।
स्थिरा रसावनस्वेन दावौ हंसो धरास्वयुक् ।। १४ ।।

द्युतिर्नादवती पश्चाद्धृदम्बु मरुता युतम् ।
हंसश्च मरुता विद्या दशोत्तरशताक्षरी ।। १५ ।।

वाराही पञ्चमी विश्वविजया भद्रकौमुदी ।
वात्ताली चेति विख्याता स्तम्भनाद्यखिलेष्टदा ।। १६ ।।

**अथैषां व्याख्या मनोरमायाम्**— तत्र शुचिरित्याद्यखिलेष्टदेत्यन्तैः षोडशभिः श्लोकैर्वाराह्या दशोत्तरशताक्षरीं विद्यां तन्नामादिकं चोपदिशति । तत्र शुचिः स्वेन–ऐं इति, शून्यं नकारः, नभसा भूः–मो इति, रसो भकारः, स्थिरा गकारः, अम्बु वकारः, रयः साग्नि-ति इति । महाम्बु[1] वा इति, रयौ तकारद्वयम्, तथा मरुदन्वितम् त्ता इति । इलायुतोऽग्निः— इला लकारः, अग्निरिकारः, लि इति । एतानि त्रीण्यक्षराणि पुनरुक्तानि पुनरप्युच्चरेदित्यर्थः । अम्बु मरुद्युतं— वा इति । दाहश्च मरुता–रा इति । हंसस्त्वग्नियुतः हि इति । एतत्त्रयं पुनः— एतानि त्रीण्यक्षराणि पुनरपि देयानीत्यर्थः । अम्बु वकारः । दाहो मरुद्युतः— रा इति । हंसो हकारः, धरया उकारेण, नभो मकारं–मु इति । तेजोऽग्निना–तेजः खकारः, अग्निना इकारेण, खि इति । पुनः प्रोक्तानि–वाराहमुखीति पञ्चाक्षराण्येव । पुनश्चास्याः वातः स्वेन समायुतः–वात अकारः, अं इति । तोयं चरेण– तोय धकारः–धे इति । तस्य[2] पूर्वमक्षरमिति शेषः–अं इति। तोयमग्नियुतं–धि इति । तत उपरि शून्यं व्याप्तेन शुचिना युतमिति शेषः–न्यै इति । शून्यं नकारः, शक्त्या नभोयुतम्–शक्तिः विसर्जनीयः, मः इति । दाहो धरास्वसहितः–रु इति । तोयं चरसमन्वितं धे इति । एतत्पूर्वं रुं इत्यर्थः । अधःप्रोक्तं चतुष्टयमतः परम्—रुन्धे

१. ख. मरुताम्बु । २. ख. तत् ।

इत्यस्मात् पूर्वस्थितं धिन्यै नम इत्यक्षरचतुष्टयस्योपरिष्टाद्योयजेदित्यर्थः । ज्या स्वेन युक्ता–विन्दुयुक्तो जकारः जं इति । सचरो रसः–भे इति । तस्य पूर्वकम्—उक्ताक्षरस्य पूर्वमक्षरं जं इति रसोऽग्निना युत इति शेषः भि इति । पुनः प्रोक्तचतुष्कत्रयमन्ततः–पूर्वोक्त–धिन्यै नम इति चतुष्कं प्रथमाक्षरवर्ज्जन्यै नम–इत्यक्षरत्रयं उपरिष्टाद्योजयेत् । नभो भुवा – मो इति । चरेणापि हंसः हे इति । एतस्य पूर्वकं–हे इत्यस्य पूर्वकं मो इत्यर्थः । हंसोग्निना हि इति । प्राक्त्रितयम्–प्रागुक्तं न्यै नम इत्यक्षरत्रयम् । हृद्रयस्वसमायुक्तं स्तं इति । रसश्चरेण भे इति । एतत्पूर्वं भे इत्यस्य पूर्वमक्षरं स्तं इति । अग्निना च रसो युतः–भि इति । पश्चादुक्तत्रयम्—प्रागुक्तं न्यै नम इति त्रितयम् । वात अकारः । धरया च नभः–मु इति । प्राणः स्वेन युतः–कमिति । हृद्रय-स्वयुतं स्तं इति । रसो भकारः । व्याप्तं यकारः । एतत्त्रयं पश्चात्प्रोक्तत्रयं स्तम्भय इति । हृत् सकारः । दाहेनाम्बु संयुतं–वें इति । गोत्रा दकारः धरान्विता दु इति । स्पर्शो नादयुतः–स्पर्शः षकारः, नादः टकारः, ष्ट इति । जवी दाहेन युतः — पकारो रेफेण–प्र इति । पूर्वं 'प्र' इत्यस्मादक्षरात् । पूर्वाक्षरस्य पूर्वमक्षरम्–दु इति । पूर्वं च मरुता युतं —अत्र पूर्वशब्दः 'दु' इत्येतस्य पूर्वाक्षर इति शेषः – ष्टा इति । शून्यं मरुत्स्वसहितं — नां इति । हृत्सकारः, दाहेनाम्बुचरः — वें इति । स्पर्शो मरुत्स्वसहितः – षां[1] इति । हृत्सकारः । दाहेनाम्बु संयुतम्- वं[2] इति । ज्या चाऽग्निसंयुता–जि इति । हंसो हकारः, अम्बु मरुता सह–ह्वा इति । हृद्रयेण स्वेन युतं-स्तं इति । रसश्च स्वेन युतः–भं इति । प्राणदाहौ धरायुक्तौ–प्राणः ककारः, दाहो रेफः, एतौ धरा उकारेण युतौ–कुरु इति । पुनस्तौ–कुरु इत्यक्षरद्वयम् पुनरुच्चरेदित्यर्थः । वह्निना वियत्–शी इति । वार्दाहयुक्तम्- वाः घकारः, दाहो रेफः, घ्र इति । अम्बु वकारः । वियद्वयाप्तस्वसंयुतम् —वियत् शकारः, व्याप्तं यकारः, स्वं विन्दुः, श्यं इति । पूर्वद्विरुक्तवर्णौ वश्यं इत्येतदारभ्य पूर्वस्माच्चतुष्टयाक्षरात् पूर्वं कुरुकुर्वित्यर्थः । शुचिः स्वेन युतः ऐं इति । स्थिरा रसावनस्वेन–ग्लौं इति । दावौ ठकारद्वयम्, ठठ इति । हंसो धरास्वयुक्–हुं इति । द्युतिर्नादवती पश्चात्– फट् इति । हृदम्बु मरुता युक्तं – स्वा इति । हंसश्च मरुता– हा इति ।

---

१. क. वां । २. ख. संयुतः ।

तथा— अङ्गानि कृत्वा मन्त्रार्णैः सप्तभिः षड्युगेन च ।
दशभिः सप्तभिः सप्तसङ्ख्यैर्जातिभिरन्वितम् ।। १७ ।।

त्रिकोणवृत्तषट्कोणवृत्तद्वयसमन्वितम् ।
विधाय चक्रन्तत्रैव स्वनाम्नाऽऽवाह्य पूजयेत् ।। १८ ।।

दशोत्तरशताक्षर्य्या वाराहीविद्यया प्रिये ।
सर्वमध्ये समभ्यर्च्य वामदक्षाग्रकोणतः ।। १९ ।।

क्रोधिनीं स्तम्भिनीं चण्डोच्चण्डाञ्च स्वस्वनामभिः ।
आद्यबीजान्त्यसद्यार्णैरुपेतमथ पूजयेत् ।। २० ।।

षट्सु कोणेष्वथाग्रादि ब्राह्म्याद्या वामतोऽर्च्चयेत् ।
वृत्ते चैव महालक्ष्मीम्पञ्चमीम्मध्यतस्तथा ।। २१ ।।

बलिन्तु षोडशार्णेन कृत्वाऽभ्यर्च्योपचारकैः ।
तदग्रे ताञ्जपेद्विद्यां सहस्रमथ वा शतम् ।। २२ ।।

होमञ्च कुर्याद्दिनशः सुसिद्धैस्तिलतण्डुलैः ।
घृतेन वा ततो विद्या सिद्धा स्यादब्दतस्त्विति ।। २३ ।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "ऐं नमो भगवति हृदयाय नमः, वार्त्तालि शिरसे स्वाहा, वाराहि वाराहि शिखायै वषट्, वराहमुखि वराहमुखि कवचाय हुम्, अन्धे अन्धिन्यै नमः नेत्राय वौषट्, जम्भे जम्भिन्यै नमः अस्त्राय फट्"। इति मन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य हृदयादिषु षडङ्गेष्वपि न्यसेत् ।

ततो ध्यानादिमानसपूजान्ते त्रिकोणवृत्तषट्कोणवृत्तद्वयचतुरस्रात्मकं मण्डलं निर्माय, मूलेनाऽभ्यर्च्य, चक्रस्याऽग्रे चतुरस्रवृत्तत्रिकोणात्मकमण्डलं निर्माय, "सर्वभूतेभ्यो नमः सुरासुरनराद्याः सर्वभूतगणा इहाऽऽगच्छताऽऽगच्छते" त्यावाह्य, "सर्वभूतेभ्यो नम" इति मन्त्रेण गन्धाद्यैरुपचारैः सम्पूज्य, तत्र बलिपात्रं निधाय, "सर्वभूतबलिद्रव्याय नम" इति बलिं सम्पूज्य 'ॐ सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं स्वाहा सर्वभूतेभ्य एष बलिर्नम" इति जलधारादानेन बलिमुत्सृज्याऽर्घस्थापनादिपुष्पोपचारान्ते—

त्रिकोणस्य वामकोणे–"क्रों क्रोधिन्यै नमः, दक्षे–स्तं स्तम्भिन्यै०, अग्रे–क्षों क्रों चण्डोच्चण्डायै नम" इति सम्पूज्य, षट्कोणकोणेषु–तेष्वग्रादिवामावर्त्तेन "ह्लीं ब्राह्म्ये नमः, ह्लीं माहेश्वर्य्यै०, ह्लीं कौमार्य्यै०, ह्लीं वैष्णव्यै०, ह्लीं इन्द्राण्यै० ह्लीं चामुण्डायै०" इति सम्पूज्य, बहिर्वृत्तद्वये देव्या अग्रे– 'ह्लीं महालक्ष्म्यै नम" इति सम्पूज्य, मध्ये–श्रीवाराहीं त्रिःसम्पूज्य, नैवेद्यान्तानुपचारान्[1] विधाय, प्राग्वत् सर्वभूतबलिन्दत्वा शेषं समापयेदिति ।

तथा – जितेन्द्रियो हविष्याशी मौनी सन्ध्यासु पूजयन् ।
विद्याञ्जपेल्लक्षसङ्ख्यान्तद्दशांशेन तर्प्पणम् ।। २४ ।।

अर्चनं हवनङ्कृत्वा सिद्धमन्त्रोदयान्वितः ।
गुरुभक्तः सुसन्तुष्टः शान्तचित्तः क्षमान्वितः ।। २५ ।।

प्रयोगानाचरेद्भक्त्या यैरिष्टमखिलं क्षणात् ।
सिद्ध्यत्ययत्नतो देव्याः प्रसादाद्वैभवादपि ।। २६ ।।

ध्यायेच्च देवीङ्कोलास्यान्तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ।
आकण्ठं वनितारूपां ज्वलत्पिङ्गसरोरुहाम् ।। २७ ।।

त्रिनेत्रामष्टहस्ताञ्च चक्रं शङ्खमथाऽङ्कुशम् ।
पाशञ्च मुशलं सीरमभयं वरदन्तथा ।। २८ ।।

दधानां गरुडस्कन्धे सुखासीनां विचिन्तयेत् ।
नित्यपूजासु तच्छक्तीस्तत्समानाः स्मरेच्छिवे ।। २९ ।।

प्रयोगेषु स्मरेद्देवीं सिंहस्थां व्याघ्रगामपि ।
गजारूढां हयारूढान्तार्क्ष्यारूढाञ्च शक्तिभिः ।। ३० ।।

श्यामामप्यरुणाम्पीतामसितान्धूम्रविग्रहाम् ।
तत्तत्प्रयोगेषु तथा ध्यायेत्तत्तदवाप्तये ।। ३१ ।।

अरुणामरुणाकल्पामरुणाभिस्तु शक्तिभिः ।
आवृताम्पञ्चमीन्ध्यायेज्जपेद्वश्याप्तयेऽनिशम् ।। ३२ ।।

१. ख. ० नुपरान् ।

पीताम्पीताम्बराम्पीतभूषणास्त्रग्विलेपनाम् ।
पीतशक्त्याऽऽवृतां ध्यायेत्स्तम्भनेषु तु सर्वदा ।। ३३ ।।

श्यामाञ्च दुर्गमे मार्गे सिंहस्थाम्भीमविग्रहाम् ।
शक्तिभिः स्वसमानाभिरनन्ताभिः समावृताम् ।। ३४ ।।

चिन्तयन् प्रजपन् विद्यां व्रजेत्ताच्छक्तिमध्यगम् ।
स्वात्मानं भावयन्मन्त्री प्रयात्यक्लिष्टवैभवम् ।। ३५ ।।

सिंहर्क्षद्वीपशरभखड्गसैरिभशूकरैः ।
गवयैर्भुजगैर्भीमैर्दन्तिभिर्मदमन्थरैः ।। ३६ ।।

चोरैः कुन्तप्रहरणैः क्रूरैरन्यैर्भयावहैः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैराकुलेऽरण्यसङ्कटे ।। ३७ ।।

अलब्धमार्गे विपिने गिरिश्रृङ्गे तथाविधे ।
स्मरन्देवीमुक्तरूपां निरातङ्को व्रजेत्सुखी ।। ३८ ।।

समरेष्वपि भीमेषु पत्त्यश्वरथदन्तिभिः ।
सङ्कटेषु दुरन्तेषु स्मृत्वेत्थं विजयी भवेत् ।। ३९ ।।

नखरं क्षुरिकां खड्गं बाणं शूलङ्गदां सृणिम् ।
चक्रञ्च दक्षिणैर्बिभ्रद् बाहुभिर्भीमविग्रहाम् ।। ४० ।।

तर्ज्जनीं खेटकं चर्म चापं डमरुकं हलम् ।
पाशं शङ्खञ्च दधतीमन्यैर्नीतां(लां)स्वशक्तिभिः ।। ४१ ।।

गजाधिरूढान्द्विरदैः शक्त्यारूढैः समावृताम् ।
वैरिसेनां समस्ताञ्च निपात्य परिघैर्भुवि ।। ४२ ।।

तदुपर्य्यभितः प्रेङ्खत्कदलीकेतुसङ्कुलम् ।
चरन्तीं शक्तिवृन्दैश्च भीमारावैर्मदोद्धतैः ।। ४३ ।।

भानुमण्डलमध्यस्थां शूले प्रोतारिविग्रहाम् ।
तद्देहनिर्य्यद्रक्ताक्तशूलान्देवीं विचिन्तयन् ।। ४४ ।।

कण्ठमात्रे जले स्थित्वा जपेद्विद्यामनन्यधीः ।
सप्तरात्रप्रयोगेण वैरिणम्मारयेज्ज्वरात् ।। ४५ ।।

देव्याः सपरिवाराया हेतिभिः सकलीकृतम् ।
रिपुदेहं स्मरन् फेरुकङ्कक्रव्यादकुक्कुटैः ।। ४६ ।।

भक्ष्यमाणं जपेद्विद्यान्त्रिदिनं सलिले स्थितः ।
प्राग्वत्तावद्दिनैर्वारिहतं श्रुत्वा समुत्तरेत्[1] ।। ४७ ।।

द्विभुजान्धूम्रवर्णाञ्च साध्यजिह्वां हृदम्बुजे ।
उत्पाटयन्तीं सञ्चिन्त्य जपञ्शत्रुं यमन्नयेत् ।। ४८ ।।

तथाविधाम्पीतवर्णां स्मृत्वा सञ्जप्य वैरिणः ।
क्रोधं संशमयेद्वादे विवादे समरेऽपि वा ।। ४९ ।।

तार्क्ष्यरूढाञ्च तान्तार्क्ष्यगणस्थाभिश्च शक्तिभिः ।
वृतान्तार्क्ष्यगणोद्दामपक्षमारुतमूर्च्छिताम् ।। ५० ।।

स्मृत्वा जपेद्रिपोः सेनान्दूरतो द्रावयेत्क्षणात् ।
तथैवाऽरातिपृतनां समरे नाशयेत्क्षणात् ।। ५१ ।।

तथैवाऽष्टभुजैः खड्गान्दधानां शक्तिभिर्वृताम् ।
विकीर्य्य केशानरुणवारबाणधरो[2] हयैः ।। ५२ ।।

तरक्षुकेसरिकपिलकोलर्क्षगरुडस्थितैः ।
शक्तिवृन्दैस्त्रिशूलाग्रप्रोतपत्त्यश्ववारणैः ।। ५३ ।।

क्रीडाविनोदान्माणिक्यमण्डपे सिंहविष्टरे ।
ध्यायन्नरातेः पृतनान्नाशयेत् स्वैर्बलैर्नृपः ।। ५४ ।।

पीतप्रसूनैः पीताभामर्च्चयेत्स्तम्भनाय वै ।
प्रागुक्तैर्मण्डलाद्यैस्तु वासरैः परमेश्वरि ।। ५५ ।।

अरातीनाङ्गतिं सेनाम्मतिञ्जिह्वां समुद्यमम् ।
इष्टमन्यच्च सकलं स्तम्भयेत्साधकः क्षणात् ।। ५६ ।।

---

१. क. समुत्तरे । २. ख. ० चापबाण ० ।

अरुणामरुणैः पुष्पैरर्च्चयेन्मध्यरात्रतः ।
निहन्तुङ्काममम्याऽऽशु रिपुङ्कुर्याद्वशे ध्रुवम् ॥ ५७ ॥

विषनाड्यान्दग्धयोगे मृतियोगे सनाशके ।
यमकण्टककाले वा कृष्णैः पुष्पैस्तथाविधाम् ॥ ५८ ॥

पूजयेत्तद्दिनैः शत्रूञ्जीवितेशपुरन्नयेत् ।
श्यामाञ्च सौरभाढ्यैस्तैः पुष्पैरभ्यर्च्य वासरैः ॥ ५९ ॥

उदितैरिन्दिराढ्यः स्यादरोगः सुमना वशी ।
सुखी जीवति भूमौ स शतवर्षाणि विश्रुतः ॥ ६० ॥

होमङ्कुर्यात्तथा रात्रौ चतुरश्रेऽथ कुण्डले ।
हरिद्रामिलितैरन्नैस्तिलैर्माषैः सतन्दुलैः[1] ॥ ६१ ॥

पीतैः पुष्पैस्तथा पीतैः फलैस्तालदलैरपि ।
शकलीकृत्य लिखितसाध्यवर्णसमन्वितैः ॥ ६२ ॥

निशाघृतसमोपेतैः स्तम्भयेत्प्रागुदीरितान् ।
निशाचूर्णघृताक्तैस्तु होमात् संस्तम्भयेत्तथा ॥ ६३ ॥

अर्द्धरात्रेऽरिवृक्षेन्धवह्नौ तद्योनिदेहजैः ।
मांसैस्तद्देहसम्भूतस्नेहाक्तैर्हवनाद्दिनैः ॥ ६४ ॥

मारयेद्वैरिणं रोगशस्त्रश्रृङ्गिफणीजलैः ।
दहनैर्वारणैरन्यैः प्रमोदै[2]: कण्टकादिभिः ॥ ६५ ॥

निर्घाततरुकुड्यादिपातनाद्विषभक्षणात् ।
शत्रुभिर्वा प्रयोगामी न भवन्त्येव भङ्गुराः ॥ ६६ ॥

धूम्राङ्कङ्कसमारूढान्नखराद्यायुधैर्युताम् ।
ध्यायन्निरपोरष्टमे तु राशौ छागघृताप्लुतैः ॥ ६७ ॥

मरिचैः सर्षपैर्होमात्तद्दिनैर्मारयेद्रिपुम् ।
तीव्रदाहज्वरग्रस्तं विसञ्ज्ञं विकृताङ्गकम् ॥ ६८ ॥

---

१. ख. सतण्डुलैः । २. ख. प्रमादैः ।

बालार्काभां स्मरन्नाद्यहेतिभिः संयुतां शिवाम् ।
सरूपवस्त्रासितगोघृताक्तैररुणैः शुभैः ॥ ६९ ॥

प्रसूनैः किंशुकोद्भूतैस्तथा बन्धूकसम्भवैः ।
जपाप्रसूनैः पालाशैः करवीरसमुद्भवैः ॥ ७० ॥

कह्लारैरुत्पलै रक्तैः कमलैः पाटलोद्भवैः ।
अशोकजैः कुसुम्भोत्थैरन्यैः पुष्पैश्च लोहितैः ॥ ७१ ॥

हवनान्नृपतुल्यः स्यादैश्वर्य्येणाऽऽज्ञया धनैः ।
अन्यैरपि च तत्साम्यकरैरङ्गैः सुनिश्चितम् ॥ ७२ ॥

अरुणान्नखराद्यैश्च युतां ध्यायन् समाहितः ।
मध्यरात्रे हुनेत्साध्यदिङ्मुखो मरिचैस्तथा ॥ ७३ ॥

प्रोक्तैर्दिनैर्नृपो नारी नरो लोकोऽपि वा वशे ।
भवेत् कीर्त्तीन्दिरायुक्तश्चिरञ्जीवति भूतले ॥ ७४ ॥

विषनाड्यामित्यादिश्लोकेन **कालविशेषा** उक्तास्ते तु **ज्योतिषशास्त्रे यथा कश्यपः**—

वियद्बाणा ५० वेददस्राः २४ खरामा ३० व्योमसागराः ४० ।
वेदचन्द्रा १४ श्चन्द्रदस्राः २१ खरामा ३० व्योमबाहवः २० ॥ ७५ ॥

नेत्राग्नयो ३२ व्योमगुणाः ३० शून्यदस्रा २० गजेन्दवः १८ ।
क्ष्माबाहवो २१ वियद्दस्राः २० शक्रा १४ श्चेन्द्राः १४ खभूमयः १० ॥७६॥

वेदचन्द्रा १४ स्तर्कबाणा ५६ वेददस्राः २४ खबाहवः २० ।
व्योमेन्दवो १० व्योमचन्द्रा १० धृतय १८ स्तर्कभूमयः १६ ॥ ७७ ॥

वेदाश्विनः २४ खरामाः ३० स्युर्दस्रर्क्षघटिकाः क्रमात् ।
आभ्यः परस्तात् क्रमशश्चतस्रो विषनाडिकाः ॥ ७८ ॥

**नारदः**—

एकादशी चेन्दुवारे द्वादशी चाऽर्कवासरे ।
षष्ठी बृहस्पतेर्वारे तृतीया बुधवासरे ॥ ७९ ॥

अष्टमी शुक्रवारे च नवमी शनिवासरे[1] ।
पञ्चमी भौमवारे च दग्धयोगाः प्रकीर्त्तिताः ।। ८० ।।

आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः ।
जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा मृतिप्रदा ।। ८१ ।।

बृहस्पतिः—

षष्ठी शशाङ्के नवमी च शुक्रे,
बुधे द्वितीया तपने चतुर्थी ।
जीवेऽष्टमी सौरिकुजेऽह्नि सप्तमी,
योगा विषाख्याः कुलनाशनाः स्युः ।। ८२ ।।

दैवज्ञमनोहरे—

अहनि निशि गजांशः स्वो दिनेशादिकाना-
म्भवति तु गुरुभौमज्ञार्किकालत्रयेण[2] ।
प्रभवति यमघण्टः कण्टकः कालवेला,
कुलिक इति विरुद्धस्तत्पराद्धं न्निषिद्धम् ।। ८३ ।।

तथा— विलिख्य भूपुरम्मध्ये निजसाध्यं समालिखेत् ।
भौमाक्षराणि तद्बाह्ये दशाग्रादभितो लिखेत् ।। ८४ ।।

बहिरष्टच्छदम्पद्मङ् कृत्वा तत्र लिखेत् क्रमात् ।
मन्त्राक्षराणि ऋतुशस्तद्बहिर्वृत्तयुग्मकम् ।। ८५ ।।

तत्राऽपि पार्थिवानर्णान् बहिःषट्कोणमालिखेत् ।
तत्कोणेष्वन्तरालेषु मन्त्रार्णान् भूदशान्वितान् ।। ८६ ।।

विलिखेत्प्राग्वदभितो बहिर्वृत्तद्वयं लिखेत् ।
विलोमाम्मातृकान्तत्र न्यस्य भूमिपुरम्बहिः ।। ८७ ।।

कृत्वाऽनुलोमामालिख्य [मातृकाम्मूलविद्यया ।
पूजयन्नखिलँल्लोकं स्तम्भयेदरिवाहिनीम् ।। ८८ ।।

---

१. ख. शनिवारे । २. ख. ०कालक्रमेण ।

नवाश्रं वृत्तयुग्मञ्च वस्वश्रन्तद्द्वयम्बहिः ।
चतुरश्रञ्च सँल्लिख्य ][1] मन्त्रार्णान् षट् षडालिखेत् ।। ८९ ।।

अष्टान्तरालेष्वेकैकम्बाह्यवृत्ते तु मातृकाम् ।
चतुरस्रे च विलिखेत्प्रतिलोमानुलोमकाम् ।। ९० ।।

[ससाध्यां सर्वतो लिख्याद् ध्यायेदष्टभुजां शिवाम् ।
स्तम्भः स्वात्पूर्वमुक्तानां विधानात्परमेश्वरीम् ।। ९१ ।।][2]

वृत्तान्त्र्यस्रम्पुनर्वृत्तं षडस्रं वृत्तयुग्मकम् ।
अष्टास्रन्तद्बहिर्वृत्तमिति कृत्वाऽत्र विन्यसेत् ।। ९२ ।।

एकम्मध्ये[3] बहिः कोणेष्वन्तरालेषु च क्रमात् ।
त्रयं त्रयं समालिख्य बहिःशिष्टन्तु पार्थिवैः ।। ९३ ।।

विलिख्य मध्ये नामाऽपि जपित्वाऽभ्यर्च्य[4] साधकः ।
स्थापयेत् क्वाऽपि तत्रैव नित्यशश्च बलिं क्षिपेत् ।। ९४ ।

कृत्वा षडष्टकोणानि षट्कोणानि पृथक् पृथक् ।
क्रमात्त्रिकोणवृत्तान्तरालान् षट्कोणसंयुतान् ।। ९५ ।।

बाह्यक्रमेण मध्यान्तन्नक्षत्रतिथिवारयुक् ।
विलिखेल्लिपिशः सर्वाम्मातृकां शक्तिसंयुताम् ।। ९६ ।।

साध्यं सप्तसु मध्येषु विलिखेच्च प्रदक्षिणम् ।
मायामध्यगतं देवि धारयेत् सर्वसिद्धये ।। ९७ ।।

भूतप्रेतपिशाचादिशान्त्यै सर्वार्त्तिशान्तये ।
गजवाजिखरोष्ट्रादिरोगशान्त्यै च धारयेत् ।। ९८ ।।

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च रेखा द्वादश सँल्लिखेत् ।
रेखाग्राः सर्वतः शूलास्तन्मध्याग्रे च पार्श्वयोः ।। ९९ ।।

---

१. [—] क. पुस्तके कोष्ठस्थांशस्याभावः । २. [—] कोष्ठगोऽयमंशो नाऽस्ति क. पुस्तके । ३. ख. एवम्मध्ये । ४. क. चपित्वा ० ।

स्तम्भयेति समालिख्य मध्यकोष्ठेऽरिनाम च ।
परितो विलिखेन्मन्त्रवर्णान् भौमसमन्वितान् ।। १०० ।।

गैरिकेणाऽथ निशया तालेन विलिखेच्छुभम् ।
स्थापयेद्भित्तिमध्ये च भूमौ च क्रमतः शिवे ।। १०१ ।।

भूर्ज्जे वा कर्प्पटे लोहे शिलायां वा समालिखेत् ।
गृहपत्तनयोर्लोहद्दषदोऽरिष्टसिद्धये ।। १०२ ।।

नित्यशः पूजयेत्पुष्पैः सुगन्धैः प्रजपेत्तथा ।
यावत्फलाप्ति कुर्वीत नियतं सन्ध्ययोर्द्वयोः ।। १०३ ।।

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च कुर्य्यात् सूत्राणि षोडश ।
तैस्तु कोष्ठानि जायन्ते पञ्चविंशैः शतद्वयम् ।। १०४ ।।

तेषु कोणेषु परितो मार्ज्जयेत्परमेश्वरि ।
अष्टाविंशति कोष्ठानि ततः शिष्टेषु दिक्ष्वपि ।। १०५ ।।

प्राग्वदेकैकतः कुर्यात्त्रिकोणानि यथाविधि ।
मध्ये त्रिषु तु कोष्ठेषु साध्यसाधककर्म च ।। १०६ ।।

उपर्य्यधो मध्यतश्च शेषेषु प्राग्वदालिखेत् ।
मन्त्रार्णानग्रमालिख्य विलिखेदभितः शिवे ।। १०७ ।।

एतद्वज्रम्महायन्त्रं समस्ताभीष्टसाधकम् ।
यत्रैतत् स्थापितं लोहशिलादिलिखितं शिवे ।। १०८ ।।

तत्र चोरग्रहव्याधिरिपुसर्प्पसमुद्भवाः ।
भूतप्रेतपिशाचादि कोपजाश्चाप्युपप्लवाः ।। १०९ ।।

न भवन्ति कदाऽप्यत्र सम्भवन्ति च सम्पदः ।
वास्तुमर्मादिदुःखानि शमयेद्गेहगञ्च यत् ।। ११० ।।

यस्मिन् गृहे स्थापितन्तद्यन्त्रन्तद्गृहवर्त्तिनाम् ।
कृत्याभिचारक्षुद्रादिपीडा न भवति ध्रुवम् ।। १११ ।।

वाय्वग्निनैर्ऋतेशञ्च कुर्य्याद्द्वादशसूत्रकम् ।
तैर्वज्ररूपकोष्ठानामेकविंशशतम्भवेत् ।। ११२ ।।

तेषु मध्ये समालिख्य साध्यनाम ततो बहिः ।
अग्राद्यभित एवान्यान्यक्षराणि समालिखेत् ॥ ११३ ॥

निर्गमेण महीवर्णपूर्वाणि क्रमतः शिवे ।
यत्रैतत्स्थापितँल्लोहशिलादिलिखितं शिवे ॥ ११४ ॥

रोगभूतग्रहोन्मादपिशाचापास्मृतीर्द्विषः ।
अन्यानि क्लेशकारीणि यानि तानि विनाशयेत् ॥ ११५ ॥

प्रोक्तास्वार्तिष्वपि तथा तद्वज्रं गैरिकैर्भु वि ।
विलिख्य मध्ये कुम्भन्तु क्षीरद्रुक्क्वाथपूरितम् ॥ ११६ ॥

विधाय देवीं सलिले समावाह्याऽभिपूज्य च ।
स्पृशञ्जलञ्जपेद्विद्यां सहस्रत्रयमात्मवान् ॥ ११७ ॥

तैर्जलैरभिषिञ्चेत्तङ्गदिनम्प्राङ्मुखन्ततः ।
तैः क्लेशैर्मुक्तदेहस्तु सुखी जीवति भूतले ॥ ११८ ॥

विद्याप्राप्त्यभिषेकन्तु वज्रेऽस्मिन् कोष्ठवज्रके ।
सैकविंशशते वाऽपि कुम्भं संस्थाप्य सेचयेत् ॥ ११९ ॥

वेदाङ्गुलपरिभ्रान्त्या वृत्तङ्कृत्वा ततो बहिः ।
द्वयङ्गुले द्वयङ्गुले कुर्यादेकादश ततः क्रमात् ॥ १२० ॥

तेषु द्वयङ्गुलमानेषु तिर्य्यक् सूत्राणि पातयेत् ।
एकादश ततस्तेषु प्राङ्मध्यात्तु प्रदक्षिणम् ॥ १२१ ॥

भूदशार्णँस्तु तां विद्यामालिखेन्निर्गमक्रमात् ।
रेखाग्राणि च शूलानि कृत्वा साध्यञ्च मध्यतः ॥ १२२ ॥

तद्यन्त्रम्प्राग्वदखिलविनियोगेषु योजितम् ।
नाऽसाध्यमस्ति भुवने विद्यया सिद्धयाऽनया ॥ १२३ ॥

**अथैषामर्थः—**

[विलिख्येत्यादिभिरनयेत्यन्तैश्चत्वारिंशता श्लोकैरेतद्विद्याक्षरजनितानि स्तम्भनादिकराण्यष्टयन्त्राणि विद्या वैभवञ्चोपदिशति ।][1]

---

१. [-] कोष्ठगतांशस्याऽभावः ख. पुस्तके ।

तत्र [1]विलिख्येत्यादिभिर्वाहिनीमित्यन्तैः पञ्चभिः श्लोकैर्लोकपालस्य शत्रुसेनायाश्च स्तम्भनकरं यन्त्रमुपदिशति—तत्र मध्ये भूपुरस्य,तद्बाह्ये—भूपुरबाह्ये, भौमाक्षराणि—पञ्चमषष्ठत्रयोदशस्वरपुरस्सरकादिवर्गतृतीयाक्षराणि सबिन्दूनि दशसङ्ख्यानि, अभितः—प्रादक्षिण्येन बहिः, भौमाक्षरवेष्टनात्। तत्र—तेषु दलेषु, क्रमात्—अग्रादिप्रादक्षिण्यक्रमात्। ऋतुशः—षट् षडक्षराणि, प्रतिदलमिति शेषः। तद्बहिः— पद्माद्बहिः। तत्र— वृत्तवीथ्यां पार्थिवानर्णान् प्राग्वत्। बहिर्वृत्तयुग्मात्। कोणेषु—षट्कोणकोणेषु। अन्तरालेषु—कोणान्तरालेषु षट्सु। मन्त्रार्णान् भूदशान्वितान् — अष्टदललिखितशिष्टान् भूदशार्णसहितान् मूलविद्यावर्णार्णान्। प्राग्वत्—प्रतिस्थानं षट् षट् क्रमेण। अभितः—अग्रादि-प्राग्दक्षिणम्। बहिः षट्कोणात् तत्र वीथ्यां न्यस्य, विलिख्य बहिर्वृत्तद्वयात्। कृतेति पूर्वत्रान्वयः, मूल विद्यया सहितेति शेषः। पूजयेत्—नित्योक्तक्रमेण देवीमिति शेषः। अरिवाहिनीं शत्रुसेनां, चकारोऽत्राऽध्याहार्य्यः।

**अथ मन्त्रलेखनक्रमः—**

अभीष्टमानेन प्रोक्तलक्षणं भूपुरं विलिख्य, तद्बहिस्तत्कोणाग्रस्पृष्टास्पृष्टिकया वृत्तं कृत्वा, तद्बहिरेकाङ्गुलषडङ्गुलमानान्तरालोपेतं वृत्तद्वयं कृत्वाऽऽवाह्य, विशालवीथ्यामष्टदलम्पद्मं विधाय, पद्मबाह्यवृत्ताद्बहिर्वृत्तमेकाङ्गुलमानेन कृत्वा, तद्बहिस्तद्वृत्तमर्द्ध[2]— विष्कंभार्द्धमानेन वृत्तं कृत्वाऽन्तराले प्राग्वत् षट्कोणं विधाय, षट्कोणाग्रवृत्ताद्बहिरेकाङ्गुलमानेन 'वृत्तं कृत्वा'[3] तद्बहिरेकाङ्गुलमानेन चतुरश्रं कृत्वा, सर्वमध्यस्थभूपुरमध्ये साधकसाध्यकर्माण्युपर्यधोऽन्तरालक्रमेण लिखित्वा, तद्बहिर्भूपुरबाह्यवृत्तद्वयवीथ्यामग्रादिप्रादक्षिण्येन भौमानि—'उं ऊं ओं गं जं डं दं बं लं लं' इति दशाक्षराणि समालिख्य, तद्बहिर्वृत्तादलेष्वष्टस्वग्रादिप्राक्षिण्येन[4] मूलविद्याक्षरेषु दशोत्तरशतसङ्ख्येषु प्रतिदलं षट् षट् क्रमेणाऽष्टचत्वारिंशदक्षराणि सँल्लिख्य, तद्बहिर्वृत्तवीथ्यां प्राग्वत् क्रमेण भौमाक्षरदशकमालिख्य, तद्बहिः षट्कोणकोणेषु प्राग्वदग्रादिप्रादक्षिण्येन पूर्वमष्टदललिखित-

---

१. ख. विलिखेत्यादि०। २. ख. ०मध्य०। ३. '—' ख. नास्त्ययमंशः।
४. तद्बहिः पद्मदलेष्वष्ट०।

मूलविद्याक्षरशिष्टेष्वक्षरेषु द्विषष्टिसङ्ख्येषु षट्त्रिंशदक्षराणि प्रतिकोणं षट् षट् क्रमेणालिख्य, तत्षट्कोणान्तरालेषु षट्सु च प्रत्यन्तरालं प्रागुक्तक्रमेणाग्रकोणोत्तरपार्श्वादिदक्षिणपार्श्वान्तं षट्कोणलिखितविद्याक्षरशिष्टाक्षरषड्विंशतिकं भौमाक्षरदशकञ्च सम्भूय षट्त्रिंशदक्षराणि षट् षट् कमेणाऽऽलिख्य, तद्बहिर्वृत्तवीथ्यामग्रादि-प्रादक्षिण्येन विलोममातृकां सविसर्गामालिख्य, तद्बहिर्वृत्तभूपुरान्तरालवीथ्यामीशादीशान्तम्प्रादक्षिण्येन मातृकाक्षराण्येकपञ्चाशन्मूलविद्याक्षरदशोत्तरशतकञ्च सम्भूयैकषष्टयुत्तरशताक्षराणि प्रतिदिशं चत्वारिंशच्चत्वारिंशदक्षराण्युत्तरस्यां दिश्येकचत्वारिंशदक्षराणि चाऽऽलिख्य, तत्र देवीमावाह्य, स्वतन्त्रनित्यपूजाक्रमेण पूजयेत् । एवङ्कृते प्रोक्तफलदं भवतीति ।

नवाश्रमित्यादिभिः परमेश्वरीत्यन्तैस्त्रिभिः श्लोकैः सर्वस्तम्भनकरयन्त्रमुपदिशति—तत्र नवाश्रं नवयोनिम् । वस्वस्रं प्राग्वदष्टकोणम् । तद्द्वयं वृत्ताद्वयम् । षट्षट् नवकोणेष्वष्टकोणेषु च प्रतिकोणमित्यर्थः । अष्टान्तरालेषु अष्टकोणान्तरालेषु । एकैकं मूलविद्याक्षराणि । कोणलिखितशिष्टान्यष्टौ प्रत्यन्तरालमेकमेकमित्यर्थः । बाह्यवृत्ते अष्टकोणबाह्यवृत्तद्वयान्तरालवीथ्यां प्रतिलोमानुलोमकम् । वृत्तवीथ्यां प्रतिलोमञ्च चतुरश्रेऽनुलोमञ्च । सर्वतः अक्षरलेखनस्थानेषु, पूर्वमुक्तानाम् अरातिगत्यादीनाम् ।

**अयङ्क्रमः**— अभीष्टमानेन वृत्तं कृत्वा, तन्मध्ये प्राग्वन्नवयोनिं कृत्वा, तद्बहिरेकाङ्गुलान्तराले वृत्तं कृत्वा, तद्बहिर्भूपुरद्वयरूपदिग्विदिग्गतकोणमष्टकोणं कृत्वा, तद्बहिरेकाङ्गुलान्तराले चतुरश्रं कृत्वा, सर्वमध्यस्थयोनिमारभ्य निर्गमनगत्याग्रात् प्रादक्षिण्येन नवसु कोणेषु प्रतिकोणं षट् षट् क्रमात् मूलविद्याक्षरेषु प्रोक्तसङ्ख्येष्वादितश्चतुःपञ्चाशदक्षराणि संलिख्य, तद्बहिरष्टकोणेष्वष्टसु प्राग्वदग्रादिप्रादक्षिण्येन पूर्वलिखितविद्यामूलशिष्टाक्षरेषु षट्पञ्चाशत्सु प्रतिकोणेषु षट्षट्क्रमेणाऽष्टचत्वारिंशत्तममक्षराण्यालिख्य, तदष्टकोणान्तरालेषु अष्टस्वग्रकोणोत्तरपार्श्वमारभ्य तद्दक्षिणपार्श्वान्तं शिष्टविद्याक्षराष्टकम्प्रत्यन्तरालमेकमेकं विलिख्य, तद्बाह्यवृत्तद्वयान्तरालवीथ्यां प्राग्वदग्रादि—प्रादक्षिण्येन विलोमां सविसर्गां मातृकां विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तचतुरश्रान्तराले प्राग्वदीशादीशान्तम्प्रादक्षिण्यात् प्रतिदिशं त्रयोदश—त्रयोदशाक्षरक्रमेणोत्तरस्यां दिशि 'द्वादशक्र-

मेण[1] च सम्भूय मातृकाक्षराण्येकपञ्चाशदालिख्य, सर्वत्राऽक्षरलेखनस्थानेषु सप्तविंशतिषु साधकादिनामत्रयं विलिख्य, तत्र नित्यपूजाक्रमेणाऽष्टभुजान्देवीमावाह्य, पूजयन्नरातिगत्यादिकं स्तम्भयतीति ।

वृत्तमित्यादिभिः क्षिपेदित्यन्तैस्त्रिभिः श्लोकैः स्तम्भनयन्त्रान्तरमुपदिशति— अत्र यन्त्रे— एकं मध्ये सर्वमध्ये[2]–मूलविद्याप्रथमाक्षरं त्रिकोणाकारं विलिखेदिति सम्प्रदायः । मध्ये–सर्वमध्यस्थप्रथमाक्षररूपत्रिकोणमध्ये, क्वाऽपि–भित्त्यादिषु तत्रैव स्थापितप्रदेशे ।

अयमत्र **विरचनाक्रमः**— अभीष्टमानभ्रमेण वृत्तं कृत्वा, तद्बहिस्तद्वृत्तविष्कम्भार्द्धमानेन वृत्तं कृत्वा, तदन्तराले प्राग्वत् [समत्रिरेखं त्रिकोणं कृत्वा, पुनस्त्रिकोणबाह्यवृत्ताद्बहिस्तद्वृत्तविष्कम्भादिमानेन वृत्तं कृत्वाऽन्तराले-प्राग्वत्][3] षट्कोणं कृत्वा, तद्बहिरेकाङ्गुलमानेन वृत्तं कृत्वा, तद्बहिः प्राग्वदष्टाश्रं विधाय, तद्बहिस्तत्कोणाग्रस्पृष्टास्पृष्टिकया वृत्तं कृत्वा, तद्बहिरेकाङ्गुलमाने च वृत्तं कृत्वा, तत्र सर्वमध्यस्थवृत्तमध्ये मूलविद्याप्रथमाक्षरं त्रिकोणरूपं ससाध्यकादित्रयमुपरि सबिन्दुकं समालिख्य, तद्बहिस्त्रिकोणकोणेषु त्रिषु मूलविद्याया द्वितीयाक्षरादिदशमाक्षरान्तम्प्रतिकोणत्रयं त्रयमग्रादिप्रादक्षिण्येन नवाक्षराण्यालिख्य, तत्कोणान्तरालेषु त्रिष्वेकादशाक्षरादीन्येकोनविंशाक्षरान्तानि प्राग्वत् त्रित्रिक्रमेणाऽग्रकोणोत्तरपार्श्वादितद्दक्षिणपार्श्वान्तं नवाक्षराणि विलिख्य, तद्बहिः 'षट्कोणकोणेष्वग्रादिप्रादक्षिण्येन पञ्चाक्षराणि'[4] सप्तविंशाक्षरान्तानि प्रतिकोणं त्रित्रिक्रमेणाऽऽलिख्य, तत्कोणान्तरालेषु–प्राग्वदष्टत्रिंशाक्षरादीनि पञ्चपञ्चाशत्तमाक्षरान्तानि अष्टादशाक्षराण्यालिख्य, तद्बहिरष्टाश्रकोणाष्टके षट्पञ्चाशत्तमाक्षरादीन्येकोनाशीतितमाक्षरान्तानि चतुर्विशत्यक्षराणि प्राग्वत् त्रित्रिक्रमेणाऽऽलिख्य, तदन्तरालाष्टके चाशीतितमाक्षरादीनि त्र्यधिकशततमाक्षरान्तानि चतुर्विंशत्यक्षराणि प्राग्वदारम्भक्रमादालिख्य, चतुरधिकशततमाक्षरादीनि शिष्टमूलविद्यासप्ताक्षराणि तदन्ते भौमदशाक्षराणि च सम्भूय सप्तदशाक्षराणि अष्टकोणबाह्यवृत्तद्वयान्तरालवीथ्यां प्राग्वदभितो विलिख्य, तत्र देवीमावाह्य, प्राग्वत्

१. ख. [-] द्वादशक्रमेणोत्तरस्यां दिशि द्वादशक्रमेण । २. ख. नाऽयमंशः । ३. [-] ख. कोष्ठगोंऽशो नाऽस्ति । ४. '–' चिह्नान्तर्गतांशस्थानेऽयमंशः ख. पुस्तके–षट्कोणेष्वग्रादि-प्रादक्षिणेन विंशाक्षराणि ।

सम्पूज्य, जपित्वा, तद्यन्त्रं शरावादिसम्पुटितं[1] कृत्वा, भित्त्यादिषु संस्थाप्य, तत्र प्रतिदिनमभ्यर्च्य, बलिञ्च कृत्वा, पूर्वप्रोक्तफलमाप्नोतीति ।

कृत्वेत्यादिभिर्द्धारयेदित्यन्तैश्चतुर्भिः सर्वरोगशान्तिकरं यन्त्रमुपदिशति-तत्र षडष्टकोणानि–षट् अष्टकोणानीति पदच्छेदः । अन्तः षट्कोणानि बहिरष्टकोणानि चेत्यर्थः । षट्कोणानि पृथक् २ क्रमात्त्रिकोणवृत्तान्तरालान् षट्कोणसंयुतान् । पूर्वलिखितषट्कोणाष्टकोणयोः षट्कोणसंयुतान् त्रिकोणवृत्तान्तरालप्रदेशान् पृथक् पृथक् प्रत्येकं षट्कोणानि कुर्यादिति ग्रन्थियोजनाक्रमः[2] । बाह्यक्रमेण मध्यान्तं–बाह्याष्टकोणकोणादि[3]-सर्वमध्यगतषट्कोणकोणे[4]– मध्यगतं नक्षत्रतिथिवारयुक्. साध्याक्षरलेखनस्थानेष्विति शेषः । लिपिश इति–अस्य शक्तियुक्तमित्यत्रान्वयः । मातृकां विसर्जनीयरहितां–पञ्चाशदक्षरवतीं प्रत्यक्षरं विसर्ज्जनीययोगात्तद्राहित्यम् ।

शक्तिसंयुतामित्यस्याक्षरद्वयस्यार्थद्वयमाराध्यपादादत्रगतं लिख्यते । यथा— विसर्ज्जनीयसहितां मूलविद्याक्षरसहिताञ्चेति । सप्तसु मध्येषु–षट्कोणसप्तकस्य सप्तसु मध्येष्वित्यर्थः । विलिखेच्चकारेण–पूर्वोक्तयन्त्रवद्विद्याशिष्टाक्षरदशकं, भौमाक्षरदशकं च बाह्यवृत्तवीथ्यां विलिखेदित्येकोऽर्थः । समाकृष्यते इति **सम्प्रदायार्थः** । प्रदक्षिणम्–सर्वाण्युक्ताक्षराणि मायामध्यगतं हृल्लेखया क्रोडीकृतम् । प्रेतभूतपिशाचादि–आदिशब्देनाऽपस्मारादयः । कृतपीडाशान्त्यै० ।

**अयमत्र विरचनाक्रमः**–अभीष्टमानभ्रमणेन वृत्तं कृत्वा, तत्र नित्यानित्यापटले वक्ष्यमाणानुग्रहचक्रक्रमेण षट्कोणसप्तकमालिख्य, तद्बहिः प्राग्वदष्टकोणं विधाय, तद्बहिस्तदष्टकोणाग्रस्पृष्टास्पृष्टिकया वृत्तं कृत्वा, तद्बहिरेकाङ्गुलमानेन वृत्तञ्च कृत्वा, तत्र बाह्याष्टकोणादि–प्रादक्षिण्येन सविसर्ज्जनीयान् मातृकावर्णानादितोऽष्टौ समालिख्य, तेष्वेव कोणेषु मूलविद्याया आदितः[5] षोडशाक्षरेषु प्रतिकोणमेकमेकं चैवमष्टाक्षराण्यादितः समालिख्य, तत्कोणान्तरालेषु अष्टसु[6] मातृकायाश्च[7] नवमाक्षरादीनि षोडशाक्षरान्तमष्टाक्षराणि प्राग्वत् क्रमादालिख्य, तदन्तःषट्कोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन प्रतिषट्कोणं षट्सु षट् सु कोणेषु तदन्तरालेषु[8] षट्सु

१. क. सरावादि ० । २. ख. ग्रन्थयोजना ० । ३. ख. ०कोणकोणानि ० । ४. ख. कोणकोण । ५. क. ०विद्यायादितः । ६. ख. अष्ट । ७. ख. मातृकाया विद्याश्च । ८. ख. नाऽस्त्ययमंशः ।

च सम्भूय चतुरशीतिसङ्ख्येषु स्थानेषु मातृकाया विद्यायाश्च सप्तदशाक्षरादीनि पञ्चाशत्तमाक्षरान्तानि चतुस्त्रिंशदक्षराणि चतुस्त्रिंशत्स्थानेषु विलिख्य, शेषेषु पञ्चाशत्स्थानेषु पुनरप्यकारादीनि विसर्जनीयरहितानि क्षकारान्तानि प्रत्यक्षरं विसर्जनीययुक्तानि मातृकाक्षराणि पञ्चाशत्सङ्ख्यानि मूलविद्यैकपञ्चाशत्तमाक्षरादिभिः शततमाक्षरान्तैः पञ्चाशद्भिरक्षरैः सह प्राग्वत्क्रमेण समालिख्य, विद्याशिष्टाक्षरदशकं भौमार्णदशकं च प्राग्वत् सर्वबाह्यवृत्तवीथ्यामालिख्य, षट्कोणसप्तकमध्यसप्तके तत्तत्प्रयोगदिवसप्राप्तनक्षत्रतिथिवारान् सप्तम्यन्तानालिख्य, तदुपरि साधकादित्रयम्प्राग्वदालिख्य, तत्सर्वं यन्त्रं हृल्लेखयोपरिगतचतुर्थस्वरेण क्रोडीकृत्य, तत्र देवीमावाह्याऽभ्यर्च्य, प्रोक्तक्रमसंधारणात् प्रोक्तफलसिद्धिरिति ।

प्राक्प्रत्यगित्यादिभिर्द्वयोरित्यन्तैः पञ्चभिः स्तम्भनकरं कोष्ठयन्त्रमुपदिशति—तत्र तन्मध्याग्रे च पार्श्वयोः—तत्तच्छूलमध्यरेखाग्रे तत्तच्छूलरेखापार्श्वयोश्च । स्तम्भयेति—स्तम्भय इति त्र्यक्षराणि यथाक्रमं त्रिशूलमध्ये रेखाग्रे तद्दक्षिणवामपार्श्वयोश्च । मध्यकोष्ठे- सर्वमध्यस्थकोष्ठमध्ये[1] । सर्वमध्यकोष्ठाधः पङ्क्तिमध्यकोष्ठमारभ्य निर्गमनगत्येत्यर्थः । भौमसमन्वितान् भौमवर्णसमन्वितान् मन्त्रवर्णान् । गृहपत्तनयोः निर्माणस्तम्भने तद्गता, मङ्गलस्तम्भने वा इति शेषः । लोहदृषदोः पूर्वोक्ताधिकरणचतुष्टयस्य मध्ये । तालेन—हरितालेन । शुभं मनोहरम् । क्रमतः – शरावादिसम्पुटनक्रमतः । यावत्फलाप्तिस्तावत् कुर्वीत इत्यर्थः । नियतं—प्रतिदिवसम् ।

**रचनाक्रमो यथा**—प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च द्वादश द्वादश रेखाः समालिख्यैकविंशत्यधिकशतसङ्ख्यानि कोष्ठानि निष्पाद्य, तत्तद्रेखाया अष्टचत्वारिंशत्कं परितः प्रत्येकम्मूलं कृत्वा, तत्र सर्वमध्यस्थकोष्ठमध्ये साधकादित्रय[2] प्राग्वदालिख्य, तत्कोष्ठाधः-पङ्क्तिस्थकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्यनिर्गमनगत्या यावदक्षरसमाप्ति मूलविद्याक्षराणि विलिख्य, शिष्टकोष्ठेषु दशसु भौमार्णदशकमालिख्य, बाह्यगतत्रिशूलेषु मध्यगतरेखाग्रतद्दक्षवामपार्श्वयोश्च स्तम्भय-स्तम्भयेति प्रतित्रिशूलमालिख्यैतद्यन्त्रं भूर्जाद्यधिकरणचतुष्टयाद्यन्यतमस्थम्प्रोक्तद्रव्येणाऽऽलिख्य, प्राणप्रतिष्ठादिकं कृत्वा, तत्र देवीमावाह्याऽभ्यर्च्य, तत्प्राग्वच्छरावादिपुटितं कृत्वा,

१. ख. सर्वमध्यको० । २. क. साकादि० ।

प्रोक्तस्थानयोः संस्थाप्य तत्र सन्ध्याद्वयेऽपि प्रतिदिवसं सुगन्धपुष्पैरिष्टसिद्ध्यवधि पूजयन्नभीष्टफलमाप्नोतीति ।

प्राक्प्रत्यगित्यादिभिर्ध्रुवमित्यन्तैरष्टभिः श्लोकैः समस्ताभीष्टफलदम्महावज्रयन्त्रमुपदिशति—तत्र तैः सूत्रैः तेषु कोष्ठेष्वष्टाविंशति कोष्ठानि, प्रतिकोणमिति शेषः । शिष्टेषु त्रयोदशाधिकशतसङ्ख्येषु एकैककोष्ठात् । साध्यसाधककर्म च—साध्यसाधककर्माणीत्यर्थः । उपर्य्यधः मध्यत इति पूर्वत्राऽन्वयः ।

**तल्लेखनप्रकारस्तु**— उपरिकोष्ठे साधकमधःकोष्ठे साध्यं मध्यकोष्ठे कर्म चेति । शेषेषु दशोत्तरशतसङ्ख्येषु प्राग्वत् — प्रादक्षिण्यप्रवेशगत्या दशोत्तरशताक्षराणि यन्त्रवर्णान्[1] लिखेदित्यनेनाऽन्वयः । शिलादीत्यत्राऽऽदिशब्देन भूर्ज्जपत्रपटतालान्युच्यन्ते । पिशाचादीत्यत्राऽऽदिशब्दोऽपस्मारादिविषयः । उपप्लवाः उपद्रवाः । न भवन्तीति पूर्वत्राऽन्वयः । मर्मादीत्यत्रादिशब्दो द्वारभित्तिभोगादिविषयः । गेहगञ्च तत्—गृहे स्थापितं तद्यन्त्रमित्यर्थः ।

**अयमत्र विलेखनक्रमः**— प्राक्प्रत्यगुदक्षिणोदक् च षोडशसूत्रास्फालनेन पञ्चविंशत्यधिकशतद्वयकोष्ठानि निःपाद्य, तेषु कोष्ठेषु चतुर्षु कोणेषु प्रतिकोणमष्टाविंशत्यष्टाविंशतिकोष्ठानि सम्भूय द्वादशाधिकशतसङ्ख्यकोष्ठानि प्राग्वन्मध्ये वज्राकारं यथा भवति तथा मार्ज्जयित्वा, शिष्टेषु त्रयोदशाधिकशतसङ्ख्येषु कोष्ठेषु चतसृषु दिक्षु प्रतिदिशमेकैकं कोष्ठं सम्भूय चत्वारि कोष्ठानि मार्ज्जयित्वा, तत्र तत्र त्रिकोणानि प्राग्वत्समत्रिरेखानि कृत्वा, तत्र सर्वमध्यकोष्ठे कर्म, तदुपरि तत्र कोष्ठे साधकं, तदधःस्थितकोष्ठे साध्यं चाऽऽलिख्य, शिष्टेषु दशोत्तरशतसङ्ख्यकोष्ठेष्वग्रत्रिकोणादि-प्रादक्षिण्यप्रवेशगत्या तत्सङ्ख्यानि मूलविद्याक्षराणि विलिख्यैतत्प्रोक्ताधिकरणान्यतमगतं कृत्वा, प्रोक्तेषु देशेषु[2] प्राणप्रतिष्ठादिपुरःसरमभ्यर्च्य, स्थापनात् प्रोक्तफलसिद्धिरिति ।

वाय्वित्यादिभिर्भूतल इत्यन्तैः सप्तभिः श्लोकैर्वज्रवज्राभिधं यन्त्रं तद्विनियोगाञ्श्चोपदिशति– तत्र तैस्सूत्रैस्तेषु – वज्ररूपकोष्ठेषु । मध्ये—सर्वमध्यस्थवज्रकोष्ठे । साध्यनाम—साधकसाध्यकर्माणि । अग्रात् –मध्यकोष्ठाधस्थकोष्ठारम्भतः । अभितः—प्रादक्षिण्येन । अन्यानि—कोष्ठानि, अक्षराणि—अन्येषु

१. ख. मन्त्र० । २. ख. नाऽस्त्ययमंशः ।

कोष्ठेषु अक्षराणि लिखेदित्यर्थः । महीवर्णपूर्वाणि—पूर्वं[1] भौमाक्षराणि विलिख्य, शेषेषु कोष्ठेषु विद्याक्षराणि लिखेदित्यर्थः । शिवे इति सम्बुद्धिः । शिलादीत्यत्रा-दिशब्दो भूर्ज्जपत्रपटादिविषयः । अन्यानि—शत्रूत्थापितकृत्याकालभस्मादीनि । प्रोक्तेषु—रोगादिषु, आर्तिषु, पीडासु, प्रोक्तरोगादिसञ्जातासु पीडास्वित्यर्थः । तत् वज्रं-वज्रवज्रम् । मध्ये-सर्वमध्यस्थकोष्ठमध्ये । तु–विशेषे[2] । क्षीरद्रुक्क्वाथ-पूरितम्—अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटानां चतुर्णां क्षीरवृक्षाणां त्वग्भिः सह क्वथितैः प्रशमितोष्णैः खारिमानैस्तोयैः पूरितम् । निधायेत्यस्य पूर्वत्राऽन्वयः । देवीं—पञ्चमीम् । सलिले कुम्भस्थे इति शेषः । आत्मवानधिगतः—तैर्जलैर्यन्त्रविद्यादि-शक्तिसङ्क्रमतः कलितानुभावैः ।

अयमत्र **यन्त्रविलेखनक्रमः** । इष्टमानभ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, प्राक्प्रत्यग्-दक्षिणोत्तरञ्च तद्वृत्तावधि ब्रह्मसूत्रद्वयमास्फाल्य, प्राक्प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रस्य प्राग-ग्राद्दक्षिणोत्तरब्रह्मसूत्रदक्षिणाग्रान्तं, तदग्रात् प्राक्पश्चिमब्रह्मसूत्रपश्चिमाग्रान्तं, तदग्रात् प्राक्पश्चिमब्रह्मसूत्रप्रागग्रान्तं ज्यारूपं सूत्रचतुष्टयमास्फाल्य, ब्रह्मसूत्रद्वयस्य वृत्तस्य च मार्ज्जनाद्दिग्गतकोणचतुष्टयं समचतुरस्रं विधाय, वायुदिक्स्थरेखादि-वह्निदिक्स्थरेखान्तं, नैरृतदिक्स्थरेखादीशानदिग्गतरेखान्त-ञ्च समान्तरालदशसूत्रास्फालनेन वज्रवज्राकारमेकविंशत्यधिकशतसङ्ख्यवज्र-रूपकोष्ठसहितं यन्त्रं विधाय, तत्र सर्वमध्यकोष्ठे साधकसाध्यकर्माणि प्राग्वदालि-ख्य, तदधस्थवज्रकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्यनिर्गमगत्या भौमाक्षरदशकं वज्रकोष्ठ-दशके विलिख्य, शेषेषु दशोत्तरशतसङ्ख्यवज्ररूपकोष्ठेषु तत्सङ्ख्यानि मूलविद्या-क्षराणि विलिख्यैतद्यन्त्रं प्रोक्ताधिकरणेष्वन्यतमगतं कृत्वा, स्थापनेन पूजनेन च तद्यन्त्रे प्रोक्तक्रमाभिषेकेण वा प्रोक्तम्फलं सिद्ध्यतीति ।

विद्येत्यादिना श्लोकेन प्रोक्तेषु सप्तसु यन्त्रेषु यन्त्रत्रयं विद्याप्राप्त्यभिषेकेऽ-प्यतिदिशति – तत्र तुर्विशेषे । वज्रेऽस्मिन्ननन्तरपूर्वोक्तवज्रवज्राभिध सप्तमे यन्त्रे कोष्ठवज्रके कोष्ठवज्ररूपे । षष्ठयन्त्रे सैकविंशशते–सैकविंशशतसङ्ख्यकोष्ठरूपे । पञ्चमे यन्त्रे । वा विकल्पे । तेषु त्रिष्वन्यतमयन्त्र इत्यर्थः ।

---

१. ख. पूर्वे । २. ख. विशेषे ।

वेदाङ्गुलेत्यादिभिरनयेत्यन्तैश्चतुर्भिः श्लोकैरखिलसिद्धिकरं यन्त्रं **विद्यावैभवं** चोपदिशति—तत्र वेदाङ्गुलपरिभ्रान्त्या—प्रतिदिशञ्चतुरङ्गुलमानपरिभ्रान्त्या ततस्तद्वृत्ताद्द्वयङ्गुले[1] — द्वयङ्गुलमाने[2], एकादशवृत्तानीति शेषः । तेषु वृत्तेषु द्वयङ्गुलमानेषु सैकादशांशसहितेष्विति शेषः । एतन्मानमन्तर्वृत्तस्यैवोक्तम् । तिर्य्यक्सूत्राणि—सर्ववृत्तमध्यवृत्तात् सर्वबाह्यवृत्तान्तगरूपाणीत्यर्थः । तेषु-कोष्ठेषु । प्राङ्मध्यात्—सर्वमध्यवृत्तान्तर्भूतप्रदेशरूपकर्णिकाया बहिस्तदनन्तरवीथ्यां प्राङ्मध्यकोष्ठात् । रेखाग्राणि—बाह्यवृत्तागतैकादशसङ्ख्यानीति शेषः । साध्यञ्च[3] मध्यत इत्यत्र चकारेण कर्णिकायां सर्वबाह्यप्राङ्मध्यकोष्ठे च साधकसाध्यकर्माणि लिखेदिति सम्प्रदायार्थः । प्राग्वत्—प्राणप्रतिष्ठापुरःसरमर्चनधारणस्थापनादिभिरखिलविनियोगेषु प्रोक्तेष्विति शेषः ।

**अयमत्र विलेखनक्रमः** । प्रतिदिशं चतुरङ्गुलमानभ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिर्द्वचङ्गुल—द्वयङ्गुलमानेन प्राग्वदेकादशवृत्तानि निष्पाद्य, तत्र सर्वमध्यवृत्ते सर्ववाह्यवृत्ते च तत्तद्विष्कम्भमानं त्रिगुणीकृत्य, तत्तन्मानमेकादशधा विभज्य, तत्तद्देशेष्वेकादशचिह्नानि पश्चिमादि विधाय, सर्वमध्यवृत्तस्य चिह्नैकादशबाह्यवृत्तस्यैकादशचिह्नावध्यैकादशसूत्रान्त्यस्वरूपाण्यास्फाल्य, तत्सर्वबाह्यवृत्तास्पृगेकादशरेखाग्रं किञ्चित् प्रसार्य्य, प्रत्येकं शूलाकारं कृत्वा, एवं मध्यकर्णिकायां बहिरेकविंशत्युत्तरशतकोष्ठसहितं वृत्ताकारं बहिःशूलोपेतं यन्त्रं निष्पाद्य, तत्र तत्कर्णिकायां साधकादीनि प्राग्वदालिख्य, तदन्तेन बाह्यवीथ्यां प्राङ्मध्यकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्यनिर्गमनरीत्या दशोत्तरशतसङ्ख्येषु कोष्ठेषु विद्याक्षराणि तत्तत्सङ्ख्यान्यालिख्य, शिष्टकोष्ठैकादशके भौमाक्षरदशकमालिख्य, शिष्टे चैकस्मिन् प्राग्वत् साधकत्रयमालिख्यैवं तत्प्रोक्ताधिकरणेष्वन्यतमगतं कृत्वा, प्राग्वत्प्रोक्तप्रयोगेषु प्राणप्रतिष्ठापुरःसरमर्च्चनादिभिः प्रोक्तफलसिद्धिर्भवेत् । इति ।

**इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मजगोस्वामि-**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते**
**सिंहसिद्धान्तसिन्धौ द्विपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः ।। ५२ ।।**

---

१. ख. वृत्ताद्द्वयङ्गुले द्वयङ्गुले । २. ख. द्वयङ्गुलमाने द्वयङ्गुलमाने । ३. क. सन्ध्याञ्च ।

## [ त्रिपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः ]

### ।। अथ कुरुकुल्लाविधानम् ।।

तत्र श्रीतन्त्रराजे—

प्राणदाहौ धरायुक्तौ पुनराद्यं रसे मरुत् ।
व्याप्तम्मरुच्छक्तियुतं भूः स्वयुक्ता ततस्त्रयम् ।। १ ।।

अस्याऽऽदौ तु रसायुग्मञ्चरेण समयोजितम् ।
दाहेन वह्निशक्तिभ्यां युतो हंसस्ततः परम् ।। २ ।।

नभो द्विर्हृत् सदाहाम्बु ज्या शून्यं स्वेन[1] संयुतम् ।
अम्बु पश्चाद्वियद्युक्तं मरुता तु नमः प्रिये ।। ३ ।।

शून्यं व्याप्तं भुवा हंसः पूर्वान्त्यौ स्यान्मनुत्रयम् ।
अस्य षष्ठादि पञ्चार्णादन्त्यौ स्यादाद्य ईरितः ।। ४ ।।

एकादशाक्षरादन्त्यौ द्वितीयः समुदीरितः ।
तृतीयः पञ्चविंशार्णः प्रोक्तमन्त्रा इति क्रमात् ।। ५ ।।

अस्यार्थः—

तत्र प्राणदाहौ धरायुक्तौ, प्रत्येकमिति शेषः । तेन कुरु इति । पुनराद्यं कु इति । रसे लद्वयम्, मरुदाकारः ल्ला इति । व्याप्तं मरुच्छक्तियुतम्-याः इति । भूः स्वयुक्ता-ओं इति । अतस्त्रयम्- ॐ इत्यस्योपरि अस्य मन्त्रस्यादिभूतं कुरुकु इत्यक्षरत्रयम्भवेदित्यर्थः । रसायुग्मं चरेण समायोजितम्-ल्ले इति । दाहेन वह्निशक्तिभ्यां युतो हंसः- ह्रीं इति । नभो द्विः—म म इति । हृत्-सकारः । सदाहाम्बु—दाहसहितमम्बिव त्यर्थः । तेन वं इति । ज्या—जकारः । शून्यं स्वेन युतं—नं इति । अम्बुपश्चात्—तदनन्तरं वकारः । वियत् शकारः । युक्तं—मरुन्नभ इति यावत् । मा इति । शून्यं नकारः । व्याप्तं यकारः । भुवा हंसः—हो इति । पूर्वान्त्यौ-पञ्चमीविद्याचरमाक्षरद्वयं, स्वाहेत्यर्थः । स्यान्मनुत्रयम्—अयमेव मन्त्रः अक्षर-विभागयोगक्रमात् मन्त्रत्रयम्भवतीत्यर्थः । अस्य षष्ठादि पञ्चार्णादन्त्यौस्यादाद्य ईरितः । एतदुक्तम्भवति—अस्य पञ्चविंशाक्षरस्य मन्त्रस्य षष्ठाक्षरमारभ्य

---

१. क. खेन ।

दशमाक्षरान्तमुच्चार्य्य ततः परं स्वाहा इति वदेत् । तेन सप्ताक्षरी प्रथमविद्या भवतीति । एकादशाक्षरादन्त्यौ द्वितीयः समुदीरितः—अस्यैव पञ्चविंशाक्षरस्याऽऽद्याक्षरमारभ्यैकादशाक्षरान्तमुच्चार्य्य ततः परं तच्चरमभूत-स्वाहेति अक्षरद्वय-योजनात् त्रयोदशाक्षरी विद्या भवतीति । तृतीयः पञ्चविंशार्णः— प्रागेवाऽभिहितः प्रथमद्वितीययोः प्रकृतिभूतः पञ्चविंशार्णो मन्त्रस्तृतीय इत्यर्थः ।

तथा— इक्षिवराघृतदुग्धाब्धिमध्यगे नवरत्नके ।
द्वीपे तां ललितान्नित्यविनोदानन्दितां यजेत् ।। ६ ।।

तत्तीरे पूजयेद्देवीम्पञ्चमीन्नीरपालिकाम् ।
तत्सागरेषु परितो रत्नपोतचरां यजेत् ।। ७ ।।

तदाज्ञया रत्नपोतन्तन्नाम्नैव समर्च्चयेत् ।
बलिचक्रञ्च तेनैव तन्मध्ये तु समर्च्चयेत् ।। ८ ।।

पूर्वपश्चिमदिग्द्वारसंयुतञ्चतुरश्रकम् ।
कृत्वा तदन्तः पद्मञ्च साष्टपत्रं सकर्णिकम् ।। ९ ।।

कर्णिकायाञ्चारु कृत्वा नवयोनिं समर्च्चयेत् ।
षडङ्गम्बालया कृत्वा तेनाऽर्घ्यमपि साधयेत् ।। १० ।।

त्रिखण्डमुद्रया मूलमन्त्रेष्वाद्येन चाऽऽवहेत् ।
ध्यात्वेत्थम्परिवारैस्तान्देवीङ्गन्धादिभिः क्रमात् ।। ११ ।।

विकीर्णकुन्तलान्नग्नां रक्तामानन्दविग्रहाम् ।
दधानाञ्चिन्तयेद्बाणचापपाशसृणीन्करैः ।। १२ ।।

तत्समानायुधाकारवर्णा देव्यस्तु बाह्यगाः ।
ऋतुस्नाताः स्फुरद्योन्यः सदानन्दारुणेक्षणाः ।। १३ ।।

हृल्लेखया स्थापनादीनुपचारान् समाचरेत् ।
ततस्तदाज्ञयाऽऽरोहेद् भ्रामिणीन्द्राविणीं यजेत् ।। १४ ।।

पश्चिमद्वारमारभ्य दक्षशाखादि पूजयेत् ।
सूर्य्यं सोमतिथिं वारं योगर्क्षकरणान्यपि ।। १५ ।।

यक्षिणीश्च तथा ताराम्पूर्वद्वारस्य शाखयोः ।
व्योमवाय्वग्नितोयक्ष्मारूपिणीशक्तिसंयुतम् ॥ १६ ॥

शब्दं स्पर्शञ्च रूपञ्च रसं गन्धञ्च पूर्ववत् ।
प्राणान् बुद्धिन्तथा शक्तिमष्टपत्रेषु पूजयेत् ॥ १७ ॥

तदन्तरष्टकोणेषु वाग्देव्यष्टकमर्चयेत् ।
ततो बाणान्धनुः पाशमङ्कुशञ्चाऽभितो यजेत् ॥ १८ ॥

मध्यत्रिकोणकोणेषु सेच्छाज्ञानक्रियात्मिकाः ।
शक्तीर्यष्ट्वाऽथ तन्मध्ये संविदासनमर्च्चयेत् ॥ १६ ॥

ततस्ताम्पञ्चविंशार्णमूलमन्त्रेण पूजयेत् ।
ततस्तदाज्ञया पोतम्परीतन्द्वीपमानतः ॥ २० ॥

नमोऽन्तैर्नामभिः पूर्वमर्च्चयेद् गन्धपुष्पकैः ।
नवरत्नमयन्द्वीपमित्यादि प्रागुदीरितम् ॥ २१ ॥

एवं समर्च्चनं देव्या ललितायाः प्रियङ्करम् ।
एवन्देवीम्पूजयितुः शीघ्रम्बहुमनीषितम् ॥ २२ ॥

प्रसीदति यतस्तस्मात् पूजयेद्देवमीश्वरीम्[1] ।
देवीन्तां कुरुकुल्लान्तु पोतादुपरि पूजयेत् ॥ २३ ॥

पञ्चविंशार्णमूलेन पूजान्ते परमेश्वरि ।
देव्या बलिः समाख्यातः ताराशक्तेस्तु विद्यया ॥ २४ ॥

तां शृणु त्वम्प्रिये वच्मि ताराविद्यां दशाक्षरीम् ।
भूः स्वेन मरुता युक्तो रयो दाहश्चरान्वितः ॥ २५ ॥

रयो धरान्वितः पश्चाद्रययुग्मम्मरुद्युतम् ।
एतत्तृतीयं षष्ठं स्याच्चतुर्थं सप्तमम्भवेत् ॥ २६ ॥

षष्ठन्तदष्टमं विद्याद् हृदम्बु[2] मरुदन्वितम् ।
हंसश्च मरुता युक्तः प्रोक्ता विद्या दशाक्षरी ॥ २७ ॥

---

१. ख. पूजयेदेवमीश्वरि । २. ख. विन्द्या० ।

अनयाऽस्या बलिन्दद्याद्विद्यया परमेश्वरि ॥
ध्यानं वक्ष्ये शृणु प्राज्ञे समस्तापन्निकृन्तनम् ॥ २८ ॥

यस्मात्तोयेषु सर्वत्र बाधा न भवति स्मृतेः ।
श्यामवर्णान्द्विनयनान्द्विभुजां वरपङ्कजे ॥ २९ ॥

दधानाम्बहुवर्णाभिर्बहुरूपाभिरावृताम् ।
शक्तिभिः स्मेरवदनां रक्तमौक्तिकभूषणाम् ॥ ३० ॥

रत्नपादुकयोर्न्यस्तपादाम्बुजयुगां स्मरेत् ।
होमङ्कुर्यान्नित्यशस्तु घृताक्तै रक्तपुष्पकैः ॥ ३१ ॥
सुगन्धिभिः सितैः पुष्पै रत्नाज्याभ्याङ्घृतेन वा ।

देव्या इत्यादिभिः परमेश्वरीत्यन्तैश्चतुर्भिः श्लोकैर्देव्याः कुरुकुल्लायास्तत्तन्मन्त्रं, नित्यपूजायां बलिं, तद्विद्यां दशाक्षरीं तथा बलिदानञ्चोपदिशति—तत्र देव्याः—कुरुकुल्लायाः । भूः स्वेन—ॐ इति । मरुता युक्तो रयः—ता इति । दाहश्चरान्वितः—रे[1] इति । रयो धरान्वितः—तु इति । रययुग्मं मरुद्युतं—त्ता इति । एतत्तृतीयं षष्ठं स्यात्—एतस्या एव विद्याया रे[2] इति । तृतीयमक्षरमस्याः षष्ठमक्षरं स्यादित्यर्थः । चतुर्थं सप्तमम् अस्या एव विद्यायाश्चतुर्थं तुकाराक्षरमेवास्याः सप्तममक्षरं भवेदित्यर्थः । षष्ठे तदष्टमम्—अस्या एव विद्यायाः षष्ठं रे इत्यक्षरमेवास्या अष्टममक्षरं विद्यात् । हृदम्बु मरुदन्वितम्—स्वा इति । हंसश्च मरुता युक्तः—हा इति । अनया—प्रोक्तदशाक्षर्या । सर्वपूजादौ षोडशार्णेन बलिरिति सम्प्रदायः ।

**॥ अथ प्रयोगः ॥**

तत्र प्रातःकृत्यादि योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि—दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः, मुखे—पङ्क्तिछन्दसे नमः, हृदये—श्रीकुरुकुल्लादेवतायै" इति विन्यस्य ममाभीष्टार्थे विनियोगः । इति कृताञ्जलिरुक्त्वा—

"ऐं हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, सौः शिखायै वषट्, ऐं कवचाय हुम्, क्लीं नेत्राय वौषट्, सौः अस्त्राय फट्" इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, मूलेन व्यापकं विन्यस्य, विकीर्णकुन्तलामित्यादि ध्यात्वा, मानसपूजान्ते—

---

१. ख. रो । २. ख. र ।

पूर्ववत् सिन्दूरादिना नवयोन्याढ्यकर्णिकमष्टदलकमलं कृत्वा, तद्बहिः प्राक्पश्चिमद्वारयुक्तं चतुरस्रद्वयमिति पूजाचक्रं निर्माय, पात्रस्थापनाद्यात्मपूजान्ते पूजाचक्रमर्घोदकेनाऽभ्युक्ष्य, मण्डूकादि-पृथिव्यन्तं योगपीठं सम्पूज्य, पश्चिमादि-विलोमेनेक्षिवराघृतदुग्धाब्धीन् सम्पूज्येक्षुसागरतीरे द्वीपस्य निर्ऋतिकोणे— "ॐ ह्रीं श्रीं वाराहीविद्या" मुच्चार्य "श्री वाराहीदेवीश्रीपादुकाम्पूजयामी" ति मूलदेव्यभिमुखोपविष्टां सम्पूज्य, ततो वाराह्यनुज्ञया "ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं रत्नपोताय नमः" इति सम्पूज्य, तदुपरि रत्नसिंहासनं सम्पूज्य, तन्मध्ये—"ह्रीः बलिचक्राय नमः" तन्मध्ये—"संविदासनाय नम" इति देव्या भर्तृभूतं पुरुषं सम्पूज्य, तत्र पञ्चविंशाक्षर्या कुरुकुल्लाविद्यया त्रिखण्डामुद्रया च तां समावाह्य "ह्रीः" इति स्थापनादि-परमीकरणान्तमुद्राः प्रदर्श्य, तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय, पाशादिचतुर्मुद्राः प्रदर्श्याऽऽसनादिपुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य 'श्रीकुरुकुल्ले आवरणपूजार्थमनुज्ञां देही" ति प्रार्थ्य, तदनुज्ञया साधकः स्वयं रत्नपोतमारुह्य, रत्नपोतस्य पूर्वपश्चिमकोटचोः—"४ ह्रीः भ्रामणीश्री०, ४ ह्रीः द्राविणीश्री०" इति सम्पूज्य पश्चिमद्वारस्य दक्षिणशाखामारुह्य, नवशक्तीः प्रादक्षिण्येन पूजयेद्यथा—

पश्चिमद्वारदक्षिणशाखायां—"४ ह्रीः सूर्य्यरूपिणीशक्तिश्री०," वायव्यकोणे—"४ ह्रीः सोमरूपिणीशक्तिश्री० उत्तरे— "४ ह्रीः तिथिरूपिणीशक्तिश्री०"[1] ईशाने—"४ ह्रीः वाररूपिणीशक्तिश्री०," पूर्वद्वारस्योत्तरशाखायां—"४ ह्रीः योगरू०," दक्षशाखायां— "४ ह्रीः ऋक्ष०," आग्नेये— "४ ह्रीः करण०" दक्षिणे—"४ ह्रीः यक्षिणीरू०," नैर्ऋत्ये—"४ ह्रीः ताराारूपिणीशक्तिश्री०," ।

ततोऽष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन — "ह्रीः व्योमरूपिणीशब्दशक्तिश्री०, ४ ह्रीः वायुरूपिणीस्पर्शशक्तिश्री०, ४ ह्रीः अग्निरूपिणीरूपशक्तिश्री०, ४ ह्रीः तोयरूपिणीरसशक्तिश्री०, ४ ह्रीः क्ष्मारूपिणीगन्धशक्तिश्री०, ४ ह्रीः प्राणरूपिणीशक्ति०, ४ ह्रीः बुद्धिरूपिणीशक्तिश्री०, ४ ह्रीः शक्तिरूपिणीशक्तिश्री०,

ततोऽन्तरष्टयोनिषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन—"४ अं १६ ब्लूं वशिनीवाग्देवताश्री०, ४ कं ५ कलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवताश्री०, ४ चं ५ न्ब्लीं मोदिनी-

---

१. क. ४ ह्रीः रूपिणी० ।

वाग्देवताश्री०, ४ टं ५ म्लूं विमलावाग्देवताश्री०, ४ तं ५ ज्म्रीं अरुणावाग्-देवताश्री०, ४ पं ५ हसलवयूं जयिनीवाग्देवताश्री०, ४ यं ५ झमरयूं सर्वेश्वरी-वाग्देवताश्री०, ४ षं ५ क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवताश्री०" इति सम्पूज्य,

तदन्तर्योनेर्बहिर्देव्या दक्षिणभुजाग्रमारभ्य वामावर्त्तेन दक्षिणोर्ध्वभुजाग्र-पर्य्यन्तेषु चतुःस्थानेषु— "४ ह्रीः बाणरूपिणीशक्तिश्री०, "४ ह्रीः चापरूपिणी-शक्तिश्री०, ४ ह्रीः पाशरूपिणीशक्तिश्री०, "४ ह्रीः अङ्कुशरूपिणी-शक्तिश्री०' ।

ततो मध्ययोनौ देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन "४ ह्रीः इच्छारूपिणीशक्ति०, ४ ह्रीः ज्ञानरूपिणीशक्तिश्री०, ४ ह्रीः क्रियारूपिणीशक्तिश्री०,"

ततो मध्ये संविदासनं सम्पूज्य, तस्मिन् कुरुकुल्लां प्रागुक्तरूपाम्पञ्चविंशा-र्णमूलविद्यया गन्धादिभिः पुनः सम्पूज्य, धूपदीपौ निवेद्य, नित्यहोमं कृत्वा, पूजादौ दत्तसर्वभूतबलिसमीपे प्राग्वन्मण्डलं विरच्य, "ॐ तारे तुत्तारे तुरे स्वाहे"ति मन्त्रेणाऽऽवाह्य, गन्धादिभिः सम्पूज्य, बलिपात्रं निधाय "ॐ तारे-तुत्तारे तुरे स्वाहा श्रीतारादेवि एष ते बलिर्नम" इति धारादानेन बलिमुत्सृज्याऽऽ-रात्रकादि प्राग्वत् सर्वं समापयेदिति ।

प्राग्वद् व्रतयुतो विद्याम्पञ्चविंशतिलक्षकम् ।
जपित्वा पूजयेत् सन्ध्यास्वपि तर्प्पणहोमतः ।। ३२ ।।

कुर्य्यान्नित्योदितेष्वन्यतमेन हवनक्रियाम् ।
एवं संसिद्धविद्यस्तु नित्यार्च्चानिरतस्तथा ।। ३३ ।।

प्रयोगानाचरेद्भक्त्या काम्यान् प्रोक्तक्रमेण वै ।
होमेन पूजया यन्त्रैर्भावनेन च ताञ्छृणु ।। ३४ ।।

घृताक्तैः सर्षपैर्होमाद्वशयेद्वनिताजनम् ।
सर्षपस्नेहसंसिक्तैर्मरिचैरानयेच्च ताः ।। ३५ ।।

तैलाक्तैस्तु तिलैर्होमान्मध्यरात्रे यथाविधि ।
नारीनरनृपानन्यान् वशयेद्यावदायुषम् ।। ३६ ।।

अजासृजाक्तबन्धूककुसुमैर्मध्यरात्रके ।
हवनाद्वनिताः सर्वा मोहयेत् प्रेमहेतुकैः ।। ३७ ।।

क्षीराक्तैर्मल्लिकापुष्पैर्हवनाद् ब्राह्मणान्नृपान् ।
वशयेच्छतपत्रैश्च तथा विचकिलैः शुभैः ।। ३८ ।।

सवत्ससितगोदुग्धसमेतैर्नारिकेजलैः ।
फलक्षोदैः सितायुक्तैर्हवनात् स्वर्णमाप्नुयात् ।। ३९ ।।

नारिकेलफलक्षोदैर्गुडक्षौद्रघृतप्लुतैः ।
प्रागुक्तकालतो वित्तनिचयं समवाप्नुयात् ।। ४० ।।

कदलीफलहोमेन स्यादाढ्योऽम्बुजहोमतः ।
कल्हारहोमतोऽभीष्टँल्लभते कुमुदद्वयैः ।। ४१ ।।

उत्पलैः पूजयेद्देवीं समस्तापद्विमुक्तये ।
पद्मैः सितैर्लोहितैश्च पूजयेदिन्दिराप्तये ।। ४२ ।।

कुमुदाभ्यां यजेद्वित्तलाभाय यशसे तथा ।
जपाबन्धूककुसुमैस्तथा दाडिमजैरपि ।। ४३ ।।

सौगन्धिकैर्विचकिलैः कुटजैः शतपत्रकैः ।
पुन्नागजैः पाटलजैश्चम्पकोत्थैर्यजैच्छ्रियै ।। ४४ ।।

सप्तभिः सप्तवारेषु भास्करादिषु पूजयेत् ।
प्रोक्तकालेन वित्ताढ्यो धराधान्यांशुकादिमान् ।। ४५ ।।

चन्दनैरर्च्चयेन्नित्यं समस्तमपि वाञ्छितम् ।
लभते प्रोक्तकालेन तथा कालागुरुद्रवैः ।। ४६ ।।

कुसुमैर्नित्यशः पूजाङ्कुर्यात् सौभाग्यसिद्धये ।
कर्प्पूरैरायुषः सिद्धयै वश्यश्रीधनसिद्धये ।। ४७ ।।

मृगस्वेदमदाभ्याञ्च पूजयेन्मासमब्दकम् ।
कन्दर्प्पसमसौभाग्यो वनितासु नरो भवेत् ।। ४८ ।।

एलालवङ्गकङ्कोलजातिभिर्नित्यशो यजेत् ।
अब्दमात्रं[1] ततो लोके विश्रुतः स्यात् सुवैभवैः ।। ४९ ।।

---

१. क. शब्दमात्रं ।

कर्पूरशकलैः पूजा सर्वाभीष्टप्रदा भवेत् ।
पूजितैस्तैश्च जग्धैः स्यान्नरो जात्यखिलप्रियः[1] ।। ५० ।।

वृत्तत्रयन्तथाष्टारमब्जन्तन्मध्यतस्तथा ।
नवयोनिं विधायाऽत्र मध्ये मायां ससाध्यकाम् ।। ५१ ।।

आलिख्याऽष्टसु कोणेषु मन्त्रार्णाष्टकमालिखेत् ।
बहिर्द्दलेष्वपि तथा लिखेद् द्विद्विक्रमेण वै ।। ५२ ।।

बहिर्मातृकया मायां स्वगया प्रतिलोमया ।
क्रमेण चाऽभिसंवेष्ट्य तेन यन्त्रेण साधयेत् ।। ५३ ।।

समस्तं वाञ्छितम्पूजाधारणस्थापनादिना[2] ।
यन्त्रं रोचनयाऽऽलिख्य भूर्ज्जे वा क्षौमखण्डके ।। ५४ ।।

चन्दनेन विलिख्यैतत्पटे वा फलकोदरे ।
तत्र देवीं समावाह्य पूजयेत्तैर्दिनैर्भवेत् ।। ५५ ।।

वशे त्रिभुवनं सर्वं नरनारीनृपादिकम् ।
गजवाजितरक्ष्वादि तिर्य्यग्जातिरपि ध्रुवम् ।। ५६ ।।

तद्यन्त्रं सिन्धुतीरे वा नदीतीरेऽथवा लिखेत् ।
गैरिकेण समावाह्य देवीन्तत्रैव पूजयेत् ।। ५७ ।।

गुलिकीकृत्य सिक्थस्य मध्यगन्तद्विधाय[3] तु ।
तापयेद्रात्रिषु दिनैः प्रागुक्तैः स्त्रियमानयेत् ।। ५८ ।।

समस्तरोगदुःखार्त्तिशान्तिः स्यादुदितैर्दिनैः ।
लाभश्च पूजनात्तत्तु[4] पशुदासीधनादिकम् ।। ५९ ।।

तद्यन्त्रञ्चन्दनैः कृत्वा पीठे तद्दिनपूजनात् ।
पुत्रपौत्रकलत्राज्ञाधनधान्यर्द्धिमान् भवेत् ।। ६० ।।

तद्यन्त्रं हेम्नि रूप्ये वा भूर्ज्जे वाऽऽलिख्य धारणात् ।
समस्तरोगदुःखार्त्तिरहितो वर्द्धते सुखी ।। ६१ ।।

---

१. ख. जात्याखिल० । २. ख. ०धारण० । ३. ०गन्तुद्वि० । ४. ख. ०त्तत्र ।

एतद्यन्त्रविरचनाक्रमो[1] यथा—

अभीष्टमानभ्रमेणाऽन्तर्बहिर्विभागेन वृत्तत्रयं समध्यसूत्रं निष्पाद्य, तत्राष्टदलं पद्मं विधाय, तत्कर्णिकायाम्प्राग्वन्नवयोनिचक्रं कृत्वा, तत्र सर्वमध्ययोनिमध्ये प्रथमद्वितीयखण्डप्रकृतिभूतपञ्चविंशाक्षरतृतीयमूलविद्यायामेकादशाक्षरभूतां सविसर्ज्जनीयां हृल्लेखां साधकादित्रययुक्तामालिख्य, बाह्यकोणेष्वष्टस्वग्रादिप्रादक्षिण्यात्तन्मूलविद्याक्षरेष्वादितोऽष्टौ सँल्लिख्य, तद्बहिरष्टदलेषु प्रागुक्तक्रमात् सर्वमध्यलिखितहृल्लेखाविधुरं शिष्टाक्षरषोडशकं प्रतिदलं द्व्यक्षरक्रमात् समालिख्य, तद्बाह्यगतवृत्तत्रयान्तरालवीथीद्वयेऽन्तर्वीथ्यां मातृकया विसर्ज्जनीययुक्तया प्रतिलोमया प्राग्वत् संवेष्टय, तत्तद्बाह्यवीथ्यामनुलोमया सबिन्दुकया च तथा संवेष्टय, वक्ष्यमाणपूजाक्रमेण विनियोगात् सर्वफलसिद्धिरिति ।

तथा— प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च सूत्रषट्कनिपातनात् ।
कोष्ठेषु च पञ्चविंशत्सु त्रीणि कोणेषु मार्ज्जनात् ॥ ६२ ॥

कोष्ठैर्वज्रन्ततः शेषैः त्रयोदशभिरीरितम् ।
तन्मध्ये शक्तिमायास्थामालिख्याऽऽख्यान्ततोऽभितः ॥ ६३ ॥

लिखेद्विद्यान्ततस्तस्मिन् पूजयेदर्द्धरात्रके ।
वाञ्छितां वनिताम्मानकुललज्जातिलङ्घिनीम् ॥ ६४ ॥

तृणराजदले कृत्वा यन्त्रं सर्षपहिङ्गुभिः ।
पटुशुण्ठीमागधिकामरीचार्कपयोयुतम् ॥ ६५ ॥

निशासु सिक्थगन्दीपवह्नौ सन्तापयेज्जपन् ।
विद्यान्त्रयोदशार्णान्तु तद्दिग्वक्त्रो दिनैः स्त्रियम् ॥ ६६ ॥

आकर्षयेन्न चाऽऽगच्छेत्तत्र कामज्वराच्छनैः ।
अवस्थाभिश्च दशभिर्मृतिमेति सुनिश्चितम् ॥ ६७ ॥

भूर्ज्जे तालदले वा तदालिख्य स्पष्टविग्रहम् ।
मधूच्छिष्टप्रतिकृतेर्हृद्गतन्तापयेत्तथा ॥ ६८ ॥

नरं नारीं नृपञ्चान्यं प्राणिनं स्नेहविह्वलम् ।
करोति यावद्देहान्ते न प्रतीपा भवन्ति च ॥ ६९ ॥

---

१. ख. ०विरचन० ।

कज्जलैर्यन्त्रमालिख्य भूर्ज्जे क्षौमे सितेऽथवा ।
जपित्वा धारयेत् सर्वरोगदुःखार्त्तिनाशनम् ।। ७० ।।

गैरिकैश्चन्दनोपेतैरालिख्य विमलेऽम्बरे ।
तदास्तीर्य शयानस्य वैरिणो दाससन्निभाः ।। ७१ ।।

**अस्यार्थः**–तत्र प्राक्प्रत्यगित्यादिभिः सन्निभा इत्यन्तैर्दशभिः श्लोकैस्त्रयोदशाक्षरया द्वितीयया मूलविद्यया कोष्ठवज्रयन्त्रनिर्माणं, तेन यन्त्रेण प्रयोगचतुष्टयञ्चोपदिशति । **यन्त्रविरचनक्रमो** यथा— प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च समान्तरालानि षट्सूत्राण्यास्फाल्य, पञ्चविंशति कोष्ठानि निष्पाद्य, तेषु कोष्ठेषु प्रतिकोणं चतुर्षु-कोणेषु त्रीणि त्रीणि कोष्ठानि सम्भूय द्वादश कोष्ठानि मध्ये वज्ररूपं यथा भवेत्तथा मार्ज्जयित्वा, शिष्टकोष्ठत्रयोदशके सर्वमध्यकोष्ठमध्ये त्रयोदशाक्षरद्वितीय-मूलविद्याक्षरत्रयोदशके एकादशाक्षरभूतां सविसर्ज्जनीयां हृल्लेखां प्राग्वत् साधकादित्रयाख्यावतीमालिख्य, तदधः पङ्क्तिकोष्ठमध्यत्रिकमध्यकोष्ठमारभ्यामुक्तक्रमं प्रादक्षिण्यनिर्गमनगत्या शिष्टकोष्ठद्वादशके मध्यकोष्ठलिखितसविसर्ज्जनीय-हृल्लेखाविधुरं द्वितीयमूलविद्याक्षरद्वादशकमालिख्य, तत्र पूजादिभिरुक्तफल-सिद्धिरिति ।

तृणराजदले–तालपत्रे इत्यर्थः । पटुः—लवणम् । मागधिका—पिप्पली । सिक्थगं प्राग्वत् । दीपवह्नौ—दीपरूपाग्नौ । तद्दिग्वक्त्रः–साध्याभिमुखः । दिनैः–मण्डलादिभिः । नचाऽऽगच्छेत्–साध्या यदीति शेषः । तत्र–यन्त्रे स्थिता । अवस्थाभिश्च दशभिः–नयनप्रीत्यादिमरणान्ताभिः । मृतिमिति–दशमावस्थास्वरूपम् । वा–विकल्पे । तत–यन्त्रं । मधूच्छिष्टप्रतिकृतेः–साध्यायाः । अन्यशब्दः-सामन्तादिविषयः । ते–प्राणिनः । प्रतीपाः–प्रतिकूलाः । कज्जलैः–मषीभिः । सिते–क्षौम-विशेषणमेतत् । जपित्वा–प्राणप्रतिष्ठादिसहितां मूलविद्याम् ।

तथाः— वृत्तद्वयान्तरा कृत्वा षट्कोणन्तस्य मध्यतः ।
भूस्वगर्भगतं नाम विलिख्याऽश्रिषु षट्स्वपि ।। ७२ ।।

षडक्षराणि विलिखेत् सप्ताक्षर्याः क्रमेण वै ।
यन्त्रमेतत्तालपत्रे भूर्ज्जे क्षौमेऽर्कपत्रके ।। ७३ ।।

प्रजप्य विद्यामयुतं वल्मीके निक्षिपेच्च तत् ।
तत्र स्थिता ये भुजगाः पलायन्तेऽथ तद्दिने ।। ७४ ।।

तद्भूमिकादौ सँल्लिख्य संस्थाप्याऽभ्यर्च्य कुत्रचित् ।
निधाय नित्यशः पूजासमेतं रक्षतो गृहे ।। ७५ ।।

भूतप्रेतपिशाचापस्मारवेतालराक्षसाः ।
यक्षगन्धर्वभुजगवृश्चिकाद्या न तत्र वै ।। ७६ ।।

तत्क्षिप्त्वा कुम्भसलिले जपित्वा विद्ययाऽनया ।
सहस्रवारं सलिलैरासेकः क्ष्वेडनाशनः ।। ७७ ।।

तत्पीतञ्जठरे प्राप्तमशेषन्नाशयेद्विषम् ।
देहगम्परमेशानि त्रिविधम्भीषणात्मकम् ।। ७८ ।।

तद्विलिख्य नखाग्रेण नारिकेलदले स्मरन् ।
तद्रूपम्फणिनं विद्याजपपूर्वन्नखादिना ।। ७९ ।।

पीडनात् पाटनाद्भोगी पीडितम्पाटितम्भवेत् ।
एवं सर्वन्त्रिप्रकारं गरलन्नाशयेदिदम् ।। ८० ।।

वालुकासु सुसँल्लिख्य यन्त्रमभ्यर्च्य देवताम् ।
तत्र तैर्वेष्टयेत् सुप्तं भोगिनन्न व्रजेत्ततः ।। ८१ ।।

वृत्तत्रयेत्यादिभिरहिरित्यन्तैर्दशभिः श्लोकैः सप्ताक्षर्या मूलविद्यया प्रथमया-यन्त्रनिर्माणक्रमं, तेन यन्त्रेण प्रयोगं चोपदिशति—तत्र तस्य-षट्कोणस्य । भूः स्वगर्भगतं-भूरिति ओकारः, स्वमिति बिन्दुः । प्रथममूलविद्यादिभूतवर्णसविन्दुक-त्रयोदशस्वरगर्भगतमित्यर्थः । नाम-प्राग्वत् । षडक्षराणि-मध्यलिखितप्रथमाक्षर-भूतप्रणवविधुराणि । सप्ताक्षर्याः-मूलविद्यायाः । क्रमेण—अग्रादिप्रादक्षिण्य-रूपेण । विद्यां-सप्ताक्षरीम् । तत्-यन्त्रं । तद्दिने-निक्षेपदिने ।

**अयङ्क्रमः**— अभीष्टमानभ्रमेणाऽन्तर्बहिर्विभागतो वृत्तद्वयं विधाय, तदन्तः षट्कोणं कृत्वा, तत्रान्तर्वृत्तमध्ये प्राग्वत् साध्यगर्भमालिख्य, बहिः षट्सु कोणेषु अग्रादिप्रादक्षिण्येन मध्यलिखितप्रणवविधुराणि मूलविद्यायाः सप्ताक्षर्याः षडक्षराणि समालिखेत् ।

एवमेतद्यन्त्रं भूर्ज्जादिष्वन्यतमे लिखित्वा, सप्राणप्रतिष्ठं सप्ताक्षरीविद्यामयुतं जपित्वा, तस्य यन्त्रस्य वल्मीकनिक्षेपनात् तत्रस्थाः सर्प्पास्नद्दिन एवोच्चाटिता भवन्तीति । तत्–यन्त्रं । ऊर्मिकादौ–ऊर्मिकेत्यङ्गुलीयकम् । आदिशब्दो वलयाङ्गदाद्याभरणविषयः । तत्र–स्थापितगृहादिविशेषणम् । तत्–ऊर्मिकादिलिखितं यन्त्रम् । प्रथमया–सप्तवर्णया । आसेकः–अभिषेकः । क्ष्वेडनाशनः–सर्वविषापहरः । तत् – यन्त्राधिवासिताभिरद्भिः सेकः । देहगमिति विषविशेषणम् । त्रिविधं–प्राग्वत् स्थावरजङ्गमकृत्रिमात्मकम् । एतदुक्तम्भवति–यन्त्राधिवासिताभिजप्तं जलम्पीतं जठरगतं विषं देहगतं त्रिविधं च नाशयेदिति । तत्–यन्त्रं । तद्रूपम्–यन्त्रलिखितनारिकेलपत्ररूपम्[1] । स्मरन्नित्यत्राऽन्वयः । पीडितं पाटितमिति दिव्यत्वादङ्गीकरणीयम् । यन्त्रपीडनात् पीडितः पाटितश्चेत्यर्थः । एवमुक्तरूपतः त्रिप्रकारं प्राग्वत् । इदं–यन्त्रम् । वालुकासु–सिकतासु ।

तथा– अनावृत्तानि विद्यायामक्षराणि त्रयोदश ।
तैः षोडशस्वरोपेतैः सङ्ख्याऽष्टौ च शतद्वयम् ।। ८२ ।।

तानि पूर्वाद्ययन्त्रे तु विलिखेन्मध्यतो द्वयम् ।
बहिः प्राग्वत्ततस्तैः स्याद्यन्त्राण्यष्टौ महेश्वरि ।। ८३ ।।

तेष्वाद्यं सर्ववारेषु विनियुङ्क्ते उदीरिते ।
द्वितीयादीनि यन्त्राणि सप्तभान्वादिवारके ।। ८४ ।।

विनियुञ्ज्यात् प्रोक्तकर्मस्वाख्यालेखनपूर्वकम् ।
वाराख्यां सप्तमीयुक्तामालिखेत् साधयेति च ।। ८५ ।।

वश्याकर्षणशान्त्याप्तीर्विदध्यादाद्ययन्त्रतः ।
प्रोक्तक्रमेण विधिना शान्तिमर्च्चनतस्तथा ।। ८६ ।।

सप्तकम्पूजितं क्वापि स्थापितम्पोतगर्भके ।
न नाशयन्ति[2] तत्पोतमम्बुधौ सर्वथा शिवे ।। ८७ ।।

तथा वारेषू तेषूक्तान्यालिख्याऽभ्यर्चयेच्छिवाम् ।
वाच्छितेषु समस्तेषु तैर्यन्त्रैस्तान्यवाप्नुयात् ।। ८८ ।।

---

१. क० नालिकेल० । २. क. ख. पुस्तकद्वये 'नाशयति' इति पाठो दृश्यते । किन्त्वयमसङ्गतो व्याख्यायामदर्शनात् । (सम्पा०)

रोगशान्तिञ्जयं लाभन्नानाभीष्टार्थविग्रहम् ।
शत्रुभङ्गं वशं नारीनृपमर्त्यादिजन्मनाम् ॥ ८९ ॥

अनावृत्तानीत्यादिना महेश्वरीत्यन्तेन श्लोकद्वयेन पञ्चविंशाक्षरायां खण्डद्वयप्रकृतिभूतायां मूलविद्यायां[1] प्राग्वदपुनरुक्तैस्त्रयोदशभिरक्षरैः स्वरप्रसारणादष्टोत्तरद्विशतसङ्ख्यैस्तैर्यन्त्राष्टकमुपदिशति—तत्र विद्यायां-सर्वप्रकृतिभूतायां पञ्चविंशाक्षरायां मूलविद्यायां । त्रयोदश—तानि तु– ककार-उकार-रेफ-लकार-यकार-ॐकार-हकार-मकार-सकार-वकार-जकार-नकार-शकाराक्षराणि । अत्राऽसंयुक्तस्वरग्रहणेऽपि प्रागुक्तप्रयोजकातिलङ्घनेन संयुक्तस्याऽपि स्वरस्य ग्रहणम्, त्रयोदशेत्युक्तिप्राबल्यात्तयोरक्षरयोरनावृतत्वमस्त्येव । तैः–अनावृत्ताक्षरैः । तानि–अष्टोत्तरद्विशतसङ्ख्यान्यक्षराणि । पूर्वाद्ययन्त्रे–पूर्वोक्तेषु यन्त्रेष्वाद्येन-श्लोकत्रयेण प्रोक्ते । मध्यतः–सर्वमध्ये । द्वयं–अक्षरयोः । बहिः मध्ययोनितः । प्राग्वत्–विलिखेदिति सम्बन्धः । तैः–अष्टोत्तारद्विशतसङ्ख्यैरक्षरैः[2] । अष्टौ–सम्भूय एतदुक्तम्भवति ।

पूर्वोक्तेषु यन्त्रेषु आद्ये बाह्यादभ्यन्तरप्रवेशक्रमाद् वृत्तत्रयाष्टपत्राम्बुजनवयोनिरूपे यन्त्रे सर्वमध्ये स्वरविकृतपञ्चविंशाक्षरमूलविद्यानावृत्ताक्षरत्रयोदशकसञ्जाताष्टोत्तारद्विशतसङ्ख्येष्वक्षरेष्वादितोऽक्षरद्वयं प्रत्यक्षरं साध्याद्युपेतं विलिख्य, तद्बाह्यगतकोणेष्वष्टसु सर्वमध्यलिखिताक्षरादुपरितनान्यष्टाक्षराण्यग्रात् प्रादक्षिण्येनाऽऽलिख्य, तद्बहिरष्टपत्रेषु प्रतियन्त्रं द्वयं द्वयमिति क्रमेण नवयोनिलिखिताक्षरदशकादुपरितनानि षोडशाक्षराणि क्रमाद्विलिख्य, बाह्यवृत्तत्रयान्तरालवीथीद्वयं प्राग्वन्मातृकावेष्टनं कुर्यात् । एतत्प्रथमं यन्त्रम् । एवमस्मिन्नेव यन्त्रे पूर्वपूर्वलिखिताक्षरषड्विंशतिकादुपरितनमुपरितनमक्षरषड्विंशतिकं क्रमाद्विलिख्य पूर्वोक्तेन यन्त्रेण सहाऽष्टौ यन्त्राणि सम्पादयेदिति ।

तेष्वित्यादिभिर्जन्मिनामित्यन्तैः षड्भिस्तद्यन्त्राष्टकविनियोगादिकमुपदिशति--तत्र तेषु–अष्टसु यन्त्रेषु, आद्यमिति शेषः । उदीरिते–वश्याकर्षणेत्यादिवक्ष्यमाणे । सप्त इति पदच्छेदः । भान्वादिवारके आदिशब्दः सोमाङ्गारबुधवृहस्पतिशुक्रशनिविषयः । तेषां वारे इत्यर्थः । प्रोक्तकर्मसु–वक्ष्यमाणकर्मसु, आख्यालेखनपूर्वकम्–प्राग्वत्साध्यादिनामालेखनपूर्वकमित्यर्थः । वाराख्यां-साध्याधः साधयेति ।

१. ख. तृतीयायां मूलविद्यायां । २. क. अष्टोत्तरविंशतिसंख्यै० ।

तदिति–लेखनीयवाक्यरूपम् । एतदुक्तम्भवति–सर्वमध्यगताक्षरद्वयमध्ये प्रत्येकमस्मिन् वारे एतत्साधयेत्यक्षराण्यधरादूर्ध्वान्तमालिखेदिति । आद्ययन्त्रतः—अष्टस्विति शेषः । प्रोक्तक्रमेणेति–विधिनेत्यस्य विशेषणम् । सविधिस्तु–प्राणप्रतिष्ठापुरःसरं धारणस्थापनादिभिः । अर्च्चनतः–तत्र देवीपूजनतः । पूजितं–तत्तत्प्राप्तवासरेषु । नाशयन्तीति यन्त्रसप्तकसङ्ख्यापेक्षया बहुवचनम् । तेष्विति वारविशेषणम् । उक्तानि यन्त्राणीति शेषः । तैः–प्राग्वन्मण्डलादिभिः । तानि–रोगशान्त्यादीनि वक्ष्यमाणानि । मर्त्यादिजन्मिनामित्यत्राऽऽदिशब्दोऽमात्यसामन्तादिसकलप्राणिजातविषयः ।

तथा— प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च सूत्राण्यास्फालयेत् क्रमात् ।
द्वाविंशतिं ततः सैकचत्वारिंशच्चतुःशतम् ॥ ९० ॥

तेषु कोणेषु परितो मार्ज्जयेत्पूर्ववत् क्रमात् ।
पञ्च पञ्चाशदन्यानि कोष्ठवज्रे महेश्वरि ॥ ९१ ॥

शतद्वयं सैकविंशन्तेषु दिक्षु त्रिकोणकम् ।
कुर्य्यात् प्राग्वच्चतुःकोष्ठैस्तथा प्राङ्मध्यतः शिवे ॥ ९२ ॥

प्रादक्षिण्येन विलिखेत् प्रवेशक्रमयोगतः ।
मध्येऽवशिष्टनवकमध्ये नामोदरां लिखेत् ॥ ९३ ॥

मायान्तदभितो मन्त्रवर्णांस्त्रिस्त्रिक्रमेण वै ।
त्रिकोणेषु तु साध्यानि विलिखेद्वज्रमीरितम् ॥ ९४ ॥

तद्वज्रयन्त्रन्तु पटे क्षौमे वा सुसिते शुभे ।
विलिख्याऽभ्यर्च्य तद्यन्त्रम्पोतं रक्षति वारिधौ ॥ ९५ ॥

प्रागुक्तानि समस्तानि साधयेद्वज्ररूपिणा ।
यन्त्रेणाऽनेन कालेन प्रोक्तेन नियतं शिवे ॥ ९६ ॥

तान्देवीम्पाशसम्बद्धं साध्यमङ्कुशताडनात् ।
आकर्षन्तीं स्वपादान्ते साञ्जलिम्प्रणतम्मुहुः ॥ ९७ ॥

रक्ष रक्षेति भाषन्तं स्मरन् विद्याञ्जपेन्निशि ।
साध्यो नरोऽथ नारी वा वशमेति सुनिश्चितम् ॥ ९८ ॥

अथवा साञ्जलिं साध्यं प्राग्वद्द्वादिनमङ्कुशे ।
प्रोतङ्केशसमाविष्टं जपेत् प्राग्वद्वशे भवेत् ।। ९९ ।।

मन्त्राक्षराणान्तेजोभिः परीतं वा तथाविधम् ।
स्वयमेवानयंस्तन्तु स्मरन् जापैर्वशं नयेत् ।। १०० ।।

एवं सा कुरुकुल्ला ते प्रोक्ता सर्वार्थसाधिका ।
ललिताविग्रहा येन वशिन्यादियुता ततः ।। १०१ ।।

प्राक्प्रत्यगित्यादिभिः शिवे-इत्यन्तैः सप्तभिः श्लोकैः प्रागुक्तैः स्वरप्रसारितैरष्टोत्तरद्विशतसङ्ख्यैर्मूलविद्याक्षरैरविकृतमूलविद्याक्षरपञ्चविंशतिकैश्चैकविंशत्यधिकशतकोष्ठरूपवज्रयन्त्रनिर्माणं तद्विनियोगांश्चोपदिशति—तत्र क्रमात्—द्वाविंशति—प्राक् प्रत्यग् द्वाविंशति दक्षिणोदक् च द्वाविंशतिमित्येवं क्रमादित्यर्थः । ततः—आस्फालनतः । तेषु—एकचत्वारिंशदधिकचतुःशतसङ्ख्येषु कोष्ठेषु । कोणेषु—चतुर्षु । पूर्ववन्मध्ये वज्राकारं यथा भवति । क्रमात् पञ्चपञ्चाशत्—प्रतिकोणं पञ्चपञ्चाशत् कोष्ठानि । एवं क्रमादिति यावत् । सम्भूय चतुर्षु कोणेषु विंशत्यधिकद्विशतसङ्ख्यानि कोष्ठानि मार्ज्जयित्वेत्यर्थः । अन्यानि—मार्जनावशिष्टानि कोष्ठानीति शेषः । तेषु—एकविंशत्यधिकद्विशतसङ्ख्येषु कोष्ठेष्वित्यर्थः । चतुःकोष्ठैः—प्रतिदिशमेकैककोष्ठमार्ज्जनत इत्यर्थः । प्राङ्मध्यतः—प्राग्दिग्गतपङ्क्तिकोष्ठेषु मध्यकोष्ठमारभ्येत्यर्थः । तानि[1]—अष्टोत्तरद्विशतसङ्ख्यानि स्वरविकृतमूलविद्याक्षराणि । लिखेत् -यावदक्षरपर्य्यवसानम् । मध्ये—यन्त्रस्येति शेषः । नवकमध्ये नवसु । मध्यकोष्ठ इत्यर्थः । नामोदरां—साधकादिनामगर्भां । मायां—पञ्चविंशार्णमूलविद्याया एकादशाक्षरभूताम् । तदभितस्तदन्तगतमध्यकोष्ठानन्तरप्राक्पङ्क्तिमध्यकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्यनिर्गमनगत्या । त्रित्रिक्रमेण-मध्यकोष्ठवर्ज्जं प्रतिकोष्ठमिति शेषः । [त्रिकोणेषु चेत्यत्र चकाराच्चतुर्षु त्रिकोणेष्वपि साध्याक्षराणि लिखेदिति । तं (तद्) यन्त्रं, वज्रमिति शेषः ।][2]

**यन्त्रविरचनाक्रमो** यथा—प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च समान्तरालानि द्वाविंशतिद्वाविंशति सूत्राण्यास्फाल्य, तेनैकचत्वारिंशदधिकचतुःशतकसङ्ख्यानि कोष्ठानि

---

१. पदस्याऽस्य स्थाने क. ख. पुस्तकद्वये 'तथा' इति पादः सूत्ररूपेण दृश्यते ।
२. [–] अस्यांशस्याऽभावः क. पुस्तके ।

निष्पाद्य, तेषु चतुर्षु कोणेषु प्रतिकोणं पञ्चपञ्चाशत्कोष्ठानि सम्भूय विंशत्यधिकद्विशतसङ्ख्यानि कोष्ठानि प्राग्वन्मध्ये वज्राकारं यथा भवति तथा मार्ज्जयित्वा, ततश्चतुर्दिक्षु प्रतिदिशमेकैककोष्ठमार्ज्जनतश्चत्वारि त्रिकोणानि कृत्वा, शिष्टेषु सप्तदशाधिकद्विशतसङ्ख्येषु कोष्ठेषु सर्वप्राचीनपङ्क्तिस्थकोष्ठत्रये मध्यकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्यप्रवेशगत्यामुक्तक्रममष्टोत्तरद्विशतसङ्ख्यानि स्वरविकृतमूलविद्याक्षराणि यावदक्षरपर्य्यवसानमालिख्य, ततो मध्यतः शिष्टेषु नवसु कोष्ठेषु सर्वमध्यस्थकोष्ठमध्ये पञ्चविंशार्णमूलविद्याया एकादशाक्षरभूतहृल्लेखां साध्यगर्भामालिख्य, शिष्टेष्वष्टसु कोष्ठेषु मध्यकोष्ठानन्तरप्राचीनपङ्क्तिमध्यकोष्ठमारभ्यामुक्तक्रमं प्रादक्षिण्यनिर्गमनगत्या प्रतिकोष्ठं पञ्चविंशाक्षरमूलविद्याक्षराणि हृल्लेखाविधुराणि त्रीण्यालिख्य, चतुर्द्दिग्गतत्रिकोणचतुष्केऽपि मध्यकोष्ठवत् ससाध्यां हृल्लेखामालिख्य, तेन यन्त्रेण वक्ष्यमाणान् विनियोगान् कुर्य्यादिति ।

तामित्यादिना तत इत्यन्तैश्चतुर्भिः श्लोकैर्मन्त्रदेवताभावनाकर्षण-वशीकरणात्रैविध्यन्तस्याः कुरुकुल्लादेव्या वशिन्यादिशक्त्यष्टक[1]-परिवृतत्ववासनां चोपदिशति—तत्र तामित्यस्योत्तरश्लोके वा तत् स्मरन्नित्यनेनाऽन्वयः । साध्यमित्यस्य पदस्याऽस्य श्लोकस्योत्तरार्द्ध गताकर्षन्तीमित्यनेनाऽन्वयः[1]। साध्यमित्यस्य पदस्यास्य श्लोकस्योत्तरार्द्ध गतां[2] । विद्यां—पञ्चविंशार्णां । अथ वेति—पक्षावृतौ । प्राग्वद्वादिनं रक्षरक्षेति । प्राग्वत्—आकर्षन्तीं देवीं स्मरन् विद्यां जपेदित्यर्थः । भवेत्—प्रागुक्तः साध्यवर्गः । मन्त्राक्षराणां—पञ्चविंशार्णमूलविद्याक्षराणाम्[2] । तथाविधं रक्ष-रक्षेति भाषणादियुक्तं । स्वयमेव—आकर्षणाद्दते । एतदुक्तं भवति—साध्यं मन्त्राक्षरतेजोभिः परीतं, तेजःसहनाशक्तत्वात् प्राग्वद्भाषणादियुक्तः स्वयमेव देवताकर्षणादिव तामन्तः स्मरन् विद्यां जपन् वशयतीति ।

**इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मजगोस्वामि-**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**त्रिपञ्चाशत्तरङ्गः ।। ५३ ।।**

—०—

१. क. ०शक्त्यष्टक । २. क. पञ्चविंशविंशार्ण० ।

## [चतुःपञ्चाशत्तमस्तरङ्गः]

करङ्किणीतन्त्रे—

प्रणम्य शिरसा गौरी बभाषे सर्ववित्प्रभो ।
येन कल्पेन दारिद्र्यं विनश्यति च तद्वद ।। १ ।।

श्रुत्वा गौरीवचः शम्भुः स्मितचारुशुभाननः ।
शृणु त्वन्देवदेवेशि दारिद्र्यस्य विनाशनम् ।। २ ।।

पुरा विश्वसृजा प्रोक्ता कुबेराय महात्मने ।
विद्या दारिद्र्यसंहर्त्री यक्षिणी पापखण्डिनी ।। ३ ।।

तेन तान्तु समादाय मासमाराधिता सुरी ।
तस्मान्निधिवराणान्तु नायको निश्चितोऽभवत् ।। ४ ।।

निर्द्धनेन महीपेन विद्या सा ब्रह्मणो मुखात् ।
श्रुत्वा कुबेरवक्त्रेण सोऽभवत् परमेश्वरः ।। ५ ।।

तच्छ्रुत्वा गिरिजा देवी पुनः प्राह च शङ्करम् ।
कृपा ते विद्यते चित्ते तदा त्वम्माम्प्रबोधय ।। ६ ।।

श्रुत्वा पुनश्च पार्वत्या वाक्यमेवम्प्रहस्य च ।
प्रभुः प्राह न जानासि भवत्या मूर्तिरेव सा ।। ७ ।।

यां स्मृत्वा याति रङ्कोऽपि भूपालत्वन्न संशयः ।
विद्याधरत्वमाप्नोति किम्पुनर्बहुभाषितैः ।। ८ ।।

याति लक्षेश्वरत्वञ्च तद्भक्तो देवि सर्वथा ।
तद्विद्याराधको लोके यस्मिन् रङ्केऽपि भाषिते ।। ९ ।।

भव त्वं वित्तवानेवं सोऽपि लक्षेश्वरो भवेत् ।
वर्षेणाऽपि हि यो मन्त्रं स्मरेद्बहुधनेश्वरः ।। १० ।।

नोपसर्प्पति दारिद्र्यन्ताक्ष्यम्भोगिकुलं यथा ।
अस्य मन्त्रस्य चोद्धारम्प्रवक्ष्ये शृणु पार्वति ।। ११ ।।

---

१. क. लोकस्योत्त० । २. क. लोकस्योत्तरार्द्धं गतां ।

यस्यैव ज्ञानमात्रेण महादारिद्र्यनाशनम् ।
भतुरीयं बिन्दुयुतं लज्जाबीजमनन्तरम् ।। १२ ।।

लक्ष्मीबीजन्ततः प्रोक्त्वा सम्बोध्य च रतिप्रियाम् ।
वह्निजायावधिः प्रोक्तो मन्त्रराजोत्तमोत्तमः ।। १३ ।।

[तन्त्रान्तरे तु 'ततुरीयं बिन्दुयुत' मित्युक्तत्वाद् धमिति प्रथमम्बीजं वेति । केचित्—][1] भतुरीयो—रेफः । लज्जाबीजं—ह्रीं । लक्ष्मीबीजं—श्रीं । सम्बोध्य रति-प्रियाम्—रतिप्रिये इति वदेदित्यर्थः । वह्निजाया—स्वाहाकारः ।

नाऽङ्गन्यासकरन्यासौ न छन्दो नाऽस्य देवता ।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं शैलसम्भवे ।। १४ ।।

हेमप्राकारमध्ये सुरविटपितटे हेमपीठाधिरूढा,
यक्षी बाला विसर्पत्परिमलबहुलोद्भासिधम्मिल्लभारा ।
पीनोत्तुङ्गस्तनाढ्या कुवलयनयना रक्तवर्णा कराभ्या-
म्भ्राम्यद्रक्तोत्पला सा नवरविवसना रक्तभूषाङ्गरागा ।। १५ ।।

इति ध्यानं विधातव्यञ्चन्दनेनाऽनुलेपिते ।
ताम्रपात्रे विधातव्यम्मण्डलं सुमनोहरम् ।। १६ ।।

तत्र पूजा प्रकर्त्तव्या देव्या एव मनीषिणा ।
कुबेरस्य मतेनाऽस्याः पूजैव क्रियते सदा ।। १७ ।।

**।। अथ प्रयोगः ।।**

तत्र प्राग्वन्मातृकान्यासान्तं कृत्वा, मूलेन प्राणानायम्य, देवीं ध्यात्वा, मानसपूजां विधाय, प्राग्वदर्घादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते चन्दनेनाऽनुलिप्ते ताम्रादि-पात्रे चतुरश्रवेष्टितं वृत्तं कृत्वा, तत्र देवीमावाह्याऽऽवाहनादिपरमीकरान्तन्तत्तन्मु-द्रया विधायाऽऽसनादि षोडशोपचारैः सम्पूज्य, दुग्धदधिखण्डपायसशर्करानैवेद्यं दत्वा, ताम्बूलं समर्प्य, मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा, जपं देव्या हस्ते समर्प्य, प्रद-क्षिणनमस्कारैः परितोष्य विसृजेदिति ।

---

१. [—] कोष्ठस्थांशो विशेषः ख. पुस्तके ।

तथा— सहस्रसप्ततिस्तावत् पुरश्चरणमिष्यते ।
तथा घृतेन खण्डेन मधुना च दशांशकम् ।। १८ ।।

होमोऽपि च विधातव्योऽमुना दारिद्र्यमुक्तये ।
रात्रौ च जप्यते चाऽष्टसहस्रं सप्तवासरात् ।। १९ ।।

भुक्ते वाऽप्यथवाऽभुक्ते पायसान्नम्प्रदापयेत् ।
एतेनाऽपि च सिद्धिः स्यात् पुरश्चर्य्याधिका भवेत् ।। २० ।।

बहु किङ्कथ्यते देवि निशायाञ्जप्यते सदा ।
शतं वा दशकृत्वो वा सकृद्वापि च किम्पुनः ।। २१ ।।

न भवेत्तस्य दारिद्र्यमभिजानीहि पार्वति ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे वाऽपि जप्याद्दारिद्र्यमुक्तये ।। २२ ।।

वित्तन्दृष्ट्वाऽन्यलोकस्य जपेदष्टशतम्मनुम् ।
तत्कामाय ददात्येव सदैव तद्विधाय च ।। २३ ।।

अष्टशतमष्टोत्तरशतम् । तद्विधाय च तादृशाय दरिद्रायेति यावत् ।

यद्ययञ्जप्यते मन्त्रः श्वेतपुष्पैश्च पूजयेत् ।
दरिद्राय स्वयन्दत्ते गृहमानीय हेम च ।। २४ ।।

येनाऽसौ जप्यते मन्त्रः सदा भक्तिपुरःसरम् ।
तस्य पुत्रश्च पौत्रश्च प्रपुत्रोऽपि च तत्सुतः ।। २५ ।।

दारिद्र्याभिभवं याति न कदाचिन्न संशयः ।
स्वयम्प्राहेति सा यक्षी यो मां स्मरति नित्यशः ।। २६ ।।
तस्य दारिद्र्यशमनं दासीव करवाण्यहम् ।

।। इति धनदायक्षिणीविधिः ।।

तन्त्रान्तरे—
तारो भृगुर्विसर्गाढ्यो मनुस्वरविभूषितः ।
काममाये सिद्धिशब्दं श्रीबीजं सोहमालिखेत् ।। २७ ।।

बालाशब्दान्तिको मन्त्रः प्रोक्त एकादशाक्षरः ।
वसन्ततिलकायास्तु भजताङ्कल्पपादपः ।। २८ ।।

ऋषिः स्याद्वज्रहस्तोऽस्य गायत्री छन्द ईरितम् ।
वसन्ततिलका नाम यक्षिणी देवता स्मृता ।। २९ ।।

न्यासौ बीजेन कुर्वीत ध्यायेद्देवीन्ततः परम् ।
सौवर्णनीरजान्तःस्थां सरूपान्नवयौवनाम् ।। ३० ।।

मनोहरां विशालाक्षीञ्चम्पकोत्फुल्लगन्धिनीम् ।
श्यामाम्पीतस्तनानम्रमध्यदेशां शुचिस्मिताम् ।। ३१ ।।

विचित्रभूषणां स्निग्धाम्बीजपूराब्जधारिणीम्[1] ।
विचित्रमाल्यवसनाञ्चित्रावयवशोभनाम् ।। ३२ ।।

षोडशाब्दप्रमाणेन निरन्तररतिप्रियाम् ।
एकलिङ्गे श्मशाने वा पर्वताग्रे नदीतटे ।। ३३ ।।

सम्भेदे शून्यसदने शृङ्गाटे वा चतुःपथे ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य यावत्स्यात् पूर्णिमातिथिः ।। ३४ ।।

सन्ध्यायाम्मण्डलङ्कृत्वा पद्ममग्निगृहाङ्कितम् ।
चतुरश्रञ्चतुर्द्वारशोभितञ्चन्दनाम्भसा ।। ३५ ।।

मूलेनाऽऽवाह्य तां शक्तिमिमाः पत्रेषु पूजयेत् ।
विजया माधवी नन्दा चन्द्ररेखा शशिप्रभा ।। ३६ ।।

पद्मिनी मालती कुन्दा प्रधानसदृशोज्ज्वलाः ।
एवं सम्पूज्य नियतो जपेदाप्रातरन्वहम् ।। ३७ ।।

यक्षिण्याकर्षिणीमुद्राम्बद्ध्वा निर्भयमानसः ।
पञ्चम्यान्निशि लब्धः स्याद्गन्धः पाटलसम्भवः ।। ३८ ।।

षष्ठ्यां मञ्जीरनिःक्वाणः सप्तम्याङ्किङ्किणीध्वनिः ।
अष्टम्यां वसनालापो नवम्यां हासनिःस्वनः ।। ३९ ।।

अव्यक्ताकृतिरन्येद्युः परेद्युः पाददर्शनम् ।
द्वादश्यां विद्युदाकारन्त्रयोदश्यां स्थिरा स्थितिः ।। ४० ।।

---

१. ख. ० बीजाब्जधारिणीम् ।

चतुर्द्दश्यामनालापा पूर्णिमायां स्थिरा स्थितिः ।
अष्टाभिः सखिभिः सार्द्धमग्रे स्थित्वा ब्रुवेदिदम् ॥ ४१ ॥

भो भो वरं वृणीष्वेति सादरम्मृदुभाषिणी ।
साधकेनाऽपि कर्त्तव्यं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४२ ॥

ब्रूते सा तु तदा हृष्टा भार्य्या ते साधकाऽस्म्यहम् ।
दासीभिः सहिता रात्रावागमिष्यामि नित्यशः ॥ ४३ ॥

अन्नवस्त्राम्बरादीनि यानि भोग्यानि भूदिवि ।
तानि ते प्रत्यहन्दास्ये यदेष्वभिमतं[1] तव ॥ ४४ ॥

निष्काणां शतकन्नित्यन्दास्ये वक्ष्याम्यनागतम्[2] ।
पालयामि परेभ्यस्त्वाञ्जीवयामि शतत्रयम् ॥ ४५ ॥
अब्दानां यदि वाञ्छा स्याद्दर्शये मेरुकन्दराम् ।

॥ इति वसन्ततिलकायक्षिणीविधिः ॥

भूतडामरे—

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि योगिनीसाधनोत्तमम् ।
सर्वार्थसाधनन्नाम देहिनां सर्वसिद्धिदम् ॥ ४६ ॥

अतिगुह्या महाविद्या देवानामपि दुर्ल्लभाः ।
यासामभ्यर्च्चनङ्कृत्वा यक्षेशोऽभूद्धनाधिपः ॥ ४७ ॥

तासामाद्याम्प्रवक्ष्यामि सुराणां सुन्दरीम्प्रिये ।
अस्या अभ्यर्चनेनैव राजत्वँल्लभते नरः ॥ ४८ ॥

अथ प्रातः समुत्थाय कृत्वा स्नानादिकं शुभम् ।
प्रासादञ्च समासाद्य कुर्य्यादाचमनन्ततः ॥ ४९ ॥

प्रणवान्ते सहस्रारे हुं फड्दिग्बन्धनञ्चरेत् ।
प्राणायामन्ततः कुर्य्यान्मूलमन्त्रेण तत्ववित् ॥ ५० ॥

षडङ्गम्मायया कुर्य्यात्पद्ममष्टदलँल्लिखेत् ।
अस्मिन् पद्मे तथा मन्त्रञ्जीववन्न्यासमाचरेत्[3] ॥ ५१ ॥

१. ख. पदेष्व० । २. क. ०म्यनामतम् । ३. ख. ०जीवन्यासं समा० ।

पीठे देवीं समभ्यर्च्य ध्यायेद्देवीञ्जगत्प्रियाम् ।
पूर्णचन्द्राननाङ्गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम् ।। ५२ ।।

पीनोन्नतकुचां वामां सर्वज्ञामभयप्रदाम् ।
इति ध्यात्वा च मूलेन दद्यात्पाद्यादिकं शुभम् ।। ५३ ।।

पुनर्धूपं निवेद्यैव नैवेद्यम्मूलमन्त्रतः ।
गन्धचन्दनताम्बूलं सकर्पूरं सुशोभनम् ।। ५४ ।।

प्रणवान्ते भुवनेशी आगच्छ सुरसुन्दरि ।
वह्नेर्भार्य्यां जपेन्मन्त्रन्त्रिसन्ध्यञ्च दिने दिने ।। ५५ ।।

सहस्रैकप्रमाणेन ध्यायेद्देवीमनन्यधीः ।
मासान्तदिवसम्प्राप्य बलिपूजां सुशोभनाम् ।। ५६ ।।

कृत्वा च प्रजपेन्नित्यन्निशाञ्चाऽऽयाति सुन्दरी ।
सुदृढं साधकं ज्ञात्वा याति सा साधकालये ।। ५७ ।।

सुप्रसन्ना साधकाग्रे सदा स्मेरमुखी ततः ।
दृष्ट्वा देवीं साधकेन्द्रो दद्यात् पाद्यादिकं शुभम् ।। ५८ ।।

सचन्दनं सुमनसो ज्ञात्वाऽभिलषितं[1] वदेत् ।
मातरम्भगिनीं वाऽपि भार्य्यां वा भक्तिभावतः ।। ५९ ।।

यदि माता तदा वित्तं द्रव्यञ्च सुमनोहरम् ।
भूपतित्वं प्रार्थितञ्च तद्ददाति दिने दिने ।। ६० ।।

पुत्रवत्पालितँल्लोके सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ।
स्वसा ददाति वित्तञ्च दिव्यं वस्त्रन्तथैव च ।। ६१ ।।

दिव्यकन्यां समानीय नागकन्यान्दिने दिने ।
यद्यद्भवति भूतञ्च भविष्यति च यत्पुनः ।। ६२ ।।

तत्सर्वं साधकेन्द्राय निवेदयति निश्चितम् ।
यद्यत्प्रार्थयते नित्यं सा ददाति दिने दिने ।। ६३ ।।

---

१. क. ०ऽभिलखितं ।

मातृवत्पालितँल्लोके कामनाभिर्मनोगतिः ।
भार्या स्याद्यदि वा देवी साधकस्य मनोहरा ।। ६४ ।।

राजेन्द्रः सर्वराजानां संसारे साधकोत्तमः ।
स्वर्गलोके च पाताले गतिर्भवति निश्चितम् ।। ६५ ।।

यद्यद्ददाति सा देवी कथितं[1] नैव शक्यते ।
तया सार्द्धञ्च सम्भोगङ्कुरुते साधकोत्तमः ।। ६६ ।।
अन्यस्त्रीगमनन्त्यक्त्वा चाऽन्यथा नश्यति ध्रुवम् ।

।। इति सुरसुन्दरीयक्षिणीविधिः ।।

अथाऽन्यत्साधनं वक्ष्ये निर्मितम्ब्रह्मणा पुरा ।
नदीतीरं समासाद्य कुर्यात् स्नानादिकं शुभम् ।। ६७ ।।

पूर्ववत्सकलङ्कार्य्यञ्चन्दनैर्मण्डलँल्लिखेत् ।
समन्त्रन्तत्र सँल्लिख्याऽऽवाह्य ध्यायेन्मनोरमाम् ।। ६८ ।।

कुरङ्गनेत्रां शरदिन्दुवक्त्रां,
विद्याधराञ्चन्दनगन्धलिप्ताम् ।
चीनांशुकाम्पीनकुचाम्मनोज्ञां,
श्यामां सदा कामदुघां विचित्राम् ।। ६९ ।।

एवन्ध्यात्वा यजेद्देवीमगुरुधूपदीपकैः ।
गन्धपुष्पै[2] रसञ्चैव ताम्बूलादींश्च मूलतः ।। ७० ।।

तारम्मायाऽऽगच्छ मनोहरे पावकवल्लभा ।
कृत्वाऽयुतम्प्रतिदिनञ्जपेन्मन्त्रम्प्रसन्नधीः ।। ७१ ।।

मासान्ते व्याप्य दिवसङ्कुर्य्याच्च जपमुत्तमम् ।
आनिशीथञ्जपेन्मन्त्रं ज्ञात्वा वै साधकन्दृढम् ।। ७२ ।।

गत्वा च साधकाभ्यासे सुप्रसन्ना मनोहरा ।
वरं वरय शीघ्रन्त्वं यत्ते मनसि वर्त्तते ।। ७३ ।।

---

१. ख. कथितु । २. ख. गन्धपुष्प ।

साधकेन्द्रोऽपि ताम्भक्त्या पाद्याद्यैरर्च्चयेन्मुदा ।
चन्दनोदकपुष्पेण फलेन च मनोहराम् ।। ७४ ।।

ततोऽर्चिता प्रसन्ना सा पुष्णाति प्रार्थितञ्च तत् ।
स्वर्णशतं साधकाय सा ददाति दिने दिने ।। ७५ ।।

निःशेषन्तु व्ययङ्कुर्यात् स्थिते तत्तु न दास्यति ।
अन्यस्त्रीगमनन्तस्य न भवेत् सत्यमीरितम् ।। ७६ ।।

अव्याहतगतिस्तस्य भवतीति न संशयः ।
इयन्ते कथिता विद्या सुगोप्या या सुरासुरैः ।। ७७ ।।
तव स्नेहेन भक्त्या च कथिता परमेश्वरि ।

तथा— ततो वक्ष्ये महाविद्यां शृणुष्वेकमनाः प्रिये ।
गत्वा वटतटन्देवीम्पूजयेत् साधकोत्तमः ।। ७८ ।।

प्राणायामं षडङ्गञ्च माययाऽथ समाचरेत् ।
सद्यो मांसम्बलिन्दत्वा पूजयेत्तां समाहितः ।। ७९ ।।

अर्घ्यमुच्छिष्टरक्तेन दद्यात्तस्यै दिने दिने ।
प्रचण्डवदनाङ्गौरीम्पद्मबिम्बाधराम्प्रियाम् ।। ८० ।।

रक्ताम्बरधरां वामां सर्वकामफलप्रदाम् ।
एवन्ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमयुतं साधकोत्तमः ।। ८१ ।।

सप्तदिनं समभ्यर्च्य चाऽष्टमे विधिवच्चरेत् ।
कायेन मनसा वाचा प्रजपेच्च दिने दिने ।। ८२ ।।

तारं माया तथाऽऽयुश्च रक्ष मर्माणि तद्बहिः ।
आगच्छ कनकान्ते च वति स्वाहा महामनुः ।। ८३ ।।

आनिशीथञ्जपेन्मन्त्रम्बलिन्दत्वा मनोहरम् ।
साधकेन्द्रन्दृढं ज्ञात्वा चाऽऽयाति साधकालये ।। ८४ ।।

साधकेन्द्रोऽपि तान्दृष्ट्वा दद्यादर्घ्यादिकन्ततः ।
ततः सपरिवारेण भार्या स्यात् कामभोजनैः ।। ८५ ।।

वस्त्रभूषादिकन्त्यक्त्वा याति सा निजमन्दिरम् ।
एवम्भार्य्या भवेन्नित्यं साधको ज्ञानरूपतः ।। ८६ ।।
आत्मभार्य्याम्परित्यज्य भजेत्ताञ्च विचक्षणः ।

तथा— ततः कामेश्वरीं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् ।
प्रणवम्भुवनेशानी चाऽऽगच्छ कामेश्वरी ततः ।। ८७ ।।

वह्नेर्भार्य्या महामन्त्रं साधकानां शुभावहम् ।
पूर्ववत्सकलङ्कृत्वा भूर्ज्जपत्रे सुशोभने ।। ८८ ।।

गोरोचनाभिः प्रतिमान्निर्माय समलङ्कृताम्[1] ।
शय्यामारुह्य प्रजपेन्मन्त्रमेकमनास्ततः ।। ८९ ।।

सहस्रैकप्रमाणेन मासमेकञ्जपेन्मनुम् ।
घृतेन मधुना दीपन्दद्याच्च सुसंमाहितः ।। ९० ।।

कामेश्वरीं शशाङ्कास्यां खेलत्खञ्जनलोचनाम् ।
मदलोलगतिङ्कान्ताङ्कुसुमास्त्रशिलीमुखाम् ।। ९१ ।।

एवन्ध्यात्वा यजेन्मन्त्रन्निशिचाऽऽयाति सा सदा[2] ।
गत्वा च साधकाभ्यासे चाऽऽज्ञान्देहीति तां वदेत् ।। ९२ ।।

स्त्रीभावेन मुदा तस्यै दद्यात् पाद्यादिकन्ततः ।
सुप्रसन्ना सदा[3] देवी साधकन्तोषयेत् सदा ।। ९३ ।।

[अन्नाद्यै रतिभोगेन पतिवत्पालयेत्सदा ।][4]
नीत्वा रात्रिं सुखैश्वर्य्यन्दत्वा च विपुलन्धनम् ।। ९४ ।।

दत्वाऽलङ्कारद्रव्यादीन् प्रभाते याति निश्चितम् ।
एवम्प्रतिदिनन्तस्य सिद्धिः स्यात्कामरूपतः ।। ९५ ।।

ततः पटे[5] विनिर्म्माय पुत्तलीङ्कामरूपतः ।
सुवर्णवर्णाङ्गौराङ्गीं सर्वालङ्कारभूषिताम् ।। ९६ ।।

नूपुराङ्गदहाराढ्यां रम्याञ्च पुष्करेक्षणाम् ।
एवन्ध्यात्वा जपेन्मन्त्रन्दद्याच्च पाद्यमुत्तमम् ।। ९७ ।।

---

१. ख. च स्वलङ्कृताम् । २. ख. तदा । ३. ख. मुदा । ४. [—] अयमंशो नाऽस्ति क. पुस्तके । ५. क. पुटे ।

सचन्दनेन पुष्पेण जातीपुष्पेण यत्नतः ।
गुग्गुलन्धूपदीपञ्च दद्यान्मूलेन साधकः ।। ९८ ।।

तारम्मायान्तथाऽऽगच्छेति सुन्दरि पदन्ततः ।
वह्निजायाऽष्टसाहस्रञ्जपन्मन्त्रन्दिने दिने ।। ९९ ।।

मासान्ते दिवसं व्याप्य कुर्य्यात्पाद्यादिकं शुभम् ।
घृतदीपन्तथा गन्धम्पुष्पन्ताम्बूलमेव च ।। १०० ।।

तावन्मन्त्रञ्जपेद्विद्वान् यावदायाति सुन्दरी ।
ज्ञात्वा दृढं साधकेन्द्रन्निशीथे याति निश्चितम् ।। १०१ ।।

ततस्तामर्च्चयेद्भक्त्या जातीकुसुममालया ।
सन्तुष्टा साधकेन्द्रं सन्तोषयेत्प्रीतिभोजनैः ।। १०२ ।।

भूत्वा भार्य्या च सा तस्मै ददाति वरवाञ्छितम् ।
भूषादिकम्परित्यज्य प्रभाते याति सा ध्रुवम् ।। १०३ ।

साधकाज्ञानरूपेण सा प्रयाति दिने दिने ।
निर्जने प्रान्तरे देवी सिद्धा स्यान्नाऽत्र संशयः ।। १०४ ।।

त्यक्त्वा भार्य्याम्भजेत्तान्तु चाऽन्यथा नश्यति ध्रुवम् ।

तथा— अथाऽन्यत्साधनं वक्ष्ये स्वगृहे शिवसन्निधौ ।
वेदाद्यम्भुवनेशीञ्चाऽऽगच्छ पद्मिनि वल्लभा ।। १०५ ।।

पावकस्य महामन्त्रं पूर्ववत्सकलन्ततः ।
मण्डलञ्चन्दनैः कृत्वा मूलमन्त्रँल्लिखेत्ततः ।। १०६ ।।

पद्माननां श्यामवर्णाम्पीनोन्नतपयोधराम् ।
कोमलाङ्गीं[1] स्मेरमुखीं रक्तोत्पलदलेक्षणाम् ।। १०७ ।।

एवन्ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रञ्च दिने दिने ।
मासान्ते पूर्णिमाम्प्राप्य विधिवत्पूजयेत्सदा ।। १०८ ।।

आनिशीथञ्जपेन्मन्त्रन्दृढाभ्यासेन साधकः ।
सर्वत्र कुशलन्दृष्ट्वाऽऽयाति [सा] साधकालयम् ।। १०९ ।।

---

१. क. कोमलाक्षीं ।

भूत्वा भार्या साधकं हि तोषयेद्विविधैरपि ।
भोग्यैर्द्रव्यैर्भूषणाद्यैः पद्मिनी सा दिने दिने ।। ११० ।।

पतिवत्पाति तँल्लोके नित्यं स्वर्गे च सर्वदा ।
त्यक्त्वा भार्य्याम्भजेत्तान्तु साधकेन्द्रः सदा प्रिये ।। १११ ।।

तथा— ततो वक्ष्ये महाविद्यां विश्वामित्रेण[1] धीमता ।
ज्ञात्वा या साधिता विद्या बला चाऽतिबला प्रिये ।। ११२ ।।

प्रणवान्ते महाविद्या नटिनी पावकप्रिया ।
महाविद्येह[2] कथिता गोपनीया प्रयत्नतः ।। ११३ ।।

अशोकस्य तटङ्गत्वा स्नानम्पूर्ववदाचरेत् ।
मूलमन्त्रेण सकलङ्कुर्य्याच्च स समाहितः ।। ११४ ।।

त्रैलोक्यमोहिनीङ्गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम् ।
विचित्रालङ्कृतां रम्यां नर्त्तकीवेशधारिणीम् ।। ११५ ।।

एवन्ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रञ्च दिने दिने ।
मांसोपहारैः सम्पूज्य धूपदीपन्निवेदयेत् ।। ११६ ।।

गन्धचन्दनताम्बूलन्दद्यात्तस्यै सदा बुधः ।
मासमेकन्तु ताम्भक्त्या पूजयेत्साधकोत्तमः ।। ११७ ।।

मासान्ते दिवसम्प्राप्य कुर्य्याच्च पूजनम्महत् ।
अर्द्धरात्रे भयन्दत्वा किञ्चित् साधकसत्तमे ।। ११८ ।।

सुदृढं साधकम्मत्वाऽऽयाति सा साधकालये ।
विद्याभिः सकलाभिश्च किञ्चित्स्मेरमुखी ततः ।। ११९ ।।

वरं वरय शीघ्रन्त्वं यत्तो मनसि वर्त्तते ।
तच्छ्रुत्वा साधकः श्रेष्ठो भावयेन्मनसा धिया ।। १२० ।।

मातरम्भगिनीं वाऽपि भार्यां वा प्रीतिभावतः ।
कृत्वा सन्तोषयेद्भक्त्या नटिनी तत्करोत्पलम् ।। १२१ ।।

---

१. ख. विश्वामन्त्रेण । २. ख. महाविद्येव ।

माता स्याद्यदि सा देवी पुत्रवत्पालितं सदा ।
स्वर्णशतं सिद्धद्रव्यं सा ददाति दिने दिने ।। १२२ ।।

भगिनी यदि सा कन्यान्देवस्य नागकन्यकाम् ।
राजकन्यां समानीय सा ददाति दिने दिने ।। १२३ ।।

अतीतगतवार्त्ताञ्च सर्वञ्जानाति साधकः ।
भार्य्या स्याद्यदि सा देवी ददाति विपुलन्धनम् ।। १२४ ।।

अन्नाद्यैरुपचारैश्च दद्यात्सा कामभोजनम् ।
स्वर्णशतं सदा तस्मै सा ददाति ध्रुवम्प्रिये ।। १२५ ।।

यद्यद्धि वाञ्छितङ्कृत्वा सा ददाति न संशयः ।

तथा— महाविद्याम्प्रवक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ।
तारम्माया तथाऽऽगच्छ रागिणि मैथुनप्रिये ।। १२६ ।।

वह्नेर्भार्य्या मनुः प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
एषा मधुमती तु स्यात्सर्वसिद्धिप्रदा मता ।। १२७ ।।

गुह्या गुह्यतरा विद्या तव स्नेहात् प्रकाशिता ।
कुङ्कुमेन समालिख्य भूर्ज्जपत्रे स्त्रियम्मुदा ।। १२८ ।।

ततोऽष्टदलमालिख्य कुर्य्यान्न्यासादिकम्प्रिये ।
जीवन्यासन्ततः कृत्वा ध्यायेत्तत्र प्रसन्नधीः ।। १२९ ।।

शुद्धस्फटिकसङ्काशान्नानारत्नविभूषिताम् ।
मञ्जीरहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डिताम् ।। १३० ।।

एवन्ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रञ्च दिने दिने ।
प्रतिपदं समारभ्य पूजयेत् कुसुमादिभिः ।। १३१ ।।

धूपदीपविधानैश्च त्रिसन्ध्यम्पूजयेन्मुदा ।
पूर्णिमाम्प्राप्य गन्धाद्यैः पूजयेत् साधकोत्तमः ।। १३२ ।।

घृतदीपन्तथा धूपं नैवेद्यञ्च मनोहरम् ।
रात्रौ च दिवसे जापङ्कुर्य्याच्च सुसमाहितः ।। १३३ ।।

प्रभातसमये याति साधकस्यान्तिकन्ध्रुवम् ।
प्रसन्नवदना भूत्वा तोषयेद्रतिभोजनैः ।। १३४ ।।

देवदानवगन्धर्वविद्याधृग्यक्षरक्षसाम् ।
कन्याभी रत्नभूषाभिः साधकेन्द्रम्महुर्मुहुः ।। १३५ ।।

चर्व्यचोष्यादिकन्द्रव्यन्नित्यन्दद्याद्यथेप्सितम् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले यद्वस्तु विद्यते प्रिये ।। १३६ ।।

आनीय दीयते साऽपि साधकाज्ञानरूपतः ।
साधकाय वरन्दत्वा याति सा निजमन्दिरम् ।। १३७ ।।

तस्या वरप्रसादेन चिरजीवी निरामयः ।
सर्वज्ञः सुन्दरः श्रीमान् सर्वगो भवति ध्रुवम् ।। १३८ ।।
❀स्वर्णशतं सदा तस्मै सा ददाति दिने दिने ।❀[1]

देव्युवाच—

[श्रुतञ्च साधनम्पुण्यं यक्षिणीनां सुखप्रदम् ।
कस्मिन्काले प्रकर्त्तव्यं विधिना केन वा प्रभो ।। १३९ ।।][2]
अत्राऽधिकारिणः के वा समासेन वदस्व मे ।

ईश्वर उवाच—

वसन्ते साधयेद्धीमान् हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
सदा ध्यानपरो भूत्वा तद्दर्शनमहोत्सवः ।। १४० ।।

उज्जटे पर्वते वाऽपि कामरूपे विशेषतः ।
स्थानेष्वेकतमम्प्राप्य साधने सुसमाहितः ।। १४१ ।।

अनेन विधिना साक्षाद्भवत्येव न संशयः ।
देव्याश्च सेवकाः सर्वे परञ्चात्राऽधिकारिणः ।। १४२ ।।
तारकब्रह्मणो भृत्यं विनाऽप्यत्राऽधिकारिणः ।।

**इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मजगोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
चतुःपञ्चाशस्तरङ्गः ।। ५४ ।।**

---

१. ❀—❀ नाऽस्त्ययमंशः ख. पुस्तके । २. [—] कोष्ठस्थांशो नाऽस्ति क. पुस्तके

[ पञ्चपञ्चाशस्तरङ्गः ]

**शारदातिलके—**

अथो वक्ष्यामि गायत्रीन्तत्वरूपान्त्रयीमयीम् ।
यया प्रकाश्यते ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ १ ॥

भूराद्या[1] व्याहृतयः सप्त स्युस्तत्पदादिकाः ।
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा गायत्री शिरसाऽन्विता ॥ २ ॥

सर्ववेदोद्धृतः सारो मन्त्रोऽयं समुदाहृतः ।
ब्रह्मदेव्यादिगायत्री परमात्मा समीरितः ॥ ३ ॥

ऋष्याद्याः प्रणवस्येह मुनिभिः परिकीर्त्तिताः ।
प्राग्वत्कृत्वा षडङ्गानि ध्यायेद्विष्णुन्तथा ततः ॥ ४ ॥

तथा तत्प्रकारेणोक्तप्रकारेण ।

जमदग्निभरद्वाजभृगुगौतमकश्यपान् ।
विश्वामित्रवसिष्ठाख्यौ व्याहृतीनामृषीन्विदुः ॥ ५ ॥

गायत्र्युष्णिगथानुष्टुब्बृहतीपङ्क्तयः पुनः ।
त्रिष्टुब्जगत्यौ छन्दांसि कथितानि मनीषिभिः ॥ ६ ॥

सप्तार्चिरनिलः सूर्य्यो वाक्पतिर्वरुणो वृषा ।
विश्वेदेवाः क्रमादासान्देवताः परिकीर्त्तिताः ॥ ७ ॥

भूराद्याभिर्व्याहृतिभिः षड्भिः कुर्यात् षडङ्गकम् ।
व्याहृतीः सप्त भूराद्या हृन्मुखांसोरुयुग्मके ॥ ८ ॥

जठरे न्यस्य मन्त्रज्ञो ध्यायेत्ता बृहतीस्ततः ।
स्थानानि सप्त लोकाः स्युः सर्वासां स्वस्वसंज्ञकाः ॥ ९ ॥

स्वे स्वे च वर्णतनवो रूपयौवनसंयुताः ।
क्षौमवस्त्रपरीधानाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ १० ॥

उन्निद्राम्भोजवदनाः प्रभामण्डलमण्डिताः ।
सितोपवीतहृदयाः सपवित्रचतुःकराः ॥ ११ ॥

---

१. क. शाखाद्या ।

अभयाक्षस्रगप्यत्र वरहस्तसरोरुहाः ।
एवं होमजपारम्भे ध्येया व्याहृतयो द्विजैः ।। १२ ।।

गायत्र्या मुनिराख्यातो विश्वामित्रो महाधृतिः ।
गायत्री छन्द इत्युक्तन्देवता सविता स्मृतः ।। १३ ।।

एतान् विन्यस्य ऋष्यादीन् गायत्र्यार्णास्तनौ न्यसेत् ।
पत्सन्धिषु ध्वजे नाभौ हृत्कण्ठभुजसन्धिषु ।। १४ ।।

आस्यनासाकपोलाक्षिकर्णभ्रूमस्तके पुनः ।
पाश्चात्योत्तरयाम्यप्रागूर्द्ध्ववक्त्रेषु साधकः ।। १५ ।।

पदानि दश विन्यस्येदेषु स्थानेषु मन्त्रवित् ।
शिरोभ्रूमध्यदिक्वक्त्रे कण्ठहृन्नाभिगुह्यके । १६ ।।

जानुनोः पादयोर्युग्मे तच्छिरः शिरसि न्यसेत् ।
हृदयम्ब्रह्मणे प्रोक्तं विष्णवे शिर ईरितम् ।। १७ ।।

शिखा रुद्राय कवचमीश्वराय समीरितम् ।
नेत्रं सदा शिवायोक्तमस्त्रं सर्वात्मने स्मृतम् ।। १८ ।।

षडङ्गान्येवमुक्तानि यथास्थानम्प्रविन्यसेत् ।
शिरसोऽस्य मुनिर्ब्रह्मा छन्दो देव्यादिका मता ।। १९ ।।

गायत्री परमात्माऽस्य देवता कथिता बुधैः ।
मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै—
युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटान्तत्वात्मवर्णात्मिकाम् ।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशान्[1] शुभ्रङ्कपालङ्गुणं,
शङ्खञ्चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीम्भजे ।। २० ।।

कशः—पाशः । गुणं—त्रिशूलम् । दक्षाधःकरमारभ्य दक्षवामक्रमेणोपर्युपरि द्वन्द्वक्रमेणाऽऽयुधानि ध्येयानि ।

सप्तव्याहृतिसंयुक्ताङ्गायत्रीं शिरसाऽन्विताम् ।
त्रिरुच्चरन्धिया प्राणान्धारयेद्यतमानसः ।। २१ ।।

---

१. ख. ० भयाङ्कुशकुशान् ।

प्राणायामोऽयमाख्यातः समस्तदुरितापहः ।
प्राणायामान् पुरा कृत्वा गायत्रीं सन्ध्ययोर्जपेत् ।। २२ ।।

विधाय मण्डलं विद्वान् त्रिकोणोज्ज्वलकर्णिकम् ।
अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वञ्चतुरस्रत्रयावृतम् ।। २३ ।।

सौरम्पीठं यजेत्तत्र दीप्तादिनवशक्तिभिः ।
मूलमन्त्रेण क्लृप्तायाम्मूर्त्तौ देवीम्प्रपूजयेत् ।। २४ ।।

त्रिषु कोणेषु सम्पूज्या ब्राह्म्याद्याः शक्तयो बहिः ।
आदित्याद्यास्ततः पूज्या उषादिसहिताः क्रमात् ।। २५ ।।

ततः षडङ्गानभ्यर्च्येत्केशरेषु यथाविधि ।
प्रह्लादिनीम्प्रभाम्पश्चान्नित्यां विश्वम्भराम्पुनः ।। २६ ।।

विशालिनीप्रभावत्यौ जयां शान्तिं यजेत् पुनः ।
कान्तिन्दुर्गासरस्वत्यौ विश्वरूपान्ततः परम् ।। २७ ।।

विशालां संज्ञितामीशां[1] व्यापिनीं विमलां यजेत् ।
तमोपहारिणीं सूक्ष्मां विश्वयोनिं जयावहाम् ।। २८ ।।

पद्मालयाम्परां शोभां पद्मरूपां ततोऽर्च्चयेत् ।
ब्राह्म्याद्याः सारुणा बाह्ये पूजयेत्प्रोक्तलक्षणाः ।। २९ ।।

ततोऽर्च्चयेद्ग्रहान् बाह्ये शक्राद्यानायुधैः सहः ।
इत्थमावरणैर्देवीं दशभिः परिपूजयेत् ।। ३० ।।

धर्मार्थकाममोक्षाणाम्भोक्ता स्याद्द्विजसत्तमः ।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते– "शिरसि–ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे–देवीगायत्रीछन्दसे नमः, हृदि–श्रीपरमात्मने देवतायै नमः" इति विन्यस्य, पूर्वम्प्रणवप्रकरणोक्तप्रकारेण करषडङ्गन्यासान् कृत्वा, तथैव विष्णुं ध्यात्वा, पुनः "शिरसि–जमदग्निभरद्वाजभृगुगौतमकाश्यपविश्वामित्रवसिष्ठेभ्यो ऋषिभ्यो नमः

---

१ संज्ञिनामाण । ख. संज्ञितामाशां । एतत्पाठद्वयस्याऽप्यसमीचीनत्वादत्र वक्ष्यमाण–प्रयोगे वर्णितोऽयमंश उद्धृतः । (सम्पा०)

मुखे–गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुप्जगतीभ्यः छन्दोभ्यः., हृदये–अग्निवायुसूर्य्यगुरुवरुणवृषविश्वेदेवेभ्यो[1] देवताभ्यः०" इति विन्यस्य, "ॐ भूः हृदयाय नमः ॐ भुवः शिरसे स्वाहाः "ॐ स्वः शिखायै वषट, ॐ महः कवचाय हुम्, ॐ जनः नेत्राय वौषट्, ॐ नपः अस्त्राय फट्०, इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यास कृत्वा "हृदि–ॐ भूः नमः, मुखे–ॐ भुवः०, दक्षिणांसे–ॐ स्वः०, वामे–ॐ महः०, दक्षोरौ–ॐ जनः०, वामे–ॐ तपः, जठरे–ॐ सत्य" इति विन्यस्य,

प्रमाणोक्तरूपव्याहृतीर्ध्यात्वा–"शिरसि–विश्वामित्राय ऋषये नमः, मुखे–गायत्र्यै छन्दसे नमः, हृदि–सवित्रे देवतायै नमः" इति विन्यस्य, "ॐ ब्रह्मणे हृदयाय नमः, ॐ विष्णवे शिरसे स्वाहा, ॐ रुद्राय शिखायै वषट्, ॐ ईश्वराय कवचाय हुं, ॐ सदाशिवाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ सर्वात्मने अस्त्राय फडि"ति। करषडङ्गन्यासं विधाय,

पादाङ्गुलिमूले–"ॐ तत् नमः, गुल्फयोः–सँ, जानुनोः–विं, ऊरुमूलयोः–तुं, लिङ्गे–वं, नाभौ–रें, हृदि–णिं, कण्ठे–यं, कराङ्गुलिमूलयोः–भं, मणिबन्धयोः–र्गों, कूर्प्परयोः-दें, भुजमूलयोः–वं, मुखे-स्यं, नासिकयोः – धीं, कपोलयोः–मं, नेत्रयोः–हिं, कर्णयोः–धिं, भ्रुवोः-यों, शिरसि–यों, चूडाधः–नंः, वामकर्णे–प्रं, दक्षकर्णे–चों, मुखे-दं, शिरसि–यात् नमः। शिरसि–तत्, भ्रूमध्ये-सवितुः, नेत्रयोर्वरेण्यं, मुखे–भर्गः, कण्ठे–देवस्य, हृदि–धीमहि, नाभौ–धियः, गुह्ये–यः, जानुनोः–नः, पादयोः–प्रचोदयात् नम" इति विन्यस्य,

"शिरसि–ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे–गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि–परमात्मने देवतायै नमः, शिरसि–ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरों नमः" इति विन्यस्य, महाव्याहृतिभिः प्राणायामत्रयं कृत्वा, पुनश्च गायत्र्या ऋष्यादि-पदन्यासान्तं कृत्वा,

ध्यानाद्यात्मपूजान्ते पूर्वोक्तं सौरपीठमभ्यर्च्य, तत्र मूर्त्ति गायत्र्याः परिकल्प्य, तस्यां देवीमावाह्य, पुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य।

त्रिकोणस्याऽग्रकोणादि-प्रादक्षिण्येन कोणत्रये–" ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ माहेश्वर्य्यै नमः" इति [सम्पूज्य,, "ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ विष्णवे

१. ख. ० वरुणविश्वे०।

नमः, ॐ शिवाय नमः" **प्रथमावरणम्** । तद्बहिः][1] कर्णिकायामेव त्रिकोणकोणाद्बहिर्देव्यग्रादि चतुर्दिक्षु—"ॐ आदित्याय नमः, एं रवये०, उं भानवे., इं भास्कराय," अग्न्यादिचतुःकोणेषु—"उं उषायै०, प्रं प्रज्ञायै०, प्रं प्रभायै०, सं सन्ध्यायै०" **द्वितीयावरणम्** । ततोऽष्टदलकेसरेषु–प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य, इति **तृतीयावरणम्** । अष्टदलेषु—ॐ प्रह्लादिन्यै०, प्रभायै०, नित्यायै०, विश्वम्भरायै०, विशालिन्यै०, प्रभावत्यै०, जयायै०, शान्त्यै०" **इति चतुर्थम्** । ततो दलाग्रेषु—"कान्त्यै०, दुर्गायै०, सरस्वत्यै०, विश्वरूपायै०, विशालायै०, ईशायै०[2], व्यापिन्यै०, विमलायै. **इति पञ्चमम्** । ततो द्वितीयाष्टदलमूलेषु–"तमोपहारिण्यै०, सूक्ष्मायै०, विश्वयोन्यै०, जयावहायै०, पद्मालयायै०, परायै०, शोभायै०, पद्मरूपायै नमः" इति सम्पूज्य, **इति षष्ठम्** । दलमध्येषु–ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य, देव्यग्रदले–'अरुणाय नमः' **इति सप्तमम्** । ततो दलाग्रेषु सोमाद्यष्टग्रहान् सौरप्रकरणोक्तांस्तथैव सम्पूज्य, **इति अष्टमं** चतुरस्रवीथीद्वये — प्राग्वदिन्द्रादीन्, **इति नवमम्** । वज्रादीन्श्च सम्पूज्य **दशमम्** । धूपादिशेषं समापयेदिति ।

तथा— व्याहृतित्रयसंयुक्ताङ्गायत्रीन्दीक्षितो जपेत् ।
तत्वलक्षं विधानेन भिक्षाशी विजितेन्द्रियः ।। ३१ ।।

क्षीरोदनन्तिलान्दूर्वाः क्षीरद्रुमसमिद्वरान् ।
पृथक् सहस्रत्रितयञ्जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ।। ३२ ।।

तर्प्पणादि ततः कृत्वा गुरुं सन्तोष्य यत्नतः ।
प्रयोगानाचरेद्विद्वांस्तदनुज्ञापुरःसरम् ।। ३३ ।।

तत्वसङ्ख्यासहस्राणि मन्त्रविज्जुहुयात्तिलैः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुः स विन्दति ।। ३४ ।।

आयुषे साज्यहविषा केवलेनाऽथसर्पिषा ।
दूर्वात्रिकैस्तिलैर्मन्त्री जुहुयात्त्रि सहस्रकम् ।। ३५ ।।

प्रतिद्रव्यमिति शेषः ।

---

१. [—] कोष्ठबद्धोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके । २. क. पुस्तके 'माण' इति तथा ख. पुस्तके 'आशा' इति पाठो दृश्यते, किन्तु तद्द्वयस्याऽप्यनौचित्यादुपय्युतद्धृ एव पाठः समीचीनः । (सम्पादक)

अरुणाब्जैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयादयुतन्ततः ।
महालक्ष्मीर्भवेत्तस्य षण्मासान्नाऽत्र संशयः ।। ३६ ।।

ब्रह्मश्रिये प्रजुहुयात् प्रसूनैर्ब्रह्मवृक्षजैः ।
बहुना किमिहोक्तेन यथावत् साधु साधिता ।। ३७ ।।
द्विजन्मनामियं विद्या सिद्धा कामदुघा मता ।

**श्रीयन्त्रसारे**—

आवीतं व्याहृतीभिर्वसुदलकमले कर्णिकायाञ्च तारं,
किञ्जल्केषु स्वराढ्यन्दलमनुगुणशो मन्त्रवर्णांल्लिखेच्च ।
ओमापोज्योतिराढ्यं बहिरपि च वृतं व्यञ्जनार्णैश्च यन्त्रं,
गायत्र्या मोक्षधर्मद्रविणसुखकरम्भूपुराश्रिस्थमायम् ।। ३८ ।।

**अस्याऽर्थः**—अष्टदलं कमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, तत्सप्तव्याहृतिभिः संवेष्टय, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः स्वरान् सविन्दुकान् विलिख्य, तद्दलेषु गायत्र्यर्णांस्त्रिशस्त्रिशः प्रतिदलं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले ककारादिक्षकारान्तैरापोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःसुवरोमित्यन्तैरावेष्टय, तद्बहिश्चतुरस्रं कृत्वा, तत्कोणेषु भुवनेश्वरीबीजं विलिखेदेतदुक्तफलदम्भवति ।

**शारदातिलके**—

आग्नेयमभिधास्यामि सर्वमान्त्रार्थसाधकम् ।

**सारसङ्ग्रहे**—

जातवेदपदं से सुनवाम सोम इत्यथ ।
मरातीयतो निदहाति वेदः पदमीरयेत् ।। ३९ ।।

सनः पर्षदति ततो दुर्गाणि वि-पदं वदेत् ।
श्वाना वेव ततः सिन्धुं दुरितात्यग्निरित्यपि ।। ४० ।।
त्रिष्टुम्मन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वमन्त्रनिबर्हणः ।

मन्त्रोद्धारः सुगमः ।

**शारदातिलके**—

मरीचिः कश्यपः प्रोक्तो मुनिरस्य महामनोः ।
त्रिष्टुप् छन्दो देवताऽस्य जातवेदाग्निरीरितः ।। ४१ ।।

नवभिः सप्तभिः षड्भिः सप्तभिः पुनरष्टभिः ।
सप्तभिर्मूलमन्त्रार्णैः षडङ्गविधिरीरितः ।। ४२ ।।

अङ्गुष्ठगुल्फजङ्घासु [जानुनोरूरुनोयुग्मके ।
कटचन्धुनाभिषु हृदि स्तनयोः पार्श्वयोर्द्वयोः ।। ४३ ।।

पृष्टतः स्कन्धयोर्मध्ये बाहुमूलोपबाहुषु ।
प्रकूर्परप्रकोष्ठेषु][1] मणिबन्धतलेषु च ।। ४४ ।।

मुखनासाक्षिकर्णेषु मस्तमस्तिष्कमूर्द्धनि ।
क्रमेण विन्यसेद्वर्णान् मन्त्री मन्त्रसमुद्भवान् ।। ४५ ।।

शिखाललाटनयनकर्णोष्ठरसनास्तथा ।
सकण्ठबाहुहृत्कुक्षिकटिगुह्योरुजानुषु ।। ४६ ।।
जङ्घयोः पादयोर्न्यस्येत्पदान्यस्य मनोः सुधीः ।

विद्युद्दामसमप्रभाम्मृगपतिस्कन्धस्थिताम्भीषणां,
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रदरासिखेटविशिखाञ्श्चापाङ्कुशौ तर्ज्जनीं,
बिभ्राणामनलाग्नि(तिम)कां शशिधरान्दुर्गान्त्रिनेत्रां स्मरेत् ।।४७।।

दक्षोर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये, तदाद्यधस्थयोरपरे, तदाद्यधस्थयो-रितर इत्यायुधध्यानम् ।

मण्डलं सर्वतोभद्रे पद्मे षट्कोणकर्णिके ।
विधिना वक्ष्यमाणेन पीठदेवीः प्रपूजयेत् ।। ४८ ।।

जयाख्यां विजयाम्भद्राम्भद्रकालीमनन्तरम् ।
सुमुखीन्दुर्मुखीञ्चैव पश्चाद्व्याघ्रमुखीम्पुनः ।। ४९ ।।

अथ सिंहमुखीन्दुर्गान्नवशक्तीः प्रपूजयेत् ।
आसनं सिंहमन्त्रेण दद्यादुक्तेन साधकः ।। ५० ।।

सिंहमन्त्रः प्राग् दुर्गाप्रकरणे उक्तः ।

---

१. [—] कोष्ठगोंऽशो न दृश्यते क. पुस्तके ।

मूर्त्तिम्मूलेन सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत् ।
षडङ्गानि यथापूर्वं केशरेष्वर्च्चयेत्सुधीः ॥ ५१ ॥

ग्न्यादिपादाष्टकोत्पन्ना मूर्त्तयोऽर्च्या बहिः पुनः ।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः ॥ ५२ ॥

अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः ।
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः ॥ ५३ ॥

ततो भूसलिलाग्नीरानात्मनेऽन्तान्नमोऽन्वितान् ।
चतुर्द्दिक्षु समभ्यर्च्य कोणेषु तत्कलाम्पुनः ॥ ५४ ॥

पूर्वादिदिक्षु सम्पूज्या जार्णाद्या वर्णदेवताः ।
जागता तपनी वेदगर्भा दहनरूपिणी ॥ ५५ ॥

सेन्दुखण्डा शुम्भहन्त्री नभश्चारिण्यनन्तरम् ।
वागीश्वरी मदवहा सोमरूपा मनोजवा ॥ ५६ ॥

मरुद्वेगा रात्रिसंज्ञा तीव्रकोपा यशोवती ।
तोयात्मिका पुनर्नित्या दयावत्यपि हारिणी ॥ ५७ ॥

तिरस्क्रिया वेदमाता तत्परा दमनप्रिया ।
समाराध्या नन्दिनी च परा रिपुविमर्द्दिनी ॥ ५८ ॥

वेदना वह्निगर्भा च सिंहवाहाह्वया तथा ।
धुर्य्या दुर्विषहा पश्चाद्रिरिंसा तापहारिणी ॥ ५९ ॥

त्यक्तदोषा निःसपत्ना चत्वारिंशच्चतुर्युताः ।
लोकपालांस्ततोऽभ्यर्च्येद्वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥ ६० ॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा– "शिरसि—काश्यपाय ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे०, हृदि—जातवेदसेऽग्नये देवतायै नम" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा,

"जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः, सोममरातीयतः शिरसे स्वाहा, निदहाति वेदः शिखायै वषट्, सनः पर्षदति कवचाय हुम्, दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्राय वौषट्. सिन्धुन्दुरितात्यग्निः अस्त्राय फडि" ति षडङ्गन्यासं कृत्वा,

"दक्षपादाङ्गुष्ठे—जां नमः, वामे—तं०, दक्षगुल्फे—वें०, वामे—दं०, दक्षजङ्घायां—सें०, वामायां-सुं०, दक्षजानुनि-नं०, वामे—वां०, दक्षोरौ-मं०, वामे—सों०, दक्षकट्यां-मं०, वामायां—मं०. लिङ्गे-रां०, नाभौ—तीं०, हृदि-यं०,। दक्षस्तने—तों०, वामे-निं०, दक्षपार्श्वे-दं०, वामे-हाँ०, पृष्ठे—तिं०, दक्षस्कन्धे-वं०, वामे—दः, दक्षबाहुमूले—सं०, वामे—नं० तन्मध्ये—पं०, वामे—ऋं०, दक्षकूर्प्परे—षं०, वामे—द०, दक्षप्रकोष्ठे-तिं०, वामे—दुँ०, दक्षमणिबन्धे—र्गां०, वामे-णिं, दक्षकरतले—विं०, वामे-श्वां०, मुखे—नां०, दक्षनसि—वें०, वामे-वं० दक्ष नेत्रे-सिं, वामे-धुं०', । दक्षकर्णे-दुं०, वामे-रिं०, ललाटे—तां०, ललाटस्योपरि—त्यं०, मूर्द्धनि-ग्नि नमः" इति विन्यस्य, "शिखायां—जातवेदसे नमः, ललाटे-सुनवामः०, दक्षिणनेत्रे—सोमं०, वामे- अरातीयतः०, दक्षकर्णे-निं०, वामे—दहातिं०, ओष्ठे वेदः०, अधरे—सः०, रसनायां—नः०, कण्ठे-पर्षत्०, बाह्वोः—अति०, हृदि—दुर्गाणि०, कुक्षौ-विश्वा०, कटौ-नावा०, गुह्ये-इव०, ऊरुद्वये—सिन्धुं०, जानुद्वये दुरिता०, जङ्घयोः—अति०, पादयोः—अग्निः नम" इति विन्यस्य,

ध्यानाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तं सर्वतोभद्रमण्डलं कृत्वा, तन्मध्यपद्मकर्णिकायां षट्कोणं कृत्वा, तत्र मण्डूकादिपरतत्वान्तं शक्तिपीठमभ्यर्च्य, केसरेषु "ॐ जयायै नमः, एवं विजयायै०, भद्रायै०, भद्रकाल्यै०, सुमुख्यै०, दुर्मुख्यै०, व्याघ्रमुख्यै०, सिंहमुख्यै०, मध्ये—दुर्गायै नम" इति सम्पूज्य।

"ॐ वज्रनखदंष्ट्राय महासिंहाय हुं फट् नम" इति पीठमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य, मूलमन्त्रेण मूर्त्ति सङ्कल्प्याऽऽवाहनादि-षडङ्गपूजान्तेऽष्टदलेषु—"ॐ जातवेदसे नमः, एवं सप्तजिह्वाय०, हव्यवाहनाय०; अश्वोदरजाय०, वैश्वानराय०, कौमारतेजसे०, विश्वमुखाय०." इति, पीठस्य चतुर्दिक्षु—भूरात्मने०, सलिलात्मने०, अग्न्यात्मने०, वाय्वात्मने०, तत्कोणेषु—निवृत्त्यै० प्रतिष्ठायै०, विद्यायै०, शान्त्यै०"।

ततो वीथीचतुष्टये-स्वाग्रादि-प्राग्दक्षिण्येन-"जागतायै०, तपन्यै०, वेदगर्भायै०, दहनरूपिण्यै०, सेन्दुखण्डायै०, शुम्भहन्त्र्यै०, नभश्चारिण्यै०, वागीश्वर्य्यै०, मदवहायै०, सोमरूपायै०. मनोजवायै०, मरुद्वेगायै०, रात्र्यै०, तीव्रकोपायै०, यशोवत्यै०, तोयात्मिकायै०, नित्यायै०, दयावत्यै०, हारिण्यै०, तिरस्क्रियायै०, वेदमात्रे०, मदनप्रियायै०, समाराध्यायै०, नन्दिन्यै० परायै०, रिपुविमर्दिन्यै०, षष्ठ्यै०, दण्डिन्यै०, तिग्मायै०, दुर्गायै०, गायत्र्यै०, निरवद्यायै०, विशालाक्ष्यै०, श्वासोद्वहायै०, नादिन्यै०, वेदनायै०, बह्निगर्भायै०, सिंहवाहायै०, धुर्य्यायै०, दुर्विषहायै०, रिरिंसायै०, तापहारिण्यै०, त्यक्तदोषायै०, निःसपत्नायै नम" इति प्रतिदिशमेकादशैकादशशक्तीः सम्पूज्य, तद्बहिर्लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपादिशेषं प्राग्वत् कृत्वा समापयेदिति ।

तथा— मन्त्रवर्णसहस्राणि जपेन्मन्त्रं विशालधीः ।
तदन्ते तिलसिद्धार्थचित्रमूलैः समिद्वरैः ।। ६१ ।।

क्षीरद्रुमाणामाज्येन हविष्यान्नैर्घृतान्वितैः ।
चतुश्चत्वारिंशदाढ्यचतुःशतसमन्वितम् ।। ६२ ।।

चतुःसहस्रञ्जुहुयादर्च्चिते हव्यवाहने ।

दशभिर्द्रव्यैः प्रतिद्रव्यं चतुश्चत्वारिंशदुत्तरचतुःशतसङ्ख्यं हुत्वाऽन्तिमद्रव्येणाऽऽहुतिचतुष्टयमधिकञ्जुहुयात् ।

फेत्कारिणीतन्त्रे—

ततः सन्तर्प्य सलिलैः कृत्वा चात्माभिषेचनम् ।
समाराध्य धरादेवांस्तोषयेद् गुरुमात्मनः ।। ६३ ।।

इत्थञ्जपादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन् साधकोत्तमः ।
आग्नेयास्त्राधिकारी स्यात्तद्विधानमुदीर्य्यते ।। ६४ ।।

आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्तं विलोमपठितो मनुः ।
पूर्वोक्ता एव मुन्याद्या मन्त्रस्याऽस्य प्रकीर्त्तिताः ।। ६५ ।।

प्रतिलोमक्रमादस्य षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
वर्णन्यासपदन्यासौ विदध्यात् प्रतिलोमतः ।। ६६ ।।

ध्यानभेदान् विजानीयाद् गुर्वादेशान्न चाऽन्यथा ।
पूर्ववज्जपक्लृप्तिः स्याज्जुहुयात् पूर्वसङ्ख्यया ।। ६७ ।।

पञ्चगव्यसुपक्वेन चरुणाऽस्त्रस्य सिद्धये ।
अर्च्चनम्पूर्ववत् कुर्य्याच्छक्तीस्तु प्रतिलोमतः ।। ६८ ।।

सर्वत्र देशिकः कुर्य्याद् गायत्र्यामनुलोमतः ।
प्रयोगकाले प्रजपेदष्टौ पादान्विलोमतः ।। ६९ ।।

साधितो जायते पश्चान्मन्त्रोऽयं विधिनाऽमुना ।
न्याद्यः पञ्चाक्षरः पादो ज्ञेयो ज्ञानेन्द्रियात्मकः ।। ७० ।।

धुमाद्यः पञ्चवर्णोऽन्यः स्मृतः कर्मेन्द्रियात्मकः ।
श्वाद्यस्तृतीयः पञ्चार्णः पञ्चभूतमयः स्मृतः ।। ७१ ।।

त्याद्यः सप्ताक्षरः पादश्चतुर्थो धातुरूपकः ।
दःपूर्वः पञ्चमः पादः तूर्म्मीरूपः षडक्षरः ।। ७२ ।।

तोवर्णादिः षडर्णोऽन्यः षाट्कौशिकमयो मतः ।
सोपूर्वः पञ्चवर्णोऽन्यः शब्दादिमय ईरितः ।। ७३ ।।

सेवर्णाद्यष्टमो ज्ञेयः पञ्चार्णो वचनादिकः ।
एवन्तत्वसमायोगात् पादक्लृप्तिरुदीरिता ।। ७४ ।।

तत्तत्पादाक्षरोत्पन्नास्ताराद्या वह्निदेवताः ।
प्रधानमूर्त्तिप्रतिमाः स्वस्ववर्णोदितप्रभाः ।। ७५ ।।

प्रज्वलत्केशवदना भीमदंष्ट्रा भयावहाः ।
देवता इन्द्रियोत्पन्ना ऊर्ध्वदृष्टय ईरिताः ।। ७६ ।।

देवता भूतपादोत्थास्तिर्य्यग्वक्त्राः प्रकीर्त्तिताः ।
धातुरूपाक्षरोद्भूता उभयाननशोभिताः ।। ७७ ।।

ऊर्मिजा ऊर्ध्ववदना कोशोत्थास्तिर्य्यगानताः ।
एताः सर्वाः स्मृताः क्लीबा इन्द्रियार्थोद्भवाः स्त्रियः ।। ७८ ।।

अधस्तिर्यङ्मुखोपेता ईरिता वर्णदेवताः ।
आभिमुख्यः स्मृताः सौम्ये पराङ्मुख्योऽन्यकर्मणि ।। ७९ ।।

आभ्योऽसङ्ख्या: समुत्पन्ना देवता ज्वलितानना: ।
याभिर्मन्त्री दहेच्छत्रो राज्यं सगिरिकाननम् ।। ८० ।।

अस्त्रम्मनुष्यनक्षत्रे त्वारभेति विचक्षण: ।
आसुरेषु प्रयुञ्जीत देवतारासु संहरेत् ।। ८१ ।।

पूर्वोत्तरात्रयम्पश्चाद्भरण्यार्द्राऽथ रोहिणी ।
इमानि मानुषाण्याहुर्नक्षत्राणि मनीषिण: ।। ८२ ।।

ज्येष्ठाशतभिषङ् मूलधनिष्ठाऽऽश्लेषकृत्तिका: ।
चित्रामघाविशाखा: स्युस्तारा राक्षसदेवता: ।। ८३ ।।

अश्विनी रेवती पुष्यस्वाती हस्तपुनर्वसू ।
अनुराधा मृगशिर: श्रवणन्देवतारका: ।। ८४ ।।

उपक्रमेत नन्दासु रिक्तास्वस्त्रं विसर्ज्जयेत् ।
भद्रास्वाहरणङ् कुर्य्याज्जयास्वत्यन्तमुत्तमम् ।। ८५ ।।

उपक्रम: सोमवारे शनिवारे विसर्ज्जनम् ।
प्रतिसंहरणं वारे गुरो: शुक्रस्य वा भवेत् ।। ८६ ।।

स्थिरेषु राशिष्वारम्भश्चरेषु स्याद्विसर्ज्जनम् ।
अस्त्रसंहरणङ् कुर्य्यादुभयेषु विचक्षण: ।। ८७ ।।

कृष्णपक्षेऽनलेनाऽस्त्रं विसृजेच्छशिना पुन: ।
शुक्लपक्षे क्रमादस्त्रम्पुनरात्मनि संहरेत् ।। ८८ ।।

भानुना मोक्षसंहारौ कुर्य्यात् पक्षद्वये सुधी: ।
पश्चिमाभिमुखो भूत्वा सर्वकर्माणि साधयेत् ।। ८९ ।।

नक्षत्रवृक्षशकलान् साध्याख्याकर्मसंयुतान् ।
तत्तन्मन्त्राक्षरोपेतान् मन्त्री मन्त्रार्णसङ्ख्यया ।। ९० ।।

जुहुयादेधिते वह्नौ मारयेद्रिपुमात्मन: ।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्द्दशी ।। ९१ ।।

धत्तूरविषवृक्षाक्षभूरुहोत्थान् समिद्वरान् ।
राजीतैलेन सँल्लिप्तान् पृथक् सप्तसहस्रकम् ।। ९२ ।।

जुहुयात् संयतो भूत्वा रिपुर्य्यमपुरं व्रजेत् ।
सप्तरात्रम्प्रजुहुयात् सिद्धार्थस्नेहसंयुतैः ॥ ९३ ॥

आर्द्रवस्त्रे विष्टिकाले मरीचैर्मनुनाऽमुना ।
निगृह्यते ज्वरेणारिः प्रलयाग्निसमेन सः ॥ ९४ ॥

तालपत्रे समालिख्य शत्रुनाम यथाविधि ।
आग्नेयास्त्रेण संवेष्टच कुण्डमध्ये निखन्य तत् ॥ ९५ ॥

हुनेन्मरीचैः सङ्क्रुद्धो ज्वराक्रान्तः स जायते ।
तदादाय क्षिपेत्तोये शीतले स वशी भवेत् ॥ ९६ ॥

पिष्टानपामार्गजातिमरीचं मधुसंयुतम् ।
अत्युष्णे लवणे तोये निक्षिप्य क्वाथयेत्ततः ॥ ९७ ॥

अक्षवृक्षप्रतिकृतेर्हृदये वदने नसि ।
किञ्चित्किञ्चित् क्षिपेत्तोये दर्व्या कारस्करोत्थया ॥ ९८ ॥

आग्नेयमुच्चरन् मन्त्री सोऽचिराज्ज्वरितो भवेत् ।
क्वथितेऽम्भसि तां क्षिप्त्वा हुन्याच्छत्रूनयत्नतः ॥ ९९ ॥

तीक्ष्णस्नेहेन सँल्लिप्तां शत्रुप्रतिकृतिन्निशि ।
तापयेदेधिते वह्नौ प्रतिलोममनुञ्जपेत् ॥ १०० ॥

ज्वरेण बाध्यते सद्यो होमादस्य मृतिर्भवेत् ।
सामुद्रे सलिले हिङ्गुविषजीरकलोलिते ॥ १०१ ॥

क्वथिते पुत्तलीं साध्यनक्षत्रतरुनिर्मिताम् ।
अधोवक्त्रां विनिक्षिप्य यष्टचा विषतरूत्थया ॥ १०२ ॥

तच्छिरस्ताडनङ्कुर्य्याज्जपन्नस्त्रं विलोमतः ।
सप्ताहान्मरणं याति शत्रुर्ज्वरविमोहितः ॥ १०३ ॥

आदित्यरथनागेन्द्रग्रस्तारिं तद्विषाहतम् ।
नग्नन्तैलेन लिप्ताङ्गं दग्धम्भानुमरीचिभिः ॥ १०४ ॥

अधोमुखन्निजरिपुन्ध्यात्वा क्वथितवारिणा ।
तर्प्पयेद्भानुमालोक्य शत्रुर्मृत्युप्रियो भवेत् ॥ १०५ ॥

बिभ्रतीं मूसलं शूलन्ध्यायन् कालघनप्रभाम् ।
कर्प्पासबीजैर्निम्बस्य पत्रैर्मेषीघृतप्लुतैः ॥ १०६ ॥

हुत्वा विद्वेषयेच्छत्रूनस्त्रेणाऽनेन देशिकः ।
बिभ्राणान्तर्ज्जनीं शूलं ध्यात्वा दुर्गाम्भयङ्करीम् ॥ १०७ ॥

महिषीघृतसंसिक्तैः पल्लवैर्विषवृक्षजैः ।
हुत्वा रिपोः क्षणात्सेनामुच्चाटयति मन्त्रवित् ॥ १०८ ॥

ध्यात्वा देवीम्पुरोक्ताञ्चरुभिर्मरिचान्वितैः ।
अजारुधिरसंसिक्तैर्जुहुयाद्दिवसत्रयम् ॥ १०९ ॥

रिपोरुच्चाटनङ्कुर्य्यात्सेनाया नाऽत्र संशयः ।
अग्निशूलकरान्दुर्गाञ्ज्वलन्तीम्प्रलयाग्निवत् ॥ ११० ॥

ध्यात्वा सर्षपतैलाक्तैर्बीजैर्धत्तूरसम्भवैः ।
हुत्वा विमोहयेच्छत्रून् मरीचैर्वा ससर्षपैः ॥ १११ ॥

कालाञ्जननिभान्दुर्गां शूलखड्गकरां स्मरन् ।
नक्षत्रवृक्षसम्भूतैर्व्रणकृत्स्नेहसम्प्लुतैः ॥ ११२ ॥

समिद्वरैः प्रजुहुयाद्धन्यान्मासेन वैरिणम् ।

अणकृद्भल्लातकः ।

सिंहारूढाम्प्रधावन्तीन्धावमानां रिपुम्प्रति ।
शरान् कार्मुकनिर्मुक्तान् वह्निज्वालामुखाकुलान् ॥ ११३ ॥

मुञ्चन्तीं संस्मरन्दुर्गान्तर्प्पयेदुष्णवारिणा ।
भानुबिम्बं समालोक्य रिपोरुच्चाटनम्भवेत् ॥ ११४ ॥

अतिदुर्गामयोयष्टिगदाहस्तां विचिन्तयेत् ।
विद्युद्दामसमानाभाम्महिषीघृतसम्प्लुतैः ॥ ११५ ॥

फुल्लकैर्जुहुयान्निम्बबैभीतकसमिद्वरैः ।
कोद्रवैरथ शत्रोश्च सेनायाः स्तम्भनम्भवेत् ॥ ११६ ॥

आत्तपाशाङ्कुशां रक्ताङ्गाणिदुर्गामनुस्मरन् ।
लोणैः समधुरैः सम्यक् साध्यवृक्षैधितेऽनले ॥ ११७ ॥

जुहुयान्निशि सप्ताहान्मन्त्रविद्वशयेन्नृपान् ।
पाशाङ्कुशधरां रक्तां विश्वदुर्गां विचिन्तयेत् ॥ ११८ ॥

फलिनीकुसुमैः फुल्लैश्चन्दनाम्भःसमुत्क्षितैः ।
जुहुयान्निशि यो मन्त्री तस्य विश्वं वशम्भवेत् ॥ ११९ ॥

शरच्चन्द्रनिभान्देवीं विगलत्परमामृताम् ।
पाशाङ्कुशधरान्ध्यायन् सिन्धुदुर्गां समिद्वरैः ॥ १२० ॥

वैतसैर्मधुरासिक्तं जुहुयाद् वृष्टिसिद्धये ।
कपालं त्रिशिखम्पाशमङ्कुशं बिभ्रतीङ्करैः ॥ १२१ ॥

जपाकुसुमसङ्काशामग्निदुर्गां विचिन्तयन् ।
हुत्वा लवणपुत्तल्या मधुरत्रययुक्तया ॥ १२२ ॥

आकर्षेद्वाञ्छितान् साध्यान् मन्त्रविन्नाऽत्र संशयः ।
अतिदुर्गेयमत्याद्या षदन्ता तृष्टुबीरिता ॥ १२३ ॥

दुर्गा णान्ताऽथ गाण्याद्या गाणिदुर्गा समीरिता ।
विश्वाद्या ण्यक्षरान्ता या[1] विश्वदुर्गा समीरिता ॥ १२४ ॥

सिन्ध्वाद्या सावकारान्ता[2] सिन्धुदुर्गा निगद्यते ।
[3]सान्तामग्न्यादिकामेनामग्निदुर्गां विदुर्बुधाः ॥ १२५ ॥

अङ्गणे स्थण्डिलङ्कृत्वा सुगन्धिकुसुमादिभिः ।
देवीमभ्यर्च्चयेन्नित्यम्प्रागुक्तेनैव वर्त्मना ॥ १२६ ॥

आहरेद्रात्रिषु बलिञ्चरुणा सर्वसिद्धिदम् ।
कृत्यारोगभयद्रोहभूतानि शमयेदयम् ॥ १२७ ॥

यथावदग्निमाराध्य गन्धैः पुष्पैर्मनोरमैः ।
अर्च्य तस्याऽग्रतो मन्त्री जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ १२८ ॥

जपोऽयं सर्वसिद्ध्यै स्यान्नाऽत्र कार्य्या विचारणा ।
लवणैर्मधुरासिक्तैर्जुहुयात्पश्चिमामुखः ॥ १२९ ॥

---

१. क. ण्यक्षकारान्ता । २. क. सविकारान्ता । ३. ख. त्यन्तामग्न्यादि० ।

मन्त्रार्णसङ्ख्यया मन्त्री रिपुमात्मवशन्नयेत् ।
शालीन् प्रक्षाल्य संशोध्य शुद्धान् कुर्वीत तण्डुलान् ।। १३० ।।

जपित्वा पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने ।
चरुं यजेज्जपन् मन्त्रमवतार्य्यं पुनः पुनः ।। १३१ ।।

अर्च्चयित्वा विशदधीर्देवीमग्नौ यथा पुरा ।
जुहुयाच्चरुणाऽनेन साज्येनाऽष्टसहस्रकम् ।। १३२ ।।

पात्रे सम्पातनङ् कुर्वन् साध्यन्तत्प्राशयेद् गुरुः ।
शिष्टन्तन्निखनेद्द्वारि सम्पातं प्राङ्गणान्तरे ।। १३३ ।।

कृत्यारोगा विनश्यन्ति सह भूतग्रहामयैः ।
परैरुत्पादिताः कृत्याः पुनस्तानेव भक्षयेत् ।। १३४ ।।

व्रीहिभिर्हविषा क्षीरैः पयोवृक्षसमिद्वरैः ।
आज्यैर्मधुत्रयोपेतैरेतैर्दशशतम्पृथक् ।। १३५ ।।

जुहुयात् सम्पदाम्भूमिः साधको भवति ध्रुवम् ।
भास्करे मेषराशिस्थे मन्त्राज्ञानुगुणो[1] दिने ।। १३६ ।।

नद्यां सागरगामिन्यां सततम्पुष्कलाम्भसि ।
उद्धृत्याऽऽदाय सिकताः संशोध्य परिशोधयेत् ।। १३७ ।।

न्यस्य ताः पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने ।
भर्ज्जयेन्मनुना[2] सिद्धयै दर्व्या ब्रह्मतरूत्थया ।। १३८ ।।

सिंहमेषधनुःस्थेऽर्के कृष्णपक्षेऽष्टमीतिथौ ।
विशाखाकृत्तिकामूलहस्तोत्तरमघास्वथ ।। १३९ ।।

रोहिण्यां श्रवणे वारौ मन्दवाक्पतिदैवतौ ।
विहायाऽन्येषु कुर्वीत सिकतास्थापनं सुधीः ।। १४० ।।

गृहग्रामादिराष्ट्राणां रक्षार्थे सिकताः शुभाः ।
प्रस्थाढकघटोन्माना मध्यादिष्ववटेष्विमाः ।। १४१ ।।

घटः कुम्भः ।

1. ख. मन्त्रज्ञानुगुणे । २ क. वर्ज्जये ० ।

नवसु प्रक्षिपेज्जप्तास्तेषु सम्पूजयेत् क्रमात् ।
मध्यादि देवीमस्त्राणि कपालान्तानि देशिकः ।। १४२ ।।

चक्रं शङ्खमसिं खेटम्बाणाञ्श्चापं त्रिशूलकम् ।
कपालं स्वस्वमन्त्रेण सम्पूज्याऽन्ते बलिं हरेत् ।। १४३ ।।

नक्षत्रग्रहराशीनां लोकेशानाम्बलिं हरेत् ।
विहिता यत्र रक्षेयं वर्द्धन्ते यत्र सम्पदः ।। १४४ ।।

क्षुद्रग्रहमहारोगचोरभूतसरीसृपाः ।
अमुना विलयं यान्ति विधिना नाऽत्र संशयः ।। १४५ ।।

सिकतानां विशुद्धानां विकारकुडवं[1] सुधीः ।
पञ्चगव्ययुतम्पात्रे ब्रह्मवृक्षेण निर्मिते ।। १४६ ।।

निक्षिप्य विधिना यत्र स्थापयेत्तत्र सम्पदः ।
दिने दिने प्रवर्द्धन्ते कालवृष्ट्यादिभिः सह ।। १४७ ।।

महोत्पाता विनश्यन्ति कृत्याद्रोहमहाग्रहाः ।
चरुगव्याश्मनाङ्कुर्य्यात् स्थापनं विधिनाऽमुना ।। १४८ ।।

गोमूत्रम्प्रस्थमात्रं स्याद् गोमयम्प्रस्थकार्द्धकम् ।
आज्यात् सप्तगुणं क्षीरं गोमूत्रात्त्रिगुणन्दधि ।। १४९ ।।

गोमूत्रेण समं सर्प्पिः सर्वं वा सममुच्यते ।
गावः स्युः कपिलाः श्वेतहिमधूम्रारुणप्रभाः ।। १५० ।।

अभावे गदिता एताः सर्वं वा कपिलोद्भवम् ।

विलोमपठित इति—"ग्निः त्यतारिदु धुंसि ववेना श्वावि णिर्गादु तिदषरिपनःस दःवे तिहादनि तोयतीरामम सोमवानसु सेदवेतजा" इति पठितः । प्रतिलोमक्रमादिति—ग्निःत्यतारिदु धुंसि हृत्, ववेनाश्वाविर्णिर्गादु शिरः, तिदषरिपनः स शिखा, दःवेतिहादनि कवचं, तोयतीराममसो नेत्रं, मवानसुसेदवेतजा अस्त्रम् ।

---

१. क. ० कुण्डवं ।

वर्णन्यास-पदन्यासौ सविलोमत इति—"दक्षपादाङ्गुष्ठे–ग्निं नमः, वामे–त्यं०, दक्षगुल्फे–तां०, वामे–रिं०, दक्षजङ्घायां–दुं०, वामायां–धुं०, दक्षजानुनि–सिं०, वामे–वं०, दक्षोरौ–वें०, वामे–नां०, दक्षकटयां–श्वां०, वामायां–विं०, लिङ्गे–णिं०, नाभौ–र्गां०, हृदि–दुं०, दक्षस्तने–तिं०, वामे–दं०, दक्षपार्श्वे–षं०, वामे–रिं०, पृष्ठे–पं०, दक्षमणिबन्धे नं०, वामे–सं० दक्षप्रकोष्ठे–दं०, वामे–वें० दक्षकूर्परे–तिं०, वामे–हां०, दक्षबाहुमूले–तों०, वामे–यं०, दक्षस्कन्धे–तीं०, वामे–रां०, दक्षकरतले–सं०, वामे–मं०, मुखे–सों, दक्षनसि–मं०, वामे–वां, दक्षनेत्रे–नं०, वामे–सुं०, दक्षकर्णे–सें०, वामे–दं०, ललाटे–वें०, ललाटोर्द्ध्वे–तं०, मूर्द्धनि–जां नम" इति विन्यस्य ।

"शिखायां–अग्निः नमः, ललाटे–अति० दक्षनेत्रे–दुरिता०, वामे–सिन्धुं०, दक्षकर्णे–इव, वामे–नावा०, ओष्ठे–विश्वा०, अधरे–दुर्गाणि०, रसनायां–अति०, कण्ठे–परिषत्०, बाह्वोः–नः, हृदि–सः, कुक्षौ–वेदः०, कटौ–दहाति०, गुह्ये–नि०, ऊर्वोः—अरातीयतः०, जानुनोः[1]–सोमं०, जङ्घयोः–सुनवाम०, पादयोः–जातवेदसे नम" इति पदन्यासः ।

शक्तीस्तु प्रतिलोमत इति–"निःसपत्नायै०, त्यक्तदोषायै०, तापहारिण्यै०, रिरिसायै०, दुर्विषहायै०, धुर्य्यायै[1]०, सिंहवाहायै०, वह्निगर्भायै०, वेदनायै०, नादिन्यै०, श्वासोद्वहायै०, विशालाक्ष्यै०, निरवद्यायै०, गायत्र्यै०, दुर्गायै०, तिग्मायै०, दण्डिन्यै०, षष्ठ्यै०, रिपुमर्द्दिन्यै०, परायै०, नन्दिन्यै०, समाराध्यायै०, मदनप्रियायै०, वेदमात्रे० तिरस्क्रियायै०, हारिण्यै०, दयावत्यै०, नित्यायै०, तोयात्मिकायै०, यशोवत्यै०, तीव्रकोपायै०, रात्र्यै०, मरुद्वेगायै०, मनोजवायै०, सोमरूपायै०, मदवहायै०, वागीश्वर्य्यै०, नभश्चारिण्यै०, शुम्भहन्त्र्यै०, सेन्दुखण्डायै०, दहनरूपिण्यै०, वेदगर्भायै०, तपन्यै०, जागतायै०" इति ।

पूर्ववदिति जपक्लृप्तिः—पुरश्चरणं वर्णसङ्ख्यया सह सहस्राणि जपेदिति । पञ्चगव्यपक्वचरुणा पुरश्चरणाङ्गहोमः । प्रयोगकाले– आग्नेयास्त्रप्रयोगकाले । पादाष्टकं तु– प्रतिलोमलिखितमन्त्रे तत्तद्वर्णसङ्ख्यया बोद्धव्यम् । ग्न्याद्यष्टप्पदाक्षराणां तत्वरूपतामाह—ग्न्याद्य इत्यादिभिः । ग्न्यादिपादाक्षरोत्पन्नानां देवतानां ध्यानभेदादिकमाह प्रधानमूर्त्तिप्रतिमा इत्यादिभिः । सौम्यक्रूर-

१. क. नाऽस्त्ययमंशः ।

कर्मभेदेषु ध्यानभेदानाह–आभिमुख्य इत्यादिना । अस्त्रप्रयोगादौ नक्षत्रादिकमाह–अस्त्रमित्यादिभिः । निग्रहप्रयोगानाह–नक्षत्रवृक्षेत्यादिभिर्नक्षत्रवृक्षास्तु मातङ्गी-प्रकरणे प्रोक्ताः ।

तथा— एकोनपञ्चाशत्कोष्ठे फलके ब्रह्मशाखिनः ।
विहाय कोणकोष्ठानि शक्त्याद्यं[1] जातवेदसम् ।। १५१ ।।

लिखित्वा मध्यकोष्ठादि पूजयेत्तत्र देवताम् ।
कृत्वा होमं ससम्पातं निखनेत्तद्यथा पुरा ।। १५२ ।।
दद्याद्बलिं यथापूर्वन्तस्य पूर्वोदितम्फलम् ।

**अस्यार्थः**—तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताः[2] चाऽष्टौ रेखाः कृत्वा, एकोन-पञ्चाशत्कोष्ठयुतं मण्डलं चतुरस्रं पलाशवृक्षफलके कृत्वा, तन्मध्यकोष्ठे ससाध्यं मायाबीजं विलिख्य, तदधःकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन निर्गमगत्या कोणकोष्ठचतु-ष्टयवर्ज्जमन्येषु कोष्ठषु मूलमन्त्राक्षराण्येकैकशः समालिख्य, तत्र देवीमावाह्य, सम्पूज्य, मूलमन्त्रेण कृतहोमसम्पातसिक्तं पूर्वोक्तविधिना निखातं, प्रागुक्तप्रकारेण कृतबलिं, तत्पूर्वोक्तफलदमिति ।

तथा— मध्ये मायामष्टकोष्ठेषु पादा-
नष्टौ कृत्वा मातृकार्णैः प्रवीतम्
भूबिम्बस्थं सर्वभूतामयघ्नं,
रक्षायुःश्रीकीर्त्तिदं यन्त्रमेतत् ।। १५३ ।।

**अयमर्थः**—नवकोष्ठयुतं चतुरस्रं मण्डलं विरच्य, तन्मध्यकोष्ठे ससाध्यां मायां विलिख्य, तदधःकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन मूलमन्त्रस्य प्रागुक्तानष्टौ पादान् विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकार्णैः संवेष्टच, तद्बहिश्चतुरस्रं कुर्य्यादित-दुक्तफलदम् ।

तथा— आग्नेयास्त्रस्य जानाति विसर्गादानकर्मणी ।
यः पुमान् गुरुणा शिष्टस्तस्याऽधीनञ्जगत्त्रयम् ।। १५४ ।।

**इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मजगोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
पञ्चपञ्चाशस्तरङ्गः ।। ५५ ।।**[3]

---

१. क. ख. शक्याद्यं । २. ख. दक्षित्तरायता । ३. पुष्पिकेयन्नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

[ षट्पञ्चाशत्तमस्तरङ्गः ]

तथा— अथो दिनास्त्रं कृत्यास्त्रं वक्ष्ये शत्रुविमर्द्दनम् ।
अतिदुर्गामनुम्प्राहुर्दिनास्त्रम्मन्त्रवित्तमाः ।। १ ।।
प्रतिलोममिमम्मन्त्रं कृत्यास्त्रं परिचक्षते ।

इमं अतिदुर्गामन्त्रम् । स तु 'अनिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिंधुं दुरितात्यग्निः । जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः स नः पर्षत्' इति । प्रतिलोममिति—"त्षरिप नः स दःवे तिहाद नि तोयतीराममसो मवानसु सेदवेतजा ग्निस्त्यतारिदु धुंसिं ववेना श्वावि णिर्गादुतिअ" इति ।

दिनास्त्रस्य षडङ्गादीन् प्रतिलोमोदितान् विदुः ।। २ ।।

कृत्यास्त्रस्येति शेषः । प्रतिलोमादि तानि षडङ्गानि तु आग्नेयास्त्रवदेव । आदिपदेन वर्णन्यासपदन्यासवर्णशक्तिपूजासु प्रातिलोम्यं सूच्यते । तच्चाऽत्र मन्त्राद्यक्षरादि-मन्त्रान्ताक्षरपर्य्यन्तक्रमेण न तु केवलं त्रिष्टुप्मन्त्रस्य प्रातिलोम्यम् ।

भानुबिम्बगतं शत्रुमधोवक्त्रं विषाहतम् ।
मूलादुत्थितया ग्रस्तं कुण्डल्या भावयन् सुधीः ।। ३ ।।

मूलाधारे क्षिपेत् सद्यः प्रस्फुरत्कालपावके ।
दिनत्रयाज्ज्वराक्रान्तो रिपुः प्राणान् विमुञ्चति ।। ४ ।

दिनास्त्रेण प्रविद्धाङ्गं स्वाधिष्ठानगतं रिपुम् ।
पञ्चवायुसमिद्धेन वह्निना दग्धविग्रहम् ।। ५ ।।

ध्यायन् मनुञ्जपेत् सद्यः स भवेद्यमवल्लभः ।
मणिपूरगतं शत्रुं वह्निना दग्धविग्रहम् ।। ६ ।।

ध्यायन् दिनास्त्रम्प्रजपेत्स मृत्युवशतां व्रजेत् ।
अनाहताहितः शत्रुर्निर्दग्धो मन्त्रवह्निना ।। ७ ।।

पाशेन बद्ध्वा शीघ्रेण नीयते यमकिङ्करैः ।
विशुद्धस्थानगो वैरी दिनबाणेन पीडितः ।। ८ ।।

अधोमुखः स्मृतस्तूर्णम्परासुः स्याद्दिनत्रयात् ।
आज्ञायान्निहितं शत्रुं दहेद् ज्ञानाग्निना धिया ।। ९ ।।

---

१. क. ख. अनाहिताहितः ।

पुत्रमित्रकलत्रादींस्त्यक्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।
नाभिमात्रोदके स्थित्वा ध्यायन् बिम्बे दिनेशितुः ।। १० ।।

वैरिणन्दग्धसर्वाङ्गम्मन्त्रमष्टोत्तरं शतम् ।
जपेत् सप्तदिनादर्वाग्यमलोकं स गच्छति ।। ११ ।।

आरवारं समारभ्य सप्ताहम्प्रजपेन्मनुम् ।
सूर्योदयं समारभ्य यावदस्तमयो भवेत् ।। १२ ।।

सन्निपातज्वराविष्टो यमग्रस्तो भवेदरिः ।
स्थित्वा दुर्गालये मन्त्री त्रिरात्रं वर्जिताशनः ।। १३ ।।

दिनबाणेन विद्धाङ्गं वैरिणम्प्रविचिन्तयन् ।
जपेन्मनुमिमं शत्रुर्ज्वरितो मरणं व्रजेत् ।। १४ ।।

स्पृष्ट्वा दुर्गाञ्जपेन्मन्त्रं सहस्रं त्रिदिनं स्मरन् ।
शूलप्रोतन्निजरिपुन्दिनास्त्रेण प्रपीडितम् ।। १५ ।।

ज्वरेण महताऽऽविष्टो जायतेऽसौ यमातिथिः ।
रविमण्डलगं शत्रुं दष्टन्तद्रथपन्नगैः ।। १६ ।।

विषाग्निदग्धसर्वाङ्गं ध्यायन्नुष्णेन वा रणा ।
तर्प्पयेद्दिनबाणेन स्यादसौ यमवल्लभः ।। १७ ।।

रविबिम्बादागतया ज्वालया ग्रस्तविग्रहम् ।
रिपुन्ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं स क्रीडति यमालये ।। १८ ।।

ग्रहग्रस्तार्कबिम्बस्थं विद्धम्मन्त्रमयैः शरैः ।
प्रतिपद्य निजं शत्रुं जपेदयुतमस्त्रवित् ।। १९ ।।

रिपुन्नयति शीघ्रेण यमदूतो यमालयम् ।
प्रलयानलसङ्काशं कालरात्रिमिवाऽपरम् ।। २० ।।

शूलपाशधरां घोरां सिंहस्कन्धनिषेदुषीम् ।
सवितुर्मण्डलान्तस्थां रक्तनेत्रत्रयोज्ज्वलैः ।। २१ ।।

विस्फुलिङ्गैर्निदहन्तीं रिपुमाकुलविग्रहम् ।
स्पष्टदंष्ट्राधरान्नृत्यद्भृकुटीभीषणाननाम् ।। २२ ।।

तर्ज्जयन्तीन्निजं शत्रुं तर्ज्जन्या भीमरूपया ।
दंष्ट्रामयूखजालेन द्योतयन्तीन्दिगन्तरम् ।। २३ ।।

शूलेन वैरिणो वक्षो दारयन्तीं भयङ्करीम् ।
जपेद्दिनत्रयम्मन्त्री मारयेद्रिपुमात्मनः ।। २४ ।।

अस्त्रमन्त्रकृतन्यासः प्रलयाग्निसमप्रभः ।
रक्तवस्त्रधरां क्रुद्धां रक्तनेत्रत्रयान्विताम् ।। २५ ।।

सिंहाधिरूढान्धावन्तीन्धावमानां रिपुम्प्रति ।
खड्गेन तच्छिरश्छित्वा क्षणाद्व्योमस्थलङ्गताम् ।। २६ ।।

ध्यात्वा दुर्गाञ्जपेन्मन्त्रं त्रिदिनं वर्ज्जिताशनः ।
अनेनैव विधानेन रिपुर्मृत्युप्रियो भवेत् ।। २७ ।।
कर्माण्येतानि कुर्वीत दिवसे न तु रात्रिषु ।

**अथ रात्रिकृत्यम्—**

पश्चिमाभिमुखलिङ्गस्य सजीवं महिषम्पुरः ।
निखाय तस्य शिरसि कुण्डङ्कृत्वा त्रिकोणकम् ।। २८ ।।

तस्मिन् समेधिते वह्नौ यथावद्देशिकोत्तमः ।
सत्रिकोणान् समन्त्रार्णान् साध्यनामसमन्वितान् ।। २९ ।।

अजरक्तेन संसिक्तान् कारस्करसमिद्वरान् ।
सहस्रञ्जुहुयाद्देवीन्ध्यात्वा सवितृमण्डले ।। ३० ।।

प्रलयाग्निसमां घोरान्द्वात्रिंशद्भुजशोभिताम् ।
उद्यदायुधसन्दीप्तान्नृत्यन्तीं सिंहमस्तके ।। ३१ ।।

महादंष्ट्राम्महाभीमां ज्वलत्केशीं रुदन्मुखीम् ।
रक्तार्द्रमांसवसनां घूर्णितोग्रत्रिलोचनाम् ।। ३२ ।।

अनेन विधिना शत्रुर्महाज्वरनिपीडितः ।
विमुञ्चति निजन्देहम्पुत्रमित्रादिभिः सह ।। ३३ ।।

ऊर्द्ध्वमुष्णाम्भसो मन्त्री लम्बयित्वा भुजङ्गमम् ।
भानुबिम्बगतान्दुर्गां सहस्रादित्यसन्निभाम् ।। ३४ ।।

सहस्रपाणिचरणां सहस्राक्षिशिरोमुखीम् ।
सहस्रनागबद्धाङ्गीं त्रासयन्तीञ्जगत्त्रयम् ।। ३५ ।।

ध्यायन्ननेन सर्पास्ये तर्प्पयेदुष्णवारिणा ।
सँय्यतः कालपाशेन वैरी मुञ्चेत् स्वजीवितम् ।। ३६ ।।

मध्याह्नार्कायुतप्रख्यान्नन्दन्तीन्नरसिंहवत् ।
घोरसिंहसमासीनाम्महाभीषणदर्शनाम् ।। ३७ ।।

शूलप्रोताहितां ध्यायञ् जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
तर्प्पयेदुष्णतोयेन सर्प्पवक्त्रे दिनत्रयम् ।। ३८ ।।

यमस्य भवनं गच्छेदरातिर्नाऽत्र संशयः ।
ऋक्षवृक्षप्रतिकृतिम्प्रतिष्ठितसमीरणाम् ।। ३९ ।।

उष्णोदके विनिक्षिप्य विषाढ्ये विधिना ततः ।
अर्क्केन्द्वनलसङ्काशां खड्गखेटकधारिणीम् ।। ४० ।।

नयनत्रयनिर्गच्छद्विस्फुलिङ्गसमाकुलाम् ।
सिंहस्थां सर्प्पभूषाढ्यां त्रैलोक्यभयदायिनीं ।। ४१ ।।

खड्गकृताहितां ध्यायन् प्रजपेदयुतम्मनुम् ।
विधानेनाऽमुना शत्रुर्ग्रस्तो भवति मृत्युना ।। ४२ ।।

प्रकल्प्य दुर्गायतने त्रिकोणङ्कुण्डमुत्तमम् ।
तत्र सञ्ज्वलिते वह्नौ महिषीशकृताकृता(ति)म् ।। ४३ ।।

पुत्तलीमजरक्ताक्ताम्प्रतिष्ठितसमीरणाम् ।
छित्वा छित्वा प्रयुञ्जीत[1] अजरक्तान्वितान्निशि ।। ४४ ।।

ध्यात्वा दुर्गाम्प्रनृत्यन्तीम्महिषोरःस्थलान्तरे ।
शूलेन महिषस्याऽङ्गं भिन्दन्तीं घोरदर्शनाम् ।। ४५ ।।

अट्टहासैरजस्रोक्षैर्भीषितासुरसैनिकाम् ।
प्रलयानलसङ्काशभ्रमन्नेत्रत्रयान्विताम् ।। ४६ ।।

१. प्रजुहुयात् ।

सन्दष्टाधरसम्भिन्नान्दंष्ट्राभीममुखाम्बुजाम् ।
खड्गखेटकयुक्ताभिः कन्यकाभि. समावृताम् ।। ४७ ।।

अनेन विधिना शत्रुः प्रयाति यमसन्निधिम् ।
दिनास्त्रमेव[1] कथितं शत्रुनिग्रहकारणम्[2] ।। ४८ ।।

कृत्यास्त्रदेशितान्[3] कुर्य्यात् प्रयोगान् मन्त्रवित्तमः ।
आधारादुद्गतान्देवीं कुण्डलीं सर्प्परूपिणीम् ।। ४९ ।।

ताम्ब्रह्मरन्ध्रमार्गेण यातां व्योमस्थलन्ततः ।
मुखेन शत्रुमादाय निवृत्ता स्वगृहम्प्रति ।। ५० ।।

ज्वलत्कालानलोद्दीप्तां विचिन्त्य प्रजपेन्मनुम् ।
सप्तभिर्वासरैः शत्रुर्मृत्युमाप्नोति मोहितः ।। ५१ ।।

अङ्गारवारे चित्यग्नौ सर्षपस्नेहलोलितम् ।
सिद्धार्थकुडवञ्जप्तञ्जुहुयात् पक्षमात्रतः ।। ५२ ।।

कृत्यास्त्रज्वालया दग्धो रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ।
चतुर्द्दश्यामर्द्धरात्रे चितास्थोऽन्यत्र साधकः ।। ५३ ।।

व्रणतैलविलिप्तानि चिताग्नौ जुहुयात्ततः ।
अनेन विधिना शत्रुर्मृत्युमेष्यति कातरः ।। ५४ ।।

उपस्थनिर्मितां शत्रोर्व्रणतैलपरिप्लुताम् ।
प्रतिमां स्थापितप्राणाञ्जुहुयान्निशि साधकः ।। ५५ ।।

छित्वा छित्वाऽक्षरक्तेन सप्ताहान्म्रियते रिपुः ।
श्मशानवालुकाः स्पृष्ट्वा साक्षता नियुतञ्जपेत् ।। ५६ ।।

विकिरेस्तास्तडागादौ कृत्यास्त्रकथितञ्जलम् ।
तदीयम्पीतमचिरान्निहन्ति सकलाञ्जनान् ।। ५७ ।।

कृष्णाङ्गारचतुर्द्दश्याम्प्रजप्तैः प्रेतभस्मभिः ।
महिषाज्येन लुलितास्तन्मन्त्राक्षरसङ्ख्यया ।। ५८ ।।

१. ख. दिनास्त्रमेव । २. ख. ०कारकम् । ३. ख. कृत्यास्त्रदेशिन् ।

निर्माय गुटिका[1] एताः सम्यग्जप्तसमीरणाः ।
चितिकाष्ठैधिते वह्नौ जुहुयाद्दृढमानसः ।। ५९ ।।

चतुर्दशीत्रयादर्वाक् शत्रुर्मृत्युवशो भवेत् ।
श्मशानभस्मसिद्धार्थान् पञ्चगव्ये विनिक्षिपेत् ।। ६० ।।

महिषे संस्मरेद्देवीञ्ज्वालाग्निसदृशप्रभाम् ।
भर्जयेत्प्रजपन्मत्रं कुचिकाष्ठैधितेऽनले ।। ६१ ।।

कुचिकाष्ठं कारस्करकाष्ठं, कुचिलेति नाम्ना मध्यदेशे प्रसिद्धम् ।

दुर्गागारे प्रजुहुयादनेनाऽयुतमस्त्रवित् ।
पुनरादाय तद्भस्म सेनायाः वैरिणः क्षिपेत् ।। ६२ ।।

सा सेना बहुधा भिन्ना ज्वररोगविमोहिता ।
आयुधानि परित्यज्य युद्धकाले पलायते ।। ६३ ।।

गेहग्रामादिषु क्षिप्तं कुर्यादुच्चाटनं क्षणात् ।
सप्तवारेषु कुलिके दुर्गाविश्मसु शर्कराः ।। ६४ ।।

सप्तमाहेन्द्रदिग्वज्रं गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम् ।
महिषीपञ्चगव्येन भर्ज्जयेत्ता यथा पुरा ।। ६५ ।।

भूयो जपित्वा विकिरेद् गेहग्रामपुरस्थलाः ।
स देशो नश्यति क्षिप्रन्दग्धो मन्त्रभवाग्निना ।। ६६ ।।

ब्रह्मदण्डी मर्कटिका करक्रोशनिका त्रयम् ।
भौमवारस्य कुलिके गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम् ।। ६७ ।।

चतुर्दश्यां रिपोर्गेहे निखनेत् प्रजपन् मनुम् ।
सार्द्धम्पुत्रकलत्राद्यैरुत्सादो जायते रिपोः ।। ६८ ।।

एकैकं वा खनेन्मन्त्री मण्डलात्तत्फलँल्लभेत् ।
षड्बिन्दुषट्कम्पुत्तलया निखनेद्दोलयाऽन्वितम् ।। ६९ ।।

स्पृष्ट्वा ताम्प्रजपेदस्त्रङ्कृष्णाष्टम्यान्निशार्द्धतः ।
शत्रुनामसमायुक्तां श्मशाने निखनेदिमाः ।। ७० ।।

---

१. ख. गुण्डिका ।

प्रणमेत्स रिपुः शीघ्रं सकुटुम्बः सबान्धवः ।
कपालशकलान्मन्त्री कृत्यास्त्राक्षरसङ्कुचकान् ।। ७१ ।।

स्पृष्ट्वा तान् प्रजपेन्मन्त्रं प्राणस्थापनपूर्वकम् ।
कृष्णाङ्गारचतुर्द्दश्यां श्मशाने विषवृक्षके ।। ७२ ।।

जुहुयादजरक्ताक्तान् कृत्यास्त्रज्वलया हतः ।
रिपुर्यमपुरं गच्छेन्महाज्वरविमोहितः ।। ७३ ।।

अजरक्तेन सम्पूर्णे कलशे निक्षिपेदहिम् ।
कपालेन विधायैनं छादयेद्रक्तवाससा ।। ७४ ।।

पूजयेद्रक्तपुष्पाद्यैः स्पृष्ट्वा तमयुतञ्जपेत् ।
भौमवारे निशामध्ये कारस्करसमेधिते ।। ७५ ।।

श्मशानवह्नौ जुहुयाद् गच्छेद्यमपुरं रिपुः ।
साध्यनक्षत्रवृक्षेण कृत्वा कुम्भम्प्रपूरयेत् ।। ७६ ।।

माहिषैः पञ्चगव्यैस्तं विडालन्तत्र निक्षिपेत् ।
जपपूजादिकं सर्वं यथापूर्वं समाचरेत् ।। ७७ ।।

कारस्करभवे वह्नौ कृत्यास्त्रेण समेधिते ।
अयुतं व्रणतैलेन हुत्वा तन्तं घटम्पुनः ।। ७८ ।।

आमस्तकं समुद्धृत्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
जुहुयाद्विधिनाऽनेन त्रिदिनैर्म्रियते रिपुः ।। ७९ ।।

सुन्दरं महिषीवत्समेकरात्रिमुपोषितम् ।
पाययेन्महिषीसर्प्पिःप्रस्थम्मन्त्रेण मन्त्रितम् ।। ८० ।।

कुशैरावद्धसर्वाङ्गं स्थापितप्राणमञ्जसा ।
कारस्करैधिते वह्नौ व्रणतैलेन मन्त्रवित् ।। ८१ ।।

होमङ्कृत्वाऽयुतं वत्सं जुहुयाद्यतमानसः ।
एकेन दिवसेनाऽरिर्गच्छेद्यमपुरं सुधीः ।। ८२ ।।

त्रिकोणकुण्डनिहिते वह्नौ मन्त्रेण दीपिते ।
अर्च्चितं गन्धपुष्पाद्यैरयुतञ्जुहुयात् क्रमात् ।। ८३ ।।

राजभल्लातकतिलतैलैः सप्तदिनन्ततः ।
प्रसूतिसमयम्प्राप्तां महिषीं स्थापितानलाम् ।। ८४ ।।

पूजितां गन्धपुष्पाद्यैः स्पृशन् कूर्च्चेन ताञ्जपेत् ।
मस्तकाद्योनिपर्य्यन्तन्धिया वत्समनुस्मरन् ।। ८५ ।।

आकृष्य हस्ते पतितञ्जुहुयादेधितेऽनले ।
एवङ्कृते समुत्पन्ना कृत्या भीमा हुताशनात् ।। ८६ ।।

भक्षयेदचिराच्छत्रुमीश्वरेणाऽपि रक्षितम् ।
पुनरग्नौ विशत्येषा कर्त्तारमपि काङ्क्षिणी ।। ८७ ।।

एवंविधानि कर्माणि यः कुर्यान्मन्त्रवित्तमः ।
स जपेदात्मरक्षार्थं मन्त्रान् मृत्युञ्जयादिकान् ।। ८८ ।।[1]

**शारदातिलके—**

गायत्रीत्रिष्टुबनुष्टुब्वर्णैः प्रोक्तः शताक्षरः ।
पूर्वोक्ता एव मुन्याद्याः परन्तेजोऽस्य[2] देवता ।। ८९ ।।

हृत्त्रयोदशभिः प्रोक्तं रुद्रार्णैः शिर ईरितम् ।
द्वाविंशत्या शिखा प्रोक्ता तावद्भिः कवचम्मतम् ।। ९० ।।

स्यात्पञ्चदशभिर्नेत्रमस्त्रं सप्तदशाक्षरैः ।
वर्णन्यासादिकं सर्वं कुर्य्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना ।। ९१ ।।

सत्यम्मानविवर्ज्जितं श्रुतिगिरामाद्यञ्जगत्कारणं,
व्याप्तस्थावरजङ्गमम्मुनिवरैर्ध्यातन्निरुद्धेन्द्रियैः ।
अर्क्काग्नीन्दुमयं शताक्षरवपुस्तारात्मकं सन्तत—
न्नित्यानन्दगुणालयम्परतरँव्वन्दामहे तन्महः ।। ९२ ।।

सौरे पीठे यजेत्सम्यग् वक्ष्यमाणविधानतः ।
आद्यामावृतिमभ्यर्चेत् षडङ्गैर्देशिकोत्तमः ।। ९३ ।।

---

१. इतोऽग्रे ख. पुस्तके पुष्पिकेयं समुद्धृता—इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मजगोस्वामि-श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ पञ्चपञ्चाशस्तरङ्गः ।। ५५ ।।

२. क. परन्तेजस्य ।

गायत्रीशक्तिभिस्तिस्रः पूजयेदावृतीः क्रमात् ।
आवृतिः पञ्चमी प्रोक्ता तृष्टुबुद्धृतशक्तिभिः ॥ ६४ ॥

अनुष्टुप्शक्तिभिः प्रोक्तमाबृतीनाञ्चतुष्टयम् ।
इन्द्राद्यैर्दशमी प्रोक्ता वज्राद्यैस्तत्परा मता ॥ ६५ ॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि–विश्वामित्रकाश्यप–वसिष्ठेभ्य ऋषिभ्यो नमः, मुखे–गायत्रीत्रिष्टुबनुष्टुप्छन्दोभ्यः०, हृदये–परतेजसे देवतायै०" इति विन्यस्य, "तत्सबितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य' हृत् । 'धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' शिरः । 'जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो नि दहाति वेदः' शिखा । 'स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः' कवचम् । 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं नेत्रम् । 'उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय्यमामृतात् अस्त्रं" इति मन्त्रैर्यथाविधि करषडङ्गन्यासं कृत्वा,

"पादाङ्गुलिमूलयोः-तत् नमः, गुल्फयोः–सं०, जानुनोः–विं०, ऊरुमूलयोः-तुं०, लिङ्गे–वं०, नाभौ–रें०, हृदि–णिं०, कण्ठे–यं०, कराङ्गुलिमूलयोः[1]—भं, मणिबन्धयोः–र्गों०, कूर्प्परयोः-दें०, भुजमूलयोः-वं०, मुखे–स्यं०, नसोः–धीं०, कपोलयोः–मं०, नेत्रयोः-हिं०, कर्णयोः-धिं०, भ्रुवोः–यों०, शिरसि–यों०, चूडाधः–नं०, वामकर्णे–प्रं०, दक्षकर्णे–चों०, मुखे–दं०, शिरसि–यात् नमः" ।

दक्षपादाङ्गुष्ठे–जां०, वामे–तं०, दक्षगुल्फे–वें०, वामे–दं०, दक्षजङ्घायां—सें०, वामायां—सुं०, दक्षजानुनि–नं०, वामे—वां०, दक्षोरौ—मं०, वामे—वां०, दक्षोरौ—मं०, वामे—सों०, दक्षकटयां–मं०, वामायां—मं०, लिङ्गे—रां०[2], नाभौ–तीं०, हृदि—यं०, दक्षस्तने—तों[3]०, वामे—निं०, दक्षपार्श्वे—दं०, वामे–हां०, पृष्ठे–तिं०, दक्षस्कन्धे–वें०, वामे–दः०, दक्षबाहुमूले–सं०, [वामे–नः०][4] दक्षबाहुमध्ये–पं०, वामे–रिं०, दक्षकूर्परे–षं०, वामे–दं०, दक्षप्रकोष्ठे–तिं०, वामे–दुं०, दक्षमणिबन्धे–र्गां०, वामे–णिं०, दक्षकरतले–विं०, वामे–श्वां०, मुखे–नां०, दक्षनसि–वें०, वामे–वं०, दक्षनेत्रे–सिं०, वामे–धुं०, दक्षकर्णे–दुं०, वामे–रिं०, ललाटे–तां०, ललाटोपरि–त्यं०, मूर्द्धनि–ग्निः नमः",

मुखे–त्र्यं०, चूडाधः–बं०, दक्षकर्णे–कं०, वामे–यं०, उरसि–जां०, गले–

१. क. कराङ्गुलयोः । २. क. ख. शं० । ३. क. ख. सों० । ४. [–] कोष्ठबद्धोंशो नाऽस्ति क. ख. पुस्तकद्वयेऽपि ।

मं०, मुखे–हें०, नाभौ–सु०, हृदि—गं०, पृष्ठे—धिं०. कुक्षौ–पुं०, लिङ्गे—ष्टिं०, पायौ—वं०, दक्षोरुमूले—र्धं०, वामे—नं०, दक्षोरौ—उं०, वामे–र्वां०, दक्षजानुनि–रुं०, वामे—कं० दक्षजानुवृत्तो—मिं०, वामे—वं०, दक्षस्तने—बं[1]. वामे—धं०, दक्षपार्श्वे—नां०, वामे—न्मृं०, दक्षपादे—त्यों०, वामे—मुं,[2]—दक्षपाणितले—क्षीं[3]०, वामे—यं०, दक्षनसि–मां०, वामे—मृं०, शिरसि–तात् नमः",

"शिरसि—तत् नमः, भ्रू मध्ये–सवितुः०, नेत्रयोः-वरेण्यं०, मुखे-भर्गः०, कण्ठे—देवस्य०, हृदि—धीमहि०, नाभौ—धियः०, गुह्ये—यः, जानुनोः—नः०, पादयोः—प्रचोदयात्०",

"शिखायां—जातवेदसे०, ललाटे—सुनवाम०, दक्षनेत्रे—सोमं०, वामे—अरातीयतः०, दक्षकर्णे—निं०, वामे—दहाति०, ओष्ठे—वेदः०, अधरे—सः०—रसनायां नः०, कण्ठे—परिषत्०, बाह्वोः—अति०, हृदि—दुर्गाणि०, कुक्षौ—विश्वा०, कटौ—नावा०, गुह्ये—इव०, ऊरुद्वये—सिन्धुं०, जानुद्वये—दुरिता०, जङ्घयोः—अति०, पादयोः—अग्निः०",

शिरसि—त्र्यम्बकम्०, भ्रूयुगे—यजामहे०, नेत्रयोः—सुगन्धिं०, मुखे—पुष्टिवर्द्धनम्०, गण्डयोः—उर्वारुकं०, हृदि—इव०, जठरे—बन्धनात्०, गुह्ये—मृत्योः०, ऊरुद्वये—मुक्षीय०, जानुनोः—मा०, पादयोः—अमृतात्०" इति-विन्यस्य,

ध्यानाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तं सौरं पीठमभ्यर्च्य, मूर्त्तिकल्पनाद्यङ्गपूजान्ते गायत्रीप्रकरणोक्ताः प्रह्लादिन्याद्याः चतुर्विंशतिशक्तीरावरणत्रयस्थितास्तत्रोक्तप्रकारेणैवाऽवरणत्रयेण सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुश्चत्वारिंशद्दले प्रागुक्ता जागताद्याः शक्तीस्त्रिष्टुबमन्त्रप्रकरणोक्ताः सम्पूज्य, तद्बहिरष्टदलद्वये प्रागनुष्टुबमन्त्रप्रकरणोक्ता रमाद्या द्वात्रिंशच्छक्तीः प्रतिकमलमावरणद्वयक्रमेण दलमध्यदलाग्रेषु सम्पूज्य, तद्बहिर्लोकेशार्चादि सर्वम्प्राग्वत् कल्पयेदिति ।

तथा— लक्षमात्रञ्जपेदेनमयुतम्पायसान्धसा ।
जुहुयाद्घृतसिक्तेन तर्प्पणादि ततश्चरेत् ॥ ९६ ॥

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री भवेद्भास्करसन्निभः ।
सुधालतोद्भवैः खण्डैर्जुहुयात् क्षीरसंयुतैः ॥ ९७ ॥

१. ख. धं । २. क. त्थं० । ख. य्यं० । ३. क. ख. मां० ।

दीर्घमायुरवाप्नोति निराधिर्व्याधिवर्जितः ।
दूर्वाभिर्घृतसिक्ताभिस्तदेव फलमाप्नुयात् ॥ ९८ ॥

मधुरत्रयसंसिक्तैर्जुहुयादरुणाम्बुजैः ।
महालक्ष्मीमवाप्नोति षड्भिर्मासैर्विधानवित् ॥ ९९ ॥

रक्तोत्पलैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयात् सर्वसम्पदे ।
श्रीप्रसूनैः प्रजुहुयाद्रमाया वसतिर्भवेत् ॥ १०० ॥

सहस्रञ्जुहुयान्नित्यम्पायसेन तिलैः शुभैः ।
भानुसङ्ख्यान्द्विजान्नित्यम्भोजयेन्मधुरान्वितैः ॥ १०१ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।
कृत्याद्रोहग्रहाद्रोगाञ्जित्वा दीर्घं स जीवति ॥ १०२ ॥

प्रातः स्नानरतो मन्त्री जपेन्नित्यं शतं शतम् ।
भानुमालोकयन्सम्यक् स जीवेच्छरदाँ शतम् ॥ १०३ ॥

नित्यमष्टोत्तरशतं निःश्रेयसफलाप्तये ।
गायत्र्याद्यञ्जपेन्मन्त्रं सर्वपापविमुक्तये ॥ १०४ ॥

सर्वशत्रुविनाशाय त्रिष्टुबाद्यञ्जपेदिमम् ।
अनुष्टुबाद्यम्प्रजपेदायुरारोग्यसिद्धये ॥ १०५ ॥
शताक्षरो मनुः प्रोक्तः समस्तपुरुषार्थदः ।

मन्त्रसारे—

कर्णिकायाँल्लिखेत्तारं व्याहृतीभिः समावृतम् ।
कोष्ठेषु षट्सु पञ्चार्णम्प्रणवाद्यन्दलेष्वथ ॥ १०६ ॥

पूर्वार्द्धमाद्येन गायत्र्यास्त्रिष्टुभोऽर्द्धन्द्वितीयके ।
अनुष्टुभस्त्वाद्यमर्द्धन्तृतीये तु चतुर्थके ॥ १०७ ॥

ॐ ह्रीं ठं वं कं सं हं सं जुं सः सोहं वं ठं नमः ।
शिवाय माम्पालय सं कं वं ठं ह्रीं ध्रुवाक्षरान् ॥ १०८ ॥

आलिख्य पञ्चमेऽनुष्टुबपरार्द्धं च षष्ठके ।
त्रिष्टुभश्चाऽपरार्द्धञ्च गायत्र्या अपरार्द्धकम् ॥ १०९ ॥

सप्तमे च दले तारमापोज्योतीरसोऽमृतम् ।
ब्रह्मभूर्भुवरित्यन्ते स्वरोमिति दलेऽष्टमे ।। ११० ।।

आलिख्य मातृकार्णाद्यवृत्तोनाऽऽवेष्टच तद्बहिः ।
चिन्तामणिलसत्कोणम्भूपुरञ्च समालिखेत् ।। १११ ।।

शताक्षरमनोर्य्यन्त्रमेतद्यो धारयेन्नरः ।
पुत्रारोग्यधराधान्यधनकोशस्य शालिनीम् ।। ११२ ।।

लब्ध्वाऽतिबहलाँल्लक्ष्मीं स जीवेच्छरदां शतम् ।
ताम्रादिपट्टेष्वालिख्य जप्त्वा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।। ११३ ।।

हुत्वा घृतेन तावत्तु सिक्तसम्पातमेव च ।
भूयोऽपि तावज्जप्त्वा च पुरग्रामाकरादिषु ।। ११४ ।।

स्थापितं यन्त्रमेतत्तु गोसस्यारोग्यपुष्टिदम् ।
कुर्य्याच्च रक्षान्तेनाऽरिव्याघ्रादिभयतः सदा ।। ११५ ।।

**अस्यार्थः**-तत्राऽष्टदलकमलमध्यगतषट्कोणमध्ये ससाध्यं तारं विलिख्य,तत्सप्तव्याहृतिभिरावेष्टच, षट्कोणेषु प्रणवादिशिवपञ्चाक्षरस्यैकैकमक्षरमालिख्याऽष्टदलेषु प्रथमदले—गायत्र्याः पूर्वार्द्धं, द्वितीयदले—तृष्टुप्प्रथमार्द्धं, तृतीये—अनुष्टुप्प्रथमार्द्धं, चतुर्थे—"ॐ ह्रीं ठं वं कं सं हंसः सो हं वं ठं नमः शिवाय मां पालय सं कं वं ठं ह्रीं ॐ" इति मन्त्रं विलिख्य, पञ्चमे—अनुष्टुम्मन्त्रस्योत्तरार्द्धं विलिख्य, षष्ठे—त्रिष्टुम्मन्त्रस्योत्तरार्द्धं, सप्तमे—गायत्र्युत्तरार्द्धं, अष्टमे— "ॐ आपो ज्योती रसोमृतं" विलिख्योक्तविधिना धारणादुक्तफलसिद्धिर्भवतीति ।

**शारदातिलके—**

ऋचो विधानं वारुण्या यथावदभिधीयते ।
ऋग्वेदे सा समुद्दिष्टा ध्रुवास्वाद्या मनीषिभिः ।। ११६ ।।

ध्रुवासुत्वा[1] सुक्षितिषु क्षियन्तोव्यस्मत्यावरुणो मुमोचत्[2] ।
अवोचन् वाना अदितेरुपस्थाद्यूपं पातः स्वस्तिभिः सदा नः ।। ११७ ।।

---

१. ख. सत्वा । २. ख. ० ममोचत् ।

वसिष्ठोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
वरुणो देवता प्रोक्तस्तद्वर्णैरङ्गकल्पना ॥ ११८ ॥

अष्टभिर्हृदयम्प्रोक्तं सप्तभिः शिर ईरितम् ।
शिखा षड्वर्णकैः प्रोक्ता वस्वर्णैः कवचम्मतम् ॥ ११९ ॥

सप्तभिर्नेत्रमाख्यातमस्त्रं षड्भिरुदाहृतम् ।
साग्रेषु सन्धिषु पदोर्गुदान्वाधारनाभिषु ॥१२०॥

कुक्षौ पृष्ठे हृदि कुचे गले बाह्वग्रसन्धिषु ।
वक्त्रे कपोलनासाक्षिकर्णभ्रूमध्यमस्तके ॥१२१॥

शिरःसर्वाङ्गयोर्न्यस्येन्मन्त्रवर्णान्यथाविधि ।
चन्द्रप्रभम्पङ्कजसन्निषण्ण-
म्पाशाङ्कुशाभीतिवरन्दधानम् ।
मुक्ताविभूषाञ्चितसर्वगात्र-
न्ध्यायेत्प्रसन्नं वरुणं विभूत्यै ॥१२२॥

धर्मादिकल्पिते पीठे वरुणं सम्यगर्चयेत् ।
कृत्वाऽङ्गपूजनं शेषं वासुकिन्तक्षकम्पुनः ॥१२३॥

कर्कोटकन्ततः पद्मम्महापद्ममतः परम् ।
शङ्खपालाख्यकुलिकौ सम्यक्पत्रेषु पूजयेत् ॥१२४॥

इन्द्राद्यानायुधान्येषाम्पूजयेत्तदनन्तरम् ॥१२५॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि-वसिष्ठाय ऋषये नमः, मुखे—त्रिष्टुप्छन्दसे०, हृदि—वरुणाय देवतायै नम" इति विन्यस्य,

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु हृदयाय नमः, क्षियन्तो विस्मत्या शिरसे स्वाहा, वरुणो मुमोचत् शिखायै वषट्, अवोचन्वाना अदितेः कवचाय हुं, उपस्थाद्यूपं पातः नेत्राय वौषट्, स्वस्तिभिः सदा नः अस्त्राय फडि"ति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, दक्षपादाग्रे—ध्रुं नमः, वामे—वां०, दक्षपादाङ्गुलिमूले—सुं, वामे—त्वां०,

दक्षगुल्फे–सुं०, वामे-क्षिं०, दक्षजानुनि—तिं०, वामे-षुं०, दक्षोरुमूले—क्षिं०, वामे-यं०, गुदे—तों०, लिङ्गे—व्यं०, मूलाधारे—स्मत्०, नाभौ-यां०, कुक्षौ—शं०, पृष्ठे—वं०, हृदि—रुं०, कुचयोः णों०, गले—मुं० दक्षकराग्रे—मों०, वामे—चत्०, दक्षकराङ्गुलिमूले-अं०, वामे—वों०, दक्षमणिबन्धे—चं०, वामे-न्वां०, दक्षकफोणौ-नां०, वामे-अं०, दक्षबाहुमूले-दिं०, वामे-तें०, मुखे—रुं०, दक्षकपोले-पं०, वामे-स्थां०, दक्षनासायां—द्यूं०. वामायां—पम् दक्षनेत्रे—पां०, वामे०—तं०, दक्षकर्णे—स्वं०, वामे—स्तिं०, भ्रूमध्ये—भिं०, ललाटे—सं०, शिरसि—दां, सर्वाङ्गे—नंः नम" इति विन्यस्य,

ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपरत्वान्तम्पीठं सम्पूज्य, 'वं वरुणपीठाय नम' इति समस्तम्पीठं सम्पूज्य, पीठशक्तिरहिते तस्मिन् पीठे वरुणमावाह्य, प्राणप्रतिष्ठान्ते पाशाङ्कुशवराभयमुद्राः प्रदर्श्याऽऽसनाद्यङ्गपूजान्तेऽष्टदलेषु देवाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन "ॐ शेषाय नमः, एवं वासुकये०, तक्षकाय०, कर्कोटकाय०, पद्माय०, महापद्माय०, शङ्खपालाय०, कुलिकाय नम" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वम्प्राग्वत्कुर्य्यादिति ।

तथा— लक्षमेनं जपेन्मन्त्रं पायसेन दशांशतः ।
सर्पिःसिक्तेन जुहुयात् तर्प्पणादि ततश्चरेत् ॥ १२६ ॥

ऋणमुक्त्यै जपेन्मन्त्रम्प्रत्यहं साष्टकं शतम् ।
जपेनाऽनेन लभते महतीमव्ययां श्रियम् ॥ १२७ ॥

सितेक्षुशकलैर्मन्त्री जुहुयाद् घृतसम्प्लुतैः ।
चतुर्द्दिनन्दशशतं ऋणमुक्त्यै महाश्रिये ॥ १२८ ॥

समिद्भिर्वेतसोत्थाभिः क्षीराक्ताभिर्दिनत्रयम् ।
जुहुयाद् वृष्टिसंसिद्ध्यै मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ॥ १२९ ॥

अनेन विधिना मन्त्री सूर्य्ये शतभिषङ्गते ।
चतुःशतं घृतयुतम्पायसञ्जुहुयाद्वशी ॥ १३० ॥

ऋणनाशाय सम्पत्यै वश्यारोग्याभिवृद्धये ।
भृगुवारे कृतो होमः पायसेन ससर्पिषा ॥ १३१ ॥

महतीं सम्पदङ्कुर्य्यान्नाशयेत् सकलापदः ।
शालिभिर्घृतसंसिक्तैः सरिदन्तरितं सुधीः ।। १३२ ।।

त्र्यहञ्चतुःशतं हुत्वा स्तम्भयेत् परसैनिकान् ।
सायम्प्रत्यङ्मुखो वह्निमाराध्य प्रजपेन्मनुम् ।। १३३ ।।

चतुश्शतं विमुच्येत मन्त्री सर्वैरुपद्रवैः ।
मन्त्री प्रत्यङ्मुखो भूत्वा तर्प्पयेद्विमलैर्जलैः ।। १३४ ।।

सर्वोपद्रवनाशाय समस्ताभ्युदयाय वै ।
बहुना किमिहोक्तेन मन्त्रेणाऽनेन साधकः ।। १३५ ।।
साधयेत्सकलान्कामाञ्जपहोमादितत्परः ।

ऋग्विधाने—

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु जपन् बद्धः प्रमुच्यते ।
तिष्ठन्रात्रौ जपन्नेनां विकाशः सम्प्रपद्यते ।। १३६ ।।

अहोरात्रन्ततश्चैवमनश्नन् स्याद्विचेष्टितः ।
अयःपाशाः स्फुटन्त(न्त्य)स्य दारुपाशास्तथैव च ।। १३७ ।।

श्रीयन्त्रसारे—

षट्कोणकर्णिकामध्ये तारं कोणेषु षट्स्वपि ।
षडर्णमष्टपत्रे च केसरोद्यत्स्वरे लिखेत् ।। १३८ ।।

पञ्चषड् वेदषट् पञ्चषट् चतुःषट् क्रमान्मनोः ।
ध्रुवास्वाद्यस्याऽक्षराणि बहिः परऋणेत्यृचा ।। १३९ ।।

हलिभश्चाऽऽवेष्टच भूगेहे कोणे वम्बीजमालिखेत् ।
ऋणमोचनमेतत्तु यन्त्रं सर्वसमृद्धिदम् ।।१४०।।
सर्वरक्षाकरं वश्यं शत्रुचोरविनाशनम् ।

किमत्र बहुनोक्तेन वाञ्छितार्थप्रदन्नृणाम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन वाञ्छितार्थप्रदन्नृणाम् ।।१४१।।

**अस्यार्थः**—तत्राऽष्टदलस्थषट्कोणमध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्याऽष्टदलेषु 'ध्रुवास्वाद्यस्य' मन्त्रवर्णान् पञ्चषट्, चतुः षट्, पञ्चषट्, चतुःषट्क्रमेण विभज्य,

विलिख्य, बहिर्वृ त्तयोरन्तराले 'परऋणे'त्यृचा वेष्टयित्वा, तद्बहिर्वृ त्तवीथ्या- "ञ्वकारादिक्षान्तै" रावेष्टय, तद्बहिश्चतुरश्रकोणेषु 'वं' बीजं लिखेदेतत्साधितं घृतमुक्तफलदम्भवति ।

परऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसी रुषास आ नो जीवान्वरुणा तासु शोधि ।।१४२।।
अस्या ऋष्यादिकं कूर्मो वरुणस्तृष्तुप् परऋणा ।

तथा— अथो लवणमन्त्रस्य विधानमभिधीयते ।
ऋगाद्या कथिता तत्र लवणाम्भसि-पूर्विका ।।१४३।।

लवणादिर्द्वितीयाऽन्या दहाद्या परिकीर्त्तिता ।
तन्दग्ध्वाद्या चतुर्थी स्याद्या ते पूर्वा तु पञ्चमी ।।१४४।।

लास्तु—लवणाम्भसि तीक्ष्णोसि 'लवणं छिन्दति भिन्दति'[1] ।
उग्रोसि हृदय तव ।।१४५।।

लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता ।
लवणे हूयमाने तु कुतो निद्रा कुतो रतिः ।।१४६।।

लवणं दहति पचति लवणं छिन्दति भिन्दति ।। ४ ।।
अमुकस्य देहगात्राणि दह मांसं दह त्वचम् ।। १४७ ।।

दह त्वगस्थिमज्जानि अस्थिभ्यो मज्जिकां दह ।
यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे ।। १४८ ।।

नगरे लोहप्राकारे कृष्णसर्प्पशतार्गले[2] ।। ८ ।।
तन्दग्ध्वाऽऽनय[3] मे शीघ्रमग्ने[4] लवणतेजसा ।। १४९ ।।

तत्रैव वशमायाति लोणमन्त्रपराक्रमः ।। १० ।।
या ते रात्रिः शल्यविद्धस्य[5] शूलाग्रारोपितस्य च ।। १५० ।।

सा ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा ।
अङ्गिरा मुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।। १५१ ।।

---

१. '—' ख. पुस्तकेनाऽस्त्ययमंशः ।
२. क. ० शतागले । ३, क. दग्ध्वाऽऽनयं । ४. क. शीघ्रम्मग्ने । ५. क. शत्य ० ।

अग्निरात्री पुनर्दुर्गा भद्रकाली च देवता ।
चिटिमन्त्राक्षरैः कुर्यात् षडङ्गानि समाहितः ।। १५२ ।।

पञ्चभिर्हृदयम्प्रोक्तन्त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम् ।
पञ्चवर्णैः शिखा प्रोक्ता कवचङ्करणाक्षरैः ।। १५३ ।।

पञ्चभिर्नेत्रमुद्दिष्टं युगलेनाऽस्त्रमीरितम् ।
तारं चिटिद्वयम्पश्चाच्चाङ्गलिन्तदनन्तरम् ।। १५४ ।।

म इत्पदाद्यान्ताम्ब्रूयादमुकम्मे ततः परम् ।
वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्र उदाहृतः ।। १५५ ।।
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा सर्वकामफलप्रदः ।

तारं प्रणवः । चिटिद्वयं—चिटि चिटि । चाङ्गलि—स्वरूपम् । म इच्चाङ्गलि अमुकं वशमानय—स्वरूपम् ठद्वयं – स्वाहा । "ॐ चिटि चिटि—हृत्, चाङ्गलि - शिरः, मइच्चाङ्गलि – शिखा, अमुकं मे —कवचम्, वशमानय—नेत्रम्, स्वाहाऽस्त्रम्" इति षडङ्गन्यासः ।

नवकुङ्कुमसन्निभन्त्रिनेत्रं,
रुचिराकल्पशतम्भजामि वह्निम् ।
स्रुवशक्तिवराभयानि दोर्भि-
र्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम् ।। १५६ ।।

कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां,
हारावलीशोभिपयोधराढ्याम् ।
कपालपाशाङ्कुशशूलहस्ता-
न्नीलाम्बरां यामवतीन्नमामि ।। १५७ ।।

कालाम्बुदाभामरिशङ्खशूल-
खड्गाढ्यहस्तान्तरुणेन्दुचूडाम् ।
भीमान्त्रिनेत्राञ्जितशत्रुवर्गा-
न्दुर्गां स्मरेत् दुर्गतिभङ्गदक्षाम् ।। १५८ ।।

टङ्कङ्कपालण्डमरुं त्रिशूलं,
सम्बिभ्रती चन्द्रकलावतंसा ।

पिङ्गोर्द्ध्वकेशी सितभीमदंष्ट्रा
भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली ।। १५९ ।।

ऋक्षपञ्चकञ्जपेत् सम्यगयुतन्तद्दशांतः ।
हविषा घृतसिक्तेन जुहुयादर्च्चितेऽनले ।। १६० ।।

एवङ्कृतपुरश्चर्य्यः प्रयोगे कुशलो भवेत् ।
अग्निर्यामवती ध्येये वश्याकर्षणकर्म्मणोः ।। १६१ ।।

स्मरेद्दुर्गाम्भद्रकालीं मन्त्री मारणकर्मणि ।
जानुप्रमाणे सलिले स्थित्वा निशि जपेन्मनुम् ।। १६२ ।।

अनेन वाञ्छितः साध्यः किङ्करो जायते क्षणात् ।
नाभिमात्रोदके स्थित्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।। १६३ ।।

अष्टोत्तरसहस्रं यस्तस्य साध्यो वशो भवेत् ।
ऋक्षपञ्चकञ्जपेन्मन्त्री कण्ठमात्राम्भसि स्थितः ।। १६४ ।।

सप्तभिर्दिवसैः भूपान्वशयेद्विधिनाऽमुना ।
विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनाम्ना विदर्भितम् ।।१६५।।

निक्षिप्य क्षीरसम्मिश्रे जले तत्क्वाथयेन्निशि ।
वश्यो भवति साध्योऽस्य नाऽत्र कार्य्या विचारणा ।।१६६।।

तालपत्रे विलिख्यैवम्भद्रकालीगृहे खनेत् ।
वश्याय सर्वजन्तूनाम्प्रयोगोऽयमुदाहृतः ।।१६७।।

तालपत्रे समालिख्य मन्त्रं साध्यविदर्भितम् ।
तापयेत् खादिरे वह्नौ मासाद्वश्यो भवेन्नरः ।।१६८।।

त्रिकोणङ्कुण्डमापाद्य सम्यक्शास्त्रोक्तलक्षणम् ।
तस्मिन् होमम्प्रकुर्वीत संस्कृते हव्यवाहने ।।१६९।।

प्रक्षाल्य गव्यदुग्धेन संशोध्य लवणं सुधीः ।
सुचूर्णितम्प्रजुहुयात् सप्ताहाद्वशयेज्जनान् ।।१७०।।

दधिमध्वाज्यसंसिक्तैर्ज्जुहुयात् सैन्धवैस्तथा ।
वशयेदखिलान्देवानचिरात् किमु पार्थिवान् ।।१७१।।

विशुद्धँल्लवणप्रस्थं विभक्तम्पञ्चधा पृथक् ।
एकैकया प्रजुहुयादृचा पञ्चाहमादरात् ॥१७२॥

यस्य नाम्ना स वश्यः स्यादनेन विधिनाऽचिरात् ।
शुद्धँल्लवणमादाय जुहुयान्मधुरान्वितम् ॥१७३॥

ऊनपञ्चाशदाहुत्या वशन्नयति वाञ्छितम् ।
नित्यं शुद्धेन लोणेन हुत्वा शत्रून्वशन्नयेत् ॥१७४॥

मधुरत्रयसंयुक्तैर्लवणैः साधुचूर्णितैः ।
जुहुयाद्वशयेन्नारीन्नरान्नरपतीनपि ॥१७५॥

मन्त्रङ्कृष्णद्वितीयादि प्रजपन्यावदष्टमीम् ।
पुत्तलीः पञ्च कुर्वीत साङ्गोपाङ्गाः समाः शुभाः ॥१७६॥

एका साध्यद्रुमेण स्यादन्या पिष्टमयी मता ।
चक्रिहस्तमृदाऽन्या स्यादन्या सिक्थमयी मता ॥१७७॥

लवणम्पोतसम्भूतञ्चूर्णितम्परिशोभितम् ।
कुण्डवम्प्रोक्षयेत्क्षीरदध्याज्यमधुभिः क्रमात् ॥१७८॥

गुडाल्पमधुभिः सम्यङ् मिश्रितेनाऽमुना ततः ।
कुर्वीत पुत्तलीं सौम्यां सर्वावयवशोभिताम् ॥१७९॥

प्राणमन्त्रकृतं यन्त्रमासां हृदि विनिक्षिपेत् ।
आसु प्राणान्प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्कुसुमादिभिः ॥१८०॥

पश्चात्कृष्णाष्टमीं शम्भौ याममात्रे गते निशि ।
विधाय मातृकान्यासम्मन्त्रन्यासमनन्तरम् ॥१८१॥

चिटिमन्त्रसमुद्भूतांश्चतुर्विंशतिसङ्ख्यकान् ।
ताराद्यान् विन्यसेद्वर्णान् स्थानेष्वेषु समाहितः ॥१८२॥

मूर्द्धिन भाले दृशोः श्रुत्योर्नासास्यचिबुकेष्वथ ।
कण्ठहृत्स्तनयुग्मेषु कुक्षौ नाभौ करद्वये ॥१८३॥

मेढ्रे पायौ प्रविन्यस्य शिष्टवर्णचतुष्टयम् ।
ऊरुद्वये जानुयुगे जङ्घायुग्मे पदद्वये ॥१८४॥

एवं विन्यस्तसर्वाङ्गे रक्तमाल्यानुलेपनः ।
रक्तवस्त्रधरः शुद्धः पुत्तलीन्दारुणा कृताम् ॥१८५॥

अधोमुखीं खनेत्कुण्डे पिष्टजामासनादधः ।
मृण्मयीम्प्रतिमाम्पाददेशे न्यसेत्तथाऽऽत्मनः ॥१८६॥

मधूच्छिष्टमयीं व्योम्नि कुण्डस्योर्द्ध्वे प्रलम्बयेत् ।
लवणेन कृताम्पश्चात् पुत्तलीं संस्पृशञ्जपेत् ॥१८७॥

ऋक्पञ्चकं यथान्यायमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
संहृत्या चिटिमन्त्रार्णान् पुनस्तस्यास्तनौ न्यसेत् ॥१८८॥

अङ्गुष्ठसन्धिप्रपदजङ्घाजानूरुपायुषु ।
लिङ्गदेशे पुनर्नाभौ जठरे हृदयाम्बुजे ॥१८९॥

स्तनद्वये कन्धरायाञ्चिबुके वदने ततः ।
घ्राणयोः कर्णयोरस्थ्नोर्ललाटे मूर्द्धनि न्यसेत् ॥१९०॥

अग्निमादाय सन्दीप्य साध्यनक्षत्रदारुभिः ।
तस्मिन्नभ्यर्च्य मन्त्रेण देवतां रूप्यपात्रके ॥१९१॥

कुशीतराजिपुष्पाद्भिर्दत्वाऽर्घम्प्रणमेत् सुधीः ।
मन्त्रैस्तैस्तैः प्रयोगादावन्ते संयतमानसः ॥१९२॥

धनं मे नाप्यमित्रघ्न निशायां हव्यवाहन ।
हविषा मन्त्रजप्तेन तृप्तो भव तया सह ॥१९३॥

जातवेद महादेव तप्तजाम्बूनदप्रभ ।
स्वाहापते विश्वभक्ष लवणन्दह शत्रुहन् ॥१९४॥

ईशे शर्वरि शर्वाणि ग्रस्तम्मुक्तं यया जगत् ।
महादेवि नमस्तुभ्यं वरदा कामदा भव ॥ १९५ ॥

तमोमयि महादेवि महादेवस्य सुव्रते ।
त्रियामे पुरुषं हत्वा वशमानय देवि मे ॥ १९६ ॥

दुर्गे दुर्गादिरहिते दुर्गसंरोधनातुले ।
चक्रशङ्खधरे देवि दुष्टशत्रुभयङ्करि ॥ १९७ ॥

नमस्ते दह शत्रुम्मे वशमानय चण्डिके ।
शाकम्भरि महादेवि शरणम्मे भवाऽनघे ॥ १९८ ॥

भद्रकालि भवानीष्टे भद्रसिद्धिप्रदायिनि ।
सपत्नान्मे हन दह शोषय[1] मारय तापय ॥ १९९ ॥

शूलासिशक्तिवज्राद्यैरुत्कृत्योत्कृत्य मारय ।
महादेवि महाकालि रक्षाऽस्मानक्षरात्मिके ॥ २०० ।

सायं संस्मृत्य निर्भिद्य पुत्तलीं सप्तधा ततः ।
ऋक्पञ्चकं समुच्चार्य्य जुहुयादेधितेऽनले ॥ २०१ ॥

प्रथमो दक्षिणः पादस्तत्करस्तदनन्तरम् ।
शिरस्तृतीयमाख्यातं वामहस्तमतः परम् ॥ २०२ ॥

मध्यादूर्ध्वम्पञ्चमः स्यादधोंऽशः षष्ठ ईरितः ।
सप्तमो वामपादः स्यादेवम्भागः क्रमः स्मृतः ॥ २०३ ॥

सप्तसप्तविभागो वा प्रोक्तेष्वेषु यथाविधि ।
कृत्वैवमर्च्चयित्वाऽग्निम्प्रणमेद्दण्डवत्ततः ॥ २०४ ॥

यजमानो धनैर्धान्यैः प्रीणयेद् गुरुमात्मनः ।
अनेन विधिना मन्त्री वशयेत्स सुरासुरान् ॥२०५॥

किम्पुनर्मनुजान् भूपानमात्यान्नृपयोषितः ।
मारणे पूर्वसम्प्रोक्तम्पुत्तलीनाञ्चतुष्टयम् ॥२०६॥

निवेशयेद्यथापूर्वं साधकेन्द्रो विधानवित् ।
अपरं वक्ष्यमाणेन साधनेन प्रकल्पयेत् ॥२०७॥

वराहपारावतविड्निम्बूत्र्यूषणरामठैः ।
व्रणकृन्निम्बसिद्धार्थसाध्यवामाङ्घ्रिरेणुभिः ॥२०८॥

महिषीमूत्रसम्पिष्टैः पूर्वोक्तलवणान्वितैः ।
विधाय पुत्तलीं सम्यक् प्राणस्थापनमाचरेत् । २०९ ।

---

१. क. शोष ।

जपपूजादिकं सर्वङ्कुर्य्यात् प्रागुक्तवर्त्मना ।
ततः पूर्वोदिते कुण्डे रात्रौ प्रज्वलितेऽनले ॥२१०॥
दुर्गां वा भद्रकालीं वा समाराध्य यथाविधि ।
[1]धारयन्निशितं शस्त्रं सव्यहस्तेन साधकः ॥२११॥
वामपादं समारभ्य दक्षिणाङ्घ्र्यवसानकम् ।
छित्वा छित्वा प्रजुहुयान्निराहारो जितेन्द्रियः ॥२१२॥
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्द्दशीम् ।
अनेनैव विधानेन होमङ्कुर्य्याद्विचक्षणः ॥२१३॥
त्रिसप्ताहप्रयोगेण मारयेद्रिपुमात्मनः ।
कारस्करोऽथ धात्री स्यादौदुम्बरमतः पुनः ॥२१४॥
जम्बूखदिरकृष्णाख्यौ वंशपिप्पलसंज्ञकौ ।
अम्बष्ठविल्वार्जुनाख्यविकङ्कतमहीरुहः ॥२१५॥
वकुलः सरलः सर्ज्जो[2] वञ्जुलः पनसार्ककौ ।
शमीकदम्बनिम्बाम्रमधूकानृक्षशाखिनः[3] ॥२१६॥
आत्मरक्षादिकं सर्वङ्कुर्य्यान्मन्त्री यथा पुरा ।
अमुना मनुना सम्यगभीष्टफलसाधने ॥२१७॥
सदृशो नाऽस्ति मन्त्रोऽन्यः सत्यमेतन्न चाऽन्यथा ।

**श्रीयन्त्रसारे**—

कर्णिकायां लिखेत्तारङ्क्रमात्पत्रेषु चाऽष्टसु ।
पिशङ्गभृष्टिमन्त्रस्य त्रीणि त्रीण्यक्षराणि च ॥२१८॥
रक्षोहणं वाजिनमित्यृचा मातृकयाऽपि च ।
अया व इत्यृचा चैव भूपुरेण च वेष्टयेत् ॥२१९॥
एतन्मन्त्रञ्ज्वरोन्मादग्रहपीडादिनाशनम् ।
इदमेव समालिख्य वसने गैरिकादिभिः ॥ २२० ॥
तेन प्रावृतदेहञ्च ज्वरः सद्यो विमुञ्चति ।

---

१. क. धारयेन्निशितं । २. क. सर्ज । ३. क. ०मधूकानाक्ष० ।

अयमर्थः— अष्टदलकर्णिकायां ससाध्यं तारं विलिख्याऽष्टदलेषु—वक्ष्यमाण 'पिशङ्गभृष्टि' मन्त्रस्य त्रीणि त्रीण्यक्षराणि विभज्य विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तचतुष्टयान्तरालस्थवीथीत्रये प्रथमवीथ्यां–'रक्षोहणं वाजिनमि' त्यृचा, तद्बहिर्वीथ्यां—मातृकार्णैस्तद्बहिर्वीथ्यां–'अया ते अग्न' इत्यृचा च संवेष्टच, तद्बहिश्चतुरश्रं कुर्यादेतदुक्तफलदम् ।

ऋचस्तु—पिशङ्गभृष्टिमंभृणं[1] पिशाचिमिन्द्र सं मृण[2] ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ २२१ ॥

रक्षोहणं वाजिनमाजिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुपयामि शर्म ।
शिशानो अग्निः ऋतुभिः समिद्धः स नो दिवा सरिषः पातु नक्तम् ।२२२।

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रतिस्तोमं शस्यमानं गृभाय[3] ।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान्[4] द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ।।२२३।।

पिशङ्गभृष्टिमन्त्रस्य परुच्छेप[5] ऋषिर्गायत्रीछन्द इन्द्रो देवता । रक्षोहणमित्यस्य वायुऋषिस्तृष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता रक्षोघ्नं वा । अया त[6] अग्ने इत्यृचः कृणुष्व पाज[7] इति सूक्तस्यैव ऋष्याद्या ज्ञेयाः । ते त्वग्रे वक्ष्यन्ते ।

तथा–अष्टपत्रस्य पद्मस्य कर्णिकायां विलिख्य च ।
तारम्पत्रेषु मन्त्रार्णाञ्श्चतुरश्चतुरः क्रमात् ।।२२४।।

मातृकार्णैः समावेष्टच क्ष्रौं बीजं कुगृहाश्रिषु ।
आलिख्य यन्त्रमेतत्तु धारयेद्यो यथाविधि ।।२२५।।

कृत्याभिभवनिर्मुक्तः[8] स जीवेच्छरदां शतम् ।

अस्यार्थः— अष्टदलकर्णिकायां ससाध्यं तारं विलिख्याऽष्टसु दलेषु वक्ष्यमाणायाः कल्पयन्तीत्यृचो वर्णान् प्रतिदलं चतुरश्चतुरो विभज्य विलिख्य,

---

१. ख. ० मंत्तृणं । २. क. ख. सं पृत ।
३. ख. भृगाय । ४. क. पाह्यस्मान्मान् । ५. क. पुरुछेय । ६. क. अपति । ख. अपाते । ७. ख. याज । ८. क. कृत्याभिर्भव० ।

तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकार्णैः संवेष्टय, बहिश्चतुरश्रकोणेषु क्ष्रौं नृसिंहबीजं[1] लिखेदेतदुक्तफलदम् ।

मन्त्रस्तु—यां[2] कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव ।
तां ब्रह्मणाय निर्नुद्मः प्रत्यक् तारमृच्छतु ॥२२६॥

प्रत्यङ्गिरा ऋषिरनुष्टुप्छन्दः प्रत्यङ्गिरादेवी देवता ।

तथा—कर्णिकायां साध्यगर्भन्तारम्पत्रेषु षट्स्वपि ।
कृणुष्वेत्याद्यद्धं मर्द्धं न्दधर्षीदन्तमालिखेत्[3] ॥२२८॥

तद्बाह्येऽष्टसु पत्रेषु ह्यु दग्नेत्याद्यृचाङ्क्रमात्[4] ।
अर्द्धं मर्द्धं सासदिष्टिरित्यन्तं षोडशस्वथ ॥२२८॥

पत्रेष्वर्चाम्याद्याञ्च दद्यादन्तं चर्चां यथाक्रमम् ।
अर्द्धमर्द्धं समालिख्य बाह्ये रक्षोहणाद्यया[5] ॥२२९॥

विज्योतिषेत्यृचा भूयस्तद्द्वयेन च वेष्टयेत् ।
मातृकार्णैः समावेष्टय भूपुरेण च वेष्टयेत् ॥२३०॥

रुचकादिषु भूषासु सम्यक् संयोज्य धारणात् ।
यन्त्रमेतद्ग्रहोन्मादज्वरकृत्याद्युपद्रवान् ॥२३१॥

नाशयेदथ वा वस्त्रे कुङ्कुमाद्यैर्विलिख्य च ।
जप्ता तत् प्रावृताङ्गन्तु ज्वरः सद्यो विमुञ्चति ॥२३२॥

अस्यार्थः- षड्दलकमलकर्णिकायां ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, षट्सु दलेषु कृणुष्व पाज इत्यारभ्य व्यथिरादधर्षीदित्यन्तस्य ऋक्त्रयस्यार्द्धषट्कं विलिख्य, तद्बाह्येऽष्टदलेषु उदग्ने तिष्ठेत्यादि–सुदिना सासदिष्टिरित्यन्तस्य ऋक्चतुष्टयस्यार्द्धमालिख्य, तद्बहिः षोडशदलेषु अर्चामि तेत्यादि-मित्रमहो[6]अवद्यादित्यन्तन्तस्य

---

१. ख. 'क्ष्रौं' इति । २. ख. नाऽस्तीदम्पदम् ।
३. ख. ० न्दधर्षीद ० । ४. क. ह्युद्ग्ने ० । ५. क. ० ग्रथा । ६. क. मिमहोत्र । ख. ० भिमत्रहो ।

ऋगष्टकस्यार्द्धमर्द्धं विलिख्य, तद्बाह्ये वृत्तचतुष्टयान्तर्गतान्तरालत्रये प्रथमे रक्षोहणं वाजिनमित्यृचा पूर्वोक्तया, द्वितीये विज्योतिषा बृहदित्याद्यया, तृतीये मातृकयाऽत्र[1] संवेष्टच, तद्बहिश्चतुरस्रं कुर्य्यादितदुक्तफलदम् ।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि[2] विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ।।२३३।।

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने[3] जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विश्वगुल्काः ।।२३४।।

प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो[4] अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा[5] दधर्षीत् ।।२३५।।

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते[6] ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं[7] न शुष्कम् ।।२३६।।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व[8] दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां[9] जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ।।२३७।।

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ[10] य ईवते[11] ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि[12] रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ।।२३८।।

सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ।।२३९।।

अर्चामि[13] ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरनामियं[14] गीः ।
स्वश्वास्त्वा[15] सुरथा मर्जयेमास्मे[16] क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ।।२४०।।

---

१. ख. ०या च । २. ख. द्रुणानो० । ३. ख. तपूंष्वग्ने । ४. क. भवायुर्विशो । ख. भवायायुर्विशो । ५. ख. व्यधिरा । ६. क.ख. ओषताति० । ७. क.ख. धक्षतसं । ८. क. विध्याध्यस्मदावि । ख. विध्याध्यास्म० । ९. क. यातुजंतूनां । १०. क. पविष्ठ । ११. क. ईचते । १२. क. ख. सुदिनादि । १३. क. अर्चाम । १४. क. जरेत० । ख. जराता० । १५. क. ख. अश्वास्त्वा । १६. क. मजयेमास्मे । ख. मार्जये० ।

इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु[1] द्यून् ।
क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ।।२४१।।

यस्त्वा स्वश्वः[2] सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन[3] ।
तस्य त्राता भवसि[4] तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ।।२४२।।

महो रुजामि[5] बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ[6] सुक्रतो दमूनाः ।।२४३।।

अस्वप्नजस्तरणयः[7] सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ।।२४४।।

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त[8] इन्द्रिपवो[9] नाह देभुः ।।२४५।।

त्वया वयं सधन्य स्त्वोतास्तव[10] प्रणीतश्याम[11] वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठया कृणुह्यह्रयाण ।।२४६।।

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान्द्रुहो[12] निदो मित्रमहो अवद्यात् ।।२४७।।

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रा देवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ।।२४८।।

कृणुष्व पाजेति पञ्चदशर्चस्य रक्षोघ्नस्य वामदेव ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, रक्षोघ्नो देवता । वि ज्योतिषेति कुमार ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दोऽग्निर्देवता ।

तथा— कर्णिकायाँल्लिखेत्तारम्मनोः पत्रेषु चाऽष्टसु ।
पञ्चषट् पञ्चषट् पञ्चरस भूतषडर्णकान् ।। २४९ ।।

वयं त एभिर्मातृकया भूपुरेण च वेष्टयेत् ।
इन्द्रश्रेष्ठानि मन्त्रस्य यन्त्रं सर्वसमृद्धिदम् ।। २५० ।।

---

१. क. दोषावर्स्तदी०। ख. त्वंदोषा० । २. ख. श्वरवः । ३. क. रथेनै । ४. क. ख. भवति । ५. क. रूजामि । ख. नुजामि । ६. क. ख. ०र्यविश्व । ७. क. अस्वप्नेजा० । ८. क. दिसंत । ९. क. ख. इन्द्रियवो । १०. क. ख. स्तोता० । ११. क. ख. प्रणीत्य० । १२. क. ख. ० स्मान्दुहो ।

आयुरारोग्यसौभाग्यधनधान्यसुतप्रदम् ।
सर्वरक्षाकरं वश्यं सुदिनन्तु यशस्करी[1] ।। २५१ ।।
किमत्र बहुनोक्तेन वाञ्छितार्थप्रदङ्करी ।

अस्यार्थः—अष्टदलमध्ये प्रणवं ससाध्यं विलिख्याऽष्टपत्रेषु पञ्चषट् पञ्चषट् इति क्रमेणेन्द्रश्रेष्ठानित्यृचो वर्णान् विभज्य विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तत्रयान्तरालयोः प्रथमे—वयं त एभिरित्यृचा, द्वितीये मातृकया च संवेष्टय, तद्बहिश्चतुरस्रं कुर्य्यादिति ।

इन्द्रश्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि
चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां,
स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम ।।२५२।।

इन्द्रश्रेष्ठानि मन्त्रस्य गृत्समद ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, इन्द्रो देवता ।

एतस्यैव यन्त्रान्तरमाह—

प्रणवमासुरमध्यमथो बहि-
र्वसुदले स्वरसंयुतकेसरे ।
अयुजि पञ्च गुहाननशो युजि,
प्रविलिखेच्च मनोः क्रमशोऽर्णकान् ।।२५३।।

अभिवृतं खलु कादिभिरक्षरै-
र्धरणिगेहयुगाश्रिषु मन्मथम् ।

गुहाननशः—षट्षट्सङ्ख्यया

धनधरासुभगत्वमनोज्ञता,
मधुरवाग्वररत्नयशःश्रियम् ।। २५४ ।।

सुदिनताञ्च तनोति परन्नृणाम्-
बलनिषूदनयन्त्रमिदन्धृतम् ।

अस्यार्थः—प्रागुक्त एव यन्त्रे केसरेषु युगशः स्वरान् विलिख्य, कादिक्षान्तैरेव वेष्टयेत् । अत्र पूर्वयन्त्रोक्तऋग्वेष्टनं नाऽस्ति । अष्टकोणेषु कामबीजं लिखेत् । वासोऽलङ्कारभूषणमिष्टभोजनस्वेष्टजनदर्शनप्राप्तिः सुदिनत्वे (त्वम्) ।

---

१. ख. यशस्करम् ।

तथा— विलिख्य कर्णिकान्तरे ध्रु वन्दलाष्टके मनोः ।
षडर्त्तुवेदषट्शरत्रयी स्वरेन्द्रियांक्षरान् ॥ २५५ ॥

लिखेच्च मातृकाक्षरैर्धरापुरेण चाऽऽवृतम् ।
वयं त एभिरित्यृचः सुयन्त्रमेतदिष्टदम् ॥ २५६ ॥

विशिष्टरत्न-गोधरा-सुवर्णधान्यशालिनीम् ।
वितीर्य्य सम्पदपम्परां रिपुक्षयञ्च यच्छति ॥ २५७ ॥

अस्यार्थः—अष्ट दलकमलकर्णिकायां ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, तद्दलेषु वयं त एभिरित्यृचो वर्णान् 'षट्-षट्, चतुःषट, पञ्च चतुः, सप्तपञ्चक्रमेण'[1] विभज्य, विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकार्णैरावेष्टय तद्बहिश्चतुरश्रं कुर्य्यादितदुक्त फलदम् ।

वयन्तः एभिः पुरुहूत सख्यैः,
शत्रोः शत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर
राया[2] मदेम बृहता[3] त्वोताः ॥ २५८ ॥

वयन्त एभिरिति मन्त्रस्य भरद्वाज ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, इन्द्रो देवता ।

श्रीयन्त्र रे—
आलिख्याऽभीप्सितं यन्त्रम्बीजन्तत्कर्णिकान्तरे ।
तस्योदरे समिति च बीजं साध्यार्णवेष्टितम् ॥ २५९ ॥

बीजस्य पार्श्वयोर्दृष्टी इ ईति च तत्पुरः ।
जिह्वां स्पृमिति दिक्ष्वेतान् सोहं हंसार्णकान् बहिः ॥ २६० ॥

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रञ्च गायत्रीमन्त्रयन्त्रयो. ।
यथाऽवकाशं विलिखेत् स्वगुरूक्तेन वर्त्मना ॥ २६१ ॥

सारसङ्ग्रहे—
गुलिकीकृत्य तद्यन्त्रं लाक्षालोहत्रयावृतम् ।
कृत्वा प्रतिष्ठितप्राणं सिक्तं सम्पातसर्पिषा ॥ २६२ ॥

---

१. ख. '—' षट् षट् चतुः पञ्च चतुः सप्त पञ्चक्रमेण ।
२. ख. ण्या । ३. क. ख. ष्टहता ।

विन्यस्य[1] कलशे यन्त्रं स्थापिते विधिवद् गुरुः ।
तत्राऽऽवाह्य यजेत्सम्यक् तत्तद्यन्त्रस्य[2] देवताम् ॥२६३॥

तत्कुम्भोदकसिक्ताय वितरेद्यन्त्रमादरात् ।
गृहीत्वा गुरुणा दत्तं भक्त्या यन्त्रम्प्रसन्नधीः ॥२६४॥

बिभ्रियादुक्तविधिना विश्वस्तः सर्वसिद्धये ।
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीरोचनान्वितः ॥२६५॥

मदः करिभवो लाक्षारसः कुङ्कुमसंयुतः ।
यन्त्रलेखनद्रव्याणि क्रूरेष्वष्ट विषाणि च ॥२६६॥

लवणोषणमेहाम्बुगृहधूमाग्निसंयुतः ।
श्मशानाङ्गारनिम्बोत्थनिर्यासो[3] विषमीरितम् ॥२६७॥

ऊषणं ऊषरः, मेहाम्बु प्रस्रवः, अग्निः चित्रकम् ।

त्रिलोहभूर्ज्जपत्राणि क्षौमतालदलानि च ।
तत्तत्कल्पोदितानि स्युर्यन्त्राधिकरणानि च ॥ इति ॥ ॥ २६८ ॥

॥ अथैतत्प्रयोगः ॥

तत्र सुदिने शुभे मुहूर्त्ते चन्द्रताराद्यनुकूले साधकः कृतनित्यकृत्यः[4] श्रीगुरुं प्रणम्य, विघ्नेश्वरं समभ्यर्च्य, पूर्वोक्तवारेशद्वयतिथीशनक्षत्रेशान् सम्पूज्य, स्वाभिमतं यन्त्रं वर्णविन्यासमन्तरेण विरच्य, तन्मध्ये लेख्यं बीजं विपुलतरोदरं विलिख्य, तस्योदरे 'सं' इति बीजं विलिख्य, तद्बीजं साध्यनामाक्षरैः संवेष्टच, पूर्वलिखितबीजाद्बहिस्तद्दक्षवामपार्श्वयोः 'इ ई' इति दृष्टिद्वयं विलिख्य, तत्पुरतः 'स्प्रूं' इति जिह्वाबीजं विलिख्य, तस्य प्रागादिदिक्षु-'सोहं हंसः' इति प्रादक्षिण्येनैकैकमक्षरं विलिख्य, तदनु यथास्थानं साधककर्मादि तत्तत्कल्पोक्तं सर्वं विलिख्य, सर्वान्ते प्राणप्रतिष्ठामन्त्रं [मन्त्रगायत्रीयन्त्रं गायत्रीं च यथावकाशं लिखेत्। तत्र प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः प्रागेवोक्तस्तत्प्रतिष्ठाविधिस्त्वग्रे वक्ष्यते। मन्त्रगायत्री तत्तत्कल्पे द्रष्टव्यः][5]

---

१. क. विन्यस्त । २. ख. ० द्यन्त्रस्थ । ३. क. ० निम्बोस्य० ।
४. ख. कृतनित्यः । ५. [ — ] कोष्ठस्थोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

यन्त्रगायत्री तु–'ॐ यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्' इति इत्थं यन्त्रं विलिख्य, गुलिकीकृत्य, लाक्षालोहत्रय-वेष्टितं क्वचित् संस्थाप्य, स्वासनपूजादिन्यासजातं विधाय, यन्त्रस्य यन्त्रलिखित-मन्त्रगणस्य साध्यस्य च पृथक् पृथक् प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा, तत्र तद्योगपीठपूजा-पूर्वकं यन्त्राधिदेवतामावाह्य, साङ्गां सावरणां सम्पूज्य, तद्यन्त्रं स्पृशन् मूलविद्यां देवताध्यानपूर्वकं लक्षाद्ययुतावधि[1] कार्यस्य गौरवलाघवं विज्ञाय, जपित्वा, कुण्डा-दावग्निं संस्कृत्य, गोघृतेनाऽयुतादिसहस्रान्तं यन्त्रे हुतशेषं स्रुवलग्नं संपातयन् हुत्वा, तद्यन्त्रे सर्वतोभद्रमण्डले वा दीक्षोक्तविधिना कुम्भं संस्थाप्य, तत्र यन्त्रं निक्षिप्य, यन्त्रदेवतां साङ्गां सावरणां सम्पूज्य, तेन जलेनाऽभिषिक्ताय यन्त्रं दद्यात् । सोऽपि प्रणामपूर्वकं यन्त्रमादायाऽऽचार्य्यतोषणं कृत्वा, सुसंहृष्टो विश्वास-पूर्वकं धारयेत्तेन सर्वाभीष्टसिद्धयो भवन्तीति शिवम् ।।

**इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मजगोस्वामि-**
**श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ**
**षट्पञ्चाशस्तरङ्गः ।। ५६ ।।**

१. ख. लक्षायुतावधि ।

## सिंहसिद्धान्तसिन्धोस्तृतीयखण्डस्य

# शुद्धिपत्रम्

| पृष्ठ–पङ्क्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|
| ५-६ | श्रतिः | श्रुतिः । |
| १८-२१ | जुहुया-गो० | जुहुयाद्गो० |
| १९-२० | विधार्थी | विद्यार्थी |
| ३५-१० | ०भीषणकरसहस्र मुख० | ०भीषणकर सहस्रमुख० |
| ३९-३९ | ध्यानान्तरं | ध्यानानन्तरं |
| ४३ ५ | ॐ | ॐ |
| ४४-१० | द्वयेनकेन | द्वयेनैकेन |
| ४४-२० | द्रव्याव्यष्टौ | द्रव्याण्यष्टौ |
| ४४-१४ | विलख्य | विलिख्य |
| ४८-२२ | युक्त | युक्तं |
| ४९-८ | ०रेखेत्यथः | ०रेखेत्यर्थः |
| ५०-१० | पर्यदर्ति० | पर्षदति० |
| ५०-१७ | भुनेशी० | भुवनेशी० |
| ५२-१९ | साधकः | साधकाः |
| ५३-२ | ०श्चेति नाशः | ०श्चेतिनाशः |
| ५३-३ | स्याग्दौ० | स्याद्गौ० |
| ५४-१० | क्रमाम् | क्रमात् |
| ५६-११ | यन्त्रब्बाह्ये | यन्त्रबाह्ये |
| ५८-६ | दर्शये | दर्शयेत् |
| ६०-११ | वाऽरुणं | वारुणं |
| ६१-४ | निजेष्टाप्त्यै प्तये | निजेष्टात्प्यै |
| ६१-२१ | ०रश्चरथः | ०रश्वरथः |
| ६२-१७ | षगङ्गानि | षडङ्गानि |

| पृष्ठ-पङ्क्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
| --- | --- | --- |
| ७२-५ | पुरोक्तर्ववत् | पुरोक्तवत् |
| ७२-८ | घृतम्भटेन | धृतम्भटेन |
| ८२-२१ | ०चक्रवनुर्बाणः | ०चक्रधनुर्बाण० |
| ८६-२ | कलाप त्राम्बुजं | कलापत्राम्बुजं |
| ९४-१२ | ०न्मृद्वाग्नि० | ०न्मृद्वग्नि० |
| ९७-४ | स्पशञ्ज० | स्पृशञ्ज० |
| ९७-६ | तस्याम्मूतौ | तस्याम्मूर्त्तौ |
| ९८-५ | स्तु | वर्णास्तु |
| ९९-१४ | पयसारसमंचयम् | पयसा रसमन्वहम् |
| १००-४ | मध्यपूव० | मध्यपूर्व० |
| १००-१० | हौममिति | होममिति |
| १०३-१२ | स्युर्वीत० | स्युर्वान्त० |
| १०३-१९ | न घ त थ ध द, | न त थ घ द, |
| १११-८ | रबाग्रादि० | स्वाग्रादि० |
| १२४-२४ | ०रप्यति मति० | रप्यतिमति० |
| १३५-४ | तद्वार्हिर्ग० | तद्वहिर्ग० |
| १३५-१३ | दीर्घा मकारः, | दीर्घा नकारः, |
| १६३-२० | ०ऽऽवाह्म | ०ऽऽवाह्य |
| १७३-१८ | ०ङ्केचि० | ०ङ्क्चि० |
| १८७-१२ | क्षत्रपालाय | क्षेत्रपालाय |
| १९०-१० | ०मातङ्गयाः | ०मातङ्ग्याः |
| १९०-१७ | वशं कुरु स्वाहा | वशं कुरु कुरु स्वाहा |
| २१०-१५ | श्रीबिजानि | श्रीबीजानि |
| २१३-६ | षट्द्विवर्ण | षड्द्विवर्णैः |
| २१८-२ | ०वर्णसंख्य० | वर्णसंख्य० |
| २२०-६ | परतत्रऽपि | परत्राऽपि |
| २३०-५ | सहस्त्रैक० | सहस्रैक० |

| पृष्ठ-पङ्क्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|
| २३१-१८ | पत्रित्रो | पवित्रो |
| २३३-६ | दकार | दुकार |
| २३५-२ | ०षडङ्गेष्वपि | षडङ्गेष्वपि |
| २३८-२० | महिषमर्दनि | महिषमर्द्दिनि |
| २६१-१६ | ०न्तेषमेवं | न्तेषामेवं |
| २६६-१६ | ०च्छ्रेयसी० | ०च्छ्रेयसी० |
| २६६-२२ | यथापर्ण० | यथावर्ण० |
| २६७-१ | त्रिष्ट | त्रिषु |
| २७२-६ | शुद्धस्फुटिक० | शुद्धस्फटिक० |
| २८५-५ | ०श्चरुभिरत्तमैः | ०श्चरुभिरुत्तमैः |
| २६४-४ | तेदिकां | वेदिकां |
| ३००-१ | बारणेयं | वाऽऽरणेयं |
| ३००-३ | ०ब्रह्माणान्द० | ब्रह्माणन्द० |
| ३०५-१८ | मूर्दघ्नि | मूर्द्घ्नि |
| ३१७-८ | क्षिणामूर्त्तिः | दक्षिणामूर्त्तिः |
| ३१७-२६ | नतिपाशधरां | रतिम्पाशधरां |
| ३२७-५ | तन्त्रराज० | तन्त्रराज० |
| ३ ६-२१ | शिवचन्द्रौ सकौ, | शिवचन्द्रौ हसौ, |
| ३२६-२१ | षान्तं कः, | पान्तं फः, |
| ३३०-८ | ०द्विकरणोम्प्रिये | ०द्विकरणीम्प्रिये |
| ३३१-१ | ह्रीं घोरतरे | ह्रीं घोरघोरतरे |
| ३३१-१८ | ायजेद्देवी० | यजेद्देवी० |
| ३३६-३ | पातु हैं | पातु ह्सैं |
| ३४२-५ | भर्त्येक० | मूर्त्येक० |
| ३४४-८ | ब्रह्माद्याः | ब्राह्मयाद्याः |
| ३४५-१८ | मह्यम नं मे | मह्यमन्नं |
| ३४६-३ | रम्ययायस० | रम्यपायस० |
| ३४६-२१ | क्षुधान्तं० | क्षुधार्त्त० |

| पृष्ठ-पङ्क्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|
| ३४६-२४ | ०ऽन्नपूर्णौं | ०ऽन्नपूर्णे |
| ३५१-१३ | मन्त्रसिद्ध० | मन्त्रसिद्धि० |
| ३५१-१६ | ०समृद्धौ | समृद्धो |
| ३५३-१८ | ०बाणानान्नयास० | ०बाणानान्यास० |
| ३५५-१४ | त्रिपुरेशान्पा | त्रिपुरेशान्या |
| ३६१-६ | प्रोगेवो० | प्रागेवो० |
| ३६६-४ | ०निपुटा० | ०न्त्रिपुटा० |
| ३६६-५ | लोकरञ्जक० | लोकरञ्जनक० |
| ३६६-८ | त्रिपुरा० | त्रिपुटा० |
| ३६८-२५ | षड्डीर्घ० | षड्दीर्घ० |
| ३७१-२५ | इत:परं | १. इतः परं |
| ३७४-१५ | स रौद्रचै | सं रौद्रचै |
| ३७४-१५ | स:गुह्यशक्तयै | सः गुह्यशक्तये |
| ३७६-१५ | त्रि: करो | त्रि: करौ |
| ३७६-२६ | ३, ख. त्रिकरो | क. त्रिकरो |
| ३८१-२० | दिशेर्षं | दिशेषं |
| ३८२-२२ | स्मरेद्धयाये० | स्मरेद्धयाये० |
| ३८५-१८ | ह्लँ ह्लीँ भुवन० | ह्लँ ह्लीँ भुवन० |
| ३८७-२३ | ०रङ्गालैश्च | ०रङ्गारैश्च |
| ३९३-८ | थोनिमुद्रा० | योनिमुद्रा० |
| ३९३-१० | निशामयः | निशामय |
| ३९५-१२ | हृ य नम: | हृदयाय नम: |
| ३९६-१६ | महासिद्धि: | महासिद्धी: |
| ३९९-४ | त्रिसध्व० | त्रिसन्ध्य० |
| ४००-२३ | ०द्वयोर्द्वे | ०द्वयोर्द् ध्वे |
| ४००-२५ | ···शो विशेष: | १. इत: परमयमंशो विशेष: |

| पृष्ठ-पंक्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|
| ४०१-१३ तः २१ | कीले क्ष्वेडेत्यादितःकुलोच्चा टनान्तमित्यंशस्थाने निम्नांशः पाठनीयः- | |

कीले क्षेडतरोर्विदर्भ्यं विलिखेन्मन्त्रेण नामाक्षर-
ञ्जप्त्वालेख्यपदद्वये तु निखनेदुच्चाटनं विद्विषाम् ।
त्तत्पादद्वयधूलिकीर्णहविषा दत्वा द्विजेभ्यो बलि-
तञ्जप्त्वा चितिभस्म कीर्त्तितमरेर्गेहे च तद्वद्भवेत् ।।
वायव्ये विलिखेच्च पर्ण्णसहितं जप्तं सहस्राधिक-
ञ्जप्त्वा वायुसुराशिवाक्षदक्कशत्वे वा न तद्रोधकम् ।
चूर्ण्णन्तस्य च पल्लवे विनिहितञ्जप्तं सहस्राक्षर-
ङ्कान्तं शत्रुगृहेषु तच्छिरसि वा तेषाङ्कुलोच्चाटनम् ।।

| पृष्ठ-पंक्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|
| ४०२-१३ | भौमवारे दयादियाम् | भौमवारोदयादिषु |
| ४०४-१ | ०पञ्चाशतरङ्गः | ०पञ्चाशत्तरङ्गः |
| ४०४-५ | देवत्वविघये | देवत्वविधये |
| ४०६-१३ | षड्दीस्बर० | षड्दीर्घस्वर० |
| ४०६-१९ | शोघित० | शोधित० |
| ४०७-१७ | ०करैदेवी० | ०करैर्देवी० |
| ४१३-३ | कुर्याम्मण्डलन्तु | कुर्यान्मिण्डलन्तु |
| ४१४-१ | ०वस्तीर्ण० | ०विस्तीर्ण० |
| ४२५-१६ | कर्ण | कर्णे |
| ४२५-१७ | सिद्धिञ्च | सिद्धिश्च |
| ३२६-१६ | षडङ्गलम् | षडङ्गुलम् |
| ४३४-५ | धृतान्वितैः | घृतान्वितैः |
| ४३६-१२ | तेषाङ्ध्यानि | तेषाङ्ध्यानि |
| ४४४-१३ | सहस्त्रैकेन | सहस्रैकेन |
| ४४८-३ | क्मलनने | कमलानने |
| ४५४-६ | कोधी | क्रोधी |
| ४५५-५ | विरूपादि० | विरूपाक्षि० |
| ४५५-८ | वदेद्धर्मा० | वदेद्वर्मा० |

| पृष्ठ-पङ्क्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|
| ४६०-२२ | ०घिकङ्गरुम् | ०घिकङ्गुरुम् |
| ४६४-२२ | पुष्पे | पुष्प |
| ४८२-१८ | ०देवील्लिखितो० | देवोल्लिखितो० |
| ४८२-१९ | ०व्युत्क्रमेणी- | ०व्युत्क्रमेणो- |
| ४८५-१० | ':रोचन | "वैरोचन |
| ४९३-१७ | ०मस्मभ्यम्माया | ०मस्मभ्यम्मया |
| ५०७-२२ | वामोर्द् ध्वकदिदि- | वामोर्द् ध्वकरादि |
| ५०९-६ | हसदाहाभ्यां | हंसदाहाभ्यां |
| ५११-२ | सवंथा सवंतः | सर्वथा सर्वतः |
| ५११-७ | हंसहृद्ग्रासभस | हंसहृद्ग्रासनभसां |
| ५११-७ | ०क्षकारभकाराणां | क्षकारमकाराणां |
| ५१३-१९ | ०सौभाग्गङ्० | सौभाग्यङ्० |
| ५१५-३ | कीर्त्तिलक्ष्मो | कीर्त्तिलक्ष्मी |
| ५१६-११ | कोष्टत्रयम् | कोष्ठत्रयम् |
| ५१६-२४ | सप्तदशांणान् | सप्तदशार्णान् |
| ५२२-२२ | ह्स्र शक्र० | ह्स्रं शक्र० |
| ५२५-९ | पुरश्वचरण० | पुरश्चरण० |
| ५२७-२४ | रु इति | रुं इति |
| ५३९-८ | ०विद्यावर्णा- | विद्याव- |
| ५४९-१५ | पूजयेद्देव० | पूजयेदेव० |
| ५५३-३ | ०नारिकेजलैः | नारिकेलजैः |
| ५५६ २० | तत- | तत्- |
| ५५७-२५ | सक्षाप्त- | सप्ताक्ष- |
| ५७७-५ | गायत्र्यार्णां० | गायत्र्यर्णां० |
| ५८१-९ | ०ज्योतिराढ्य ० | ज्योतिराढ्यं० |
| ५८१-१७ | सर्वमान्त्रार्थ० | सर्वमन्त्रार्थ० |
| ५८२-१८ | मण्डलं | मण्डले |
| ५९५-१० | प्रतिलोमादितानि | प्रतिलोमोदितानि |

| पृष्ठ-पंक्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|
| ५६५-२३ | एतत्पङ्क्तेरन्तरमेषा पङ्क्ति पठनीया<br>वायुस्थानगतं शत्रुन्दहेद्वाताग्निना धिया | |
| ५६५-२४ | विशुद्ध० | विशुद्धि० |
| ५६६-१५ | वारणा | वारिणा |
| ५६६-२३ | धोरां | घोरां |
| ५६७-५ | समप्रभः | समप्रभाम् |
| ५६७-१६ | धोरा० | घोरां० |
| ५६८-१५ | खङ्गकृता० | खङ्गकृत्ता० |
| ५६८-१६ | ०रक्ताङ्का० | ०रक्तात्का० (?) |
| ५६८-२२ | ०रजस्रोक्षै० | ०रजस्रोत्थैः (?) |
| ५६८-२२ | ०सेनिकाम् | ०सेविताम् (?) |
| ५६६-५ | प्रयागान् | प्रयोगान् |
| ५६६-८ | निवृत्ता | निवृत्तां |
| ५६६-१४ | चितास्थोऽन्यत्र | चितास्थीन्यत्र (?) |
| ५६६-१७ | उपस्थि० | तुषास्थि (?) |
| ५६६-१६ | छित्त्वाऽक्ष० | छित्वाऽज |
| ५६६-२१ | विकिरेस्ता० | विकिरेत्ता० |
| ५६६-२१ | कथितञ्जलम् | क्वथितञ्जलम् |
| ६००-५ | महिषे | माहिषे |
| ६००-६ | न्मत्रं | न्मन्त्रं |
| ६००-२३ | ०पुत्तल्या | पुत्तल्यां |
| ६००-२३ | दोलया० | ०दोदना० (?) |
| ६००-२५ | दिमाः | ०दिमाम् |
| ६०१-१ | प्रणमेत्स | प्रणश्येत्स (?) |
| ६०१-३ | प्रजपेन्मन्त्रं | प्रजपेदस्त्रं (?) |
| ६०१-५ | ०ज्वलया | ०ज्वालया |
| ६०१-८ | विधायैनं | पिधायैनं |
| ६०१-२६ | अर्चितं | अर्च्चिते |

| पृष्ठ पंक्ति | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|
| ६०२-१ | राजभल्ला० | राजीभल्ला० |
| ६०६-२४ | क्षितन्तोव्यस्मप्य | क्षियन्तेद्यास्मत्पाशं (?) |
| ६०६-२५ | द्यूपं पातः | द्यूयं यात |
| ६०८-२ | व्यं० | द्यां० (?) |
| ६०८-२ | नाभौ-यां० | ना भौ-पां० (?) |
| ६१०-१५ | लवरण | लवणं |
| ६१०-१६ | देह गात्राणि | दह गात्राणि |
| ६१०-२० | शीघ्रमग्ने | शीघ्रमग्रे |
| ६१७-१० | अग्रे | अग्ने |
| ६२२-६ | सम्पदपम्परां | सम्पदम्परां |